श्री

जैनतत्त्वादर्शग्रंथ

विद्यमानपण्डितप्रवरमहामुनिआत्मारामजी

आनंदविजयजीविरचित,

समस्तजनहृदयतिमिरपाटनप्रभाकरतुल्य

तथा

सुहितोपदेशामृतह्रदमय

तिनकू

श्री मकशुदाबादनिवासी बाबुसाहेब राय

धनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी बाहादूरके

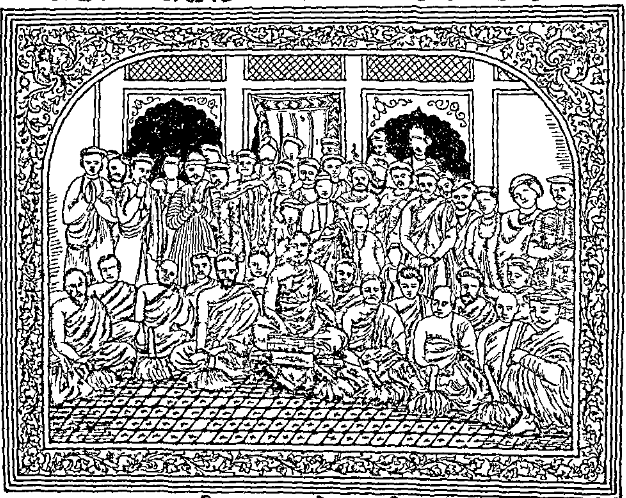
आश्रयसें

भीमसिंह माणकाभिध श्रावकनें

श्री मुम्बापुरीमें

निर्णयसागर मुद्रालयके विषे मुद्रित करायकें प्रसिद्ध किया है

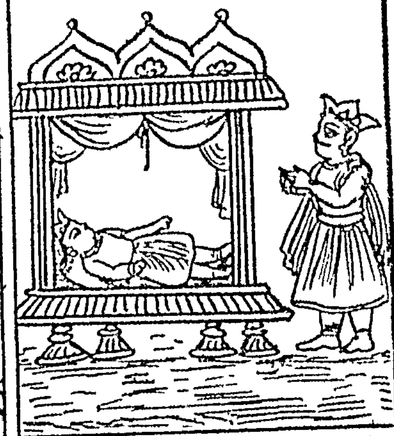
संवत् १९४० के ज्येष्ठ शुद्ध त्रयोदशी भृगुवासर तारीख ६ सने १८८४ ई०



मुनि आत्मारामजी आनदविजयजी








तामलितापस ईसानेंद्रथया तेनुं चित्र.

प्रस्तावना.



अनेक जैन ग्रंथोंके वेत्ता अरु अन्यमतकेभी बहोत ग्रंथोंके अवलोकन करने वाले महामुनि आत्मारामजी आनंदविजयजी है,इनके तत्त्वज्ञानकी शक्ति अरु परोपकारबुद्धि तथा यह पंचम कालके वर्त्तमान समयमें सिद्धांतोक्त उत्सर्गापवाद पूर्वक यथार्थ जैनमार्गीं सुसाधुयोंकी शुद्ध क्रियामे प्रवर्त्त हो कर पृथ्वीमें विहार करने संबंधी प्रख्याती यह भारतवर्षके बहुत देशोके रहनेवाले श्रावक मंमलमें प्रसिद्ध है अरु इनकी निश्रामे रहने वाले साधुयोका समुदायभी पूर्व महामुनियोके सदृश बहोत गुणवान् निर्विकारी मुद्रावाला है, ताते आत्मस्वरूपको जान कर परम पदको साधने वाले, क्षात्यादिक दशविध यतिधर्मके आराधक यह सत्पुरुष विषे हमारे इहां कुछ विशेष प्रशंसा लिखनेकी आवश्यकता नहीं है. इनके तीव्रबुद्धि अरु धर्माभिरुचि आदिक उत्तम गुण जो है,सो इनका बनाया यह ग्रंथ वाचनेसे सद्बुद्धिमान् आपही जान जायंगे. असे सर्वदर्शनग्रंथज्ञाता अरु मुनिधर्मपालनशील महान्पुरुष, यह सांप्रत कालमे थोडेही दिखनेमे आते है.

अब पूर्वाचार्योके संस्कृत अरु मागधी भाषामे रचे हूये ग्रंथोंका आशय न जाननेवाले और जैनतत्त्वस्वरूपके अज्ञात जनोके उपर उपकार बुद्धि करके हालमे पूर्वोक्त महात्माने यह “ जैनतत्त्वादर्श ” नामा ग्रंथकी रचना न्यारे न्यारे बारह परिछेदरूपसे करी है सो इस प्रकारसे कि –

प्रथम परिछेदमे शुद्ध देवतत्त्वका स्वरूप कथन कीया है, दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप वर्णन कीया है, तीसरे परिछेदमे शुद्ध गुरुतत्त्वका स्वरूप कहा है, चौथे परिछेदमें कुगुरुका स्वरूप कथन करा है, पाचवे परिछेदमे शुद्ध धर्मतत्त्वका स्वरूप नव तत्त्वरूपसे कथन कीया है,छठे परिछेदमे सम्यक्ज्ञानका स्वरूप कथन करने वास्ते चौदह गुणस्थानकोके स्वरूप कहे है, सातवे परिछेदमे सम्यक्दर्शनका स्वरूप कथन करा है, आठवे परिछेदमे सम्यक्चारित्रके स्वरूप कथनमें देशविरतिचारित्र संबंधी श्रावकोके बारह व्रतोंके स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन कीया है, नववे परिछेदमे श्रावकोका दिनकृत्य, श्राद्धविधि ग्रंथानुसारसे लिखा है, दशवे परिछेदमे श्रावकोका रात्रि

कृत्य, पाक्षिककृत्य, चौमासीकृत्य, संवत्सरीकृत्य अरु जन्मकृत्य, यह पांचो कृत्यका स्वरूप वर्णन करा है, इग्यारहवे परिछेदमें श्रीआदीश्वर ज्ञगवान्में लेकर श्रीमहावीर ज्ञगवान् पर्यंतके कितनेक इतिहासोंका वर्णन करकें उसमें जैनमत अनादि है असा सिद्ध करा है, अरु दूसरा नवीन बौद्धादिक पाखंमी धर्मके मतों अमुक अमुक वखतसें निकले हैं यहज्ञी दर्साय दीया है, बारहवे परिछेदमें श्रीवर्द्धमान स्वामीके निर्वाण पीछें के किंचित् इतिहास लिखे है. इससेंज्ञी कितनेक नवीन मतों निकलनेका वखत मालुम पडजाता है.

इस प्रकारसें उपर लिखे हूये बारह परिछेदों करिकें यह ग्रंथ समाप्त कीया है. यह ऊपर कहे हुये प्रत्येक परिछेदमें मात्र उसमें लिखे नये विषयोंकाही वर्णन कीया है, इतनांही नहीं, परंतु उसके साथ मीमांसकादि अन्यमतवालोंका स्वरूप लिखकें पीछें पूर्वाचार्य रचित सम्मतितर्कादि अनेक जैनशास्त्रोंके अनुसार उन मतोंका खंमनज्ञी सविस्तर कीया है, तातें यह ग्रंथके बांचनेवालोंकूं अन्य सांख्यादि दर्शनोंका कछुक स्वरूपज्ञी मालुम हो जावेगा, फेर उसका यथास्थित खंमनज्ञी जाननेमें आवेगा.

जैसें मनःकल्पनासें निकले हूये नवीन दर्शनोंका उछापन करनेमें यह ग्रंथ उपयोगी है तैसेंही कितनेक जैनमतमें प्रवर्त्तनेवाले जैनशास्त्रोंकी अनेकांत शैलीकों न पीछाननेवाले असे विचित्र विकार युक्त अल्पज्ञ जनोंकी अज्ञानता दूर करनेकोंज्ञी यह ग्रंथ बहोत उपयोगी है, क्योंकि, इस वर्त्तमान कालमें कितने एक जैनमती अपनीअपनी मरजी माफक अध्यात्मज्ञानी बनकें व्यवहारपक्षका त्याग करकें आवश्यकादि क्रियायोंकों उछापकें एकही निश्चयमार्गकों स्वीकार करनेकाही उपदेश लोकोंकों करते फिरते हैं; असे अल्पवेत्ता एकांतपक्षके ग्राहक, स्वमतीयोंकों ज्ञी बहोत जैनशास्त्रोंके अनुसार तिनकी आशंकायोंके निवारण पूर्वक क्रियादि शुद्धव्यवहारमें प्रवृत्त करनेका बहोत करकें छठे परिछेदमें चौदह गुणस्थानोंके स्वरूपमें जहां छठे सातमे गुणस्थानकका स्वरूप कथन कीया है, उसी जगापर अरु दूसरें परिछेदोंमेंज्ञी बहोत स्थलोंमें उपदेश कीया है.

तथा अबके समयमें कछुक संस्कृतादि शास्त्राज्यास करकें अरु कोइ ग्रंथ देखे न देखे असें कितनेक लोक अपनी मनःकल्पित बातों कहते हैं कि जैनमत बौद्धमतमेंसें निकला है, कितनेक कहते हैं कि गौतमऋषिने जैनमत

चलाया है, असी विचित्र प्रकारकी कल्पना अज्ञानी लोक करते है, तथा वेदोंको सच्चा करणे वास्ते उनके पुराना अर्थोको उलटायके नवीन अर्थ बनाने वाले दयानंदजीने तो जैनमतके लक्षावधि ग्रंथो आज मोजूद है तिनमेंसूं कोइएक ग्रंथके एक पत्रेनी देखे न होवेगे तोनी बिचारे नद्रक शिष्योको अपना पाण्डित्य दर्शावनेके वास्ते आपके बनवाये हूये पुस्तकोमें जैन अरु चार्वाक ए दोनुं मत एकही करके लिख दीये हे, असे असे अपनी कपोल कल्पित बातों करके नोले लोकोंकों फसाने वाले कपटी लोकोका कपट रूप वल्लीका छेदन करणेकोंनी यह ग्रंथ कुठार समान है

तथा वर्त्तमान समयमे कितनेक अल्पतर,सांसारिक विद्यामात्रकाही कछुक अन्यास करिके,असें जान रहे है कि,हमही सर्व शास्त्रोंके रहस्यार्थ जान गये है,दूसरें धर्माचार्यादिको तो कुछनी समजते नहि वो अपनी दुर्बुद्धिके प्राबल्यसे असे जान रहे है कि, पुण्यपापादिक, स्वर्ग नरक परनवादिक अरु धर्मकर्मादिक कुछनी नही है, सब ढोंग है. खाना,पीना और मौज करना यही सच्चा है,इत्यादि चार्वाक दर्शनके न्याई नास्तिक होय बैठने वालोकोंनी अनेक शास्त्रोका हेतु दृष्टांत दर्सायके कोइ कोइ परिछेदके कोइ कोइ स्थलोंमे अच्छी युक्तियो पूर्वक उनका कुराग्रह दूर करणेका उपदेश करणेमे आया है.

तैसेही मात्र हम जैनमतवाले है, असा नाम धराय कें नि केवल अपने अज्ञानसे पराजवित हूये हठग्राहित्वकी प्रकर्षतासे श्रीवीतरागनाषित धर्मकों उलटाय कें अपनी स्वेछासें श्री जिनप्रतिमाको उछाप के जैनमतकी हेलना करनेवाले असें ढूंढकादि लोको जो यह पंचमकालके महात्म्यमे बहोत दुष्ट परिणतिकों धारण करकें, नद्रकजनोको अधर्मका उपदेश करते फिरते रहते है, उन दुर्गतिमे पडनेवाले जनोके विषकों दूर करणे वास्तेनी यह ग्रंथ सुधा तुल्य औषधसदृश दीख पडता है क्योकि,इन लोकोंकोंनी कुमार्गसें हटायके सन्मार्गमे ल्यावने वास्ते यह ग्रंथके प्रत्येक परिछेदोमे बहोत जगेपर अनेक शास्त्रोंकी साक्षीयों दर्सायकें उपदेश कीया है, इस्से इन लोकोंपरनी यह ग्रंथ बनानेवालेने वडा उपकार कीया मालुम होता है

औ इस ग्रंथमे कितनेक इतिहासो असे लिखे है कि –जिन इतिहासका वाचनेंसे शास्त्रोमे कही हुइ वार्त्तायोंकू आजके समयमें अयोग्य माननेवालोंकी शंकायो तत्काल दूर होयके उलटी तिस शास्त्रोंके उपर यथार्थ आस्ता

हो जावे, इत्यादिक अनेक वार्त्ता चमत्कृतियुक्त इस ग्रंथमें सूचन कराई है, इसवास्ते यह ग्रंथ, उत्कृष्ट सुबोधकारक अरु कुमार्गकी प्रवृत्तिसें हटाने वाला बहोत मनोरंजक है इन ग्रंथस्थ सब बातके यथार्थ स्वरूप इस जगापर लिखनेसें प्रस्तावनाकी वृद्धि होति है इस वास्ते वांचने वाले सज्जनोंकों इस ग्रंथका सूक्ष्म बुद्धिसें विचारपूर्वक संपूर्ण अवलोकन करणेसें यथार्थ स्वरूप समजनेमें आ जावेगा.

और यह ग्रंथकी हिंदुस्थानी भाषामें रचना करी है तिस्सें गुर्जर, मारवाड, पंजाब, पूर्व अरु दक्षिण, आदिक सर्व देशोंके रहनेवाले, कोइभी देशकी भाषा जाननेवालेकोंभी बांचनेमें यह ग्रंथ अत्यंत सुगम पडेगा.

निष्पक्षपात बुद्धिवाले तथा धर्मतत्त्वकी जिज्ञासा करनेके अभिमानी, सद्धर्म अंगीकार करनेके अधिकारी, विवेकी भव्यजीवोंकूं इस ग्रंथके वांचने तथा पढने सुननेसें उत्तम प्रकारके सद्बोधका लाभ प्राप्त होवेगा, असा जानिकें श्रीमक्षुदाबाद शहेरके रहनेवाले बाबूसाहेब राय धनपतिसिंहजी प्रतापसिंहजी बाहादूर जो अबके समयमें कुमारपालादिकोंकी तरें जैनशास्त्रोंके उद्धार करनेमें आगेवान गिने जाते हैं, तिन साहेबका वडा आश्रय ले कें मैनें यह ग्रंथ छपा कर प्रसिद्ध कीया है; औरभी जैनधर्मकी वृद्धि इछनेवाले हमारे साधर्मिक भाइयोंकों मैं अर्ज करतां हूं कि, उदारतापूर्वक यह ग्रंथके यथाशक्ति पुस्तकों खरीद करकें शास्त्राभ्यासी जनोंकों बांट दे कर मुजकों अवश्य आश्रय देनां, ये बडा उत्तम पुण्यानुबंधी पुण्य उपार्जन करनेका हेतु है,औ इस ग्रंथकी श्लोक संख्या (१६०००) आशरे हैं.

यह ग्रंथके पढने वाले समस्त साहेबोंकों मैं बडी नम्रतापूर्वक विनति करता हूं कि, ये ग्रंथ बनानेवालेने तो यथार्थ जैनशैली पूर्वक लखाण कीया है,परंतु मैंने मेरी बुद्धिकी न्यूनतासें,दृष्टिदोषकी प्रबलतासें तथा शास्त्रोंकी शैलीका परिपूर्ण ज्ञानके अभावसें जो कुछ छपनेमें चूक करी होवे, सो गुणज्ञ जनोनें मेरेकों मंद प्रज्ञावाला जानकें मेरे पर सुनजरही रख्क कर दोष सुधार लेनां चाहियें,यही सत्पुरुषके लक्षणका श्रेष्ठ चिन्ह है. किं बहु विलेखनेन.

॥ श्रावक भीमसिंह माणक ॥

॥ अस्य ग्रंथस्यानुक्रमणिका प्रारम्यते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिछेदमें देव तत्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते है ॥

॥ अथ दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप है,तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

तीसरें परिछेदमें गुरुतत्त्वका स्वरूप कहा है तिसकी अनुक्रमणिका॥

॥ चतुर्थ परिछेदमें कुगुरुका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ पंचम परिछेदमे शुद्ध धर्मतत्त्वका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ षष्ठ परिछेदमें चौदह गुणस्थानकका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ सप्तम परिच्छेदमें सम्यग् दर्शनका स्वरूप लिखा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ अष्टम परिछेदमे चारित्रका स्वरूप कहा है तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥नवम परिछेदमें श्रावकोंका दिन कृत्य विधि कहा है,तिसकी अनुक्रमणिका॥

॥दशम परिछेदमें रात्रिकृत्य आदिक पाच कृत्य कहे है, तिसकी अनुक्रमणिका॥

॥ एकादश परिछेदमें श्री ऋषनादिसें महावीर पर्यंत जैनमतादि शास्त्रों ॥
॥ के अनुसार इतिहास कहे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ बारहवे परिछेदमें श्री महावीर भगवानसें ले कर आजपर्यंत
॥ कितनेक वृत्तांत लिखे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ ॐ नमः स्याद्वादवादिने ॥

॥ अथ तपागच्छीय ॥

॥ मुनिश्री आनंद विजय आत्मारामजी विरचित् ॥

॥ जैनतत्वादर्श नामक ग्रंथ प्रारंभः ॥

॥ तत्र प्रथम परिछेद ॥

॥ अनुष्टुब् वृत्तम् ॥

॥ स्यात्कारमुद्रितानेक, सदसद्भाववेदिनम् ॥
॥ प्रमाणरूपमव्यक्त, भगवंतमुपास्महे ॥ १ ॥

॥ अथ प्रथम देव, गुरु औ धर्म इन तीनो ॥
॥ तत्वोंका स्वरूप किंचित् लिख्यते ॥

विदित हो कि जो यह जैनमतहै तिसका स्वरूप श्री तीर्थंकर, गणधर और पूर्वाचार्यादिकोंने आगम निर्युक्ति भाष्य चूर्णि टीका औ प्रकरण तर्कादि अनेक ग्रंथद्वारा स्पष्ट निरुपन कीयाहै परंतु पूर्वाचार्य रचित सर्व ग्रंथ प्राकृत वा संस्कृत भाषामें है सो अब जैन लोगोंके पढणेमे उद्यमके नकरणेसे उन अति उत्तम अद्भुत ग्रंथोंका आशय लुप्त प्राय हो रहाहै सोकितनेक भव्य जीवोंकी प्रेरणासे तथा स्वकर्म्मे निर्जराकी आशयसे जिनकूं प्राकृत वा संस्कृत पढणी कठिनहै तिनोके उपकारार्थ देव, गुरु औ धर्मका स्वरूप किंचित् मात्र इस भाषा ग्रंथमे लिखतेहै

सर्व श्रोतवर्गसे नम्रता पूर्वक यह विनतीहैकि जो इस ग्रंथकूं पढे सो जहां मैने जिनमार्गसे विरुद्ध लिखाहो तहां यथार्थ लिख देवे यह मेरे उपर बडा अनुग्रह होगा इस ग्रंथके लिखनेका मेरा मुख्य प्रयोजनतो यहहै जो इस कालमे बहुत नविन मत लोकोने स्वकपोल कल्पित प्रगट करेहै तथा अंगरेजोंकी औ मुसलमानोकी विद्यापढणेसे तथा अनेक प्रकारके मत मतांतरोंकी वार्ता सुणनेसें अनेक भव्य जीवांकूं अनेक प्रकारके संशय उत्पन्नहो रहेहै तिनके दूर करणेके वास्ते इस ग्रंथका प्रारंभ कीयाहै अब पूर्वोक्त तीनो तत्वोंमे प्रथम देवतत्वका स्वरूप लिखतेहै

देव नाम परमेश्वरकाहै सो परमेश्वरके स्वरूपमें अनेक प्रकारके विकल्प मतांतरिये पुरुष करतेहै सो जैनमतमें परमेश्वरका क्यास्वरूप मान्याहै सो तिस परमेश्वरका स्वरूप नाम रूप औ विशेषण संयुक्त लिखतेहैं जैनमतमेजो परमेश्वर मान्याहै सो बारां गुण संयुक्त औ अष्टादश दूषण रहित अर्हंत परमेश्वरहै औ जो परमेश्वर उक्त बारांगुण रहित तथा अष्टादश दूषण सहित होगा तिसमे कदापि परमेश्वरता सिद्ध नही होगी यह कथन आगे चलकर लिखेंगे.

अब प्रथम बारां गुण लिखतेहैं अशोकवृक्षादि अष्टमहा प्रातिहार्य सर्व जैनलोगोमें प्रसिद्धहैं तथा चार मूलातिशय एवं सर्व बारां गुणहैं तिनमें चार मूलातिशयका नाम कहतेहैं (१) ज्ञानातिशय (२) वागतिशय (३) अपायापगमातिशय (४) पूजातिशय तत्र प्रथम ज्ञानातिशयका स्वरूप कहेहैं केवलज्ञान केवल दर्शन करी भूत भविष्य वर्तमान कालमे जो सामान्य विशेषात्मक वस्तुहै तिसकू तथा उत्पाद व्यय ध्रौवयुक्तं सत् त्रिकाल संबंधि जो सत् वस्तुका जानना तिसका नाम ज्ञानातिशयहै. दूजी वचनातिशय तिणसें भगवंतका वचन पैंतीस अतिशय करी संयुक्त होताहै तिन पैंतीस अतिशयका स्वरूप ऐसाहै (१) संस्कारवत्त्वं (संस्कृतादि लक्षण युक्त) (२) औदात्यं (शब्दमे उच्चपणा उपचारपरीतता) (३) अग्राम्यत्वं (ग्रामके रहणहारे पुरुषके वचन समान जिनोका वचन नहीं) (४) मेघगंभीर घोषत्वं (मेघकी तरें गंभीर शब्द) (५) प्रतिनाद विधायिता (सर्व वाजित्रोंके साथ मिलता शब्द) (६) दक्षिणत्वं (वचनकी सरलता संयुक्त) (७) उपनीतरागत्वं (मालव कौशक्यादि ग्राम राग करी युक्तता) ए सातअतिशयतो शब्दकी अपेक्षासें जानने ओ अन्य अतिशयजो है सो अर्थाश्रय जानने (८) महार्थता (बडामोटा जिसमे अभिधेय कहेने योग्य अर्थहै) (९) अव्याहतत्वं (पूर्वापर विरोध रहित) (१०) शिष्टत्वं (अभिमत सिद्धांतोक्तार्थता) एतावता अभिमत सिद्धांतजो कहना सोइ वक्ताके शिष्टपणेका सूचकहै (११) संशयनाम संभवः (जिनोके कहणेमे श्रोताकूं संशय नहीं होता) (१२) निराकृताऽन्योत्तरत्वं (जिनोके कथनमे कोइभी दूषण नहीं नतो श्रोताकूं शंका उत्पन्न होवे न भगवान दूसरीवार उत्तर देवें) (१३) हृदय गमता (हृदय ग्राह्यत्वं) हृदयमे ग्रहणे योग्य (१४) मिथःसाकांक्षता (परस्पर आपसमे

पद वाक्योका सापेक्ष पणा) (१५) प्रस्तावौचित्यं (देशकाल करके रहित पणा नही) (१६) तत्त्वनिष्ठता (विवक्षित वस्तुके स्वरूपानुसारि पणा) (१७) अप्रकीर्णप्रसृतत्व (सुसबंध होकर प्रसरणा अथवा असबंधाधिकारका अतिविस्तार नही) (१८) अस्वश्लाघाऽन्यनिंदता (आत्मोत्कर्ष पर निंदा करके वर्जित) (१९) अभिजात्यं (प्रतिपाद्य वस्तुकी भूमिकानुसारि पणा) (२०) अतिस्निग्धमधुरत्व (घृत गुडादिवत् सुखकारि) (२१) प्रशस्यता (कहेजो है गुण तिनकी योग्यतासे प्राप्तहुइहै श्लाघा) (२२) अमर्मवेधिता (परका मर्म जिसमे उग्घाडणा नहीहै) (२३) औदार्य (अभिधेय अर्थका तुछपणा नही) (२४) धर्मार्थप्रतिबद्धता (धर्म औ अर्थ करके सयुक्त) (२५) कारकाद्यविपर्या सो कारक काल वचन औ लिंगादि जहां विपर्यय नही (२६) विभ्रमादि वियुक्तता विभ्रमवक्ताके मनकी भ्रांति विक्षेपादि दोष रहित (२७) चित्रकृत्त्व (उत्पन्न कर्याहै छिन्न कौतुहल पणा) (२८) अद्भुतत्व (अद्भुत पणा) (२९) अनति विलम्बिता (अतिविलंब रहित) (३०) अनेकजाति वैचित्र्य (जातिया वर्णन करणे योग्य वस्तु स्वरूप वनाका आश्रय) (३१) आरोपिता विशेषता (वचनातरकी अपेक्षा करके स्थापन कियाहै विशेषपणा) (३२) सत्त्वप्रधानता (साहसकरी सयुक्त) (३३) वर्णपदवाक्य विविक्तता (वर्णादिकोका विछिन्नपणा) (३४) अव्युछित्ति (विवक्षितार्थकी सम्यक् सिद्धि जहा लग नहोवे तहा ताइ अव्यवछिन्न वचनका प्रमेय पणा) (३५) अखेदित्व (थकेंवा रहित) एह भगवतकी दुसरी वचनातिशयके पैतीस भेदहै तीजी अपायापगमातिशय एतावता उपद्रव निवारक औ चोथी पूजातिशय सो भगवान तीनलोकके पूजनीक है इनदोनो अतिशयाकी विस्तार रूप चोतीश अतिशय होतीहै सो लिखतेहै

(१) तीर्थंकर भगवानकी देहका रूप औ सुगंध सर्वोत्कृष्ट ओ रोग रहित देह तथा पसीना औ मल करि वर्जित (२) स्वास निस्वास पद्म कमलकी तरे सुगंधवाला (३) रुधिर औ मास गो दुग्ध वत् उज्वल (४) आहार निहारकी विधि चर्मचक्षुवालेकूं नही दीखे ए चार अतिशय जन्ममे साथ (१) एक योजन प्रमाणही समवसरणका क्षेत्रहै परतु तिसमें देवता मनुष्य तिर्यचकी कोटाकोटीनि समायसकिहै भीड नही होती (२) वाणी भाषा अर्द्ध मागधी देवता मनुष्य तिर्यचकू अपणी अपणी

भापापणे परिणमतिहै औ एक योजनमे सुणाईदेतीहै (३) प्रनामंमल मस्तकके पीछे सूर्यके बिंबकी मानो विडंबना करताहै आपणी शोना कर के ऐसा मनोहर नामंमल शोने है (४) साढे पचीश योजन प्रमाण चारो पासें उपद्रवरूप ज्वरादि रोग नहोवे तथा (५) वैर (परस्पर विरो ध नहोवे) तथा (६) इति (धान्याद्युपद्रव कारी घणे मुषकादि नहोवे) (७) मारिमरीका उपद्रव नहोवे (८) अतिवृष्टी (निरंतर वर्षणा नहोवे) तथा (९) अवृष्टी (वर्षणेका अनाव नहोवे) (१०) डुर्निक्ष नहोवे (११) स्वचक्र परचक्रका नय नहोवे ए इग्यार अतीशय ज्ञानावरणीय आदि चार घाति कर्मोंके क्षय होनेसे उत्पन्न होतीहै अब (१) आकाशमें धर्म प्रकाशक चक्र होताहै (२) आकाशगत चामर (३) आकाशमें पाद पीठ सहित स्फटिक मय सिंहासन होताहै (४) आकाशमें तीन छत्र (५) आकाश में रत्नमय ध्वज (६) जब नगवान चलतेहै तब पगके हेठ सुवर्ण कमल देवता रच देतेहैं (७) समवसरणमे रत्न सुवर्ण औ रूपामय तीन कोट म नोहर होतेहैं (८) समवसरणमे प्रनुके चार मुख दीखतेहै (९) अ शोक वृक्ष छाया करताहै (१०) कांटे अधोमुख हो जातेहै (११) वृक्ष ऐसे नम्रत होतेहैं मानो नमस्कार करतेहैं (१२) उच्चनादें डुंडुनि नुवन व्यापक नाद ध्वनी करतीहैं (१३) पवन सुखदाइ चलतीहै (१४) पंक्षी प्रदक्षणा देतेहैं (१५) सुगंध पाणीकि वर्षा होतीहै (१६) गोडे प्रमाण पंच वर्णके फूलोकी वर्षा होतीहै (१७) केश दाढी मुछ नख अवस्थित रहतेहैं (१८) चार प्रकारके देवता जघन्यसें जघन्य नगवंतके पास एक कोटी होतेहैं (१९) षटऋतु अनुकूल होतेहै स्पर्श रस गंध रूप शब्द ए पांचो वुरेतो लुप्त हो जातेहै और अछे प्रगट होजातेहैं ए उगणीश अतीशय देवता करते है मतांतर तथा वांचनांतरमें कोइ कोइ अतीशय अन्य प्रकारसेंनीहैं ए पूर्वोक्त चार मूलातिशय और आठ प्रातिहार्य एवं बारा गुणां करी बिराजमान अ र्हंत नगवंत परमेश्वरहै औ अठारह दूषण करके रहितहै सो अठारह दूषणोंका नाम दो श्लोक करके लिखीयेहै.

अंतरायदानलान, वीर्यनोगोपनोगगाः ॥ हासो रत्यरतीनीति, र्जुगु प्सा शोक एवच ॥ १ ॥ कामो मिथ्यात्वमज्ञान, निद्रा चाविरतिस्तथा ॥ रागो द्वेषश्च नो दोषा, स्तेषामष्टादशाप्यऽमी ॥ २ ॥ इन दोनों श्लोकोंका

अर्थ (१) दान देणेमे अंतराय ए प्रथम दोष (२) लाभगत अंतराय (३) वीर्यगत अंतराय (४) जो एक वेरी भोगीये सो भोग पुष्पमाला दि तद्गतो अंतराय सो भोगातराय (५) वार वार भोगणेमे आवें स्त्र्यादि घरादि ककण कुंमलादि तद्गतातराय सो उपभोगांतराय (६) हास्य (हसना) (७) पदार्थोके उपरि प्रीति (रति) (८) रतिसे विपरीत सो अरति (९) भय सप्त प्रकारका (१०) जुगुप्सा (घृणा) मलीन वस्तुकूं देखकर नाक चढाणा (११) शोक (चित्तका वैधूर्यपणा) विकलपणा (१२) काम (मन्मथ) स्त्री पुरुष नपुंसक इन तीनोका वेद विकार (१३) मिथ्यात्व (दर्शनमोह) (१४) अज्ञान (मूढपणा) (१५) निद्रा (सोना) (१६) अविरति (प्रत्याख्यान रहित) (१७) राग (पूर्व सुख तिसके साधनेमे गृद्धि पणा) (१८) द्वेष (पूर्व दुखाका स्मरण औ पूर्व दुखमे वा तिसके साधन विषय क्रोध) येह अठारह दूषण जिनमे नही सो अर्हत भगवत परमेश्वरहे इन अठारह दूषण मेसे एकवी दूषण जिसमे होगा सो कदेभी अर्हत भगवत परमेश्वर नही हो सक्ता॥ प्रथम पाच विघ्न जिस मे लग रहेहे सो परमेश्वर क्युं कर हो सक्ताहे?

प्रश्न —दानातरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर दान देताहे? अरु लाभां तरायके नष्ट होनेसे क्या लाभ परमेश्वरको होताहे? तथा वीर्यातरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर सक्ति दिखलाता हे? तथा भोगातरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर भोग करताहे? उप भोगातरायके नष्ट होनेसे एतावता क्षय होनेसे क्या परमेश्वर उपभोग करतेहे?

उत्तर पूर्वोक्त पाच विघ्नके क्षय होनेसे भगवतमें पूर्ण पाच शक्तियां प्रगट होतीयाहे जेसे निर्मल चक्षुका पटलादिक वाधकोके नष्ट होनेसे देखनेकी शक्ति प्रगट होतीहे चाहे देखे चाहे नदेखे परतु शक्ति विद्यमान हे तेसेंही अर्हत भगवतके पाच शक्तियां प्रगट होतीयाहें पीछे दानादि चाहे करे चाहे नकरें परतु शक्ति विद्यमानहे जो पांच शक्तियोंसे रहित होगा सो परमेश्वर केसें होसक्ताहे?

६ छठा दूषण "हसना" हास्यजो आताहेसो अपूर्व वस्तुके देखनेसे वा अपूर्व वस्तुके सुननेसे वा अपूर्व आश्चर्यके अनुभवके स्मरणसे इत्यादिक हास्यके निमित्तहे औ हास्यका मोहकर्मकी प्रकृतिरूप उपादान कारणहे

सो ए दोनोही कारण अर्हंत भगवंतमे नहीहैं प्रथम निमित्तकारणका संभव कैसें होवे अर्हंत भगवंत सर्वज्ञ सर्व दर्शीहे उनके ज्ञानमें कोइ अपूर्व ऐसी वस्तु नही जिसके देखे सुने अनुभवे आश्चर्य होवे इसते कोइभी हास्यका निमित्त कारण नही औ मोह कर्मतो अर्हंत भगवंतने सर्वथा क्षय कस्याहै सो उपादान कारण क्युंकर संभवे इस हेतुसे अर्हंतमें हास्य रूप दूषण नही औ जो हसनशील होगा सो अवश्य असर्वज्ञ असर्वदर्शी औ मोहकरी संयुक्त होगा सो परमेश्वर कैसें होवे?

७ सातमा दूषण रति जिसकी प्रीति पदार्थों उपर होगी सो अवश्य सुंदर शब्द रूप गंध रस स्पर्श स्त्री आदिके उपर प्रीतिमान होगा जो प्रीतिमान होगा सो अवश्य उस पदार्थकी लालसा वाला होगा अरुजो लालासा वाला होगा सो अवश्य उस पदार्थकी अप्राप्तिसें दुःखी होगा सो अर्हंत परमेश्वर कैसें होसक्ताहै?

८ आठमां दूषण अरति जिसकी पदार्थों उपर अप्रीतिहोगी सोतो आपही अप्रीतिरूपोये दुःखकरी दुःखीयाहै सो अर्हंत भगवंत कैसे हो सके?

९ नवमा दूषण "भय" सो जिसने आपणाही भय दूर नही कीया सो अर्हंत परमेश्वर कैसें होवे?

१० दशमां दूषण जुगुप्साहै सो मलीन वस्तुकूं देखके घृणा करणी (नाक चढाणी) सो परमेश्वरके ज्ञानमे सर्ववस्तुका भासन होताहै जो परमेश्वरमे जुगुप्सा होवेतो बडा दुःख होवे इस कारणते जुगुप्सामान अर्हंत भगवंत कैसें होवे?

११ इग्यारमां दूषण शोक है सो जो आपही शोक वालाहे सो परमेश्वर नही?

१२ बारवां दूषण कामहै सो आपही जो विषयीहै स्त्रीयोंके साथ भोग करताहै तिस विषयाभिलाषीकूं कोन बुद्धिमान पुरुष परमेश्वर मानताहै?

१३ तेरवां दूषण मिथ्यात्व है सो जो दर्शनमोह करी लिप्तहै सो भगवंतनही.

१४ चौदवां दूषण अज्ञान है सो जो आपही मूढहै सो अर्हंत भगवंत नही.

१५ पंदरवां दूषण निद्रा है सो जो निद्रामे होता है सो निद्रामे कुछ नही जानता औ अर्हंत भगवानतो सदा सर्वज्ञ है सो निद्रावान् कैसे होवे?

१६ शोलमा दूषण अप्रत्याख्यान है सो जो प्रत्याख्यान रहित है सो स र्वाभिलाषी है सो तृष्णा वाला कैसे अर्हंत भगवत होसके?

१७–१८ सत्तारवा ओ अठारवा ए दोनो दूषण राग अरु द्वेष है सो राग द्वेषवान मध्यस्थ नही होता अरु जो रागी द्वेषी होता है तिसमें क्रोध मान मायाका संभव है भगवान तो वीतराग, सम शत्रु मित्र, सर्वजी वो पर समबुद्धि, न किसीकूं दुखी अरु न किसीकूं सुखी करे, जेकर दुखी सुखी करेतो वीतराग करुणा समुद्र कदेइ नहोसक्ता इस कारणतें रागद्वेष वाला अर्हंत भगवत परमेश्वर नही ए पूर्वोक्त अठारह दूषण रहित अर्हं त भगवत परमेश्वरहै अपर कोइ परमेश्वर नही

अथ अर्हनके नाम दो श्लोको करि लिखतेहै—अर्हन् जिन पारगत स्त्रिकालवित् क्षीणाष्टकर्मा परमेष्ठ्यऽधीश्वर ॥शंभु स्वयंभूर्भगवान् जगत्प्र भु, स्तीर्थंकरस्तीर्थकरो जिनेश्वर ॥ १ ॥ स्याद्वाद्यऽभयदसर्वा सर्वज्ञ सर्वदर्शि केवलिनौ। देवाधिदेव बोधिद पुरुषोत्तम वीतरागाऽप्त ॥ २ ॥ इन दोनो श्लोकोंका अर्थ–(१) चौतीश अतीशय करी सबसे अधिक होने से सुरेंद्र आदिकोकी करी हुइ अष्ट महा प्रातिहार्या जन्म स्नात्रादि पूजा के जो योग्य है सो अर्हन् अथवा ज्ञानावरणीयादि आठ कर्म रूप वैरी ह ननेसे अर्हन् अथवा वध्यमान कर्म रजके हननेसे अर्हन् अथवा नही है कोइ पदार्थ छाना जिनोके ज्ञानमे सो अर्हन् तथा नामांतरमे अरुहन् नही उत्पन्न होना भवरूपी अंकूर जिनोके सो अरुहन् ए प्रथम नाम (२) जीते है राग द्वेष मोहादि अष्टादश दूषण जिसने सो जिन ए द्वितीय नाम (३) ससारके अथवा प्रयोजन जातके, (प्रयोजन मात्रके) पारपर्य त छेहडेको गत (प्राप्त) हुवा है एतावता ससारमे जिनका कोइ प्रयोजन नही सो पारगत ए तृतीय नाम (४) भूत, भविष्य, वर्त्तमान, इन तीनों कालोंकू जो जाणे सो त्रिकालवित् ए चतुर्थ नाम (५) क्षीणानि क्षय हूये है आठ ज्ञानावरणीय आदि कर्म जिसके सो क्षीणाष्टकर्मा ए पचम नाम, (६) परमेश्वर पदे तिष्टतीति परमेष्टी परम उत्कृष्ट पदमे जो रहे है सो परमेष्ठि ए षष्ठ नाम (७) जगतका ईश्वर (स्वामी) सो अधीश्वर ए सप्तम नाम (८) शं शास्वतं सुख तिसमे जो होवे सो शंभु ए अष्टम नाम (९) स्वय आपही आपणी आत्मा करके तथा भव्यत्वादि सामग्रीके प

रिपक्क होणेसे परंतु परके उपदेशसे नही यह तिसही नवकी अपेक्षाका कथन् है ऐसाजो होवे सो स्वयंभू ए नवम नाम. (१०) भग शब्दके चौदह अर्थ है तिनमेंसे अर्क औ योनि ए दो अर्थ वर्जके शेष वारां अर्थ ग्रहण करणा तिसका नाम कहते है. (१) ज्ञानवंत, (२) माहात्म्यवंत, (३) शास्वत वैरीयांके वैर उपशमनेतें यशस्वि, (४) राज्य लक्ष्मीके त्यागणेसे वैराग्यवंत, (५) मुक्तिवंत, (६) रूपवंत, (७) अनंतबल होणेसें वीर्यवंत, (८) तप करनेमे उत्साह वान होनेसे प्रयत्नवंत, (९) इच्छावंत सो संसार सेती जीवांका उद्धार करणेमे इच्छावंत, (१०) चौतीश अतिशय रूप लक्ष्मी करी बिराजमान होणेसे श्रीमंत, (११) धर्मवंतः, (१२) अनेक देव कोटि करी सेव्यमान होनेसें ऐश्वर्यवंत ए वारां अर्थ करी संयुक्त सो भगवान् ए दशम नाम. (११) जगत प्रभु ए एकादशम नाम. (१२) तरीये संसार समुद्र जिस करेके सो तीर्थ प्रवचनका आधार चार प्रकारका संघ अथवा प्रथम गणधर तिसके करणेका है शील जिसका सो तीर्थंकर, ए द्वादशम नाम, (१३) रागादिकोंके जीतनेहारे जिन (केवली) तिनका जो ईश्वर सो जिनेश्वरः ए त्रयोदशम नाम. (१४) स्यात् एहजो अव्यय है सो अनेकांतका वाचक है वस्तुकों अनेकांत पणे अनेक स्वरूपे कहणेका शील है जिनका सो स्याद्वादि ए चतुर्दशम नाम. (१५) अभयद भय जो है सो सात प्रकारका है (१) मनुष्यादिकोकों मनुष्यादि स्वजातीयसे अर्थात् एक मनुष्यकूं अन्य मनुष्य सेति जो भय होवे सो इहलोक भय, (२) विजातीय तिर्यंच देवतादिक सेंती जो भय होवे सो परलोक भय, (३) आदान भय सो आदान कहियें धन तिस धनके कारणे चोरादिक सेती जो भय होवे सो आदान भय, (४) बाहिरले निमित्त विना घरादिकों विषे बैठेकूं रात्रि आदिक विषे जो भय होवे सो अकस्मात् भय, (५) आजीविका भय सो में निर्धनहुं कैसे दुर्भिक्षादिकमे अपने आपकूं धारण करुंगा ऐसाजो भय सो आजीविका भय, (६) मरणसे जो भय सो मरणभय एह प्रसिद्धहै. (७) अश्लाघा भय अयशका भय जो मै ऐसे करुंगा तो मेरा बडा अयश होगा अयशके भयसें प्रवर्त्ते नही सो अश्लाघा भय, ए सात प्रकारका भय इसका जो विपक्षी सो अभय सो क्या वस्तु है विशिष्ट आत्मा

का स्वास्थपणा निश्रेयस धर्मनिबंधन नूमिकानूत तिस गुणके प्रकर्षतें अचित्य शक्ति युक्त होणेसे सर्वथा परहितकारी होणेसें ऐसा अनय देवे सो अन्नयद ए पंचदशम नाम (१६) सार्वा सर्व प्राणीयोंके ताइ जो हित सो सार्वा ए षोडशम नाम. (१७) सर्वज्ञ सर्वजो जाणे सो सर्वज्ञ ए सप्तदशम नाम (१८) सर्वजो देखे सो सर्वदर्शि, ए अष्टादशम नाम (१९) सर्वथा प्रकारे कर्मावरणके दूर होनेसे, जो चेतन स्वरूप प्रगट नया "केवल" केवलज्ञान है इसके सो केवली ए एकोनविसतिम नाम (२०) देवतायोंका जो अधिपति सो देवो देवाधिदेव ए विसतिम नाम (२१) बोधि जिनप्रणीत धर्मकी प्राप्ति तिसकूं जो देवे सो बोधिद ए एकविसति म नाम (२२) पुरुषा माहे उत्तम सहज तथा नव्यत्वादि नव करी श्रेष्ट सो पुरुषोत्तम ए द्वाविसतिम नाम. (२३) वीतो गतो रागो अस्मा त् इति वीतराग ए त्रयोविसतिम नाम (२४) आप्त हितोपदेशक होणेसे आप्त कहीये ए चतुर्विंसतिम नाम. इत्यादिक हजारो नाम परमेश्वरके है ए पूर्वोक्त सर्व परमेश्वरका स्वरूप श्रीहेमचंद्राचार्य कृत ग्रथोके अनुसार तथा समवायांग राजप्रश्नीय प्रमुख शास्त्रोंके अनुसार लिखे है अन्यथा जि नसहस्रनाम ग्रंथमे तो एकहजार आठ नाम अन्वयार्थ सहित कहे है, सर्व नाम व्युत्पत्ति सहित अर्हंत परमेश्वरके है, सो अर्हंत पद तो एक अना दि अनतहै, परतु इसपदके धारक जीव अनत अतीत कालमे होगये है क्युंके एकैक उत्सर्प्पिणि अवसर्प्पिणि कालमे नारत वर्षमे चोवीश चोवी श जीव अर्हंत पदकू धारकर पीछे सिद्धपदकूं प्राप्त हो गयें है

इस वर्तमान अवसर्प्पिणिसे पिछलि उत्सर्प्पिणीमे जो जीव अर्हंत पदके धारक हुये है तिनके नाम (१) केवलज्ञानी (२) नीर्वाणी (३) सागर (४) महायश (५) बिमल नाथ (६) सर्वानुनूति (७) श्रीधर (८) दत्त (९) दामोदर (१०) सुतेज (११) स्वामि (१२) मुनिसुव्रत (१३) सुमति (१४) शिवगति (१५) अस्ताग (१६) नेमीश्वर (१७) अनिल (१८) यशोधर (१९) कृतार्थ (२०) (जिनेश्वर (२१) शुद्धमति (२२) शिवकर (२३) स्यदन (२४) संप्रति ॥

अथ वर्त्तमान चोवीश अर्हंतका नाम. (१) श्री रुषन्ननाथ (२) श्री अजितनाथ (३) श्री संन्नवनाथ (४) श्री अनिनंदननाथ (५) श्री सुमतिनाथ (६) श्री पद्मप्रन्न (७) श्री सुपार्श्वनाथ (८) श्री चंद्रप्रन्न (९) श्री सुविधिनाथ अपर नाम पुष्पदंत (१०) श्री शीतलनाथ (११) श्री श्रेयांसनाथ (१२) श्री वासुपूज्यस्वामि (१३) श्री बिमलनाथ (१४) श्री अनंतनाथ (१५) श्री धर्मनाथ (१६) श्री शांतिनाथ (१७) श्री कुंथुनाथ (१८) श्री अरनाथ (१९) श्री मल्लिनाथ (२०) श्री मुनिसुव्रतस्वामि (२१) श्री नमिनाथ (२२) श्री अरिष्टनेमि (२३) श्री पार्श्वनाथ (२४) श्री महावीर.

अथ चोवीश तीर्थंकर न्नगवंतोके जो नाम है, सो नाम किस किस कारणसें हुये है, तिन नामोका एकतो सामान्यार्थहै, जो सब तीर्थंकरोमे पावे और दूजा विशेषार्थ है जो एकही तीर्थंकरके नामका निमित्त है सो लिखते है.

"रुषति गच्छति परमपदमिति रुषन्नः" जावेजो परम पदकू सो रुषन्न एह अर्थ सब तीर्थंकरोमें व्यापक है अथ विशेषार्थ "उर्वोर्वृषन्नलांछनमन्नूनगवतो जनन्याचतुर्दशानां स्वप्नानामादौ वृषन्नोदृष्टः तेन रुषन्नः" न्नगवानकी दोनो साथलोमे बैलका लांछनथा, अथवा न्नगवंतकी माता मरुदेवीने, चौदह स्वप्नकी आदिमे बैलका स्वप्नदेखाथा, तिस कारणसेंति रुषन्न ऐसा नाम दीया. ऐसेंही सर्व तीर्थंकरोका प्रथम सामान्यार्थ और दूसरा विशेषार्थ जानना.

२ "परीसहादिन्निर्नजित इत्यजितः" परीसहे बावीश आदि शब्दसे चार कषाय, आठकर्म, चार प्रकारका उपसर्ग, इनो करके जो न जीत्या गया सो अजित तथा "यद्वा गर्न्नस्थे ऽस्मिन् द्युतेराज्ञाजननी न जितेत्यजितः" जब न्नगवान गर्न्नमे थे, तब जूआ खेलता राजा राणीकू न जीत शका. इस हेतुसे अजित नाम दीया ॥ २ ॥

३ "शंसुखंन्नवत्यस्मिन्स्तुतेसशंन्नवः" शं नाम सुखका है, सुखहोवे जिसकी स्तुतिके कर्यां सो संन्नवः "यद्वागर्न्नगतेप्यस्मिन्नन्न्यधिकसस्यसंन्नवात्संन्नवोपि" अथवा न्नगवान् जब गर्न्नमे थे तब पृथविमे अधिक धान्यका संन्नव होनेसें संन्नव ॥ ३ ॥

४ "अन्निनंद्यतेदेवेंद्रादिन्निरित्यन्निनंदनः" जिनकी स्तुति करीये है देवेंद्र

दिकों करी, सो ऽभिनंदन "यद्वागर्भात्प्रभृत्येवाभीक्ष्णं शक्रेणा ऽभिनंदनादभि नंदन." अथवा जिसदिन भगवान गर्भमे आये उसदिनसेलैके शक्रेंद्रके वार वार स्तुति करनेसें अभिनंदन ॥ ४ ॥

५ "शोभनामतिरस्येतिसुमति" भलिहै बुद्धि इसके, सो, सुमति, "यद्वा गर्भस्थेजनन्या सुनिश्चितामतिरभूदिति सुमति" अथवा भगवान्के गर्भमे आये माताकी वहुत निर्मल निश्चित बुद्धि हुइ इस हेतुसें सुमति नाम ॥ ५ ॥

६ "निष्पकतामंगीकृत्यपद्मस्येवप्रभाऽस्यपद्मप्रभ" विषय तृष्णा कर्म कलंक रूप कीचड करी रहित पद्मकी तरे प्रभाहै इनकी, सो पद्मप्रभा "यद्वापद्मशयनदोह्दोमातुर्देवतयापूरितइतिपद्मवर्णश्चभगवानितिपद्मप्रभ" अथवा पद्म शयन दोह्दो दोह्ला माताकूं उत्पन्नहूया सो देवताने पूरण कीया इस कारणसे पद्मप्रभ अरु पद्म कमल सरीखा भगवानके श रीरका वर्णथा इस हेतुसेभी पद्मप्रभ ॥ ६ ॥

७ "शोभनौपार्श्वावस्यसुपार्श्व" शोभनिक है दोनो पासे इसके, सो सुपार्श्व तथा "यद्वागर्भस्थेभगवतिजनन्यपिसुपार्श्वाभूदिति सुपार्श्व" गर्भ मे स्थितहूया भगवान्के माताके दोनो पासे वहुत सुंदर होगये, इस कारणसे सुपार्श्व ॥ ७ ॥

८ "चंद्रस्येवप्रभाज्योत्स्नासौम्यलेश्याविशेषाऽस्यचंद्रप्रभ" चंद्रमाकी तरे है सौम्य लेश्या इसकी सो चंद्रप्रभ तथा "गर्भस्थेदेव्याचंद्रपानदोह्दोऽभूत् इति चंद्रप्रभ" गर्भमें जद भगवानथे तद माताकूं चंद्रमा पीनेका दोह्द उ त्पन्न हूयाथा, इस कारणसें चंद्रप्रभ ॥ ८ ॥

९ "शोभनोविधिविधानमस्यसुविधि" भली है विधि इसकी सो सुविधि तथा "यद्वागर्भस्थेभगवति जनन्यप्येवमिति सुविधि" गर्भमें भगवानके रह णेसे, माताभि शोभनिक विधि वाली होती भइ, इस कारणसे सुविधि ॥९॥

१० "सकलसत्वसंतापहरणात्शीतल" सर्व जीवोका संताप हरणेसे, शीतल तथा "गर्भस्थेभगवतिपितु पूर्वोत्पन्नाचिकित्स्यपित्तदाहोजननीकरस्प र्शादुपशात इति शीतल" भगवतके गर्भमें आनेसे, भगवतके पिताके शरी रमें पित्तदाह रोगथा, वैद्योसे शांति नहुइ भगवतकी माताके हाथका स्पर्श होताही राजेका शरीर शीतल हो गया इस कारणे शीतल ॥ १० ॥

११ "श्रेयान्समस्तभुवनस्यैवहितकरः प्राकृतशैल्याद्वांदसत्वाच्चश्रेयांसइत्युच्यते" सर्व जगतको जो हित करे सो श्रेयांस तथा "यद्वागर्भस्थेऽस्मिन् केनापिनाक्रांत पूर्वींदेवताधिष्ठितशय्याजनन्याआक्रांततेतिश्रेयोजातमितिश्रेयांसः" भगवान् जब गर्भमेंथे, तदा भगवतके पिताके घरमे देवताधिष्ठित शय्याथी उस उपरि जो बैठताथा उसहीकू असमाधि उत्पन्न होतीथी, भगवतकी माताकूं उसी शय्या उपरि सोनेका दोहद उत्पन्न हूया, माताउसी शय्या उपरि सूती देवता शांति भया उपद्रव नकरसा इस हेतुसें श्रेयांस ११

१२ "तत्रवसूनांपूज्यःवसुपूज्यः वसवोदेवा" वसूओंकर जो पूज्यनीक होवे सो वसुपूज्यः वसु कहियें देवता "वसुपूज्यनृपतेरपत्यं वासुपूज्यः" वसुपूज्य नामा राजेका जो पुत्र सो वासुपूज्य "वासवो देवराया तस्स गप्नगयस्स अभिरकणं अभिरकणं जणणीए पूयंकरेति तेणवासुपुज्जोत्ति अहवा वसूणि रयणाणि वासवो वेसमणो सो गप्नगए अभिरकणं अभिरकणं तं रायकुलं रयणेहिं पूरेयत्ति वासुपुज्जोत्ति ॥ अस्यार्थः—वासव नाम इंद्रका है सो भगवान् जब गर्भमें आये तदा वार वार इंद्रने भगवतकी माताकूं पूज्या, इस कारणसें वासुपूज्य अथवा वसु कहिये रतन अरुवासव नाम है वैश्रमणका सो वैश्रमण यदा भगवान् गर्भमेथे तदा वार वार तिस राजाके कुलकूं रत्न करी पूरण करता भया इस हेतुसें वासुपूज्य ॥ १२ ॥

१३ "विगतोमलोऽस्यविमलः विमलज्ञानादियोगा द्वाविमलः" दूरहूआ है अष्ट कर्मरूप मल जिसका सो विमल अथवा निर्मल ज्ञानादि योगसें विमल "यद्वागर्भस्थेमातुर्मतिस्तनुश्चविमलाजातेतिविमलः" तथा भगवान् यदा गर्भमेंथे, तदा माताकी बुद्धि अरु शरीर ए दोनुं निर्मल हो गये इस कारणे "विमल" नाम जानना ॥ १३ ॥

१४ "नविद्यतेगुणानामंतोऽस्यअनंतः अनंतकर्मांशजया द्वानंतः अनंता निवाज्ञानादीनियस्येत्यनंतः" नही जाणिये है गुणका अंत जिसका सो अनंत, अथवा अनंत कर्मांस जीतनेसें अनंत, अथवा अनंत है ज्ञानादि गुण जिसके सो अनंत "रयणविचित्तं रयण, खचियं अणंतं अतिमह पमाणं ॥ दामं सुमिणे जणणीए, दिंठ तउ अणंतोत्ति" रत्न विचित्र रत्नजडि

त अति मोटी दाम माला स्वप्नमे माताने देखी तिस कारणे अनंत॥१४॥

१५ "दुर्गतौ प्रतत सत्व संघात धारयतीतिधर्म्म" दुर्गतिमे पडता जीवांके समूहकूं जो धारण करे सो धर्म तथा "गर्भस्थेजननीदानादिधर्म्मपराजातेति धर्म" परमेश्वरके गर्भमे आवणेसे माता दानादिक धर्ममे तत्पर भयी इस कारणे धर्म नाम ॥ १५ ॥

१६ "शांतियोगात्तदात्मकत्वात्तत्कर्तृकत्वाच्चायशांति" शांतिके योगसें वा शांति रूप होणेसे वा शांति करणेसे शांति तथा "गर्भस्थेपूर्वोत्पन्नाशिवशांतिरभूदितिशांति" तथा गर्भमे भगवान्के उत्पन्न होणेसे पूर्वे जो अशिव उत्पन्नथा, सो शांति होगया इस कारणे शांति नाम ॥ १६ ॥

१७ "कु:पृथ्वी तस्यास्थितिवानितिकुंथु पृषोदरादित्वात्" कु नाम पृथ्वीका है तिस पृथ्वीमे जो स्थित होता भया सो कुंथु तथा "गर्भस्थे भगवति जननीरत्नाना कुंथुराशिंदृष्टवतीतिकुंथु" भगवतके गर्भमे स्थित हूया माता रत्नमयी कुंथुओकी राशि देखती भइ इस हेतुसे कुंथु ॥ १७ ॥

१८ "सर्वोत्तममहासत्व, कुलेयउपजायते तस्याभिवृद्धायवृद्धै,रसारवरउदाहृत ॥१॥ इतिवचनादर" सर्वसे उत्तम महासात्विक कुलमे जो उत्पन्न होवे, और तिस कुलकी वृद्धिके ताइ है तिसकु वृद्ध पुरुष, प्रधान अर कहते हैं तथा "गर्भस्थेभगवतिजनन्यास्वप्नेसर्वरत्नमयोऽरोदृष्टइत्यपर" तथा भगवतके गर्भमे स्थित होया माताने स्वप्नमे सर्व रत्न मयी अर देख्या इस कारणसे अर इति नाम ॥ १८ ॥

१९ "परीसादिमल्लजयनान्निरुक्तान्मल्लि" परीसहादि मल्लोके जीतनेमे मल्लि तथा 'गर्भस्थे भगवतिमातु सुरभिकुसुममाल्यशयनीयदोहदोदेवतया पूरितइति "मल्लि" तथा भगवतके गर्भमे स्थित हूया भगवतकी माताकू सुगंध वाले फूलोकी मालाकी सय्या उपरि सोनेका दोहद उत्पन्न भया, सो देवताने पूरण कीया इस कारणसे मल्लि ॥ १९ ॥

२० "मन्यतेजगतस्त्रिकालावस्थामितिमुनि शोभनानिव्रतान्यस्येतिसुव्रत मुनिश्चासौसुव्रतश्चमुनिसुव्रत" मानेजो जगतकूं तीनोही कालमे सो "मुनि" भले है व्रत जिसके सो सुव्रत ए दोनो पद एकठे करणेसे मुनिसुव्रत तथा

"गर्भस्थेजननीमुनिवत्सुव्रताजातेतिमुनिसुव्रतः" तथा भगवतके गर्भमें स्थित हूयां माता मुनिकी तरें भले व्रत वाली होतीभइ इस हेतुसें मुनिसुव्रत ॥ २०

२१ "परीसहोपसर्गादीनांनामनात्नमेस्तुवेतिविकल्पेनोपांत्यस्येकाराभावपक्षेनमिः" परीसह उपसर्गांकूं नमावणेसें नमि तथा "यद्वागर्भस्थे भगवति परचक्रनृपैरपिप्रणतिः कृतेतिनमिः" भगवतके गर्भमे स्थित होया वैरी राजायोंनेभी नमस्कार करी इस कारणसें नमि ॥ २१ ॥

२२ "धर्मचक्रस्यनेमिवन्नेमिः" धर्मचक्रकी धारावत् सो नेमि तथा "गब्भगएतस्समायाए, रिठ्ठरयणामउमहतिमहालउ नेमि॥ उप्पयमाणो सुमिणे, दिठ्ठोत्ति तेणसेरिठ्ठनेमित्ति नामंकयंति" तथा भगवतके गर्भगत हूया माताने अरिष्ट रत्नमय वडा मोटा नेमी (चक्रधारा) आकाशमे उत्पत मान स्वप्नमें देख्या तिस कारणे अरिष्ट नेमि नाम कहा ॥ २२ ॥

२३ "स्पृशतिज्ञानेनसर्वभावानितिपार्श्वः" स्पर्शे जाणे सर्व पदार्थांकूं ज्ञान करी सो पार्श्व तथा "गर्भस्थेजनन्यानिशिशयनीयस्थयांऽधकारेसर्पोदृष्टइतिगर्भानुभावोयमितिपश्यतीतिनिरुक्तात्पार्श्वः पार्श्वोस्यवैयावृत्त्यकरोयक्षस्तस्यनाथः पार्श्वनाथः भीमोभीमसेनइतिन्यायाद्वापार्श्वः" तथा भगवतके गर्भमे स्थित होणेसे माता निशि रात्रिमे शय्या उपर बैठीने अंधेरेमे जाता हूया सर्प्प देख्या माता पिताने विचास्या जो ए गर्भका प्रभाव है देखे सो पार्श्वः अथवा पार्श्व नामा वैयावृत्त करणहारा देवता तिसका जो नाथ सो पार्श्व नाथ ॥ २३ ॥

२४ "विशेषेणईरयतिप्रेरयतिकर्माणीतिवीरः" विशेष करके प्रेरेजो कर्मांकूं सो बीर तथा वडे उग्र परीसह उपसर्ग सहणेसें, देवताने नाम कह्या श्रमण भगवान् महाबीर तथा माता पिताका नाम दीया वर्द्धमान ॥ २४ ॥

इस प्रकार यह अवसर्प्पिणीमे जो तीर्थंकर हो गये तिनोके नाम अरु किस हेतुसें यह नाम रखेगये सो समाप्त हूये.

यह चोवीश तीर्थंकर है इनमें सुं बावीश अर्हंततो इक्ष्वाकु कुलमे उत्पन्न हूये है एतावता ऋषभ देवकी संतानमे है, इक्ष्वाकु कुल ऋषभदेवहीसें प्रसिद्ध है, यह स्वरूप आगें चलकर लिखेंगे और एक तो वीशमें मुनि

सुव्रत स्वामी तथा दूसरा बावीशमे श्रीअरिष्टनेमि नगवान्, ए दोनो तीर्थंकर हरिवंशमे उत्पन्न हूये थे तथा इन चोवीसों तीर्थंकरोंमे छठा पद्मप्रन्न और बारहवा वासुपूज्य ए दोनो तीर्थंकर रक्तवर्ण शरीर वाले हूये हे तथा आठवा चंद्रप्रन्न और नवमे सुविधिनाथ (पुष्पदंत) ए दोनो तीर्थंकर, स्वेत वर्ण स्फटिक वत् उज्वल शरीर वाले हूये है, तथा उन्नीसवा मल्लिनाथ और तेइसवा पार्श्वनाथ ए दोनो तीर्थंकर, हरित वर्ण शरीर वाले हूये है, तथा वीसवा मुनिसुव्रत स्वामी और बावीसवा अरिष्टनेमि नगवान् ए दोनो तीर्थंकर स्यामवर्ण अलसीके फूलवत् रंगवाले शरीरके धारक हूये है अरु शेष शोला तीर्थंकर सुवर्णवर्ण शरीरवाले हूये है

अथ चोवीश तीर्थंकरोंके चिन्ह उनके दक्षिण पगोंमे रहे हूये वा उनकी ध्वजामे ए चिन्ह होते है अथवा इनकी प्रतिमाके आसनमे ए चिन्ह होते है, सो कहेते है (१) ऋषनदेवजीके बैलका चिन्ह (२) अजितनाथजीके हाथीका चिन्ह (३) सन्नवनाथजीके घोडेका चिन्ह. (४) अनिनंदनजीके बंदरका चिन्ह. (५) सुमति नाथजीके क्रौंच पक्षीका चिन्ह (६) पद्मप्रन्नजीके कमलका चिन्ह. (७) सुपार्श्वनाथजीके साथीयेका चिन्ह. (८) चंद्रप्रन्नजीके चंद्रमाका चिन्ह (९) सुविधिनाथ (पुष्पदंतजी) के मकरका चिन्ह. (१०) शीतलनाथजीके श्रीवत्सका चिन्ह. (११) श्रेयांसनाथजीके गेंडेका चिन्ह (१२) श्रीवासुपूज्यजीके महिषेका चिन्ह (१३) श्रीविमलनाथजीके सूअरका चिन्ह. (१४) अनंतनाथजीके बाजका चिन्ह (१५) धर्मनाथजीके वज्रका चिन्ह (१६) शांति नाथजीके हरिणका चिन्ह (१७) कुंथुनाथजीके बकरेका चिन्ह. (१८) अरनाथजीके नंदावर्तका चिन्ह. (१९) श्रीमल्लिनाथजीके कुंनका चिन्ह. (२०) मुनिसुव्रत स्वामीजीके कछुका चिन्ह (२१) नमीनाथजीके नीले कमलका चिन्ह (२२) अरिष्टनेमिजीके शंखका चिन्ह. (२३) श्रीपार्श्वनाथजीके सर्पका चिन्ह. (२४) श्रीमहावीरजीके सिंहका चिन्ह. यह चिन्ह चोवीश तीर्थंकरोके पगोमे होते है

अथ चोवीश तीर्थकरोके पितायोके नाम तथा मतायोंके नाम कहतेहै.
१ नानिनहरत्यन्यायिनोहकारादिन्निर्नीतिनिरितिनानिरत्यक्तजकर, (२)

जिताःशत्रवोऽनेनजीतशत्रुः (जीतेहै शत्रु जिसने सो जितशत्रु) (३) जिताअरयोऽनेनजितारिः (जीतेहै वैरी जिसने सो जितारि) (४) संवृणोतींद्रियाणिसंवरः (वस करीया है इंद्रिया सो संवर, (५) सकलसत्वसंतापहरणात् मेघइवमेघः (सकल जीवांका संताप हरणेसें मेघकी तरें मेघ, (६) धरतिधात्रीमितिधरः (धारण करे जो पृथ्वीकुं सो धर. (७) प्रतितिष्ठति धर्मकार्ये प्रतिष्ठः (धर्मके कार्य कार्यमें जो रहे सो प्रतिष्ठ, (८) महतोपूज्यासेनाऽस्यमहासेनः (मोटी पूजने योग्य है सेना जिसकी सो महासेन) सचासौनरेश्वरश्च महासेननरेश्वरः, (९) शोभनाग्रीवाऽस्यसुग्रीवः (भली है ग्रीवा जिसकी,सो सुग्रीव, (१०) दृढोरथो,स्यदृढरथः (दृढ (बलवान) है रथ जिसका सो दृढरथ, ११) विवेष्टिवलैः पृथिवीविष्णुः (विवेष्टन कीया है पृथवीकुं सैना करी जिसने सो विष्णु, (१२) अन्यैराजभिर्वसुभिर्धनैः पूज्यते इतिवसुपूज्यः सचासौराट्च वसुपूज्यराट् (दूसरे राजाउने धन करी पूज्या सो वसुपूज्य राजा, (१३) कृतंवर्मानेन कृतवर्मा (कर्या है सनाह जिसने सो कृतवर्मा, (१४) सिंहवत्पराक्रमवतीसेनास्य सिंहसेनः (सिंहकीतरे है पराक्रम वाली सेना जिसकी सो सिंहसेन, (१५) भाति त्रिवर्गेणभानुः सोभे है जो अर्थ काम अरु धर्म करके सो भानु, (१६) विश्वव्यापिनीसेनाऽस्यविश्वसेन (जगतमे व्यापने वाली सेना है जिसके सो विश्वसेन सचासौराट्चविश्वसेनराट् (१७) तेजसासूरइवसूरः (तेज करके सूर्यवत् सो सूर, (१८) शोभनदर्शनमस्यसुदर्शनः (भला है दर्शन जिसका सो सुदर्शन, (१९) गुणपयसामाधारभूतत्वात् कुंभइव कुंभः (गुणरूप पाणीका आधारभूत होणेसे कुंभकी तरे कुंभ, (२०) शोभनानि मित्राणिअस्यसुमित्रः (भले है मित्र जिसके सो सुमित्र, (२१) विजयते शत्रुनितिविजयः (जीते है शत्रुओंकूं सो विजय, (२२) गांभीर्येणसमुद्रस्यापिविजेतासमुद्रविजयः (गांभीर्यता करी समुद्रकूं जीतने वाला समुद्रविजय, (२३) अश्वप्रधानासेनास्यअश्वसेनः (घोडों करी प्रधान है सेना जिसकी सो अश्वसेन, (२४) सिद्धार्थाःपुरुषार्था अस्यसिद्धार्थः ॥ ए ऋषभ आदि चोवीस तीर्थंकरोके क्रम करके चोवीस पिताओंके नाम कहे.

अथ चोवीश तीर्थंकरोकी माताओंके नाम लिखते है (१) मरुद्भिर्दी व्यतेस्तूयतेमरुदेवा पृषोदरादित्वात् तलोप मुरदेव्यपि स्यात् (देवता करी जो स्तवीये सा मरुदेवा मुरदेवी एसाभी नाम है, (२) विजयतेविजया (ज यवतविजया, (३) सहअनेनजितारिस्वामिनावर्त्ततेसेना (जितारिराजा के साथ जो वर्त्ते सा सेना, (४) सिद्धोऽर्थोऽस्या सिद्धार्था (सिद्धहूया है अर्थ जिसका सा सिद्धार्था (५) मगलहेतुत्वात्मगला (मंगलके हे तुभूत होनेसे मगला, (६) शोभनासीमामर्यादाऽस्या सुसीमा(भली है मर्यादा जिसकी सा सुसीमा, (७) स्थेम्नापृथ्वीवपृथ्वी (स्थिर है पृथ्वी की तरे पृथ्वी, (८) लक्ष्मीशोभाऽस्त्यस्या लक्ष्मणा (लक्ष्मीकीतरे शोभा हे जिसकी सा लक्ष्मणा, (९) धर्मकृत्येपुरमतेरामा (धर्मकृत्यमें जो रमे सा रामा, (१०) नदतिसुपात्रेणनदा (वृद्धिवान् होवे जो सुपा त्रदान देणेसे सा नंदा, (११) विवेष्टिगुणैर्जगदितिविष्णु (लपेटे जो गु णा करी जगत् सा विष्णु, (१२) जयतिसतीत्वेनजया (उत्कृष्टपणेवर्त्ते है सती पणे करी सा जया, (१३) श्यामवर्णत्वात्श्यामा (श्यामवर्ण होनेसे श्यामा, (१४) शोभनयशोऽस्या सुयशा (भला है यश जिसका सा सुयशा, (१५) शोभनव्रतमस्या सुव्रतापतिव्रतत्वात् (भला है व्रत जिसके सा सुव्रता, (पतिव्रता होनेसे सुव्रता, (१६) नचिरयतिधर्मका र्येष्वऽचिरा (नही चिर करती धर्मकार्यों विषे सा अचिरा, (१७) श्रीरि वश्रीदेवीवदेवीप्रभाऽस्त्यस्या श्री (लक्ष्मीकी तरे प्रभा है जिसकी सा श्री,(१८) देवीकी तरे प्रभा है जिसकी सा देवी, (१९) प्रभावतीप्रभावती, (२०) पद्मइवपद्मावती (पद्मकी तरे पद्मावती, (२१) धर्मबीजमितिवप्रा, (२२) शिवहेतुत्वात्शिवा (निरुपद्रव होणेके हेतुसे शिवा, (२३) मनोज्ञत्वा द्वामा पापकार्येपुप्रतिकूल्या द्वामा (मनोज्ञ होणेसे वामा) अथवा पापकार्यों विषे प्रतिकूल होनेसे वामा, (२४) त्रिणिज्ञानदर्शनचारित्राणिशलयति प्राप्नोतीतित्रिशला (तीन ज्ञान दर्शन औ चारित्रकूं प्राप्त होवे सा त्रिशला, इस क्रम करकें ऋषभादि चोवीश तीर्थंकरोंके माताओंका नाम है ॥ अथ वा सुगमताके कारण चोवीश तीर्थंकरोके साथ बावन बोलका संबंध है तिसका स्वरूप यत्र बध लिखते है प्रथम बावन बोलका नाम लिखे है

बावन बोलका नाम कहेते हैं.

१ श्रीतीर्थंकरका नाम.
२ चवणतिथि.
३ किस विमानसें आये.
४ किस नगरीमें जन्म हूये.
५ जन्म तिथि.
६ पिताओंका नाम.
७ माताओंका नाम.
८ किस नक्षत्रमें जन्मे.
९ जन्मराशि.
१० लांछनका नाम.
११ शरीरके उच्च पणेका मान.
१२ आयुके वर्षका प्रमाण.
१३ शरीरका वर्ण.
१४ पदवी.
१५ विवाहे के कुमारे ?
१६ कितने जनोंके साथ दीक्षा लीई.
१७ दीक्षा कोनसी नगरीमें लीई.
१८ दीक्षा दिने कितना तप.
१९ प्रथम पारणे क्या आहार मिला
२० प्रथम पारणेका घर.
२१ कितने दिनाका पारणा.
२२ दीक्षाकी तिथि.
२३ छद्मस्थ पणेका कालमान.
२४ किस नगरीमें केवलज्ञान प्राप्त हूया
२५ ज्ञानोत्पत्ति दिने क्या तप.
२६ किस वृक्षके हेठ दीक्षा लीनी.
२७ किस तिथिमें ज्ञान उत्पन्न हूया.
२८ गणधरोंकी संख्या.
२९ साधुओंकी संख्या.
३० साध्वीयोंकी संख्या.
३१ वैक्रिय लब्धिवंतोंकी संख्या.
३२ अवधि ज्ञानीयोंकी संख्या.
३३ केवल ज्ञानीयोंकी संख्या.
३४ मनःपर्यवज्ञानीयोंकी संख्या.
३५ चौदह पूर्वधारियोंकी संख्या.
३६ वादिओंकी संख्या.
३७ श्रावकोंकी संख्या.
३८ श्राविकायोंकी संख्या.
३९ शासनके यक्षोका नाम.
४० शासनके यक्षणीयोंका नाम.
४१ प्रथम गणधरका नाम.
४२ प्रथम आर्याका नाम.
४३ मोक्ष होनेका स्थान.
४४ मोक्ष पोहोचनेकी तिथि.
४५ मोक्ष दिने तप.
४६ मोक्ष जानेके आसन.
४७ परस्पर अंतरका मान.
४८ गण नाम.
४९ योनि नाम.
५० मोक्ष परिवार.
५१ सम्यक्त्वपायां पीछे महोटे नव.
५२ किस कुलमें उत्पन्न हूया.
५३ गर्भवासका कालमान.

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमे कहेते है

१	श्रीतीर्थकरनाम	१ श्रीऋषभदेव.	१ श्रीअजितनाथ	३ श्रीसंभवनाथ.
२	चवणतिथि	आषाढवदि४	वैशाखशुदि १३	फाल्गुनशुदि ८
३	विमाननाम	सर्वार्थसिद्धि	विजयविमान	उपरलाग्रैवेयक
४	जन्मनगरी.	विनीताभूमि	अयोध्या	सावत्थी
५	जन्मतिथि	चैत्रवदि ८	माहशुदि ८	माहशुदि १४
६	पिताका नाम.	नाभिकुलकर	जितशत्रु	जितारि
७	माताका नाम.	मरुदेवी	विजया	सेना
८	जन्मनक्षत्र	उत्तराषाढा	रोहिणी	मृगशिर
ए	जन्मराशि.	धन	वृष	मिथुन
१०	लांछननाम	वृषभ	हस्ती	अश्व
११	शरीरमान.	५००)धनुष	४५०)धनुष	४००)धनुष
१२	आयुमान	८४)लक्षपूर्व	७२)लक्षपूर्व	६०)लक्षपूर्व
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४	पदवी राजकी.	राजपदवी	राजपदवी	राजपदवी
१५	पाणिग्रहण	विवाह हूया	विवाह हूया	विवाह हूया
१६	कितनेसाथ दीक्षा	४०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी.	विनीता	अयोध्या	सावत्थी
१८	दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१ए	प्रथमपारणेकाआ०	इक्षुरस	परमान्नक्षीर	परमान्नक्षीर
२०	पारनेका स्थान	श्रेयांसके घरे	ब्रह्मदत्तके घरे	सुरेन्द्रदत्तके घरे
२१	कितने दिनकापारणा	एकवर्षपीछे	दो दिन पीछें	दो दिनपीछे
२२	दीक्षातिथि	चैत्रवदि ८	महावदि ए	मगसिरशुदि १५
२३	छद्मस्थकाल	१०००)वर्ष	१२)वर्ष	१४)वर्ष
२४	ज्ञाननगरी.	पुरिमताल	अयोध्या	सावत्थी
२५	ज्ञानतप	तीनउपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष	वटवृक्ष	सालवृक्ष	प्रियालवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि	फागुणवदि ११	पोषवदि ११	कार्त्तिकवदि ५

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	८४)	९५)	१०२)
२९	साधुओंकी संख्या	८४०००)	१०००००)	२०००००)
३०	साध्वीयोंकीसंख्या	३०००००)	३३००००)	३३६०००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	२०६००)	२०४००)	१९८००)
३२	वादिओंकीसंख्या.	१२६५०)	१२४००)	१२०००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	९०००)	९४००)	९६००)
३४	केवलीसंख्या.	२००००)	२२०००)	१५०००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	१२७५०)	१२५५०)	१२१५०)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	४७५०)	३७२०)	२१५०)
३७	श्रावकसंख्या.	३५००००)	२९८०००)	२९३०००)
३८	श्राविकासंख्या.	५५४०००)	५४५०००)	६३६०००)
३९	शासनयक्षनाम.	गोमुखयक्ष	महायक्ष	त्रिमुखयक्ष
४०	शासनयक्षणी.	चक्रेश्वरी	अजितबला	दुरितारि
४१	प्रथमगणधरनाम.	पुंडरीक	सिंहसेन	चारु
४२	प्रथमआर्यानाम.	ब्राह्मी	फाल्गु	श्यामा
४३	मोक्षस्थान.	अष्टपद	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	माघवदि १३	चैत्रशुदि ५	चैत्रशुदि ५
४५	मोक्षसंलेषणा.	६ उपवास	एक मास	एक मास
४६	मोक्षआसन.	पद्मासन	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७	अंतर मान.	५०लाखकोटीसा	३०लाखकोटीसा	१०लाखकोटीसा
४८	गणनाम.	मानवगण	मानवगण	देवगण
४९	योनि नाम.	नकुलयोनि	सर्प्पयोनि	सर्प्पयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	१००००)	१०००)	१०००)
५१	भवसंख्या.	तेर भव कस्या	तीन भव कस्या	तीन भव कस्या
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	नवमासचारदिन	८मास पच्चीशदि.	नवमास ६दिन

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते है

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	४ श्रीअभिनंदन	५श्रीसुमतिनाथ	६ श्रीपद्मप्रभ
२	चवणतिथि	वैशाखशुदि ४	श्रावणशुदि २	माघवदि ६
३	विमाननाम	जयंतविमान	जयंतविमान	उवरिमग्रैवेयक
४	जन्मनगरी	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
५	जन्मतिथि.	माघशुदि २	वैशाखशुदि ८	कार्त्तिकवदि १२
६	पिताका नाम	सबरराजा	मेघराजा	श्रीधरराजा
७	माताका नाम	सिद्धार्था	मंगला	सुसीमा
८	जन्म नक्षत्र.	पुनर्वसु	मघा	चित्रा
९	जन्मराशि.	मिथुन	सिंह	कन्या
१०	लाछनका नाम	वदरका	क्रौंचपक्षीका	पद्मकमलका
११	शरीरमान	३५०)धनुष	३००)धनुष	२५०)धनुष
१२	आयुमान	५०)लाखपूर्व	४०)लाखपूर्व	३०)लाखपूर्व
१३	शरीरका वर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	रक्तवर्ण
१४	पदवीराजकी	राजा	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितनेसाथदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	नित्य भक्त	एक उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीर	क्षीर	क्षीर
२०	पारनेका स्थान	इन्द्रदत्त घरे	पद्म घरे	सोमदेव घरे
२१	कितनेदिनकापारणा	दोदिन (२)	दोदिन (२)	दोदिन (२)
२२	दीक्षातिथि.	माघशुदि १२	वैशाखशुदि ९	कार्त्तिकवदि १३
२३	छद्मस्थकाल	अठारहवर्ष	वीशवर्ष	६ मास
२४	ज्ञाननगरी	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	चोथ भक्त
२६	दीक्षावृक्ष	प्रियंगु वृक्ष	साल वृक्ष	छत्र वृक्ष
२७	ज्ञानतिथि	पोषवदि १४	चैत्रशुदि ११	चैत्रशुदि १५

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	११६)	१००)	१०३)
२९	साधुओंकीसंख्या.	३०००००)	३२००००)	३३००००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या.	६३००००)	५३००००)	४२००००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	१९०००)	१८४००)	१६१०८)
३२	वादीओंकीसंख्या.	११०००)	१०४००)	९६००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	९८००)	११०००)	१००००)
३४	केवलीसंख्या.	१४०००)	१३०००)	१२०००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	११६५०)	१०४५०)	१०३००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	१५००)	२४००)	२३००)
३७	श्रावकसंख्या.	२८८०००)	२८१०००)	२७६०००)
३८	श्राविकासंख्या.	५२७०००)	५१६०००)	५०५०००)
३९	शासन यक्ष नाम.	नायक यक्ष	तुंबरु यक्ष	कुसमय यक्ष
४०	शासनयक्षणीनाम.	कालिका	महाकाली	श्यामा
४१	प्रथमगणधरनाम.	वज्रनाभ	चरम	प्रद्योतन
४२	प्रथमआर्यानाम.	अजिता	काश्यपी	रति
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	वैशाखशुदि ८	चैत्रशुदि ९	मगसिरवदि ११
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७	अंतरमान.	१०लाखकोडीसा.	९०हजारकोडीस	९हजारकोडीसा.
४८	गणनाम.	देवगण	राक्षसगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम.	छागयोनि.	मूषकयोनि	महिषयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	१०००)	१०००)	३०८)
५१	भवसंख्या.	तीनभवकीया	तीनभवकीया	तीनभवकीया
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	८मास२८दिन	नवमास६दिन	नवमास६दिन

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते है

१	श्रीतीर्थंकरनाम	७श्रीसुपार्श्वनाथ	८ श्रीचंद्रप्रभ	९श्रीसुविधिनाथ
२	चवणतिथि	भाद्रववदि ८	चैत्रवदि ५	फागणवदि ९
३	विमाननाम.	मध्यिमग्रैवेयक	विजयंत	आनतदेवलोक
४	जन्मनगरी	वणारसी नगरी	चंद्रपुरीनगरी	काकंदीनगरी
५	जन्मतिथि	ज्येष्ठशुदि १२	पोषवदि १२	मगसिरवदि ५
६	पिताका नाम	प्रतिष्ठराजा	महासेनराजा	सुग्रीवराजा
७	माताका नाम	पृथिवीमाता	लक्ष्मणामाता	रामाराणीमाता
८	जन्मनक्षत्र.	विशाखानक्षत्र	अनुराधानक्षत्र	मूलनक्षत्र
९	जन्मराशि	तुलराशि	वृश्चिकराशि	धनराशि
१०	लांछननाम	साथीयाकालंछन	चंद्रकालंछन	मगरमछकालंछन
११	शरीरमान	२००)धनुष	१५०)धनुष	१००)धनुष
१२	आयुमान	२०)लाखपूर्व	१०)लाखपूर्व	२)लाखपूर्व
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	श्वेतवर्ण	श्वेतवर्ण
१४	पदवीराजकी	राजा	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितनेसाथदीक्षा	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी	बनारसीनगरी	चंद्रपुरीनगरी	काकंदीनगरी
१८	दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरकाभोजन	क्षीरकाभोजन	क्षीरका भोजन
२०	पारणेका स्थान	माहेंद्र घरे	सोमदत्त घरें	पुष्प घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि	ज्येष्ठशुदि १३	पोषवदि १३	मगसिरवदि ६
२३	छद्मस्थकाल	नव मास रह्या	त्रण मास रह्या	चार मास रह्या
२४	ज्ञाननगरी	वणारसी नगरी	चंद्रपुरी नगरी	काकंदी नगरी
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष	सरीसवृक्ष	नागवृक्ष	सालीवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि	फागणवदि ६	फागणवदि ७	कार्त्तिकशुदि ३

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	९५)गणधर	९३)गणधर	८८)गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या	३०००००)	२५००००)	२०००००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	४३००००)	३८००००)	१२००००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	१५३००)	१४०००)	१३०००)
३२	वादिओंकीसंख्या.	८४००)	७६००)	६०००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या	९०००)	८०००)	८४००)
३४	केवलीसंख्या.	११०००)	१००००)	७५००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	९१५०)	८०००)	७५००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	२०३०)	२०००)	१५००)
३७	श्रावकसंख्या.	२५७०००)	२५००००)	२२९०००)
३८	श्राविकासंख्या.	४९३०००)	४७९०००)	४७१०००)
३९	शासनयक्षनाम.	मातंगयक्ष	विजययक्ष	अजिता यक्ष
४०	शासनयक्षणीनाम	शांता	भृकुटी	सुतारिका
४१	प्रथमगणधरनाम.	विदर्भ	दिन्न	वराहक
४२	प्रथमआर्यानाम.	सोमा	सुमना	वारुणी
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	फागणवदि ७	भाद्रवावदि ७	भाद्रवाशुदि९
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतर मान.	९सोकोडीसागर	९०कोडीसागर	९कोडीसागर
४८	गणनाम.	राक्षसगण	देवगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम.	मृगयोनि	मृगयोनि	वानरयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	५००)	१०००)	१०००)
५१	भवसंख्या.	तीन भव कीया	तीन भव कीया	तीन भव कीया
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मासनवदिन१९	मासनवदिनसात	मास८दिनछवीस

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहेते है

१	श्रीतीर्थकरनामः	१० शीतलनाथ	११ श्रेयांसनाथ	१२ श्रीवासुपूज्य
२	चवणतिथि.	वैशाखवदि ६	ज्येष्ठवदि ६	ज्येष्ठशुदि ए
३	विमाननाम	अच्युतदेवलोक	अच्युतदेवलोक	प्राणतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	भद्दिलपुर	सिंहपुरी	चपापुरी
५	जन्मतिथि.	महावदि १२	फागणवदि १२	फागणवदि १४
६	पिताका नाम.	दृढरथराजा	विष्णुराजा	वसुपूज्यराजा
७	माताका नाम.	नंदामाता	विष्णुमाता	जयामाता
८	जन्मनक्षत्र.	पूर्वाषाढा	श्रवणनक्षत्र	शतभिषानक्षत्र
ए	जन्मराशि.	धनराशि	मकरराशि	कुंभराशि
१०	लांछननाम.	श्रीवत्सकालांछन	गेंडाका लांछन	पाडाका लांछन
११	शरीरमान.	नेवु धनुष	अेंशीधनुष	सीत्तरे धनुष
१२	आयुमान	एकलाख पूर्व	(७४)लाख वर्ष	(७२)लाख वर्ष
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	लालवर्ण
१४	पदवी राजकी	राजा	राजा	कुमार
१५	पाणिग्रहण	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथ दीक्षा.	(१०००) साधु	(१०००) साधु	(६००) साधु
१७	दीक्षानगरी	भद्दिलपुर	सिंहपुरी	चपापुरी
१८	दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१ए	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारनेका स्थान.	पुनर्वसुके घरें	नंदके घरें	सुनंदके घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि	महावदि १२	फागणवदि १३	फागणशुदि १५
२३	छद्मस्थकाल	तीन मासरह्या	दो मासरह्या	एक मासरह्या
२४	ज्ञाननगरी.	भद्दिलपुर	सिंहपुरी	चपापुरी
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष	प्रियंगुवृक्ष	तंडुकवृक्ष	पाडलवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	पोषवदि १४	महावदि २	महाशुदि २

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	८१)गणधर	७६)गणधर	६६)गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या.	१०००००	८४०००	७२०००
३०	साधवीयोंकीसंख्या	१००००६	१०३०००	१०००००
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	१२०००	११०००	१००००
३२	वादीओंकीसंख्या.	५८००	५०००	४७००
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	७२००	६०००	५४००
३४	केवलीसंख्या.	७०००	६५००	६०००
३५	मनःपर्यवसंख्या.	७५००	६०००	६५००
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	१४००	१३००	१२००
३७	श्रावकसंख्या.	२८९०००	२७९०००	२१५०००
३८	श्राविकासंख्या.	४५८०००	४४८०००	४३६०००
३९	शासन यक्ष नाम.	ब्रह्मायक्ष	जक्षेटयक्ष	कुमारयक्ष
४०	शासनयक्षिणीनाम	अशोका	मानवी	चंडा
४१	प्रथमगणधरनाम.	नंद	कच्छप	सुभूम
४२	प्रथमआर्यानाम.	सुयशा	धारणी	धरणी
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	चंपापुरी
४४	मोक्षतिथि.	वैशाखवदि२	श्रावणवदि३	आषाढशुदि१४
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतरमान.	एककोडीसागर	चोपनसागर	त्रीशसागर
४८	गणनाम.	मानवगण	देवगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम.	नकुलयोनि	वानरयोनि	अश्वयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	१०००)परिवार	१०००)परिवार	६००)परिवार
५१	भवसंख्या.	तीन भव करया	तीन भव करया	तीन भव करया
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मासनव दिन ८	मासनव दिन ८	मास८दिन२०

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१३ विमलनाथ	१४ अनंतनाथ	१५ श्रीधर्मनाथ
२	चवणतिथि.	वैशाखशुदि १२	श्रावणवदि ७	वैशाखशुदि ७
३	विमाननाम	सहस्रारदेवलोक	प्राणतदेवलोक	विजयविमान
४	जन्मनगरी	कंपिलपुरी	अयोध्या	रत्नपुरीनगरी
५	जन्मतिथि.	महाशुदि ३	वैशाखवदि १३	महाशुदि ३
६	पिताका नाम	कृतवर्मराजा	सिंहसेनराजा	भानुराजा
७	माताका नाम.	श्यामामाता	सुयशामाता	सुव्रतामाता
८	जन्म नक्षत्र.	उत्तराभाद्रपद	रेवतीनक्षत्र	पुष्यनक्षत्र
९	जन्मराशि	मीनराशि	मीनराशि	कर्कराशि
१०	लाछनका नाम.	वराहका लाछन	सीचाणाका ला०	वज्र लाछन
११	शरीरमान	साठ धनुष	पचाशधनुष	पीस्तालीशधनुष
१२	आयुमान	साठलाखवर्ष	त्रीशलाखवर्ष	दशलाखवर्ष
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४	पदवीराजकी	राजा	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी.	कंपिलपुर	अयोध्या	रत्नपुरी
१८	दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारनेका स्थान.	जयराजाकेघरें	विजयराजाकेघरे	धनसिंहके घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि	महाशुदि ४	वैशाखवदि १४	महाशुदि १३
२३	छद्मस्थकाल	दो मास	तीन वर्ष	दो वर्ष
२४	ज्ञाननगरी	कंपिलपुरी	अयोध्या	रत्नपुरी
२५	ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष	जंबूवृक्ष	अशोकवृक्ष	दधिपर्णवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि	पोषशुदि ६	वैशाखवदि १४	पोषशुदि १५

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	५७)गणधर	५०)गणधर	४३)गणधर
२९	साधुओंकी संख्या	६८०००)	६६०००)	६४०००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	१००८००)	६२०००)	६२४००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	९०००)	८०००)	७०००)
३२	वादिओंकी संख्या.	३६००)	३२००)	२८००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	४८००)	४३००)	३६००)
३४	केवलीसंख्या.	५५००)	५०००)	४५००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	५५००)	५०००)	४५००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	११००)	१०००)	९००)
३७	श्रावकसंख्या.	२०८०००)	२०६०००)	२०४०००)
३८	श्राविकासंख्या.	४२४०००)	४१४०००)	४१३०००)
३९	शासनयक्षनाम.	षण्मुखयक्ष	पातालयक्ष	किन्नरयक्ष
४०	शासनयक्षिणी.	विदिता	अंकुशा	कंदर्पा
४१	प्रथमगणधरनाम.	मंदरगणधर	जस गणधर	अरिष्ट
४२	प्रथमआर्यानाम.	धरा	पद्मा	आर्यशिवा
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	आषाढवदि ७	चैत्रशुदि ५	ज्येष्ठशुदि ५
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतर मान.	नवसागरोपम	चारसागरोपम	तीनसागरोपम
४८	गणनाम.	मानवगण	देवगण	देवगण
४९	योनि नाम.	छागयोनि	हस्तियोनि	मंजारयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	६००)	७००)	१०८)
५१	भवसंख्या.	तीनभवकरया	तीनभवकरया	तीनभवकरया
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मास ८ दिन २१	मासनवदिन छ	मास८दिनछवीश

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते है

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१६श्रीशांतिनाथ	१७श्रीकुंथुनाथ	१८श्रीअरनाथ
२	चवणतिथि.	भाद्रवावदि ७	श्रावणवदि ९	फागणशुदि २
३	विमाननाम.	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध
४	जन्मनगरी	गजपुर	गजपुर	गजपुर
५	जन्मतिथि	ज्येष्ठवदि १३	वैशाखवदि १४	मगशिरशुदि१०
६	पिताका नाम.	विश्वसेन	सूरराजा	सुदर्शन
७	माताका नाम	अचिराराणी	श्रीराणी	देवीराणी
८	जन्मनक्षत्र	भरणीनक्षत्र	कृत्तिकानक्षत्र	रेवतीनक्षत्र
९	जन्मराशि	मेषराशि	वृषराशि	मीनराशि
१०	लांछननाम.	हरिणका लांछन	बकराका लांछन	नंद्यावर्त्तकालांछन
११	शरीरमान	४० धनुष	३५ धनुष	३० धनुष
१२	आयुमान.	एकलाखवर्ष	(९५०००)वर्ष	(८४०००) वर्ष
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४	पदवीराजकी	चक्रवर्त्ती	चक्रवर्त्ती	चक्रवर्त्ती
१५	पाणिग्रहण.	(६४०००) स्त्री	(६४०००) स्त्री	(६४०००) स्त्री
१६	कितनेसाथदीक्षा	(१०००) साधु	(१०००) साधु	(१०००) साधु
१७	दीक्षानगरी	गजपुर	गजपुर	गजपुर
१८	दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारणेका स्थान	सुमित्रघरे	व्याघ्रसिंहघरे	अपराजितघरे
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि	ज्येष्ठवदि १४	चैत्रवदि ५	मगसिरशुदि११
२३	छद्मस्थकाल	एकवर्ष	शोलवर्ष	तीनवर्ष
२४	ज्ञाननगरी	गजपुर	गजपुर	गजपुर
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष	नदीवृक्ष	भीलकवृक्ष	आंबाकावृक्ष
२७	ज्ञानतिथिः	पोषशुदि ९	चैत्रशुदि ३	कार्त्तिकशुदि१२

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	३६ गणधर	३५ गणधर	३३ गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या.	६२०००	६००००	५००००
३०	साधवीयोंकीसंख्या	६१६००	६०६००	६००००
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	६०००	५१००	७३००
३२	वादिओंकीसंख्या.	२४००	२०००	१६००
३३	अवधिज्ञानीसंख्या	३०००	२५००	२६००
३४	केवलीसंख्या.	४३००	३२००	२८००
३५	मनःपर्यवसंख्या.	४०००	३३४०	२५५१
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	८००	६७०	६१०
३७	श्रावकसंख्या.	१९००००	१७९०००	१८४०००
३८	श्राविकासंख्या.	३९३०००	३८१०००	३७२०००
३९	शासनयक्षनाम.	गरुडयक्ष	गंधर्वयक्ष	यक्षेदयक्ष
४०	शासनयक्षिणीनाम	निर्वाणी	बला	धणा
४१	प्रथमगणधरनाम.	चक्रयुद्ध	सांब	कुंभ
४२	प्रथमआर्यानाम.	सुचि	दामिनी	रक्षिता
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	ज्येष्ठवदि १३	वैशाखवदि १	मगशिरशुदि १०
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतरमान.	० ॥ पल्योपम	० । पल्योपम	१०००क्रोडवर्ष
४८	गणनाम.	मानवगण	राक्षसगण	देवगण
४९	योनिनाम.	हस्तियोनि	छागयोनि	हस्तियोनि
५०	मोक्षपरिवार.	९०० परिवार	१००० परिवार	१००० परिवार
५१	भवसंख्या.	बारांभव कथा	तीनभव कथा	तीनभव कथा
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मासनवदिनछ	मासनवदिनपांच	मासनवदिन ८

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते है

	श्रीतीर्थंकरनाम.	१९ श्रीमल्लीनाथ	२० श्रीमुनिसुव्रत	२१ श्रीनमीनाथ
२	चवणतिथि	फागुणशुदि४	श्रावणशुदि १५	आशोशुदि १५
३	विमाननाम	जयंतविमान	अपराजितविमा.	प्राणतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	मथुरानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
५	जन्मतिथि.	मगशिरशुदि ११	ज्येष्ठवदि८	श्रावणवदि८
६	पिताका नाम.	कुंनराजा	सुमित्रराजा	विजयराजा
७	माताका नाम	प्रज्ञावती	पद्मावती	विप्राराणी
८	जन्मनक्षत्र	अश्विनीनक्षत्र	श्रवणनक्षत्र	अश्विनीनक्षत्र
९	जन्मराशि	मेषराशि	मकरराशि	मेषराशि
१०	लांछननाम	कलशका लांछन	कच्छपका लांछन	कमलका लांछन
११	शरीरमान.	पचीशधनुष	वीशधनुष	पदरधनुष
१२	आयुमान	५५०००) वर्ष	३००००)वर्ष	१००००)वर्ष
१३	शरीरका वर्ण	नीलावर्ण	श्यामवर्ण	पीलावर्ण
१४	पदवी राजकी.	कुमार	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण.	नही परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथ दीक्षा	३००) साधु	१०००) साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी	मिथिलानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
१८	दीक्षातप.	तीन उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारनेका स्थान	विश्वसेन	ब्रह्मदत्त	दिन्नकुमार
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	मगशिरशुदि ११	फागणशुदि १२	आषाढवदि ९
२३	छद्मस्थकाल	एक अहोरात्र	इग्यार मास	नव मास
२४	ज्ञाननगरी	मथुरानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
२५	ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	अशोकवृक्ष	चपकवृक्ष	वकुल वृक्ष
२७	ज्ञानतिथि	मगशिरशुदि ११	फागणवदि १२	मगशिरशुदि ११

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं.

२८	गणधरसंख्या.	११)गणधर	१०)गणधर	११)गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या.	१८०००)	१६०००)	१४०००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	४००००)	३८०००)	३६०००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	१५००)	११००)	७००)
३२	वादिओंकीसंख्या.	८००)	६००)	४००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	१५००)	१०००)	१३००)
३४	केवलीसंख्या.	१५००)	१०००)	७००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	१०००)	७५०)	५००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	४००)	३५०)	३००)
३७	श्रावकसंख्या.	१६९०००)	१६४०००)	१५९०००)
३८	श्राविकासंख्या.	३३६०००)	३३९०००)	३१८०००)
३९	शासनयक्षनाम.	गोमेधयक्ष	पार्श्वयक्ष	मातंगयक्ष
४०	शासनयक्षिणीनाम.	अंबिका	पद्मावती	सिद्धायिका
४१	प्रथमगणधरनाम.	वरदत्त	आर्यदिन्न	इंद्रभूति
४२	प्रथमआर्यानाम.	यक्षदिन्ना	पुष्पचूडा	चंदनबाला
४३	मोक्षस्थान.	गिरनार	समेतशिखर	पावापुरी
४४	मोक्षतिथि.	आषाढशुदि ८	श्रावणशुदि ८	कार्त्तिकवदि०)
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	दोउपवास करा
४६	मोक्षआसन.	पद्मासन	काउस्सग्ग	पद्मासन
४७	अंतरमान.	८३७५०)वर्ष	२५०)वर्ष	चर्मजिनेश्वर
४८	गणनाम.	राक्षसगण	राक्षसगण	मानवगण
४९	योनि नाम.	महिषयोनि	मृगयोनि	महिषयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	५३६)परिवार	३३)परिवार	एकाकी आप
५१	भवसंख्या.	नव भव करा	दश भव करा	सत्तावीशभवक०
५२	कुलगोत्रनाम.	हरिवंश	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मासनव दिन ८	मास नव दिन ७	मासनवदिन७॥

इस यंत्रके अनुसार एकैक तीर्थंकरके साथ बावन बावन बोलका संबंध जान लेना इनमेसूं मातादिक कितनेक द्वार जो प्रथम न्यारे लिखे गये है, सो व्युत्पत्तिके कारणसे लिखे है

इन चोवीश तीर्थंकरोंमें नववा, दशवां, इग्यारवां, बारवा, तेरवां, चौदवां अरु पंदरवां, ए सात तीर्थंकरोके निर्वाण हुवा पीछे इन सातोका शासन जो द्वादशाग वाणीरूप शास्त्र अरु साधु तथा साधवी, श्रावक, औ श्राविका, ए चतुर्विध श्रीसंघरूप तीर्थ सो कितनेक काल तांइ प्रवृत्त हो कर पीछेसें व्यवछेद गया, तब तो भारत वर्षमें जैन मतका नामभी न रहा था, तबहीसे अनेक मत मतातर और कुशास्त्रोंकी प्राये प्रवृत्ति भयी सो अबतांइ होतीही चली जाती है, बहुत लोकोने स्वकपोल कल्पित शास्त्र बना करके पूर्व मुनि, वा ऋषि, वा ईश्वरप्रणीत प्रसिद्ध करे है असे तीनसो त्रेशठ मत प्रवृत्त कर दीये अरु आर्य चारो वेद व्यवछेद हो गये अरु नवीन वेद बना लीये उन नवीनोकोंभी कइ वार लोकोने नवी नवी रचनासे बना कर उलट पुलट कर दीये जो कुछ बन बनाके शेष रहे उनकोभी अनेक तरेके भाष्य, टीका, दीपिका रच कर अर्थोकी गड बड कर दीनी सो अबतांइ करतेही चले जाते है, ए सर्व स्वरूप जहा वेदोंकी उत्पत्ति लिखेंगे तहां स्पष्ट करके लिखेंगे वेद जो नाम है सोतो बहुत प्राचीन कालसें है, अरु जिन पुस्तकोंका नाम वेद अब प्रसिद्ध है सो पुस्तक प्राचीन नही है, इसका प्रमाण आगें चलके लिखेगे ॥ इति श्री तपगछीये मुनि श्री बुद्धिविजय शिष्यमुनि आनदविजय आत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे प्रथम परिछेद. सम्पूर्ण ॥ १ ॥

॥ अथ द्वितीय परिछेद प्रारंभ. ॥

अब दूसरे परिछेदमे कुदेवका स्वरुप लिखते है, कुदेव उसकु कहते है जो भगवान् तो नही परंतु लोकोंने अपनी बुद्धिसे परमेश्वरका आरोप कर लीया है सो कुदेवका स्वरूप तो उक्त देव स्वरूपसे विपर्यय सर्व बुद्धिमान् आपही जान लेंगे, परतु विस्तारसे लिखाही जो समझ सके है तिनोंके तांई लिखते है

॥श्लोक॥ ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्रादि, रागाद्यंककलंकिता ॥ निग्रहानुग्रहपरा,

स्तेदेवास्तुर्न मुक्तये ॥ १ ॥ नाटयाट्टहाससंगीता, द्युपप्लवविसंस्थुलाः ॥ लं नयेयुः पदं शांतं, प्रपन्नान्प्राणिनः कथं ॥ २॥ इति योगशास्त्रे ॥ अस्यार्थः ॥ जिस देवके पास स्त्री होवे तथा तिसकी प्रतिमाके पास स्त्री होवे क्युंकि जैसा पुरुष होता है उसकी मूर्त्तिनी प्रायें वैसीही होती है. आज काल सर्व चित्रोमें वैसाही देखनेमें आता है, सो मूर्त्ति द्वारा देवकाजी स्वरूप प्रगट हो जाता है इस कारणें मूर्त्तिद्वारा तथा मतावलंबी पुरुषोंके ग्रंथानुसार समझ लेनां तथा शस्त्र, धनुष्य, चक्र, त्रिशूलादि जिसके पास होवे तथा अक्षसूत्र, जपमाला, आदि शब्दसें कमंमल प्रमुख होवे, फेर कैसा वो देव होवे? राग द्वेषादि दूषणोंका जिनमें चिन्ह होवे अरु स्त्रीकूं जो पास रखेगा वो जरूर कामी और स्त्रीसें नोग करनेवाला होगा, इस्सें अधिक रागी होणेका दूसरा कौनसा चिन्ह है? इसी काम रागके वश होकर कुदेवोंने परस्त्री, स्वस्त्री, बेटी, माता, बहिन, अरु पुत्रकी बधू प्रमुखसें अनेक कामक्रीडा कुचेष्टा करी है.

अब जो पुरुष मात्र होकर परस्त्री गमन करता है उसकूं आज कालके मतावलंबीयोमेंसें कोइनी अच्छा नहीं कहता, तो फेर परमेश्वर हो कर जो परस्त्रीसें काम कुचेष्टा करे, तो उसके कुदेव होनेमें कोइनी बुद्धिमान् शंका नहीं कर सक्ता; जो आपणी स्त्रीसें काम सेवन करता है औ परस्त्रीका त्यागी है उसकूंनी परस्त्रीका त्यागी, धर्मी गृहस्थ, लोक कह सक्ते हैं, परंतु उसको मुनि वा ऋषि वा ईश्वर कनी नहीं कहेंगे क्युंकि जो आपही कामाग्निके कुंममें प्रज्ज्वलित हो रहा है तिसमें कनी ईश्वरता नहीं हो सक्ती, इस हेतुसें जो रागरूप चिन्ह करी संयुक्त है, सो कुदेव हैं. पुनः जो द्वेषके चिन्ह करी संयुक्त है वोनी कुदेव हैं. द्वेषके चिन्ह शस्त्रादि धारण करणां क्युं के जो शस्त्र, धनुष, चक्र, त्रिशूल प्रमुख रखेगा उसने अवश्य किसी वैरीकुं मारणा है, नहींतो शस्त्र रखणेसें क्या प्रयोजन है? तो जिसकूं वैर विरोध लगा हुवा है सो परमेश्वर नहीं हो सक्ता है; जो ढाल वा खड्ग रखेगा वह नयकरी अवश्य संयुक्त होगा अरु जो आप ही नय संयुक्त है तो उसकी सेवा करनेसें हम निर्नय कैसें हो सक्ते है? इस हेतुसें द्वेष संयुक्तकों कौन बुद्धिमान्, परमेश्वर कह सक्ता है? परमेश्वर जो है सो तो बीतराग है अरु जो राग द्वेष करी संयुक्त है सो कुदेव है.

तथा जिसके हाथमें जपमाला है, सो असर्वज्ञताका चिन्ह है जेकर सर्वज्ञ होता तो मालाके मणिकियों बिना भी जपकी संख्या कर सक्ता, अरु जो जपकों करता है, सोभी अपणेसें उच्चका करता है, तो परमेश्वरसे उच्च कौन है जिसका वो जप करता है? इस हेतुसे जो मालासे जप करता है सो कुदेव है.

तथा जो शरीरकूं भस्म लगाता है, औ धूणी तापता है, नंगा होकर कुचेष्टा करता है, भाग, अफीम, धतूरा, मदिरा प्रमुख पीता है तथा मांसादि अशुद्ध आहार करता है; वा हस्ती, ऊट, बेल, गर्दभ प्रमुखकी जो असवारी करता है सोभी कुदेव है, क्युंकि जो शरीरको भस्म लगाता है, अरु जो धूणी तापता है सो किसी वस्तुकी इच्छा वाला है, सो जिसका अभीतक मनोरथ पूरा नही हूआ सो परमेश्वर नही वो तो कुदेव है

अरु जो नशो, अमलकी चीजें खाता पीता है, सो तो नशेके अमलमे आनद और हर्ष ढूढता है, अरु परमेश्वर तो सदा आनद औ सुखरूप है, परमेश्वरमे वो कौनसा आनद नही था जो नशा पीनेसे उसकू मिलता है? इस हेतुसे नशा पीने वाला अरु मांसादि अशुद्ध आहार करने वाला जो है सो कुदेव है

और जो असवारी है सो परजीवोंकूं पीडाका कारण है, अरु परमेश्वर तो दयालु है, सो पर जीवोकूं पीडा केंस देवे? इस हेतुसें जो असवारी करे, सो कुदेव है

और जो कमंडल रखता है, सो शुचि होणेके कारण रखता है अरु परमेश्वर तो सदाही पवित्र है उनकूं कमंडलसे क्या काम है?

यत ॥ श्लोक ॥ स्त्रीसग काममाचष्टे, द्वेषं चायुधसंग्रह ॥ व्यामोह चाक्षसूत्रादि, रशौच च कमण्डलु ॥ १ ॥ अर्थ —स्त्रीका जो संग है सो कामकूं कहता है, शस्त्र जो है सो द्वेषकूं कहता है, जपमाला जो है सो व्यामोहकू कहती है, अरु कमण्डलु जो है सो अशुचिपणेकू कहता है तथा निग्रह जो (जिसके उपर क्रोध करे) तिसकूं वध, बंधन, मारण, रोगी, शोकी, अतीए वियोगी, नरकपात, निर्धन, हीन, दीन, क्षीण करे, सोभी कुदेव है और जो जिसके उपरि अनुग्रह (तुष्टमान) होवे तिसकूं इंद्र, चक्रवर्त्ती, बलदेव, वासुदेव, महामंडलिक, मंडलिकादिकोकों राज्यादि पदवीका वर देवे तथा

सुंदर स्वर्गसदृश स्त्रीका संयोग, पुत्र परिवारादिकोंका संयोग जो करे, सो कु देव है, क्युंकि जो औसा रागी द्वेषी है वो मोक्षके तांइ कभी नहीं हो सक्ता, सो तो भूत, प्रेत, पिशाचादिकोंकी तरे क्रीडाप्रिय देवता मात्र है. औसा देव अपणे सेवकोंकूं कैसें मोक्ष दे सक्ता है? आपही यदि वो रागी, द्वेषी, कर्म परतंत्र है, तो सेवकोंका क्या कार्य सार सक्ता है? इस हेतुसें वोभी कुदेव है.

पुनः कुदेवके लक्षण लिखते हैं. जो नाद, नाटक, हास्य, संगीत, इनके रसमें मग्न है वाद्यंत्र (बाजा) बजाता है अरु आप नृत्य करता है तथा औरोंको नचाता है, आप हसता अरु कूदता है, विषयी रागोंकों गाता है, अरु संगीत बोलता है इत्यादिक मोहकर्मके वश संसारकी चेष्टा करता है, स्वभाव जिसका अस्थिर हो रहा है, जो आपही औसा है तो फेर सेवकोंकूं शांतिपद कैसें प्राप्त कर सक्ता है? जैसें एरंडवृक्ष कल्पवृक्षकी तरें इच्छा नहीं पूर सक्ता, किसी मूढ पुरुषने जो एरंडकूं कल्पवृक्ष मान लीया तो क्या वो कल्पवृक्षका सारा काम दे सक्ता है? औसेंही किसी मिथ्यादृष्टि पुरुषने जो कुदेवकूं परमेश्वर मान लीया तो क्या वो परमेश्वर हो सक्ता है? कभी नहीं हो सक्ता. इसी वास्ते प्रथम परिछेदमें जो लक्षण परमेश्व रके लिखे हैं तिनही लक्षणों वाला परमेश्वर देव है शेष सर्व कुदेव हैं.

प्रश्नः—हमने तो औसा सुण रक्खा है जो जैनी ईश्वरको नहीं मानते, उ नका जो मत है, सो अनीश्वरीय है और तुमने तो प्रथम परिछेदमें कइ जगे अर्हंत भगवंत परमेश्वर लिखा है अरु प्रथम परिछेद तो भगवान्हीके स्व रूपकथनमें समाप्त किया है, यह कैसें संभव हो सक्ता है?

उत्तरः—हे भव्य! जे केइ कहते हैं कि जैनमतावलंबी ईश्वरको नहीं मानते औसा कहणा उनका मिथ्या है उनोंने कभी जैनमतका शास्त्र पढा वा सुना न होगा तथा किसी बुद्धिमान् जैनीका संसर्गभी न करा होगा, जेकर जैन मतका शास्त्र पढा, वा सुना होता तो कभी औसा न कहता, जो जैनी ईश्व रको नहीं मानते, जेकर जैनी ईश्वरको न मानते तो यह जो श्लोक लिखे जाते हैं, वो किसकी स्तुतिके हैं ॥श्लोक॥ त्वामव्ययंविभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं, ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनंगकेतुम् ॥ योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं,ज्ञानस्वरूप ममलं प्रवदंति संतः ॥ १॥ अस्यार्थः—हे जिन! (संतः) सत्पुरुष (त्वां) तेरे प्रति (अव्ययं) अव्यय (प्रवदंति) कहते हैं अव्यय अपचयकूं जो न प्राप्ति होवे

सो द्रव्यार्थ नयके मतसे अव्यय तीनो कालोंमें एक स्वरूप है विजाति –शो
जता है परमेश्वर पणा करी सो (विभु) अथवा विजवति –समर्थ होवे
कर्मोन्मूलन करके सो (विभु) अथवा इन्द्रादिक देवताओका जो स्वामी सो
विभु, सत्पुरुष इसवास्ते तुजकू विभु कहते है पुन कैसे तुजकु? (अचि
त्य) अध्यात्म ज्ञानीजी तुजकू चितवन करनेकू समर्थ नहीं फेर कैसे तुजकू?
(असख्य) गुणाकी सख्या (गिणती) नही कि इतने गुण है जगवान्में
इस हेतुसे सत्पुरुष तुजकू असंख्य कहते है. फेर कैसे तुजकू? (आद्य)
आदिमे जो होवे सर्व लोक व्यवहारके प्रवर्त्तावणेसे, सत तेरेकूं आद्य क
हते है, अथवा अपने तीर्थकी आदि करणेसे आद्य. फेर कैसे तुजकू?
(ब्रह्माण) अनंत आनद करी जो सर्वसे अधिक वृद्धि वाला है सो ब्रह्म,
सत्पुरुष तुजकूं ब्रह्म कहते है. फेर कैसे तुजकू? (ईश्वर) सर्व देवताओमे
ठाकुर कहते हे फेर कैसे तुजकू? (अनत) अनंत ज्ञान दर्शनके योगतें अ
नत अथवा नही है अत जिसका सो अनत कहते है अथवा अनत चारो
करी सयुक्त १ अनतज्ञान, २ अनतबल, ३ अनतसुख, ४ अनतजीवन,
सो अनत कहते है. फेर कैसे तुजकू? (अनंगकेतु) कामदेवकू केतुके उदय
समान नाशकारक सो अनगकेतु कहेते है अथवा नही है अग औदारिक,
वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण शरीर रूपी चिन्ह जिसके सो अनंग
केतु जविष्य नैगमके मत करी कहते है. फेर कैसे तुजकूं? (योगीश्वर)
योगी जो चार ज्ञानके धरनारे तिनोका ईश्वर कहते है फिर कैसे तुजकूं?
(विदितयोगं) जाण्या है सम्यक् ज्ञानादिरूप जिसने अथवा योगो (ध्यानादि
जाण्या है जिसने) अथवा विशेष करके दित खन्दित कीया है कर्मका स
योग जीवके साथ जिसने सो विदितयोग कहते है, फेर कैसे तुजकूं?
(अनेक) ज्ञान करके सर्वगत होनेसे अथवा अनेक सिद्धाके एकत्र रहनेसे
अथवा गुण पर्यायकी अपेक्षा करकें अथवा ऋषनादि व्यक्ति जेदसे अने
क कहते है फिर कैसे तुजकूं? (एकं) अद्वितीय उत्तमोत्तम अथवा जीव
द्रव्यापेक्षया एक कहते हे फेर कैसे तुजकूं? (ज्ञानस्वरूप) ज्ञान क्षायिक
केवल है स्वरूप जिसका सो ज्ञानस्वरूप कहते है फेर कैसे तुजकू? (अ
मल) नहीं है अष्टादश दोषरूप मल जिसके सो अमल कहते है, ए पूर्वो
क्त पंदरा विशेषण ईश्वरके मतातरोमें प्रसिद्ध है

तथा श्लोक "बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्, त्वं शंकरोसि भुवन त्रयशंकरत्वात् ॥ धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्, व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोसि ॥ २ ॥ अर्थः–हे विबुधार्चित! विबुध जो देवताओं करी पूजिता साती सुगतामेसें कोइएक सुगत, तिसकूं बुद्ध कहीयें, सो बुद्ध तुंही है,किस कारणसें? धर्मबुद्धि प्रगट करणेसें फेर तूं शंकर है किस कारणसें? तीन भुवनमें शं जो सुख करे सो शंकर. हे धीर! त्वं धाता (ब्रह्मा है) किस कारणसें? शिव मोक्ष तिसका मार्ग जो ज्ञान, दर्शन,चारित्र रूप तिसकी विधि करणेसें तूं विधाता है. हे भगवन्! तूं व्यक्त प्रगट पुरुषोमें उत्तम है ॥२॥ इत्यादि लाखों श्लोक परमेश्वरकी स्तुतिके है, जे कर जैनी ईश्वरको न मानते तो इन श्लोकोसें उनोने किसकी स्तुति करी है? इस कारणसें जो कहते हैं कि जैनी लोग ईश्वरकूं नहीं मानते, वे प्रत्यक्ष मृषावादी हैं.

प्रश्नः–बहुत अछा हूआ जो मेरे मनका संशय दूर हूआ परंतु एक बातका संशय मेरे मनमें है जो तुमने ईश्वर तो मान्या,परंतु जगत्का कर्त्ता ईश्वर जैनमतमें तुमनें मान्या है वा नहीं?

उत्तरः–हे भव्य! जगत्का कर्त्ता जो ईश्वर सिद्ध हो जावें तो जैनी क्युं नहीं माने? परंतु सर्व वस्तुका कर्त्ता ईश्वर किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं होता.

प्रश्नः–जे कर किसी प्रमाणसें ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता सिद्ध नहीं होता तो (१) नवीन वेदांती, (२) नैयायिक, (३) वैशेषिक, (४) पातांजल, (५) नवीन सांख्य, (६) ईसाइ, (७) मुसलमान प्रमुख अनेक मतावलंबी पुरुष ईश्वरको जगत्का कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता मानते है. क्या इनसेसूं कोइभी ईश्वरकूं जगत्का कर्त्तापणामें निषेध करनेवाला समज वार न भया?

उत्तरः–हे भव्य! (१) जैन, (२) बौद्ध, (३) प्राचीन सांख्य, (४) पूर्वमीमांसाकारक जैमनीय मुनिके संप्रदायी भट्ट प्रभाकर इत्यादिक अनेक मतावलंबीयोमेंसें कोइभी समजवार न भया जो ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता स्थापन करता.

प्रश्नः–जैन बौद्ध अरु प्राचीन सांख्यादि उक्त मतावलंबी सर्व अज्ञानी हूवे हैं इस हेतुसें ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता नहीं मानते?

उत्तरः–नवीन वेदांती, नैयायिक अरु वैशेषिकादि यहभी सर्व अज्ञानी हूवे है, जो इश्वकूंर जगत्का कर्त्ता मानते है.

प्रश्न – ईश्वर जगत्का वा सर्व वस्तुका कर्त्ता है, ऐसें जो मानियें, तो क्या दूषण है ?

उत्तर –ईश्वरकू जगत्का कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता माननेसे बहुत दूषण आते है

प्रश्न –तुम तो अपूर्व वात सुणाते हो हमने तो कदेइ नही सुना जो ईश्वरकूं जगत् कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता माननेमे दूषण आता है? अब तो आपकूं कहना चाहिये जो जगत्का कर्त्ता माननेसे ईश्वरकूं क्या दूषण आता है?

उत्तर –हे भव्य! प्रथम तुम यह बात कहो की तुम कोणसा ईश्वर जगत्का कर्त्ता मानता हो ?

प्रश्न –क्या ईश्वरभी कइक तरेके है, जो आप हमसे ऐसा पूछते हो ?

उत्तर –क्या तुम नही जानते जो दो तरेंके ईश्वर मतावलंबीयोंने माने है ? एक तो जगदुत्पत्तिसे पहिला केवल एकही ईश्वर था जगत्का उपादानादिक कोइभी कारण वा दूसरी वस्तु नही थी, एकही शुद्ध बुद्ध सच्चिदानन्दादि स्वरूप युक्त परमेश्वर था एकैक जीवोंके तो ऐसा ईश्वर, जगत् वा सर्व वस्तुका रचने वाला अभिमत है, और दूसरोने तो (१) जीव, (२) परमाणु, (३) आकाश, (४) काल, (५) दिशादि सामग्री वाला, एतावता एक तो ईश्वर उक्त विशेषण संयुक्त, और दूसरी सामग्री जिससे जगत् रचा जावे, ए दोनो वस्तु अनादि है, एतावता एक तो ईश्वर और दूसरी जगत् उत्पन्न करणेकी सामग्री, ए दोनो किसीने बणाये नही ऐसे माने है, तुमकूं इन दोनो मतोमेसू कोनसा मत सम्मत है ?

पूर्वपक्ष –हमकू तो प्रथम मत सम्मत है, क्यु के वेदादि शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है "एतस्मादात्मनआकाश सम्भूत आकाशाद्वायु वायोरग्नि अग्नेराप. अद्भ्य पृथिवी पृथिव्या ओषधय ओषधिभ्योऽन्न अन्नाद्रेत रेतस पुरुष· सवा एषपुरुषोन्नरसमय " यह तैत्तिरीय शाखाकी श्रुति है,तथा "सदेव सौम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीय तदैक्षत बहु स्या प्रजायेयेति" यह श्रुति छांदोग्य उपनिषद्की है, तथा "नासदासीन्नो सदासीत्तदानीन्नासीद्रजोन व्योमपरोयत् किमावरीव कुहकस्य शर्मण्यम्भ किमासीद्गहनं गभीर' यह श्रुति ऋग्वेदकी है, "आत्मा वा इदमग्रआसीन्नान्यत् किंचिन्मिषत् स ईक्षत लोकान्नुसृजइति" यह ऐत्तरेय ब्राह्मणकी श्रुति है इत्यादि अनेक श्रुतियोसे सिद्ध

होता है, जो सृष्टिसें पहेलें एक केवल ईश्वरही था, न जगत् था और न जगत्का कारण था, एकही ईश्वर शुद्ध स्वरूप था, तथा ईसाइ वा मुसलमान मतवालेभी असे ही मानते हैं. इस हेतुसें हम प्रथम पक्ष मानते हैं.

उत्तरः—हे पूर्वपक्षी ! तुमारा यह कहनां ईश्वरकूं वडा कलंकित करता है?

पूर्वपक्षः—जगत्के रचनेसें ईश्वरकूं क्या कलंक प्राप्त होता है ?

उत्तरपक्षः—प्रथम तो जगत्का उपादान कारण है नहीं, इस हेतुसें जगत् कदेभी उत्पन्न नहीं हो सक्ता, जिसका उपादान कारण नहीं है, सो कार्य कदापि उत्पन्न नहीं हो सक्ता; जैसें गद्धेका सींग.

पूर्वपक्षः—ईश्वरनें अपणी शक्ति, नामांतर कुदरतसें जगत्कूं रचा है ईश्वरकी जो शक्ति है, सोइ उपादान कारन है.

उत्तरपक्षः—ईश्वरकी जो शक्ति है सो ईश्वरसें भिन्न है, वा अभिन्न है? जे कर कहोगे भिन्न है, तो फेर जड है वा चेतन है? जेकर कहोगे जड है, तो फेर नित्य है, वा अनित्य है? जेकर कहोगे नित्य है, तो फेर यह जो तुमारा कहनां था जो सृष्टिसें पहिलें एक केवल ईश्वर था दूसरा कुछभी नहीं था; यह असा हुवाकि जैसें उन्मत्तोंका वचन, अपने ही वचनकुं आपही जूठ करा. जे कर कहोगे अनित्य है, तो फेर उसका उपादान कारण, और ईश्वरकी शक्ति हुइ तिस शक्तिकी उत्पन्न करणे वाली और शक्ति हुई, इसी तरें करतां अनवस्थादूषण आता है, जे कर कहोगे चेतन है, तो फिर नित्य है, वा अनित्य है? दोनोही पक्षोमें पूर्वोक्त अपरापरस्ववचनव्याहत अरु अनवस्था दूषण है, जेकर कहोगे ईश्वर शक्ति ईश्वरसें अभिन्न है, तो सर्व बस्तुकों ईश्वरही कहनां चाहियें, जब सर्व बस्तु ईश्वरही हो गइ, तो फेर अछा और बुरा, नरक और स्वर्ग, पुण्य और पाप, धर्म और अधर्म, ऊंच नीच, रंक राजा, सुशील और दुःशील, राजा और प्रजा, चोर और साध, (संत) सुखी और दुःखी. इत्यादिक सर्व कुछ ईश्वरही आप बना, तब तो ईश्वरने जगत् क्या रचा, आपही आपणा सत्तानाश कर लीया, ए प्रथम कलंक ईश्वरकूं लगता है. (२) तथा जब ईश्वर आपही सब कुछ बन गया, तो फेर वेदादिक शास्त्र क्युं बनाये? अरु उनके पढणेसें क्या फल हुआ? ए दूसरा कलंक. (३) तथा जब वेदादिक बणाये तब आपणे आपकूं ज्ञानी होणे वास्ते पहिलें तो अज्ञानी था ए तीसरा कलंक. (४) तथा शुद्धसें अ

शुद्ध बना, जो जगत्रूप होणेकी मेहनत करी, सो निष्फल हुई, ए चौथा कलंक (५) कोइ वस्तु जगत्में अच्छी वा बूरी नही ए पांचवा कलंक. (६) क्युं आपणे आपकूं संकटमे माला? ए छठा कलंक इत्यादि अनेक कलंक तुम ईश्वरकूं लगाते हो

पूर्वपक्ष—ईश्वर सर्व शक्तिमान् है, इस हेतुसे ईश्वर, विनाही उपादान कारणसें जगत् रच सक्ता है

उत्तरपक्ष—यह जो तुमारा कहना है सो प्यारी भार्या, वा मित्र मानेगा परंतु प्रेक्षावान् कोइभी नही मानेगा, क्युंकि इस तुमारे कहनेमे कोइभी प्रमाण नही परंतु जिसका उपादान कारण नही वो कार्य कदेभी न हो सक्ता जैसे गधेका सींग, ऐसा प्रमाण तुमारे कहनेकूं बाधने वाला तो है, परंतु साधने वाला कोइभी नही, जेकर हठ करके स्वकपोलकल्पितहीकूं मानोगे तो परीक्षा वालोकी पंक्तिमे कदेभी नही गिने जाउगे तथा इस तुमारे कहनेमें इतरेतराश्रय दूषणरूप वज्रका प्रहार पडता है, यथा सृष्टिसे पहिले उपादानादि सामग्री रहित केवल शुद्ध, एक ईश्वर सिद्ध हो जावे तो सर्वशक्तिमान् सिद्ध होवे, जब सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे तो सृष्टिसे पहिलें उपादानादि सामग्री रहित केवल शुद्ध एक ईश्वर सिद्ध होवे, इन दोनोमेसूं जब तक एक सिद्ध न होवे तब तक दूसरा कभी सिद्ध नही होता, तथा इस तुमारे कहनेमे चक्रकदूषण होता है, सृष्टिका कर्त्ता सिद्ध होवे, तदा सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे. जब सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे तब सृष्टिसे पहिलें सामग्री रहित केवल शुद्ध एक ईश्वर सिद्ध होवे, तब सृष्टिकर्त्ता सिद्ध होवे ऐसे प्रगट, चक्रक दूषण है

पूर्वपक्ष—ईश्वरतो प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध है, फेर तुम उसकू सृष्टिकर्त्ता क्यु नही मानते?

उत्तरपक्ष—जे कर ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता प्रत्यक्ष प्रमाणसें सिद्ध होवे, तो किसीकूभी अमान्य न होवे, औ तुमारा हमारा ईश्वर विषयिक विवाद कभी नही होवे, क्युकि प्रत्यक्षमे विवाद नही होता है, तथा ईश्वरका प्रत्यक्ष देखणाभी तुमारे वेद मंत्रसें विरुद्ध है तथा च वेदमंत्र ॥ अपाणिपादो जवनोग्रहीता, पश्यत्यचक्षुः शृणोत्यकर्णः ॥ स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता,

तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ इस मंत्रसें कहता है ईश्वरकों जानने वाला कोइभी नहीं.

पूर्वपक्षः—बिना कर्त्ताके जगत् कैसें हो गया? इस अनुमान प्रमाणसें ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता सिद्ध होता है, सो तुम क्युं नहीं मानते?

उत्तरपक्षः—इस तुमारे अनुमानकूं दूसरे ईश्वरपक्षमें खंडन करेंगे, अैसे उक्त प्रकारसें एक केवल उपादानादि सामग्री रहित, अैसे सृष्टिसें पहिलें परमेश्वर नहीं सिद्ध हुआ, तोभी हम आगें चलते हैं कि जब ईश्वरने इन जीवोंकूं रचे थे तब (१) निर्मल रचे थे? (२) पुण्य वाले रचे थे? (३) पाप वाले रचे थे? (४) मिश्रित पुण्य पाप अर्धो अर्द्ध वाले रचे थे? (५) पुण्य थोडा पापाधिक अैसें रचे थें? (६) किंवा पुण्याधिक पाप थोडे वाले रचे थे? जे कर प्रथम पक्ष ग्रहण करोगे तो जगत्में सर्व जीव निर्मलही चाहियें, फेर वेदादि शास्त्रों द्वारा उनकूं उपदेश करना वृथा है, अरु वेदादि शास्त्रोंका कर्त्ताभी मूढ सिद्ध हो जावेगा, क्युंकि जब आगेंही जीव निर्मल हैं तो उसके वास्ते शास्त्र काहेकूं रचने थे, जो वस्त्र निर्मल होता है तिसकूं कोइभी बुद्धिमान् धोता नहीं, जे कर धोवे तो महामूढ है, इस कारणसें जो निर्मल जीवोंके उपदेश निमित्त शास्त्र रचे सोभी मूढ है.

पूर्वपक्षः—ईश्वरनेंतो जीवोंकूं शुद्ध निर्मल एतावता अच्छाही बनाया था, परंतु जीवोनें अपणी इच्छासें अच्छा वा बुरा (भूंडा) काम कर लीया है, इसमें ईश्वरकूं कुछ दोष नहीं?

उत्तर पक्षः—जब ईश्वरने जीवोंमें अच्छा वा बुरा काम करणेकी शक्ति नहीं रची, तो फेर जीवोंकूं पुण्य वा पाप करणेकी शक्ति कहांसें आई?

पूर्वपक्षः—शक्तियां तो जीवमें सर्व ईश्वरनेही रचियां है. परंतु जीवोंकूं बुरा काम करणेमें प्रवृत्त नहीं करता, बुरे कामोंमें जीव आपही प्रवृत्त हो जाता है,जैसें कोइ गृहस्थने अपणे प्रिय पुत्र बालककूं खेलणे वास्ते एक खिलोना दीया है, परंतु जो वो बालक, उस खिलोनेसें आपणी आंख निकाल लेवे तो माता पिताका क्या दूषण है? तैसेंही जीवोंकूं ईश्वरने जो हाथ, पग, प्रमुख वस्तु दइ है, सो नित्य केवल धर्म करणेके कारणे दइ हैं. पीछें जो जीव उनसें अपणी इच्छासें पाप कर लेवे तो इसमें ईश्वरकूं क्या दूषण है?

उत्तरपक्ष –हे भव्य ! यह जो तुमने बालकका दृष्टांत दीया सो यथा र्थ नहीं, क्युंकि बालकके माता पिताकूं यह ज्ञान नहीं है, जो हम इस बालकके खेलणे वास्ते खिलोना देते है, सो हमारा बालक इस खिलो नेसे अपणी आंख फोड लेगा जेकर बालकके माता पिताकूं यह ज्ञान होता जो हमारा बालक, इस खिलोनेसे अपणी आंख फोड लेगा तो माता पिता कभी उसके हाथमे खिलोना न देते, जे कर जान करके देवे तो वो माता पिता नहीं किंतु ? उस बालकके परम शत्रु हे, इसीतरे ईश्वर, माता पिता तुल्य है अरु तुम हम उसके बालक है,जे कर ईश्वर जानता था जो मै इ सकूं रचा इसके ताइ हाथ, पग, मन, इंद्रियादि सामग्री दीनी है,इस जीवने इस सामग्रीसे बहुत पाप करकें नरक जाना है तो फेर ईश्वरने उस जीवकूं क्युं रचा ? जे कर कहोगे ईश्वर यह बात नहीं जानता था जो मेरी धर्मकरणेकी दीनी हुइ सामग्रीसे पाप करके यह जीव नरक जावेगा, तो फेर ईश्वर तु मारे कहनेहीसे अज्ञानी असर्वज्ञ सिद्ध होता है. जेकर कहोगे ईश्वर जान ता था जो यह जीव मेरी देइ हुइ सामग्रीसे पाप करके नरकें जायगा तो फेर हमारा रचने वाला ईश्वर, परम शत्रु हुआ के नहीं ? विना प्रयोजन रक जीवोंकूं सामग्रीद्वारा पाप करायके क्यु उनकूं नरकमे माले ? जब साम ग्रीद्वारा प्रथम पाप कराना और पीछें नरकपात करनेका दंम देना इस तुमारे कहनेसे ईश्वरसे अधिक अन्यायी कोइ नहीं क्युं के उस जीवकूं प्रथम तो रचा, फेर नरकमे माला, बस येही तुमने ईश्वरकूं अन्यायी, असर्वज्ञ, निर्द यी, अज्ञानी, वृथा मेहनतीरूप कलंक दीने, इस वास्ते निर्मल जीव ईश्वर ने नहीं रचा ए प्रथम पक्षोत्तर

अथ दूसरा पक्षोत्तर –जेकर कहोगे ईश्वरने पुण्य वालेही जीव रचे है तो यहभी कहना तुमारा मिथ्या है, क्युंकि जब पुण्यही वाले सर्व जीव थे तो गर्भमेंही अंधे, लगडे, लूले, बहिरे होना, भूंमा रूप,नीच वा निर्धन के कुलमें उत्पन्न होना, जाव जीव दुःखी रहना, खाने पीनेको पूरा न मि लना, महा कष्ट कारक मेहनत करकें पेट भरना,यह पुण्यके उदयसें नहीं हो सके, अरु विनाही करे पुण्यके जीवोकूं ईश्वरने पुण्य क्यु लगा दीया ? जेकर विनाही करया जीवोंकूं ईश्वरने पुण्य लगा दीया तो ऐसे विनाही धर्म कर्या जीवोकूं स्वर्ग तथा मोक्ष क्यु नहीं पहूचाय देता ? शास्त्रोप

देश करायकें, नूखें मारकें, तृष्णा बुडायकें, राग द्वेष मिटायकें, घर बार बुडायकें, साधु बनायकें, टुकडे मंगायकें, दया, दम, दान, सत्यवचन, चोरीका त्याग, स्त्रीका त्याग, इत्यादिक अनेक साधन करायकें, पीछे स्वर्ग मोक्षमें पहुंचानां, यह संकट ईश्वरने व्यर्थ खडा करकें क्युं जीवोंकूं दुःख दीना इस बातसें तो ऐसा प्रतीत होता है, जो ईश्वरकूं कुछनी समझ नहीं. इति.

अथ तृतीय पक्षोत्तरः—जे कर कहोगे ईश्वरने पाप संयुक्त ही जीव रचे हैं, तो फेर बिनाही जीवोंके कस्यां पाप लगा दीया तो फेर जब ईश्वरने ही हमारा सत्तानाश करा, तो हम किस आगें विनति करें जो विना गुनाह हमकूं यह ईश्वर पाप लगाता हे, तुम इसकूं मने करो, जो विनांही करे पाप लगा देवे, ऐसें अन्यायी ईश्वरकातो कनी नामही न लेनां चाहियें. तथा जेकर ईश्वरने पाप संयुक्तही सर्व जीव रचे है, तो राजा, आमात्य (मंत्री) श्रेष्ठ, सेनापति, धनवानोके घरमें उत्पन्न होनां, नीरोगकाय, सुंदर रूप, सुंदर संहनन, घरमें आदर, वाहिर यशोकीर्त्ति, पंचिंद्रियविषय नोग, इत्यादिक सामग्री पापसें कदेइ संनव नहीं होती. इस वास्ते जीवोंकूं केवल पापवान् ईश्वरने नहीं रचे ॥ इति तृतीय पक्षोत्तर ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ पक्षोत्तरः—जेकर कहोगे अर्द्धोऽर्द्ध पुण्य पाप वाले जीव ईश्वरने रचे हैं यह पक्षनी अछा नहीं, क्युंकि आधे सुखी आधे दुःखी ऐसे नी सर्व जीव देखनेमें नहीं आते ॥ इति चतुर्थपक्षोत्तर ॥

अथ पंचमपक्षोत्तरः—पांचवा पक्ष सोनी ठीक नहीं, सुख थोडा और दुःख बहुत ऐसेनी सर्व जीव देखणेमें नहीं आते, परंतु सुख बहुत अरु दुःख अल्प, ऐसें बहुत जीव देखणेमें आते हैं ॥ इति पंचमपक्षोत्तर ॥

अथ षष्ठ पक्षोत्तरः—छठा पक्षनी समीचीन नहीं, सुख बहुत अरु दुःख थोडा ऐसेंनी सर्व जीव देखणेमें नहीं आते है, दुःख बहुत अरु सुख अल्प, ऐसे बहुत जीव देखणेमें आते हैं. इन हेतुओंसें ईश्वर जीवोंकूं किसी व्यवस्था वाला नहीं रच सक्ता, तो फेर ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता क्युं कर सिद्ध हो सक्ता है? कनी नहीं हो सक्ता. तथा जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी तब तो ईश्वरकूं क्या दुःख था? अरु जब सृष्टि रची तब क्या सुख हुआ.

पूर्वपक्षः—ईश्वर तो सदाही परम सुखी है, क्या ईश्वरमें कुछ न्यूनता

है जो उस न्यूनताके पूर्ण करणेकूं सृष्टि रचे ? वो तो जगतमें अपणी ईश्वरता प्रगट करणेकूं सृष्टि रचता है

उत्तरपक्ष—जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी तब तो ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट नहीं थी अरु जब सृष्टि रची तब ईश्वरता प्रगट नइ, तो प्रथम जब ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट नही नइ थी तब तो ईश्वर वडा उदास अरु असंपूर्ण मनोरथ ईश्वरताको प्रगट करणेमें विह्वल था इस हेतुसे अवश्य ईश्वरकूं दुःख होना चाहिये जब ईश्वर सृष्टिसे पहिलें अैसा दुःखी था तब तो खाली क्यु बैठ रहा था ? इस सृष्टिसें पहिले अपर सृष्टि क्यु नही रचकें अपणा दुःख दूर करा ?

पूर्वपक्ष—ईश्वरने जो सृष्टि रची है सो जीवोसे धर्म करकें उनकूं अनंत सुख देगा इस परोपकारके वास्ते ईश्वरने सृष्टि रची है

उत्तरपक्ष—धर्म करायकें जीवोकू सुख देना यह तो तुमारे कहनेसें परोपकार हुआ परंतु जो पाप करकें नरक गयें उनके उपरि क्या उपकार करा ? उनकूं दुःखी करणेसे क्या ईश्वर परोपकारी हो सक्ता है ?

पूर्वपक्ष—उनकूं नरकसे निकालके फेर स्वर्गमे स्थापन करेगा.

उत्तरपक्ष—तो फेर प्रथमही नरकमे क्युं जाने दीये ?

पूर्वपक्ष—ईश्वरही सर्व कुछ पुण्य पापादि कराता है, जीवके अधीन कुछनी नहीं. ईश्वर जो चाहता है सो कराता है, जैसे काष्ठकी पुतलीकूं बाजीगर जैसें चाहता है, तैसे नचाता है, पुतलीके कुछ अधीन नही

उत्तरपक्ष—जब जीवके कुछ अधीन नही, तो जीवकूं अछे बुरेका फलनी नही चाहिये क्युं के जो कोइ सिरदार किसी नौकरकूं कहे जो तुम यह काम करो, फेर नौकर सिरदारके कहनेसे वो काम करे, अरु वो काम अछा वा बुरा है तो क्या फेर वो सिरदार उस नौकरकू कुछ दम दे सक्ता? कुछनी नही दे सक्ता अैसेही ईश्वरकी आज्ञासे जब जीवने पुण्य वा पाप करे, तो फेर पुण्य पापका फल जीवकू नहीं चाहियें. जब पुण्य पाप जीवके करे न हुए तब स्वर्ग अरु नरक एनी जीवकू न होगे, तब जीवकू नरक, स्वर्ग, तिर्यग् अरु मनुष्य, ए चार गतिनी न होगी जब चार गति न होवेगी, तब ससारनी न होगा, जब ससार न होगा तब तो वेद, पुराण, कुरान, तौरे, तलबूर, इंजील प्रमुख शास्त्रनी न होगे जब शास्त्र न

होंगे तब शास्त्रका उपदेशकभी न होगा जब शास्त्रका उपदेशकभी नहीं तो ईश्वरभी नहीं. जब ईश्वरही नहीं तो फेर सर्व शून्यता सिद्ध भइ. ए कलंक क्युंकर मिटेगा?

पूर्वपक्षः—यह जो जगत् है सो बाजीगरकी बाजीवत् है, अरु ईश्वर इसका बाजीगर है, सो इस जगत्कूं रच कर ईश्वर इस खेलसें खेलता, (क्रीडा करता) है, नरक, स्वर्ग, पुण्य, औ पाप कुछ नहीं.

उत्तरपक्षः—जब ईश्वरने क्रीडाहीके वास्ते जगत् रचा, तो क्रीडाहीमात्र फल होनां चाहियें, परंतु इस जगत्में तो कुष्टी, रोगी, शोकी, धनहीन, बलहीन, महादुःखी, महाप्रलाप कर रहे हैं, जिनकूं देखनेसें दयाके वश होकर हमारे रोंघटे (रोम) खडे होते हैं, तो क्या फेर ईश्वरकूं इन दुःखीयांकूं देख कर दया नहीं आती? जब ईश्वरकूं दया नहीं तो फेर निर्दयीभी कदेइ ईश्वर हो सक्ता है? अरु जो क्रीडा करने वाला है. सो बालककी तरें रागी, द्वेषी, अज्ञ होता है, जब राग द्वेष है, तो उसमें सर्व दूषण हैं. जब आपही औगुणोंसें भरा है, तो वो ईश्वर काहेका? वोतो संसारी जीव है. अरु जब राग, द्वेष वाला होवेगा तब सर्वज्ञ कदापि न होवेगा, जब सर्वज्ञ नहीं तो उसकूं ईश्वर कौन कह सक्ता है?

पूर्वपक्षः—जीवोंके करे हूये पुण्य पापके अनुसार ईश्वर दंम देता है इस हेतुसें ईश्वरकूं क्या दोष है? जैसा जिसने कीया,वैसाही उसकूं फल दीया.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेसें यह संसार अनादि सिद्ध हो गया, अरु ईश्वर कर्त्ता नहीं, ऐसा सिद्ध हुआ. वाह रे मित्र! तेने अपणे हाथसें अपणां मुंह काला किया, क्युं के जे जीव अब हैं, अरु जो कुछ इनकूं इहां फल मिला है, सो पूर्व जन्मसें करा हुआ ठहरा अरु जो पूर्व जन्म था उसमें जो दुःख सुख जीवकूं मिला था, वो उससें पूर्व जन्ममें करा था, इसी तरें पूर्व पूर्व जन्ममें दुःख सुख करणां अरु उत्तरोत्तर जन्ममें सुख दुःखका भोगणां इसी तरें संसार अनादि सिद्ध होता है. अब शोचो कि जगत्का कर्त्ता ईश्वर कैसें सिद्ध हूआ?

पूर्वपक्षः—हम तो एकही परम ब्रह्म पारमार्थिक सद्रूप मानते हैं.

उत्तरपक्षः—जे कर एकही परम ब्रह्म सद्रूप है, तो फेर यह जो सरल,

रसाल, प्रियाल, हताल, ताल, तमाल, प्रवाल प्रमुख पदार्थ अग्रगामि पणे करकें जो प्रतीत होते है, उ क्युं कर सत् स्वरूप नहीं है?

पूर्वपक्ष –ए पूर्वोक्त जो पदार्थ प्रतीत होते है, वे सर्व मिथ्या है तथा च अनुमान प्रपच मिथ्या है, प्रतीत होणेसे जो ऐसा है, सो ऐसा है. यथा सीप, चांदी रूप, तैसाही यह प्रपंच है, इस अनुमानसे प्रपच मिथ्यारूप है, अरु एक ब्रह्मही पारमार्थिक सद्रूप है

उत्तरपक्ष–हे पूर्वपक्षी! इस अनुमानके कहनेसें तूं तीक्ष्ण बुद्धिमान् नही है, सोइ वात कहते है, यह जो प्रपंच तुमने मिथ्यारूप माना है सो मिथ्या तीन तरेका होता है, एक तो अत्यंत असत् रूप, अरु दूसरा है तो कुछ और, अरु प्रतीति होवे औरतरे अरु तीसरा अनिर्वाच्य इन ती नोमेसूं कौनसा मिथ्यारूप प्रपचकू माना है?

पूर्वपक्ष –इन तीनों पक्षोमेसे प्रथम दो पक्ष तो मेरे स्वीकारही नही इस कारण मै तो तीसरा अनिर्वाच्य पक्ष मानता हू, सो यह प्रपच अनि र्वाच्य मिथ्यारूप है

उत्तरपक्ष–प्रथम तो तुम यह कहो कि अनिर्वाच्य क्या वस्तु है? ए तावता तुम अनिर्वाच्य किस वस्तुकूं कहते हो? (१) क्या वस्तुका कहने वाला शब्द नही है? (२) वा शब्दका निमित्त नहीं है? प्रथम विकल्प तो कल्पनाही करने योग्य नही है? यह सरल है, यह रसाल है, ऐसा शब्द तो प्रत्यक्ष सिद्ध है अथ दूसरा पक्ष है तो शब्दका निमित्त ज्ञान नही है? वा पदार्थ नही है? प्रथम पक्ष तो समीचीन नही. सरल, रसाल, ताल, तमाल प्रमुखका ज्ञान तो प्राणी प्राणी प्रत्ये प्रतीत है, सर्व जीव देखने वाले जानते है जो सरल, रसाल, ताल तमाल प्रमुखका ज्ञान हमकू है अथ दूसरा पक्ष तो पदार्थ, भावरूप नही है? कि अभावरूप नही है? जे कर कहोगे पदार्थ भावरूप नही अरु प्रतीत होता है, तो तुमकू विपरीता ख्याति मानणी पडी अरु अद्वैतवादीयोके मतमे विपरीताख्याति मानणी महा दूषण है अथ दूसरा पक्ष जो पदार्थ अभावरुप नही तो भावरूप सिद्ध भया, तब तो सत् ख्याति मानणी पडी अरु जब अद्वैतवाद मता गीकार कीया, अरु सतख्याति मानणी पडी, तब तो सत् ख्यातिके माननेसे अद्वैत मतकी जडकू कूहाडेसे काटा कदापि अद्वैतमत नहीं सिद्ध होगा.

पूर्वपक्षः—भावरूप तथा अभावरूप ए दोनोही प्रकारें वस्तु नहीं.

उत्तरपक्षः—हम तुमकूं पूछते है जो भाव अरु अभाव इन दोनोका अर्थ जो लौकिकमें प्रसिद्ध है वही तुमने माना है? वा इससें विपरीत और तरें का अर्थ, भाव अरु अभावका तुमने माना है? जे कर प्रथम पक्ष मानोगे तो जहां भावका निषेध करो गे तब तो तहां अवश्यमेव अभाव कहनां पडेगा, अरु जहां अभावका निषेध करोगे, तहां अवश्यमेव भाव कहनां पडे गा, जो परस्पर विरोधी है, तिसमें एकका निषेध करोगे तो दूसरेकी विधि अवश्य कहनी पडेगी. अनिर्वाच्यता तो जडामूलसें नष्ट हो गइ. अथ दूस रा पक्षः—तब तो हमारी कुछ हानी नहीं, क्युं के अलौकिक एतावता तुमा रे मनःकल्पित शब्द अरु शब्दका निमित्त जो नष्ट हो जावेगा, तो लौकिक शब्द अरु लौकिक शब्दका निमित्त कदापि नष्ट नहीं होगा, तो फेर अनि र्वाच्य प्रपंच किस तरें सिद्ध होगा? जब अनिर्वाच्य न सिद्ध हुआ, तो प्रपंच मिथ्या कैसें सिद्ध हुआ? तब एकही अद्वैत ब्रह्म कैसें सिद्ध हुआ?

पूर्वपक्षः—हम तों जो प्रतीत न होवे, उसकूं अनिर्वाच्य कहते हैं.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेमें तो बहुत विरोध आवे है, जे कर प्रपं च प्रतीत नहीं होता तो तुमने अपणे प्रथम अनुमानसें जो प्रपंचकों प्र तीयमान हेतु स्वरूप पणे क्युं कर ग्रहण कीया? अरु प्रपंचकूं अनुमान करती वेलां धर्मीपणे क्युं कर ग्रहण कीया? जे कर कहोगे धर्मी पणे वा प्रतीयमान हेतुपणे प्रपंचकूं ग्रहण करणेमें क्या दूषण है? तो फेर तुमने यह जो उपर प्रतिज्ञा करी थी, कि हम तो जो प्रतीत नहीं होवे, उसकूं अनिर्वाच्य कहते है, तो फेर प्रपंच अनिर्वाच्य कैसें सिद्ध हुआ? जब प्रपंच अनिर्वाच्य नहीं तब या तो भावरूप प्रपंच सिद्ध होगा, या तो अभावरूप प्रपंच सिद्ध होगा. इन दोनोही पक्षोमें एकरूप प्रपंचके माननेसें पूर्वोक्त विपरीतारख्याति तथा सत्ख्याति रूप दोनो दूषण फेर तु मारें गलेमें रस्सी भालते हैं, अब भाग कर कहां जावोगे? हम फेर तुम कों पूछते है कि यह जो तुम इस प्रपंचकूं अनिर्वाच्य मानते हो, सो प्र त्यक्ष प्रमाणसें मानते हो? वा अनुमान प्रमाणसें मानते हो? प्रत्यक्ष प्रमाण तो इस प्रपंचकूं सत्स्वरूपही सिद्ध करता है, जैसा जैसा पदार्थ है, तैसा तैसाही प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है. अरु प्रपंच जो है सो पर

स्पर (आपसमें) न्यारी न्यारी जो वस्तु है सो अपणे अपणे स्वरूपमें भाव रूप है अरु दूसरे पदार्थके स्वरूपकी अपेक्षासे अभाव रूप है, इस इतरे तर विविक्त वस्तुओंकूंही प्रपंच रूप माना है, तो फेर प्रत्यक्ष प्रमाण प्रपंचकू अनिर्वाच्य कैसे सिद्ध कर सक्ता है?

पूर्वपक्ष–पूर्वोक्त जो हमारा पक्ष है, तिसकूं प्रत्यक्ष प्रतिक्षेप नही कर सक्ता, क्यु कि प्रत्यक्ष तो विधायकही है, जे कर प्रत्यक्ष इतर वस्तुमे इतर वस्तुके स्वरूपका निषेध करे, तो हमारे पक्षकूं बाधक ठहरे, परतु प्रत्यक्ष प्रमाण तो ऐसा है नही, प्रत्यक्ष प्रमाणतें इतर वस्तुमे इतर वस्तुके स्वरूप निषेध करणेकुं कुछ है

उत्तरपक्ष–यहभी तुमारा कहनां असत्य है अन्य वस्तुके स्वरूपके विना निषेध्या वस्तुके यथार्थ स्वरूपका कदापि बोध न होगा, पीतादिक वर्णो करी रहित जब बोध होगा, तबही नील ऐसे रूपका बोध होगा तथा जब प्रत्यक्ष प्रमाण करी यथार्थ वस्तु स्वरूप ग्रहण कीया जायगा, तब तो अवश्य अपरवस्तुके स्वरूपका निषेधभी तिहा जाना जायगा जे कर अन्य वस्तुके निषेधकूं अन्य वस्तुमे प्रत्यक्ष न जानेगा तो तिस वस्तुके विधि स्वरूपकूंभी प्रत्यक्ष न जान सकेगा, केवल जो वस्तुके स्वरूपकू ग्रहण करणा है, सोइ अन्य वस्तुके स्वरूपका निषेध करना है. जब प्रत्यक्ष प्रमाण, विधि अरु निषेध दोनोहीकू ग्रहण करता है, तब तो प्रपच मिथ्यारूप कदापि सिद्ध न होगा, जब प्रपच मिथ्यारूप प्रत्यक्ष प्रमाणसे न सिद्ध भया, तब तो परम ब्रह्मरूप एकही अद्वैत तत्त्व कैसे सिद्ध भया? तथा जो तुम प्रत्यक्षकूं नियम करकें विधायकही मानोगे, तब तो विद्यावत् अविद्याकीभी विधि तुमकू मानणी पडेगी सो यह ब्रह्म अविद्यारहित प्रत्यक्ष प्रमाणसे ग्रहण कीया, तब तो अविद्याभी प्रत्यक्षसे निषेध ग्रहण होगी फेर जो तुमारा यह कहना है की 'प्रत्यक्ष जो है, सो विधायकही है, परतु निषेधक नहीं' ऐसे वचन कहने वालेकू क्यु न उन्मत्त कहना चाहिये? अब जो आगें अनुमान कहेंगे, तिस करकेंभी पूर्वोक्त तेरे अनुमानका पक्ष बाधित है, सो अनुमान हमारा ऐसे है, प्रपंच मिथ्या नहीं है, असत्‌सें विलक्षण होणेसें जो असत्‌सें विलक्षण है, सो ऐसा है. यथा आत्मा तैसा ही यह प्रपंच है, तथा प्रतीयमान जो तुमा

र हेतु है, सो ब्रह्मात्माके साथ व्यभिचारी है, जैसें ब्रह्मात्मा प्रतीयमान तो है, परंतु मिथ्यारूप नहीं है, जे कर कहोगे कि ब्रह्मात्मा अप्रतीयमान है तो बचनगोचर न होगा, जब वचनगोचर नहीं तब तो तुमकूं गुंगे बनना ठीक है, क्युं कि ब्रह्म बिना अपर तो कुछ है नहीं, अरु जो ब्रह्मात्मा है, सो प्रतीयमान नहीं, तो फेर तुमकूं हम गुंगेके बिना और क्या कहे? प्रथम अनुमानमें जो तुमने सीपका दृष्टांत दीया था, सो साध्य विकल है, क्युं कि जो सीप है सोभी प्रपंचके अंतर्गत है, अरु तुम तो प्रपंचकूं मिथ्यारूप सिद्ध करा चाहते हो, यह कभी नहीं हो सक्ता है, जो साध्य होवे सोइ दृष्टांतमें कहा जावे, जब सीपकाभी अभीतक सत् असत् पणा सिद्ध नहीं, तो उसकूं दृष्टांतमें काहेकूं लानां? तथा हम तुमकूं पूछते है कि यह जो तुमने प्रथम अनुमान, प्रपंचके मिथ्या साधनेकूं कीना था सो अनुमान, इस प्रपंचसें भिन्न है वा अभिन्न है? जे कर कहोगे भिन्न है, तो फेर सत्य है, वा असत्य है? जे कर कहोगे सत्य है, तो तिस अनुमान सत्यकी तरें प्रपंचभी सत्यही स्वरूप है, जे कर कहोगे असत्य स्वरूप है, तो फेर क्या शून्य है? वा अन्यथा ख्यात है? वा अनिर्वचनीय है? प्रथम दोनो पक्ष तो कदापि साध्यके साधक नहीं है, मनुष्यके शृंगकी तरें, तथा सीपके रूपेकी तरें. अरु तीसरा जो अनिर्वचनीय पक्ष है तिसका तो संभवही है नहीं; सो अपणे साध्यकूं कैसें साधेगा?

पूर्वपक्षः—हमारा जो अनुमान है, सो व्यवहार सत्य है, इस कारणें असत्य नहीं, फेर आपणे साध्यकूं क्युं कर नहीं साध्य सक्ता? अपितु साध्यही सक्ता है.

उत्तरपक्षः—हम तुमसें पूछते हैं कि जो यह व्यवहारसत्यका क्या स्वरूप है? व्यवहृतीति (व्यवहारः) असें जो व्युत्पत्ति करियें तब तो ज्ञानकाही नाम व्यवहार ठहरा, ज्ञानसें जो सत्य है, सो पारमार्थिकही है, इस पक्षमें सत् ख्यातिरूप प्रपंच सिद्ध हुवा. जब प्रपंच सत् सिद्ध हुवा, तब तो एकही परम ब्रह्म सद्रूप अद्वैततत्त्व किसी तरहभी सिद्ध नहीं हो सक्ता, जे कर कहोगे व्यवहार नाम शब्दका सत्य है, तो फेर हम तुमकूं पूछते है जो व्यवहार नाम शब्दका है, तो फेर शब्द, स्वरूपसें सत्य है?

वा असत्य है? जे कर कहोगे शब्द सत्स्वरूप है तो शब्दकी तरे प्रपंचन्नी सत् स्वरूप है, जे कर कहोगे असत्स्वरूप शब्द है, तो फेर ब्रह्मादि शब्दसे कहे हुये, कैसें सत् स्वरूप हो सकेंगे? क्युं कि जो आपही असत् स्वरूप है, सो परकी व्यवस्था करणे वा कहनेका हेतु कन्नी न हो सक्ता.

पूर्वपक्ष—जैसे खोटा रूपक सत्य रूपकके क्रय विक्रयादिक व्यवहारका जनक होणेसें सत्य रूपक माना जाता है, तैसे ही अनुमान हमारा यद्यपि असत् स्वरूप है तोन्नी जगत्में सत् व्यवहार करके प्रवर्त्तक होणेसे व्यवहार सत् है. इस वास्ते आपणे साध्यका साधक है

उत्तरपक्ष—हे नव्य! इस तुमारे कहनेसे तुमारा अनुमान पारमार्थिक असत् स्वरूप है, फेर तो जो दूषण असत् पक्षमे दीने है, सो सर्व इहा पडेंगे, जे कर कहोगे कि हम प्रपचमे अन्नेद अनुमानकू मानते है, तब तो प्रपचकी तरे अनुमानन्नी मिथ्यारूप ठहरा, तब तो आपणे साध्यकूं कैसे साध सकेगा? इस पूर्वोक्त विचारसे प्रपच मिथ्यारूप नही, किंतु आत्माकी तरें सत्रूप है, तो फेर एक ही ब्रह्म अद्वैततत्त्व है यह तुमारा कहना क्यु कर सत्य हो सक्ता है? कन्नी नही हो सक्ता

पूर्वपक्ष—हमारी उपनिषदोमे तथा शकर स्वामीका शिष्य आनदगिरि, शकरदिग्विजयके तीसरे प्रकरणमे लिखता है कि "परमात्मा जगदुपादानकारणमिति" परमात्मा जो है, सोइ इस सर्व जगत्का कारण है, कारणन्नी कैसा उपादान रूप है उपादान कारण उसकू कहते है कि जो कारण होवे सोइ कार्यरूप हो जावे, इस कहनेसे यह सिद्ध हुआ जो कुछ जगत्मे है, सो सर्व कुछ परमात्मा ही आप बन गया, तब तो जगत् परमात्मा रूप ही है, फेर तुम सृष्टि कर्त्ता ईश्वर क्यु नही मानते?

उत्तरपक्ष—वाह रे नास्तिक शिरोमणि! तुम अपणे कहणेकू कन्नी विचार शोच कर कहते हो, वा नही? इस तुमारे कहनेसे तो पूर्ण नास्तिक पणा तुमारे मतमें सिद्ध होता है, यथा जब सर्व कुछ जगत् स्वरूप परमात्मरूपही है, तब तो न कोइ पापी है, न कोइ धर्मी है, न कोइ ज्ञानी है, न कोइ अज्ञानी है, न तो नरक है, न तो स्वर्ग है, साधुन्नी नही, अरु चोर न्नी नही, सत्शास्त्र न्नी नही, अरु मिथ्या शास्त्रन्नी नही, तथा जैसा गोमासन्नक्षी, तैसाही अन्नन्नक्षी है, जैसा स्वन्नार्यासे कामन्नो

ग सेवन कीया तैसा ही माता, बहिन, बेटीसें कीया, जैसा चंमाल, तैसा ब्राह्मण, जैसा गङ्गा, तैसा संन्यासी, क्युं के जब सर्व वस्तुका कारण ईश्वर परमात्माही ठहरा, तब तो सर्व जगत् एकरस एक स्वरूप है, दूसरा तो कोइ है नहीं.

पूर्वपक्षः—हम एक ब्रह्म मानते है, अरु एक माया मानते है, सो तुम ने जो उपर बहुतसें आल जंजाल लिखे है, सो सर्व मायाजन्य है अरु ब्रह्म तो सच्चिदानंद एकही शुद्ध स्वरूप है.

उत्तरपक्षः—हे अद्वैतवादी! यह जो तुमने पक्ष मांना है सो बहुत अ समीचीन है यथा. माया जो है सो ब्रह्मसें भेद है, वा अभेद है? जेकर भेद है तो जड है, वा चेतन है? जे कर जड है, तो फेर नित्य है, वा अनित्य है? जे कर कहोगे नित्य है, तो अद्वैत मतकें मूलहीकूं दाह क रती है, क्युंकि जब ब्रह्मसें भेद रूप हुइ, अरु जड रूप भइ, अरु नित्य हुइ, फेर तो तुमने द्वैतपंथ आपही आपणे कहनेसें सिद्ध कर लीया. अरु अद्वैत पंथ जड मूलसें कट गया, जे कर कहोगे कि अनित्य है, तो द्वै तता दूर कभी नहीं होगी, क्युंकि जो नाश होने वाला है, सो कार्य रूप है, अरु जो कार्य है, सो कारण जन्य है, तो फेर उस मायाका उपादान कारण कौन है? सो कहनां चाहियें. जे कर कहोगे अपर माया तब तो अनवस्था दूषण है, अरु अद्वैत तीनो कालोमें कदापि सिद्ध नहीं होगा, जे कर ब्रह्महीकूं उपादान कारण मानोगे, तब तो ब्रह्मही आप सर्व कुछ बन गया, तब तो पूर्वोक्त दूषण आया. जे कर मायाकों चैतन्य मानोगे, तोभी यही पूर्वोक्त दूषण होगा, जे कर कहोगे माया ब्रह्मसें अभेद है तब तो ब्रह्मही कहनां चाहियें, माया नहीं कहनां चाहियें.

पूर्वपक्षः—हम तो मायाकूं अनिर्वचनीय मानते है.

उत्तरपक्षः—इस अनिर्वचनीय पक्षकूं उपर खंमन कर आये हैं, तैसें खंमन करणां, इहांभी कह देनां तथा अनिर्वचनीय जो शब्द है तिसमें निस् जो उपसर्ग है, तिसका अर्थ तो निषेध रूप कीया है. कलापक व्या करणमें शेष जो शब्द है, सो या तो भावका वाचक है या अभावका वा चक है? जब भावकूं निषेध करोगे, तब तो अभाव आ जावेगा, अरु जे कर अभावकूं निषेधोगे, तब तो भाव आ जावेगा. ए भावाभाव दोनो वर्जे

के तीसरा वस्तुका रूप कोइ नही इस वास्ते अनिर्वचनीय जो शब्द है, सो दंभी पुरुषोनें छलरूप रचा प्रतीत होता है, इस कहनेसे तो द्वैत ही सिद्ध होता है, अद्वैत नहीं

पूर्वपक्ष —यह जो अद्वैत मत है, इसके मुख्य आचार्य शंकरस्वामी है जिनोंने सर्वमतोंकू खंडन करके अद्वैत मत सिद्ध कीया है, तो फेर ऐसे शंकर स्वामी साक्षात् शिवका अवतार, सर्वज्ञ, ब्रह्मज्ञानी, शीलवान्, सर्वसामर्थ्ययुक्त, उनोके अद्वैत मतको खंडने वाला कौन है?

उत्तरपक्ष —हे वल्लभ मित्र! तुमारी समज मूजब तो जरूर जैसें तुम कहते हो, तैसेही है, परंतु शंकरस्वामीके शिष्य आनंदगिरिने शंकरदिग्विजय के अठावनवे प्रकरणमे जो शंकरस्वामीका वृत्तांत लिखा है, उसके पढनेसे तो ऐसा प्रतीत होता है, जो शंकरस्वामी सर्वज्ञ नही,अरु कामी है,अरु अज्ञानी है, अरु असमर्थ है, तिस लिखनेसे ऐसाभी प्रतीत होता है कि वेदांतीयोंका अद्वैत ब्रह्मज्ञान जब ताइ यह स्थूल देह रहेगी,तब ताइ रहेगा, परंतु इस शरीरके छूटया पीछे किसी वेदांतीयोंको ब्रह्म ज्ञान नही रहेगा

पूर्वपक्ष —वो कौनसा शंकरस्वामीका वृत्तांत है जिस्से तुमारी पूर्वोक्त बातें सिद्ध होती है?

उत्तरपक्ष —जो तुमकूं वृत्तांत सुनना है, तो हमारे क्या ढील है, हम इसी जग्गे लिख देते है जब शंकरस्वामीने मंडनमिश्रकूं जीता, तब मंडनमिश्रने यतिव्रत लीया, अरु मंडनमिश्रकी भार्या जिसका नाम सरसवाणी था, सो सरसवाणी आपणे पतिकूं यतिव्रत लीया देख कर आप सरसवाणी ब्रह्मलोककू चली,सरसवाणीकूं जातीकू देख कर शंकरस्वामी जीवन दुर्गामंत्र करके दिग्बंधन करते हुये, तिसके पीछें हे सरसवाणी! तु ब्रह्मशक्ति है ब्रह्मके अंशभूत मंडनमिश्रकी तू भार्या है, उपाधि करकें सर्वकू फलित है, तिस कारणसे मेरे साथ प्रसंग करकें फेर तुमकू जाणा योग्य है ऐसें शंकरस्वामीने कहा. पीछें सरसवाणी शंकरस्वामी प्रतें कहती हुई कि —पतिके सन्यासतें प्रथम ही वैधव्य होणेके भयसें मैनें पृथिवी त्यागी है, तिस कारणसे फेर मैं पृथिवीका स्पर्श न करुंगी. हे यति! तू तो पृथिवीमे स्थित है कैसे तेरे प्रसंगके ताइ एक विषय स्थिति होवे, ऐसे शंकरस्वामीकू कहती प्रतें फेर शंकरस्वामी कहते भये कि —हे माता!

तोभी भूमिकाके ऊपरि छ हाथ प्रमाण ऊंची आकाशमें रहो मेरे साथ सर्व वचनका प्रपंच संचार करकें, पीछेसें जाना. ऐसें आदर पर होकर शंकरस्वामीके साथ सर्वशास्त्रों विषे वेद, इतिहास, पुराणों विषे समय प्रसंग करकें पीछें शंकरकूं तिरस्कारके तांइ जिसमें दुःखें प्रवेश है, ऐसा जो कामशास्त्र, तिस विषे नायिका, अरु नायक, इनके भेद विस्तारसें सरसवाणी शंकरकों पूछे. तब तो शंकरस्वामी इस विषयकूं जानते नहीं थे, तातें शंकरस्वामी उत्तर न दे सके, मौनी होते भये, तिस पीछें सरसवाणी शंकरस्वामीकूं सत्य करकें कहती हुइ कि:—तुमारे जाननेमें यह शास्त्र नहीं आया, निश्चय करकें तिस शास्त्रकूं मैंही जानती हूं, कालका जानकार शंकरस्वामी सरसवाणी प्रति कहते हुये कि:—हे माता! तुम इहांही छ महीने रहो, पीछे में सर्व अर्थोका निश्चय करकें तेरे कहेका उत्तर कहुंगा. ऐसे कह कर शंकरस्वामी आग्रह पूर्वक सरसवाणीकूं तिहांही आकाश मंमलमें स्थापन करकें सर्व शिष्योंकूं यथास्थान भेज करकें चार शिष्यो सहित (१) हस्तामलक, (२) पद्मपाद, (३) विधिवत्, (४) आनंदगिरि, ए चार नामक प्रधान शिष्यों करी सेव्यमान तिस नगरसें पश्चिमदिशा नाम गढमें गये, सरसवाणीके प्रश्नोके उत्तर जानने के तांइ उस नगरका राजा मर गया था, उसका शरीर तिस अवसरमें चितामें जलानेके वास्ते रक्खा था, उस शरीरकूं देख कर शंकरस्वामीनें अपणां शरीर उस नगरकें प्रांत एक पर्वतकी गुफामें स्थापन करकें, शिष्योकूं कह दीया कि तुमने इस शरीरकी रक्षा करनी. अरु आप शंकरस्वामी परकाय प्रवेश विद्या करकें, लिंगशरीर संयुक्त अभिमान सहित उस राजाके शरीरमें ब्रह्मरंध्रमें प्रवेश कर गये, तब तो राजाजी उठा शीतोपचार करा, औ उत्सवसें नगरमें ले आये, राजा मरा नहीं था यह बात प्रसिद्ध कर दीनी, तब तो शकरस्वामीकूं लोकोनें राजसिंहासन ऊपर बिठलाया. पश्चात् राजसिंहासनसें उठ कर स्वामीजी बडी राणीके घरमें गये. तहां जाकर उस राणीसें काम क्रीडा करने लगे, तब तो शंकरस्वामीकी कुशलतासें तिसके आलिंगन करनेसें उत्पन्न हुआ जो सुख संभोग ताकरिके शंकरस्वामीने उस राणीके मुखके साथ तो अपणा मुख जोडा, औ अपणी छाती उस राणीके दोनो कुंचों (स्तनो) के ऊपर जोडी, तैसेही उस राणीकी

नानीसें अपनी नानी जोडा, औ अपणे पगो करकें राणीके पग सकोचे एतावता जघोमे जघा फसाइ अर्थात् एक शरीरवत् हो गये, दोनो जने व हूत गाढा आलिंगन करनेमे तत्पर हुये, तब तो शंकरस्वामी राणीके कक्षा स्थानो विषे हाथों करी स्पर्श करते हुये, बहुत सुखमे मग्न हुये, तब तो राणी उनकी आलाप, चतुराइ देख कर चित्तमे विचार करने लगी कि देह मात्र करी तो मेरा भर्त्ता है, परंतु इसका जीव मेरा भर्त्ता नहीं, एतो कोइ सर्वज्ञ है औसा विचार करके राणीने आपणे नौकरोकूं चारों दिसामें भे जा, अरु कह दीया कि जो पर्वतोमें, वा गुफाउमे बारह योजनोके बिचमें जितने शरीर जीव रहित होवे सो सर्व शरीर चितामे रख कर जला दिउ. शंकरस्वामी तो विषयमे मूर्छित हो गये, तब तो राणीके नौकरोने चार शिष्योकू रक्षक देख कर शंकरस्वामीके शरीरकूं चितामे रख कर उनके श रीरकूं अग्नि करके दाह करने लगे, तब तो शंकरस्वामीके चारो शिष्य, उस नगरमे गये, जिहा शंकरस्वामी थे, उहा शंकरस्वामिकू काम लोलुपी अति विषयमे बद्धबुद्धि देख कर शंकर राजाकें आगे नाटक करने लगे, शंकरस्वा मीकूं परोक्ति करके प्रतिबोध करने लगे सो यह है, जो लिखते है —

(१) " यत्सत्यमुख्यशब्दार्थानुकूल, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (२) नह्येतत्त्व विदितं नृपु भाव, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (३) विश्वो त्पत्त्यादिविधिहेतुतत्त्व, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (४) सर्वचिदात्म क सर्वमद्वैत, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (५) परतार्किकैरीश्वरसर्वहेतु, स्तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (६) यद्वेदातादिनिर्ब्रह्मसर्वस्थ, तत्त्वमसि त त्त्वमसि राजन् ! (७) यज्जैमिनिनोक्तमखिलकर्म, तत्त्वमसि तत्त्वमसि रा जन् ! (८) यत्पाणिनि प्राह शब्दस्वरुप तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (९) यत्सांख्याना मतहेतुभूतं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (१०) अष्टागयो गेन अनंतरूप, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (११) सत्य ज्ञानमनत ब्र ह्म, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (१२) नह्येतदद्दश्यप्रपंच, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (१३) यद्ब्रह्मणोब्रह्मविपावीश्वराह्यनवन्, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! (१४) त्वद्रूपमेवमस्मान्निर्विदित राजन् ! तव पूर्वय त्याश्रमस्थम् " ॥ इन परोक्तिया करके राजा प्रतिबोध हुआ, सर्वके सन्मु ख तिस राजाकी देहसे निकल कर जब गये तब तो उस पर्वतकी कंदरामे

अपणे शरीरकूं न प्राप्त हुवे तब तो अपणे शरीरकूं चितामें देखा. देख कर कपालमध्यमें हो कर प्रवेश करा; तब शरीरके चारो ओर अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, तब तो निकलनां दुष्कर हो गया, फेर शंकरस्वामीने लक्ष्मी नृसिंहकी स्तुति करी तब लक्ष्मीनृसिंहने शंकरस्वामीकूं जीता, अग्निमेंसें बाहिर निकाला॥ इति कथा समाप्ता ॥ अब हे भव्य! तूं विचार कर देख जो में पूर्वे तुजकूं वार्त्ता कही थी सो सर्व सत्य है या नहीं? क्युंकि (१) जब सरस वाणीके कहनेके प्रश्नका उत्तर नहीं आया, तब तो शंकरस्वामीकूं सर्वज्ञ कौन बुद्धिमान् निष्पक्षी मान सक्ता है? कोइभी नहीं मानेगा, (२) अरु जब राजाकी राणीसें विषय सेवन करा, तब तो कामी होणेमें कोइ शंकाभी रहती है? (३) अरु जब शिष्योंने आकर प्रतिबोध करा, तब तो अज्ञानी अवश्य हो चूके, (४) जब चितामेंसें न निकल सके. तब लक्ष्मीनृसिंहकी स्तुति करी तब नृसिंहने आय करकें ज्वलती अग्निमेंसें निकाले, तब शंकरस्वामी असमर्थ सिद्ध हो गये, जब शंकरस्वामीने फेर आ कर सरसबाणीके प्रश्नोका उत्तर दीया, तब तो सरसबाणीने कहा; हे स्वामी! तूं सर्वज्ञ है. क्या मृतकके शरीरमें प्रवेश करकें उसकी राणीके साथ विषय सेवन करकें राणी पासों कबुक कामशास्त्रकी बातां शीखके सर्वज्ञ हो सक्ता है? सर्वज्ञ तो नहीं हो सक्ता, परंतु गधे खुरकणी तो हो गइ. सरसबाणीकूं उसने सर्वज्ञ कह दीया, अरु शंकरकूं सरसबाणीने सर्वज्ञ कह दीया. वाह क्याही सर्वज्ञोंकी जोडी मिली है? सरसबाणी तो ब्रह्मकी शक्ति हो कर फेर स्त्री बन कर मंडनमिश्रसें विषय सेवन करती रही, अरु सर्वज्ञभी बन बैठी, अरु शंकरस्वामी परस्त्रीसें विषयसेवन करकें अरु कबुक काम शास्त्र शीख कर सर्वज्ञ बन बैठे, क्या यह गधे खुरकणी न होइ तो और क्या हुआ? जब शंकरस्वामी, अपणां स्थूल शरीर छोड कर राजाके शरीरमें गये, अरु ब्रह्मविद्या सर्व भूल गये, जे कर न भूले होते तो उनके शिष्य काहेकूं तत्त्वमसिका उपदेश करते? जब शंकरस्वामी स्थूल शरीरके बदल जाने परब्रह्म विद्या भूल गये, तब तो ब्रह्मविद्याका संबंध, न तो लिंग शरीरके साथ रहा, न आत्माके साथ संबंध रहा. किंतु स्थूल शरीरहीके साथ रहा, इससें यह सिद्ध हुआ किः—जब वेदांती मर जाते हैं, तब उनका ज्ञानभी नष्ट हो जाता है, अरु स्थूल शरीरहीके

साथ ज्ञानका संबंध रहा परंतु आत्माके साथ नहीं अरु जो तुमने कहा था कि—शंकरस्वामीके प्रगट कथन कीये अद्वैत मतकूं कौन खंमन कर सक्ता है? सो हे जव्य! जब शंकरस्वामीका चरित्रही असमंजस है, तो फेर उनके कहे हुये मतकूं कौन सयौक्तिक समज सक्ता है?

पूर्वपक्ष—" पुरुषएवेद " इत्यादि श्रुतियोंसे अद्वैतही सिद्ध होता है

उत्तरपक्ष—यहजी तुमारा कहना असत् है, क्युंकि जो पुरुष मात्र रूप अद्वैततत्त्व होवे तब तो यह जो दिखलाइ देता है कोइ सुखी, कोइ दुःखी, ए सर्व परमार्थसे असत् हो जावेगे जब ऐसें होगा तब तो यह जो कहना है, " प्रमाणतोऽधिगम्य संसारनैर्गुण्यं तद्विमुखया प्रज्ञया तदुच्छेदाय प्रवृत्तिरित्यादि " अस्यार्थ—संसारका निर्गुणपणा प्रमाणसे जान कर, तिस संसारसे विमुख बुद्धि हो करके तिस संसारके उच्छेदके तांइ प्रवृत्ति करे, यह जो कहना है, सो आकाशके फूलकी सुगंधिका वर्नन करने सरिखा है, क्यु कि जब अद्वैत रूपही तत्त्व है, तब तो नरकादि जवभ्रमण रूप संसार कहा रहा? जिस संसारकूं निर्गुण जान कर तिसके उच्छेद करणेकी प्रवृत्ति होवे.

पूर्वपक्ष—तत्त्वत पुरुष अद्वैत मात्रही है, अरु यह जो संसार निर्गुण वर्णन करा है, सो सदा सर्व जीवोंकू जो प्रतिजासन हो रहा है, सो सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उचे नीचे जैसे प्रतीत होते है, तैसे सर्व संसार प्रतीत होता है परंतु सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उच्च नीचकी तरे भ्रांतिरूप है वा भ्रांतिजन्य है

उत्तरपक्ष.—यह जो तुमारा कहना है सो असत् है, इस वातमे कोइ वास्तव्य प्रमाण है नही तत् यथा जे कर अद्वैत सिद्ध करणे वास्ते कोइ पृथग्भूत प्रमाण मानोगे, तब तो द्वैतापत्ति होगी, क्युकि प्रमाणके विना किसीकाजी मत नही सिद्ध होता, जे कर प्रमाणके विनाही सिद्ध मानोगे तब तो सर्ववादी अपणे अपणे अजिमतकू सिद्ध कर लेवेगे. तथा भ्रांतिजी प्रमाणजूत अद्वैतसे जिन्नही माननी चाहिये अन्यथा प्रमाणजूत अद्वैत अप्रमाणही हो जावेगा भ्रांति जब अद्वैतकाही रूप हुइ तब तो पुरुषका रूप हुइ, तातें भ्रांतिस्वरूपवाला पुरुषही है नही, तब तो तत्त्वव्यवस्था कुछजी सिद्ध न होइ जे कर भ्रांति जिन्न मानोगे, तब

तो द्वैतापत्ति होवेगी, अद्वैत मतकी हानि हो जावेगी, जेकर स्थंनकूं कुंना दिकोंसें नेद माननां इसीकूं भ्रांति कहोगे, तब तो निश्चय करकें सत्स्वरूप कुंनादिक किसी जगें तो जरूर होंगे. अभ्रांतिके देखे बिना कदापि भ्रांति देखनेमें नहीं आवेगी, पूर्बं जिसने सच्चा सर्प्प नहीं देखा, तिसकूं रज्जुमें सर्प्पकी भ्रांति कदापि न होवेगी ॥ तडुक्तं ॥ श्लोक ॥ नादृष्टपूर्वसर्प्पस्य, रज्ज्वां सर्प्पमतिः क्वचित् ॥ ततः पूर्वानुसारित्वाद्भ्रांतिरभ्रांतिपूर्विका ॥ १ ॥ इस कहनेसेंजी अद्वैत तत्त्व खंमन हो गया तथा पुरुष अद्वैतरूप तत्त्व अवश्य करकें दूसरेकूं निवेदन करनां. अपणे आपकूं नहीं. आपणेमें तो व्यामह है नहीं जे कर कहने वालेमें व्यामोह होवे तब तो अद्वैतकी प्रतिपत्ति कबीजी नहीं होवेगी.

पूर्बपक्षः—जब आत्माकूं व्यामोह है तब ही तो अद्वैत तत्त्वका उपदेश कीया जाता ?

उत्तरपक्षः—जब आत्माका व्यामोह दूर होगा तब तो आत्मा अवश्य अवस्थांतरकूं प्राप्ति होगी, जब अवस्था बदलेगी, तब तो अवश्य द्वैतापत्ति हो जावेगी, तथा जब अद्वैत तत्त्वका उपदेशक पुरुष परकूं उपदेश करेगा, तब तो परकूं अवश्य मानेगा, फेर अद्वैत तत्त्व परकूं निवेदन करनां अरु अद्वैत तत्त्व माननां, यह तो ऐसें हुआ के, जैसें मेरा पिता कुमार ब्रह्मचारी है, इस बचनके कहनेसें जरूर वो पुरुष उन्मत्त है, जेकर अपणेकूं अरु परकूं इन दोनोकूं जब मानेगा, तब तो द्वैतापत्ति अवश्य होगी, इस कारणसें जो अद्वैत माननां है, सो युक्ति विकल है.

पूर्बपक्षः—परमब्रह्मरूप सिद्धही सकल नेद ज्ञान प्रत्ययोंके निरालंबन पणेकी सिद्धि है.

उत्तरपक्षः—ए कथन जी तुमारा ठीक नहीं है, क्युंकि परम ब्रह्महीकी सिद्धि नहीं है. जे कर है तो स्वतः सिद्धि है, वा परतःसिद्धि है ? तहां स्वतःसिद्धि तो है नहीं, जे कर होवे तब तो किसीकाजी विवाद न रहे, जे कर कहोगे परतःसिद्धि है, तो क्या अनुमानसें है, वा आगमसें है ? जे कर कहोगे अनुमानसें है तो वो अनुमान कौनसा है ? कहो.

पूर्बपक्षः—सो अनुमान यह है कि विवादरूप जो अर्थ है सो प्रतिज्ञासांत प्रविष्ट ब्रह्मनासके अंतर है, प्रतिज्ञासमान होणेसें जो जो प्रतिज्ञा

समान है सो सो प्रतिभासात प्रविष्टही देखा है, जैसे प्रतिभास आत्मा प्रतिभासमान है सकल अर्थ सचेतन अचेतन विवादरूप है तिस का रणसे प्रतिभासात प्रविष्ट है, घटपटादि यह अनुमान है

उत्तरपक्ष –यह अनुमान तुमारा सम्यक् नही है, (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, इन तीनोंके प्रतिभासात प्रविष्ट होणेसे साध्यरूपही हुये

पूर्वपक्ष –तब तो (१) धर्मी. (२) हेतु, (३) दृष्टात इन तीनोके न होनेसें अनुमानही नही बन सक्ता जे कर कहोगे कि, (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टात, ए तीनो प्रतिभासात प्रविष्ट नही है, तो इनोंहीके साथ हेतु, व्यभिचारी होगा जे कर कहोगे अनादि अविद्या वासनाके बलसे हेतु दृष्टात जो है, सो प्रतिभासके बाहिरकी तरे *निश्चय करते है, जैसे प्रतिपाद्य, प्रतिपादक*, सभा, सभापति जनकी तरे तिस कारणसे अनुमानभी हो सक्ता है, अरु जब सकल अनादि अविद्याका विलास दूर हो जावेगा, तब तो प्रतिभासात प्रविष्टही प्रतिभास होगा विवादभी न रहेगा, प्रतिपाद्य प्रतिपादक, साध्य, साधन भावभी नहीं रहेगा, तब तो अनुमान करनेकाभी कुछ फल नहीं, आपही अनुभवमान परम ब्रह्मके होते हुये देश काल अव्यवछिन्न स्वरूपके होयां निर्व्यभिचार, सकल अवस्था व्यापकपणे वालेमें अनुमानका कुछ प्रयोगभी नही चाहियें है

उत्तरपक्ष –जो अनादि अविद्या प्रतिभासात प्रविष्ट है, तब तो विद्याही हो गइ तब तो असत्‌रूप (१) धर्मी, (२) हेतु (३) दृष्टात आदिक भेद कैसे दिखा सके? जे कर कहोगे प्रतिभासके बाहिरभूत है, तब तो (१) अविद्या प्रतिभासमान है? वा (२) अप्रतिभासमान है? तिस अविद्याकूं प्रतिभासमान रूप होणेसे अप्रतिभासमान तो नही जे कर कहोगे प्रतिभासमान है, तो तिसहीके साथ हेतु व्यभिचारी है तथा प्रतिभासके बाह्यिरभूत होणेसें तिसके प्रतिभासमान होणेसे जेकर तुमारे मनमे ऐसा होवेकी अविद्या जो है, सो नतो प्रतिभासमान है, न अप्रतिभासमान, न प्रतिभासके बाहिर, न प्रतिभासके अदर प्रविष्ट है न एक है, न अनेक है, न नित्य है, न अनित्य है, न व्यभिचारिणी है, न अव्यभिचारिणी है, सर्वथा विचारके योग नहीं सकल विचा

रांतर अतिक्रांत स्वरूप है. रूपांतरके अनावसें अविद्या जो है, सो निरूपता लक्षण है, यहनी तुमारी बडी अज्ञानताका विस्तार है, तैसी निरूपता स्वनावकूं यह अविद्या है, यह अप्रतिनासमान है, ऐसें कौन कथन करनेकूं समर्थ है? जे कर कहोगे यह अविद्या प्रतिनासमान है, तो फेर क्युंकर अविद्या नीरूपसिद्ध होगी, जो वस्तु, जिस स्वरूप क रकें प्रतिनासमान है, सो तिसही वस्तुका रूप है; तथा अविद्या जो है सो विचार गोचर है, वा विचार गोचर रहित है? जे कर कहोगे विचार गोचर है तब तो नीरूप नहीं, जे कर विचार गोचर नहीं, तब तो तिसके मानने वाला महा मूर्ख है, जब विद्या अविद्या दोनोही सिद्ध है, तव तो एक परमब्रह्म अनुमानसें कैसें सिद्ध हुआ? इस कहने करकें जो उप निषद्में ऐक ब्रह्मके कहनेवाली श्रुति है सोनी खंमन हो गइ, तथा "स र्वैवैखल्विदंब्रह्मेत्यादि" बचनकूं परमात्माके अर्थांतर होणेसें द्वैतापत्ति हो जावेगी, जे कर कहोगे अनादि अविद्यासें ऐसा प्रतीत होता है तब तो पूर्वोक्त दूषणोंका प्रसंग होगा, तिस वास्ते अद्वैतकी सिद्धि वंध्याके पुत्रकी शोनावत् है. इस कारणसें अद्वैतमत युक्तिविकल है. इस हेतुसें एकही ईश्वर जगत्सें प्रथम था, यह कहना मिथ्या है. यह प्रथम ईश्वर के माननेवालोंके मतका खंमन हुआ.

अथ दूसरा ईश्वर जगत्के उपादान कारणवाला एक ईश्वर अरु दूस री सामग्री, ए दो पदार्थ अनादि है, तिन दोनोमेंसें सामग्री जो है, सो ऐसे है, (१) पृथिवी, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु इन चारों के परमाणु, (५) आकाश, (६) दिशा, (७) आत्मा, (८) मन, (९) काल, ए नव वस्तु नित्य हैं, अनादि है, किसीके बनाइ होइ नहीं सो ईश्वर इस पूर्वोक्त कारणोसें इस सृष्टिकों रचता है. अथ मतावलंबीयोंनें जिस रीतिसें ईश्वरकों जगत्का कर्त्ता माना है, सो रीती इहां लिखते है.

उपजातिछंद ॥ कर्त्तास्ति कश्चिज्जगतः सचैकः, ससर्वगः सस्ववशः सनि त्यः ॥ इमाः कुहेवाकविडंबनास्यु, स्तेषां न येषामनुशासकस्त्वम् ॥ १ ॥ अस्यार्थः—जगत् जो है,सो प्रत्यक्षादि प्रमाणों करकें लक्ष्यमाण (दीसता) है, चराचर रूप तीनो जगत्का कोइक जिसका स्वरूप कह नहीं सक्के ऐसा पुरुष विशेष रचनेवाला है, ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता मानने वाले

वादी ऐसें अनुमान करते है कि –पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक सर्व, बुद्धिवालें कर्त्ताके करे हुये है, कार्य होणेसे जो जो कार्य है, सो सो सर्व बुद्धिवालेके करे हुये हे, जैसे घट तैसेही यह जगत् है, तिस कारणसे जगत् बुद्धि वालेका रचा हुआ है, जो बुद्धिवाला है, सोही भगवान् ईश्वर है, ऐसाभी मत कहना, जो यह तुमारा हेतु असिद्ध है, किस कारणसें असिद्ध है ? सो कहते है कि –पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक अपणे अपणे कारणके समूह करके उत्पन्न होये है, इस वास्ते कार्य रूप है तथा अवयवी है, इस करके कार्यरूप है, सर्व वादीयोकू निश्चित है तथा ऐसेभी न कहना जो यह तुमारा हेतु अनेकातिक है तथा विरुद्ध है क्युकि हमारा हेतु विपक्षसे अत्यंत हटा हुआ है, तथा ऐसेभी मत कहना जो यह तुमारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है, क्युकि प्रत्यक्ष अनुमान आगम करके बाध्या नही है, धर्म धर्मी अनतर कहनेसे तथा यहभी मत कहना जो तुमारा हेतु प्रकरण सम है, क्यु कि अनुमानसे जो साध्य है,तिसका शत्रुभूत दूसरे साध्यके साधने वाले अनुमानके अभावसे तथा ऐसेभी मत कहना जो ईश्वर, पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिकोका कर्त्ता नही है,विना शरीरके होणेसे मुक्त आत्माकी तरें यह पीछले तुमारे अनुमानका वैरी अनुमान है,सो ईश्वरकू जगत्का कर्त्तासिद्ध नही होणे देता, क्यु कि तुमने तो ईश्वरकू शरीर रहित सिद्ध करके जगत्का अकर्त्ता सिद्ध कीया, परतु हमने तो ईश्वर शरीरवाला माना है इस कारणे तुमारा अनुमान असत्य है, अरु हमारा जो हेतु है,सो निरवद्य है तथा ईश्वर जो है सो एक है,क्यु कि जो वहूत ईश्वर मानीये,तब तो एक कार्य करनेमे ईश्वरोकी न्यारी न्यारी बुद्धि हो जावे, तब तो इनके मने करने वाला तो और कोइ है नही, फेर कार्य कैसे उत्पन्न होवे ? कोइ ईश्वर तो अपणी इच्छासे चार पगवाला मनुष्य रच देवे, अरु दूसरा ईश्वर छ पग वाला रच देवे, तथा तीसरा दो पग वाला रच देवे, अरु चौथा आठ पग वाला रच देवे, इसी तरें सर्व वस्तुकूं भिन्न रूप विलक्षण रच देवे, तब तो सर्व जगत् असमजस रूप हो जावे परतु सो है नही इस हेतुसे ईश्वर एकही होना चाहियें, तथा ईश्वर सर्वगत् सर्वव्यापी है, जे कर ईश्वर सर्व व्यापक न होवे, तब तो तीन भुवनमे एक साथ जो उत्पन्न होणे वाले कार्य है, सो सर्व एक कालमें फला

उत्पन्न न होगे, जैसे कुंन्नारादिक जहां होवेंगे, तहांही कुंन्नादिक कर सकें गे, परंतु देशांतरमें कन्नी कार्य न कर सकेंगे. तथा ईश्वर जो है. सो सर्व ज्ञ है, जे कर सर्वज्ञ न होवेगा तब तो सर्व कार्योंका उपादान कारण कैसें जानेगा ? जब कार्योंके उपादान कारणकूं न जानेगा, तब तो जग त् विचित्र कैसें रच सकेगा ? तथा स्ववशः ईश्वर जो है, सो स्वतंत्र है किसि दूसरेके अधीन नहीं. ईश्वर अपणी इच्छासें सर्व जीवोकूं सुख दुःख का फल देता है ॥उक्तं च॥ ईश्वरप्रेरितोगच्छेत्,स्वर्गं वा स्वच्नमेव वा ॥ अन्यो जंतुरनीशोय, मात्मनः सुखदुःखयोरिति ॥ १ ॥ अस्यार्थः—ईश्वरहीकी प्रेर णाहीसें जगत्वासी जीव, स्वर्ग तथा नरकमें जाता है, क्युं कि ईश्वरके वि ना और सर्व जीव आपणे आपकूं सुख दुःखका फल देनेकूं समर्थ नहीं है, जे कर ईश्वरकूं न्नी परतंत्र (पराधीन) मानीयें, तब तो मुख्य कर्त्ता ई श्वर न रहेगा, अपर अपरके अधीन माननेसें अनवस्था दूषणन्नी लग जावेगा, इस हेतुसें ईश्वर अपणेही वश है, परंतु पराधीन नहीं तथा "सनित्यः" (सो ईश्वर) नित्य है जेकर ईश्वर अनित्य होवे तब तो ति सके उत्पन्न करने वाला कोइ और चाहियें, सोतो है नहीं, इस हेतुसें ईश्वर नित्यही है, ऐसें पूर्वोक्त विशेषणों करी संयुक्त ईश्वर (न्नगवान्) जगत्का कर्त्ता है, इति पूर्वपक्षः

उत्तरपक्षः—हे वादी ! जो तुमारा यह कहनां है पृथिवी, पर्वत, वृक्षा दिक बुद्धिवाले कर्त्ताके रचे हुये हैं, सो अयुक्त है, क्युं के इस तुमारे अनुमानमें व्याप्तिका ग्रहण नहीं हो सक्ता है, अरु हेतु जो होता है, सो सर्वत्र व्याप्तिमें प्रमाण करकें सिद्ध हुया होयाही अपणे साध्यका ग मक होता है, इस कहनेमें सर्व वादियोंकी सम्मति है.

अथ प्रथम तुम यह कहो जब ईश्वर जगतकूं रचता है, तो ईश्वर श रीर वाला है ? वा शरीर रहित है ? जेकर कहोगे ईश्वर शरीर वाला है, तो हमारा सरीखा दृश्य शरीर अर्थात् दिखलाइ देने वाला शरीर है अ थवा पिशाच आदिकोकी तरे अदृश्य (न दिखलाइ देने वाले) शरीर करी संयुक्त है ? जेकर प्रथम पक्ष मानोगे तब तो प्रत्यक्ष बाधा है तिस ईश्वरके बिनाही अब न्नी उत्पन्न होते हुये तृण, वृक्ष, इंद्रधनुष, बादल प्रमुख का

योंके देखनेसें, जैसें "अनित्यशब्दप्रमेयत्वात्" जैसें यह प्रमेयत्व हेतु साधारण अनेकांतिक है, तैसे ही यह कार्यत्व हेतुसाधारण अनेकांतिक है

२ जेकर दूसरा पक्ष मानोगे, तब जो ईश्वरका शरीर नहीं दिखलाइ देंता (१) सो ईश्वरके माहात्म्य करके नही दिखलाइ देता? (२) वा हमारी बुरी अदृष्टका प्रभाव है? एतावता हमारे खोटे कर्मके प्रभावसे नही दिखलाइ देता है? जे कर प्रथम पक्ष ग्रहण करोगे जो ईश्वरके माहात्म्यसे ईश्वरका शरीर नहीं दीखता, इस पक्षमे कोइ भी प्रमाण नही है, जिससे ईश्वरका माहात्म्य सिद्ध होवे परतु हे वादी! जे कर त्रपु (जिस्त) तपा कर पीवे ऐसी सच्ची धीज करे तो कदाचित् मान भी लेवे, अन्यथा नहीं अरु इस तुमारे कहनेमें इतरेतर आश्रय दूषण भी है जब माहात्म्य विशेष सिद्ध हो जावे तब अदृश्यशरीर वाला सिद्ध होवे, जब अदृश्य शरीरवाला सिद्ध होवे, तब माहात्म्य विशेष सिद्ध होवे, इतीतरेतराश्रय दूषण जे कर दूसरा पक्ष पिशाचादिकोकी तरे अदृश्य शरीर ईश्वरका है ऐसे मानोगे, तब तो सशय की निवृत्ति न होवेगी सो कैसे कि—क्या ईश्वर है नहीं जिस करके उसका शरीर नहीं दीख पडता? तब तो वांझके पुत्रके शरीरकी तरे, किंवा हमारे पूर्व पापोके प्रभावसे ईश्वरका शरीर नही दीखता, यह सशय कभी दूर न होवेगा जे कर कहोगे हमारा ईश्वर शरीर रहित है, तब तो दृष्टात अरु दार्ष्टातिक यह दोनो विषम हो जावेगे और हेतु विरुद्ध हो जावेगा, क्युकि घटादिक कार्योका कर्त्ता शरीरवालाही कुंभारादिक दीख पडता है, अरु ईश्वरकू जब शरीर रहित मानोगे तब तो ईश्वर कुछभी कार्य करणेकू समर्थ न होवेगा, आकाशकी तरे नित्यव्यापक अक्रिय जो है, सो अकर्त्ता है, इस हेतुसे शरीर सहित तथा शरीर रहित ईश्वरके साथ कार्यत्व हेतुकी व्याप्ति सिद्ध नहीं होती है, तथा तेरा हेतु कालात्ययापदिष्टभी है, तेरे साध्यके धर्मीका एक देश, वृक्ष, बीजली, बादल, इद्रधनुषादिकोका अबभी कोइ बुद्धिमान् कर्त्ता नही दीख पडता है, इस वास्ते प्रत्यक्ष करके बाधित होया पीछे तुमने अपणा हेतु कहा, इस वास्ते तुमारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है, इस तुमारे कार्यत्वहेतुसे बुद्धिमान (बुद्धिवाला) ईश्वर जगत्का कर्त्ता कभी सिद्ध नहीं होता है

तथा दूसरी तरे जगत् कर्त्ताके खंडन करनेका स्वरूप लिखते है, जो

कोइ ईश्वरवादी यह कहते हैं. जगत् सर्व ईश्वरका रचा हुआ है, यह उनका कहनां समीचीन नहीं है. काहेतें कि जगत्का कर्त्ता ईश्वर किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं होता है.

पूर्वपक्षः—ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता सिद्ध करनेवाला अनुमान प्रमाण है. तथाहि जो ठहर ठहर करकें अभिमत फलके संपादन करनेके तांइ प्रवृत होवे, तिसका अधिष्ठाता कोइ बुद्धिमान् जरूर होनां चाहियें. जैसे बसोला आरी प्रमुख शस्त्र, काष्ठके दो टुकडे करणेमें प्रवर्त्तते हैं, तैसेंही ठहर ठहर कर सर्व जगत्कूं सुख दुःखादिक जे फल देते हैं तिनका अधिष्ठाता कोइ बुद्धिमान जरूर चाहियें है, तुमने ऐसें न कहनां जो बसोला आरी प्रमुख आपही काष्टके दो टुकडे करणेमें प्रवृत्त होते हैं. क्युं कि वो तो अचेतन हैं आपही कैसें प्रवृत्त हो सकें? जे कर कहोगे बसोलाआरि प्रमुख स्वभावसें प्रवृत्त होते हैं तब तो तिनकूं सदाही प्रवृत्त होना चाहियें, बीचमें कभी ठहरनां न चाहियें, परंतु ऐसें है नहीं, इस पूर्वोक्त हेतुसें जो ठहर ठहर कर अपणे अपणे फलके साधनेवाले जीव हैं, तिनका अधिष्ठाता ईश्वर (भगवान्) ही सिद्ध हो सक्ता है, तथा दूसरा अनुमान जो परिमंडलादिक, वृत्त, त्र्यंश, चतुरंश, संस्थान वाले गाम, नगरादिक है; वे सर्व ज्ञानवानके करे हुये हैं, जैसें घटादिक पदार्थ, तैसेंही पूर्वोक्त संस्थान संयुक्त पृथिवी, पर्वत प्रमुख हैं. इस अनुमानसेंभी जगत्का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है, इति पूर्वपक्षः॥

उत्तरपक्षः—जिस अनुमानसें तुमने जगत्का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध करा है, सो तुमारा अनुमान अयुक्त है, क्योंकि यह तुमारा पूर्वोक्त अनुमान हमारे मतमें जैसें आगें सिद्ध है, तैसेंही सिद्ध करता है, इस वास्ते सिद्ध साधन दूषण तुमारे अनुमानमें होता है, जैसें हमारे मतमें आगेंही सिद्ध है तैसें लिखते हैंः—संपूर्ण यह जगत्की विचित्रता जो है सो सर्व कर्मके फलसें है, ऐसे हम मानते हैं, क्योंकि यह जो भारतवर्षमें अनेक देशोमें, अनेक टापुओंमें, अनेक हेमवंत आदिक पर्वतोंमें, अनेक प्रकारके मनुष्यादि प्राणी जो वास करते हैं, अरु जो उनकूं सुख दुःखादिक अनेक तरेंकी अवस्था बण रही है, तिन सर्व अवस्थायोंका कारण कर्म ही जानने. दूसरा कोइ नहीं. अरु देखनेमेंभी कर्मही कारण हो सक्ते हैं,

क्योंकि जब कोइ पुण्यवान् राजा राज करता है, तब उसके राजमें सुकाल, निरुपद्रव देशोमें होता है, तो वो उस राजाके शुन कर्मका प्रनाव है, इस कारणसे जो उहर उहर जीवोंकूं फल देते है सो कर्म है कर्म जो है सो जीवोंके आश्रय है, अरु जीव जो है सो चेतन होणेसे बुद्धि वाले है तब तो बुद्धिवालेके अधीन हो कर कर्म उहर उहर कर फल देते हैं. इस कारणसें सिद्ध साधन दूषण है जे कर कहोगे हम तो विशिष्ट बुद्धिवाला ईश्वरही सिद्ध करते है, परतु सामान्य बुद्धिवाले जीव नहि सिद्ध करते? तब तो तुमारा दृष्टांत साध्यविकल है, वसोला आरि प्रमुख विषे ईश्वर अधिष्ठितका व्यापार, नहीं उपलन होता है, किंतु कुंनकारादिकोंका व्यापार तहा तहा अन्वयव्यतिरेक करकें उपलब्ध होता है.

पूर्वपक्ष —वर्द्धक्यादिकनी ईश्वरकी प्रेरणाहीसें तिस तिस काममें प्रवृत्त होते हे, इस वास्ते हमारा दृष्टांत साध्य विकल नहीं है.

उत्तरपक्ष —तव तो ईश्वरनी और ईश्वरकी प्रेरणाहीसे प्रवृत्त होवेगा परतु आप नहीं प्रवृत्त होता, सोनी ईश्वर दूसरे ईश्वरकी प्रेरणासे प्रवृत्त होगा, तब तो अनवस्था दूषण होगा

पूर्वपक्ष —वढइ प्रमुख जीव तो सर्व अज्ञानी है, इस वास्ते ईश्वरकी प्रेरणाहीसे अपणे अपणे काममें प्रवृत्त होते हे, अरु ईश्वर (नगवान) तो सर्व पदार्थोंका ज्ञाता है, इस वास्ते अनवस्था दूषण नही है

उत्तरपक्ष —यहनी तुमारा कहना असत् है, क्योंकि इस तुमारे कहनेमें इतरेतर दूषण होता है, प्रथम ईश्वर सर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप ज्ञाता सिद्ध हो जावे, तब अन्यकी प्रेरणा विना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है असा सिद्ध होवे, जब अन्यकी प्रेरणा विना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है असे सिद्ध हो जावे तब तो ईश्वर सर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप जाननेवाला सर्वज्ञ सिद्ध होवे, जब ताइं दोनोमेंसें एक सिद्ध न होवे, तब ताइ दूसरेकी सिद्धि कनी न होगी, तथा हे ईश्वरवादी! हम तुमकू पूछते है जे कर ईश्वर सर्वज्ञ अरु वीतराग है तो काहेकू ओर जीवोकू असत् व्यवहारमे प्रवर्त्तावे है? क्योकि जो विवेकी होते है वे मध्यस्थही होते है, फेर तो जीवोकू सत्व्यवहारहीमें प्रवृत्त करना चाहिये परतु असत् व्यवहारमें नही प्रवृत्त करना चाहिये अरु ईश्वर तो असत् व्यवहा

रोंमेंजी जीवोंकूं प्रवृत्त करता है, तब तो ईश्वरकूं सर्वज्ञ और वीतराग क्यों कर कहना चाहियें ?

पूर्वपक्षः—ईश्वर (जगवान्) तो सर्व जीवोंकूं शुन कर्म करनेहीमें प्रवृत्त करता है, इस वास्ते जगवान् सर्वज्ञ और वीतरागही है. अरु जो जीव अधर्म करनेवाले है, उनकूं असत् व्यवहारमें प्रवृत्त करकें पीछे नरकपात करकें उनकूं फल देता है, जो फेर वो जीव इस दुःखसें मरता हुआ फेर पाप न करे, इस वास्ते उचित फल देणे करकें ईश्वर (जगवान्) विवेकवान् अरु वीतराग सर्वज्ञ है, उसमें कोइजी दूषण नहीं है.

उत्तरपक्षः—यहजी तुमारा कहना विना विचारेका है, क्योंकि प्रथम पाप करनेमेंजी तो ईश्वरही प्रवृत्त करता है, ईश्वर विना दूसरा तो कोइ प्रेरक है नहीं. अरु जीव आप तो कुछ कर सक्ता है नहीं. क्योंकि जीव तो अज्ञानी है पापमें वा धर्म्ममें आप नहीं प्रवृत्त हो सक्ता, तो फेर प्रथम पाप करानेकूं जीवोंकूं प्रवृत्त करनां, पीछे नरकमें मालके उस जीवकूं फल चुकानां, पीछें धर्ममें प्रवृत्त करनां, क्या यही ईश्वरकी ईश्वरता, अरु विचार पूर्वक करणां है ?

पूर्वपक्षः—ईश्वर (जगवान्) जीवोंकूं कदेइ नहीं प्रवृत्त कर्त्ता, किंतु जीव आपही प्रवृत्त होता है, तब तो जो जीव जैसा जैसा कर्म करता है, उस कर्मके वशसें ईश्वर (जगवान्) जी तैसा तैसा फल उन जीवोंकूं देता है, जैसें राजा राज करता है, परंतु राजा चोरकूं ऐसें नहीं कहता जो तूं चोरी कर, किंतु चोरी करनेकी मनाइ तो करता है. फेर जे कर वो चोर जो आपही चोरी करेगा, तब दंरु तो राजा देवेगा, तैसें ईश्वर (जगवान्) पाप तो नहीं कराता, परंतु पाप करने वालोंकों दंरु देता है.

उत्तरपक्षः—यहजी तुमारा कहना अयुक्त है, क्योंकि दूसरे जो राजा हैं. सो चोरोंकूं निषेध करनेमें समर्थ नहीं हैं; क्योंकि कैसाही उग्र (कठिन) हुकम वाला राजा होवें और मन वचन काया करकें कितनाही चोरी आदिक पाप कर्म मने करा चाहे, परंतु लोक चोरी आदिक पापकर्म कदापि सर्वथा न छोडेगे, अरु ईश्वर (जगवान्) तो सर्व शक्तिमान् तुम मानते हो, तो फेर सर्व जीवोंकूं पाप करनेमें प्रवृत्त होतोंकूं क्यों नहीं मने करता ? जब ईश्वर जीवोंकूं पाप करतां मने नहीं करता, तब तो ईश्वरही जीवोंपासों पाप कराता है, फेर उनकूं दंरु देता है, तो फेर वोही

पूर्वोक्त दूषण है जेकर कहोगे कि जीवोंकूं पापमे प्रवृत होतोंकूं ईश्वर म
ने करने समर्थ नही, तो फेर उचे शब्दसे ऐसे न कहना जो "सर्व कु
छ ईश्वरनेही करा है, और ईश्वर सर्व शक्तिमान् है" तथा जेकर जीव पा
पभी आपही करता है, अरु धर्मभी आपही करता है, तो फलभी आप
ही भोग लेवेगा, तो फेर हे पूर्वपक्षी! ईश्वर कर्त्ताकी कल्पना व्यर्थ है

पूर्वपक्ष—धर्म अधर्म तो जीव, आपही करते है, परंतु उनका फल
प्रदान तो ईश्वरही कर्त्ता है, जीव जो है, सो आपणे करे हुवे धर्म अधर्म
का फल आप भोगनेकू समर्थ नहीं है, जैसे चोर चोरी करता है सो
चोरी तो आपही करता है, परंतु उस चोरीका फल (बंदीखाना) भोगना
आप नही भोग सक्ता, कोइ दूसरा बंदीखानेमे घालने वाला चाहिये

उत्तरपक्ष—यहभी तुमारा कहना असत् है, क्योंकि जब जीव, धर्म
अधर्म करने समर्थ है, तो फेर फल भोगनेमे समर्थ क्युं नही? इस स
सारमे जैसा जैसा जो जीव पाप, धर्म करता है, तैसा तैसा पाप धर्मके
फल भोगनेमें निमित्तभी बन जाता है, जैसे चोर चोरी करता है, तिस
चोरीका फल राजा देता है, तथा कुष्ट हो जाता है, तथा शरीरमे कीडे
पड जाते है, तथा अग्निमे जल मरता है, तथा पाणीमे डूब मरता है,
तथा खड्गसे कट जाता है, तथा तोप बंदूककी गोला गोलीसे मर जाता
है, तथा हाट, हवेली, औ माटीके खानेके नीचे दब कर अनेक तरेके संक
ट भोग कर मर जाता है, निर्धन हो जाता है, इत्यादि असंख्य निमित्तो
से अपणे करे कर्मके फलकूं भोक्ता है. इहा बिना निमित्तके दूसरा ईश्वर
फलदाता कोइ नही दीखता, ऐसे ही नरक स्वर्गादि परलोकमे भी शुभा
शुभ कर्म फल भोगनेके असंख्य निमित्त है जे कर कहोगे जो परस्त्री गमन
करनेसे इत्यादि पापफलमे क्या निमित्त मिलेगा, जिसके जोगसे फल भो
गना होगा? यह बात तो मे (ग्रंथकार) नही जानता, जो इस पुण्य पा
पका यह निमित्त तुमकूं मिल कर फल होगा, क्युंकि मेरेकू इतना ज्ञान
नही जो ठीक ठीक पूरा पूरा निमित्त बता सकूं? परंतु इतना कह सक्ता
हूं कि जो जो जीव पुण्य पाप करते है, उनके फल भोगनेमे अवश्य कोइक
निमित्त जरूर होगा. अरु इस तरेसे फल भोगेगा, यह निमित्त मिलेगा,
अमुक देशमें, अमुक कालमे, इत्यादि सर्व प्रत्यक्षपणे तो अर्हंत, भगवत

(परमेश्वर) सर्वज्ञके ज्ञानमें जासन होता है. निमित्त विना कोश्नी फल न हीं नोग सक्ता, इस वास्ते ईश्वर फलदाता कल्पना व्यर्थ है, क्या यहनी बुद्धिमानोका कहना है कि जो रोटी पका तो सक्ता है, परंतु आप खा नहीं सक्ता, तथा ईश्वरकूं फलदाता कल्पना करनेसें एक औरनी कलंक तुम परमेश्वरकूं लगाते हो, जैसें किसी पुरुषकूं किसी दूसरे पुरुषने खड्गा दि शस्त्रसें मारे, तब तो मरने वालेने जो संकट पाया, सो किसके यो गसें? किसकी प्रेरणासें पाये? जे कर कहोगे ईश्वरने उस शस्त्र वालेकूं प्रेरा, तब तिसने उसकूं मारा, तो फेर उस मारने वालेकूं फांसी क्युं मिलती है? क्या ईश्वरका यही न्याय है, जो प्रथम पुरुषके हाथसें उसकूं मरवा मालनां, अरु पीछे फेर उस मारने वालेकूं फांसी देनां, इस तुमारी सम जने ईश्वरकूं बडा अन्यायी सिद्ध करा है जे कर कहोगे ईश्वरकी प्रेरणा के बिना ही उस पुरुषने दूसरे पुरुषकूं मारा, अरु दुःखदीया, तब तो नि मित्तहीसें सुख दुःखका नोगनां सिद्ध हो गया, फेरनी ईश्वर फलदाता कल्पना करनां यह अल्प बुद्धिवालोंका काम है, तथा हे ईश्वर वादी! तुमकूं एक और बात पूछते हैं कि जो धर्मका फल है किं उन्मत्त देवांगना ओंके सुकुमार शरीरका स्पर्श करना सो तो जीवोंकूं सुखका कारण है, इस वास्ते ईश्वरने यह फल तो जीवोंकूं दीया. परंतु जो अधर्मका फल घोर न रकके कुंममें पडनां, नाना प्रकारकें दुःख,(संकट) त्रास कुंजीपाक चर्मोत्क र्त्तन, अग्निमें ज्वलना, इत्यादि महा दुःख ईश्वर उस जीवकूं क्यों देता है?

पूर्वपक्षः—उस जीवने जो पाप करे थे, उनका फल उस जीवकूं जरू र होनां चाहियें इस वास्ते ईश्वर फल देता है.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेसें तो ईश्वर व्यर्थ ही जीवोंकूं पीडा देता है, क्योंकि जब ईश्वर उस जीवकूं पापका फल न देगा, तब तो जीव क र्मका फल आप तो नोग सक्ता नहीं. फेर नतो शरीर धारेगा अरु नवी न पापनी न करेगा; फेर बैठे बेगायें ईश्वरकूं क्या गुदगुदी उठती है जो फेर उन जीवोंकूं नरकमें माल देता है? जो मध्यस्थ नाव वाला अरु प रम दयालु होता है, वो किसी जीवकूं कन्नी निरर्थक पीडा नहीं देता.

पूर्वपक्षः—ईश्वर (जगवान्) अपणी क्रीडाके वास्ते किसीकूं नरकमें माल ता है, किसीकूं तिर्यंचयोनिमें उत्पन्न करता है, किसीकूं मनुष्य जन्ममें,

कितीकूं स्वर्गमें उत्पन्न करता है, जब वो जीव नाचते, कूदते, रोते, पीट त, विलाप करते है, तब ईश्वर अपणी रची हुइ बाजीका तमासा देखता है, इस वास्ते जगत् रचता है

उत्तरपक्ष –जब ऐसे है, तब तो ईश्वर प्रेक्षावान् नही है, क्युं कि उसकी तो क्रीडा होती है, अरु एक जीव तडफ तडफके महा करुणा स्पद हो कर मर रहें है तो फेर ईश्वरकूं दयालु मानना यह कैसी तुमा री अज्ञानता है? क्योकि जो महा पुरुष दयालु सर्वज्ञ होते है, वे कदा पि किसी जीवोंकू दुःख दे कर क्रीडा नही करते, तो फेर ईश्वर क्रीडार्थी कैसे हो सक्ता है? तथा क्रीडा जो है, सो सरागीकू होती है अरु ईश्व र (जगवान्) तो वीतराग है, तो फेर ईश्वर (जगवान्कू) क्रीडा रसमे मग्न होणा कैसे सजवे?

पूर्वपक्ष –हमारा जो ईश्वर है सो रागी द्वेषी है, इस कारणसे उसमें क्रीडा करणेका सजव हो सक्ता है

उत्तरपक्ष –तब तो तुमने मुख चोपडनेके बदले आपणा मुख काला कर लीया, क्योकि जब रागी द्वेषी होगा, तब तो ईश्वर शेष जीवोकी तरें सरागी हुवा, वीतराग न हुवा, अरु सर्वज्ञजी न हुवा, तब तो हमारे सरी खा हुवा फेर जगत्का रचने वाला क्यों कर हो सक्ता है?

पूर्वपक्ष –हम तो ईश्वरकू राग द्वेष संयुक्त सर्वज्ञ मानते है, इस वास्ते सर्व जगत्का कर्त्ता है

उत्तरपक्ष –इस तुमारे कहनेमे कोइजी प्रमाण नहीं है जिस प्रमाण से ईश्वर रागी, द्वेषी, सर्वज्ञ सिद्ध होवे?

पूर्वपक्ष –ईश्वरका स्वजाव ही ऐसा है, जो रागी द्वेषीजी होनां, अरु सर्वज्ञजी रहना, स्वजावमे कोइ तर्क नहीं हो सक्ती जैसे अग्नि तो दा हक है, परंतु आकाश दाहक क्यो नहीं? इस प्रश्नमें उत्तर यह दीया जायगा जो अग्निमे दाहक स्वजाव है, आकाशमे नहीं इसी तरें ईश्वर जी स्वजावसेही रागी, द्वेषी अरु सर्वज्ञ है.

उत्तरपक्ष –ऐसे तो कोइक वादी जी कह सक्ता है जो यह हमारे सन्मुख गधा खडा है, सो सर्व जगत्का रचने वाला है जे कर कोइ वादी पूछेकि किस हेतुसे यह गर्दन जगत्का रचने वाला है? तब तो तिसकू

तीत होता है;जे कर अनंत ईश्वर माने जावें, तब जो कदाचित् एक सृष्टि रचनेमें विवाद हो जावे, तो फेर उस विवादकूं दूर कौन करे? शिर, पंच तो कोइ है नहीं; तथा एक ईश्वरकूं देख के दूसरा ईश्वर ईर्ष्या करेगा, जो यह मेरे तुल्य क्युं है? इत्यादिक अनेक उपद्रव उत्पन्न हो जावेंगे; इस वास्ते ईश्वर एकही मानना चाहियें, यहनी तुमारी समज अज्ञानरूपी घुणकी खाइ हुइ है, क्युं कि जब ईश्वर (नगवान्) सर्वज्ञ है. तब तो सर्वज्ञ के ज्ञानमें एकही सरीखा नान होनां चाहियें, तो फेर विवाद क्यों कर होगा? तथा ईश्वर तो राग, द्वेष, ईर्ष्या, अनिमानादि सर्व दूषणोसें रहित है,तब तो दूसरे ईश्वरकूं देख कर ईर्ष्या अनिमान क्यों कर करेंगे? जे कर ईश्वर हो करनी आपसमें विवाद,ऊगडे,ईर्ष्या, अनिमान करेंगे, तो तिन पामरोंकूं ईश्वरही कैसें माना जायगा? जब जगत्कर्त्ताही ईश्वर सिद्ध नहीं होता, तब तो विवाद ऊगडाही ईश्वरोंका आपसमें काहेकूं होगा? इस वास्ते ईश्वर अनंते माननेमें कुबनी दूषण नहीं. तथा "सवगेतत्वं" ईश्वर सर्व व्यापक है, यहनी जो मानते है, सो नी प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि जब ईश्वरकूं सर्व व्यापक, वादी मानते हैं, तब शरीर करकें व्यापक मानते हैं? वा ज्ञान स्वरूप करकें व्यापक मानते हैं? जे कर शरीर करकें ईश्वरकूं व्यापक मानेंगे, तब तो ईश्वरका शरीरही सर्व जगा समा जायगा, दूसरे पदार्थोंके रहने वास्ते कोइनी अवकाश न मिलेगा? इस वास्ते ईश्वर देह करकें तो सर्वत्र व्यापक नहीं है.

प्रश्नः—क्या ईश्वरकेनी शरीर है, जो तुम ऐसे विकल्प करते हो?

उत्तरः—हे नव्य! ऐसेनी इस जगत्में मत है, जो ईश्वरकूं देहधारी मानते हैं.

प्रश्नः—वो कौनसें मत है, जिनोंने शरीरधारी ईश्वर माना है?

उत्तरः—तौरेतनामा ग्रंथ है, तिसमें ऐसें लिखा है, जो ईश्वरने अबरहामके यहां रोटी खाइ, इस लिखनेसें, तथा याकूबके साथ कुस्ती करी, इस लिखनेसें प्रतीत होता है जो ईश्वर देहधारी है तथा शंकरदिग्विजयके दूसरे प्रकरणमें शंकरस्वामीका शिष्य, आनंदगिरि जो कि इसी ग्रंथकी आदिमें लिखता है, जो मैं सर्वज्ञ हुं सो लिखता है कि.जब नारदजीने देखा की इस लोकमें बहुत कपोलकल्पित मत उत्पन्न हो गये हैं, अरु सनातन धर्म लुप्त हो गया है, तब तो नारदजी शीघ्रही ब्रह्मा

जीके पासें पहुंचे, अरु जा कर कहने लगे कि हे पिताजी! तुमारा मत तो प्राय नहीं रहा, अरु लोकोनें अनेक मत बना लीयें हे. सो इस बातका कुछ उपाय करनां चाहिये. तब तो ब्रह्माजी बहुत काल ताइ चिंता करके पुत्र, मित्र, भक्त जनोंकूं साथ ले कर अपणे लोकसें चल कर शिवलोक में प्रवेश करते हुये. आगें क्या देखते हे कि जैसे मध्यान्हमे कोटि सूर्या का तेज तथा कोटि चंद्रमा समान शीतल, और पांच जिसके मुख हे, चंद्र मा मुकुट है, बिजलीवत् पिंगल जटाका धारक, औ पार्वती जिसके वामा र्द्ध अगमे है, सर्वका ईश्वर महादेव देखा. फेर ब्रह्माजीने नमस्कार करकें स्तुति करी, और कहते हुये कि भो महादेव, सर्वज्ञ, सर्वलोकेश, सर्व साक्षी, सर्वमय, सर्वकारण, इत्यादि इस लिखनेसे प्रगट प्रतीत होता है जो ई श्वर देहधारी है, जे कर देहधारी ईश्वर न होवे, तो फेर पाच मुख कैसें हो वे? इस लिखनेसे ईश्वर शरीर रहित नही सिद्ध हो सक्ता है. अब जे कर शरीरधारी ईश्वर होवे तब तो इस लोकमे एकिला ईश्वरही व्यापक हो कर रहेगा, दूसरे पदार्थोके वास्ते कोइ दूसरा लोक रहनेकू चाहियें? जे कर कहोगे ज्ञानात्मा करके ईश्वर सर्व व्यापक है, तब तो सिद्ध सा ध्य नही है, हमभी तो ज्ञानस्वरूप करके भगवान्कू सर्वव्यापी मान ते हे, परतु जे कर तुमारे वेदसे न विरोध होवे? क्युंकि वेदोमें शरीर कर केही सर्व व्यापक कहा है॥ तथाच ॥ "विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो वि श्वतो बाहुरुत विश्वतस्पादित्यादि श्रुते" इस श्रुतिसे सिद्ध है, जो ईश्वर शरीर करके सर्व व्यापक है, फेर तो पूर्वोक्त दूषण हे, इस वास्ते ईश्वर व्यापक नही तथा तुम कहते हो जो ईश्वर सर्वज्ञ है, परतु तुमारा ईश्वर सर्वज्ञ भी नही क्यों के हम जो ईश्वर सृष्टिकर्त्ताके खंडने वाले है, सो उससे विपरीत चलते है, फेर हमकू उसने क्यो रचा? जे कर कहोगे ज न्मांतरोंमे उपार्जित जो जो तुमारे शुभाशुभ कर्म, तिनोके अनुसारसें तुम कू ईश्वर फल देता है, तो फेर तुमारे कहनेहीमे ईश्वरके स्वतंत्रपणेकू ज लांजलि दीनी गइ, क्यो कि जब हमारे कर्मोके बिना ईश्वर फल नही दे स क्ता, तब तो ईश्वरके कुछ अधीन नही, जैसे हमारे कर्म होंगे, तेसा हमकू फल मिलेगा जे कर कहोगे ईश्वर जो इछे, सो करे. तब तो क्यो न जानता हे जो ईश्वर क्या करेगा, धर्मीयोकू नरकमे, पापीयोकू स्वर्गमे भेजेगा? जे कर

कहोगे परमेश्वर न्यायी है, जैसा जैसा जो करेगा, उसकूं वैसा वैसा फल देता है, तो फेरजी वोही परतंत्रतारूप दूषण ईश्वरमें लगता है, तथा ईश्वर नित्य है, यह जी कहनां उनका अपणे घरहीमें सुंदर लगता है, क्यों कि नित्य तो उस वस्तुकूं कहते हैं, जो तीनों कालोंमें एक रूप रहै, जब ईश्वर नित्य है, तो क्या जगत्को बनानेवाला स्वजाव है वा नहीं? जे कर कहोगे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वजाव है, तब तो ईश्वर निरंतर जगत्कूं रचाही करेगा, कदापि रचनेसें न बंध होगा, क्योंकि जगत्के रचनेका स्वजाव तो ईश्वरमें नित्य है. जेकर कहोगे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वजाव नहीं है, तब तो ईश्वर कदापि जगत्कूं न रचेगा. क्योंकि जगत् रचनेका स्वजाव ईश्वरमें हैही नहीं. तथा जे कर ईश्वरमें एकांत नित्य जगत् रचनेका स्वजाव है, तब तो प्रलय कदेइ न होगी, क्यों कि ईश्वरमें प्रलय करनेका स्वजाव नहीं है. जे कर कहोगे ईश्वरमें रचनेकी अरु प्रलय करने की दोनोही शक्तियां नित्य है, तब तो न कदापि जगत् रचा जायगा अरु न कदेइ प्रलय होगी, क्योंकि दो शक्तियां परस्पर विरुद्ध एक जगे एक कालमें कदापि नहीं रहैगी; जे कर रहेगी, तब तो जगत् न रचा जावेगा, न प्रलय करा जयगा, क्योंकि जिस कालमें रचने वाली शक्ति रचेगी, तिसी कालमें प्रलय करनेवाली शक्ति प्रलय करेगी, अरु जिस कालमें प्रलयशक्ति प्रलय करेगी, तिसी कालमें रचने वाली शक्ति रच देवेगी, ऐसें जब शक्तियोंका परस्पर विरोध होगा, तब तो न जगत् रचा जावेगा, न प्रलय कीया जावेगा, तब तो हमाराही मत सिद्ध हो गया, क्योंकि न किसीने जगत् रचा है, अरु न इस जगत्की कदेइ प्रलय होती है, तातें यह जगत् अनादि, अनंत सिद्ध हो गया. जे कर कहोगे ईश्वरमें दोनोंही शक्तियां नहिं है, फेरजी तो जगत् न रचा, न प्रलय किया जायगा, तब तो अनादि, अनंत सिद्ध हुवा. जेकर कहोगे ईश्वर जब चाहता है, तब रचनेकी इछा कर लेता है, अरु जब प्रलय करता है, तब प्रलयकी इछा कर लेता है, इसमें क्या दूषण है? तब तो ईश्वरकी शक्तियां अनित्य होवेगी, सो सुखेन अनित्य होवे इसमें हमारी क्या हानी है? जे कर ईश्वरकी शक्तियों अनित्य है, तब तो ईश्वर जी अनित्य हो जावेगा, क्यों कि ईश्वर अपणी शक्तियोंसें अजेद है. जे कर कहोगे शक्तियां ईश्वरसें

नेदरूप है, तबन्नी शक्तियांके नित्य होणेसे जगत् न रचा जायगा, न प्र यत्न कीया जायगा, अरु ईश्वर अकिंचित्कर सिद्ध हो जावेगा, क्यों कि ज ब ईश्वर सर्व शक्तियोंसे रहित है, तब तो ईश्वर कुछन्नी करने समर्थ नहीं है, फेर जगत् रचनेमे क्यो कर समर्थ होवेगा ? अरु शक्तियोंका उपादा न कारण कौन होवेगा ? अरु ईश्वरका अन्नाव हो जावेगा. क्योंकि जब ईश्वरम शक्तिही कोइ नही, तब तो ईश्वर काहेका ? वो तो आकाशके फू ल समान असत् है, फेर जगत्का कर्त्ता किसकू मानोगे ?

अथाग्रे खरड ज्ञानीयोका ईश्वरवाद लिखते है खरडज्ञानी कहता है, कि जगत्मे जितने पदार्थ है, उनके विलक्षण विलक्षण सयोग, आकृति, तथा गुण, और स्वन्नाव, दीख पडते है, जे कर इनका तथा इनके निय मोका कर्त्ता कोइ न होगा, तो ये नियम कन्नी न बनेंगे, क्योंकि जड प दार्थोंमें तो मिलने वा जुडे होनेकी यथावत् समर्थता नही, इस हेतुसे ई श्वर कर्त्ता अवश्य होना चाहियें

उत्तर.–प्रथमही हम जगत् कर्त्ता ईश्वरका खंमन कर चूके है, तो फेर आप जगत् कर्त्ता क्यो कर मानते है ? अरु जो तुमने लिखा है कि जगत्के पदार्थोंमे न्यारे न्यारे स्वन्नाव दीख पडते है, इस्सें ईश्वर सिद्ध होता है, इस कहनेसे ईश्वर जगत्कर्त्ता नही सिद्ध होता, क्यो कि सर्व प दार्थोंमे अनत शक्तिया है सो अपणी अपणी शक्तियोसें सर्व पदार्थ अ पणे अपणे कार्यकू करते है, इनके मिलनेमें निमित्त यह है, एक तो का ल, दूसरा पदार्थका स्वन्नाव, तीसरी नियती, चउथा जीवोका कर्म, पा चमा जीवोका उद्यम, इन पूर्वोक्त पाचो निमत्त बिना कोइन्नी और निमित्त नही है, इन पाचोका स्वरूप, आगे चल कर लिखेगे ?

प्रत्यक्षमेन्नी इन पांचोके निमित्तसे ही सर्व कुछ उत्पन्न होता है, जैसें बीजांकुर जब बीज बोया जाता है, तब कालही यथानुकूलही होना चा हिये, अरु बीज तथा जल, पृथिवी, इत्यादिकोका स्वन्नावन्नी अवश्य होना चाहिये तथा नियतीन्नी जो जो पदार्थोंका सन्नाव है, तिन पदार्थों का तथा तथा जो परिणाम होता है, तिसका नाम नियती है, सोन्नी कारण है तथा अष्टविध कर्मन्नी कारण है तथा पुरुषाकार (जीवोंका उद्यमन्नी) कारण है ए पांचो वस्तु अनादि है, कीसीनेन्नी प्रथम रची

नहिं है, क्यों कि जो जो वस्तुका स्वभाव है, सो सो सर्व अनादिसें है. जे कर वस्तुमें अपणा अपणा स्वभाव न होवेगा, तब तो वस्तुही कोइ सत्रूप न रहेगी. सर्व शशशृंगवत् असत् हो जायगी; अरु प्रत्यक्ष जो दृष्ट पृथिवी, आकाश, सूर्य, चंद्रमा, आदि पदार्थ दीख पडते है, सो इसी तरें अनादि रूपसें सिद्ध हैं, अरु पृथ्वी उपर जो जो रचना दीखती है, सो सर्व प्रवाहसें ऐसेंही चली आती है; अरु जो जो जगत्के नियम है, वे सर्व इन पांचो निमित्तोंके विना नहीं हो सके हैं. इस वास्ते सर्व पदार्थ अपणे अपणे नियममें है, जे कर तुम द्रव्यकी शक्तिकूं ईश्वर मान लोगे, तब तो हमारी कुछ हानी नहीं; क्यों कि हम द्रव्यकी अनादि शक्तिका नाम ईश्वर रख लेवेंगे, अरु तुम अनादि द्रव्यकी शक्तिकूं ईश्वर मान लेवेंगे, तब तो तुमारा हमारा विवाद दूर हो जावेगा. अरु तुमने लिखा जो जडमें यथावत् मिलनेकी शक्ति नहीं है, यहभी तुमारा कहनां मिथ्या है, क्यों कि जगत्में अनेक तरेंके जड पदार्थ आपसें आप ही इन पूर्वोक्त पांच निमित्तोंसें आपसमें मिल जाते हैं, जैसे सूर्यके किरणां बादलोंमें पडती है, तब इंद्रधनुष बन जाता है, तथा संध्याका होनां, पांच वर्णके वादलोंकी चिनी हुइ घटा, चंद्रमा सूर्यके गिरद कुंमला, आकाशमें पवनोंके मिलनेसें जल, और अग्निका उत्पन्न होनां, अरु वर्षाके होनेसें उन पूर्वोक्त पांचों निमित्तोसें अनेक प्रकारकें घास तृणादि अनेक प्रकारकी बनस्पति, तथा अनेक प्रकारके कीट पतंग प्रमुख जीव उत्पन्न हो जाते हैं, इन पांचो निमित्तोंके बिना किसी वस्तुको बनाता हुआ ईश्वर नहीं दिखलाइ देता; जरा पक्षपात छोड कर बिचार कर देखो के, ईश्वर कर्त्ता किस तरेंसे हो सक्ता है? क्यों कि पृथिवी, आकाश, चंद्र, सूर्य, इत्यादिक तो द्रव्यार्थिक नयके मतसें अनादि हैं, फेर इनके वास्ते पूछना कि यह किसने बनाये हैं? तो फेर हम पूछते हैं, ईश्वर किसने बनाया? जे कर कहोगे ईश्वर तो, किसीनेही बनाया नहीं, वो तो अनादिसें बना बनायाही है, तो फेर पृथिवी प्रमुख कितनेक पदार्थभी बने बनाये अनादिसेंही है, ऐसे माननेमें क्युं लज्जा करते हो?

खरड ज्ञानी कहते है की स्वभावसें जगत्की उत्पत्ति जो मानते हैं, उनके मतमें यह दोष आवेंगे. यह पृथिवी स्वभावसें होती, तो इसका कर्त्ता और

नियंता न होता, इस पृथिवीसें भिन्न दशमे कोश अंतरिक्षमें दूसरा आपसे आप पृथिवी बन जाती, सो आज तक नही बनी, इस्से जाना जाता है, जो ईश्वर कर्त्ता है

उत्तर –तुमकूं कुछ विचार है, वा नहीं? जें कर है, तो पूर्वोक्त तुमारा कहना अयुक्त है, क्यों कि जब हम तो यह कहते है, जो पृथ्वी आदिक अनादि है, किसीनें नही बनाये अरु तुम कहते हो आकाशमे ऊंची दश कोशके अंतरे दूसरी पृथिवी क्यो नहि बन जाती? अब विचारो यह तुमारा प्रश्न मूर्खताइका है, वा नही? तथा इस प्रश्नके उत्तरमें जो कोइ तुमकू पूछे, जो ईश्वर स्वभावसें बना होवे, तब तो ईश्वरसे अलग दूसरा ईश्वर क्यों नहीं उत्पन्न होता? जे कर कहोगे ईश्वर तो अनादि है, वो क्यों कर नया दूसरा ईश्वर बन जावे? इस तरे हमभी कह सक्ते है जो पृथ्वी अनादि है, नवीन नही बनती, तो फेर दश कोश आकाशमे क्यो कर बन जावे?

पूर्वपक्ष –जे कर आपसे आपही वस्तु बनती होवे, तब सर्व परमाणु एकठे क्यो नही मिल जाते? अथवा एकैक हो कर विखर क्यो नहीं जाते?

उत्तरपक्ष –हमारी कुछ आज्ञा जड नहीं मानते है, जो हमारे कहेसे एकठे होकर एकरूप हो जावे, अथवा एक एक हो कर विखर जावे, पूर्वोक्त पांच निमित्त मिलनेके जहां होगे, तहां मिल जावेंगे, जहा निमित्त नहीं होवेंगें, तहा नही मिलेगे

पूर्वपक्ष –सर्व परमाणुओंके एकत्र मिलनेके पांच निमित्त क्यो नहीं मिलते?

उत्तरपक्ष –जो अनादि ससारकी नियतीरूप मर्यादा है, वो कदापि अन्यथा नही होती, जे कर हो जावे, तब तो ससारमें जो जीव जन्म लेते है, सो सर्व, स्त्रीयोंहीके वा पुरुषोंकेही रूपसे क्यो नही उत्पन्न होते? जे कर कहोगे जैसे जैसे कर्म करे थे, वैसा वैसा ही उनकू फल मिलता है, फेर एक स्त्री आदिक स्वरूपसे कैसें उत्पन्न होवे? तब हम यह पूछते है, जो सर्व जीवोंने स्त्री होनेके वा पुरुष होनेके न्यारे न्यारे कर्म क्यों करे? एकही सरीखे कर्म क्यों न करे? जे कर कहोगे ससारमे यह सनातनसें रीति है, जो सर्व जीव, एक सरीखे कर्म कदापि नही करते तब तो परमाणुओंमेभी यही सनातन स्वभाव है, जो एकत्र कदेही न मिलनां, तथा एक एक हो कर विखरभी नही जानां? हे पूर्वपक्षी! यह तुमारा ई

श्वर जगत् जो रचता है, सो तुमारे कहनेसें आगें अनंत सृष्टियां रच चुका है, अरु एकैक जीवकूं अशुन कर्मोंका फल, अनंत वेर दे चूका है, तो जी वो जीव आज तांइ पाप करतेही चले जाते हैं, तो फेर दंम देनेसें ईश्वरकूं क्या लान्न हुआ? जो अनंत कालसें इसी विडंबनामें फस रह्या है? तथा ईश्वरकूं सृष्टि रचनेसें क्या प्रयोजन था?

पूर्वपक्षः—ईश्वरकूं सृष्टि नहीं रचनेका क्या प्रयोजन था?

उत्तरपक्षः—वाह रे बडडेके वावा! यह तूंने क्या उत्तर दीया, क्या यह उत्तर देखके विद्वान् तेरा उपहास्य न करेंगे? ईश्वर जे कर सृष्टि रचे, तो ईश्वरताही नष्ट हो जावे, यह वृत्तांत उपर अछी तरेंसे लिख आये हैं.

पूर्वपक्षः—ईश्वरकी जो सर्व शक्तियां हैं, सो सर्व अपनां अपनां कार्य करती हैं, जैसें आंख देखनेका काम करती है, कान सुननेका काम करते है, तैसेही जो ईश्वरमें रचना शक्ति है, सो रचनेसेंही सफल होती है, इस वास्ते जगत् रचता है.

उत्तरपक्षः—जब तुमनें ईश्वरकूं सर्व शक्तिमान् माना, तब तो ईश्वरकी सर्व शक्तियां सफल होनी चाहियें, तब तो ईश्वर एक सुंदर पुरुषका रूप रच कर १ सर्व जगत्की सुंदर सुंदर स्त्रीयोंसें जोग करे, अरु २ चोर वन कर चोरी करे, ३ विश्वास घातीपना करे, ४ जीवहत्या करे, ५ जूठ बोले, ६ अन्याय करे, ७ अवतार हो कर गोपीयोंसें कल्लोल करे, ८ अरु कुब्जासें जोग करें, ९ दूसरेकी मांगकूं जगा कर ले जावे, १० तथा शिरपर जटा रखे, ११ तीन आंख बनावे, १२ वैल उपर चढे, १३ तनमें विजूति लगावे, १४ एक स्त्रीकूं वामार्धंगिमें रखे, १५ किसी मुनिके आगें नंगा हो कर नचे, १६ किसीकूं वर देवे, १७ किसीकूं शाप देवे, इसी तरें १८ चार मुख बनाके एक स्त्री रखे, अरु १९ अपनी पुत्रीसें जोग करे, तथा २० संग्राम करे, २१ स्त्रीकों चोर ले जावे, तो पीछें उस स्त्रीके वास्ते रोता फिरे, २२ एक अपना जाइ बनावे, उसकूं जब संग्राममें कोइ शस्त्र लगे, तब जाइके दुःखसें बहुत रोवे, २३ अपणे आपकों तो अज्ञानी समजे, २४ जाइकी चिकित्सा वास्ते वैद्य बुलावे, २५ सर्व कुछ खावे, २६ पीवे, २७ नाचे, २८ कूदे, २९ रोवे, ३० पीटे, पीछेसें ३१ निर्मल, ३२ ज्योतिःस्वरूप, ३३ निरहंकार, ३४ सर्वव्यापक, बन वैठे. इत्यादिक पूर्वोक्त शक्तियां ई

श्वरमें है, वा नही? जे कर है तो इतने पूर्वोक्त सर्व काम ईश्वरकूं करने पड़ेगे जे कर न करेगा, तब तो ईश्वरकीया सर्व शक्तियां सफल न होवेगी? तब तो ईश्वर महा दुःखी हो जावेगा? क्योंकि जिसने नेत्र तो पाये है, अरु देखना उसकूं न मिले, तो वो कैसा दुःखी होता है? जे कर कहोगे पूर्वोक्त अयोग्य शक्तिया ईश्वरमें नही है, तब तो सर्व शक्तिमान् ईश्वर है, ऐसे फिर कदापि न कहना चाहिये जे कर कहोगे कि योग्य शक्तियाकी अपेक्षा हम सर्व शक्तिमान् मानते है, तब तो जगत् रचनेकीभी शक्ति अयोग्यही है, यह भी परमात्मामे नही इस शक्तिकी अयोग्यता उपर लिख आये है तथा हे पूर्वपक्षी! जब ईश्वरने प्रथमही सृष्टि रची थी, तब तो स्त्री पुरुषादिक थे नहिं, तब तो माता पिताके विना मनुष्य क्यो कर उत्पन्न होये होंगे?

पूर्वपक्ष —जब ईश्वरने सृष्टि रची थी, तबही बहुत पुरुष, अरु बहुत स्त्रीयो, माता पिताके विनाही रच गये थे, उनके आगे फिर गर्भसे उत्पन्न होने लगे

उत्तरपक्ष —यह अप्रामाणिक कहना कोइभी विद्वान् नही मानेगा, क्योंकि माता पिताके बिना कभी पुत्र नही उत्पन्न हो सक्ता है? जेकर ईश्वरने प्रथम माता पिताके विनाहि मनुष्य, स्त्री, उत्पन्न करे थे. तो अब भी घडे घडाये, बने बनाये, स्त्री पुरुष क्यो नही भेज देता? गर्भ धारण कराणा, स्त्री पुरुषका मैथुन कराणा, गर्भवासका दुःख भोगाना, योनिपत्रद्वारा खेचके निकालना इत्यादि संकट काहेकू रचने थे? अनंत वार ईश्वरने सृष्टि रची, अरु प्रलय करी, तब तो ईश्वर थाका नहीं, तो क्या मनुष्योंहीके बनानेसे थकेंवा चड गया? जो घडे घडाये, बने बनाये, नही भेज सका? यह कभी नही हो सक्ता, जो माता पिताके बिना पुत्र उत्पन्न हो जावे इस हेतुसेभी जगतका प्रवाह अनादिसे इसी तरें तारतम्य रूपमे चला आता सिद्ध होता है

पूर्वपक्ष —जे कर ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता न होवे, अरु जीवही कर्त्ता होवे, तब तो जीव आपही शरीर धारण कर लेवेगा, अरु शरीरकू कदेइ न छोडेगा, अरु आपणे आपकूं अच्छा फल लगा लेवेंगे. फेर तो कभी मरेंगे नही

उत्तरपक्ष —जो तुमने कहा है सो सर्व कर्मोंके वश है, परंतु जीवके अधीन नहीं जे कर कहोगे कर्मभी तो जीवनेही करे थे तब क्यों जीवने अशुभ कर्म करे? क्योंकि कोइ भी अपणो बुरे करणेमें नहीं है, इस

का उत्तर तो दीया गया है, परंतु तुमारी समझ थोडी है, जो नहीं समझो. क्यों कि जो जो अवस्था जीवोंकी शुभ अशुभ है, सो सर्व कर्मोंका फल है. तथा जीव जो है, सो कर्म करणेमें तो प्रायः स्वतंत्रही है, परंतु फल भोगनेमें स्ववश नहीं. क्योंकि जैसें कोइ जीव धनुपसें तीर चलावे, अरु फिर उस तीरकूं पकडने सामर्थ्य नहीं. तथा कोइ जीव विष खावे, सो तो स्ववश है, परंतु उस विषवेगके रोकणेमें जीव समर्थ, नहीं ऐसेही जीव कर्म तो स्वतंत्रतासे प्रायः करता है, परंतु फल भोगनेमें जीव पर वश है, जैसें वर्तमानमें रेलगाडी सर्व जीवोंहीने इस तरेंकी बनाइ है, परंतु उस चलती हुइ रेलके तथा तारके वेगकूं जितना चिर, उस कलकी प्रेरणाशक्ति नहीं हटती, इतना चिर, कोइ जीव नहीं रोक कर सक्ता. ऐसेही कर्मफल वेगके रोकणेकूं जीवभी समर्थ नहीं है, तथा जीव कूं भवांतरमें कौन ले जाता है? तथा जीवके शरीरकी रचना आंखोके पडदे तथा नाना प्रकारके रंग वरंगके हाड, चाम, लोहु, वीर्य, इत्यादिक रचना कौन रचता है? इसका पूर्ण स्वरूप जहां कर्म प्रकृति (१४८) का स्वरूप लिखेंगे, तहांसें जाननां. इस हेतुसें ईश्वर जगत् कर्त्ता किसी तरेंभी सिद्ध नहीं होता, विशेष करकें जगत् कर्त्ता ईश्वरका खंमन देखनां होवे, तो श्री (१) सम्मतितर्क, (२) द्वादशसार नयचक्र (३) स्याद्वादरत्नाकर, (४) अनेकांतजयपताका, (५) शास्त्रसमुच्चय स्याद्वादक ल्पलता. (६) स्याद्वादमंजरी, (७) स्याद्वादरत्नाकरावतारिका, (८) सूत्रकृतांग, (९) नंदीसिद्धांत, (१०) शब्दांभोनिधिगंधहस्तीमहाभाष्य, (११) प्रमाणसमुच्चय, (१२) प्रमाणपरीक्षा, (१३) प्रमाणमीमांसा, (१४) आप्तमीमांसा, (१५) प्रमेयकमलमार्त्तंम, (१६) प्रमेयरत्नमार्त्तंम, (१७) न्यायावतार, (१८) धर्मसंग्रहणी, (१९) तत्त्वार्थ, (२०) षट्दर्शनसमुच्चय. इत्यादि जैनमतके ग्रंथ देख लेने. इस वास्ते जो कामी, क्रोधी, छली, धूर्त, परस्त्री स्वस्त्री गमन करनेवाला, नाचने वाला, गाने बजाने वाला, रोने पीटने वाला, भस्म लगाने वाला, माला जपने वाला, संग्राम करने वाला, तथा मरु आदिक बाजे बजाने वाला, वर वा शापके देने वाला, विना प्रयोजन अनेक संक्लेशोंमें फसने वाला, इत्यादिक जो अगरह दूषण करी सहित है, सो कुदेव है, उसकूं ईश्वर मानना सोइ मिथ्यात्व है,

इन कुदेवोंकूं मानने वाले पत्थरकी नावो उपर वैठे है, इस वास्ते लिखनेका प्रयोजन इतना ही है, जो कुदेवकू कदेइ अर्हत नगवत परमेश्वर करी न मानना ॥ इतिश्री तपागछीयेमुनिश्रीबुद्धिविजयशिष्यमुनिआनदविजयआत्मारामविरचिते, जैनतत्त्वादर्शे, कुदेवनिर्णयनामा द्वितीय परिछेद सपूर्ण २

॥ अथ तृतीयपरिछेद प्रारंन ॥

॥ यह तीसरे परिछेदमे गुरुतत्त्वका स्वरूप कहते है, जैनमतमे गुरुके लक्षण ऐसे लिखे है ॥ अनुष्टुब् वृत्तं ॥ महाव्रतधरा धीरा, नैक्षमात्रोपजीविन ॥ सामायिकस्था धर्मोप, देशकागुरवो मता ॥१॥ अस्यार्थ —अहिंसादि पाच महाव्रतका धारने पालने वाला होवे, अरु आपदा आ पडे, तव धीर साहसिकपणा करे, अपणे जो व्रत है, तिनकूं दूषण लगा के कलकित न करे, तथा बेतालीश दूषण रहित, निक्षावृत्ति माधुकरीवृत्ति करी, अपणे चारित्र धर्मके तथा शरीरके निर्वाह वास्ते नोजन करे, नोजननी पूरा पेट नर कर न करे, नोजनके वास्ते अन्न, पाणी, रात्रिकूं न राखे, तथा धर्मसाधनके उपकरण वर्जके और कुछनी सग्रह न करे तथा धन, धान्य, सुवर्ण, रूपा, मणि, मोती, प्रवालादि परिग्रह न राखे तथा राग, द्वेषके परिणाम रहित, मध्यस्थ वृत्ति हो कर, सदा वर्त्ते, तथा "धर्मोपदेशक" जो धर्म, जीवोके उद्धार वास्ते सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप परमेश्वर, अर्हत, नगवतें स्याद्वादअनेकांत स्वरुप निरूपण कीया है, उस धर्म्मकू जो नव्य जीवोके ताइ उपदेश करे, परंतु ज्योतिषशास्त्र, अष्ट प्रकारका निमित्त शास्त्र, तथा वैद्यशास्त्र, धन उत्पन्न करनेका शास्त्र, राजसेवा आदिक अनेक शास्त्र, जिनसे धर्मकूं वाधा पहुंचे, तिनका उपदेशक न होवे, क्यो कि लौकिक जो शास्त्र है, सो तो वुद्धिमान् पुरुष वर्त्तमानमेंनी वहुत सीखते है, तथा नवीन नवीन अनेक सासारिक विद्याके पुस्तक वनाते हुये चले जाते है, तथा अंगरेजोकी वुद्धि देख कर इस देशके लोकनी वहुत सासारिक विद्यामे निपुण होते चले जाते है इस वास्ते साधुकू धर्मोपदेश ही करना चाहिये, क्यो कि धर्महो जीवोकू पाना कठिन है, ऐसे गुरु के लक्षण जैन मतमे है

तथा प्रथम जो पांच महाव्रत साधुकुं धारने कहे हैं, सो कोन कोन सें वे पांच महाव्रत हैं ? सो कहते हैंः—श्लोक ॥ अहिंसा सूनृतास्तेय, ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः ॥ पंचभिः पंचभिर्युक्ता, भावनाभिर्विमुक्तये ॥ २ ॥ अस्यार्थः—(१) अहिंसा, (जीवदया,) (२) सूनृत. (सत्य बचन बोलनां,) (३) अस्तेय (साधुके उचित. वस्तुकूं बिना दीयां न लेनां,) (४) ब्रह्मचर्यका पालनां, (५) सर्व परिग्रहका त्याग, इन पांचोंका नाम महाव्रत कहते हैं. तथा ए पांच महाव्रतोंमें एकैक महाव्रतकी पांच पांच भावना हैं, यह पांच महाव्रत, अरु पच्चीश भावना, ए सर्व मोक्षके वास्ते पाले.

अब इन पांचो महाव्रतोंमेंसूं प्रथम महाव्रतका स्वरूप लिखीये हैं ॥ ॥ श्लोक ॥ न यत् प्रमादयोगेन, जीवितव्यपरोपणं ॥ त्रसानां स्थावरा णां च, तदहिंसाव्रतं मतं ॥ ३ ॥ अस्यार्थः—त्रस, (द्वींद्रियादिक जीव) अरु स्थावर, (१) पृथवीकाया, (२) अप्काया, (३) अग्निकाया, (४) पव नकाया, (५) बनस्पतिकाया, ए पांचोकूं स्थावर जीव कहते हैं. इन स र्व पूर्वोक्त जीवोंकूं प्रमाद वश हो कर मारे नहीं, प्रमाद नाम है, राग, द्वेष, असावधानपणा, अज्ञान, मन वचन कायाका चंचल पणा, धर्मके विषे अनादर, इत्यादि प्रमादके वश हो कर जो प्राणातिपात करना, इस का जो त्याग करणां, इसका नाम अहिंसा व्रत है.

अब दूसरे महाव्रतका स्वरूप लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ प्रियं पथ्यं वच स्तथ्यं, सूनृतव्रतमुच्यते ॥ तत्तथ्यमपि नो तथ्य, मप्रियं चाहितं च यत् ॥ ॥ ४ ॥ अस्यार्थः—जिस वचनके सुननेसें दूसरा जीव हर्ष पावे. तिस ब चनकूं प्रिय बचन कहियें, तथा जो वचन जीवोंकूं पथ्यकारी होवे, परि णामसुंदर होवे, एतावता जिस वचनसें जीवके आगें बहुत सुधारा हो वे, तथा जो वचन सत्य होवे. ऐसा जो बचन बोले, सो सूनृतव्रत क हियें, इस व्रत विषे कछुक विशेष लिखते हैं, जो वचन व्यवहारमें चाहो सत्यही होवे, परंतु जो आगले जीवकूं दुःखदायी होवे, ऐसा बचन न बो ले, जैसे काणेकूं काणा कहनां, चोरकूं चोर कहनां, कुष्ठीकूं कुष्ठी कहनां, इत्यादिक जो बचन दूसरेकूं दुःख दायी होवे, सो न बोले, तथा जो बचन जीवोंकूं आगें अनर्थका हेतु होवे, वसुराजावत् सोभी न बोले. जे कर

यह दोनों वचन बोले, तब तो उस साधुके सूनृत व्रतमे कलंक लग जावे, क्योकि ए दोनो वचन जूठहीमे गिने है

अब तीसरा महाव्रत लिखते है ॥ श्लोक ॥ अनादानमदत्तस्या, स्ते यव्रतमुदीरित ॥ बाह्या प्राणानृणामर्थो, हरतात्तहताहिते ॥ ५ ॥ अस्यार्थ –अदत्त, मालिकके विना दीया ले लेणा, तिसका जिसके नियम है, सो अस्तेय व्रत कहीयें, अचोरीव्रत नामातर है, अदत्तादान चार प्रकारका हे (१) जो वस्तु साधुके लेने योग्य है, अचित्त जीवरहित वस्तु तृण, काष्ट, पाषाणादिक वस्तुयोके स्वामीकूं विना पूछे ले लेना सो स्वामी अदत्त. (२) तथा जैसें कोइ भेड बकरी, गौ प्रमुख कोइ इनका स्वामी दूसरे हिंसक जीवकू मोल लेकर दे देवे, अथवा विना मोल दे देवे, अरु लेनेवालेने देइ होइ वस्तु लीनी है, परतु उस जीवने तो अपणा शरीर नही दीया है, इस हेतुसे जीवअदत्त (३) तथा जो जो वस्तु आधाकर्मादिक आहार, अचित्त जीव रहितभी है, अरु दीनीभी उस वस्तुके स्वामीने है, परतु तीर्थंकर भगवतें निषेध करी है, फेर जो साधु उस वस्तुकूं ले लेवे, सो तीर्थंकर अदत्त (४) तथा जो वस्तु निर्दोष है, वस्त्र आहारादिक अरु उस वस्तुके स्वामीने वो दीनी है, अरु तीर्थंकर भगवतें निषेध नही करी है, परतु गुरुकी आज्ञा विना वो वस्तुकू साधु ले लेवे, सो गुरु अदत्त इस महाव्रतमें ए चार प्रकारका अदत्त न लेणा. जितने व्रत नियम है, वे सर्व अहिंसाव्रतकी रक्षा वास्ते वाडी समान है, यह पूर्वोक्त तिसरे व्रतका जो पालना है, सो अहिंसा व्रतहीकी रक्षा होती है अरु जो तीसरा महाव्रत न पाले तो अहिंसा व्रतकू दूषण लगे है, यही बात कहते है ॥ "बाह्या प्रणा नृणा" मनुष्योका अर्थ, (लक्ष्मी) जो है, सो बाहिरला प्राण है जब कोइ किसीकी चोरी करता है, सो निश्चय करके उसके प्राणोहीका नाश करता है इसी हेतुसे चोरी करना महा पाप है, सर्व चोरीका जो त्याग करना है, इसीका नाम तीसरा अदत्तादान त्यागरूप महा व्रत है

अब चोथे महाव्रतका स्वरूप लिखते है ॥ श्लोक ॥ दिव्यौदारिककामाना, कृतानुमतिकारितै ॥ मनोवाक्कायतस्त्यागो, ब्रह्माष्टदशधा मतम् ॥ ६ ॥ अस्यार्थ –दिव्य (देवताके) वैक्रिय शरीर सबधि जो काम भोग, अरु औदारिक शरीर तिर्यंच मनुष्यका, तिन सबधी जो काम भोग, एतावता वैक्रिय

शरीर अरु औदारिक शरीर, ए दोनोंके साथ विषय सेवन करनां, और दूसरायोंसें विषय सेवन करावणां, विषय सेवन जो करे उसकूं अछा जाननां, ए छ भेद मन करकें, छ बचन करकें, अरु छ काया करकें, एवं अष्ठारह प्रकारका जो मैथुन सेवनका त्याग करे, उसकूं ब्रह्मचर्य व्रत कहते हैं.

अब पांचवा महाव्रत लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ सर्वभावेषु मूर्छाया, स्त्यागस्यादपरिग्रहः ॥ यदि सत्स्वपि जीयेत, मूर्छया चित्तविप्लवः ॥ ७ ॥ अस्यार्थः—सर्व संपूर्ण जो अछाभाव पदार्थ, द्रव्य, क्षेत्र, कालभावरूप वस्तु, तिस विषे जो मूर्छा, ममत्वभाव मोह, तिसका जो त्याग करे, तिसका नाम अपरिग्रह व्रत कहियें, परंतु जिसके पास अपणे शरीरके विना दूसरी कोइ वस्तु नहीं, तोभी तिसकूं निष्परिग्रहपणा न कहियें. किंतु जिसकी मूर्छा, ममत्व, सर्व बस्तुसें हट जावे, उसीको निष्परिग्रह व्रत कहियें, क्योंकि जिसके पास कोइ वस्तु नहीं, अरु अण होइ वस्तुकी जिसकूं चाहना लग रही है, वो त्यागी नहीं, जे कर ज्ञानद्वारा मूर्छा त्यागे बिना, त्यागी हो जावे, तब तो कुत्ते अरु गर्दभभी त्यागी होना चाहियें, अरु जो पुरुष ममत्व रहित है, सो निष्परिग्रह है, चाहो उसके पास धर्म साधनके कितनेक उपकरणभी हैं, तोभी मूर्छाके न होनेसें वो परिग्रह नहीं.

अब इन पूर्वोक्त एकेक महाव्रतकी पांच पांच भावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ भावनाभिर्भावितानि, पंचभिः पंचभिः क्रमात् ॥ महाव्रतानि नो कस्य, साधयंत्यव्ययं पदम् ॥ १ ॥ अस्यार्थः—यह जो पांच महाव्रतोंकी पच्चीश भावना हैं, जो कोइ इन भावना करकें अपणे अपणे महाव्रतकूं रंजित वासित करे, एतावता पांच पांच भावना पूर्वक अखंड महाव्रत पाले तो ऐसा कोइ जीव नही है, जिसकूं ए महाव्रत मोक्षपदमें न पहुंचावे?

अब प्रथम महाव्रतकी पांच भावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ मनोगुप्त्येषणादानै, र्याभिः समितिभिः सदा ॥ दृष्टान्नपानग्रहणे ना हिंसा भावयेत्सुधिः ॥१॥ अस्यार्थः—मनकूं पापके काममें न प्रवर्त्तावे, किंतु पापके कामसें अपणे मनकूं हटा लेवे, इसका नाम मनोगुप्ति कहते हैं. जे कर पापके काममें मनकूं प्रवर्त्तावे, अरु चाहो बाह्यवृत्ति करकें हिंसा नहींभी करता, तोभी प्रसन्नचंद्र राजर्षिकी तरें सातमी नरकके जाने योग्य कर्म उत्पन्न कर लेता है, इस वास्ते मुनिकूं अवश्य मनोगुप्ति करनी चाहियें, ए

प्रथम नावना दूसरी नावना एषणासमिति. सो आहारादिक चार वस्तु आधाकर्मादिक बेंतालीश दूषण रहित लेवे, बेंतालीश दूषणका पूरा स्वरूप देखना होवे, तो पिंमनिर्युक्ति शास्त्र (७००) श्लोक प्रमाण है. सो देख लेनी, ए दूसरी नावना तीसरी नावना आदाननिक्षेप नामा है, जो कुछ पात्रक. दंम, फलक प्रमुख लेना पडे, तथा नूमिकाके उपरि रखना पडे, तब प्रथम नेत्रोसे देख लेना, पीछें रजोहरण करके पूंज लेवे, पीछे सें लेना अरु रखना करे, क्योंकि विछु सर्पादिक अनेक जहेरी जीव, जे कर उस उपकरणके उपर बैठे होवे, तब तो काट खावे, अरु दूसरा जीव बिचारा अनाथ कोइ बेग होवे, तो हाथके स्पर्शसे मर जावे, तब तो जीवहत्याका पाप लग जावे, इस वास्ते जो काम करना, सो यत्नपूर्वक करना, ए तीसरी नावना. चोथी नावना जब चलनेका काम पडे, तब अपणी आखोसे चार हाथ प्रमाण धरती देख कर चले, जो कोइ नीचा देख कर चलता है, उसकू इस लोकमे कितनेक गुण प्राप्त हो जाते है, प्रथम तो पगकू गोकर नही लगती, दूसरा जिसके परिग्रहका त्याग न होवे, उसकूं गिरा पडा पैसा. रूपक, आदि मिल जावे, तीसरे लोकमे नला मनुष्य किसीकी बहू बेटीकू देखता नही, ऐसा प्रसिद्ध हो जाता है, चोथे जीवकी रक्षा करनेसे धर्मकी प्राप्ति होती है, ए चोथी नावना पाचमी नावना जो अन्न, पाणी, साधु लेवे, सो प्रकाशवाली जगामे लेवे, अंधकार वाली जगासे न लेवे, क्योंकि अंधकारवाली जगामें एक तो जीव नहीं दीख पडता, और दूसरा साप विछुके काटनेका मर रहेता है, तथा गृहस्थका कोइ आनूषण प्रमुख जाता रहे, तब उसके मनमें शंका उत्पन्न हो जावे, कि क्या जाने अंधेरेमेसे साधुही ले गया होगा ? तथा अंधेरेमे सुंदर साधुकू देख कर कदा चित् कोइ उत्कट विकार वाली स्त्री लिपट जावे, अरु उस वखत कोइ दूसरा देखता होवे, तो धर्मकी वडी निंदा होवे, तथा साधुहीका मन अंधेरेमें स्त्रीकू देख कर बिगड जावे, साधु स्त्रीकू पकड लेवे, स्त्री पुकार कर देवे, तब तो वडी धर्मकी हानी, होवे तथा साधुओकी अप्रीति हो जावे, इस वास्ते अंधेरेकी जगासे साधु अन्नादिक न लेवे, ए पाचमी नावना. ए प्रथम महाव्रतकी पांच नावना है

अब दूसरे महाव्रतकी पाच नावना लिखते है॥ श्लोक ॥ हास्यलोनन

यक्रोधः,प्रत्याख्यानैर्निरंतरम् ॥ आलोच्य नाषणमपि,नावयेत्सूनृतं व्रतं ॥१॥ अस्यार्थः–प्रथम तो किसीकी हांसी न करे, हांसीका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष किसीकी हांसी करेगा, वो अवश्य जूठ बोलेगा, ए जो परकी हांसी करणी है, सो बडा अनर्थका कारण हो जाती है. श्रीहेमचंद्र सूरिकृत रामायणमें लिखा है, कि रावणकी बहिन शूर्पनखाकी श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजीने हांसी करी थी, तब शूर्पनखा क्रुद्ध हो कर अपने नाइ रावणके पास जा कर सीताका वर्णन करा, फेर रावण सीताकूं हर कर ले गया, एह बडा संग्राम हुआ, आज तांइ लोक नकल बनाते है, इस सारी रामायणका निमित्त शूर्पनखाकी हांसी है, इस वास्ते पर हास्यका त्यागरूप प्रथम नावना जाननी. दूसरी नावना लोनका त्याग करनां, क्योंकि जो लोनी होगा सो अवश्य अपने लोनके वास्ते जूठ बोलेगा, क्योंकि यह बात सर्व लोकोमें प्रसिद्ध है, जो लोनी होगा, वो जरूर जूठ बोलेगा, ए दूसरी नावना. तथा नय न करनां, क्योंकि नयवंत पुरुषनी जूठ बोल देता है, ए नय त्यागरूप तिसरी नावना. तथा क्रोध करनेका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष क्रोधके वश होगा, वो दूसरायोंके हूवे अणहूवे दूषण जरूर बोलेगा, इस वास्ते क्रोध त्यागरूप चोथी नावना. तथा प्रथम मनमें विचार कर लेवे, पीछेसें बोले क्यो कि जो बिचार करे विना बोलेगा वो अवश्य जूठ बोलेगा, इस वास्ते विचार पूर्वक बोलनां. ए पांचमी नावना. ए दूसरे महाव्रतकी पांच नावना है.

अब तीसरे महाव्रतकी पांच नावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ आलोच्यावग्रहयाञ्चा, नीक्ष्णावग्रहयाचनं ॥ एतावन्मात्रमेवैत, दित्यवग्रहधारणं ॥ १ ॥ समानधार्मिकेन्यश्च, तथावग्रहयाचनं ॥ अनुज्ञापि तथा नान्ना, सनमस्तेयनावना ॥ २ ॥ अस्यार्थः–जिस मकानमें साधुने रहणा होवे, तो प्रथम उस मकानके स्वामीकी आज्ञा लैणी, घरका स्वामी यही है, ऐसा जान कर आज्ञा लैणी, जे कर स्वामीकीआज्ञा विना रहे, तो चोरी लगे अरु रात्रिमें कदाचित् घरका स्वामी क्रोध करकें साधुकूं वांहांसें निकाल देवे, तब साधु रात्रिमें कहां जावे? इत्यादि अनेक क्लेश उत्पन्न हो जाते हैं, इस वास्ते मकानके स्वामीकी आज्ञा ले कर उसके मकानमें रहनां. ए प्रथम नावना. दूसरी नावना उपाश्रयके स्वामीकी वार वार आज्ञा लेनी, क्योंकि कदाचित् कोइ साधु रोगी हो जावे, तब जंगल पुरीष मूत्र करनेकूं

जरूर जगा चाहियें, गृहस्वामीकी आज्ञाके विना जो उसके मकानमे मल मूत्र करे, तो चोरी लगे, इस वास्ते गृहस्वामीकी आज्ञा वार वार लेनी, ए दूसरी भावना तीसरी भावना उपाश्रयकी भूमिकाकी मर्यादा कर लेवे, कि इतनी जगा तक हमारेकूं तुमारी आज्ञा रही, जे कर मर्यादा न कर लेवे तो अधिक भूमिकाकू काममे लानेसे चोरी लगती है, इस वास्ते प्रथमही मर्यादा कर लेवे, ए तीसरी भावना तथा चोथी जो साधु समान धर्मी होवे, अरु वो किस जगामें प्रथम उतर रहा है, पीछें दूसरे साधु जो उस मकानमें उतरा चाहे, तो प्रथम साधुकी आज्ञा विना न रहना, जे कर प्रथम साधुकी आज्ञा न लेवे, तो स्वधर्मी अदत्त लागे, ए चोथी भावना पाचमी भावना साधु जो कुछ अन्न, पान, वस्त्र, पात्र, शिष्यादिक लेवे, सो सर्व गुरुकी आज्ञासें लेवे, जे कर गुरुकी आज्ञा विना कोइ वस्तु ले लेवे, तो गुरु अदत्त लागे ए पाचमी भावना ए तिसरे महाव्रतकी पाच भावना है

अब चौथे महाव्रतकी पांच भावना लिखते है ॥श्लोक॥ स्त्रीपंढपशुमद्देश्मा, सनकुड्यातरोज्झनात् ॥ सरागस्त्रीकथात्यागात्, प्राग्गतस्मृतिवर्जनात् ॥ १ ॥ स्त्रीरम्यागेक्षणस्वांग, संस्कारपरिवर्जनात् ॥ प्रणीतात्यशनत्यागात्, ब्रह्मचर्यं तु भावयेत् ॥ २ ॥ अस्यार्थ –जिस घरमे अथवा आसनमें अथवा भीतके अतरे देवी अथवा मनुष्यकी स्त्री वसे, (रहे,) अथवा देवांगनाकी वा स्त्रीकी लेप, चित्राम प्रमुखकी मूर्ति होवे, तथा पंढ नपुंसक तीसरे वेद वाला जिस घरमे रहता होवे, तथा पशु, गाय, महिषी, घोडी, वकरी, भेड प्रमुख तिर्यच स्त्री जिस मकानमे रहती होवे, तथा जिस मकानमें काम सेवन करती स्त्रीका शब्द तथा दूसरा कोइ मोह उत्पन्न करनेका शब्द, तथा आभूषणोका शब्द, सुणाइ देवे, इन पूर्वोक्त विशेषणो सयुक्त मकानमे तथा एक भीतके अतरेमे साधु न रहे, ए प्रथम भावना तथा सराग (प्रेम सहित) स्त्रीके साथ वार्त्तालाप न करे, अथवा सराग स्त्रीके साथ वार्त्ता न करे तथा स्त्रीके देश, जाति, कुल, वेष, भाषा, स्नेह, शृगार प्रमुखकी कथा सर्वथा न करे, क्योंकि सराग स्त्रीके साथ जो पुरुष स्नेह सहित कामशास्त्र प्रमुखकी कथा करेगा, सो अवश्य विकार भावकू प्राप्त होगा, इस वास्ते सराग स्त्रीसे कथा न करे, ए दूसरी भावना तथा दीक्षा लेनेसें पहिले गृहस्थावस्थामे जो स्त्रीके साथ कामक्रीडा, वद

नचुंबन, चौराशी कामासनसें विषयसेवन प्रमुख क्रीडा करी होवे, तीसकों फेर मनमें कदेइ न स्मरण करणां, क्योंकि पूर्व क्रीडास्मरणरूप इंधनसें कामाग्नि फिर धुखने लग जाती है, ए तीसरी नावना. तथा अविवेकी जनोंकूं देखने, अरु बांछने योग्य स्त्रीके अंग जो मुख, नयन, स्तन, जघन, होठ प्रमुख तिनोंकों सराग दृष्टिसें देखनां तथा अपूर्व विस्मय रसके पूरमें मग्न हो कर आंख फाड देखनां वर्जे, परंतु जो राग रहित दृष्टि करी कदाचित् देखनेमें आ जावें, तो दोष नहीं. तथा अपणे शरीरकूं संस्कार करणां, स्नान, विलेपण, धूप करणी, नख, दांत,केश,समा रचनां, कंगी सुरमासें विनूषा करणी, इत्यादिक शरीरसंस्कार न करे, क्योंकि स्त्रीके रमणिक अंग देखनेसें जैसें दीप शिखामें पतंगीया जल जाता है, ऐसें कामी पुरुषन्नी कामाग्निमें जल जाता है, क्यों कि शरीर जो है, सो सर्व अशुचिका मूल है, इसका जो शृंगार करणां है, सो अज्ञानता है, जैसे मलिन वस्तुकी कोथलीके उपर जे कर चंदन घस कर लगा दिया, तो क्या वह कोथली सुगंधित हो जाती है? यह शरीर अंतमें मशानकी एक मुठी राखकी बन जायेगी, फिर किस वास्ते इस शरीरकी शोना करणेमें व्यर्थ काल खोवे है? ए चोथी नावना. तथा प्रणीत, स्निग्ध, मधुरादि रस, इनका अधिक आहार करणां, तथा रूखा नोजनन्नी कंठ उदर पूर कर खानां, ए दोनोंही प्रकारके आहारका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष, निरंतर स्निग्ध, मधुर रसका आहार करेगा, उसके जरूर धातुपुष्ट होवेगी, तब तो वेदोदय करी अवश्य कुशील सेवेगा. अरु रूक्ष निक्षावृत्तिका नोजनन्नी प्रमाणसें अधिक नहीं करणां, क्योंकि रूक्ष नोजन अधिक करणेसें काम उत्पन्न हो जाता है, अरु अधिक खानेसें शरीरकूं पीडा उत्पन्न हो जाती है, विशूचिका प्रमुख रोग हो जाते हैं, इस वास्ते प्रमाणसें अधिक नोजनन्नी न करे. पूर्व पुरुषोंने खानेकी ऐसें मर्यादा लिखी हैं कि ॥यतः॥ अद्धमसणस्स सव्वं, जणस्स कुज्जा दवस्स दो नागे ॥ वाउपविआरणठा, बज्जाय ऊणगं कुज्जा ॥ १ ॥ अस्य तात्पर्यार्थः—बुद्धि करिकें अपणे उदरके ६ नाग करणे,तिनोमें तीन नाग तो अन्नसें नरने, अरु दो नागमें पानी, एक नाग खाली रखणां,जिस्सें सुखें सुखें उछ्वास निःश्वास आता रहे,ए पांचमी नावना. ए चोथे व्रतकी पांच नावना.

अब पांचमे महाव्रतकी पांच नावना लिखते है ॥ श्लोक ॥ स्पर्शे रसे च

गंधे च, रूपे शब्दे च हारिणि ॥ पच सुहेंद्रियार्थेषु, गाढ गार्ध्यस्य वर्जनं ॥ १ ॥ एतेष्वेवामनोज्ञेषु, सर्वथा द्वेषवर्जन ॥ आकिंचन्यव्रतस्यैव, ज्ञावना पच कीर्त्तिता ॥ २ ॥ युग्म ॥ अस्यार्थः—स्पर्शादिक मनोहर पाच विषयोंमे जो अत्यंत गृद्धिपणा सो वर्जना, अरु स्पर्शादिक अमनोज्ञ पांच विषयोंमें द्वेष न करणा ए पाचमे महाव्रतकी पाच ज्ञावना. एव पूर्वोक्त पांच महाव्रत, अरु पच्चीश ज्ञावना जिसमें होवे, सो गुरु तथा चरणसित्तरी अरु करणसित्तरी करके सयुक्त होवे, सो जैनमतमे गुरु है

अथ चरण सित्तरीके सित्तर ज्ञेद लिखते है ॥ गाथा ॥ वय समण धम्मसजम, वेयावच्च च बन्न गुत्तीउं ॥ नाणाइ तियं तव को,ह निग्गहाइं इ चरणमेयं ॥ १ ॥ अर्थ —व्रत पाच प्रकारका, श्रमणधर्म दश प्रकारका, संयम सत्तर प्रकारका, वैयावृत्त्य दश प्रकारका, ब्रह्मचर्य गुप्ति नव प्रकारकी, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, ए तीन प्रकारका, तप वार प्रकारका, निग्रह क्रोधादिक चार प्रकारका, ए सर्व सित्तर हुये, तीनमेसूं पाच व्रतका स्वरूप तो उपर ज्ञावना सयुक्त लिख आये है, सो जानना

तथा श्रमणधर्म दश प्रकारका लिखीये है ॥ गाथा ॥ खंतिय मद्दव ऊव, मुत्ती तव सजमे य बोधव्वा ॥ सच्चं सोयं आकिं,चणं च बन्नं च जइधम्मो ॥१॥ अस्यार्थ —(१) क्षांति (क्षमा) करणी चाहो सामर्थ्य होवे,चाहो असामर्थ्य होवे, परतु दूसरेके डुर्वचन सहनेके जो परिणाम मनोवृत्ति है, तिसका नाम क्षमा कहते है, सर्वथा क्रोधका त्याग क्षमा, (२) कोमल कहीये अहंकार रहित, तिसका जो ज्ञाव, वा कर्म सो कहिये मार्दव, नीचा हो कर अभिमान रहित होणा, (३) ऋजु कहिये मन, वचन, काया करी सरल, तिसका जो ज्ञाव, वा कर्म, सो आर्जव, मन वचन कायाकी कुटिलताइसे रहित, (४) मोचन मुक्ति बाहिर, अंदर, तृष्णाका त्याग लोज्ञका त्याग, (५) रसादिक धातु अथवा अष्ट प्रकार कर्म, जिस करकें तपे सो तप अनशनादि वारा प्रकारका, (६) संयम, आश्रवकी त्यागवृत्ति, (७) सत्य, मृषावाद विरति जूठका त्याग, (८) शौच, अपणी सयमवृत्तिमे कोइ कलक न लगावनां, (९) नहीं है किंचित् मात्र ड्व्य जिसके पास सो आकिंचन, (१०) नव ब्रह्मचर्यकी गुप्ति, ए दश प्रकारका यतिधर्म, तथा मतातरमे दश प्रकारका

यतिधर्म ऐसेभी कहते हैं ॥गाथा॥ खंती मुत्ती अज्जव, मद्दव तह लाघवे तवे चेव ॥ संजम चियाग किंचण, बोधवे बंभचेरंय ॥१॥ अस्यार्थः सुगमः ॥

अथ सत्तर भेद संयमके लिखते हैं ॥ गाथा ॥ पंचासवाविरमणं, पंचिंदिय निग्गहो कसाय जउ ॥ दंमत्तयस्स विरई, सत्तरसहा संजमो होइ ॥ १ ॥ अथवा ॥ पुढवि दग अगणि मारुय, वणसइ बि ति चउ पणिंदि अजीवा ॥ पहु पेहपमज्जण, परिठवण मणो वई काए ॥२॥ इनोंका अर्थः— उत्पन्न करीयें कर्म इनों करकें सो आश्रवाः सो आश्रव पांच प्रकारका है, जो पांच महाव्रतोमें त्यागने लिखे हैं. (१) हिंसा, (२) जूठ, (३) चोरी, (४) अब्रह्म, (५) परिग्रह, ए पांच आश्रवका त्याग करे, तथा स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु अरु श्रोत्र, ए पांचों इंड्रियका स्पर्शादिक पांचों विषयोंविषे लंपटपणा त्यागे, तथा क्रोध, मान, माया अरु लोभ, इन चारों कषायका जीतनां. इन चारोंके उदय होयाकूं निःफल करणां, अरु जो नहीं उदय आये उनकूं उत्पन्न न करणां तथा दंमीयें चारित्र धर्मरूप लक्ष्मी जीव पासों इनों करकें सो खोटा मन, खोटा बचन, खोटी काया, इन तीनों दंमकी विरति करणी. एवं सत्तर भेद करिकें संयम है, अथवा प्रकारांतर करकें सत्तर भेदसें संयम कहते हैं,(१) पृथिवी, (२) उदक, (३) अग्नि, (४) पवन, (५) वनस्पति, (६) द्वींड्रियजीव, (७) त्रींड्रियजीव, (८) चतुरिंड्रिय जीव, (९) पंचेंड्रिय जीव, इन पूर्वोक्त नवविध जीवोंकूं मन, वचन, अरु काया करी करणां,करावणां,अरु करणे वालेकूं भला जाननां, सरंभ समारंभाऽरंभ, इन नव विकल्पोसें पूर्वोक्त नवविध जीवोंकी हिंसा त्यागनी, ए नव प्रकारका संयम. जो प्राणीके प्राणकूं बिनाशनेका संकल्प करणां, इसका नाम सरंभ है, जीवके प्राणकूं जो परिताप करनां, (पीडा देनी) इसका नाम समारंभ है, तथा जीवोंका प्राणका जो विध्वंस करनां, इसका नाम आरंभ है; तथा (१०) अजीव संयम जिस अजीव वस्तुके राखणेसें संयम कलंकित हो जावे, जैसें मांस, मदिरा, सुवर्ण प्रमुख सर्व धातु, मोति आदिक सर्व रत्न, अंकुशादिक सर्व शस्त्र, इत्यादिक अजीवके रखनेसें संयममें कलंक होवे, सो अजीव वस्तु न रखणी; तथा अजीव रूप जो पुस्तक, अरु शरीरोपकरणादि, सो डुःखमादि दोपसें तैसी बुद्धि नहीं, आयु लंबी नहीं, श्रद्धा, संवेग, उद्यम, बल, ए सर्व हीन हो

गये है, विद्या कंठ रहती नही, इस वास्ते इस कालमें जो पुस्तक रखणा, सो प्रतिलेखणा, प्रमार्जनापूर्वक यतनोसें राखणा, ए दसवा अजीव संयम (११) प्रेक्षासंयम सो नेत्रोंसें देख करके बीज, हरि प्रमुख जीवो करी रहित स्थानमे सोना, बैठणां, चलना, इत्यादिकके करणेसे प्रेक्षासंयम. तथा (१२) उपेक्षासंयम सो गृहस्थकूं पापका व्यापार करतेकू उपेक्षणा सो (उपदेश देणा) कि यह काम तुम ऐसें करो, एसे जो गृहस्थकूं कहना, सो उपेक्षा सयम, अथवा केइ साधु सयमसे चलायमान हो गया होवे, उसकूं हित करके जो उपदेश करना, सो प्रेक्षासयम, तथा पार्श्वस्थादिक जो साधुकी समाचारीसें भ्रष्ट हो गये है, अरु वो भ्रष्ट साधु कोइ अनुचित काम कर रहा है, अरु साधुभी अपणे मनमे जान जावे जो इसकू उपदेश करुगा, तो इसने मानना नही है, इस वास्ते जो औदासीन्य रहणा, उसका नाम उपेक्षासयम, (१३) प्रमार्जन संयम, सो देखे हुये स्थानमें वस्त्र पात्रादिक जो लेने, वा रखने पडे, तब प्रथम रजोहरणादिकसे प्रमार्जन करके पीछेसें लेना, रखना, सोना, बैठनां करे, तब प्रमार्जना सयम, तथा (१४) भात, पाणी, वस्त्र, पात्रादिक जिसमें जीव पड गयें होवे, तब तिनकूं जीवो रहित शुद्ध भूमिकामे शास्त्रोक्त विधि कर जो परिष्ठापना करे, सो परिष्ठापनासयम, तथा (१५) मनमे द्रोह, ईर्ष्या, अभिमान,तो न करणा,अरु धर्मध्यानादिकमे मन प्रवृत्त करणा, सो मन सयम तथा (१६) हिंसाकारी कठोर वचनको त्यागना, अरु शुभ वचनमें प्रवृत्त होना, सो वचनसयम, तथा (१७) गमनागमन करणेमे अरु अवश्यकरणे योग्य कामोमे उपयोग पूर्वक जो कायाकूं प्रवृत्तावे, सो कायासयम, ए सत्तरभेद सयमके जानना

अथ वैय्यावृत्तके दश भेद कहते है ॥ गाथा ॥ आयरिय उवयाए, तवस्सि सेहे गिलाण साहुसु ॥ समणोन्न सघ कुल गण, वेयावच्च हवइ दसहा ॥१॥ अर्थ –(१) ज्ञानादिक पाच आचारकू जो पाले, सो आचार्य, तथा सेवीये जो, सो आचार्य तथा (२) जिनके समीप आ कर पढीये, सो उपाध्याय, तथा (३) तप जो करे, सो तपस्वी, तथा (४) जिसने नवाही साधुपणा लीया है, सो शिष्य, तथा (५) ज्वरादि रोग वाला जो साधु सो ग्लान, तथा (६) जो धर्मसे डिगतेकू स्थिर करे, सो स्थविर, साधु

तथा (७) जिस साधुकी अपणे समान एक समाचारी होवे, सो समनोज्ञ, तथा (८) साधु, साधवी, श्रावक अरु श्राविका इन चारोंको जो समुदाय सो संघ, तथा (९) बहुते एक सरिखे गच्छोंका सजातियोंका जो समूह,सो कुल चंद्रादिक जाननां, तथा (१०) एक आचार्यकी वाचनावाले साधुवोंको समूह, सो गण गच्छ कौटिकादिक. इन पूर्वोक्त आचार्यादिक दसोंका अन्न, पाणी, वस्त्र, पात्र, मकान, पीठ, फलक, संस्तारक प्रमुख धर्म साधनों करकें जो साहाय्य करणां, शुश्रूषा करणी, भेषज करणी, उजाड (जंगल) में रोग उत्पन्न होनेसें. तथा नाना प्रकारके उपसर्गोंमें पालना करणी, इसका नाम वैय्यावृत्त है.

अथ जो शीलवान् साधु होवे, सो नव वाड सहित शील पाले, उनकूं नवविध ब्रह्मचर्यकी गुप्ति कहते हैं, सो लिखते हैं ॥गाथा॥ वसहि कह निसिज्जिंदिय,कुडूंतर पुव्वकीलिय पणीए ॥ अइमायाहार विभूसणाइ नव बंभ गुत्तीउ ॥१॥ अर्थः—१ (वसहि के०) वस्ती सो जो ब्रह्मचारी साधु होवे सो स्त्री,पशु,पंडक इनों करी, संयुक्त जो वस्ती होवें,तहां ब्रह्मचारी न रहे,तिनमें सूं प्रथम तो स्त्री जो है,सो दो तरेंकी हैं, एक तो देवी, दूसरी मनुष्यणी, इन दोनोके दो दो भेद हैं, एक तो असल, और दूसरी इनकी मूर्त्ति, वा चित्रामकी मूर्त्ति, यह दोनो प्रकारकी स्त्री जहां न होवे, तिस वस्तिमें रहे, तथा पशु जो तिर्यंचिणी, गौ, महिषी, घोडी, वकरी, भेड प्रमुख जिस वस्तिमें नहीं रहे, तहां रहे, तथा पंडक सो नपुंसक, तीसरे वेद वाला, महा मोहवाला काम करनेहारा, स्त्री अरु पुरुष, इन दोनोंके साथ विषय सेवने वाला, जिस वस्तिमें रहता होवे, तहां ब्रह्मचारी न रहे, क्योंकि इन तीनों करी संयुक्त वस्तिमें रहते थके उनोंकी कामविकारकी चेष्टा देखनेसें, ब्रह्मचारीके मनसें विकार उत्पन्न होनेसें ब्रह्मचर्यकूं वाधा होती है, जैसे मूषा अरु बिल्ली दोनु एक जगे रहे, तो मूषेकूं सुख नहीं; तैसेही इन तीनो संयुक्त वस्तिमें रहणेसें शीलकूं उपद्रव होवे, ए प्रथम ब्रह्मचर्य गुप्ति.

२ तथा (कह के०) कथा सो केवल स्त्रीयोंहीकूं तथा एकली स्त्रीकूं धर्मदेशना वचनका प्रबंधरूप कथा न कहे, तथा स्त्रीकी कथा नकरे ॥ यथा ॥ कर्णाटी सुरतोपचारचतुरा, लाटी विदग्धा प्रिया ॥ इत्यादिक कथा न करे, क्योंके यह कथा जो है, सो राग उत्पन्न करनेकी हेतु है, जो स्त्रीके देश, जाति,

कुन, वेप, जाषा, गति, (चलना) विभ्रम, इंगित, हास्य, लीला, कटाक्ष, स्नेह, रति, कलह, शृंगार, इत्यादिक जो विपयरसकी पोखने वाली कामिनीकी कथा है, सो कदेइ न करे जे कर करे, तो अवश्य मुनिकाजी मन विकारकू प्राप्त हो जावे ए दूसरी ब्रह्मचर्यकी गुप्ति है

३ तथा (निसिज्ज के०) आसन सो स्त्रीयोके साथ एक आसन उपर न बेठना, तथा जिस जगेसे स्त्री उठी होवे, उस आसन वा स्थानमे दो घडी तक साधु न बेठे, क्यों कि उस जगे तत्काल बैठनेसे स्त्रीकी स्मृति होती है, औ स्त्रीके बेठनेसे शय्या वा आसन, मैलसे मलिन होता, स्त्रीके स्पर्शवाले आसनादि स्पर्शसे विकार उत्पन्न हो जाता है, ए तीसरी ब्रह्मचर्यगुप्ति

४ तथा (इंदिय के०) इंद्रिय सो अविवेकी लोकोकूं देखने योग्य, स्त्रीयोके अंगोपांग जो नाक, स्तन, जघन प्रमुख है, उसकू ब्रह्मचारी साधु अपूर्व रसमे मग्न हो कर, नेत्र फाड कर, न देखे, कदाचित् दृष्टि पड जाय, तो पीछेसे ऐसी चितवना जी न करे, जैसे कि वडे सुंदर लोचन है ! नासिका वहुत सीधी है ! वांछने योग्य दोनो कुच है ! जे कर स्त्रीके पूर्वोक्त अंगोपांग एकाग्र रस मग्न हो कर चितवना करे, तो अवश्य मन मोहे, तथा विकारकू प्राप्त होवे

५ तथा(कुड्डंतर के०) कुड्यांतर सो जिन जीतके, तट्टीके, कनातके, अंतर बीचमे होनेसे स्त्री पुरुष, मैथुन करते होवे, अरु उनका शब्द सुणाइ देवे, तहां साधु ब्रह्मचारी न रहे ए पाचमी गुप्ति

६ तथा (पुव्वकीलिय के०) पूर्वक्रीडा सो पूर्वगृहस्थ अवस्थामे स्त्रीके साथ जो विपय जोग क्रीडा करी होवे, तीसकू स्मरण न करे, जे कर करे, तो कामाग्नि प्रज्ज्वलित हो जाता है, ए छठी गुप्ति

७ तथा (पणीय के०) प्रणीत सो अति चीकणा, मीठा, दूध, दधि प्रमुख अति धातुपुष्ट करनेवाला आहार निरंतर न करे, जे कर करे, तो वीर्यकी वृद्धि होनेसे अवश्य वेदोदय होगा, फेर जरूर विषय सेवेगा, क्योंकि जो बोदी कोथलीमे वहुत रूपिये जरेगा, तो जरूर फाट जायगी

८ तथा (अइमायाहार के०) अतिमात्राहार, सो रूखा जिक्षाजी प्रमाणसे अधिक न खावे, क्यो कि अधिक खानेसे विकार हो जाता है, अरु शरीरकू पीडा विशूचिकादिक होनेका कारण है, ए आठमी गुप्ति

९ तथा (विजूसणाइ के०) विजूषणादि शरीरकी विजूषा सो स्नान, विले

पन, धूप, नख, दांत, केश, इनकी सुंदरताइके वास्ते समारणां, तथा तिलक, सुरमा, कज्जल, विनूषाके वास्ते नेत्रोमें गेरनां, तथा जावेंसें पग मांजने, साबु, तेल प्रमुख मसल कर गरम पाणीसें सुकोमलताइके वास्ते धोनां, इत्यादिक शरीरकी विनूषा न करे, ए नवमी ब्रह्मचर्यगुप्ति. ए नव प्रकारकी गुप्ति सो ब्रह्मव्रतकी रक्षा रूप नव वाड है.

अथ ज्ञानादि तीन कहेते हैं, उसमें यथार्थ वस्तुका जो बोधक सो ज्ञान, सो ज्ञानावरणीय कर्मके क्षय तथा क्षयोपशमके होनेसें जो उत्पन्न हूया है बोध, तिसका हेतु जो द्वादशांग औ द्वादशोपांग, तथा प्रकीर्णक उत्तराध्ययनादिक, सो सर्व ज्ञान कहियें. तथा दूसरा दर्शन सो १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आश्रव, ६ संवर, ७ निर्जरा, ८ बंध, ए मोक्ष, इन जीवादिक नव तत्त्वका जो स्वरूप, तिनमें श्रद्धा (रुचि) करनी, जैसेंकी ए नव तत्त्व तथ्य हैं, मिथ्या नहीं, अैसी तत्त्वरुचि तिसका नाम दर्शन है, तथा तिसरा सर्व पापके व्यापारोंसें ज्ञान, श्रद्धान पूर्वक जो निवृत्त होनां, इसका नाम चारित्र हे, इस चारित्रकेनी दो नेद हैं, एक देशविरतिचारित्र,दूसरा सर्व विरतिचारित्र; उसमें देशविरति चारित्र तो जहां गृहाश्रम धर्मका स्वरूप लिखेंगें, तहांसें जान लेनां, अरु जो सर्वविरति चारित्र है, तिसकाही स्वरूप, इसी गुरुतत्त्वमें लिखने लग रहे हैं, ए ज्ञानादिक तीन जाननां.

अथ बारा प्रकारका तप लिखते हैं ॥ गाथा ॥ अणसण मूणोयरिया, वित्तीसंखेवणरसच्चाउ ॥ कायकलेसो संली, णया य बज्जो तवो होइ ॥१॥ पायच्चित्तं विणउ, वेयावच्चं तहेव सच्चाउ ॥ ज्जाणं उस्सग्गोविय, अप्भिंतर तवो होइ ॥ २ ॥ इनका अर्थः—१ व्रत करणां, २ थोडा खाणां, ३ नाना प्रकारके अनिग्रह करणे, ४ रस जो दूध, दहीं, घृत, तैल, मीग पक्वान्न, इनोका त्याग करनां, ५ कायक्लेश, वीरासन, दंमासन आदिक करी अनेक तरेंका कायक्लेश करनां, ६ पांचो इंडियोंकूं अपणे अपणे विषयोंसें रोकनां, ए ठ प्रकारका बाहिर तप है, १ जो कुछ अयोग्य काम करा अरु पीछेसें गुरुके आगें आपणा पाप जैसें करा था, वैसेही प्रगट पणे कहना, आगेकूं फेर वो पाप न करनां, अरु पूर्वें जो करा है, उसकी निवृत्तिके वास्ते गुरु पासों यथा योग्य दंम लेनां, इसका नाम प्रायश्चित तप है, तथा २ अपनेसें गुणाधिककी विनय करनी, तथा ३ वैय्यावृत्त नक्ति करनी,

तथा ४ एक आप दूसरायोको पढाना, दूसरा संशय उत्पन्न हूया गुरुकू पूछना, तीसरा अपने सीखे हूयेकूं वारवार उच्चारन करना, चौथा जो कुछ पढा है, उसके तात्पर्यकू एकाग्रचित्त करके चितना, इसका नामअनुप्रेक्षा है पाचमी धर्मकथा करनी, ए पाच प्रकारका स्वाध्याय तप है, तथा ५ एक आर्त्तध्यान, दूसरा रौद्रध्यान, तीसरा धर्मध्यान, चौथा शुक्लध्यान, इन चारोमेंसू आर्त्तध्यान अरु रौद्रध्यान, ए तो दोनो त्यागने, औ धर्मध्यान अरु शुक्लध्यान, ए दोनो अगीकार करने, ए ध्यानतप तथा ६ सर्व उपाधियोंकों त्याग देना सो व्युत्सर्ग तप है, ए छ प्रकारका अभ्यतर तप है, ए सर्व मिल कर बारा प्रकारका तप है

क्रोध, मान, माया, अरु लोभ इन चारोंका निग्रह करना यह पाच व्रत, दश श्रमणधर्म, सत्तर प्रकारका सयम, दश प्रकारका वैय्यावृत्त, नव प्रकारकी ब्रह्मचर्यगुप्ति, तीन ज्ञान, दर्शन, चारित्र, बारा प्रकारका तप, अरु क्रोधादिक चारका निग्रह, ए सर्व मिल कर सित्तर भेद चारित्रके है, इस वास्ते इनकूं चरणसित्तरी कहते है

अथ करणसित्तरीके भेद लिखते है ॥ गाथा ॥ पिंमविसोही समिई, भावण पडिमाय इंदिय निरोहो ॥ पडिलेहण गुत्तीउ, अभिग्गह चेव करण तु ॥ १ ॥ इसका अर्थ –पिंमविशुद्धि सो एक आहार, दूसरा उपाश्रय, तीसरा वस्त्र चौथा पात्र, ए चार वस्तुकू साधु बेतालीश दूषण करकें रहित लेवे, तिसका नाम पिंमविशुद्धि है बेतालीश दूषणका जो पूरा स्वरुप देखना होवे, तव तो पिंमनिर्युक्ति ग्रथ भद्रबाहुस्वामिकृत उसकी मलयगिरिसूरि कृत टीका सात हजार श्लोक प्रमाण है, सो देखनी. तथा पिंमविशुद्धि ग्रथ जिनवल्लभसूरिकृत औ उसकी जिनपतिसूरिकृत टीकासे जान लेना, तथा प्रवचनसारोद्धार श्रीनेमिचद्रसूरिकृतसूत्र, तथा उसकी सिद्धसेनसूरिकृतटीकासे जान लेना, तथा श्रीहेमचद्र सूरि कृत योग शास्त्रसे जान लेना.

अथ समिई सो पाच समिति, उसका स्वरूप लिखते है प्रथम ईर्या समिति, सो चलनेका नाम ईर्या कहते है, अरु समिति कहिये सम्यक् आगमके अनुसार जो प्रवृत्ति चेष्टा करणी, सो समिति कहियें त्रस स्थावर जीवोकू अभयदान दाता जो मुनि है, तिस मुनिकूं अवश्य प्रयोज

नके वास्ते चलनां पडे, तब किस रीतिसें चलनां? प्रथम तो प्रसिद्ध रस्तेसें चलनां, जो रस्ता सूर्यकी किरणोंसें प्रतप्त होवे, प्राशुक जीव रहित होवे, जिसमें स्त्री पुरुषका संघट्ट न होवे, जीवोंकी रक्षा निमित्त अथवा अपने शरीरकी रक्षा निमित्त पगके अंगूठेसें ले कर चार हाथ प्रमाण भूमिका आगेसें देख कर चलनां, इसका नाम ईर्यासमिति है. इस रीतिसें जो साधु चले, तथा दूसरा कोइ काम करे, तिस काममें कदाचित् कोइ जीव मरभी जावे, तोभी साधुकूं पाप नहीं लगता, क्योंकि उसका उपयोग व हुत शुभ है, यह प्रथम ईर्यासमिति. तथा पाप सहित भाषा, तथा कठोर भाषा, जैसें के तूं धूर्त्त है, कामी है, राक्षस है, चार्वाक प्रमुखके कहे शब्दोकों न कहे, जो शब्द, जगत्में निंदनिक होवे, सो न बोले, परकूं सुखदाइ बोलने में थोडा बहुत प्रयोजनोंका साधनेवाला संदेह रहित ऐसा वचन बोले, सो दूसरी भाषासमिति. तथा बैंतालीश दूषण रहित आहारादिक ग्रहण करे, सो तीसरी एषणासमिति, तथा आसन, संस्तारक, पीठ, फलग, वस्त्र, पात्र, दंडादिककों नेत्रोंसें देख कर उपयोग पूर्वक लेनां, अरु रखनां, करनां, सो चौथी आदाननिक्षेप समिति, तथा पुरीष, प्रश्रवण, थूक, नाकका श्लेष्म, शरीरमल वस्त्र, अन्न, पानी, जो शरीरका अनुपकारी होवे, इन सबकूं जीव रहित भूमिकामें स्थापन करनां, सो पांचमी परिस्थापना समिति, यह पांच समिति कही.

अथ बार भावना लिखते हैं. प्रथम अनित्यभावना, दूसरी अशरण भावना, तीसरी संसारभावना, चौथी एकत्वभावना, पांचमी अन्यत्वभाव ना, छठी अशुचित्वभावना, सातमी आश्रवभावना, आठमी संवरभावना, नवमी निर्ज्जराभावना, दशमी लोकस्वभावभावना, अग्यारमी बोधिदुर्लभ त्व भावना, बारमी धर्मका कथन करने वाला, अर्हन् है. यह बारा भाव ना जिस तरेसें भावने योग्य रात दिनमें है, तैसें अभ्यास करनां, इन बारां भावनायोंका किंचित् स्वरूप लिखते हैं,

१ अनित्यभावना. सो जिनका वज्रकी तरें सार अरु कठिन शरीर था, वोभी अनित्य रूप राक्षसेने भक्षण कर लीये, तो फेर केलेके गर्भकी तरें निःसार जो जीवोंका शरीर है, सो यह अनित्य रूप राक्षससें कैसें बचेंगे? तथा लोक, बिल्लीकी तरें आनंदित हो कर, विषय सुखका

दूधकी तरें स्वाद लेते है, परतु लाठीकी मारकूं नहीं देखते है, भावार्थ -विषयसुख भोग कर आनद तो मानते है, परतु जन्मातरमें नरकपतन रूप सकटसें नहीं मरते है, तथा जीवोंका शरीर तो पाणीके बुल बुलेकी तरें है, अरु जीवोंका जो जीवित है, सो ध्वजाकी तरे चचल है, तथा लावण्य, स्त्री, परिवार, आखकी पापण, (भांफण) की तरे चचल है, अरु यौवन जो है, सो हाथीके कानकी तरे चचल है, तथा स्वामीपणा जो है, सो स्वप्नश्रेणीकी तरे है, अरु लक्ष्मी जो है सो चपला (बीजली) की तरें चपल है, इसी तरे सर्व पदार्थोंकूं अनित्य पणा विचारता प्यारा पुत्रादिकभी मर जाये, तोभी अपणे मनमें शोच न करे, तथा जो मूर्ख जीव सर्व भावकू नित्य माने है, वो जीर्ण पत्रोकी झोंपडीके भंग होनेंसे रात दिन रुदन करता है, तिस वास्ते तृष्णाका नाश करके ममत्व रहित शुद्ध बुद्धि वाला जीव, अनित्य भावना भावे ॥ इति प्रथम भावना ॥ १ ॥

२ दूसरी असरण भावनाका स्वरूप कहते है पिता, माता, पुत्र, भार्या, प्रमुखके आगे बहुत आधि व्याधिके समूह रूप शृंखलामें बधा हुये रुदन करते हुयेकू कर्मरूप योद्धाने यमके (कालके) मुखमे प्रक्षेप करता थका बडा दुःख है, जो लोक शरण रहित अनाथ है, वे क्या करेंगे? तथा नाना प्रकारके शास्त्र विषयोकू जो जानते है, तथा नाना प्रकारके मत्र यत्रोकी क्रिया जो जानते है तथा जो ज्योतिषविद्याकू जानते हैं, तथा जो नाना प्रकारकी औषधि, रसायन प्रमुख वैद्यक क्रियाओमे कुशल है, ए सर्व विद्यावानोकी क्रिया कालके आगें कुछभी करनेकू समर्थ नहीं है, तथा नाना प्रकारके शस्त्रो वाले उद्भटयोद्धाओकी सेना करकें परिवेष्टितभी है, नाना प्रकारके मदभर हाथीयोकी वाडभी है ऐसे इद्र, वासुदेव, चक्रवर्त्ती सरीखे बलवान्भी कालके घरमे खेंचे हुये चले जाते है, बडा दुःख है कि जो प्राणियोकू कोइभी त्राण नहीं तथा जो मेरुका दड अरु पृथ्वीका छत्र करनेकूं समर्थ थे, अरु थोडाभी जिनकूं क्लेश नहीं था, ऐसे अनतबली तीर्थकरभी लोकोकू कालसे बचानेकू समर्थ नहीं, तो फेर दूसरा कोनसा समर्थ है? स्त्री, मित्र, पुत्रादिकोके स्नेहरूप भूतके दूर करणे वास्ते शुद्धमति जीव अशरण भावना भावे ए दूसरी अशरण भावना.

३ तीसरी ससार भावना कहते है. बुद्धिमान् तथा बुद्धि रहित,सुखी,

दुःखी, रूपवान् तथा कुरूपवान्, स्वामी तथा दास, प्यारा तथा वैरी, राजा तथा प्रजा, देवता, मनुष्य, तिर्यग्, नारक, इत्यादिक अनेक प्रकारकें कर्मोंके वशसें सांग धार कर, इस संसार रूप अखाडेमें यह जीव नाटक करता है, तथा अनेक पाप बांध करकें महारंन्न, मांस नक्षण, मदिरापानादिक कारणों करकें, महा अंधकार जहां कुछ नहीं दीखता, ऐसी नरकनूमिकामें जा करकें पडता है, तिहां अंग छेदन, अग्निमें बलनादि क्लेशरूप महा दुःख जो जीवकूं होते हैं, उन दुःखोंकूं केवलीनी कथन नहीं कर सक्ता. यह प्रथम नरकगति कही. तथा छल, जूगादिक कारणोंसें प्राणी तिर्यंच गतिमें सिंह, बाघ, हाथी, मृग, बैल, बकरे प्रमुखके शरीर धारण करता है. अरु तिस तिर्यंच गतिमें क्षुधा, तृषा, वध, बंधन, ताडन, रोग, हल प्रमुख में वहनां. इत्यादिक दुःख सदा जो जीव सहता है, वो दुःख कौन कहनेकूं समर्थ है ? यह दूसरी तिर्यग्गति कही.

तथा खाद्य, अखाद्य, विवेकशून्य, मनमें लज्जा नहीं, माता, बेटी, गमन करनेमें एक समान निःशुक्ता वल्लन है, तहां जो अनार्य मनुष्य हैं, वोतो निरंतर जीवघात, मांस नक्षण, चोरी, परस्त्रीगमन प्रमुख कारणों करकें बडा नारी पापकर्म महा दुःखोंका देने वाला उत्पन्न करते है, तथा आर्यदेशमेंनी क्षत्रिय, ब्राह्मण प्रमुख जो हैं, वेनी अज्ञान, दरिद्र, कष्ट, दौर्नाग्य, रोगादिक करकें पीडत हैं. दूसरोंका काम करणां, माननंग, अपमान प्रमुख अनेक दुःख निरंतर नोग रहे हैं, तथा अग्निवत् रक्त रंग है जिनका ऐसीयों सूइयों एक एक रोममें एकेक सूइ किसी जुवान पुरुषके एक कालमें चोन्नेसें जैसा उसकूं दुःख होवे तिस दुःखसें आठ गुणा दुःख जीव स्त्रीके गर्नमें जब रहता है तब पाता है, इस दुःखसें अनंत गुणां दुःख जन्म समय होते है, तथा बाल अवस्थामें मूत्र, पुरीष, धूलिमें लोटनां, अज्ञानी पणा, जगत्की निंदा, यौवनमें धन अर्जन करनां, इष्ट वस्तुका वियोग, अनिष्ट वस्तुका संयोग, अरु वृद्ध अवस्थामें शरीरका कंपनां, नेत्रोंका बलहीन हो जानां, श्वास, खांसी प्रमुख करकें महा दुःखी होनां तोवो कौनसी दशा है कि जिसमें प्राणी सुख पावे ? कोइनी नहीं यह मनुष्यगति कही. तथा सम्यग् दर्शनादिकके पालनेसें जो जीव देवता होता है, सोनी शोक, विषाद, मत्सर, नय, थोडी ऋद्धि करकें ईर्ष्या, काम, मद,

क्षुधा प्रमुख करके पीडित हो कर,आपणां आयु हीनमन हो कर पूर्ण करते है यह देवगति कही इस तरेसें मोक्षाभिलाषी पुरुष तीसरी संसार भावना भावे.

४ चोथी एकत्व भावना कहते हैं. एकलाही जीव उत्पन्न होता है, अरु एकलाही मृत होता है, एकलाही कर्म करता है, अरु एकलाही तिनका फल भोगता है, तथा जो जीवने बहुत कष्ट करके धन उपार्ज्या है, सो धन, स्त्री, मित्र, पुत्र, भाइ प्रमुख खा जावेंगे अरु जो पाप कर्म उपार्ज्या है, उसका फल तो करने वाला जीव एकलाही नरक, तिर्यंच गतिमें जाकर भोगता है, देखो यह कैसा आश्चर्य है! तथा यह जो जीव इस देहके वास्ते रात दिन फिरता है, अरु दीनपणा अवलंबन करता है, धर्मसे भ्रष्ट होता है, अपणे हितकूं ठगाता है, न्यायसें दूर होता है, सो देह इस आत्माके साथ एक पग तकभी परभवमे न चलेगी, तो फेर यह देह क्या करेगी? क्या साहाय्य देगी? अरु स्वजन जो है, सो अपने स्वार्थमें तत्पर है, तेरा वास्तवमे कोइभी नहीं इस वास्ते हे बुद्धिमान्! तू अपने हितके वास्ते धर्म करनेमे प्रयत्न कर. इस तरेसें चोथी एकत्व भावना भावे

५ पाचमी अन्यत्वभावना कहते है, जीव इस देहकूं छोड कर परलोककू जाता है, इस वास्ते इस शरीरसे जीव भिन्न है, तो फिर नाना प्रकारका सुगंधि लेपन करना व्यर्थ है, इस वास्ते इस शरीरकू कोइ दण्डादिक करके मारे तो समता रस पीना चाहियें क्रोध न करना, जो पुरुष अन्यत्वभावना भावे, तिसकूं शरीर, धन, पुत्रादिकके वियोग होनेसेभी शोक नहीं होता है यह पांचमी अन्यत्व भावना कही

६ छठी अशुचि भावना लिखते हे जैसे लूणकी खानमें जो पदार्थ पडता है वो सर्व लूण हो जाता है, तैसेही इस कायामे जो कुछ आहार पडता है सो सर्व मलरूप हो जाता है, ऐसी यह काया अशुचि है, तथा यह काया लोहि, अरु शुक्र इन दोनोके मिलनेसे गर्भ उत्पन्न होता है, जरा करकें वेष्टित होता है, जो कुछ माता खाती है, उसीके रसमें वो गर्भ, वृद्धिकू प्राप्त होता है, अरु स्थिल धातुयो भरी पूर्ण है, ऐसी देहकू कौन बुद्धिमान् शुचि मानता है? तथा जो सुस्वाद. शुभ गंध वाले मोदक, दहीं, दूध, इक्षुरस, शालि, उदन, द्राक्ष, पापड, अमृता, घेवर, आम्र प्रमुख खाता है, सो तत्काल मलरूप हो जाता है, ऐसी अशुचि कायाकू

महा मोहांध पुरुष, शुचि माने हैं. तथा पानीके सौ (१००) घडोंसें स्नान करकें सुगंधि, पुष्प, कस्तूरि प्रमुख द्रव्यों करकें बाहिरली त्वचा तो कितनेक कालतांइ मुग्धजीव शुचि सुगंधित करते हैं, परंतु विष्टेका कोठ मध्य नागमें कैसें शुचि होवे? तथा बडे हर्ष वृद्धिवाले द्रव्य करकें वासित है, दिशा, तथा चंदन, कस्तूरी, कर्पूर, अगरु, कुंकुम प्रमुख वस्तुका शरीरके साथ जब संबंध होता है, तब ए पूर्वोक्त सर्व वस्तु दुर्गंध रूप क्षण मात्रमें हो जाती है, फेर इस कायाकूं कौन बुद्धिमान् शुचि मानता है? ऐसे शरीरकी अशुचिरूपता विचार करकें बुद्धिमान् पुरुष, इस शरीरकी ममत्व न करे. यह उठी अशुचि नावना कही.

७ सातमी आश्रवनावना कहते हैं. मन, वचन, औ कायाके योग करकें शुनाशुन कर्म जो जीव ग्रहण करते हैं, तिसका नाम आश्रव, जिनेश्वर देव कहते हैं. सर्व जीवों विषे मैत्र नावना, गुणाधिक जीवमें प्रमोद नावना, अविनीत शिष्यादिकमें मध्यस्थ नावना, दुःखी जीवोमें कारुण्यनावना, इन चारो नावनाओं करकें जिस पुरुषका अंतःकरण निरंतर वासित होवे, वो पुण्यवान् जीव, बैंतालीश प्रकारका पुण्य उपार्ज्जन करता है. तथा रौद्रध्यान, आर्त्तध्यान, पांच प्रकारका मिथ्यात्व, शोल प्रकारको कषाय, पांच प्रकारका विषय, इनो करकें जिनोका मन वासित है, वे जीव, ब्याशी प्रकारका अशुन कर्म उपार्जन करते हैं, तथा सर्वज्ञ अर्हंत नगवंत, गुरु, सिद्धांत द्वादशांग, चार प्रकारका संघ, इन सर्वका जो गुणानुवाद कीर्त्तन करता है, अरु सत्य वचन हितकारी बोलता है, वे जीव, शुनकर्म उपार्ज्जन करते हैं. तथा श्रीसंघ, गुरु सर्वज्ञ, धर्म, अरु धर्म्मी इन सबके जो अवर्णवाद बोले, जूठे मतका, वा कपोल कल्पित मतका जो उपदेश करे, वो जीव अशुन कर्म उपार्ज्जन करता है. तथा जो पुरुष वीतराग देवकी पुष्पादिकें करी पूजा करे तथा साधुकी नक्ति, विश्रामण प्रमुख करे, तथा पापसें काया गुप्त करे, वो जीव, शुन कर्म उपार्जन करता है. तथा जो, जीव, मांसनक्षण, सुरापान, जीवघात, चोरी, जूआ, परस्त्रीगमनादिक करे, वो अशुन कर्म उपार्ज्जन करता है. ए अनुक्रमसें मन, वचन, काया करकें शुनाशुन आश्रव उपार्ज्जन करता है, इस प्रकारसें यह आश्रव नावना जो जीव नावे है, सो अनर्थ परंपराकूं त्याग देता है, अरु महानंदस्व

रूप, दुःख दावानलकूं मेघसमान ऐसी शर्मावलि मोक्षकी देने हारी अंगीकार करता है इस तरेसे सातमी आश्रवभावना भावे

८ आठमी संवरभावना कहते है, सो आश्रवोंका जो निरोध करनां, तिसकू सवर कहते है, सो संवर दो प्रकारका होता है, एक देशसवर, दूसरा सर्व सवर उसमें सर्व करिके सवर तो अयोगी केवलीमें होता है, अरु जो दे शसे संवर है, सो एक दो प्रमुख आश्रवके निरोध करने वालेमें होता है तथा वली सवर दो प्रकारका है, एक द्रव्यसवर, दूसरा भावसंवर उस मे जो कर्मपुद्गल आश्रव करके जीव ग्रहण करता है, तिनका जो देशसे वा सर्वसे छेदन करना. सो द्रव्यसंवर अरु जो भव हेतु क्रियाका त्याग, सो भावसंवर. मिथ्यात्व कषाय प्रमुख आश्रवोको जो बुद्धिमान् उपाय करकें निरोध करे, अरु आर्त्त, रौद्र ध्यान जो बुद्धिमान् वर्ज्जे, धर्मध्यान शुक्लध्यान ध्यावे, क्रोधकू क्षमा करके जीते, मानकूं मृदुभाव करके जीते, मायाकूं सरलता करके जीते, लोभकू सतोष करके जीते, इंद्रियोंके विषय इष्टानिष्टकूं राग द्वेषके त्यागनेसे जीते, इस प्रकारसे जो बुद्धिमान् सवरभा वना भावे, तो स्वर्ग मोक्षरूप लक्ष्मी अवश्य उसके वशीभूत हो जाती है

९ नवमी निर्ज्जरा भावना लिखते है संसारकी हेतुभूत जो कर्मकी सत ति है, तिसकी अतिशय करकें जो हानी करे, तिसका नाम निर्जरा है सो निर्जरा दो प्रकारकी है एक सकाम निर्जरा, दूसरी अकाम निर्जरा. इन दोनोमेसू जो सकाम निर्जरा है, सो उपशांति चित्तवाले साधुकू हो ती है, अरु अकामनिर्ज्जरा, शेष जीवोंकू होती है शेष जीवोंकू जो अ काम निर्ज्जरा होती है, सो कर्मका पाक स्वयमेव होता है, अरु उपायसें भी कर्मका पाक होता है, जैसे आंवका फल स्वयमेवही वृक्षकी माळीमें लगा हूवाही पक जाता है, अरु कोद्रवादिक पलाल गर्त्ताक्षेप करनेसंभी पक हो जाता है, ऐसेही निर्जराभी दो प्रकारकी है हमारे कर्मोंकी निर्ज्ज रा होवे ऐसे आशय वाले पुरुष जो तप प्रमुख करते है, उनोंके सकाम निर्जरा होती है, अरु एकेंद्रिय जो जीव है, तिनकू विशेष ज्ञान तो नहीं परंतु शीतोष्ण, वर्षा, दहन, छेदन, भेदनादिक करके सदा जो वो कष्ट भो गनेसें कर्म निर्जरा होती है, उसका नाम अकाम निर्जरा है. ऐसे तप प्रमुख करकें जो निर्जराकी वृद्धि करे, सो नवमी निर्जरा भावना जाननी

१० दशमी लोकस्वभाव भावना कहते हैं. यह पृथिवी, चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे अरु लोकाकाश, नरक, स्वर्ग प्रमुख सर्वकूं मिलाके एक लोक कहनेमें आता है, तिस संपूर्ण लोकका आकार जैनमतके सिद्धांतमें ऐसें लिखा है. जैसें कोइ पुरुष जामा पहिरकें कमरमें दोनो हाथ लगा कर खडा होवे, जैसा उसका आकार है, ऐसाही लोकका आकार है, षट्द्रव्य करकें पूर्ण है, उत्पत्ति, स्थिति,अरु व्यय,इन तीनों स्वरूपों करी संयुक्त है, अनादि अनंत है, किसीका रचा हूआ नहीं है, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्छालोक, इन तीन स्वरूपोमें बढा हूया है जो जीवपुद्गल, सब इसीके अंदर है, बाहिर नहीं. लोकसें बाहिर तो केवल एक आकाशही है, वो आकाशभी अनंत है, इसी आकाशका नाम जैन शास्त्रोमें अलोक नाम करके लिखा है, अधोलोकमें न्यारी न्यारी हेठ उपरि सात पृथिवी हैं, उनमें नरकवासी जीव रहते हैं, अरु किसी जगे भवनपति व्यंतरभी रहते हैं, तिर्छे लोकमें मनुष्य अरु तिर्यंच और व्यंतर रहते हैं, ऊर्ध्व लोकमें देवता रहते हैं, विशेष करकें जो लोकस्वरूप देखनां होवे, तो लोकनाडी द्वात्रिंशतिकासें तथा लोकप्रकाश ग्रंथसें जान लेनां. इसतरें लोकके स्वरूपका जो चिंतन करनां है, सो दशमी लोकस्वभावभावना है.

११ अगीयारमी बोधिदुर्लभत्व भावना कहते हैं, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, बनस्पति, इनमें अपणे करे हूये क्लिष्ट कर्मों करकें जीव भ्रमण करता है,इस भयानक संसारमें अनंतानंत पुद्गलपरावर्त्तन करता हूवा यह जीव अकाम निर्ज्जरा करकें, अरु पुण्य उपार्ज्जन करकें, बेंद्रिय, त्रींद्रिय, चउरिंद्रिय,पंचेंद्रिय रूप त्रस पणा पावे है, फेर आर्यक्षेत्र, सुजाति, भला कुल, रोग रहित शरीर, संपदा, बडा राज्यसुख, हलके कर्म, तत्त्वातत्वके विवेचन करने वाली, बोधबीजके बोने वाली, कर्मक्षय करकें मोक्ष सुखोंकी जननी, ऐसी श्री सर्वज्ञ अर्हंतकी देशना मिलनी बहुत दुर्लभ है, जे कर जीव एक वारभी सम्यक्त्वरूप बोधि पालता, तो इतने काल तांइ कदापि संसारमें पर्यटन न करता, जो अतीत कालमें सिद्ध हूये, जो वर्त्तमानमें सिद्ध होते है, अरु जो अनागत कालमें सिद्ध होवेंगे, वे सर्व बोधिहीके माहात्म्य है, इस वास्ते भव्य जीवकूं बोधिकी प्राप्तिमें यत्न करनां चाहियें; क्योंकि कि

तनेक जीवोंने अनत वार द्रव्य चारित्र पाया है, परतु वोधिके बिना सर्व निष्फल हूवा. यह अगीआरमी नावना कही

१२ वारमी धर्म कथाके कथन करनेवाला अर्हन् है यह नावना लिखते है जो पुरुप परहित करनेमे उद्यत है, अरु वीतराग है, वो किसी ज गामेनी जूठ न बोलेगा ईस वास्ते उसके कहे हूये धर्ममे सत्यता है, अैसा तो लोकालोककूं केवलज्ञान करके प्रकाश करनहार, अर्हतही हो सक्ता है, दूसरा नही क्षात्यादि दश प्रकारका धर्मकूं जिनेश्वर कहते हूये उस धर्म करके जीव, ससार समुद्रमे डूवता नही, जो अर्हतकी वाणी है, सो पूर्वापर अविरुद्ध है, अरु तिन वचनोंमे हिसाका उपदेश नही वचन जो कहते है, सो निर्ज्जरा वास्ते. दूसरेका उपदेश विना वि चित्र तरेसे कह जाते है, तथा कुतीर्थीयोंके जो वचन हे सो सर्व सन्न तिके वैरी है, क्यो के यज्ञादिकोमे पशुवध रूप हिसा करकें क लंकित हे, पूर्वापरविरोधी है, निरर्थक वचननी वहुत है, इस वास्ते जो कुतीर्थी धर्म कहते है, वोनी धर्मानास है, धर्म नही ईस हेतुसे तिनका वचन किस तरे प्रमाण हो सक्ता है? अरु जो जो कुतीर्थीयोके शास्त्रोमें कही कही दया सत्यादिकोंका कथन है, सोनी कहनेही मात्र है, परतु तत्त्वमे वोनी कुछ नही है, क्यो के यथार्थ ईनका स्वरूप वे जानते नही है, अरु यथार्थ पालते नही हे, प्रथम तो उन शास्त्रोके जो उपदेशक है, वेही सर्व कामाग्निमे प्रज्वलित थे, यह वात सर्व सुज्ञ जनोको वि ज्ञात है, ईस वास्ते अर्हत नगवतही सत्यार्थके उपदेशक है, तथा वडे मदऊर हाथीयोंकी घटा सयुक्त जो राज्यका पावना, औ सर्व जनोको आ नद देने वाली संपदाका पावना, तथा जो चद्रमाकी तरें निर्मल गुणका समूह पावना, अरु जो उत्कृष्ट सौनाग्यका विस्तार पावना, यह सर्व धर्म हीका प्रनाव है, तथा समुद्र जो पृथिवीकू अपणी कल्लोला करी वहाता नही है, तथा मेघ जो सर्व पृथिवीकू रेल पेल नही करता, अरु चद्रमा, सूर्य, जो उदय होते है, सर्व अधकारका विछेद करते है, सो सर्व जय वत धर्महीका प्रनाव है जिसका नाई नही, जिसका मित्र नही, जिस रोगीका कोई वैद्य नही, जिसके पास धन नही, जिसका कोई नाथ नही, जिसमे गुण नहीं, ईन सर्वका नाई, मित्र, वैद्य, धन, नाथ, गुणोंका निधान,

धर्म है. तथा यह जो अर्हंतका कथन कीया हूया धर्म है, सो महापथ्य है, ऐसें जो भव्य जीव मनमें ध्यावे, सो धर्ममें दृढतर होवे. एकही निर्मल धर्म भावनाकूं निरंतर जो जीव भावे, सो भव्य, अशेष पापकर्म नाश करकें अनेक जीवोंकूं उपदेश द्वारा सुखी करकें, परम पदकूं प्राप्त होता है, तो फेर जो बारांही भावना भावे, तिसके परमपद प्राप्ति होनेमें क्या आश्चर्य है? यह बारां भावना समाप्ति होगइ हैं ॥ १२ ॥

अथ बारां प्रतिमा लिखते हैं. एक माससें ले कर सात मास पर्यंत एक एक मासकी वृद्धि जान लेनी, ए सात प्रतिमा होती हैं. जैसें प्रथम एक मासकी, दूसरी दो मासकी, ऐसेही एक एक मास वृद्धि कर सात मास पर्यंत सात प्रतिमा होती हैं, औ आठमी सात दिन रातकी, नवमी सात दिन रातकी, दशमी सात दिन रातकी, अग्यारमी एक दिन रातकी, अरु बारमी प्रतिमा एक रात्रि प्रमाण जाननी एवं बारा प्रतिमा. अभिग्रह, अरु प्रतिज्ञा, ए एकही नाम है.

अथ जो साधु, इन बारां प्रतिमाकूं अंगीकार कर सक्ता है, तिसका स्वरूप लिखते हैं. "संहनधृतियुक्तः" तहां जिसका संहननवज्रऋषभनाराच होवे, सो परीषह सहनेमें अत्यंत समर्थ होता है, "धृति" सो चित्तका स्वस्थपणां होवे, तो रति, अरति करकें पीडित नहीं होता है, "महासत्त्वः" महासात्त्विक जो होवे, सो अनुकूल, प्रतिकूल, उपसर्ग सहनेमें विषादकों नहीं धरता है, "भावितात्मा" सद्भावना करकें वासित अंतःकरण होवे, तिसकी भावना पांच हैं तिनका विस्तार, व्यवहार भाष्यटीकासें जानना. ए भावना कैसें भावे? जैसें आगममें है, तथा जैसें गुरु आचार्य आज्ञा देवे, जे कर गुरुही प्रतिमा अंगीकार करे, तदा नवीन आचार्य स्थापन करकें उसकी आज्ञासें, तथा गछकी आज्ञा ले कर करे, तथा प्रथम आपणे गछमेंही रह कर प्रतिमा अंगीकार करणेका प्रतिकर्म करे, सो प्रतिकर्म यह है:—

मासादिक सात जो प्रतिमा हैं, तिनका प्रतिकर्मभी तितनाही है, वर्षा कालमें ए प्रतिमा नहिं अंगीकार करी जाती है, अरु परिकर्मभी वर्षाकालमें नहीं करणां तथा आदिकी दो प्रतिमा एक वर्षमें होती हैं, तीसरी एक वर्षमें, चौथी एक वर्षमें, शेष पांचमी, छठी, सातमी, इन तीनों प्र

तिमाओंका एक वर्षमे परिकर्म एक वर्षमे प्रतिमा, ऐसे नव वर्षमे आ दिकी सात प्रतिमा समाप्त करिये हे

अथ जो यह प्रतिमा अंगीकार करता है, उसकू कितना ज्ञान होता है? यावत् किंचित् न्यून दश पूर्व होता है. क्युंकि जिसकूं पूर्ण दश पूर्वकी विद्या होती है, उसका वचन अमोघ होता है, इस वास्ते उसकूं धर्मोप देश देना चाहिये उसके उपदेशसे बहुत जव्योकूं उपकार अरु तीर्थकी वृद्धि होनेसे प्रतिमादि कल्प करना चाहिये, अरु प्रतिमा अंगीकार करने वालोकों जघन्य ज्ञान नवमे पूर्वकी तीसरी वस्तु, आचार वस्तु जिसका नाम है, तहा ताइ होवे. इतना ज्ञान सूत्र तथा अर्थ, दोनोही पूरे होवे. क्योकि निरतिशय ज्ञानी होनेसे कालादिकको नही जान सकेगा, तथा "व्युत्सृष्ट" शरीरकी सार सजाल त्यागी है, देवतादिकका उपसर्ग सहै, जिनकल्पीकी तरे उपसर्ग सहे, तथा एपणापिमग्रहण प्रकार, जिक्षाग्र हण विधि, गछसे बाहिर रहे इत्यादि शेप वर्णन देखना होवे तो प्रव चनसारोद्धारकी वृहद्वृत्ति देख लेनी ए बारा प्रतिमा कही ॥ १ २ ॥

अथेंद्रियनिरोध कहते है "स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु श्रोत्रं चेति" यह पाच इंद्रिय अरु स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, ए पाच, पूर्वोक्त पाच इंद्रि योके यथाक्रम विषय है, इन पांचो विषयोका निरोध करना, क्यों के जो इंद्रिय वशमे न होगी तो वडी अनर्थकारी होगी, अरु क्लेश सागरमें गे रेंगी॥ यदन्यधायि ॥ आर्या वृत्तं ॥ सक्त शब्दे हरिण, स्पर्शे नागो रसे च वारिचर ॥ कृपणपतंगो रूपे, भुजगो गंधेन च विनष्ट ॥१॥ पंचसु सक्ता पंच, विनष्टा यत्र गृहीतपरमार्था. ॥ एक पंचसु सक्त, प्रयाति जस्मा ततः मूढ ॥ २ ॥ तुरगैरिव तरलतरै, र्दुर्दान्तैरिंद्रियै समाकृष्य ॥ उन्मार्गे नीयते, तमोघने दुःखदे जीव ॥ ३ ॥ अनुष्टुब्वृत्त ॥ इंद्रियाणां जये त स्मा, यत्न कार्य सुबुद्धिभि ॥ तज्जयो येन जविना, परत्रे हचशर्मणे ॥४॥

अथ प्रतिलेखना जैन साधुओमे प्रसिद्ध है. उस वास्ते नही लिखी

अथ तीन गुप्ति लिखते है मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायागुप्ति ए तीन गु प्ति हे इनका स्वरूप ऐसे है कि अशुभ मन, वचन, कायाका निरोध करणा, अरु अच्छी मन, वचन, कायाकी प्रवृत्ति करणी अभिप्राय यह हेकि, मनोगुप्ति तीन प्रकारकी है, आर्त्त, रौद्र ध्यानानुबंधी, कल्पनाका वियोग, ए प्रथम म

रकरिणी ॥२॥ "दार गाहा दो" इन दोनो द्वार गाथाका व्याख्यान नाष्य कारने पंदरा नाष्यगाथा करकें कीया है, जे कर नाष्यगाथा देखनेकी इच्छा होवे, तो व्यवहारनाष्य देख लेनी, इहां तो उन पंदरां गाथाओंका अर्थ नापामें लिख देता हुं, अर्थः—जैसीयों पूर्वकालमें सुगंधित फूलों वा लियों पुस्करिणीयों बावडीयों थी, वैसे फूलो वालीयों अब है नहीं, तोनी पुस्करिणीयों बावडीयों तो हैं; लोक इन सामान्य बावडीयोंसें अपना कार्य करते हैं ॥ १ ॥ तथा संपूर्ण आचारप्रकल्प, नवमे पूर्वमें था, उस नवमे पूर्वसें उद्धार करकें पूज्यपाद वैशाख गणिनें निशीथ रचा, तो क्या उस निशीथकूं आचारप्रकल्प न कहनां चाहियें? ॥ २ ॥ पूर्वकालमें तालो द्घाटिनी, अवस्वापिनी आदिक विद्याके धारक चोर थे, औ इस कालमें वो विद्या तो नहीं है, तो फिर क्या चोरी करने वालोंकूं चोर न कहनां चा हियें? ॥३॥ पूर्वकालमें तो चौदह पूर्वके पाठीकूं गीतार्थ कहते थे, तो इस कालमें जघन्य आचार प्रकल्प, निशीथ औ मध्यम आचार प्रकल्प बृहत्कल्पके पढे हूयेकूं इस कालमें क्या गीतार्थ न कहनां चाहियें? ॥४॥ पूर्वकालमें श्रीआचारांगका शस्त्रप्रज्ञा अध्ययनके पढनेसें, छेदोपस्थापनीय चारित्रमें स्थापन करते थे, तो क्या अब दशवैकालिकके छ जीवनीय अ ध्ययनके पढनेसें न स्थापन करना चाहियें? ॥ ५ ॥ दूसरे ब्रह्मचर्यके पां चमे उद्देशमें जो आमगंधी सूत्र है, उस सूत्रानुसार पूर्वें मुनि आहार ग्र हण करते थे, तो क्या अब पिंमैषणा अध्ययन अनुसारें न करना चाहि यें? ॥ ६ ॥ पूर्वें आचारांगके पीछे उत्तराध्ययन पढते थे, तो क्या अब द शवैकालिकके पीछे न पढना चाहियें? ॥ ७ ॥ पूर्वें मत्तांगादिक दश प्रका रके वृक्ष थे, तो क्या अब अंबादिक वृक्ष न कहने चाहियें? ॥ ८ ॥ पूर्वें बहुत गौवोंके समूहवाले नव गोपकूं ग्वाल कहते थे, तो क्या अब थोडी गौवों वालेकूं ग्वाल न कहनां चाहियें? ॥ ९ ॥ पूर्वें सहस्र मल्ल योध्दे थे, तो अब क्या किसीकूं योद्धा न कहनां चाहियें? ॥ १० ॥ पूर्वें छ मासी तपका प्रायश्चित्त था, तो क्या उसके बदले निवी प्रमुख प्राय श्चित्त न लेनां चाहियें? ॥ ११ ॥ इसी तरें जो पूर्वकाल मुनियोंकी वृत्ति नहीं, तो क्या आचार्य वा साधु न कहनां चाहियें? किंतु जरूरही साधु माननां चाहियें. तथा जीवानुशासन सूत्रकी वृत्तिमेंनी लिखा है कि पांच

मे कालमे साधु असाभी होवे, तोभी सयमी कहनां चाहियें, तथा निशीथमेभी लिखा है ॥ भाष्य गाथा ॥ जा सजमया जीवे, सु ताव मूले गुणुत्तर गुणाय ॥ इत्तरियछेय सजम, नियंठवउ सा पडिसेवी ॥ १ ॥ इस गाथाकी चूर्णीकी भाषा लिखते है, छकायोके जीवो विषे जब ताइ दयाके परिणाम है, तब ताइ बकुश निर्ग्रंथ औ प्रतिसेवना निर्ग्रंथ रहेगे, इसवास्ते प्रवचन शून्य औ चारित्र रहित पचमकाल कदापि न होवेगा, तथामूलोत्तरगुणोमे दूषण लगनेसे तत्काल चारित्र नष्टभी नही होता, मूलगुणभगमे दो दृष्टात है उत्तरगुण भगमे मम्पका दृष्टात है, निश्चयनयमे एक व्रत भग हूवा सर्व व्रत भंग हो जाता है, परतु व्यवहारनयके मतसे जो व्रत भंग होवे, सोइ भंग होवे दूसरे नही इस वास्ते बहुत अतिचारके लगनेसे सयम नही जाता, परतु जो कुशील सेवे, अरु धन रखे, औ कच्चा सचित्त पानी पीवे, प्रवचन अनपेक्ष, वो साधु नही जहा ताइ छेद प्रायश्चित्त लगे, तहा ताइ सयम सर्वथा नही जाता. तथा जो इस कालमे साधु न माने, सो मिथ्यादृष्टि है, क्यो कि स्थानांगसूत्रमे लिखा है, जो अतिचार बहुत लगते देखके ओ आलोचना प्रायश्चित्त यथार्थ कोइ लेता देता नही है, इस वास्ते साधु कोइ नही जो ऐसे कहे के वो चारित्र भेदिनी विकथाका करनेवाला है, तथा श्रीभगवती सूत्रके पच्चीशमे शतकके छठे उद्देशेकी संग्रहणीकार श्रीमदभयदेवसूरि, इन दोनो निर्ग्रंथोका जो स्वरूप है सो लिखते है, सो इहा भाषामें प्रगट लिखा जाता है ॥ गाथा ॥ बउस सबलं कब्बुर, मेगठ्ठमिह जस्स चारित्तं ॥ अइयार पकभावा, सो बउसो होइ निग्गथो ॥ १ ॥ व्याख्या—बकुश, शबल, कर्बुर, ए तीनो एकार्थ है एकही वस्तुको कहते है, ऐसा है चारित्र जिसका, अतिचार रूपपंक होनेमे सो बकुशनामा निर्गंथ है, इस भारत वर्षमे इसकालमे बकुश ओ कुशील ए दोनो निर्ग्रंथ है, शेष तीनो तो व्यवछेद हो गये है ॥ तथा चोक्तं परम मुनिभि ॥ "बकुश कुशीला दो पुण, जातिछ्छ तावहो हति इति ॥" इसका अर्थ बकुश कुशील ए दोनो निर्ग्रंथ जहा लग तीर्थ रहेगा तहा तक रहेंगे,

अब जो बकुश निर्ग्रंथ है, तिसके दो भेद है, सो कहते हे तहा जो वस्त्र पात्रादि उपकरणकी विभूषा करे सो उपकरण बकुश, ए प्रथम भेद

औ जो हाथ, पग, नख, मुखादिक देहके अवयवोंकी विभूषा करे, सो शरीरबकुश, ए दूसरा भेद जाननां. ए दोनों भेदोंके पांच भेद हैं ॥ गाथा ॥ उवगरणसरीरेसु, सो डुहा डुविहोवि होइ पंचविहो ॥ अभोग अणाभोग, असंवुड संवुडे सुहुमे ॥ १ ॥ अर्थः—इसमें दो पदोंका अर्थ तो उपर लिखा है, अगले दो पदोंका अर्थ लिखते हैं. साधुकूं यह करने योग्य नहीं, ऐसें जानताभी है, तोभी उस कामकों जो करे, सो प्रथम आभोग बकुश, और जो अजाण पणोंसें करे सो दूसरा अनाभोग बकुश. मूल गुण, उत्तर गुणोमें जो छिप कर छाना दोष लगावे, सो तीसरा संवृत बकुश, जो मूलगुण उत्तरगुणोंमें प्रगट दूषण लगावे, सो चौथा असंवृत बकुश. नेत्र, नासिका, मुखादिककी जो मल दूर करे, सो पांचमा सूक्ष्म बकुश जाननां.

अथ जो उपकरन बकुश है, तिसका स्वरूप लिखते हैं ॥गाथा॥ जो उपगरणे बउसो, सो धुवइअ पाउसे विवक्षइ ॥ इच्छइय लएहयाइं, किंचिविभूसाइ भुंजइय ॥ १ ॥ व्याख्याः—जो उपकरण बकुश है, सो प्रावृट् (पावस) ऋतु विनाभी जल क्षारसें वस्त्र धोता है, पावस ऋतुमें तो सर्व गछवासी साधुवोकूं आज्ञा है; जो एक वार वर्षासें पहिले आपणें सर्व उपकरण जल क्षारसें धो लेवे, नहीं तो वर्षाऋतुमें मलके संसर्गसें निगोदादिक जीवोंकी उत्पत्ति हो जावेगी, औ यह जो बकुशनिर्ग्रंथ है, सो पावस ऋतु बिना अन्य ऋतुवोंमेंभी जल क्षारसें वस्त्रादिक धो लेता है, औ बकुश निर्ग्रंथ, सुंदर, सुकुमाल, वस्त्रभी वांछता है, और उपकरण विभूषा शोभाके वास्तेभी कछुक पहिरता है॥ गाथा ॥ तह पत्त दंमयाई, घठं मठं सिणेह कयतेय ॥ धारेइ विभूसाए, बहुं च वछेई उवगरणं ॥ १ ॥ व्याख्याः—तथा पात्र, दंम प्रमुख घोटेसें घोटकें सुकुमार करे, तथा घी, तेल प्रमुख करी चोपडके तेजवंत चमकदार करकें रक्खे, अरु विभूषाके वास्ते बहुत उपकरण रखने चाहे, एतावता रक्खे.

अथ शरीर बकुशका स्वरूप लिखते हैं ॥ गाथा ॥ देह बउसो अकये, करचरण नहाइयं विभूसेइ॥ डुविहोवि इमो इढिं, इछइ परिवार पभिईय ॥ १ व्याख्याः—देहबकुश जो है, सो विना कारण हाथ, पग, नखादिककी विभूषा करे, जलादिसें धोवे, ऐसे उपकरण औ शरीर ए दोनो प्रकारका ब

कुश निर्ग्रंथ परिवार प्रमुखकी ऋद्धि वांछता है ॥ गाथा ॥ पंमित्त तवाइ क
य, जस च इच्छेइ तमि तुस्सइय ॥ सुहसीलो नयवाढ जयइ अहोरत्त किरि
यासु ॥ १ ॥ व्याख्या –पंमितपणे करी तथा तपादि करके यशकी इच्छा
करे, तिस यशके हुये थके बहुत खुशी माने. औ सुखशीलिया होवे, औ
दिन रात्रिकी क्रिया समाचारीमे बहुत उद्यमीभी नहीं होवे ॥ गाथा ॥ परि
वारो य असजम, अविवित्तो होइ किंचि एयस्स ॥ घसिय पाउ तिल्लाइ,
मासणि कित्तरिय केसो ॥ १ ॥ व्याख्या –इसका जो परिवार होवे, सो अ
संयमी कहते असयम वाला होवे, वस्त्र पात्रादिकके मोहसे वस्त्र पात्रादि
कसे दूर न जावे पग, जोजावे आदिकसे औ तैलादिक चोपडके सुकुमा
र करे, औ शिर, दाढी, मूछके वाल, कतरणीसे कापे, (कतरे) एतावता
लोचकी जगे उस तरे, वा कतरणीसें वाल दूर करे, परतु लोच न करे
॥ गाथा ॥ तह देस सवछेयारि, देहि सवलेहीं सजुउं बउसो ॥ मोहक्कयव
मप्र,छिउंय सुत्तमि भणिय च ॥ १ ॥ व्याख्या –तथा देशछेद सर्वछेद योग्य
दोपो करी जिसका चारित्र कर्बुर है, परतु मनमे उसके मोहक्षय करनेकी इ
च्छा है, एतावता मनमें सयम पालनेमे उत्साह है, परतु पूर्ण सयम पाल
नहीं सक्ता, इन पूर्वोक्त कृत्यो करी सयुक्त होवे, उसकू वकुशनिर्ग्रंथ कहिये.
औ सूत्रमेभी कहा है, सो यह आगे लिखते है ॥ गाथा ॥ उवगरण देह चु
क्खा, रिद्धि रसगारवासिया निच्च ॥ वहु सबल छेय जुत्ता, निग्गथा वउसा भ
णिया ॥ १ ॥ आभोगो जाणतो, करेइ दोस अयाण मण भोगे ॥ मूलुत्तरेहि
सवुम, विवरिय असवुमो होइ ॥ २ ॥ अछि मुह मज्जमाणो, होइ अहा सु
हमउं तहा वउसो ॥ सील चरण ज जस्स, कुछिय सो इह कुसीलो ॥ ३ ॥
पडिसेवणा कसाए, दुहा कुसीलो दुहावि पचविहो ॥ नाणे दसण चरणे,
तवेय अह सुहुमए चेव ॥ ४ ॥ इह नाणाइ कुसीलो, उवजीव होइ नाण
पभिईए ॥ अह सुहुमो पुण तुस्सई. एस तवसत्ति ससए ॥ ५ ॥ इन पाचो
गाथाओंकी व्याख्या –उपकरण देह शुद्ध रखे, ऋद्धि, रस, साता, ए तीनो
गारवमे नित्य आश्रित होवे, उपकरणोंमे अविविक्त रहे, परिवार जिनका
छेद योग्य शवल चारित्र सयुक्त सो निर्ग्रंथ वकुश कहते है॥१॥ साधुओंके
यह करने योग्य नहीं, ऐसे जानताभी है, तोभी उस कामकू करता है, सो
प्रथम आभोग वकुश कहिये. अरु अनजानपणेसे अकृत करे, तिसकू अ

नाभोग बकुश कहियें, ए दूसरा भेद. मूलोत्तर गुणों करी संयुक्त है, लोक ऐसें जानते हैं, परंतु छाना (गुप्त) दोष लगावे है, तिसकूं संवृत बकुश कहियें. ए तीसरा भेद. अरु जो प्रगट मूलोत्तर गुणमें दोष लगावे, तिसकूं असंवृत बकुश कहियें. ए चौथा भेद ॥ २ ॥ तथा जो आंख मुखादि मांजे, मलादि दूर करे, सो यथा सूक्ष्मबकुश कहियें. ए पांचमा भेद.

अथ कुशील निर्ग्रंथका स्वरूप लिखते हैं, शील कहियें चारित्र सो चारित्र जिसका कुत्सित है, सो कुशील निर्ग्रंथ, इसके दो भेद हैं ॥३॥ एक प्रतिसेवना कुशील, दूसरा कषायों करी कुशील, सो संज्वलनकी कषायों करकें जो कुशील सो कषाय कुशील, ए दोनोही भेद पांच प्रकारसें हैं, सो कहते हैं, जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ तप, ५ यथा सूक्ष्मतः ॥४॥ इहां ज्ञानादि कुशील तो जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अरु तप, यह चारो आजीविकाके वास्ते करे, सो इन चारोंका प्रतिसेवना कुशील तथा एह तपस्वी है, इत्यादि प्रशंसा सुणके बहुत खुशी होवे, सो पांचमा यथासूक्ष्मप्रतिसेवना कुशील जाननां. तथा जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ तपांसि तप, संज्वलन, कषायके उदय करकें इनका व्यापार करे, सो ज्ञान, दर्शन, चारित्रका कषाय कुशील जाननां. जो कषाय कुशील है, सो कषायके वश हो कर कें शाप दे देता है, मन करकें जो क्रोधादिकोंकों सेवे, सो यथासूक्ष्मकषायकुशील, अथवा कषायों करकें जो ज्ञानादिकोंकों विराधे, सो ज्ञानादिक कुशील जाननां. कोइक आचार्य, तप कुशीलके स्थानमें लिंगकुशील कहते हैं, यह दो प्रकारके निर्ग्रंथ पांचमे आरेके पर्यंत तक रहेंगे. जो कोइ इस तरेके साधुकूं साधु वा गुरु न माने, वो जीव, मिथ्यादृष्टि बहुल संसारी जिनमतका उत्थापक है, ऐसे मिथ्यादृष्टिकी संगतभी करनी योग्य नहीं ॥

इतिश्री तपगच्छीये मुनिश्री बुद्धिविजयशिष्य मुनिआनंदविजय आत्माराम विरचिते, जैनतत्त्वादर्शे गुरुतत्त्वस्वरूपनिर्णयनामा तृतीयःपरिच्छेदःसंपूर्णः॥३

॥ इति तृतीय परिच्छेदः संपूर्णः ॥ ३ ॥

॥ अथ चतुर्थपरिछेद प्रारंभ ॥

॥ यह चतुर्थ परिछेदमें कुगुरु तत्त्वका स्वरूप लिखते है ॥ श्लोक ॥ सर्वा निलाषिण सर्वे, नोजिन सपरिग्रहा ॥ अब्रह्मचारिणो मिथ्यो, पदेशागुर वोमता ॥ १ ॥ अस्यार्थ –(सर्वाभिलाषिण) सर्व जो स्त्री, धन, धान्य, हिरण्य, (सोना) रूपादि सर्व धातु तथा क्षेत्र, वास्तु क्षेत्र(खेत) हाट, हवे ली, चतु पदादिक अनेक प्रकारके पशु, इन सर्वकी अभिलाषा करनेका शील है जिसका, सो सर्वाभिलाषी, तथा (सर्वभोजिन) सो सर्व मद्य, मासादिक बावीश अभक्ष्य, तथा बत्तीस अनंतकाय, तथा अपर जो अ नुचित्त आहारादिक है, इन सर्वका भोजन करनेका शील है जिसका सो सर्वभोजिन (सपरिग्रहा) जो पुत्र, कलत्र बेटा, बेटी प्रमुख करी स हित वर्ते, सो सपरिग्रह इसी वास्ते अब्रह्मचारी है जो अब्रह्मचारी होता है, तिसमे महा दोष होते है, इस वास्ते अब्रह्मचारी असा न्यारा उप न्यास कया है, अथ अगुरुपणेका असाधारण कारण कहियें है, (मि थ्योपदेशा) मिथ्या (वितथ) आप्तके उपदेश विना धर्मका उपदेश है जिनका सो अगुरु है, जे कर इहा कोइ असी तर्क करे जो धर्मोपदेशका दाता है, सो गुरु है, तो फेर नि परिग्रहादि गुणोका काहेकू अन्वेषण कर णा ? इस शकाके दूर करणे वास्ते दूसरा श्लोक फेर कहते है

॥ श्लोक ॥ परिग्रहारंभमग्ना, स्तारयेयु कथ परान् ॥ स्वयं दरिद्रो न पर, मीश्वरीकर्त्तुमीश्वर ॥ २ ॥ अर्थ –परिग्रह स्यादि आरंभ जीवोकी हिंसा सर्वाभिलाषीपणा, औ सर्व भोजिपणा इन दोनो वस्तुओंमे जो मग्न है, औ भवसमुद्रमें डूबा हूया है, वो किसतरेंसे दूसरे जीवोकू ससार सागरसें तार सक्ता है ? इस बातमें दृष्टात कहते है, कि जो पुरुष आपही दरिद्री है, वो दूसरोंको क्यु कर धनाढ्य कर सक्ता है ? प्रथम श्लोकके चोथे पदमें “मि थ्योपदेशागुरवोमता ” इस पदका विस्तार लिखते है, कुगुरु जो हैं, उनका उपदेश इस प्रकारसें मिथ्या है इस मिथ्या उपदेशके स्वरूपहीमे प्रथम तीन सौ त्रेशठ मतका स्वरुप लिखते है, उनमे एक सौ अस्सी मत तो क्रिया वादीके है, औ चौरासी मत, अक्रियावादीके है, औ सडसठ मत, अज्ञानवा दीके है, अरु बत्तीस मत, विनयवादीके है, ए पूर्वोक्त सर्व मत एकत्र कर नेसे तीन सौ त्रेशठ होते है

तीनमें जो क्रियावादी हैं सो ऐसे कहते है कि कर्त्ताके विना पुण्यबंधादिलक्षण क्रिया नहीं होती है, तिस वास्ते क्रिया जो है, सो आत्माके साथ समवाय संबंधवाली है, ऐसे कहनेका शील स्वभाव है जिनका सो क्रियावादी हैं. यह जो क्रियावादी हैं, सो आत्मादिक नव पदार्थोंकों एकांत अस्तिस्वरूप पणे माने हैं, तिस क्रियावादीके एक सौ अस्सी मत इस उपाय करकें जान लेने, १ जीव, २ अजीव, ३ आश्रव, ४ बंध, ५ संवर, ६ निर्ज्जरा, ७ पुण्य, ८ अपुण्य, ९ मोक्ष, यह नव पदार्थ अनुक्रम करकें पट्टी पत्रादिकमें लिखने. फेर जीव पदार्थके हेठ स्वतः अरु परतः यह दो भेद स्थापन करने. फेर इन स्वतः परतःके हेठ न्यारे न्यारे नित्य अरु अनित्य यह दो भेद स्थापन करने फेर नित्य अनित्यके इन दानोके हेठ न्यारे न्यारे १ काल, २ ईश्वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वभाव, यह पांच स्थापन करने, पीछेसें विकल्प कर लेनें, सो आगें लिखते हैं. यंत्रस्थापना ॥

जीव.

स्वतः		परतः	
नित्य.	अनित्य.	नित्य.	अनित्य.
१ काल.	१ काल.	१ काल.	१ काल.
२ ईश्वर.	२ ईश्वर.	२ ईश्वर.	२ ईश्वर.
३ आत्मा.	३ आत्मा.	३ आत्मा.	३ आत्मा.
४ नियति.	४ नियति.	४ नियति.	४ नियति.
५ स्वभाव.	५ स्वभाव.	५ स्वभाव.	५ स्वभाव.

विकल्प करणेकी रीति कहते हैं. अस्ति जीवः स्वतोनित्यः कालतइत्येकोविकल्पः ॥ १ ॥ इस विकल्पका यह अर्थ है कि यह आत्मा निश्चय अपणे रूप करकें कालसें उत्पन्न हुइ है, कालवादीके मतमें यह विकल्प है, कालवादी उसकूं कहते हैंकि जो कालहीसें जगत्की उत्पत्ति, स्थिति अरु प्रलय मानते हैं, तैसेंही कालवादी कहते है कि चंपक, अशोक, सहकार, नीब, जंबू, कदंबादि जो बनस्पति है, सो कालके विना फूलोंका लगनां, फलका बंधादिक नहीं हो सक्ता है, तथा हिमकण संयुक्त शीतका पडणां, तथा नक्षत्र गर्भका धारण, वर्षाका होणां, यह काल बिना

नहीं होते है, तथा षट् ऋतुयोंका विजाग, तथा बाल, कुमार, यौवन, औ पलितादिक अवस्था विशेष काल विना नही हो सक्ती है, जो जो प्रति नियत काल विजागादिक है, तिन सबका कालही नियता है, जे कर कालको नियता न मानीये, तो किसी वस्तुकीजी व्यवस्था नही होवेगी, क्यों कि जैसे कोइ पुरुष, मूग राधता है, सो जी काल विना नहीं राधे जाते है, नही तो हाम्डी इंधनादि सामग्रीके संयोगसे प्रथम समयेहीमे मूग रध जाते? तिस वास्ते जो करता है, सो कालही करता है, तथाचोक्त ॥ न कालव्यतिरेकेण, गर्जबाल शुजादिक ॥ यत्किंचिज्जायते लोके, तदसौ कारण किल ॥ १ ॥ किंचित्कालादृते नैव, मुजपक्तिरपीक्ष्यते ॥ स्याल्यादि सन्निधानेऽपि, तत कालादसौ मत ॥ २ ॥ कालजावे च गर्जादि,सर्व स्याद व्यवस्थया ॥ परेष्टहेतुसज्ञाव, मात्रादेव तदुद्भवात् ॥ ३ ॥ इन श्लोकोका जावार्थ उपर लिख आये है तथा ॥ काल पचति जूतानि, काल संहरते प्रजा ॥ काल सुप्तेषु जागर्त्ति, कालोहि दुरतिक्रम ॥ ४ ॥ इहा परेष्ट हेतुके सज्ञाव मात्रादिकसे दूसरायोने जो मान्या है, कि स्त्री पुरुषके संयोग मात्र हेतुसे गर्जकी उत्पत्ति, सो एक वर्षके स्त्री पुरुषके संयोगसे क्यो नही हो जाते है? इस वास्ते कालही गर्जकी उत्पत्तिका हेतु है,तथा जब स्त्रीकू गर्ज होनेमे ऋतुकाल है तिसके विना स्त्री पुरुषके संयोगसे क्यो नहीं गर्ज होता है? तथा कालही पकाता है, औ कालही पृथिवी आदिक जूतोकों परिणामातरको पहुचाता है, तथा “काल संहरते प्रजा ” कालही पूर्व पर्यायसे पर्यायातरमे लोकोको स्थापन करता है तथा “काल सुप्तेषु जागर्त्ति” कालही सूते हूये जनोकी रक्षा करता है तिस वास्ते प्रगट है कि काल दुरतिक्रम है, कालको दूर करणेमे कोइजी समर्थ नही है, यह कालवादीका विकल्प है ॥ १ ॥

इसी तरें दूसरा विकल्पजी कह देना परंतु कालकी जगे ईश्वर कह देना “ यथा अस्ति जीव स्वतो नित्य ईश्वरत ” जीव, अपणे सरूप करकें नित्य है परंतु ईश्वर उत्पन्न करता है, क्योंकि ईश्वरवादी सर्व जगत् ईश्वरहीका करा हूया मानते है, ईश्वर उसकू कहते है, कि जिसके १ ज्ञान, २ वैराग्य, ३ धर्म, ४ ऐश्वर्य, ए चारो स्वत सिद्ध होवें, अरु जीवोंको स्वर्ग, मोक्ष, नरकादिकके जानेमें जो प्रेरक होवे ॥ तदुक्त ॥

ज्ञानमप्रतिघं यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः ॥ ऐश्वर्यं चैव धर्म्मश्च, सहसिद्धं च तुष्टयम् ॥ १ ॥ अज्ञोजंतुरनीशोय, मात्मनः सुखदुःखयोः ॥ ईश्वरः प्रेरितो गच्छे, त्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव च ॥ इत्यादि ॥ २ ॥

तीसरा विकल्प आत्म वादीयोंका है. आत्मवादी उनको कहते हैं कि जो " पुरुष एवेदं सर्व मित्यादि " (जो कुछ दीखता) है, सो सर्व पुरुषही हैं. ऐसें मानते है ॥ ३ ॥

चौथा विकल्प नियतवादीयोंका है, वो नियतवादी ऐसें कहते हैं कि पदार्थोंमें एक ऐसी सामर्थ्य है कि जिसकी सामर्थ्यसें सर्व पदार्थ अपणे अपणे स्वरूप नियमों करकें वैसे वैसेही होते हैं, परंतु अन्यथा पणे नहीं होते हैं, सोइ कहते है, जो पदार्थ जिसकालने जिस करिकें होता है, सो पदार्थ तिस कालने तिस करिकें नियत रूप करकेंही होता दीखता है, अन्यथा नहीं, तो कार्य कारण भावकी व्यवस्था नियामकके अभावसें कदापि न होवेगी, तिस वास्ते ऐसें कार्य नियततासें प्रतीत होती है जो नियति, तिसकों कौन पुरुष प्रमाणपंथका कुशल है जो बाध सक्ता है ? जे कर नियति बाधित हो जावेगी तो और जगेभी प्रमाण मिथ्या हो जावेंगे, तथा चोक्तं ॥ नियते नैव रूपेण, सर्वे भावा भवंति यत् ॥ ततो नियतिजा ह्येते, तत्स्वरूपानुवेधतः ॥ १ ॥ यद्यदेव यतो यावत्, तत्तदेव ततस्तथा ॥ नियतं जायते न्यायात्, क एनां बाधितुं क्षमः ॥ २ ॥ इन दोनो श्लोकोंका अर्थ उपर लिख दीया है ॥ ४ ॥

पांचमा विकल्प, स्वभाववादीयोंका है, वो स्वभाववादी ऐसें कहते है कि इस संसारमें सर्व पदार्थ स्वभावहीसें उत्पन्न होते हैं, सो कहते हैं कि माटीसें घट होता है, परंतु वस्त्र नहीं होता है, अरु तंतुओंसें वस्त्र होता है, परंतु घटादिक नहीं होता है, यह जो मर्यादा संयुक्त होनां है सो स्वभाव बिना कदापि नहीं हो सक्ता है, तिस वास्ते यह जो कुछ होता है, सो सर्व स्वभावसेंही होता है, तथा अन्यकार्य तो दूर रहो, परंतु यह जो मूंगोका रंध जाणा है, सोभी स्वभाव विना नहीं रंधते हैं, तथाहि हांमी, इंधन, कालादि सामग्रीका संभवभी है तोभी कोकडु (कठिनमूंग) नहीं रंधते हैं, तिस वास्ते जो जिसके होयां होवे, जिसके न होयां जो

न होवे, सो तो अन्वय व्यतिरेक करके तिसका कर्त्ता है, स्वभावहीसे मूंग र
धते है, इस वास्ते स्वभावही सर्व वस्तुका हेतु है, ए पाचमा विकल्प ॥ ५ ॥
यह पाच विकल्प स्वत ईशपद करके होते है, ऐसेही पाच परत ईश
पद करके उपलब्ध होते है, परत शब्दका अर्थ तो ऐसा है, कि पर पदा
र्थोसे व्यावर्त्त रूप करके यह आत्मा निश्चय करके है, ऐसे नित्य शब्द करके
दश विकल्प हूये है, ऐसेही अनित्य पद करकेभी दश विकल्प होते है, सर्व
विकल्प एकठे करेमें वीश होते है, यह वीश विकल्प जीव पदार्थ करके
होते है, ऐसेही अजीवादिक पदार्थोके साथ, न्यारे न्यारे वीश विकल्प
जान लेनें. तव वीशकों नवसृ गुणाकार कस्या सव मिलिके एक शो अस्सी
मत क्रियावादीके होते है ॥ इति क्रियावादी ॥
अथ अक्रियावादीके चौरासी मत लिखते है अक्रियावादी कहते
है कि क्रिया,पुण्य पाप रूपादि नही है, क्योकी क्रिया, पुण्य पाप रूपादि स्थि
र पदार्थको लगती है, अरु स्थिर पदार्थ तो जगत्मे कोइ भी नही है,क्यों
के उत्पत्त्यनतरही पदार्थका विनाश हो जाता है ऐसे जो कहते है, सो
क्रियावादी ॥ तथा चाहुरेके ॥ श्लोक ॥ क्षणिका सर्वसस्कारा, अस्थिराणा
कुत क्रिया ॥ भूतिर्येषा क्रिया सैव, कारक सैव चोच्यते ॥ १ ॥ अस्यार्थ –
सर्व सस्कार पदार्थ क्षणिक है, इस वास्ते अस्थिर पदार्थोंकू पुण्य पापादि
क्रिया कहासे होवे ? पदार्थोंका जो होणा है,सोइ क्रिया है,सोइ कारक है,
इस वास्ते पुण्यापुण्यादि क्रिया नही यह जो अक्रियावादी है, सो आत्माकू
नहीं मानते है, तिनके चौरासी मत जाननेका यह उपाय है कि १ जीव,
२ अजीव, ३ आश्रय, ४ सवर, ५ निर्जरा, ६ वध, ७ मोक्ष, यह सात
पदार्थ लिखने, पीछे यह जीवादि सातो पदार्थोके हेठ न्यारे न्यारे स्व अरु
पर यह दो विकल्प लिखने फेर इन दोनोके हेठ न्यारे न्यारे १ काल, २
ईश्वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वभाव, ६ यदृछा, यह छे लिखने इहां
नित्यानित्य यह दो विकल्प इस वास्ते नही लिखे है कि जब आत्मादि
पदार्थही नहीं है, तो फेर नित्य अनित्यका सभव कैसे होवे ? तथा जो
यह यदृछावादी है, सो सर्व नास्तिक अक्रियावादी है, इस वास्ते क्रिया
वादी यदृछावादी नही है, इस वास्ते क्रियावादीके मतमे यदृछा पद नहीं
ग्रहण कीया है,इस मतके चौरासी भेद इसी रीतिसे जानने सो कहते है.

" नास्ति जीवः स्वतः कालतइत्येकोविकल्पः " नहीं है जीव अपणे स्वरूप करकें कालसें उत्पन्न हूया, यह एक विकल्प, ऐसेही ईश्वरादिसें ले कर यदृच्छा पर्यंत सर्व छ विकल्प हूये इनका अर्थ पीछली तरें जाननां, परंतु इतना विशेष है जो यहां यदृच्छावादी अधिक हैं.

प्रश्नः-यदृच्छावादीयोंका क्या मत है ? उत्तरः-जो पदार्थोंकूं संतान की अपेक्षा नियत कार्य कारण भाव नहीं मानते, किंतु " यदृच्छया " जो कुछ होता है, सो सर्व यदृच्छासें होता है, एतावता कार्य कारण भाव नहीं यदृच्छाहीसें होता है, यदृच्छावादी ऐसें कहते हैं, कि नहीं है नियम करकें पदार्थोंकों आपसमें कार्य कारण भाव, क्यों कि कार्य कारण भाव प्रमाणसें ग्रहण नहीं कस्या जाता है, तथाही मृतक मेंमकसेंभी मेंमक उत्पन्न होता है अरु गोबरसेंभी मेंमक उत्पन्न होता है अग्निसेंभी अग्नि उत्पन्न होती है. अरणीके काष्टसेंभी अग्नि उत्पन्न होती है, धूमसेंभी धूम उत्पन्न होता है, अरु अग्निसेंभी धूम उत्पन्न होता है, कदलीके कंद सेंभी केला उत्पन्न होता है, अरु केलेके बीजसेंभी केला उत्पन्न होता है, बीजसेंभी वटवृक्ष उत्पन्न होता है, अरु वटवृक्षकी शाखासेंभी वट वृक्ष उत्पन्न होता है, इस वास्ते प्रति नियत कार्य कारण भाव किसी जगेंभी नहीं देखणेमें आता है, इस वास्ते यदृच्छा करीकें किसी जगें कुछ होता है, ऐसें माननां चाहियें, क्योंकि जब जान लीया कि जो कुछ होता है, सो यदृच्छासें होता है, तो फेर काहेकों बुद्धिमान् कार्य कारण भावकों माने, औ आत्माकों क्लेश देवे यह जैसें स्वतःके साथ छ विकल्प करे है, ऐसेंही नास्ति परतःके साथभी छ विकल्प होते हैं, यह जब सर्व बिकल्प मिलाइयें तब बारा विकल्प होते हैं, इन बारांकूं जीवादिक सात पदार्थों करकें सात गुणा कस्या चौरासी भेद अक्रिया वादीके होते हैं ॥ इति अक्रियावादी ॥ २ ॥

अथ तीसरा अज्ञानवादीका भेद कहते है, कि कूंभा ज्ञान है, जिनका सो अज्ञानवादी जाननां, अथवा अज्ञान करकें जो प्रवर्त्ते, सो अज्ञानिकाः अज्ञानवादी, ऐसें कहते हैं कि ज्ञान अछी वस्तु नहीं है, क्योंकि ज्ञान जब होवेगा, तब परस्पर बिवाद होगा, जब बिवाद होगा तब चित्त मलिन होगा, जब चित्त मलिन हूवा, तब संसारकी वृद्धि होवेगी, जैसें किसी पुरुषने को

इ वस्तु उलटी कही, तब जो ज्ञानीने सुण करकें ज्ञानके अजिमानसे उ
स पुरुषके उपर बहुत मलिन चित्त करके उसके साथ विवाद करणे ल
गा, विवाद करते थके अत्यंत तीव्रचित्त मलिन अरु अहंकार बढा, उ
स अहंकार औ चित्तकी मलिनतासे महा पाप कर्म उत्पन्न हूवा, तिस
पापसे दीर्घतर संसारकी वृद्धि हूइ, इस वास्ते ज्ञान अच्छी वस्तु नही
अरु जब अज्ञानी अपणेको मानीये, तब तो अहंकारका संजव नही
होता है, अरु दूसरोके उपर चित्तका मलिन पणाजी नहीं होता है, ति
स वास्तें कर्मका बधजी नही होता है, तथा जो कार्य विचार करीये है,
तिसमे महा कर्मका वध होता है, उसका फलजी महा जयानक होता
है, अरु जो काम, मनोव्यापार विना करीये है, तथा मनोव्यापार विना
किसी जीवका वध करीये है, तिसका फल अवश्यमेव जोगनेमे नही आ
ता है, अरु जो उस काममें किंचित् कर्मबंध होता है, सोजी चूने गजर्भी
तके उपरि वालु (रेतिकी) मुष्टिके संबधवत् स्पर्शमात्र है. परतु वध
नही होता है. इस वास्ते अज्ञानही मोक्षगामीयो पुरुषोकों अंगीकार क
रणा श्रेय है, परतु ज्ञान अंगीकार करणा श्रेय नहीं है यह अज्ञानवा
दी कहते है की ज्ञान हम मानजी लेवे, जे कर ज्ञानका निश्चय करणेमे
सामर्थ्य होवे? क्योकि प्रथम तो ज्ञान सिद्धही नही हो सक्ता है, तथाहि
जितने मतावलंबी पुरुष है, सो सर्व परस्पर जिन्नही ज्ञान अंगीकार कर
ते है, इस वास्ते क्यो कर निश्चय करणेमें समर्थ होवे? जो इस मतका
ज्ञान सम्यग् है, अरु इस मतका ज्ञान सम्यग् नही है, जे कर कहोगे कि
जो सकल वस्तुके समूहको साक्षात् कारी ऐसे ज्ञानवाला जो जगवान्
है, तिसके उपदेशसे जो ज्ञान होवे सो सम्यग् ज्ञान है, अरु जो इसके
विना दूसरे मत है, उनका ज्ञान सम्यग् नही. क्योकि उनके मतमे जो
ज्ञान है, सो सर्वज्ञका कथन कीया हुआ नहीं है

अज्ञानवादी कहते है कि यह तुमारा कहना है, सो तो सत्य है, किं
तु सकल वस्तु समूहका साक्षात् करणेवाला ज्ञानी सुगत, ईश्वर, विष्णु,
ब्रह्मादिककों हम माने? किंवा जगवान् वर्द्धमान महावीर स्वामीकों सकल
वस्तु समूहके साक्षात् करणे वाला माने? फेरजी वोही संशय रहा, निश्च
य न हूआ, जो कौन सर्वज्ञ है? जे कर कहोगे कि जिस जगवान्के पादार-

विंद युगल सर्व देवता, इंद्र, परस्पर अहं पूर्वक विशिष्ट विशिष्टतर विभूति द्युति करकें संयुक्त, सैंकडों विमानोमें बैठ करकें सकल आकाश मंमलकों आच्छादित करते हूये पृथिवीमें उतर करकें पूजते भये हैं, सो भगवान् वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञ है. परंतु सुगत, शंकर, विष्णु, ब्रह्मादिक नहीं; क्योंकि सुगतादिक सर्व, अल्प बुद्धिवाले मनुष्य हूये हैं, इस वास्ते वो देव नहीं हूये हैं; जे कर सुगतादिकभी सर्वज्ञ होते, तो तिनकीभी देवता, इंद्र, पूजा करते, परंतु किसीभी देवता, इंद्रने पूजा नहीं करी. इस वास्ते सुगतादिक सर्वज्ञ नहीं हूये हैं. हे जैन! यह जो तुमने बात कही है, सो अपणे मतके राग करकें कही है, परंतु इस बातसें इष्टसिद्धि नहीं है, क्योंकि वर्द्धमान स्वामीकी देवता, इंद्र, देवलोकसें आ करकें पूजा करते थे, यह तुमारा कहनां हम क्योंकर सच्चा मान लेवे? भगवान् श्री महावीरकों तो बहुत काल हूयांकों हो गया है, उनके सर्वज्ञ होणेमें कोइभी साधक प्रमाण नहीं है? जे कर कहोगे कि संप्रदायसें एतावता महावीरके शासनसें महावीर सर्वज्ञ सिद्ध होता है, तो इसमें यह तर्क होगी कि यह जो तुमारी संप्रदाय है, सो कौन जाने किसी धूर्त्तकी चलाइ हुइ है? वा किसी सत्पुरुषकी चलाइ हुइ है, हम क्यों कर जान सके? इस वातके सिद्ध करने वाला कोइभी प्रमाण नहीं है, अरु विना प्रमाणके हम मान लेवे, तो हम प्रेक्षावान् काहे के? तथा मायावान् पुरुष आप सर्वज्ञ नहीं भी होते तोभी अपणे आपकूं जगत्में सर्वज्ञ होनां प्रगट कर देते हैं. इंद्रजालके (२७) पीठ है, तिनमेंसूं कितनेक पीठोंके पाठक अपणे आपकों तीर्थंकरका रूप अरु इंद्र, देवता, पूजा करते हूये बना सक्के हैं, तो फेर देवताओंका आगमन पूजा देखनेसें सर्वज्ञ पणा क्यों कर सिद्ध होवे, जो हम श्रीमहावीरजीकूं सर्वज्ञ मान लेवे? तुमारे मतका आचार्य समंतभद्र स्तुतिकारभी कहता है ॥ श्लोक ॥ देवागमनभोयान, चामरादिविभूतयः ॥ मायाविष्वपि दृश्यंते, ह्यतस्त्वमसि नो महान् ॥१॥ इस श्लोकका भावार्थः—देवताओंका आगमन आकाशमें चलनां, छत्र चामरादिककी विभूति, यह सर्व आमंबर, इंद्रजालीयमेंभी हो सक्ता है, इस हेतुसें तो हे भगवन्! तूं हमारा महान् स्तुति करणे योग्य नहीं हो सक्ता है. तथा हे जैन! तेरे कहनेसें महावीरही सर्वज्ञ होवे, तोभी यह जो आचारांगादिक शास्त्र हैं, सो म

हावीर सर्वज्ञहीके कथन करे हूये है, यह क्योंकर जाना जावे? क्या जाने किसी धूर्तने रच करके महावीरका नाम रख दीया होवेगा? क्योंकि यह बात इंद्रिय ज्ञानका विषय नही है, अरु अतींद्रिय ज्ञानकी सिद्धिमे कोइनी प्रमाण नहीं है

नला कदी यहनी होवे कि जो आचारांगादिक शास्त्र है सो महावीर सर्वज्ञहीके कहे हुये है, तोनी श्रीमहावीरजीके कहे हुये शास्त्रका यही अनिप्राय, यही अर्थ है, और अर्थ नही, यह क्योंकर जान्या जाय? क्योकि शब्दोके अनेक अर्थ है, सो इस जगत्मे प्रगट सुननेमे आते है, क्या जाने इनही अक्षरों करकें श्रीमहावीर स्वामीजीने कोइ अन्यही अर्थ कह्या होवे, अरु तुमारी समजमें उनही अक्षरों करकें कछु और अर्थ नासन होता होवे, फेर निश्चय क्यो कर होवे जो इन अक्षरोका यही अर्थ नगवानने कह्या है, जे कर तुमने यह मान रक्खा होवे कि नगवानके समयमें गौतमादिक मुनि थे, उनोने नगवानके मुखारविंदसें साक्षात् जो अर्थ सुना था, सोइ अर्थ आज ताइ परंपरासे चला आता है, इस वास्ते आचारांगादिक शास्त्रोका यही अर्थ है, अन्य नहीं यहनी तुमारा कहना अयुक्त है, क्योंकि गौतमादिकनी छद्मस्थ थे, अरु छद्मस्थको दूसरेकी चित्तवृत्तिका ज्ञान नही होता है, दूसरेकी चित्तवृत्ति तो अतींद्रिय ज्ञानका विषय है, छद्मस्थ तो इंद्रिय द्वारा जान सक्ता है, इंद्रियज्ञानी सर्वज्ञके अनिप्रायकों क्यों कर जान सके, जो सर्वज्ञका यही अनिप्राय है? इस अनिप्रायसे सर्वज्ञनें यह शब्द कह्या है? इस वास्ते नगवान्का अनिप्राय तो गौतमादिक नहीं जान सक्ते है, केवल जो वरणावली नगवान् कहते नये सोइ वरणावली नगवानके पीछें लगे हूये गौतमादिक उच्चारण करते आये, परंतु नगवान्का अनिप्राय किसीनें नहीं जाना, जैसें आर्य देशोत्पन्न पुरुषके शब्द उच्चारणसें म्लेछनी वैसा शब्द उच्चार सक्ता है, परंतु तात्पर्य कुछ नहीं जानता, ऐसेही महावीरके शब्दके अनुवादक गौतमादिक है, परंतु महावीरका अनिप्राय नहीं जानते, इस वास्ते सम्यग् ज्ञान किसी मतमेंनी सिद्ध नही होता है, एक तो ज्ञान होणेसें पुरुष अनिमानसे बहुत कर्म बांध कर दीर्घ संसारी हो जाता है, दूसरा सम्यग् ज्ञान किसी मतमें है नहीं, इस वास्ते अज्ञानही श्रेय है,

॥ इत्यज्ञानवादीका श्रद्धान ॥सो अज्ञानी सडसठ प्रकारके हैं, तिनके जान नेका यह उपाय है कि जीवादिक नव पदार्थ किसी पट्टादिकमें लिखने, अरु दशमे स्थानमें उत्पत्ति लिखनी, तिन जीवादि नव पदार्थोंके हेठ न्यारे न्यारे सत्त्वादिक सात पद स्थापन करणे,सो यह हैं किः—१ सत्त्वं, २ असत्त्वं, ३ सदसत्त्वं, ४ अवाच्यत्त्वं, ५ सदवाच्यत्वं, ६ असदवाच्यत्त्वं, ७ सदसदवाच्यत्वं, तहां १ सत्त्वं, सो स्वरूप करकें विद्यमान पणां, २ असत्त्वं, सो पररूप करकें अविद्यमान पणां, ३ सदसत्त्वं, सो स्वरूप पररूप करकें विद्यमान पणां. तहां यद्यपि सर्व वस्तु स्वपररूपों करकें सर्वदाही स्वभावमें सदसत् स्वभाव है, तोभी किसी जगे कदाचित् उद्भूत रूप करकें विवक्षा करियें हैं, तिस हेतुसें यह तीन विकल्प होते हैं, तथा ४ सोइ सत्त्व असत्त्व, जब युगपत् एक शब्द करकें कहनेकी इछा करियें, तदा तिसका वाचक कोइभी शब्द नहीं है, इस वास्ते अवाच्यत्त्वं. यह चारों विकल्प सकलादेशा ऐसा नाम कहीयें, क्यों के यह चारों सकल वस्तु विषयकों ग्रहण करते है, ५ अरु यदा एक भागमें सत्, दूसरे भागमें अवाच्य, युगपत् विवक्षा करियें, तदा सदवाच्यत्त्वं, ६ यदा एक भागमें असत्, दूसरें भागमें अवाच्य, तदा असत् अवाच्यत्त्वं, ७ यदा एक भागमें सत्, दूसरे भागमें असत्, तीसरे भागमें अवाच्य युगपत् कल्पना करियें, तदा सदसदवाच्यत्त्वं. इन सातों विकल्पोंसें अन्य (दूसरा) विकल्प कोइभी नहीं है, जे कर कोइ करभी लेवे, तो इन सातोंहीके अंतरभाव हो जायंगे, परंतु सातोंसें अधिक विकल्प कदापि न होवेंगे, यह जो सात विकल्प कहे हैं इन सातोंकों नव गुणा करे, तब त्रेशठ होतेहैं, अरु उत्पत्तिके चार विकल्प आदिकेही होते हैं. १ सत्त्वं. २ असत्त्वं, ३ सदसत्त्वं, ४ अवाच्यत्त्वं, यह चार विकल्प त्रेशठमें प्रक्षेप करीयें, तब सडसठ मत अज्ञानवादीके होते है. अब इन सातों विकल्पोंका अर्थ लिखते हैं, कि कौन जानता है जो जीव सत्य है,यह एक विकल्प हूया. कोइभी नहीं जानता है सत् जीव है इसका ग्रहण करनेवाला प्रमाण कोइभी नहीं है जे कर कोइ जाणभी लेवेगा जो जीव सत् है तो कौनसे पुरुषार्थकी सिद्धि हो गइ क्यों कि जब ज्ञान हो जावेगा तब अभिनिवेश,अभिमान, चित्त मलिन लोकोंसें विवाद,झगडा,

बढ जावेगा, तब तो ज्ञानवान् बहुत कर्म बंध करके दीर्घतर संसारी हो जा वेगा, ऐसेंही असत् आदिक शेष विकल्पोकाजी अर्थ जान लेना ॥इति॥

विनय करकें जो प्रवर्त्ते, सो वैनयिका इन विनयवादीयोके लिंग अरु शास्त्र नही होता है, केवल विनयहीसें मोक्ष मानते है, तिन विनय वादीयोके बत्तीस मत है, सो इस तरेसे है, कि १ सुर, २ राजा, ३ जाति, ४ ज्ञाति, ५ स्थविर, ६ अधम, ७ माता, ८ पिता, इन आगोकी मन करकें, वचन करके, काया करके ,अरु देशकाल उचित्त दान देने करकें विनय करे, इन चारोसें आठको गुण्या बत्तीस हूये ॥ इति विनयवादी ॥ ४ ॥

ए सब मिल कर तीनसौ त्रेशठ मत हुये एसर्व मतधारी तथा इन म तोंके प्ररूपणे वाले सर्व कुगुरु है, क्योंकि यह सर्व मत मिथ्यादृष्टियोंके है, यह सब एकांतवादी है, परंतु स्याद्वादरूप अमृत स्वादसे रहित है, इनका जो अनिमत तत्त्व है, सो प्रमाण करके बाधित है, इनके मतोको पूर्वाचा र्योने अनेक युक्तियोसें खमन करा है, सो नव्य जीवोके जानने वास्ते मै नी पूर्वाचार्योंकी युक्तियां इस जापाग्रथमे किंचित् मात्र नीचे लिखता हु

प्रथम जो कालवादी कहेते हेकि सर्व वस्तुका कालही कर्त्ता है, तिस का खमन लिखता हु हे कालवादी! यह जो काल है सो क्या १ एक स्वनाव नित्य व्यापी है? २ किंवा समयादिक रूप करके परिणामी है? जे कर आदि पक्ष मानोगे सो तो अयुक्त है, क्योंकि ऐसे कालको सिद्ध करने वाला कोइनी प्रमाण नही है, जैसा आद्य पक्षमे तूनें काल मान्या है, तैसा काल, प्रत्यक्ष प्रमाणसे उपलब्ध नही होता है, अरु ऐ से कालका कोइ लिंगनी अविनाजावरूप नही दीखता, इस वास्ते अनु मानसेनी सिद्ध नहीं होता है

पूर्वपक्षः—क्योकर अविनाजावलिंगका अनाव कहते हो? क्योंकि दि खता हेकि नरत रामचंद्रादिको विषे पूर्वापर व्यवहार सो पूर्वापर व्यव हार वस्तुरूप मात्र निमित्त नही है? जे कर वस्तुरुप मात्र निमित्त होवे, तदा वर्त्तमानकालमे वस्तु रूपके विद्यमान होणे करकें तैसे व्यवहार हो ना चाहिये, तिस वास्ते जिस करकें यह नरत रामादिकोविषे पूर्वापर व्यवहार है, सो काल है, तथाहि पूर्वकालयोगी, पूर्व नरतचक्रवर्त्ती, अ परकालयोगी अपर रामादि

उत्तर पक्षीकी तर्कः—जे कर भरत रामादिकोंविषे पूर्वापर कालके योग सें पूर्वापर व्यवहार है, तो कालका पूर्वापर व्यवहार कैसें सिद्ध होगा?

पूर्वपक्षीका समाधान. कालका जो पूर्वापर व्यवहार है, सो अन्य दूसरे कालके योगसें है.

उत्तरपक्षः—जे कर दूसरे कालके योगसें प्रथम कालका पूर्वापर व्यवहार है, तब तो दूसरे कालका पूर्वापर व्यवहार तीसरे कालके योगसें हुवा, असेंही करते जाइयें, तब अनवस्था दूषणका प्रसंग होता है.

पूर्वपक्षः—यह दूषण हमकूं नहीं लगता है, क्यों कि हम तो तिस कालहीके स्वयमेव पूर्वापर विभाग मानते हैं, किसी कालादिक योगसें नहीं मानते हैं, तथा चोक्तं ॥ पूर्वकालादि योगी यः, पूर्वादिव्यपदेशभाक् ॥ पूर्वापरत्वं तस्यापि, स्वरूपादेव नान्यतः ॥ १ ॥ अस्यार्थः—जो पूर्वापर कालके योगी भरत रामादि है, सो भरत रामादि पूर्वापर व्यपदेश वाले हैं, अरु कालका जो पूर्वापर विभाग है, सो स्वतःही है, परंतु अन्यकालादि योगसें नहीं है.

उत्तरपक्षः—हे पूर्वपक्षीः—यह तुमारा कहनां असा है कि जैसा कंठलग मदिरा पीके मदिरा पानीका प्रलाप, तैसा है, क्योंकि तुमनें प्रथम पक्षमें काल एकांत एक नित्य व्यापी मान्या है, तो फेर कैसें तिस कालका पूर्वापर व्यवहार होवे?

पूर्वपक्षः—सहचारिके संगसें एक वस्तुकाभी पूर्वापर कल्पनामात्र व्यवहार हो सक्ता है, जैसें सहचारि भरतादिकोंका पूर्वापर व्यवहार है, तैसेंही भरतादि सहचारियोंके संगसें कालकाभी कल्पनामात्र पूर्वापर व्यपदेश होता है, सहचारियों करकें व्यपदेश सर्व तार्किकोंके मतमें प्रसिद्ध है, यथा "मंचाः क्रोशंतीति" जैसें मंचा गालीयां देता है.

उत्तरपक्षः—यहभी मूर्खोंहीका कहना, है क्योंकि इस कहनेमें इतरेतर दोषका प्रसंग है सोइ कहते हैंकि सहचारि भरतादिकोंकों कालके योगसें पूर्वापर व्यवहार हुआ अरु कालकों पूर्वापर व्यवहार, सहचारि भरतादिकोंके योगसें हुआ, जब एक सिद्ध नहीं होवेगा तब दूसराभी सिद्ध नहीं होगा ॥ उक्तंच ॥ एकत्वव्यापितायांहि, पूर्वादित्वं कथं भवेत् ॥ सहचारिवशात्त्चे, दन्योन्याश्रयतागमः ॥ १ ॥ सहचारिणां हि पूर्वत्वं, पूर्वकाल स

मागमात् ॥ कालस्य पूर्वादित्वं च, सहचार्यवियोगत ॥ २ ॥ प्रागसिद्धा वेकस्य, कथमन्यस्य सिद्धिरिति ॥ इस वास्ते प्रथम पक्ष श्रेय नही है

अथ दूसरा पक्ष मानोगे, सोजी अयुक्त है, क्योंकि समयादिक रूप परिणामी काल विषे काल एकजी है, तोजी विचित्र पणा उपलब्ध होता है, तथाहि एक कालमें मूग राधता कोइ रधता है ? कोइ नही रधता है तथा समकालमे एक राजाकी नौकरी करते थके एक नौकरकू थोडेही कालमे नौकरीका फल मिल जाता है,अरु दूसरेकूं बहु कालांतरमेंजी वैसा फल नही मिलता है, तथा समकालमे खेती करता एक जाटके तो बहु धान्य उत्पन्न हो जाते है, अरु दूसरेकूं थोडा फूटा हुआ खंडित उत्पन्न होता है, तथा समकालमे कौडीयोंकी मूठी जर कर जूमिकामे गेरीये, तब कितनीक कौडीया सूधी पडती है, अरु कितनीक औंधी पडती है अब जे कर कालही एकला कारण होवे, तब तो सर्व मूंग एकही कालमे रध जाते, परतु सर्व रधते नही है, इस वास्ते नि केवल कालही जगत्के विचित्रताका कर्त्ता नहीं है, किंतु कालादि सामग्रीके मिलनेसें कर्म कारण है, यह सिद्ध पक्ष है ॥ इति प्रथम कालवादीके मतका खंमन ॥ १ ॥

अथ दूसरा ईश्वरवादी अरु तीसरा अद्वैतवादी, ए दोनो मतोका खमन ईश्वरवादमे लिख आये है, तहासे जान लेनां ॥ ३ ॥

अब चौथा मत नियतिवादीका है, तिसका खमन लिखते है कि नियतिवादी जो कहते है, कि सर्व पदार्थोका करता नियति है, नियति उसकू कहते है जो तत्त्वांतर होवे, सोजी नियति, ताडयमान अति जीर्ण वस्त्रकी तरें विचार रूप ताडनाकू असहमान सैकडे टुकडोकों प्राप्ति होती है, सोइ कहते है हे. नियतवादी ! तेरा जो नियतिनाम तत्वांतर है, सो जावरूप है, किंवा अजाव रूप है ? जे कर कहोगे कि जावरूप है, तो फेर एकरूप है, वा अनेक रूप है ? जे कर कहोगे कि एक रूप है, तो फेर नित्य है,वा अनित्य है ? जे कर कहोगे नित्य है,तो किस तरे पदार्थोंकी उत्पत्त्यादिकमे हेतु है? क्योंकि नित्य जो होता है, सो किसीकाजी कारण नहीं होता है, सोइ कहते है कि नित्य जो होता है सो सर्व कालमे एकरूप होता है, नित्यका लक्षण "अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वजावतया नित्यत्वस्य व्यावर्णात्" नित्यका लक्षणतो ऐसा है, जो छूटे नहीं अरु उत्पन्नजी न होवे, स्थिर एक

स्वन्नाव करकें रहे, सो नित्य. तब तो नियति तिस नित्य रूप करकें जे कर कार्य उत्पन्न करे, तब तो सर्वदा तिसही रूप करकें कार्य उत्पन्न करे, क्योंकि तिसके रूपमें कोइन्नी विशेष नहीं है, एकही रूप है, अरु सर्वदा तिसही रूप करकें तो कार्य उत्पन्न नहीं करती है, क्योंकि कन्नी कैसा अरु कन्नी कैसा कार्य उत्पन्न होता दीख पडता है, तथा एक औरन्नी वात है कि, जो दूसरे तीसरे आदि क्षणमें नियतिने कार्य करणे हैं, वो सर्वेही कार्य प्रथम समयहीमें उत्पन्न कर लेवे, क्योंकि तिस नियतिका जो नित्य करण स्वन्नाव द्वितीयादि क्षणमें है सो स्वन्नाव प्रथम समयमेंन्नी विद्यमान है, जे कर प्रथम क्षणमें द्वितीयादि क्षणवर्त्ती कार्य करणेकी शक्ति नहीं तो द्वितीयादि क्षणमेंन्नी कार्य न होनां चाहियें, क्यों कि प्रथम द्वितीयादि क्षणमें कुछन्नी विशेष नहीं, जे कर प्रथम द्वितीयादि क्षणमें नियतिके रूपमें परस्पर विशेष मानोगे तबतो जोरा जोरी नियतिके रूपमें अनित्यता आ गइ. "अतादवस्थ्यमनित्यतां ब्रूमः इतिवचन प्रामाण्यात्" ॥ जो जैसा है वो तैसा न रहे इस वचन प्रमाणसें उसकों हम अनित्य कहते हैं.

पूर्वपक्षः—नियति नित्य विशेष रहितन्नी है, तोन्नी तिस तिस सहकारिकी अपेक्षा करकें कार्य उत्पन्न करती है, अरु जो सहकारि है, सो प्रतिनियति देश काल वाले हैं, तिस वास्ते सहकारियोंके योगसें कार्य क्रम करकें होता है.

उत्तरपक्षः—यह न्नी तुमारा कहनां असमीचीन है, क्योंकी सहकारिजो हैं, सोन्नी नियति करकेही प्राप्त होते है, अरु नियति जो है, सो प्रथम क्षणमेंन्नी तिसके करणेवाले स्वन्नाव वाली है, जेकर द्वितीयादि क्षणमें दूसरे स्वन्नाववाली नियति मानोगे, तब तो नित्यपणेकी हानी हो गइ, तिस वास्ते प्रथम क्षणमें सर्व सहकारियोंके संन्नव होणेसें प्रथम क्षणमेंही सर्व कार्य करणेका प्रसंग हो गया. तथा एक औरन्नी बात है, कि सहकारियोंके होणेंसें कार्य हूआ, अरु सहकारियोंके न होणेंसें कार्य न हूआ, तब सहकारियांहीकों अन्वय व्यतिरेक देखनेसें कारण कल्पना करनी चाहियें. परंतु नियति कारण नहीं हुइ, क्यों कि नियतिमें व्यतिरेकका असंन्नव है, उक्तं च ॥श्लोक॥ हेतुनान्वयपूर्वेण, व्यतिरेकेण सिध्यति ॥ नित्यस्याव्यतिरेकस्य, कुतो हेतुत्वसंन्नवः ॥ अथ जे कर इन पूर्वोक्त दूषणोंके न्नयसें अनित्य पक्ष

मानोगे, तब तो तिस नियतिके प्रतिक्षण अन्य अन्य रूप होणेसें नियति यां बहुत हो गइया, तब तो जो तुमने नियति एकरूप मानी थी, तिस प्रतिज्ञाका व्याघात होनेका प्रसंग हो गया, अरु जो पदार्थ क्षणक्षयी होता है, वो किसीका कार्य कारण नही हो सक्ता है, तथा एक औरन्नी बात है कि जे कर नियति एकरूप होवे, तदा तिससे जो कार्य उत्पन्न होवेंगे सो सर्व एकरूपही होने चाहिये, क्योंकि विना कारणके नेद हूयां कार्य नेद कदापि नही हो सक्ता है, जे कर हो जावे, तब तो वह कार्यनेद निर्हेतुकही होवेगा, अरु हेतुविना किसी कार्यका नेद नहीं है, जे कर अनेकरूप नियति मानोगे, तब तो तिस नियतिसें अन्य नानारूपी विशेषण विना नियति नानारूप कदापि न होवेगी, जैसे मेघका पानी, काली, पीली, ऊखर नूमिके संबध विना नानारूप नही हो सक्ता है, यडुक्त "विशेषण विना यस्मा,न्न तुल्यानां विशिष्टतेति वचनप्रामाण्यात्" तिस वास्ते अवश्य तिस नियतिसे अन्य नानारूप विशेषण नियतिके नेद मानने चाहियें. तिन नानारूप विशेषणोका जो होणा है, सो क्या तिस नियतिसेही होता है अथवा किसी दूसरेसे होता है? जे कर कहोगे कि नियतिसे ही होता है, तब तो तिस नियतिको स्वत एकरूप होणेसे कैसे तिस नियतिसें हूये होये विशेषणोको नानारूपता होवे?

अथ विचित्र कार्यकी अन्यथानुपपत्ति करकें नियतिनी विचित्र रूपही मानते है, तब तो नियतिको विचित्रता बहुत विशेषणो विना नही हो वेगी, तिस वास्ते तिस नियति विषे विशेष्य बहुत अंगीकार करणे चाहिये, अब तिन विशेषणोका जो नाव है, सो तिस नियतिहीसें होता है, अथवा किसी दूसरेसे? इत्यादि सोइ फेर आ गया, इस वास्ते अनवस्था दूषण होता है

अथ जे कर कहोगे अन्यसे होता है, तो यहनी पक्ष अयुक्त है, क्या के नियति बिना और किसीको तुमने हेतु नहीं मान्या है, यह तुमारा कहना किसी कामका नही है, तथा अनेक रूप नियति है, जे कर तुम ऐसे मानोगे, तब तो तुमारे मतके वैरी दो विकल्प हम तुमकू नेट कर ते है, तुमारी नियति अनेकरूप जो है, सो मूर्त्ति है? वा अमूर्त्ति है? जे कर कहोगे कि मूर्त्ति है, तब तो नामातर करकें कर्मही तुमने माने, क्यों

कि कर्म जो है, सो पुजलरूप होएंसे मूर्त्तिनी है, अरु अनेक रूपनी है,तब तो तुमारा हमारा एकही मत हो गया, क्योंकि हम जिनकूं कर्म मानते हैं, उनहीं कर्मोंका नामांतर तुमने नियति मान लीया, परंतु वस्तु एकही है. अथ जे कर नियतिकूं अमूर्त्त मानोगे, तब तो नियति सुख डुःखका हेतु अमूर्त्त होनेसें न होवेगी, जैसें आकाश अमूर्त्त है, परंतु सुख डुःखका हेतु नांहें है, पुजलही मूर्त्ति होनेसें सुख डुःखका हेतु हो सक्ता है, जे कर तुम औसे मानोगे कि आकाशनी देश नेद करकें सुख डुःखका हेतु है, जैसें मारवाड देशमें आकाश डुःखदायी है, शेष सजल देशोमें सुखदायी है, यहनी तुमारा कहनां असत् है, तिन मारवाडादि देशोमेंनी आकाशमें रहे हूये जो पुजल हैं, उन पुजलोंही करी डुःख सुख होते हैं, तथाहि मरुस्थली जो है, सो प्रायः जल करकेंर हित है अरु वालु (रेति)नी बहुत है, अरु रस्तेमें चलतां पग वालुमें धस जाते हैं, तब तो पसीना बहुत आ जाता है, अरु उष्णकालमें सूर्यकी किरणोंसें वालु तप जाता है, तब बहुत संताप होता है, अरु जलनी पीनेकों पूरा नहीं मिलता है, तिसके खननेमें कोइ प्रयत्न करनां पडता है, इस वास्ते उन देशोंमें बहुत डुःख है अरु सजल देशोमें पूर्वोक्त कारण नहीं है, इस वास्ते पूर्वोक्त डुःखनी नहीं है, इस हेतुसें पुजलही सुख डुःखका हेतु है, परंतु आकाश नहीं.

अथ जे कर नियतिकूं अनावरूप मानोगे, तो यहनी तुमारा पक्ष अयुक्त है, क्योंकि अनाव जो है सो तुछरूप है, शक्ति रहित है, औ कार्य करणेमें समर्थ नहीं, क्यों कि कटक कुंमलादिकोंका जो अनाव है, सो कटक कुंमल उत्पन्न करनेकूं समर्थ नहीं, तैसेंही देखनेमें आता है, जेकर कटक कुंमलादिकोंका अनाव कटक कुंमलादिक उत्पन्न करे, तब तो जगतमें कोइनी दरिद्री न रहे.

पूर्वपक्षः—घटानाव जो है सो मृत्पिंम है, तिस माटीके पिंमसें घट उत्पन्न होता है, तो फेर हमारे कहनेमें क्या अयुक्तता है? अरु जो माटीका पिंम है सो तुछरूप नहीं है क्योंकि वो अपणे स्वरूप करकें विद्यमान है, तो फेर अनाव पदार्थकी उत्पत्तिमें हेतु क्यों नहीं हो सक्ता?

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा पक्ष असमीचीन है,क्योंकि जो माटीके पिंमका नाव स्वरूप है, सो नावानावका आपसमें विरोध होनेसें अनाव रूप नहीं

हो सक्ता, क्योंकि जे कर नावरूप है तो अनाव कैसें हुआ? जे कर अनाव रूप है,तो नाव कैसे हुआ? जे कर कहोगे कि स्वरूप अपेक्षा नावरूप है,अरु पररूपापेक्षा अनावरूप है, तिस वास्ते नावानाव दोनोके न्यारे निमित्त होनेसें कुछनी दूषण नहीं, इस कहनेसें तो माटीका पिंम नावानावरूप अनेकांतात्मिकरूप तुमारेकूं प्राप्त हुआ, परंतु यह अनेकांतात्मपणा जैनोहीके मतमें शोजता है, क्योंकि जैनमतवालेही सर्व वस्तुकूं स्वपरनावादि स्वरूप करके अनेकांतात्मिक मानते है, परंतु तुमारे सरीखे एकातग्रहग्रस्त मतवालोंकों नही शोनता है, जे कर कहोगे कि मृत्पिममें जो पररूपका अनाव है, सो तो कल्पित है, अरु जो नावरूप है, सो तात्विक है, इस वास्ते अनेकांतात्मिक वाद हमारे मतमें नहीं आता है, तव तो तिस मृत्पिंमसें कैसे घट होवेगा? क्यों कि तिस मृत्पिंमसे परमार्थसें घटके प्राग्नावका अनाव है, जे कर प्राग् अनाव विनानी तिस मृत्पिमसे घट हो जावे, तव तो सूत्र पिमादिकसेंनी घट क्यों नहीं होजावे? जैसा मृत्पिंममें घट प्राग्नावका अनाव है, तैसाही सूत्रपिमादिकमेंनी घट प्राग्नावका अनाव है, तथा तिस मृत्पिंमसें खरशृंग क्यों नहीं हो जाता है? इस वास्ते यह तुमारा कहना कुछ नहीं है, तथा जो तुमने कहा था कि जो वस्तु जिस अवसरमें जिससेति होवे है,सो कालांतरमेंनी सोई वस्तु तिस अवसरमें तिससें नियतरूप करके होती हुई दीखती है, यह तो तुमारा कहनां ठीक है, क्योंकि कारण सामग्रीके अनादि नियमोसे कार्यनी तिस अवसरमे तिससें नियतरूप करकेंही होता है, जव कारण शक्तिके नियमसे कार्य हो गया, तव कौन ऐसा प्रेक्षावान् प्रमाणपथका कुशल है जो प्रमाण वाधित नियतिकों अंगीकार करे?॥इति नियति खमन॥

अथ पांचमा स्वनाववादीका खमन लिखते है स्वनाववादी ऐसे कहते है कि इस ससारमें सर्व नावपदार्थ स्वनावहीसे उत्पन्न होते है, यह स्वनाववादीयोंका मत नियतिवादके खमनसेंही खंमन हो गया, क्योकि जो दूषण, नियतिवादीके मतमें कहे है, वे सर्व दूषण, प्राय यहांनी समानही है, सोई कहते हैं, कि यह जो तुमारा स्वनाव है, सो नावरूप है? अथवा अनावरूप है? जेकर कहोगे कि नावरूप है, तो क्या एक रूप है? वा अनेक रूप है? इत्यादि सर्व दूषण नियतिकी तरें कह देने.

एक औरभी बात है, कि स्वभाव आत्माके भावकों कहते हैं, सो स्वभाव कार्यगत हेतु है? वा कारण गत है? कार्य गत तो नहीं हैं, क्यों कि जब कार्य हो जावेगा तब कार्यगत स्वभाव होवेगा परंतु विना कार्य के हूये कार्य गत कैसें होवे? अरु जब कार्य हो गया, तब तिसका हेतु स्वभाव कैसें होवे? जो जिसके अलब्ध लाभ संपादनमें सामर्थ्य होवे, सो तिसका हेतु है, अरु कार्य तो निष्पन्न होने करकें लब्ध आत्मलाभ है. नहीं तो तिस स्वभावहीकूं अभावका प्रसंग हो जावेगा, तब तो वो स्वभाव कैसें कार्यका हेतु होवेगा? जे कर कहोगेकि कारणगत हेतु है, यह तो हमकूंभी संमत है, सो स्वभाव प्रति कारण भिन्न है, तिस करकें माटीसें घट होता है, परंतु माटीसें पटादि नहीं होता है, माटीके पिंममें पटादि होनेका स्वभाव नहीं है, अरु तंतुओंसें पटही होता है, घटादि नहीं होते हैं, क्योंकि तंतुओंमें घट होनेका स्वभाव नहीं है, तिस वास्ते जो तुमने कहा था कि माटीसें घटही होता है, पटादि नहीं होता, सोतो सर्व कारणगत स्वभाव माननेसें सिद्धहीकों साध्या है. यह पक्ष, हमारे मतका बाधक नहीं है, तथा जो तुमने कहा था कि मूंगोंमें रंधनेका स्वभाव है, कोकडुमें नहीं? इत्यादि सोभी कारणगत स्वभाव अंगीकार कस्यां सर्वही समीचीन हो जाता है, जैसें एक कोकडु मूंग है, स्वकारण वशतें तैसे रूप वाले हूये हैं; हांमी, इंधन, कालादि सामग्रीका संयोगभी है, तोभी नहीं रंधते है, अरु स्वभाव जो है सो कारणसें अभेद है, इसतें सर्व वस्तु सकारणही हैं,यह सिद्ध पक्ष है ॥ यह क्रियावादीयोंका मत तो खंमन हो चुका ॥

अथ अक्रियावादीयोमें जो यदृच्छावादी हैं, तिनोंनें जो कहा था कि वस्तुओंका नियम करकें कार्य कारणभाव नहीं है, इत्यादि. सोभी कहनां कार्य कारणके विवेचने वाली बुद्धिसें रहित होनेका सूचक है, क्यों कि कार्य कारणकों प्रतिनियतताका संभव होनेसें है, सोई कहते हैं कि जो शालूकसें शालूक उत्पन्न होता है, सो सदा शालूकहीसें उत्पन्न होता है, परंतु गोबरसें नहीं. अरु जो गोबरसें शालूक उत्पन्न होता है, सो सदा गोबरहीसें उत्पन्न होता है, परंतु शालूकसें नहीं, अरु इन दोनों शालुकयोंकों शक्तिवर्णादि वैचित्र्यतासें औ परस्पर जात्यंतर होनेसें एकरूपभी नहीं हैं, अरु जो अग्निसें अग्नि उत्पन्न होता है, सोभी सदैव अग्निहीसें उत्प

न्न होता है, परंतु अरणीके काष्ठसें नही होता, अरु जो अरणीके काष्ठसे अग्नि उत्पन्न होता है, सो सदा अरणीकाष्ठसेंही उत्पन्न होता है, परतु अग्निसें नहीं होता, अरु जो कहा था कि बीजसेनी केला उत्पन्न होता है, इत्यादिक सोनी परस्पर विनिन्न होनेसे सोइ उत्तर है कि जो उपर लिख आये है एक औरनी बात है, कि जो केला कदसे उत्पन्न होता है, सो नी परमार्थसें बीजहीसे होता है, तातें परंपरा करकें बीजही कारण है, औसेही वटादिकनी शाखाके एक देशतें उत्पन्न होते हूये परमार्थसे बीजसेही उत्पन्न होते है, सोइ कहते है कि शाखासें शाखा होती है, परतु उस शाखाकी हेतु शाखा है, औसा लोकमें व्यवहार नहीं है, काहेतें कि वट बीजहीकू सकल शाखा प्रशाखा समुदाय रूप वटका हेतु होने करके प्रसिद्ध है, औसेंही शाखाके एक देशसेनी उत्पन्न होता हूआ वट परमार्थसे मूल, वटशाखारूपही है, इसतें सोनी मूल बीजहीसे उत्पन्न हूया मानना चाहिये, तिस वास्ते किसी जगेसेनी कार्य कारण नाव व्यनिचारी नहीं है ॥ इति यदृच्छावादि मतखंमन ॥

अथ अज्ञानवादी मत खंमन लिखते है अज्ञानवादी जो कहते है कि ज्ञान श्रेय नहीं है, क्योंकि जब ज्ञान होता है, तब परस्पर विवादके योगसे चित्तमे कलुष पणेसे दीर्घतर ससारकी वृद्धि होती है, इत्यादि यह जो अज्ञान वादीयोंने कहा है, सो नी मूर्खताका सूचक है, सोइ दिखाते है, कि और बात तो रहो परंतु प्रथम हम तुमको दो बातें पूछते है सो यह बातें है कि ज्ञानका जो तुम निषेध करते हो, सो क्या ज्ञानसे करते हो? वा अज्ञानसे करते हो? जे कर कहोगे कि ज्ञानसे करते है, तो फेर कैसे कहते हो कि अज्ञान श्रेय है? इस कहनेसे तो ज्ञानही श्रेय हूआ, ज्ञानके विना अज्ञानकों कोई स्थापन करने समर्थ नहीं है, जे कर उक्त कहनेको मानोगे, तो तुमारी प्रतिज्ञाका व्याघात प्रसग होगा, जे कर कहोगे कि अज्ञानसे निषेध करते है, सोनी अयुक्त है, सो अज्ञानकों ज्ञान निषेधनेका सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि अज्ञान किसीकेनी साधने बाधनेमे समर्थ नही है, अज्ञान होनेसे जब अज्ञान निषेधनेमें सामर्थ्य न हूआ तब सिद्ध हूआ कि ज्ञानही श्रेय है, अरु जो तुमने कहा था कि जब ज्ञान होगा, तब परस्पर विवादके

योगसें चित्त कालुष्यादि नावकूं प्राप्त होगा, इत्यादि. सोनी विना विचारे कहनां है, हम परमार्थसें ज्ञानी उसकों कहते हैं कि जिसकी आत्मा विवेक करकें पवित्र होवे, अरु जो ज्ञानका गर्व न करे, अरु जो थोडासा ज्ञानी हो कर कंठ लग मद्य पी कर जैसें उन्मत्त बोलता है तैसें बोले, अरु सकल जगत्कों तृणोंकी तरें माने, सो परमार्थसें अज्ञानीही है, क्योंकि उनकों ज्ञानका फल नहीं है, ज्ञानका फल तो राग द्वेषादि दूषणोंका त्यागनां है. जब यह नहीं हूवा, तब तो परमार्थसें ज्ञानही नहीं "उक्तं च ॥ तत् ज्ञानमेव न नवति, यस्मिन्नुदिते विनाति रागगणः ॥ तमसः कुतोस्ति शक्ति,र्दिनकरकिरणाग्रतः स्थातुं ॥१॥" ऐसा ज्ञानी विवेक करकें पवित्र आत्मा वाला परजीवोंके हित करणेमें एकांत रसीया होवे, जेकर वो वादनी करेगा, सोनी परजीवोंके उपकार वास्ते करेगा, अरु राजा आदिक परीक्षक निपुण बुद्धिवालोंकि परिषदामें करेगा, अन्यथा नहीं करेगा. ऐसेंही तीर्थंकर गणधरोनें वाद करणेकी आज्ञा दीनी है. जब ऐसें हूवा तब कैसें चित्तकी मलिनता करकें कर्मका बंध होनेसें दीर्घतर संसारकी वृद्धि होवे? केवल ज्ञानवान्का जो वाद है, सो वादी नरपति परीक्षकोंके अज्ञानके दूर करणेके वास्ते है, सम्यक् ज्ञानके प्रगट होनेसें बडा उपकार होता है, इस वास्ते ज्ञानही श्रेय है.

अरु जो अज्ञानवादी कहता है, कि तीव्राध्यवसाय करकें जो कर्म उत्पन्न होते हैं, उनसें दारुण विपाक फल होता है, सो तो हम मानते हैं, परंतु जो अशुनाध्यवसाय है, तिनका हेतु ज्ञान नहीं है, क्योंकि अशुनाध्यवसायोंका अज्ञाननी हेतु देखनेमें आता है, केवल इतनी बात तो है कि ज्ञानके होते हूया जे कर कदाचित् कर्म दोषतें अकार्यमें प्रवृत्तिनी होवेगी, तोनी ज्ञानके बलसें प्रतिक्षण संवेग नावनासें तीव्र अशुद्ध परिणाम नहीं होते हैं, सोइ दिखाते हैं.

जैसें कोईक पुरुष राजादिकोंके दुष्ट नियोगसें विषमिश्रित अन्न है, ऐसें जानता उता नयनीत मन करकें जीमेगा, तैसेंही सम्यक् ज्ञानीनी कथंचित्कर्म दोषसें अकार्यनी आचरेगा, तोनी संसारके दुःखों करकें नयनीत मनवाला होवेगा, परंतु निःशंक नहीं होवेगा. अरु जो संसारसें नयनीत होता है, तिसहीका नाम संवेग कहते है, तबतो संवेगवान् तीव्र अशुना

ध्यवसायवाला नही होता है, अरु जो तुमने कहा था कि अज्ञानही सत्पु रुषोंको मोक्ष जाने वास्ते श्रेय है, परतु ज्ञान श्रेय नही, यह जो कहनां है, सो मूढताका सूचक है, जिसका नामही अज्ञान है. वो श्रेय क्यों कर हो सक्ता है? अरु जो तुमने कहाथा कि हम ज्ञानकूं मानभी लेवे,जो ज्ञानका निश्चय करणेमें कोइ समर्थ होवे, सोभी मूर्खोंका कहनां है, क्योंकि यद्यपि सर्व मतो वाले परस्पर भिन्नही ज्ञान अंगीकार करते है, तोभी जि सका वचन दृष्टेष्ट बाधित नहीं अरु पूर्वापर व्याहत नहीं है, सोइ सम्य क् रूप जाननां. तैसा वचन तो भगवानहीका कह्या हूआ हो सक्ता है, सोइ प्रमाण है, शेष नही. अरु जो कहा था कि बौधभी अपनें बुद्ध भग वानकों सर्वज्ञ मानते है, इत्यादि सोभी असत् है, क्योंकि दृष्टेष्टकरकें तिनका बचन बाधित है, इस वास्ते सुगतादिक सर्वज्ञ नही है, तिनका व चन जैसे बाधित है, तैसे आगें लिखेंगे.

तथा जो तुमने कहाथा कि जो वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञ होवे,तोभी तिस वर्द्धमान स्वामीहीका कह्या हूआ यह आचारांगादि शास्त्र है, सो क्योंकर प्रती त होवे? यहभी तुमारा कहना दूर हो गया, क्योंकि और किसीका ऐसा दृष्टेष्ट बाधा रहित वचन है नही. अरु जो तुमने कहाथा कि यहभी तुमारा कहना होवेकि आचारांगादि यह जो शास्त्र है, सो वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञके कहे हूये है तोभी वर्द्धमान स्वामीके उपदेशका यही अर्थ है अन्य नही है इत्यादि सोभी अयुक्त है क्योंकि भगवान् जो है,सो वीतराग है, अरु जो वीतराग होता है, सो किसीकू कपट उपदेश देकर भूलाता नही है. क्योंकि विप्रतारणेका हेतु जो रागादि दोषोंका समूह सो भगवान्में नहीं है, अरु जो सर्वज्ञ होता है, सो जानता है, जो इस शिष्यने विपरीत समजा है, अरु इसने सम्यक् समजा है, तब तो जिसने विपरीत समजा है, ति सकू मनाकर देते है, अरु भगवानने तो गौतमादिकोंकों मने नहीं करा, इस वास्ते गौतमादिकोने सम्यग्ही जाना है, अरु जो कहाथा कि गौत मादि छद्मस्थ है, इत्यादि सोभी असार है, क्योंकि छद्मस्थभी उक्त रीति करकें भगवानके उपदेशसेही यथार्थ वक्ता निश्चय हो सक्ता है, तथा विचि त्र अर्थोवाले शब्दभी भगवाननेही कहे है, सो शब्द जैसें जैसें प्रकरण हो गा, तैसें तैसें ही अर्थका प्रतिपादक हो सक्ता है, इस वास्ते कोइभी दूषण

नहीं क्योंकि तिस तिस प्रकरणके अनुसारें तिस तिस अर्थका निश्चय हो जाता है, अरु गौतमादिकोंनें जिस जिस जगे जिस जिस शब्दका जैसा जैसा अर्थ करा है, सो नगवानने निषेध नहीं करा, इस वास्तेजी जाना जाता है, जो गौतमादिकने यथार्थही जाना है, अरु यथार्थही शब्दोंका अर्थ करा है, अरु जो कुछ गौतमादिकोंने कहा था, सोई आचार्योंकी अविछिन्न परंपरा करकें अब तांइ तैसेही अर्थका अवगम होता है, ऐसेंनो न कहनां कि आचार्योंकी परंपरा हमकूं प्रमाण नहीं? क्यों कि अविपरीतार्थ कहने करकें आचार्योंकी परंपराकों कोइनी जूठी करने समर्थ नहीं.

एक औरजी बात है, कि तुमारा जो मत है, सो आगम मूल है? वा अनागम मूल है? जे कर कहोगे कि आगम मूल है, तब तो आचार्योंकी परंपरा क्योंकर अप्रामाणिक हो सक्ति है? आचार्योंकी परंपरा बिना, आगमका अर्थही क्योंकर जाना जाये? जे कर कहोगे कि अनागममूल है, तब तो उन्मत्तके विरचित बचनवत् प्रामाणिक न होवेगा.

पूर्वपक्षः—यद्यपि हमारा मत अनागम मूल है, तोजी युक्ति संयुक्त है, इस वास्ते हम मानते हैं.

उत्तरपक्षः—अहो " दुरंतः स्वदर्शनानुरागः" कैसा जारी अपणे मतका राग है, क्योंकि यह पूर्वापर विरुद्ध जाषण तो अज्ञान मतका जूषण है?

पूर्वपक्षः—किसी तरें हमारा पूर्वापर विरुद्ध बोलनांही हमारे मतका जूषण है?

उत्तरपक्षः—युक्तियां जो होतीयां हैं, सो ज्ञानमूलही होतीयां हैं; अरु तुम तो अज्ञानहीकूं श्रेय मानते हो, तो फेर तुमारे मतमें सत् युक्तियोंका कैसें संजव होवे? इस वास्ते तुम पूर्वापर विरुद्धार्थके जाषक हो, इस हेतुसें तुमारा मत किसीजी कामका नहीं है ॥ इति अज्ञानवादि मत खंमनं ॥

अथ विनयवादीके मतका खंमन लिखते है. अब जो विनयहीसें मोक्ष मानते हैं सोजी एकांत वादके मोहसें हैं, क्योंके विनय मुक्तिका अंग है, जो मुक्ति मार्गमें चलते हैं, तिनकी विनय करे अरु मुक्तिमार्ग तो "सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः इति बचनात्" सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, अरु सम्यक् चारित्र रूप है, ऐसा तत्त्वार्थ सूत्रका प्रमाण है, इस वास्ते ज्ञानादिकोंकी तथा ज्ञानादिकोंके आधार जूत जो बहुश्रुतादिक

पुरुष है, तिनकी जो विनय करे, बहुमान देवे, ज्ञानादिककी वृद्धि करे, सो परपरा करके मुक्तिका अग हो सक्ता है, परतु जो सुर, नरपति आदिककी विनय है, सो संसारका हेतु है, क्योंकि जो जिसकी विनय करता है, वो उसके गुणोंकों बहु मान देता है, अरु सुर, नरपति प्रमुखोमे तो विषय नोगनेका प्रधान गुण है, जब उनकी विनय करी, तब तो उनके नोगोकूं बहु मान दीया, जब नोगोकूं बहु मान दीया, तब दीर्घ ससारपथकी प्रवृत्ति कर लीनी इस वास्ते एकात विनयसे जो मोक्ष मानते है, सोनी असत् वादी है, क्योकी ज्ञानादिकोंसे रहित विनय साक्षात् मुक्तिका अग नहीं है ज्ञान, दर्शन, चारित्रसे रहित पुरुष, केवल पादपतनादिक विनयसे मुक्ति नहीं पा सक्ता है, किंतु ज्ञानादिक सहितही पा सक्ता है, तब तो ज्ञानादिकही साक्षात् मुक्तिके अग हूये विनय नहीं

पूर्वपक्ष –कैसे हम जानीये जो ज्ञानादिकही मुक्तिके अग है?

उत्तरपक्षः–इस ससारमे मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति, इन तीनोही करकें कर्म वर्गणाका सबंध आत्माको होता है, अरु कर्मकालका जो क्षय होना है, सोइ मोक्ष है " मुक्ति कर्मक्षयादिष्टेति वचनप्रामाण्यात् " अरु कर्मका क्षय तो तब होगा, जब कर्मबधका कारण उछेद होगा, अरु कर्मका कारण तो मिथ्यात्वादि तीन है, इस वास्ते मिथ्यात्वका प्रतिपक्ष सम्यक् दर्शन है, अरु अज्ञानका प्रतिपक्ष सम्यक् ज्ञान है, अरु अविरतिका प्रतिपक्ष सम्यक् चारित्र है, जब इन तीनोको सेवता हुवा, यह तीनो प्रकर्ष नावको प्राप्त होगे, तब सर्वथा कर्माका कारण दूर होवेगा जब कारण उछेद होवेगा, तब निर्मूल कर्मोछेदके होनेसे मोक्ष होवेगी, इस वास्ते ज्ञानादिकही मोक्षका अग है, परतु विनय मात्र नहीं अरु जो ज्ञानादिको विषे विनय करता हूवा परपरा करके मुक्ति अग है, अरु साक्षात् मोक्षका हेतु तो ज्ञानादिक है, अरु जो जैनशास्त्रोमें केइ जगे लिखा है कि " सर्वकल्याणनाजन विनय " सो ज्ञानादिकोकी प्रवृत्ति वास्ते है, अरु जे कर विनयवादीनी इसी तरे मानता है, तब तो विनयवादीनी हमारे मतमेंही वर्त्ते है तब तो विवादकाही अनाव है॥ इति विनयवादी मत संपन्न ॥ यह समुच्चय (३६३) मतका किंचित् मात्र स्वरूप लिखा है

अथ नव्य जीवोके शीघ्र बोध होने वास्ते षट् दर्शनोंका किंचित स्वरू

प लिखते हैं. उसमें प्रथम बौद्ध दर्शनका स्वरूप है सो कहते हैं. बौद्ध मतमें गुरु जो होते हैं, तिनका लिंग ऐसा होता है. १ मस्तक मूंमया हुवा, २ चामका टूकडा, ३ कमंमलु, ४ धातुरक्त वस्त्र, यह तो उन का वेष है. अरु शोचक्रिया बहुत है, कोमल शय्यामें सोनां, सवेरे उठक र पेया पीनां, मध्यान्ह कालमें नात खानां, अपरान्हमें पानी पीनां, डाक्षा, खंम, मिसरी. अर्द्धरात्रिमें मरणांतमें मोक्ष, यह बौद्धोंका चलन है, तथा मनगमता नोजन करनां, मनगमती शय्या, आसन, अरु मनगमता रहने का स्थान, ऐसी अच्छी सामग्रीसें मुनि अच्छा ध्यान करता है, अरु निक्षा पात्रमें जो कुछ पड जावे, सो सर्व शुद्ध, ऐसे मान करकें मांसनी खा लेते हैं, अरु ब्रह्मचर्यादि अपणी क्रियामें बहुत दृढ होते है, यह उनका आचार है, १ धर्म्म, २ बुद्ध, ३ संघ, यह तीनोंकों रत्नत्रय कह ते हैं, अरु शासनके विघ्नोके नाश करने वाली तारा देवी मानते हैं, अरु विपश्यादिक सात बौद्धावतार जिनोंकी मूर्त्तियोंके कंठमें तीन तीन रेखाका चिन्ह होता है, तिसकूं नगवान् मानते हैं, तिसकूं सर्वज्ञ मानते हैं.

अरु बुद्ध नगवान्कों जितने नामों कर कहते हैं, सो लिखते हैं, १ बुद्ध, २ सुगत, ३ धर्म्मधातु, ४ त्रिकालवित्, ५ जिन, ६ बोधि सत्त्व, ७ महाबोधी, ८ आर्य, ९ शास्ता, १० तथागत, ११ पंचज्ञान, १२ षडनिज्ञ, १३ दशार्द्ह, १४ दशनूमिग, १५ चतुस्त्रिंशज्ज्ञातकज्ञ, १६ दशपा रमिताधर, १७ द्वादशाक्ष, १८ दशबल, १९ त्रिकाय, २० श्रीघन, २१ अद्वय, २२ समंतनद्र, २३ संगुप्त, २४ दयाकूर्च, २५ विनायक, २६ मा रजित्, २७ लोकजित्, २८ मुखजित्, २९ धर्मराज, ३० विज्ञानमात्रक, ३१ महामैत्र, ३२ मुनींद्र. यह बत्तीस नाम, बुद्ध नगवान्के कहते हैं. अरु सात बुद्ध मानते है, १ विपशी, २ शिखी, ३ विश्वनू, ४ क्रकुछंद, ५ कांचन, ६ काश्यप, ७ शाक्यसिंह. पीछला जो शाक्यसिंह बुद्ध है, उ सके नाम, १ शाकसिंह, २ अर्कबांधव, ३ राहुलसू, ४ सर्वार्थसिद्ध, ५ गौतम, ६ मायासुत, ७ शुद्धोदनसुत, ८ देवदत्ताग्रज. तथा १ निक्षु, २ सौगत, ३ शाक्य, ४ शौद्धोदनी, ५ सुगत, ६ तथागत, यह शून्यवादी बौ द्धोंके नाम हैं. तथा १ शौद्धोदनी, २ धर्मोत्तर, ३ अर्चट, ४ धर्मकीर्त्ति, ५ प्रज्ञाकर, ६ दिग्नाग, ७ रामट. इत्यादि ग्रंथोंके करने वाले गुरु हैं. तथा

१ तर्कनाषा, २ न्यायविंडु, ३ हेतुविद, ४ अर्वट, ५ तर्ककर्मनशैत, ६ न्यायप्रवेश, ७ ज्ञानपार, इत्यादि नाम उनके तर्कशास्त्रोके हे तथा वोद्धोकी शाखा चार है, सो कहते है, १ वैन्नाषिक, २ सौतान्त्रिक, ३ योगाचार, ४ माध्यमिक.

अथ वोद्धमत वोद्ध चार वस्तु मानते है, सो लिखतेहै, १ इुख, २ समुदाय, ३ मार्ग, ४ निरोध. तहा जो इुख है, सो पाच स्कंधरूप है, उसका नाम लिखते है १ ज्ञानस्कध, २ वेदनास्कध, ३ सज्ञास्कध, ४ सस्कारस्कंध, ५ रूपस्कध इन पाचो विना अपर कोइन्नी आत्मादिक पदार्थ नही है, यह पाच स्कंधका अर्थ लिखते हे १ रूपविज्ञानं, रसविज्ञान, इत्यादिक निर्विकल्पक जो विज्ञान है, सो विज्ञान स्कध, २ सुखाइुखा, अइुख सुखा, यह वेदनास्कध है, यह वेदना पूर्वकृत कर्मोसे होती है, ३ सविकल्पक ज्ञान जो है, सो संज्ञास्कंध, ४ पुण्य अपुण्यादिक धर्म समुदाय जो है, सो सस्कारस्कंध है, इसही सस्कारके प्रवोधसे पूर्व अनुनवका स्मरणादिक होता है, ५ पृथिवी, धातु आदिक अरु रूपादिक, यह रूपस्कध है, इन पाचोसे अतिरिक्त आत्मादिक कोइ पदार्थ नही अरु यह जो पाचो स्कध है, वे सर्व एक क्षणमात्र रहते है, नित्यन्नी नही है, अरु कितनेक काल ताइ रहनेवालेन्नी नहीं है, यह इुख तत्त्वके पाच न्नेद कहे

अथ इुख तत्त्वका कारणनूत समुदाय तत्त्वका स्वरूप लिखते है, जो इस जगत्मे राग द्वेषोका समूह उत्पन्न होता है, वो राग द्वेषका समूह कैसा है? कि "आत्माआत्मीयनावाख्य" मै हूं, यह मेरा है, ऐसा जो सबध, तथा यह दूसरा है, यह दूसरेकी वस्तु है, ऐसा जो सबध, सोइ है नाम जिसका इस करके जो राग द्वेषादिक उत्पन्न होते है, तिसका नाम समुदायतत्त्व है अथ इुख, अरु समुदाय, यह जो दोनो है, सो ससारकी प्रवृत्तिके हेतु है

अव इन दोनोके जो विपक्षीनूत १ मार्ग २ निरोध तत्त्व है, सो लिखते है कि "परमनि कृष्ट काल क्षण" तिसमे जो होवे, सो क्षणिक है, सर्व पदार्थ क्षणमात्र रह कर नाश हो जाते है, आत्मा कोइ सर्वकाल स्थायी नही पूर्वक्षणके नाश होनेसे तत्सदृश उत्तर क्षण उत्पन्न होता है, पूर्वज्ञान जनिता वासना सो उत्तर ज्ञानमे शक्ति है, अरु क्षणोकी परपरा करके जो मान

सी प्रतीति होवे, तिसका नाम मार्ग्ग है, सो निरोधका कारण जाननां. अथ चौथा निरोध नामा तत्त्व लिखते हैं, निरोध नामा तत्त्व मोक्षकों कहते हैं. चित्तकी जो निःक्लेश अवस्था तिस्का नाम निरोध तत्त्व है, नामांतर करिकें मोक्ष कहते हैं, यह दुःखादि चारकों आर्यसत्त्व कहते हैं, अरु यह जो चारों तत्त्व अनंतर कहे हैं, सो सौतांत्रिक बौद्धमतकी अपेक्षा है.

अरु जेकर भेद रहित समुच्चय बौद्धमतकी विवक्षा करियें, तब तो बौद्धमतमें बारा पदार्थ होते हैं, उसमें १ श्रोत्र, २ चक्षु, ३ घ्राण, ४ रसन, ५ स्पर्शन. यह पांच तो इंद्रिय, अरु इन पांचों इंद्रियोंके पांच विषय, तथा १ चित्त, २ शब्दायतन धर्म जो है, सुख दुःखादि तिनका जो आयतन (घर) सो क्या है? कि शरीर है यह सर्व द्वादश तत्वोंका नाम आयतन कहते हैं, अरु यह बारा आयतन क्षणिक हैं, उक्त प्रकारसें. चार तत्त्व तो सौतांत्रिकके मतके, अरु सामान्य प्रकारसें बौद्धमतके बारा आयतन कह करकें अब बौद्धमतके प्रमाण लिखते हैं, बौद्धमतमें एक प्रत्यक्ष, दूसरा अनुमान, यह दो प्रमाण मानते हैं ॥ इति संक्षेप मात्र बौद्धदर्शनं ॥ १ ॥

अथ नैयायिक दर्शन लिखते हैं. नैयायिक मतका अपर नाम यौगमतभी कहते हैं; इन नैयायिकोंके गुरु १ दंभ रखते हैं, २ बडी कौपीन पहेरतें हैं, ३ कांबली उढते हैं, ४ जटा राखते हैं, ५ शरीरकों भस्म लगाते हैं, ६ नीरस आहार करते हैं, ७ बांहके मूलमें तूंबी राखते हैं, ८ प्रायः करकें वनोमें रहते है, ९ आतिथ्य कर्ममें तत्पर होते हैं, १० कंद, मूल, फल, खाते हैं, ११ कितनेक स्त्री रखते हैं, औ कितनेक नहीं रखते हैं, १२ जो स्त्री नहीं रखते हैं, सो तिनमें उत्तम गणे जाते हैं, १३ पंचाग्नि तापते हैं, १४ जटामें प्राणलिंग धरते हैं, १५ उत्तम संयम अवस्थामें जब प्राप्त होते है, तब नग्न हो कर भ्रमण करते हैं, १६ सबेरे दंत पादादि शौच करकें शिवका ध्यान करते हैं, १७ भस्म करकें तीन तीन वार अंगकूं स्पर्श करते हैं, १८ जो उनका भक्त बंदना करता है, सो "ॐ नमः शिवाय" कहता है, अरु १९ गुरु भक्तके तांइ "शिवाय नमः" ऐसे कहता है. उनका कहना ऐसाभी है, कि जो पुरुष शैवी दीक्षा बारां वर्षपाल करकें छोड देवे, जे कर पीछे वो दास दासीभी होवे, तोभी निर्वाण

पद पाता है, अरु शंकर इनका देव है, सो शंकर कैसा हैकिः—सर्व सृष्टि का संहारका कर्त्ता है

तिस शंकरके अगारह अवतार मानते है, तिसका नाम लिखते है, १ नकुलीश, २ कौशिक, ३ गार्ग्य, ४ मैत्र, ५ कौरुप, ६ ईशान, ७ अपर गार्ग्य, ८ कपिलांम, ए मनुष्यक, १० अपर कुशिक, ११ अत्रि, १२ पिंगलाक्ष, १३ पुष्पक, १४ बृहदाचार्य, १५ अगस्ति, १६ सतान, १७ राशिकर, (१८) विद्यागुरु, यह अठारह उनके तीर्थेश है, इनकी बहुत सेवा करते है, इनका पूजन, अरु प्रणिधान तिनके शास्त्रोसे जान लेना.

अरु इनका अक्षपाद मुनि अर्थात् गौतम मुनि गुरु है, तिनके मतमे नरट पूजनिक है. सो कहते है, देवतावोके सन्मुख हो कर नमस्कार न करणी, जैसा नैयायिक मतमें लिंग, वेष, देवादि स्वरूप है, तैसाही वैशेषिक मतमेंजी जान लेना, क्योंकि नैयायिक वैशेषिकोके प्रमाण अरु तत्त्वोंमे थोडासा नेद है, इस वास्ते यह दोनो मत तुल्य ही है,इन दोनोहीको तपस्वी कहते है, अरु तिनके शैवादिक चार नेद है, एक शैव, दूसरा पाशुपत, तीसरा महाव्रतधर, चौथा कालमुख. इनके अवातर नेद नरट, नक्तलैगिक, तापसादिक है, नरटादिकोको व्रत ग्रहणेमे ब्राह्मणादि वर्णोका नियम नहीं, किंतु जिसकी शिव विषे नक्ति होवें, सो व्रती नरटादिक होता है, परंतु नैयायिक जो है, सो सर्व सदाशिव नक्त होनेसे उनका नाम शैव कहते है, अरु वैशेषिकोको पाशुपत कहते है

इन नैयायिकोके मतमे १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ शाब्द, यह चार प्रमाण मानते है, अरु १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ संशय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टांत, ६ सिद्धांत, ७ अवयव, ८ तर्क. ए निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२ वितंमा, १३ हेत्वानास, १४ छल, १५ जातय, १६ निग्रहस्थान यह सोला पदार्थ मानते है, इनका विस्तार बहुत है, इस वास्ते नहीं लिखा, अरु आत्यंतिक दुःखोका जो वियोग तिसकू मोक्ष कहते है इनके १ न्यायसूत्र, अक्षपाद मुनि कर्त्ता, २ नाष्य, वात्स्यायन मुनि कर्त्ता, ३ न्याय वार्त्तिक, उद्योतकर कर्त्ता, ४ तात्पर्य टीका, वाचस्पति कर्त्ता, ५ तात्पर्य परिशुद्धि, उदयन कर्त्ता, ६ न्यायालंकार वृत्ति, श्रीकंठानयतिलकोपाध्याय कर्त्ता, ७ नासर्वज्ञप्रणीत,

न्यायसार. तिसविषे अठारह टीका है. तिनमेंसूं न्यायभूषण नामक टीका प्रसिद्ध है, न्यायकलिका जयंत रचित, न्याय कुसुमांजलि यह सब इन नैयायिकोंके तर्क ग्रंथ हैं, यह नैयायिकदर्शन. संक्षेपसें लिखा.

अथ वैशेषिकभी यही लिख देते हैं. कि वैशेषिकोंका मत नैयायिकों के तुल्यही है, परंतु यह विशेष है कि, यह मतवाले प्रत्यक्ष अरु अनुमान यह दो प्रमाण मानते हैं, अरु १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, यह भावरूप ६ तत्त्वों मानते हैं, इन सर्वका विस्तार देखनां होवे, तदा वैशेषिक मतके ग्रंथोमें देख लेनां, तथा तपागच्छाचार्य श्रीगुणरत्नसूरिविरचित षट्दर्शन समुच्चय ग्रंथकी टीका देख लेनी. अरु यह वैशेषिकमतके जो तर्कग्रंथ हैं, सो कहते हैं, एक तो ६००० श्लोक प्रमाण, कंदली श्रीधर आचार्य कर्त्ता, वैशेषिक सूत्र, ३००० श्लोक प्रमाण, प्रशस्तकर भाष्य, ७०० श्लोक मान, व्योमशिवाचार्यकृत व्योममतीटीका, ९००० श्लोक मान, उदयनकी करी हूइ किरणावली ६००० श्लोकमान, श्रीवत्स आचार्यकृत लीलावती टीका ६००० श्लोकमान, अरु एक आत्रेय तंत्र था, सो व्यवछेद हो गया है. यह वैशेषिक मतवाले कहते हैं की शिवजीने उलूकका रूप करकें कणाद मुनिके आगें यह वैशेषिक मत प्रकाश करा था, इस वास्ते इस मतका नाम औलूक्य मतभी कहते हैं ॥ इति वैशेषिक मतं ॥

अथ सांख्यमत लिखते हैं. प्रथम तो सांख्यमतके साधुओंके जानने वास्ते उनका लिंगादिक लिखते हैं. सो त्रिदंडीभी होते हैं, कौपीन पहेरते हैं, धातुरक्त वस्त्र रखते हैं, कोइ शिर उपर शिखा रखते हैं, अरु कोइ जटा रखते हैं, कोइ मस्तक क्षुरमुंड कराते हैं, मृगचर्मका आसन रखते हैं, द्विजके घरका अन्न खाते हैं, केइ पांचही ग्रास खाते हैं, अरु बारा अक्षरका जाप करते हैं, तिनके भक्त, जब गुरुकूं वंदना करता है, तब "ॐ नमो नारायणाय" ऐसे कहते है, तब गुरु उनकूं "नमो नारायणाय" ऐसे कहते है, अरु महाभारतमें जिसका नाम "वीटा" ऐसा लिखा है, यह काष्ठकी मुखवस्त्रिका मुखके निःश्वास निरोधके वास्ते रखते हैं, जिससें मुखश्वाससें जीवहिंसा न होवे. यदाहुः" ॥ श्लोक ॥ तेप्राणादनुयातेन, श्वासेनैकेन जंतवः ॥ हन्यंते शतशो ब्रह्म, न्नणुमात्राक्षरवादिनः ॥ १ ॥ ते सांख्य गुरु, ज

लके जीवोंकी दया वास्ते अपने पास पाणीके गानने वास्ते गलना राख ते हे, अरु अपने नक्तोकूं पाणीके गानने वास्ते तीस अगुल प्रमाण ला बा ओर वीश अगुल प्रमाण चौडा, दृढ गलना राखनेका उपदेश करते है, अरु जो जीव पानीके गाननेमे निकले, वो उसी पाणीमे पीछे प्रक्षेप करने, क्योकि मीठे पाणी करके खारे पाणीके पूरे मर जाते है, अरु खारे पा णीके मिलनेसे मीठे पाणीके पूरे मर जाते है, इस वास्ते परस्पर पानी योंका मेल न करना, बहुत सूक्ष्म पाणीके एक बिंदुमे इतने जीव हे कि जे कर ज्रमर समान उस जीवोकी काया बनाइ जावे, तो तीन लोकमे वे जीव न समावे ॥ इति गलनक विचारो मीमासाया ॥

यह साख्यनी एक प्राचीन, अरु एक नवीन, ऐसे दो तरेके है, नवीनोका दूसरा नाम पातांजलनी कहते है, इनमेंसू प्राचीन साख्य ईश्वरको नही मानते है, अरु नवीन साख्य ईश्वरको मानते है, जो निरीश्वर है वो ना रायण पर है, अरु उनके जो आचार्य है, सो विष्णु प्रतिष्ठा कारका चैत न्य प्रमुख शब्दो करके कहे जाते है, अरु साख्य मत कहने वाले यह आचार्य हे सो लिखते है कपिल, आसुरी, पचशिख, नार्गव, उलूक, ईश्वर, कृष्ण, यह शास्त्रोंके कर्त्ता है. साख्यमत वालोंको कापिलानी कहते है, तथा कपिलाका परमर्षि ऐसा दूसरानी नाम है, इस वास्ते तिनको पारमर्षानी कहते है, वाणारसीमे सो बहुत होते है, मासोपवासनी करते है, अरु ब्रा ह्मण जो है, सो अर्चिमार्गसे विरुद्ध धूममार्गानुगामी है, अरु साख्य जो है, सो अर्चिमार्गानुयायी है, तिस वास्ते ब्राह्मणोको तो वेद प्यारे है, अरु यज्ञमार्गानुयायी है, अरु साख्य जो है सो हिसा करके पूर्ण, ऐसे जो वेद, तिनोंसे निवर्त्ते हूये है, अध्यात्मवादी है सो साख्य अपने मतकी महिमा ऐसी मानते है माठर शास्त्रके प्रातमे लिखा है ॥श्लोक॥ हस पिब चखाद मोद, नित्य नुंक्ष्व च नोगान् यथाऽनिकाम ॥ यदि विदितं कपिलमतं, तत्प्राप्स्यसि मोक्षसौख्यमचिरेण ॥१॥ अस्यार्थ —जे कर तुमने कपिल मत जाना है तो हसो, पीयो, खेलो, खाउ सदा खुशी रहो, जैसे रुचि होवे, तैसे नोगोको सदा नोगो, तो तुमको थोडेसे कालमे मुक्ति सुख प्राप्त होवेगा शास्त्रातरमेनी कहा है ॥ श्लोक ॥ पचविंशति तत्त्वज्ञो, यत्र तत्राश्रमे रत ॥ शिखी मुंडी जटी वापि, मुच्यते नात्र सशय ॥ १ ॥

अस्यार्थः—पच्चीश तत्वोंका जो जानकार होवे,सो चाहो किसी आश्रममें रहे, शिखावाला होवे; या मुंडित होवे, अथवा जटावाला होवे, वे सर्व उपाधिसें छुट जाते हैं, इसमें संशय नहीं.

अब सांख्यमतमें सर्वसांख्य पच्चीश तत्त्व मानते हें,जब पुरुष तीन दुःखोसें अभिहत होता है, तब तिन दुःखोंके दूर करणे वास्ते जिज्ञासा उत्पन्न होती है, सो तीन दुःख यह हैं १ आध्यात्मिक, २ आधिदैविक, ३ आधिभौतिक, यह तीन दुःख हैं, आध्यात्मिक जो आधि है, सो दो प्रकारकी है, एक शारीरी, दूसरी मानसी, तहां जो वायु, पित्त, श्लेष्म, इन तीनोकी विषमतासें देहमें जो अतिसारादिक होते हें, सो शारीरिक है. अरु काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, विषयोंके देखनेसें जो होवे, सो मानसी. यह दोनोही आंतर उपायसें दूर हो सक्ति हैं इस वास्ते इसकूं आध्यात्मिक दुःख कहते हैं, २ अरु जो बाह्य उपाय करकें साध्या जावे सो दुःख दो प्रकारके हें, एक आधिभौतिक, दूसरा आधिदैविक, तहां जो दुःख मनुष्य, पशु, पक्षी, मृग, सर्प्प, स्थावर आदिके निमित्त करिकें होता है ताकूं आधिभौतिक कहते हैं, ३ अरु यक्ष, राक्षस, भूतादिकका प्रवेश हो जाना, तथा महामारी अनावृष्टि अतिवृष्टिका होनां तिसका नाम आधिभौतिक है. इन तीनों दुःखो करकें रज परिणामके भेद करकें प्राणीयोंकों दुःखोंके दूर करणे वास्ते तत्त्वोंके जाननेकी इछा होती है, सो तत्त्व, पच्चीश प्रकारके हैं.

अब प्रथम पच्चीश तत्त्वोंका स्वरूप लिखते है. तिनमें प्रथम सत्त्वादि गुणोंका स्वरूप कहते हें. १ प्रथम सत्त्वगुण सुखलक्षण, २ दूसरा रजोगुण दुःख लक्षण, ३ तीसरा तमोगुण मोहलक्षण, इन तीनो गुणोंके यह लिंग हें, १ सत्त्वगुणका चिन्ह प्रसन्नता, २ रजोगुणका चिन्ह संताप, ३ तमोगुणका चिन्ह दीनपणा, अब १ प्रसाद, २ बुद्धिपाटव, ३ लाघव, ४ प्रश्रय, ५ अनभिष्वंग, ६ अद्वेष, ७ प्रीत्यादय, यह सत्त्वगुणके कार्यलिंग हैं. १ ताप, २ शोष, ३ भेद, ४ चलचित्त, ५ स्तंभ, ६ उद्वेग, यह रजोगुणके कार्य लिंग हैं, १ दैन्य, २ मोह, ३ मरण, ४ असादन, ५ बीभत्सा, ६ ज्ञानगौरवादि, यह तमोगुणके कार्यलिंग हैं. इन कार्यों करकें सत्त्वादि गुण जाने जाते हैं ॥ तथाहि ॥ लोकमें जो कुछ सुख उपलब्ध होता है,

सो १ आर्जव, २ मार्दव, ३ सत्य, ४ शौच, ५ लज्जा, ६ बुद्धि, ७ क्षमा, ८ अनुकंपा, प्रसादादि, यह सर्व सत्त्व गुणके कार्य्य है. अरु जो कुछ दुःख उपलब्ध होता है, सो १ द्वेष, २ द्रोह, ३ मत्सर, ४ निंदावचन, ५ बधन, तापादि स्थान है, सो रजोगुणके कार्य्य है अरु जो कुछ मोह, उपलब्ध होता है, सो १ अज्ञान, २ मद, ३ आलस्य, ४ नय, ५ दैन्य, ६ कृपणता, ७ नास्तिकता, ८ विषाद, ९ उन्माद स्वप्नादि, यह तमोगुणके कार्य्य है. यह सत्त्वादिक परस्परोपकारी तीन गुणो करके सर्व जगत् व्याप्त है, परंतु ऊर्ध्व लोकमें देवतायो विषे बाहुल्य करके सत्त्वगुण है, औ अधोलोक तिर्यंच नरकों विषे बाहुल्य करके तमोगुण है, औ मनुष्यों में बहुलता करके रजो गुण है, इन तीनो गुणों की जो सम अवस्था है, तिसका नाम प्रकृति है, तिस प्रकृतिको प्रधान, अव्यक्त शब्दों करकेनी कहते है, सो प्रकृति नित्य स्वरूप है, "अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वनाव कूटस्थं नित्यं" यह नित्यका लक्षण है अरु यह जो प्रकृति है सो अन्वय, वा असाधारणी, अशब्दा, अस्पर्शा, अरसा, अरूपा, अगंधा, अव्यया, कहते है अरु जो मूल साख्यमती है, वे एकैक आत्माके साथ न्यारा न्यारा प्रधान मानते है, अरु जो नवीन साख्य है, वे सर्वात्माओमे एक, नित्य, प्रधान मानते है, प्रकृति अरु आत्माके संयोगसें सृष्टि होती है, इस वास्ते सृष्टि होनेका क्रम लिखते है

तिस प्रकृतिसेती बुद्धि उत्पन्न होती है, गौ आदिकोके आगें दीखनेसे यह गौही है घोडा नहीं, यह स्थाणुही है, परंतु पुरुष नही, ऐसा जो निश्चयरूप अध्यवसाय होता है, तिसका नाम बुद्धि कहते है, दूसरा तिसका नाम महत्नी कहते है तिस बुद्धिके आठ रूप है १ धर्म, २ ज्ञान, ३ वैराग्य, ४ ऐश्वर्य, यह चार तो सात्विक बुद्धिके रूप है, १ अधर्म, २ अज्ञान, ३ अवैराग्य, ४ अनैश्वर्य्य,यह चारो तामसी बुद्धिके रूप है तिस बुद्धिसे अहंकार उत्पन्न होता है, तिस अहंकारसेति सोला गुणका समूह उत्पन्न होता है, सो गुण यह है, १ स्पर्शन (त्वक्) २ रसन जिव्हा, ३ घ्राण नासिका, ४ चक्षु लोचन, ५ श्रोत्र श्रवण इन पाचोको बुद्धींद्रिय कहते है, क्योंकि यह पाचो अपणे अपणे विषयको जानती है, अरु पाच कर्मेंद्रिय है १ पायु गुदा, २ उपस्थ स्त्री पुरुषका चिन्ह, ३

कंठादि आठस्थानोसें जो शब्द उच्चारियें है, सो वच, ४ हाथ, ५ पग, इन पांचोसें पांच काम होते हैं. १ मलोत्सर्ग, २ संजोग, ३ वचन, ४ पकडनां, ५ चलनां, इस वास्ते इन पांचोंकों कर्मेंद्रिय कहते हैं. अरु अगीआरवा मन, यह मन जो हैं, सो बुद्धींद्रियोंसें मिलता है, तब बुद्धींद्रियरूप हो जाता है, अरु जब कर्मेंद्रियोंसें मिलता है, तब कर्मेंद्रिय रूप हो जाता है, अरु यह मन जो है, सो संकल्पवृत्ति है, तथा अहंकारसेंती पांच तन्मात्रा जिनकी सूक्ष्म संज्ञा है, सो उत्पन्न होते हैं, तहां १ रूप तन्मात्रा सो शुक्ल कृष्णादिरूप विशेष, २ रस तन्मात्रा सो तिक्तादि रस विशेष, ३ गंध तन्मात्रा सो सुरभ्यादि गंध विशेष, ४ शब्दतन्मात्रा, सो मधुरादि शब्द विशेष, ५ स्पर्श तन्मात्रा, सो मृदु काठिन्यादि स्पर्श विशेष, यह षोडशका गण है. अथ पांच तन्मात्राओंसें पांच भूत उत्पन्न होते हैं, सो कहते हैं. १ रूप तन्मात्रा सूक्ष्म संज्ञासें अग्नि उत्पन्न होता है, २ रस तन्मात्रासें जल उत्पन्न होता है, ३ गंध तन्मात्रासें पृथिवी उत्पन्न होती है, ४ औ शब्द तन्मात्रासें आकाश उत्पन्न होता है, तथा ५ स्पर्श तन्मात्रासें वायु उत्पन्न होता है. ऐसें पांच तन्मात्राओंसें पांच भूत उत्पन्न होते हैं, ऐसें यह सब मिल कर चोवीश तत्त्व रूप सांख्य मतमें प्रधान निवेदन कीया, "औ अकर्त्ता विगुण भोक्ता" ऐसा पुरुष तत्त्व नित्य चिद्रूप मानते हैं, चोवीश तत्त्वरूप प्रधान ऐसे हैं कि १ प्रकृति, २ महान्, ३ अहंकार, ८ पांच ज्ञानेंद्रिय, १३ पांच कर्मेंद्रिय, १४ मन, १९ पांच तन्मात्रा, २४ पांच भूत, यह चोवीश तत्त्व हैं. तिनमेंसूं प्रथम एक प्रकृति है, ऐसें अनुत्पन्न होनेसें बुद्धि आदिक सात अगलोंके तो कारण हैं, अरु पीछलोंके कार्य हैं, इस वास्ते इन सातोंको प्रकृति विकृति कहते हैं, अरु षोडशका गण सो कार्यरूप होणेसें विकृति रूप है, अरु पुरुष जो है, सो न प्रकृति है, न विकृति है, न किसीसें उत्पन्न हूआ है, न किसीकों उत्पन्न करता है, इस हेतुसें ॥ तथाचेश्वरः कृष्णः सांख्यसप्ततौ ॥ "मूलप्रकृतिरविकृति,र्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ॥ षोडशकश्चविकारो,विकृतयः न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुष इति ॥ अर्थः—तथा ईश्वर कृष्ण सांख्यमतका आचार्य सांख्यसप्तति ग्रंथमें लिखता है, कि मूल प्रकृति अविकृति है, महत् आदिक सात प्रकृति विकृति हैं, षोडशक विकार

विकृति है न प्रकृति है, न विकृति है, सो पुरुष है तथा महदादिक, प्रकृतिका विकार है, सो व्यक्त हो कर फेर अव्यक्तनी हो जाते है, सो अनित्य होनेसे अपणे स्वरूपसें च्रश हो जाते है, अरु प्रकृति जो है, सो अविकृतिरूप है, सो कदापि अपणे स्वरूपसे च्रंश नही होती है तथा महत् आदिकोंका अरु प्रकृतिका स्वरूप सांख्यमतवाले ऐसे मानते है १ हेतुमत्, २ अनित्य, ३ अव्यापक, ४ सक्रिय, ५ अनेक, ६ आश्रित, ७ लिग, ८ सावयव, ९ परतत्र, १० व्यक्त, इनसें विपरीत प्रकृति है तहा १ हेतुमत् कारण वाले है, महत् आदिक २ अनित्य, उत्पत्ति धर्मवाले है, ३ बुद्ध्यादिक अव्यापी है, सर्वगत नही, ४ अध्यवसाय करके सयुक्त वर्त्ते है, इस हेतुसे सक्रिय सव्यापार चलने वाले है, ५ अनेक, तेवीस प्रकारके है इस वास्ते, ६ आश्रित, आत्माके उपकार वास्ते प्रधानको अवलव करिके रहे है, ७ लिग, जो जिससेते उत्पन्न होते है, सो तिसहीमे “लय कर्यं गच्छतीति लिगं,” तहा पाच नूत, पाच तन्मात्राओमे लय होते है, औ पाच तन्मात्रा, अरु दश इंद्रिय, अरु मन, यह अहकारमें लय होते है, अरु अहकार बुद्धिमे लय होता है, अरु बुद्धि प्रकृतिमें लय होती है, औ प्रकृति किसीमेनी लय नही होती है, ८ सावयव, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गधादिको करके सयुक्त है, ९ परतत्र, कारणके अधीन होनेसे, १० ऐसेही महत् आदिक व्यक्त है, प्रकृति इनसे विपरीत है, सो सुगम है, आपही समझ लेनी यह थोडासा स्वरूप लिखा है, जे कर विस्तार देखना होवे तदा साख्य सप्तति आदिक, तिनोके शास्त्रोसे जान लेना

अथ पच्चीशवा पुरुष तत्त्वका स्वरूप कहते है, पुरुषजो है सो “अकर्त्ताविगुणोनोक्ता नित्यचिदन्युपेतश्च” पुरुष तत्त्व आत्माकों कहते है, १ आत्माजो है, सो विपय सुखादिक तिनका कारण पुण्यादिक नही करता है, इस वास्ते “अकर्त्ता” है, क्योकि आत्मा तृण मात्रनी तोडने समर्थ नही है, औ कर्त्ता जो है, सो प्रकृति है, क्योकि प्रकृतिमे प्रवृत्ति स्वनाव है, तथा २ “विगुण” सत्त्वादि गुणरहित है, क्योकि सत्वादिक जो है सो प्रकृतिके धर्म है, तथा ३ “नोक्ता” आत्मा नोक्ता नोगने वाला है, नोक्तानी साक्षात् नही किंतु प्रकृतिका विकार नूत उनय मुख दर्पणाकार जो बुद्धि है, तिसमे सक्रमण होय हुवे सुख दुखोको पुरुष स्वात्म निर्मलविपे प्रतिबिंबोदय मात्र

करकें "नोक्ता" कहियें है, "बुध्द्यवसितमर्थं पुरुषश्चेतत" इति वचनात् ॥ जैसें जाइकें फूलोंके सन्निधानके वशसें स्फटिकमें रक्ततादि कहेनेंमें आता है, तैसें प्रकृतिके निकट होनेसें पुरुषभी सुख दुःखोंका नोक्ता कह्या जाता है, सांख्यमतका वाद महार्णवभी कहता है, उक्तंच "बुद्धिदर्प्पणसंक्रांतं, समर्थप्रतिबिंबकं ॥ द्वितीयदर्प्पणं कल्पे, पुंसिअध्यारोहति ॥ तदेव नोक्तृत्व मस्य नत्वात्मनोविकारापत्तिरिति" ॥ इसका तात्पर्यार्थ उपर लिखा जानना.

तथा च कपिलका शिष्य आसुरिभी कहता है ॥ श्लोक ॥ विवक्ते दृक्परिणतौ, बुध्दौ नोगोऽस्य कथ्यते ॥ प्रतिबिंबोदयः स्वछे,यथा चंद्रमसोंऽनसि ॥ १ ॥ तथा विंध्यवासी सांख्याचार्य आत्माकों ऐसें नोक्ता कहता है, कि पुरुष जो है, सो अविकृतात्माही है, स्वनिर्भास अचेतनमन करता है, तिस मनकी निकटतासें उपाधि स्फटिकवत् दिखलाइ देती है, तथा "नित्या या चिच्चेतना तयाऽन्युपेतः" इस कहने करकें पुरुषही चैतन्य स्वरूप है, "नतु ज्ञानस्य" (परंतु ज्ञान को नहीं) क्योंकि ज्ञानकों बुद्धिधर्म होनेसें. तथा पतंजलीभी ऐसेही कहता है. तथा "पुमान्" यह जो एक वचन है, सो जातिकी अपेक्षा है, परंतु आत्मा अनंत है, क्योंकि जन्म मरण कारणोंके नियम देखनेसें, तथा धर्मादिक प्रवृत्ति नाना देखनेंसें. सो सर्व अनंत आत्मा सर्वगत अरु नित्य है ॥ उक्तंच ॥ अमूर्त्तिश्चेतनो नोगी,नित्यः सर्वगतोऽक्रियः॥अकर्त्ता निर्गुणः सूक्ष्म,आत्माकापिलदर्शनइति

सांख्यमतमें प्रमाण तीन मानते है, १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ शाब्द, इस मतका नाम सांख्य वा शांख्य किस वास्ते कहते हैं? तिसका हेतु कहियें हैं. संख्या प्रकृति तत्त्व पच्चीश रूप तिनकों जो जाने, वा पढे, इति सांख्य. तथा जे कर तालवी शकारसें बोलियें तब शांख्य, तिनके मतमें शंख ध्वनि है ऐसी वृद्धोंकी आम्नायसें यह नाम है, तथा शंख नामक कोइ आद्य पुरुष हूआ है, "तस्यापत्यं पौत्रादिरिति गर्गादित्वाद्यस्त्रीप्रत्यये शांख्यास्तेपामिदं दर्शनं सांख्यं शांखं वा ॥ इति सांख्यमतं संक्षेपतःसंपूर्णं ॥

अथ मीमांसक मत लिखते हैं. इसका दूसरा नाम जैमिनीयाभी कहते हैं, इस मत वाले सांख्यमतकी तरें एकदंडी, त्रिदंडी होते हैं, धातु रक्त वस्त्र पहिरते हैं, मृगचर्मके आसन उपर बैठते हैं, कमंडल रखते हैं, शिर मुंडित रखते हैं, संन्यासी प्रमुख द्विज इस मतमें होते हैं, ति

नका वेदही गुरु है, परंतु और वक्ता गुरु कोइ नही. सो आपणे आपकों सन्नस्त सन्नस्त कहते है, यज्ञोपवीतको प्रक्षाल करकें तीन वार जल पीते है, सो मीमासक दो प्रकारके है. एक याज्ञिकादि है, ते पूर्व मीमासक है, दूसरे उत्तर मीमासावादी है, कुकर्मके वर्जक यजनादिक षट् कर्मके करणहार, ब्रह्मसूत्रके धारक, गृहस्थाश्रममें स्थित,शूद्रका अन्नादिक वर्जते है, तिनकेभी दो भेद है, एक भट्ट, दूसरे प्रभाकर, उसमे भट्ट छे प्रमाण मानते है, अरु प्रभाकर पाच प्रमाण मानते है, अरु जो उत्तरमीमास क है, सो वेदातिक है, ब्रह्माद्वैतही मानते है, "सर्वमेवेदं ब्रह्मेति भापते" तिस पर प्रमाण देते है, कि एकही आत्मा सर्व शरीरोमे उपलब्ध होता है ॥ श्लोक ॥ एकएव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थित ॥ एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचद्रवत् ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ "पुरुषएवेदं सर्व यद्भूतं यच्चभाव्यमिति वचनात्" ॥ आत्माहीमें लय होना मुक्ति मानते है, और कोइ मुक्ति नहीं मानते सो, मीमासक द्विजही भगवत्जिनका नाम है, सो चार प्रकारके है, १ कुटीचर, २ बहूदक, ३ हस, ४ परमहस तिन मेसू १ त्रिदंडी, सशिखा, ब्रह्मसूत्री, गृहत्यागी, यजमान, परिग्रही, एक वार पुत्रके घरमे भोजन करता है, कुटीमे वसता है, तिनको कुटीचर क हते है २ तुल्य वेष, पूर्वोक्त विप्रके घरमें नीरस भिक्षाभोजी, विष्णुजाप पर नदीके तीरमे रहता है, तिसको बहूदक कहते है, ३ ब्रह्मसूत्र शिखा करकें रहित, कषाय वस्त्र, दंडधारी, ग्राममे एक रात्रि अरु नगरमे तीन रात्रि रहता है, धूम रहित जब अग्नि हो जावे, तब ब्राह्मणके घरमे भो जन करता है, अरु तप करकें शोषित शरीर, देशोमे फिरता रहता है, तिसकूं हंस कहते है, हसकूंही जब ज्ञान हो जाता है, तब चारो वर्णोंके घरमे भोजन कर लेता है, अपनी इछासे दंड रखता है, ईशानदिशाके स न्मुख जाता है, जे कर शक्ति हीन हो जावे, तब अनशन ग्रहण करता है, ४ वेदांतैकध्यायी तिसकूं परमहस कहते है, इन चारोमेसू पर परो ऽधिक यह चारोही केवल ब्रह्माद्वैतवाद साधनेमे व्यसनी है, इत्यादिक इस मतका स्वरूप है

अथ पूर्वमीमांसा वादीयोका मत विशेष करके लिखते है जैमिनी मत वाले कहते है, कि सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग, सृष्टयादिकका कर्त्ता,इन

पूर्वोक्त विशेषणों करी संयुक्त कोइन्नी देव नहीं है, जिस देवका वचन प्रा माणिक होवे, प्रथम तो देवही वक्ता कोइ नहीं, जिसका कह्या हूआ वचन प्रमाण होवे, अनुमानं पुरुष सर्वज्ञ नहीं, मनुष्य होनेसें, रथ्या पुरुषवत्.

पूर्वपक्षः—किंकर हो कर जिसकी असुर, सुर, सेवा करते हैं, औ तीन लोकके ऐश्वर्यके सूचक, छत्र चामरादि जिसकी विभूति है, सो सर्वज्ञ विना क्यों कर हो सक्ती है?

उत्तरपक्षः—यह विभूति तो इंद्रजालीयान्नी बना सक्ता है, क्योंकि इस बातका साक्षी जैनमतका समंतभद्र आचार्यभी है ॥श्लोक॥ देवागमनभोयान, चामरादिविभूतयः ॥ मायाविष्वपि दृश्यंते, ह्यतस्त्वमसि नो महान् ॥१॥

पूर्वपक्षः—जैसें अनादि सुवर्णका मल, क्षार मृत्पुटपाकादिकोंकी क्रिया विशेषसें शोध्यमान सुवर्णकों सर्वथा निर्मलता हो जाती है, ऐसें आत्माभी निरंतर ज्ञानादिकोंके अभ्याससें निर्मल होनेसें सर्वज्ञ पणेका संभव क्यों कर न होवे? किंतु होही जावेगा.

उत्तरपक्षः—यह कहनांभी तुमारा ठीक नहीं है, क्योंकि अभ्यास करनेसेंभी शुद्धिकी तारतम्यताही होती है, परंतु परम प्रकर्ष अवस्था नहीं होती है, क्योंकि जो पुरुष चलनेका अभ्यास करे, एतावता कूदनेका, छलांक मारनेका, ठाल मारनेका अभ्यास करेगा, वो दश हाथ कूद जावेगा, वीश हाथ कूद जावेगा, परंतु शत योजन कूदनेका अभ्यास कदापि न होवेगा, सर्व लोककूं कूदके जानेका अभ्यास कदापि न होवेगा, ऐसे आत्माभी अभ्यास द्वारा सर्वज्ञ नहीं हो सक्ता है.

पूर्वपक्षः—मनुष्यकों सर्वज्ञता मत होवो, परंतु ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादिकोंकों तो सर्वज्ञता होवे, क्योंकि तिनको तो जगत् ईश्वर मानता है, इस बातकों कुमारिलभी कहता है. अथापि दिव्य देह होनेंसें ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इनकों सर्वज्ञता होवे, मनुष्यकों सर्वज्ञता क्यों कर होवे?

उत्तरपक्षः—जो राग द्वेषमें मग्न हैं, औ निग्रह अनुग्रहमें ग्रस्त है, काम सेवनमें तत्पर है, ऐसे लक्षण वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, क्यों कर सर्वज्ञ हो सक्ते हैं? क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाणभी सर्वज्ञका साधक नहीं है, कारणके इंद्रियों वर्त्तमान वस्तुहीकों ग्रहण करती हैं. अरु अनुमानसेंभी सर्वज्ञ सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि अनुमान प्रत्यक्ष पूर्व

कही प्रवृत्त हो सक्ता है, अरु आगमभी सर्वज्ञकी सिद्धि करणेवाला कोइ नही क्योंकि आगम सर्व विवादास्पद है, उपमानभी नही, क्योकि दूसरा सर्वज्ञ कोइ होवे, तब उपमान बने, तैसेही अर्थापत्तिसेभी सर्वज्ञ सिद्ध नही होता है, क्योंकि अन्यथा अनुपपद्यमान ऐसा कोइ पदार्थ नही है, जिसके होनेसे सर्वज्ञ सिद्ध होवे जब भावग्राहक पाच प्रमाणो से सिद्ध न हूआ, तब सर्वज्ञ अभाव प्रमाणका विषय हूआ, यह अनु मानभी सर्वज्ञकी नास्ति सिद्धकर्त्ता प्रयोग नही है, सर्वज्ञ प्रत्यक्षादि गोचरके अतिक्रात होनेसे शशशृगवत् जब कोइ सर्वज्ञ देव नही, अरु उ स सर्वज्ञ देवका कहा हूआ कोइ शास्त्र नही,तब अतींद्रिय अर्थका ज्ञान कैसे होवे ? ऐसी मनमे आशंका करकें जैमिनी कहता हैकि "तस्मात्" तिस कारणसे, "अतीद्रिय" इद्रियोकी विषय रहित जो आत्मा, धर्माधर्म, काल, स्वर्ग, नरक, परमाणु प्रमुख जो पदार्थ है, तिनका साक्षात् करत लामलकवत् देखने वाला कोइ नही इस हेतुसे नित्य जो वेद वाक्य है, तिनोहीसे यथार्थ तत्त्वका निश्चय होता है, क्योकि वेद जो है, सो अपौ रुषेय है, एतावता किसीकेभी रचे हूये नही,अनादि नित्य है, तिन वेद वचनोसेही अतीद्रिय पदार्थोका ज्ञान होता है, परतु किसी सर्वज्ञके कहे हूये आगमसे नही होता है, क्योंकि सर्वज्ञ कोइभी न हुआ है,न वर्त्तमा नमे हे,न आगें कोइ होवेगा ॥ यथाहुस्ते ॥ अतीद्रियाणामर्थाना, साक्षा द्द्रष्टा न विद्यते ॥ वचनेनहि नित्येन, य पश्यति स पश्यति ॥१॥

प्रश्न.–अपौरुषेय वेदातका अर्थ कैसे जाना जाये ?

उत्तर –अव्यवछिन्न जो हमारी परपरा तिससे जाना जाता है,इसी वास्ते सर्वज्ञादिकोके अभाव होनेसे प्रथम वेदोहीका पाठ प्रयत्नसे करना चाहिये वेद चार हे, १ ऋग्, २ यजुष्,३ साम,४ आथर्व, इन चारोका पाठ करके तिसके पीछें धर्मकी जिज्ञासा करनी चाहिये, धर्म जो है, सो अतीद्रिय है, अरु जो धर्म है, सो कैसा है ? अरु किस प्रमाणसे हम जानेंगे ? ऐसी जो जाननेकी इछा है, तिसका नाम जिज्ञासा है सो करणी कैसी है ? वो जिज्ञासा धर्मसाधनी (धर्मसाधनेका) उपाय है, तब तिस भो दनाके निमित्त दो हे, एक जनक, दूसरा ग्राहक, इहा ग्राहक निमित्त जा नना. इसहीका विशेष स्वरूप कहते हे.

प्रेरीयें श्रेय साधक इव्यादिकों विषे जीवोंकों, इस करकें सो नोदना वेदवचनकी करी हूइ प्रेरणा है ॥ इत्यर्थः ॥ धर्मजो है, सो नोदना करकें जानीयें है. इस वास्ते नोदना लक्षणधर्म है, धर्मकों अतींद्रिय होने करकें नोदनाहीसें जानीयें है, और किसी प्रत्यक्षादिक प्रमाणोसें नहीं जाना जाता है, क्योंकि प्रत्यक्षादिक विद्यमानके उपलंनक है, अरु धर्म जो है, सो कर्त्तव्यतारूप है, अरु कर्त्तव्य जो है, सो त्रिकाल स्वनाव वाली है, तिस कर्त्तव्यताका ज्ञान नोदनाही उत्पन्न कर सक्ती है, यह मीमांसकोंका अन्युपगम है.

अथ नोदनाका व्याख्यान करिये हैं. अग्निहोत्र, सर्व जीवोंकी अहिंसा दानादिक क्रिया, इनोके करने वास्ते जो प्रवर्त्तक प्रेरक वेदोंके वचन हैं, सोइ नोदना है. जैसे “ अग्निहोत्रं जुहूयात्स्वर्गकामः ” ऐसा जो प्रवर्त्तक वेदबचन है, सो नोदना जाननी. “ यथा ॥ न हिंस्यात् सर्वनूतानि, तथा न वैहिंस्रो नवेत् ” इन वचनों करकें प्रेर्या हूआ इव्य, गुण कर्मोंकरकें जो हवनादिक विषे प्रवर्त्त होता है, सो धर्म है, अरु इन वेद वचनों करकें प्रेर्या हूआनी जो न प्रवर्त्ते, वा विपरीत प्रवर्त्ते, तिसकों नरकादि अनिष्ट फल होता है. शावर नाष्यमेंनी ऐसेही कहता है.

यह जैमनी षट् प्रमाण मानता है. १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ शब्द, ४ उपमान, ५ अर्थापत्ति, ६ अनाव, इनका विस्तार षट्दर्शन समुच्चय की टीकासें जानना ॥ इति संक्षेपतो मीमांसमतं ॥ ५ ॥

यह पांच दर्शन आस्तिक कहे जाते हैं, अरु बठा जैन दर्शन है, तिसका स्वरूप अगले परिब्रेदमें लिखा जायगा, तथा नास्तिक जो है, सो दर्शनमें नहीं. “ नास्तिकं तु नदर्शनमिति राजशेखर सूरिकृत षट्दर्शन समुच्चय वचनात् ” तोनी नव्य जीवोंके जाननें वास्ते कबुक स्वरूप लिखते हैं.

कपाली, नस्म लगाने वाले, योगी, ब्राह्मणादि, अंत्य जातिके लोक, जिनकों लोक वाममार्गी कहते हैं, तथा कौलिक, इत्यादिक नास्तिक हैं, तिनके मतका नाम नास्तिक चार्वाक कहते हैं, वो जीव पुण्य पापादिक कुब नहीं मानते हैं, चार नौतिक देह मानते हैं, तथा सर्व जगतूही चार नौतिक मानते हैं.

अरु कोइ चार्वाकैकदेशीया आकाशकों पांचमा नूत मानते हैं, पांच

भूतात्मक जगत् है, ऐसें कहते है, तिनोके मतमें भूतोसेंतीही मद्यशक्ति वत् चैतन्य उत्पन्न होता है, पाणीके वुजवुलेंकी तरे जो शरीर है, सोही जीव है, इस मत वाले मद्य मास खाते है, माता, वहिन, वेटी, आदिक जो अगम्य है, तिनकोंभी गमन कर लेते है, ते नास्तिक वामी, वर्ष वर्ष विपे एक दिनमे सर्व एक जगा एकठे होते है, स्त्रीको नगी करके उसकी योनिकी पूजा करते है, अरु विपय सेवनभी करते है, इत्यादि ऐसा वुरा काम करते है, जो इस पुस्तकमे लिखते मुझको लज्जा आती है, इस वास्ते नहीं लिखा है, सो नास्तिक,कामसे अपर (दूसरा) कोइ धर्म नही मानते है, किंतु कामहीकू धर्म मानते है

इस मतकी उत्पत्ति जैनमतके शीलतरंगिणी नामक शास्त्रमे ऐसे लिखी है, सो कहते है एक वृहस्पतिनामा ब्राह्मण था, दूसरा उसका नाम देवव्यासभी था, उसकी एक वहिन थी, वो उसकी वहिन वाल विधवा हो गइ थी, उसके सासरोमे ऐसा कोइ न था, जिनके आश्रयसे वो अपना जीवितव्य सपूर्ण करती, तातें निराधार हो कर, अपने भाइके घरमें आ रही, वो अत्यंतरूप अरु यौवनवत थी, अरु जो उसका भाइ था तिसकी भार्या मृत्युकों प्राप्त हो गइ थी, तव तो वृहस्पतिको कामने अत्यंत पीडा दीनी, तव उनकूं आपनी वहिनके साथ विपय सेवनकी इछा भइ, अपनी वहिनसे प्रार्थना करी कि हे भगिनी! मेरे साथ तु सभोग कर, तव तिसकी वहिनने कहा कि हे भाई! यह वात उभय लोक विरुद्ध है,सो मे क्योकर करु? क्यो कि प्रथम तो मै तेरी वहिन हूं,जे कर भाइके साथ विपय भोग करु तो अवश्यमेव नरकमे जाउगी,अरु यह वात जो जगतूमे प्रसिद्ध हो जावेंगी, तव तो लोक मुझकों धिक्कार देवेगे ऐसी वात सुन कर वृहस्पतिने अपने मनमे शोचा कि जव तक इसके मनसे पाप अरु नरकादिकोका भय दूर न होवेगा, तव तक यह मेरे साथ कभी सभोग न करेगी? ऐसा विचार करकें वृहस्पति सूत्र रचे, तिन सूत्रोसें पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरकका अभाव,सिद्ध करके अपनी वहिनको शास्त्र सुना करके प्रतिवोध करा. तव तो तिसकी वहिनने अपने मनमें विचार करा कि यह जो शरीर है, सोतो पाच भौतिक है, अरु इस शरीरमे अतिरिक्त आत्मा नामक कोइ पदार्थ नहीं है, तव तो पुण्य, पाप, नरक, स्वर्ग, कु

भी सिद्ध नहीं होता है, तो फेर मैं इन मूर्ख लोकोंकी लज्जा करकें अप ना यौवन वृथा काहेकों खोऊं? ऐसे विचार करकें अपने भाइके साथ विषयभोग करनेंमें लुब्ध हो गई, जब लोकोंकों यह बात जान पडी, तब लोक निंदा करने लगे, तब तो बृहस्पति निर्लज्ज हो कर लोकोंकों ना स्तिक मतका उपदेश करने लगा, तब तो जो अत्यंत विषयी अरु अज्ञानी जन थे, वे उसके शिष्य होते भये, कितनेक काल पीछें उनके शिष्योंने अपने मतकों बडा करनेके वास्ते कहते भये कि यह जो हमारा मत है, सो देवतावोंका गुरु जो बृहस्पति नामक आकाशमें ग्रह है, तिसने प्रवृत्त करा है, अरु बृहस्पतिसेंति अन्य कोइ दूसरा बुद्धिमान् नहीं है, इस वा स्ते हमारा मत सच्चा है, इस बृहस्पतिका होना हमारे चोवीशमे तीर्थं कर श्रीमहावीरसें पहिलें सिद्ध है, क्योंकि श्रीमहावीरके कथन करे हूये शास्त्रोंमें चार्वाकमतका निरूपण है. ऐसें चार्वाक मतकी उत्पत्ति है, इस मतका नाम चार्वाक, लोकायितादि है, "चर्व अदनें चर्वंति, भक्षयंति तत्त्व तो न मन्यंते पुण्यपापादिकं परोक्षवस्तुजातमिति चार्वाकाः ॥ मयाकश्या माकेत्यादि सिद्ध है, मोणादि दंमकेनशब्दनिपातनं. लोका निर्विचाराः सामान्या लोकास्तद्वदाचरंति स्मेति लोकायिताः लोकायितकाइत्यपि ॥ बृह स्पतिप्रणीतमतत्त्वेन बार्हस्पत्याश्चेति" चर्व जो धातु है. सो भक्षण अर्थ में है, चर्वण (भक्षण) जो करे, तात्पर्यार्थसें जो पुण्य पापादिक परोक्ष वस्तु समूहकों न माने, सो चार्वाक, मयाक श्यामाक इत्यादि सिद्ध है, हे मव्या करणके ऊणादिदंमक करकें निपातसें सिद्ध है, तथा लोक निर्विचार है,सामान्य लोकोंकी तरें जो आचरण करते भये हैं, ते लोकायिता लोका यितका ऐसेंभी है. तथा बृहस्पतिके प्ररूपणेसें इस मतका नाम बार्हस्प त्यभी कहते हैं.

अथ चार्वाकका मत लिखते है. नास्तिक ऐसें कहते है कि, जीव चे तना लक्षण परलोकमें जानेवाला नहीं, पांच महाभूतसें जो चेतन उत्प न्न होता है, सोभी इहांही भूतोंके नाश होनेसें नाश हो जाता है, जे कर जीव परलोकसें आया होवे, तब परलोकका स्मरण होना चाहियें, परंतु सो तो होता नहीं, इस वास्ते जीव न परलोकसें आया है, अरु न पर लो कमें जाने वाला है. तथा जीव स्थानमें जो देव ऐसा पाठ मानीयें, त

व सर्वज्ञादि विशेषण विशिष्ट कोइ देव नही, तथा मोक्षभी नही, धर्माध र्म नही, पुण्य पाप नही, पुण्यपापका जो फल नरक, स्वर्ग, सोभी नही, "तथाच तन्मत ॥श्लोक॥ एतावानेव लोकोय, यावानिंद्रियगोचर ॥ भद्रे वृकपदं पश्य, यद्वदंत्यबहुश्रुता ॥१॥ अस्यार्थः–इतनाही मनुष्य लोक है, जितना प्रत्यक्ष देखनेमे आता है क्योकि जो पदार्थ इंद्रियोंसे ग्रह्या जाता है, सोइ पदार्थ है, और दूसरा कोइभी पदार्थ नही है, यहा लोक शब्द की जगे लोकमे जो रहे हूये पदार्थ है, सो ग्रहण करणे अरु सो इस लोकसे परे है, जीव, पुण्य, पाप, अरु तिनका फल जो स्वर्ग नरकादिक सो अप्रत्यक्ष होनेसे नही है जे कर अप्रत्यक्षभी माने जावे तब तो शशशृंग वंध्यापुत्रादिभी होने चाहिये, पंचविध प्रत्यक्ष करके यथाक्रम १ मृदु कठोरादि वस्तु २ तिक्त, कटु, कषायादि द्रव्य, ३ सुरभि दुरभिरूप गंध, ४ भू, भूधर, भुवन, भूरुह, स्तंभ, कुंभ, अभोरुहादि, नर, पशु, श्वा पदादि, स्थावर, जंगम प्रमुख पदार्थोका समूह, ५ विविध, वेणु वीणादि ककी ध्वनि, इन पाचोंके विना और कुछभी नही प्रतीत होता है, पाच भूतोसे व्यतिरिक्त नरक स्वर्गके जाने वाला जीव जब प्रत्यक्ष प्रमाणसे न सिद्ध भया, तब तो जीवोके सुखदुःखोका कारण धर्माधर्म है, अरु तिन धर्माधर्मके उत्कृष्ट फल भोगनेकी भूमि स्वर्ग नरक है, अरु सर्वथा पुण्य पापके क्षय होनेसे मोक्ष सुख जो वर्णन करते है, यह सर्व पूर्वोक्त वर्णन ऐसा है, कि जैसा आकाशमे चित्राम करणा है. क्योकि जीव नतो किसी ने स्पर्शा है, न किसीने खा कर स्वाद चक्खा है, न किसीने सूंघा है, न किसीने देखा है, न किसीने शब्दवत् सुना है, फेर मूढमति किसतरे जीव को मान करके स्वर्गादि सुखोकी इछा करके शिर, दाटी, मौठ, मुन्डवा करकें नाना प्रकारका दुःकर तप करकें शीत, आतप सह करकें वृथाही इस श रीरकी विडंवना करकें इस मनुष्य जन्मको खराब कर रहे है? यह उनकी समझकी विडवना है॥ तदुक्त ॥श्लोक॥ तपांसि यातनाश्चित्रा, संयमो भोग वंचना ॥ अग्निहोत्रादिक कर्म, बालक्रीडेव लक्ष्यते ॥१॥ यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, तावद्वैषयिक सुख ॥ भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमन कुत ॥ १ ॥ इत्यादि तिस वास्ते यह सिद्ध हूआकि जो इंद्रियगोचर है, सोइ तात्त्विक है.

अथ जो परोक्ष प्रमाण, अनुमानागमादिको करके जीव, अरु पुण्य

पापादिकोंकूं व्यवस्थापन करते हैं, अरु कदाचित् स्थापन करनेसें हटते नहीं है, तिनकें प्रतिबोधने वास्ते दृष्टांत कहते हैं “ भद्रे वृकपदं पश्यैत्य त्रार्य संप्रदायः ” कोइक पुरुष नास्तिक मत करकें वा सत्यांतःकरण अपणी भार्याकों आस्तिक मत विषे दृढ प्रतिज्ञा वाली जान करकें अपणे शास्त्रोक्त युक्तियों करकें “ प्रत्यहं ” प्रतिबोध करता है, जब वो प्रतिबोध नहीं होती, तब उसने विचारा जो यह इस उपाय करकें प्रतिबोध होवेगी, ऐसें स्वचित्तमें चिंतन करकें रात्रिके पीछले प्रहरमें तिस स्त्रीके साथ नगरसें निकल करकें तिस आपणी भार्याकों कहता हूआ, हे वल्लभे! यह जो इस नगरके वसने वाले लोक परोक्ष पदार्थोंकों अनुमानादि प्रमाणों करकें सिद्ध करते हैं, अरु लोकमें बहुत शास्त्रोंके पढे हूये कहलाते हैं, अब तूं तिनको चातुर्य देख, ऐसें कह कर नगरके दरवाजेसें ले कर चौंक तक सूक्ष्म धूलीमें अपणे हाथों करकें भेडीयेंके पंजोंका आकार कर दीया, तस पीछें प्रातःकालमें ते भेडीयेंके पंजे देख कर बहुत लोक राजमार्गमें मिलते भये, तब तो बहुश्रुतभी तहां आ गये, सो बहुश्रुत लोकोंकों कहने लगे कि भो लोको! भेडीयेंके पगोंकी अन्यथा अनुपपत्ति करकें निश्चयही कोईक भेडीया रात्रिमें वनसेंती इहां आया था, तब तो वो नास्तिक मती तिनकों तैसें कहते हूआंकों देख करकें निज भार्याकों कहता हूआ कि हे भद्रे? “वृकपदं” (भेडीयेंका पंजा) तूं देख, जिस पंजेकूं भेडीयेंका पंजा अबहुश्रुत कहते हैं, लोक रूढीसें यह बहुश्रुत कहलाते है, परंतु परमार्थसें महा गोठ हैं, क्योंकि ये परमार्थ तो कुछ जानते नहीं हैं, केवल देखा देखी रौला करने लग रहे हैं, परमार्थसें इनका बचन मानने योग्य नहीं है, ऐसेंही बहुत मतोंवाले धार्मिक, छद्म (धूर्त्त) दूसरोंके ठगनेमें तत्पर सो कछुक अनुमान आगमादि करकें दृढपणेसें जीवादिकी अस्ति सिद्ध करकें वृथाही भोले लोकोंकों स्वर्गादि सुखोंका लोभ दिखा कर भक्षाभक्ष, गम्यागम्य, हेयोपादेयादि, संकटोमें गेरते हैं, बहुत मूर्खोंकों धार्मिक पणेंका व्यामोह उत्पन्न करते हैं, इस वास्ते बुद्धिमानोंकों उनका बचन मानना न चाहियें. तब तो तिसकी भार्या अपने पतिके सर्व बचन मानती भई, तिसके पीछें तिसका पति जो अपनी भार्याकूं उपदेश देता भया, सो इहां लिखते हैं.

॥ श्लोक ॥ पिब खाद च चारुलोचने, यदतीतं वरगात्रि तन्न ते ॥ नहि भीरु गत निवर्त्तते, समुदायमात्र मिद कलेवर ॥१॥ व्याख्या –हे चारुलोचने ! शोभन (सुंदर) आखवाली " पिब " पी, तू पेयापेयकी व्यवस्था छोड कर मदिरापान कर न केवल मदिराही पी, "खाद च" भक्ष्याभक्ष्यकी निरपेक्षा करके मासादिक खा, तथा गम्यागम्यका विभाग त्याग कर भोगों को भोग कर अपना यौवन सफल कर, जो कुछ यौवनादि अतिक्रात, (व्यतीत) हो गया है ! हे वरगात्रि ! हे प्रधानागि ! फेर वो तुझको न मिलेगा, अति काम राग जनावनेके वास्ते बहुत सबोधन पद कहे है, इस वास्ते पुनरुक्ति दोप नहीं है किसीकी आशका मनमे ला कर बृहस्पति मत वाला कहता है, कि अपनी इच्छा करके जो खान, पान, भोग, विलास करेगा, उसकू परलोकमे कष्ट परपरा पावणी बहुत सुलभ है, औ जो सुकृत करेगे, उनको भवातरमे सुख यौवनादिक पावना सुलभ है, ऐसी परकी आशका दूर करने वास्ते बृहस्पति कहता है नही हे भीरु ! परके कहने मात्र करके नरकादि दुःखोकी प्राप्ति, इस लोकके यौवनादिकोसे निवर्त्त होनां, एतावता इस लोकमे विपयभोग करके यौवनका सुख तो नही लेना, अरु परलोकमें हमको यौवनादिक फेर मिलेगा, ऐसे परलोकक सुखोकी इच्छा करकें तपश्चरणादि कष्ट क्रिया करकें जो इस लोकके सुखोकी उपेक्षा करनी है, सो महा मूढताका चिन्ह है

अथ शुभाशुभ कर्मके वश करकें इस जीवने अवश्य परलोकमेंभी स्वकर्म हेतुक सुख दुःखादि वेदना होवेगी, ऐसी आशका मनमे ला करके बृहस्पति कहता है कि "समुदायमात्र" समुदायभूत चारोका सयोग मात्रही यह " कलेवर " (शरीर है,) परतु चारो भूतोके सयोग मात्रसे अपर दूसरा भवातरमें जानेवाला, शुभाशुभ कर्मविपाकका भोगने वाला, ऐसा जीव नामक कोइभी पदार्थ नहीं, अरु चारो भूतका जो सयोग है, सो विजलीके उद्योतकी तरे क्षणमात्रमें नष्ट हो जाता है, इस वास्ते परलोकका भय मत कर हे हरिणाक्षि ! जैसे मन माने, ऐसा खा, पी, भोग विलास कर.

अथ प्रमेय प्रमाण दोनो कहता है ॥ श्लोक ॥ पृथ्वी जल तथा तेजो, वायुर्भूतचतुष्टय ॥ आधारो भूमिरेतेषा, मान त्वक्षजमेव हि ॥ १ ॥ अर्थ.–१ पृथिवी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, यह चारभूत है, अन इन

चारोंकी आधार पृथ्वी है, अरु किसी जगें ऐसा पाठ है कि "चैतन्यनूमिरे तेषां" इन चारोंकों चैतन्यनूमि कहते हैं, यह चारों एकठे हो के रसें चैतन्य उत्पन्न करते हैं. तथा इन चार्वाकोंके मतमें यह चारों नूत प्रमाणकी नूमिका प्रमाणका विषय तात्त्विक है, अरु इन चार्वाकोंके मतमें, प्रमाण तो एक प्रत्यक्षही है.

अथ नूतचतुष्टयसें देहकों चेतनता क्यों कर हो जाती है? ऐसी आशंका करकें कहता है ॥ श्लोक ॥ पृथ्व्यादिनूतसंहत्या, तथा देहपरीणतेः ॥ मदशक्तिः सुरांगेन्यो, यद्वत्तद्वच्चिदात्मनि ॥ १ ॥ अर्थः—"पृथिव्यादीनि" पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, तिनकी जो "संहतिः" संयोग तिस करकें जो देहकी परिणाम, तिसतें जैसें मदिराके अंगोसें (गुड धातकी आदिकोंसें) उन्माद शक्ति उत्पन्न होती है, ऐसेंही इस देहमें चैतन्य शक्ति उत्पन्न होती है, परंतु देहसें अन्य जीव पदार्थ नहीं होते, औ आदि शब्दसें पर्वतादि सर्व पदार्थ चार नूतोंसेंही उत्पन्न है. इस वास्ते दृष्ट सुखोंका त्याग न करनां. अरु अदृष्ट सुखोंमें प्रवृत्त होनां, यह तो लोकोंकी बडी मूर्खता है, अरु जो शांतिरसमें मग्न हो कर मोक्ष सुखका वर्णन करते हैं, वेन्नी महा मूढ है. क्योंकि काम (मैथुन) सेवनसें अधिक न कोइ धर्म है, अरु न कोइ मोक्ष है, न कोइ सुख है ॥ इति चार्वाकमतं संक्षेपतः संपूर्णं ॥

यह जो उपर मत लिखे हैं, इनके जो उपदेशक है, वे सर्व कुगुरु हैं, क्योंकि जो इनोंके मत हैं, वे युक्तिप्रमाणसें खंमित हो जाते हैं, अरु पूर्वापर व्याहत है, पूर्वापर विरोधी है.

पूर्वपक्षः—अहो जैन! अरिहंतके कहे हूये तत्त्वका तुऊकों बडा राग है, इस करकें तुम अपने मतको तो निर्दोष ठहराते हो, अरु हमारे मतोंकों पूर्वापर विरोधी कहते हो, परंतु हमारे मतोंमें कुछन्नी पूर्वापर व्याहतपणां नहीं है, क्योंकि हमारे जो मत हैं, सो निर्दोष हैं, उनकों जो पूर्वापर व्याहत (कलंक) देना है, सो ऐसा है कि जैसा अमृतके पुंजमें मरवीका बिंडु गेर देनां.

उत्तरपक्षः—हे वादीयो! तुम अपने अपने मतका पक्षपात बोड कर मध्यस्थपणेको अवलंबन करकें अरु निरन्निमान हो करकें सुंदर बुद्धिकों

धार करके सुनो मे तुमारे मतोमे पूर्वापर व्याहत पणा दिखलाता हू
प्रथम बौद्धमे पूर्वापर विरोध उद्भावन करते है

प्रथम तो बौद्ध मतमे सर्व पदार्थ क्षणभंगुर कह करके पीछेमे ऐसे कहा है "नाननुकृतान्वयव्यतिरेकं कारण नाकारणं विषय इति" अस्यार्थ मर्थ –ज्ञान अर्थके होते हूयाही उत्पन्न होता है,परतु अर्थके विना नहि होता है ऐसे अनुकृत अन्वयव्यतिरेक अर्थज्ञानका हे अरु कारण जिस थकी अर्थज्ञान उत्पन्न होता हे, तिस कारणहीकों विषय करता है इस कहनेसे अर्थको दो क्षण स्थिति वाला कहा ॥ तद्यथा ॥ अर्थरूप कारणसे ज्ञान कार्य उत्पन्न होता है, अरु एकही समयमे कारण, कार्य उत्पन्न नही होते हे, तब तो ज्ञान अपने जनक अर्थहीको ग्रहण करता है "नापर नाकारण विषय इति वचनात्" ॥ जब ऐसे हूआ तब तो अर्थको दो समयकी स्थिति जोरा जोरी हो गइ अरु बौद्ध मतमे क्षय समय स्थिति वाला कोइ पदार्थ नही, एक तो यह पूर्वापर विरोध है

तथा "नाकारण विषय इत्युक्तं" जो पदार्थ ज्ञानकी उत्पत्तिमे कारण नही है, उस पदार्थको ज्ञान विषयभी नही करता है, ऐसे कह कर फेर योगी प्रत्यक्ष ज्ञानकों अतीत अनागत पदार्थोका जानने वाला कहा है, अरु अतीत पदार्थ तो नष्ट हो गये है, तथा अनागत पदार्थ उत्पन्न नही हूये है, इस वास्ते अतीत अनागत पदार्थ ज्ञानके कारण नही हो सक्ते है, तब अकारणको योगी प्रत्यक्षका विषय कहना यह दूसरा पूर्वापर विरोध है

ऐसेही साध्य साधनोकी व्याप्ति औ ग्राहक व्याप्ति ग्रहण कराने वालेकू कारण पणेके अभावसे त्रिकालगत अर्थको विषय कहने वालेको क्यों नही पूर्वापर व्याघात होवेगा ? क्योकि कारणहीको प्रमाणका विषय मान्या है इस वास्ते तीसरा पूर्वापर विरोध है

तथा क्षण क्षय अगीकार करणेमे जिनका काल भिन्न भिन्न है, ऐसे जो अन्वयव्यतिरेक तिनकी प्रतिपत्ति नही सभव होती है, तब तो साध्य साधनोके त्रिकाल विषय व्याप्ति ग्रहण मानने वालेको पूर्वापर व्याहति क्यो नही ? यह चोथा पूर्वापर विरोध है.

तथा सर्व पदार्थोको क्षणक्षयी मान करके पीछेसे बुद्धने ऐसे कहा

है ॥ श्लोक ॥ इतएकनवते कल्पे, शक्त्या मे पुरुषोहतः ॥ तेन कर्मविपाकेन, पादे विद्धोस्मि भिक्षवः ॥ १ ॥ इस श्लोकमें जन्मांतरविषेमें शब्द का प्रयोग क्षण क्षय विरुद्ध बोलता हूआ बुद्ध, क्यों कर पूर्वापर विरोध न कहनां चाहियें? यह पांचमा पूर्वापर विरोध है.

तथा "निरंश सर्व वस्तु है" ऐसें प्रथम कह कर फेर "हिंसा विरति दान चित्तस्वसंवेदनं अरु स्वगतं सद्व्यचेतनत्व स्वर्गप्रापण शक्त्यादिकं ग्रहदपि स्वर्गप्रापण शक्त्यादेरंशस्येति सांशतां पश्चाद्वदतः सौगतस्य कथं पूर्वापरविरुद्धं वचो न स्यात् ॥" यह छठा विरोध है.

ऐसेही निर्विकल्पक प्रत्यक्ष प्रमाण नीलादिक वस्तुओंकों सर्व प्रकार करकें ग्रहण करता हूआभी नीलादिक अंश विषे निर्णय उत्पन्न करता है, परंतु नीलादि अर्थगत क्षणक्षय अंशविषय निर्णय नहीं उत्पन्न करता है, ऐसें सांशताकों कहता हूआं सौगतकों पूर्वापर वचन विरोध सुबोधही है. यह सातमा विरोध है.

तथा हेतुकों तीन रूप वाला मानता है, अरु संशयकों दो उल्लेख वाला मानता है, अरु कहता है फेर सांश वस्तुकों नहीं मानता है, यहभी आठमा पूर्वापर विरोध है.

तथा परस्पर अनमिले हुये परमाणु निकटता संबंध वाले एकठे होकर घटादि रूपपणे प्रतिभास होते हैं, परंतु आपसमें अंगांगीभाव रूप करकें कोइभी कार्य नहीं आरंभ करते, यह बौद्धोंका मत है, तिसमें यह दूषण है कि आपसमें परमाणुओंके अनमिलनेसें घटका एक देश जब हम हाथसें पकडेंगे, तब संपूर्ण घटकों नहीं रहनां चाहियें, तथा घटके उठानेसेंभी एक देशही घटका उठना चाहियें, परंतु संपूर्ण घट नहीं उठना चाहियें, तथा जब घटकों कांठा पकडके हम खैंचेंगे तबभी घटका एक देशही हमारे पास आना चाहियें, परंतु संपूर्ण घट नहीं, अरु जलादि धारण रूप घटका अर्थ क्रियालक्षण सत्व अंगीकार करणे करकें सौगतोनें परमाणुओंका मिलना मान्या है, अरु तिनके मतमें परमाणुओंका मिलना है नहीं, तिस वास्ते यह नवमा पूर्वापर विरोध है. इत्यादि बौद्ध मतमें अनेक पूर्वापर विरोध है.

अथ बौद्धमतका खंडनभी थोडासा लिखते हैं. इन बौद्धोंका यह

मत है कि सर्व पदार्थ नैरात्म्य है, एतावता आत्मस्वरूप आपणे स्वरूप करकें सदा स्थिर रहनेवाले नही है, ऐसी जो भावना, तिसका नाम नैरात्म्य भावना है, यह जो नैरात्म्य भावना है, सो रागादि क्लेशोके नाश करने वाली है, तथाहि जब नैरात्म्य भावना होवेगी, तब अपणे आप विषे तथा पुत्र, भाइ, भार्या, आदिकोविषेभी आत्मीय अभिनिवेश नही होवेगा, एतावता 'यह मेरे है' ऐसा मोह न होवेगा, क्योंकि जो आप उपकारी है, सो आत्मीय है, अरु जो आपणा प्रतिघातक है, सो द्वेष है, जब आत्माही नही है, किंतु पूर्वापर क्षण टूटे हूयाका अनुसंधान है, पूर्व पूर्व हेतु करकें जो प्रतिबद्ध है ज्ञानक्षण, सोइही तैसे तैसे उत्पन्न होते है, तब कौन किसीका उपकर्त्ता अरु उपघातक है? क्योंकि क्षणोंकों क्षण मात्र रहने करकें परमार्थसें उपकार अनुपकार नही कर सके है, इस वास्ते तत्त्ववेदीयोकों अपने पुत्रादिकोंमे आत्मीय अभिनिवेश नही है अरु वैरीयो विषे द्वेष नहीं है, अरु जो लोकोको अनात्मीय पदार्थोंमे आत्मीय अभिनिवेश है, सो अतत्त्व मूल होनेसे अनादि वासनाके परिपाकने करा है, ऐसे जानना

प्रश्न —यदि परमार्थसे उपकार्युपकारक भाव नही, तब तो ऐसे तुम कैसे कहते हो कि भगवान् सुगत, करुणा करकें सकल जीवोके उपकार वास्ते देशना करता हूआ? अरु क्षणिक पणाभी जे कर एकांतही है, तब तो तत्त्ववेदी एक क्षण पीछें नष्ट हो गया, अरु तत्त्ववेदी जानता था जो मै पीछें नही था अरु आगेको मैने होना नहीं, तो फेर काहेकों मोक्ष वास्ते यत्न करे?

उत्तर —जो तुमने कहा, सो हमारा अभिप्राय न जाननेसे अयुक्त है भगवान् जो है, सो प्राचीन अवस्था विषे अवस्थित है, अरु सकल जगतकों राग द्वेषादि दुखो करके सकुल जानता थका कैसे यह सकल जगतका दुःख मेरेकों दूर करणा योग्य है? ऐसी दया उत्पन्न होनेमे नैरात्म्य क्षणिकत्वादिक जानता हूआभी तिन उपकार्य जीवोके निःक्लेश क्षण उत्पन्न करनेके वास्ते स्वप्रजा हित राजेकी तरे अपणी संतति बुद्धि विषे सकल जगत् साक्षात् करण समर्थ अपणी संततिगत विशिष्ट क्षणकी उत्पत्तिके वास्ते यत्न आरंभ करता है क्योंकि सकल जगत् साक्षात्कार

करे विना सर्वकों अक्षुण विधान उपकार करणेकों अशक्य होनेसें तिस वास्ते समुत्पन्न केवल ज्ञान पूर्वस्थापन कृपाके विशेष संस्कार वशतें भगवान् कृतार्थभी है, तोभी देशना देवेमें प्रवृत्त होता है, तब तो देशना सुन करकें निर्मल बुद्धि नैरात्म्य तत्त्व विचारता हूआ जीवकों भावना प्रकर्ष विशेषसें वैराग्य उत्पन्न होता है, तिससेंती मुक्तिलाभ होता है. अरु जो आत्माकों मानता है, तिसकों मुक्तिका संभव नहीं, क्योंकि परमार्थ सेंती आत्माके होते हूयां तिस आत्मामें स्नेह वर्त्तेगा, तिस स्नेहके वशसें तिस आत्माके सुखी होनेकी तृष्णा वाला होता है, अरु तृष्णाके वशसें सुखोंके साधना विषे प्रवृत्त होता है, जब गुण उत्पन्न हूये, तब गुणोमें राग करता है, तिस रागसें यावत्काल आत्माभिनिवेश रहेगा, तावत् काल संसार है॥ आह च॥ श्लोक॥ ये पश्यंत्यात्मानं,तत्रास्याह मिति शाश्वतः स्नेहः॥ स्नेहात्सुखेषु तृष्यति, तृष्णा दोषास्तिरस्कुरुते॥१॥ गुणदर्शीपरितृष्यन्. ममेति तत्साधनान्युपादत्ते॥ तेनात्माभिनिवेशो, यावत्तावत्ससंसारः॥ २ ॥ इति बौद्धमत पूर्वपक्षः॥

अथ जैनमतकी तरफसें उत्तरपक्षः—यह सर्व कहनां तुमारा अंतःकरणमें वास करणेवाले महा मोहका मोटा विलास है, क्योंकि आत्माके अभाव हूये बंध मोक्षादिकोंका एकाधिकरणत्व नहीं होवेगा, सोइ दिखाते हैं.

हे बौद्धो! तुम आत्मा नहीं मानते हौ, किंतु पूर्वापर क्षण टूटाका अनुसंधान ज्ञान क्षणाहीको मानते हौ, जब असें माना,तब अन्यकों बंध हूआ, अरु अन्यकों मुक्ति हुई,औ क्षुधा औरकों लगी, अरु तृप्ति औरकों हो गइ, तैसेही अनुभवता और हूआ, अरु स्मर्त्ता और हो गया, जुलाब औरने लीया, अरु राजीरोग रहित तो और हो गया, तपः क्लेश तो औरने करा, अरु स्वर्गादिकका फल औरने भोगा, औ पढनेका अभ्यास और करने लगा, अरु और कोई पढ गया, यह बात अतिप्रसंग होनेसें कोइ युक्तिसंगत नहीं है, जे कर कहोगे कि संतानकी अपेक्षा करकें बंध मोक्षादिकोंका एक अधिकरण हो सक्ता है, सोभी ठीक नहीं, क्योंकि संतानभी तुमारे मतमें नहीं हो सक्ता है, संतान जो है सो संतानीसें भिन्न है? वा अभिन्न है? जे कर कहोगेकि भिन्न है, तब तो फेर दो विकल्प तुमारी भेट करते हैं, सो संतान नित्य है? वा अनित्य है? जे कर कहोगेकि नित्य है,तब तो तिसकों

बंधमोक्षादिकका संजव नही है, क्योंकि सर्वकाल एक स्वनाव होनें कर कें तिसके अवस्था विचित्र नही हो सक्ती है, अरु तुम तो नित्य मानते नही हो, "सर्वं क्षणिकमिति वचनात्" अथ जे कर कहोगे कि क्षणिक है, तब तो वोही प्राचीन बंध मोक्षादि वैय्यधिकरण दूषण प्राप्त हूआ, जे कर कहोगे कि अनिन्न है, तब तो तिससे अनिन्न होनेसे तिसके स्वरूपकी तरे सतानीही हूआ, सतान नहीं नई जब ऐसें हूआ, तब तो तदवस्थही पूर्वला दूषण है, जे कर कहोगे कि क्षणासेंति अन्य सतान कोइ नही किंतु जो कार्य कारण नाव प्रबध करकें क्षण नाव है, सोइ सतान है, तिस वास्ते दोष कोइ नही है, यहन्नी तुमारा कहना अयुक्त है, क्योंकि तुमारे मतमे कार्य कारण नावन्नी नही घटता है, सोइ दिखाते है, कि प्रतीत्य समुत्पादमात्र कार्य कारण नाव है, तिसतें यथाविवक्षित घट क्षणानंतर घट क्षण है, तैसें पटादि क्षणन्नी है, अरु जैसे घट क्षणसे पहिला अनंतर विवक्षित घटक्षण है, तैसें पटादि क्षणन्नी है, तब तो कैसें प्रतिनियत कार्य कारण नावका अवगम होवे ?

एक औरन्नी दूषण है, सो यह है कि—कारणसेंती उत्पन्न होता हूआ जो कार्य, सो सत् उत्पन्न होता है ? वा असत् उत्पन्न होता है ? जे कर कहोगेकि सत् उत्पन्न होता है, तब तो कार्योत्पत्ति कालमेंन्नी कारण सत् हूआ, अरु तब कार्य कारणको समकालताका प्रसग हूआ, अरु एक कालमे दो पदार्थोका कार्य कारण नाव मान्या नही है, अन्यथा माता पुत्रका व्यवहार न होवेगा, घट पटादिकोंकान्नी परस्पर कार्य कारण नावका प्रसग हो जावेगा जे कर असत् पक्ष मानोगे, तो सोन्नी अयुक्त है, क्योंकि जो असत् है, सो कार्य नही हो सक्ता है, अन्यथा खरशृंगसेंतीन्नी कार्य उत्पन्न होना चाहियें, अरु अत्यंतानाव, प्रध्वसानाव. दोनोंही जगे वस्तुसत्ताका सनव होनेंसे इन दोनोका कोइन्नी विशेष न हूआ, जे कर कहोगेकि प्रध्वसानावमे वस्तु थी, इस करकें हेतु है, तब तो जब थी तब हेतु नहीं, अन्यदा हेतु हुआ, ऐसे तो बहुत अछी तत्त्वव्यवस्था नइ

एक औरन्नी बात है, कि तन्नावे नाव ऐसे अवगममें कार्य कारण नावका अवगम है, सो जो तन्नावे नाव है, सो क्या प्रत्यक्ष करके प्रतीत होता है ? वा अनुमान करके प्रतीत होता है ? प्रत्यक्ष करकें तो

नहीं, क्योंकि पूर्व वस्तुगत प्रत्यक्ष करकें पूर्ववस्तु परिछिन्न हुइ, अरु उत्तर वस्तुगत करकें उत्तर वस्तु हुइ, अरु ये दोनो परस्पर स्वरूपकों जानते नहीं, अरु इन दोनोंका अनुसंधान करने वाला ऐसा तीसरा एक स्वरूप कोइ मानते नहीं हैं, तिस वास्ते इसके अनंतर इसका भाव है, ऐसें किस तरें अवगम होवे? सो तो तिसकूंभी प्रत्यक्षपूर्वक होनेसें अनुमान करकेंभी नहीं होवे, अरु अनुमान जो है, सो लिंग लिंगी संबंध ग्रहणपूर्वक प्रवृत्त होता है, अरु लिंग लिंगीका संबंध तो प्रत्यक्ष करकें ग्राह्य है, जे कर अनुमानसें संबंध ग्रहण करियें, तब अनवस्थादूषण आता है. अरु कार्य कारण भाव विषे प्रत्यक्ष प्रवृत्त होता नहीं, तिस वास्ते अनुमानकी भी प्रवृत्ति नहीं, ऐसेंही ज्ञानके दोनो क्षणोंकोंभी परस्पर कार्य कारण भावका अवगमभी निषेध हुआ जाननां. तहांभी स्वसंवेदन करकें अपणे अपणे रूपके ग्रहणेमें परस्पर स्वरूप अनवधारणसें तदनंतरमैं उत्पन्न हूआ हूं, अरु इसका मैं जनक हूं, ऐसी अवगतिके न होनेसें तुमारे मतमें कार्यकारण भाव नहीं है. अरु तिसका अवगमभी नहीं है, तिसतें मृषाही यह तुमारा कहनां है कि एक संतति पतित होनेसें बंध मोक्षका एकाधिकरण है, इस कहने करकें जो कहते है कि उपादेयोपादान क्षणोंका परस्पर वास्यवासक भाव होनेसें, उत्तरोत्तर विशिष्ठ विशिष्टतर क्षणोत्पत्तिसें मुक्तिका संभव है, सोभी उपादानोपादेय भावका उक्तरीतिसें अनुपपद्यमान होनेसें प्रतिक्षिप्त जाननां, अरु जो वास्यवासक भाव कहा है, सोभी तिल फूलोंकी तरें एक कालमें दोनो होवे तब हो सक्ता है, "उक्तंचान्यैरपि ॥ अवस्थिताहि वास्यंते, भावाभावैरवस्थितैः" तब कैसें उपादेयोपादान क्षण दोनोंकों परस्पर असाहित्य होनेसें वास्यवासक भाव होवे? उक्तं च ॥ श्लोक ॥ वास्यवासकयोश्चैव, मसाहित्यान्न वासता ॥ पूर्वक्षणैरनुत्पन्नो, वास्यते नोत्तरः क्षणः ॥ १ ॥ उत्तरेण विनष्टत्वान्न च पूर्वस्य वासना ॥ इति ॥

एक औरभी बात है, कि वासना वासकसें भिन्न है? वा अभिन्न है? जे कर कहोगे कि भिन्न है, तब तो तिस वासना करकें शून्य होनेसें अन्यकों वस्त्वंतरवत् कदापि वासित न करेगी, जे कर कहोगे कि अभिन्न है, तब तो वास्यक्षणमें वासनाका संक्रम कदापि नहीं होवे, ऐसें तिसके स्वरूपकी

तरें तिससें अभिन्न होनेसें वासककीभी सक्रांति है, जे कर कहोगे कि सं क्रांति है, तब अन्वयका प्रसंग होवेगा, इस वास्ते तुमारा कहना किसी कामका नहीं है, अरु जो तुमनें कहा था कि सकलही जगत् राग द्वेषादि दुःख सकुल जानता हुवा सकल जगत्कों दुःखोंसे कैसे में उद्धार करुं? इत्यादि सोभी पूर्वापर असंबंध है, क्योंकि तुमारे मत क्षणही पूर्वापर टूटे हूये परमार्थसे सत् है, अरु क्षणोंके रहनेका कालमान एक परमाणुके व्यतिक्रम मात्र है, इस वास्ते उत्पत्तिसे व्यतिरिक्त तिनकी कोइ क्रिया नहीं उपपद्यमान होती, "भूतिर्येषा क्रिया सैव, कारक सैव चोच्यते ॥ इति वचनात्" तिसतें ज्ञान क्षणोंकों उत्पत्ति अनतर न गमन है, न अवस्थान है, न पूर्वापर क्षणोसेती अनुगम है, तिस वास्ते तिनोकूं परस्पर स्वरूपावधारण नहीं अरु न कोइ उत्पत्ति अनंतर व्यापार है, तब कैसें मेरे सन्मुख यह अर्थ साक्षात् प्रतिभासता है? इस प्रकारसे अर्थके निश्चयमात्र करणेमेंभी अनेक क्षणोका सम्भव है, अनुस्यूत हो कर उत्पन्न होते है, अरु तिस अनुस्यूतके अभावसे कहांसें सकल जगत् राग द्वेषादिक दुःख सकुलता करके विचारणां है? अरु कहांसें दीर्घतर कालके अनुसंधान करकें शास्त्रार्थका चितन है? जिसके प्रभावसे सम्यक् उपाय जान करके दया विशेषसे मोक्षके वास्ते घटना होवे?

पूर्वपक्ष—यह जो सर्व व्यवहार है, सो ज्ञान क्षणोंकी सततिकी अपेक्षा करके है, फेर तुम क्यों इस पक्षमें दूषण देते हो?

उत्तरपक्ष—"सुकुमारप्रज्ञोदेवानां प्रिय सदैव सप्त घटिका मध्यमिष्टान्न भोजन मनोज्ञाशयनीय शयनाभ्यासेन सुखैधितो" परतु वस्तुके यथार्थ तत्त्व विचारनेसे तेरी बुद्धि क्लेशित नहीं हुइ है, तिस करके हमारा कहा तेरी समजमे नहीं आता है, क्योंकि ज्ञान क्षण सततिविषेभी बोही दूषण है, जो हमने उपर कहा है, सोइ दिखातें है, कि वैकल्पिक, अरु अवैकल्पिक, जो ज्ञान क्षण है, सो परस्पर अनुगमके अभावसे परस्पर स्वरूप नहीं जानते, अरु क्षणमात्रसे उपरात रहते नहीं, तब तो कैसे पूर्वापर अनुसधान रूप दीर्घकालिक सकल जगत् दुःखिताका विचार शास्त्र विचारण रूप यह व्यवहार होवे? आखों मीच करकें विचारो तो सही? इत्यादि बौद्धमतका खमन, नदीसिद्धांत, तथा सम्मतितर्क, द्वादशा

र नयचक्र, अनेकांत जयपताका, स्याद्वादरत्नाकर, स्याद्वादरत्नाकराव तारिका प्रमुख अनेक शास्त्रोमें अछी तरें कीया है, सो देख लेनां ॥ इति बौद्ध मत खंमनं ॥ १ ॥

१ अथ द्वितीय नैयायिक मतमें पूर्वापर व्याहतपणां लिखते हैं, कि सत्ता योगसें सत्त्व है. औसें कह कर सामान्य विशेष समवाय इन पदार्थोंकों सत्ता के योगसें विनाही सत् कहतेकों क्यों नहीं पूर्वापर व्याहत वचन होवेगा?

२ ज्ञान आपणे आपकों नहीं जानता, आपणे आप विषे क्रियाका विरोध है, इस वास्ते औसें कह करकें फेर कहिते हैं कि ईश्वरका जो ज्ञान है, सो आपणे आपकों जानता है, अरु स्वात्माविषे क्रियाका विरोध मानते नहीं है, तो फेर क्योंकर स्ववचन विरोध न हूआ?

३ अरु दीपक जो है, सो अपणे आपको आपही प्रकाश करता है, अरु इस जगे स्वात्म विषे क्रिया विरोध मानते नहीं, यह पूर्वापर वचन व्याहत है.

४ दूसरोंके ठगने वास्ते छल, जाति, निग्रह, स्थान, इनको तत्त्वरूप पणे करकें उपदेश करते हुवा अक्षपाद ऋषिका वैराग्य वर्णन करनां औसा है कि जैसा अंधकारकों प्रकाशवाला कहनां. यह क्यों कर पूर्वापर व्याहत नहीं है?

५ आकाशको निरवयवी स्वीकार करकें फेर तिसका गुण शब्द जो है, सो एक देशमें सुणाइ देता है, सर्वत्र नहीं. तब तो आकाशको सांशता हो गइ. यह पूर्वापर व्याहत पणा है.

६ सत्तायोगसें सत्त्वं अरु योग जो है सो सर्व वस्तुवोंके सांशता होनेहीसें होता है, अरु सामान्यकों निरंश एक मानते हैं, तब कैसें पूर्वापर व्याहत वचन न होवे?

७ समवाय, नित्य एकस्वभाव मानते हैं, अरु सर्व समवायी पदार्थोंके साथ संबंध नैयत्य करकें होता हूआ समवाय, अनेक स्वभाव वाला हो गया, तब तो पूर्वापर विरोध हो गया.

८ "अर्थवत्प्रमाणं" अर्थ सहकारी है, जिसका सो अर्थवत् प्रमाण, यह कह करकें फेर योगी प्रत्यक्षकों अतीताद्यर्थ विषय कहतेकों क्यों नहीं पूर्वापर विरोध है? क्योंकि अतीतादिक जो है, सो विनष्ट अनुत्पन्न होनेसें सहकारी नहीं हो सक्ते हैं.

९ तथा स्मृतिगृहीतग्राही होने करके प्रमाण नही मानते है, "अनर्थ जन्यत्वेन" विना अर्थके होने करके अरु गृहीतग्राही होनेसे प्रमाण नहीं, अरु धारावाही ज्ञानजी गृहीतग्राही है, तिनकोंजी अप्रमाणता होनी चाहियें, परतु धारावाही ज्ञानको नैयायिक औ वैशेपिक प्रमाण मानते है, अरु अनर्थजन्य होने करके स्मृतिको जव अप्रमाण मान्या, तव अतीतानागत अनुमानजी अनर्थजन्य होने करके प्रमाण न हूआ, अरु अनुमानको शब्दकी तरे त्रिकाल विपयक मानते है, क्योकि धूम करकें वर्त्तमान अग्नि अनुमेय है, अरु मेघोन्नति करकें जविष्यत् वृष्टि, अरु नदीका पूर देखनेंसे अतीत वृष्टिका अनुमान, यह दोनोही अनर्थ जन्य है, तो फेर धारावाही ज्ञान, अरु अनर्थ जन्य अनुमान, इन दोनाको तो प्रमाण मानना अरु स्मृतिको अप्रमाण नही मानना यह पूर्वापर विरोध है

१० ईश्वरका सर्वार्थ विपय प्रत्यक्ष जो है, सो इंड्रियार्थ सन्निकर्प निरपेक्ष मानते हो ? वा इंड्रियार्थ सन्निकर्पोत्पन्न मानते हो ? जे कर कहोगे कि इंड्रियार्थ सन्निकर्प निरपेक्ष मानते है, तब तो "इंड्रियार्थ सन्निकर्पोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमित्यत्र सूत्रे" सन्निकर्पोपादान निरर्थक होवेगा, क्योंकि ईश्वर प्रत्यक्ष ज्ञान सन्निकर्पके विनाजी हो सक्ता है, जे कर कहोगे कि ईश्वर प्रत्यक्ष इंड्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न मानते हैं, तव तो ईश्वरके मनको अणु मात्र प्रमाण होनेसे युगपत् सर्व पदार्थोके साथ सयोग न होवेगा ? तव तो ईश्वर जव एक पदार्थकों जानेगा, तब दूसरे पदार्थ होते हूयाकोंजी नहीं जानेगा तब तो हमारेकी तरे तिस ईश्वरकों कदापि सर्वज्ञता न होवेगी, क्योंकि सर्व पदार्थोके साथ युगपत् सन्निकर्ष नही हो सक्ता है, जे कर कहोगे कि सर्व पदार्थोंको क्रम करके जाननेसे सर्वज्ञ है, तब तो बहुत काल करके सर्व पदार्थोके देखने करके ईश्वरकी तरे हमकूंजी सर्वज्ञ कहना चाहिये एक औरजी बात है कि अतीत, अनागत जो पदार्थ है, सो विनष्ट अनुत्पन्न होनेसे मनके साथ सन्निकर्प नही हो सक्ता है, होतेही पदार्थोका सयोग होनेसे, अरु अतीत अनागत तो तिस अवसरमे दोनो असत् है, तब किस तरे महेश्वरका ज्ञान अतीत अनागत अर्थका ग्राहक होवे ? अरु तुम तो ईश्वरका ज्ञान सर्वार्थका ग्राहक मानते होत,

व तो पूर्वापर विरोध सहजहीमें हो गया, असेंही योगीयोंकोंभी सर्वार्थ ग्राहक ज्ञानका दुर्धर विरोध जान लेना.

११ कार्य द्रव्यके प्रथम उत्पन्न होनेसें तिसका जो रूप है, सो पीछेसें उत्पन्न होता है, विना आश्रयके गुण क्योंकर उत्पन्न होवे? यह कह करकें पीछेसें यह कहते हैंकि कार्य द्रव्यके विनाश हूये पीछें तिसका रूप नष्ट होता है, यह पूर्वापर विरोध है, क्योंकि जब कार्यद्रव्य नाश हो गया, तब रूप आश्रय विना पीछें क्यों कर रह सकेगा?

१२ नैयायिक औ वैशेषिक जगत्का कर्त्ता ईश्वरकों मानते हैं, यह बातभी एक महामूढताका चिन्ह है, क्योंकि जगत्का कर्त्ता ईश्वर किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं हो सक्ता है, यह जगत् कर्त्ताका खंमन दूसरे परिछेदमें अछी तरें विस्तार पूर्वक लिख आये हैं, तोभी भव्य जीवोंके ज्ञान वास्ते थोडासा इहांभी लिख देते हैं.

कोइक कहते हैं कि साधुवोंके उपकार वास्ते अरु दुष्टोंके संहार वास्ते ईश्वर युग युगमें अवतार लेता है, अरु सुगतादिक कितनेक यह बात कहते हैं कि मोक्षकों प्राप्त हो करकें अपने तीर्थकों क्लेशमें देख कर फेर भगवान् अवतार लेता है, "यदाहु रन्ये ॥ ज्ञानिनोधर्मतीर्थस्य, कर्त्तारः परमं पदं ॥ गत्वा गछंति भूयोपि, भवंतीर्थनिकारत इति ॥ १ ॥" जो फिर संसारमें अवतार लेता है, वो परमार्थसें मोक्षरूप नहीं हूआ है, क्योंकि उसके सर्व कर्म क्षय नहीं हूये है, जे कर मोहादिक कर्मक्षय हो जाते, तो वो काहेकों अपने मतका तिरस्कार देखके पीडा पाता, अरु अवतार लेता, जे कर साधुवोंके उपकारार्थ अरु दुष्टोंके संहार वास्ते अवतार लेता है, तब तो असमर्थ हूआ, क्योंकि बिनाही अवतारके लीयां वो यह काम नहीं कर सक्ता था, जे कर कर सक्ता था, तो फेर काहेकों गर्भावासमें पडा? इस वास्ते सर्व कर्म क्षय नहीं हुये, जे कर क्षय हो जाते तो कबीभी अवतार न लेता ॥ यदुक्तं ॥ दग्धे बीजे यथात्यंतं, प्रादुर्भवति नांकुरः ॥ कर्म्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति भवांकुरः ॥ १ ॥ उक्तंच श्रीसिद्धसेन दिवाकर पादैरपि ॥ भवाभिगामुकानां, प्रबलमोहविजृंभितं ॥ श्लोक ॥ दग्धेंधनः पुनरुपैति भवं प्रमथ्य, निर्वाणमप्यनवधारितभीरनिष्ठं ॥ मुक्तः स्वयं कृततनुश्च परार्थशूर, स्त्वछासनप्रतिहतेष्विह मोहराज्यं ॥ १ ॥ इत्यलंविस्तरेण ॥

पूर्वपक्ष—सुगतादिक ईश्वर मत होवो, परंतु सृष्टिका कर्त्ता तो महादेव ईश्वर है, सो क्यों नही मानते?

उत्तरपक्ष—जगत् कर्त्ता ईश्वरकी सिद्धिमे प्रमाणका अभाव है, इस वास्ते नही मानते

पूर्वपक्ष—जगत् कर्त्ताकी सिद्धिमे प्रमाण है. पृथिव्यादिक किसी बुद्धिवानके करे हूये हैं घटादिवत् कार्यरूप होनेसे यह हेतु असिद्ध नही है, पृथिव्यादिकोंको सावयव होने करिके कार्यत्वकी प्रसिद्धि होनेसे तथाहि पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक सर्व सावयव होनेसे घटवत् कार्यरूप है, अरु यह हेतु विरुद्धभी नही है, निश्चित कर्तृक घटादिकों विषे कार्यत्व हेतुके देखनेसे अरु जिनोका कर्त्ता नही है, उनसे व्यावृत्त होनेसे अनेकांतिकभी नही है, अरु प्रत्यक्ष आगम करके अबाधित विषय होनेसे कालात्ययापदिष्टभी नही है,इस निर्दोष हेतुसे जगत्कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है.

उत्तरपक्ष—तहा प्रथम पृथिवीआदिक बुद्धिमान्के बनाये हूये है, इस सिद्धिके वास्ते जो तुमने कार्यत्व हेतु कहा था, सो हेतु क्या सावयवत्व है? वा प्राग्वत् स्वकारण सत्ता समवाय है? वा 'कृत' ऐसे प्रत्ययका विषयत्व है? वा विकारित्व है? इन चारो विकल्पोमेसू कार्यत्व हेतुका कौनसा स्वरूप है? जे कर कहोगेकि सावयवत्व स्वरूप है, तो यह सावयवपणा अवयवो विषे वर्त्तमानत्व है? वा अवयवो करकें आरम्भमाणत्व है? वा प्रदेशत्व है? वा सावयव ऐसी बुद्धिविषयत्व है?

तहां आद्य पक्षविषे अवयव सामान्य करकें यह हेतु अनेकातिक है, तथा अवयवो विषे वर्त्तमानभी निरवयव अरु अकार्य कहते है, तथा दूसरे पक्षमे हेतु साध्यके समान है, जैसा पृथिव्यादिकोको कार्यत्व साध्य है, ऐसेही परमाणु आदिकोको अवयव आरम्भत्व पणा है, तथा तीसरे पक्षमें आकाशके साथ हेतु अनेकातिक है, क्योंकि आकाश प्रदेश वाला तो है, परतु कार्य नही है. तथा चउथे पक्षमेंभी आकाशके साथ हेतु व्यभिचारी है, क्योंकि जो व्यापक होता है, सो निरवयव नहीं होता है, अरु जो निरवयव होता है, सो परमाणुवत् व्यापक नहीं होता है

तथा प्रागसत स्वकारण सत्तासमवाय कार्यत्वभी नही, क्योंकि तिसको नित्य होने करकें तिसके लक्षणके न होनेमे जे कर तिसका लक्षण

होवेगा, तब तो पृथिव्यादिकोंके कार्यत्वकोंभी नित्यताका प्रसंग होवेगा, तब बुद्धिमत्का बनाया हूआ क्या सिद्ध करोगे? एक औरभी दूषण है कि योगीयोंके अशेष कर्मके क्षय हूआं थकां पक्षांतपातिविषे अप्रवृत्त होने करकें यह हेतुभागा असिद्ध है, क्योंकि योगी प्रत्यक्षकों प्रध्वंसा भाव रूप होने करकें सत्ता स्वकारण समवाय इन दोनोंके अभावमें.

तथा "कृतं" ऐसे प्रत्ययका जो विषयत्व है सोभी कार्यत्व नहीं हो सक्ता है, खनन उत्सेचनादिक करकें कृतं आकाशं ऐसें अकार्य आकाशमें भी वर्त्तमान होने करकें अनेकांतिक है.

तथा विकारत्वकोंभी कार्यत्वका अनुषंग है, सत् वस्तुकों जो अन्यभाव है, सो विकारित्व है. तब तो ईश्वरकोंभी विकारित्व पणा है, अपर बुद्धि मत् हेतुकत्व प्रसंग होनेसें अनवस्था हो जावेगी, जे कर कहोगेकि ईश्वर विकारी नहीं तब तो कार्यका कारित्व पणा दुर्घट है, ऐसें कार्य स्वरूप कों विचारता थकां उपपद्यमान न होनेसें "कार्यत्वात्" यह हेतु असिद्ध है,एक औरभी दूषण है कि कदे होनां कदे न होनां, लोकमें उसकों कार्य त्वकी प्रसिद्धि है. अरु यह जो जगत् है, सो तुमारे महेश्वरकी तरं सदा सत्व होनेसें कैसें कार्यत्व होवे?

पूर्वपक्षः—तिस जगत्के अंतर्गत तृणादिकोंकों कार्यत्व होनेसें जगत् कोंभी कार्यत्त्व है.

उत्तरपक्षः—महेश्वर अंतर्गत बुद्धिआदिकोंकों तथा परमाणु आदिकोंके अंतर्गत पाकज रूपादिकोंकों कार्यत्व रूप होनेसें महेश्वरकों तथा परमाणु आदिकोंकों कार्यत्वका अनुषंग होवेगा, तब तो इस ईश्वरकों अपर बुद्धिम त् हेतुकत्व प्रसंगसें अनवस्था दूषण आता है, अरु अपसिद्धांतका अनु षंग है, तथा हे ईश्वरवादि! जैसे तैसें करकें जगत्कों कार्यत्वपणा होवो, तोभी कार्यमात्र इहां हेतु तुमने माना है? वा कार्य विशेष हेतु माना है?

जे कर आद्य पक्ष मानोगे, तब तो तिससेंती बुद्धिमत्कर्तृ विशेष सिद्धि नहीं. क्योंके तिसके साथ व्याप्तिकी सिद्धि नहीं, किंतु कर्तृ सामान्यकी सिद्धि होती है, जे कर ऐसेही मानोगे; तब तो हेतु अकिंचित्कर है, साध्यसें विरुद्ध साधनेसें हेतु विरुद्ध है, तिस वास्ते कार्यत्वकृत बुद्धि उत्पादक बुद्धिमत् कर्त्ताका गमक नहीं, अरुजे कर सर्व सारूप्य मात्र करकें गमक

त्व होवे, तब तो बाष्पादिकोंकोंनी अग्नि प्रतिगमकत्वका प्रसग होवेगा, अरु महेश्वर आत्मत्व करकें सर्व जीवोके सदृश होनेसे १ संसारिपणा, २ किंचित् ज्ञत्वपणा, ३ सपूर्ण जगत्का अकर्तृत्वपणेके अनुमापकका अनुपग है, क्योकि तुल्य अक्षेप समाधान होनेसें तिस वास्ते बाष्प अरु धूम इन दोनोकों किसी अश करकें साम्यनी है, तोनी कोइक ऐसा विशेप है, जिस करकें धूम अग्निका गमक है, परतु बाष्पादिक नहीं. तैसेही पृथिव्यादिकोको इतर कार्योसेंनी कछुक विशेष अंगीकार करो

जे कर दूसरा पक्ष मानोगे, तब हेतु असिद्ध है, कार्य विशेषके अनावसे नावे वा जीर्ण कूप प्रासादादिकोकी तरें अक्रिया देखने वालेकोनी कृतबुद्धि उत्पादकका प्रसग है, जे कर कहोगेकि समारोपसे प्रसग नहि होता है, सोनी दोनो जगे एक सरीखा होनेसे क्यो नहीं होता है? दोनो जगे कर्त्ताको अतीन्द्रियत्वके अविशेपसे. पूर्वपक्ष प्रामाणिकको है, यदा कृतबुद्धि उत्तरपक्ष कैसे तहा तिसको कृतत्त्वका अवगम होवे? इस अनुमान करके अथवा अनुमानातर करके आद्य पक्षमे परस्पर आश्रय दूषण है, तथाहि सिद्ध विशेषण हेतुसे इस अनुमानका उत्थान है, तिसके उत्थानके होया हेतुके विशेषणकी सिद्धि है अरु दूसरे पक्षमे अनुमानातरकोनी सविशेपण हेतुसे उत्थान होवेगा, तहानी अनुमानातरसे तिसकी सिद्धि इसी तरें अनवस्था दूषण होता है, इस वास्ते कृत बुद्धि उत्पादकत्व रूप विशेपण सिद्धि नहीं. तब तो विशेषण असिद्ध हेतु है

अरु जो कहते है कि खातप्रतिपूरित पृथिवीके दृष्टात करके कृतकोंका आत्मविषे कृतबुद्धि उत्पादकत्वका अनाव है, सोनी असत् है, तहा आकृति जूनागादि सारूप्यकों तिसके उत्पादकके अनावसे, तिसके अनुत्पादककी उत्पत्तिसे

अरु ऐसेंनी न कहनाकि पृथिव्यादिकोंमेंनी अकृत्रिम सस्थान सारूप्य है, जिस करकें आकृतिमत्व बुद्धि उत्पन्न होती है, तिनहीके न माननेसे अपसिद्धातकी प्रसक्ति होवेगी, ऐसे कृतबुद्धि उत्पादकत्व रूप विशेपण असिद्ध होनेसे हेतु विशेषण असिद्ध है, जो सिद्ध होवे, तोनी यह हेतु घटादिकोकी तरे शरीरादि विशिष्टकोंही बुद्धिमत कर्त्ताका इहां प्रसाधनसे हेतुविरुद्ध है.

प्रश्नः—ऐसे दृष्टांत दार्ष्टांतिक साम्य अन्वेषणमें सर्व जगें हेतुवोंकी अनुपपत्ति होवेगी.

उत्तरः—ऐसें नहीं है धूमादि अनुमानमें महानस इतर साधारण अग्निकी प्रतिपत्तिसें, यहांभी ऐसेही बुद्धिमत् सामान्य प्रसिद्धिसें हेतु विरोध नहीं, ऐसेंभी कहनां अयुक्त है, क्योंकि दृश्य विशेष आधारकोंही तिस सामान्यकों कार्यत्व हेतुकी प्रसिद्धि है, परंतु अदृश्य विशेषाधारकों नहीं, तिसकी स्वप्नमेंभी प्रतिपत्ति नहीं है, तिस सामान्य वालेका खरशृंग आधार है, तिस वास्ते जैसे कारणसें जैसा कार्य उपलब्ध होता है, तैसाही अनुमान करने योग्य है, यथावत् धर्मात्मक अग्निसें यावत् धर्मात्मकस्य धूमकी उत्पत्ति है, सुदृढ प्रमाणसें प्रतिपन्न है, तैसेही धूमसें तैसेंही अग्निका अनुमान है, ऐसें कहने करकें साध्य साधन दोनोंका विशेषण करकें व्याप्तिविषे ग्रहण करतां हूआ, सर्वानुमानकी उच्छेद प्रसक्ति है, इत्यादि जो कहनां है, सोभी खंमन हो गया.

तथा विना बीजके बोयां जो तृणादिक उत्पन्न होते हैं तिनके साथ यह कार्यत्व हेतु व्यभिचारी है, बहुतसें कार्य देखनेमें आते हैं, उनमेंसूं कितनेक तो बुद्धिमान्के करे हुये दीखते हैं, जैसें घटादिक.

अरु कितनेक उक्तसें विपरीत दिखाइ देते हैं, जैसें बिना बोयां तृणादिक. जे कर कहोगेकि हम सर्वकों पक्षमें कर लेवेंगे तब तो "स श्यामस्तत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवत्" इत्यादिभी गमक होने चाहियें, तब तो कोइभी हेतु व्यभिचारी न होवेगा. जहां जहां व्यभिचार होवेगा, तहां तहां तिसकों पक्षमें कर लेनेसें तथा यह हेतु ईश्वर बुद्धि आदिकों करकेंभी व्यभिचारी है, ईश्वर बुद्ध्यादिकोंकों कार्यत्वके होयां हूयांभी समवायि कारणसें ईश्वरादिकोंसें भिन्न बुद्धिमत्पूर्वकत्वके अभावसें, जे कर यहांभी इसी तरें मानोगे, तब अनवस्थादूषण होवेगा, तथा यह कार्यत्व हेतु कालात्ययापदिष्टभी है, विना बोयां उत्पन्न हुये तृणादिको विषे बुद्धिमत् कर्त्ताका अभाव प्रत्यक्ष प्रमाणसें अग्निके अनुष्णत्व साध्यविषे द्रव्यत्व हेतुवत् दीख पडता है.

प्रश्नः— अंकुर तृणादिकोंकाभी अदृश्य ईश्वर कर्त्ता है.

उत्तरः—यहभी ठीक नहीं, तहां अदृश्य ईश्वरका होनां इसी प्रमाणसें

है? अथवा और किसी प्रमाणसें है? प्रथम पक्षमें चक्रक दूषण है, इस प्रमाणसे तिसका सन्नाव सिद्ध होवें, तब अदृश्य होने ईश्वरके अनुपल नकी सिद्धि होवें, तिसकी सिद्धिके होया कालात्ययापदिष्टका अनाव सि द्ध होवे, तिसके पीछें इस प्रमाणकी सिद्धि होवे. दूसरा पक्षनी अयुक्त है, ईश्वरके नावावेदिक प्रमाणके अनावसे होवे, तहां प्रमाणका सन्नाव तोनी १ ईश्वरके अदृश्य होनेमे क्या शरीरका न होनां कारण है? २ वा विद्यादि प्रनाव है? ३ वा जाति विशेष है? प्रथम पक्षमे अशरीरी हो नेसे मुक्त आत्मावत् कर्त्तापणेकी अनुपपत्ति है.

प्रश्न – शरीरके अनाव करकेंनी ज्ञानेछा प्रयत्नाश्रयत्व करके शरीर उ त्पन्न करकें ईश्वर कर्त्ता हो सक्ता है

उत्तर –यहनी विना विचारहीका तुमारा कहना है, क्योंकि शरीर स बंध करकेही तिसकी प्रेरणा होनेसे शरीरके अनाव हूया मुक्त आत्मवत् तिसका असंनव होनेसे अरु शरीरके अनावसे ज्ञानादि आश्रयित्वकानी असंनव है, तिसकी उत्पत्तिमे इसकों निमित्त होनेसे अन्यथा मुक्तात्मा कोंनी तिसकी उत्पत्ति होवेगी अरु विद्यादि प्रनावको अदृश्यपणेमे हेतु हूया कदाचित् यह दीखना चाहिये, परतु सर्वदा नही. क्योंकि विद्यावान् सदा अदृश्य नही रहते है, पिशाचादिकोंकी तरे जाति विशेषनी अदृश्यमे हे तु नही, क्योकि ईश्वर एक है, एकमे जाति नहीं होती है, जाति जो हो ती है, सो अनेक व्यक्ति निष्ठ होती है नलेही ईश्वर दृश्य अथवा अदृ श्य होवे, तोनी १ क्या सत्ता मात्र करके? २ वा ज्ञानवत्त्व होने करकें? ३ वा ज्ञानेछा प्रयत्नवत्त्व करकें? ४ वा तत्पूर्वक व्यापार करकें? ५ वा ऐश्वर्य करके पृथिव्यादिकोका कारण है?

तहा आद्य पक्षमे कुलालादिकोकोंनी सत्त्वके अविशेष होनेमे जगत्कर्तृका अनुपग होवेगा दूसरे पक्षमे योगीयोंकोनी जगत् कर्त्ताकी आपत्ति होवेगी, ती सरा पक्षनी ठीक नही,क्योकि अशरीरको प्रथमही ज्ञानादि आश्रयत्वका प्रति षेध करनेसें चतुर्थकानी संनव नहि क्यों कि अशरीरको काय वचनके व्या पारवत्त्वका असंनव होनेसें अरु ऐश्वर्यनी ज्ञातपणा है? अथवा कर्त्तापणा है? अथवा और कुछ है? जे कर कहोगे कि ज्ञातपणा है, तब क्या ज्ञा तृत्वमात्र है? अथवा सर्वज्ञातृ पणा है? आद्यपक्षमें ज्ञाताही होवेगा,

परंतु ईश्वर न होवेगा. अस्मदाद्यन्यज्ञातृयोंकी तरें. दूसरे पक्षमें सर्वज्ञ पणा इसकों होवेगा परंतु सुगतादिवत् ईश्वरपणां न होवेगा.

अथ जे कर कहोगे कि कर्तृत्वपणा है तब तो कुंभकारादिकोंकोंभी अनेक कार्य करने वालोंकों ऐश्वर्यकी प्रसक्ति होवेगी, अरु इछा प्रयत्नके विना और कोइभी वस्तु ईश्वरके ऐश्वर्यकी निबंधन नहीं है.

एक औरभी बात है, कि ईश्वरकें जगत् बनानेमें यथारुचि प्रवृत्ति है? वा कर्मके वश हो करकें है? वा दया करकें है? वा क्रीडा करकें है? वा निग्रहानुग्रह करने वास्ते है? वा स्वभावसें है? आद्य विकल्पमें कदाचित् और तरेंकी सृष्टि हो जावेगी, दूसरे पक्षमें ईश्वरकी स्वतंत्रताकी हानी होवेगी, तीसरे पक्षमें सर्व जगत् सुखीही करना था.

पूर्वपक्षः—ईश्वर क्या करे? जैसें जैसें जीवोंने कर्म करे हैं, तिन कर्मोंके वशसें ईश्वर तैसा तैसा दुःख सुख देता है.

उत्तरपक्षः—तब तो तिसका क्या पुरुषाकार है? जब कर्महीकी अपेक्षा करकें कर्त्ता है, तब तो ईश्वरकी कल्पना करकें क्या करना है? कर्महीके बलसें सब कुछ हो जावेगा, तथा चउथे पांचमे विकल्पमें ईश्वर, रागी द्वेषी हो जावेगा, तब तो ईश्वर क्यों कर सिद्ध होवेगा? तथाहि क्रीडा करनेसें बालवत् रागवान् ईश्वर है? तथा ईश्वर अनुग्रह निग्रह करनेसें राजाकी तरें राग द्वेष वाला है?

जे कर कहोगे कि ईश्वरका स्वभावही जगत् करने (रचनेका) है, तब तो जगत् स्वभावसेंही हूआ है, ऐसें मान लेवो फेर ईश्वरकी कल्पना का हेकों करते हो? इस वास्ते कार्यत्व हेतु बुद्धिमत् कर्त्ता ईश्वरकों नहीं सिद्ध कर्त्ता है, इस वास्ते नैयायिक, वैशेषिक जो जगत्का कर्त्ता ईश्वरकों मानते हैं, सो मूर्खताका सूचक है, विशेष करकें जगत् कर्त्ताका खंमन देखनां होवे, तदा सम्मतितर्क ग्रंथ देखनां.

अरु जो नैयायिकोंने सोला पदार्थ माने हैं, सोभी बालकोंकी खेल है, क्योकि सोला पदार्थ घटते नहीं है, सोलां पदार्थ यह है उसका नाम कहते हैं. १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ संशय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टांत, ६ सिद्धांत, ७ अवयव, ८ तर्क, ९ निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२

वितंमा, १३ हेत्वाभास, १४ छल, १५ जाति, १६ निग्रहस्थान, य ह सोला पदार्थ कहे है

तहां, हेय उपादेय प्रवृत्तिरुप करके जिस करके पदार्थोंकी परिछित्ति क रिये है, "तत्त्वमीयतेऽनेनेति प्रमाण" सो प्रमाण, सो प्रमाण १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ शब्द भेदसे चार प्रकारका है, "तत्रेंद्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मक प्रत्यक्ष इति गौतम सूत्रं ॥" इसका यह तात्पर्य है कि इंद्रिय अरु अर्थका जो संबध तिससेंही जो उत्पन्न हूआ व्यपदेश रहित व्यभिचार रहित निश्चयात्मक तिसको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते है, परंतु प्रत्यक्ष प्रमाणका यह लक्षण नही है, तथाहि जहा आत्मा अर्थ ग्रहण प्रति साक्षात् व्यापारिये, सोइ प्रत्य क्ष प्रमाण है, सो अवधि, मन पर्यव, अरु केवल है, अरु यह जो प्रत्य क्ष नैयायिकोने कह्या है, सो उपाधि द्वारा प्रवृत्ति होनेसे अनुमानकी त रे परोक्ष है, जो उपचार प्रत्यक्ष माने, तब तो है, परंतु तत्त्वचिंतामें उपचारका व्यापार नही होता है

अरु अनुमान प्रमाण तीन भेद करिकें मानते है, १ पूर्ववत्, २शेषवत्, ३ सामान्यतोदृष्ट. तहा कारणसे कार्यका जो अनुमान, सो पूर्ववत्, तथा कार्यसे कारणका जो अनुमान, सो शेषवत्, तथा एक आंबका वृक्ष फूला देख कर आंब, जगत्मे फूले है, औसे जानना, अथवा देवदत्तादिकोंमे गति पूर्वक स्थानसें स्थानांतरकी प्राप्ति देख कर सूर्यमेंभी गतिका अनुमान क रना इसका नाम सामान्यतो दृष्ट है, तहांभी अन्यथानुपपत्तिही गमक है, नतु कारणादिक. क्योंकि अन्यथानुपपत्तिके विना कारणको कार्य प्रति व्य भिचार होनेसे अरु जहा अन्यथानुपपत्ति है, तहां कार्य कारणादिका के विनाभी गमकभाव देखीये है. सोइ दिखाते है कृत्तिकाके देखने मे रोहिणीका उदय होवेगा ॥तदुक्तं॥ श्लोक ॥ अन्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किं ॥ नान्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किं ॥ १ ॥ तथा एक औरभी बात है कि जब प्रत्यक्ष प्रमाणही नैयायिकका कह्या प्रमाण न हूआ तब प्रत्यक्ष पूर्वक अनुमान जो है सो क्योंकर प्रमाण होवे? तथा "प्रसिद्ध साधर्म्यात्" अर्थात् प्रसिद्ध साधर्म्यसे जो साध्यका सा धन है, सो उपमान है, जैसा गौ है तैसा रोज है, यहांभी सज्ञा सज्ञी

संबंधकी प्रतिपत्ति उपमानका अर्थ है, इहांजी अन्यथानुपपत्तिके सिद्ध होनेसें उपमानजी अनुमानके अंतरनावही है, परंतु पृथग् प्रमाण नहीं. जे कर कहोगे कि इहां अन्यथानुपपत्ति नहीं है, तब तो व्यनिचारी होनेसें उपमान प्रमाणही नहीं है, शाब्दजी सर्व प्रमाण नहीं है, किंतु जो आप्त प्रणीत आगम है, सोइ प्रमाण है, अरु अर्हंत बिना दूसरा कोइ आप्त नहीं. इस बातका निर्णय देखनां होवे, तदा सम्मतितर्क, नंदीसिद्धांत, आप्तमीमांसादि शास्त्र देख लेने. तथा एक औरजी बात है, कि यह चारों प्रमाण आत्माका ज्ञान है, अरु ज्ञान वस्तुके गुणोंकों पृथग् पदार्थ मानीयें, तब तो रूपरसादिकोंजी पृथग् पदार्थ माननां चाहियें. जे कर कहोगे कि प्रमेयके ग्रहणे करकें, औ इंडियार्थ होने करकें तेजी ग्रहण कीये जाते हैं, यहजी तुमारां कहनां युक्ति युक्त नहीं है, क्योंकि इव्यसें पृथग् गुणोंका अनाव है, इव्यके ग्रहण करनेसें गुणोंकाजी ग्रहण सिद्ध है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ माननां ठीक नहीं.

२ तथा प्रमेयका नेद, १ आत्मा, २ शरीर, ३ इंडिय, ४ अर्थ, ५ बुद्धि, ६ मन, ७ प्रवृत्ति, ८ दोष, ९ प्रेत्यनाव, १० फल, ११ डुःख, १२ अपवर्ग. तहां १ आत्मा सर्वका देखने वाला अरु नोक्ता है, अरु इछा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, डुःख, ज्ञान, इन करकें अनुमेय है, सो तो हमने जीवतत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु २ शरीर जो है, सो आत्माका नोगायतन है, इंडिय नोगोंके साधन हैं, अरु ३–४ इंडियार्थ नोग्य हैं, येजी शरीरादिक जीवाजीवके ग्रहण करकें हमने ग्रहण करे हैं, अरु ५ बुद्धि जो है, सो उपयोग रूप ज्ञान विशेष है, सो बुद्धि जीवके ग्रहणहीमें आ गइ, एतावता जीव तत्त्वमेंही ग्रहण हो गइ, अरु ६ सर्व विषय अंतःकरण है, युगपत् ज्ञानका न होनां यह मनका लिंग है, तहां इव्य मन तो पौज़लिक है, सो अजीव तत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु नावमन जो है सो ज्ञानरूप आत्माका गुण है, सो जीव तत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु ७ आत्माकी इछाका नाम प्रवृत्ति है, सो सुख डुःखोंके होनेमें कारण है, सो ज्ञानरूप होणेसें जीवतत्त्वमें ग्रहण करी है, ८ आत्माके जो अध्यवसाय राग, द्वेष, मोहादि दोष हैं, यह दोषजी जीवके अनिप्राय रूप होनेसें जीवतत्त्वमेंही ग्रहण कीया है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ नहीं. ९ प्रेत्यनाव, पर

लोकका सद्भाव होनां सोभी जीवाजीवके बिना और कुछ नही है, तथा १० फल, जो सुख दुःखका भोगना है, सोभी जीव गुणोंके अंतर्भाव है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ कहना ठीक नही, तथा ११ दुःख, यहभी फलसे न्यारा नही, अरु १२ जन्म मरण प्रबंध उच्छेदरूप करके सर्व दुःखोंको दूर करणा, ऐसा मोक्षका लक्षण है, सो हमने नवतत्त्वमें मान्याही है

३ तथा यह क्या है? ऐसा अनिश्चयरूप प्रत्ययको संशय कहते है, सोभी निर्णय ज्ञानवत् आत्माहीका गुण है

४ तथा जिस करके प्रयुक्त हूआ होयां प्रवर्त्तें है, तिसका नाम प्रयोजन है, सोभी इच्छा विशेष होनेसे आत्माका गुण है

५ तथा अविप्रतिपत्ति विषयमे प्राप्त है, अर्थ सो दृष्टांत है, सोभी जीवाजीवपदार्थोंसे न्यारा नही है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ नहीं है क्योंकि अवयवग्रहणेमेभी आगें इसका ग्रहण हो जावेगा

६ तथा सिद्धांत चार प्रकारका है, १ सर्वतंत्राविरुद्ध सर्व शास्त्रो में अविरुद्ध जेसे स्पर्शनादि इंद्रिय है, अरु स्पर्शादि इंद्रियार्थ है, तथा प्रमाणों करके प्रमेयका ग्रहण होता है, २ समानतंत्रसिद्ध, परतंत्रासिद्ध, प्रतितंत्रासिद्धांत, जैसे सांख्य मत वालोंके असत् आत्म लाभको प्राप्त नहीं होता है, अरु सत्का सर्वथा विनाश नही है, तथा ३ जिस की सिद्धिके हूया औरभी अर्थ अनुषंग करकें सिद्ध हो जावे, सो अधिकरणसिद्धांत है तथा ४ "अपरीक्षितार्थाभ्युपगमत्वात्तद्विशेषपरीक्षणमभ्युपगमसिद्धांत" जैसें किसीने कहा शब्द क्या वस्तु है? कोइक कहता है शब्द द्रव्य है, सो शब्द नित्य है? वा अनित्य है? इत्यादि विचार यह चार प्रकारका सिद्धांत ज्ञान विशेषसे अतिरिक्त नहीं है, अरु ज्ञानविशेष आत्माका गुण है गुणीके ग्रहणेसे ग्रहण कीया है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ नहीं

७ अथावयवाः प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, यह पांचो अवयवकों जे कर शब्दमात्र मानीये, तब तो पुद्गल रूप होनेसे अजीव तत्त्वमे ग्रहण कीये है जे कर ज्ञानरूप मानीये, तब तो जीव तत्त्वमे ग्रहण कीये है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कहना ठीक नहीं, जे

कर ज्ञान विशेषकों पृथक् पदार्थ मानीयें, तब तो पदार्थ बहुत हो जावेंगे, क्योंकि ज्ञानविशेष अनेक प्रकारकें हैं.

८ संशयसें उपरि भवितव्यता प्रत्ययरूप सदर्थपर्यालोचनात्मक तिसकों तर्क कहते हैं, जैसें कि यह स्थाणु अथवा पुरुष जरुर होवेगा, यहभी ज्ञान विशेषही है, ज्ञानविशेप जो है, सो ज्ञातासें अभिन्न है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नहीं.

९ संशय अरु तर्कसेंती उत्तर काल भावी निश्चयात्मक ऐसा जो ज्ञान, तिसका नाम निर्णय है, यहभी ज्ञानविशेप है, अरु निश्चयरूप हो णेसें प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके अंतर्भाव होनेंसें पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नहीं.

१०-११-१२ तथा वाद, जल्प, वितंडा, तहां प्रमाण तर्क साधन उपालंभ सिद्धांत अविरुद्ध पंचावयव करकें संयुक्त पक्ष प्रतिपक्षका जो ग्रहण करणा, तिसका नाम वाद है. सो वादतत्त्व ज्ञानके वास्ते शिष्य अरु आचार्यका होता है, अरु सोइ वाद जिसकों जीतना होवे, तिसके साथ छल, जाति, निग्रह स्थान करकें साधनोपलंभ, सो जल्प है, तथा सो वादही प्रतिपक्ष स्थापना करकेंही वितंडा है, यह वाद, जल्प, वितंडा, इन तीनोका भेद ही नहीं हो सक्ता है, क्योंकि तत्त्वचिंताविषे तत्त्वके निर्णयार्थी वाद क रनां चाहियें, परंतु छल जाति आदिक करकें तत्त्वका निश्चय नहीं होता है, क्योंकि छलादिक जो हैं, सो परके वंचने वास्ते करियें हैं, तिनसें त त्त्व निर्णयकी प्राप्ति नहीं होती है, जे कर इनका भेदभी मानोगे, तोभी ये पदार्थ नहीं हो सक्ते हैं, क्योंकि जो परमार्थसें वस्तु है, सोइ पदार्थ है. अरु वाद जो है, सो पुरुषकी इछाके अधीन है, नियतरूप नहीं है. इस वास्ते पदार्थ नहीं, तथा एक औरभी बात है, कि कुक्कड, लाल, मींढे, इ नके वादमेंभी पक्ष प्रतिपक्ष ग्रहण करते हैं, तिनोंकोंभी तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होनी चाहियें, परंतु यह तुम नहीं मानते हो, इस वास्ते वाद पदार्थ नहीं है.

१३ तथा १ असिद्ध, २ अनेकांतिक, ३ विरुद्ध, यह तीनो हेत्वाभास हैं. हेतु तो नहीं, परंतु हेतुकी तरें भासन होते हैं, इस वास्ते हेत्वाभास कहते हैं. जब सम्यक् हेतुवोंकीही तत्त्वव्यवस्थिति नहीं, तो हेत्वाभासों का तो क्याही कहनां है? क्योंकि जो नियत स्वरूप करकें रहे, सो वस्तु

है, अरु हेतु तो किसी साध्यवस्तुमें हेतु है, दूसरे साध्यमें अहेतु है, इस वास्ते नियतस्वरूप वाला नही.

१४–१५–१६ तथा छल, जाति, निग्रहस्थान, यह तीनो पदार्थ नही. क्योंकि यह तीनोही वास्तवमें कपटरूप है, जिनोंने इनकों तत्त्व करके कथन करे हे, उनके ज्ञान, वैराग्यका क्या कहना है ? इस ससारमे जो चोरी, ठगी, हथफेरी प्रमुख सिखावे, तिसकोंनी तत्त्वज्ञानका उपदेशक मानना चाहियें ? यह नैय्यायिकमतके सोला पदार्थोंका खंमन कीया, जे कर विशेष करके देखना होवे, तो न्यायकुमुदचंद्र देख लेना यह खंमन, सूत्रकृतांग सिद्धांतसे लिखा है, जे कर विशेष देखना होवे, तव वारहवा अध्ययन देख लेना ॥ इति नैयायिक दर्शन खमनं सपूर्णम् ॥

अथ वैशेपिक मत खमन लिखते है वैशेपिकोके कहे हूये तत्त्वनी तत्त्व नही है, सोइ दीखाते है १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इनोंने यह ६ तत्त्व माना है तहा १ पृथिवी, २ अप्, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिक्, ८ आत्मा, ९ मन, यह नव द्रव्य है तिनमें पृथिवी, अप्, तेज, अरु वायु, इन चारोंको निन्न निन्न द्रव्य माननेसे ठीक नही. क्योंकि परमाणु जो है, सो प्रयोग विश्रसा करकें पृथिवी आदिकोके रूपपणे परिणमतेनी है, तोनी अपणे द्रव्य पणेकों नही त्यागते है, अरु अति प्रसग होनेसें अवस्था नेद करके द्रव्यका नेद मानना युक्त नही है, अरु आकाश, तथा कालको तो हमनेनी द्रव्य माना है, अरु दिशा जो है, सो आकाशका अवयवनूत है, इस वास्ते पृथग् द्रव्य नही अरु आत्मा शरीर मात्र व्यापी उपयोग लक्षण तिसको हमनी द्रव्य मानते है, अरु द्रव्य मन जो है, सो पुजलद्रव्यके अंतर्नाव है, तथा नावमन जो है, सो जीवका गुण होनेसे आत्माके अंतर्नाव है, यद्यपि वैशेपिक कहते है, कि जैसे पृथिवीत्वके योगसे पृथिवी है, यहनी उनका कहना स्वप्रक्रिया मात्र है, क्योकि पृथिवीसे अन्य दूसरा कोइ पृथिवीपणा नहीं है, जिसके योगसे पृथिवी होवे, अपि तु सर्वही जो कुछ है, सो सामान्य विशेषात्मक है, नरसिंहाकारवत् उनयस्वनाव है

तथा चोक्त ॥ श्लोक ॥ नान्वय सहि नेदत्वान्न, नेदोन्वयवृत्तित ॥ मृ

नेदद्वयसंसर्गी, वृत्तिर्जात्यंतरं घटः ॥ १ ॥ इसका नावार्थः—घट जो है तिसमें मृत्तिकाका अन्वय नहीं है, पृथु बुध्न उदराकारादिकों करकें इस हेतुसें नेद है, अरु अन्वयवर्त्ति होनेसें घटका मृत्तिकासें एकांत नेदनी न हीं है, एतावता घट मृत्तिका रूपही है, अन्वय व्यतिरेक दोनोके मिलने सें घडा जो है, सो जात्यंतर रूप है, एतावता मृत्तिकासें कथंचित् नेदा नेद रूप है ॥ तथा ॥ श्लोक ॥ न नरः सिंहरूपत्वा, न्नसिंहो नररूपतः ॥ शब्दविद्ज्ञानकार्याणां, नेदो जात्यंतरं हि सः ॥ १ ॥ नावार्थः—सिंहरूप होनेसें नर नहीं है, अरु नररूप होनेसें सिंहनी नहीं है, तो क्या है, १ शब्द, २ विज्ञान, ३ कार्य, इनके नेद होनेसें नरसिंह जो है सो तीसरी जाति है.

२ अथ रूप, रस, गंध, स्पर्श, रूपी द्रव्यमें इनकी प्रवृत्ति है. अरु विशेष गुण है, तथा १ संख्या, २ परिमाण, ३ पृथक्त्व, ४ संयोग, ५ विनाग, ६ परत्व, ७ अपरत्व, ये सामान्य गुण हैं, इनकी सर्व द्रव्यमें वृत्ति है. त था १ बुद्धि, २ सुख, ३ दुःख, ४ इछा, ५ द्वेष, ६ प्रयत्न, ७ धर्म, ८ अधर्म, ए संस्कार, ये आत्माके गुण हैं. तथा गुरुत्व, पृथिवी पाणीमें है, द्रव्यत्व पृथिवी, जल, अरु अग्निमें है, स्नेह जलमेंही है, वेग नाम संस्कार ये मूर्त्त द्रव्योंमें हैं, अरु शब्द आकाशका गुण है, तिनमें संख्या दिक सामान्य गुण रूपादिवत् द्रव्यस्वनाव होने करकें, अरु परोपाधिसें गुणही नहीं है, क्योंकि जब गुण, द्रव्यसें पृथग् हो जावेंगे, तब द्रव्यके स्वरूपकी हानी हो जावेगी, "गुणपर्यायवद्द्रव्यं" इस कहने करकें गुण जो है, सो द्रव्यसें न्यारे नहीं हैं, द्रव्यके ग्रहणहीसें गुणका ग्रहणां न्या य है, परंतु पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है, अरु शब्द जो है, सो आका शका गुण नहीं है, क्योंकि यह तो पौजलिक है, अरु आकाश तो अ मूर्त्त है, अरु शेष जो वैशेषिकने कहा है सो प्रक्रियामात्र है, साधन दूष णोंका अंग नहीं हैं.

३ अरु कर्मनी गुणवत् पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है.

४ अथ सामान्य दो प्रकारके है, एक पर, दूसरा अपर. तिनमें पर सा मान्य महासत्ता नाम है, द्रव्यादि तीन पदार्थोंमें व्यापी हैं, अरु जो अ पर है, सो द्रव्यत्व गुणत्व कर्मत्वादिक है, तिनमें महासत्ताकों पृथक् पदा र्थ माननां अयुक्त है. क्योंकि सत्तामें जो सत् यह प्रत्यय है, सो और

किसी सत्ताके यागसें है ? वा स्वरूप करकें है ? जे कर कहोगे कि और स त्ताके योगसें है, तव तो तिस सत्तामें सत् प्रत्यय, और सत्ताके योगसे होनां चाहिये ? ऐसें करता अनवस्था दूपण आता है, अरु जे कर क होगेकि स्वरूप करके सत् है, तव तो द्रव्यादिकभी स्वरूप करकें सत् है, तव तो अजाके गलेके स्तनोकी तरे निःफल सत्ताके कल्पनेसे क्या प्रयो जन है ? एक औरभी वात हेकि द्रव्यादिक जो है, सो सत्ताके योग होने से सत् कहे जाते है ? अथवा सत्ताके संवध विनाही सत् स्वरूप है ? जे कर कहोगेकि स्वत ही सत् स्वरूप है, तव तो सत्ताकी कल्पना करनी व्य र्थ है, जे कर कहोगे कि सत्ताके योगसे सत् है, तव तो शशविपाणभी सत्ताके योगसें सत् होनां चाहिये ॥ तथा चोक्त ॥ श्लोक ॥ स्वतोऽर्था सतु सत्ताव,त्सत्तया किं सदात्मना ॥ असदात्मसु नैपास्या, त्सर्वथा ति प्रसगत ॥ १ ॥ इत्यादि येही दूपण तुल्य योग क्षेम होनेसे अपर सामा न्यमेंभी जोड लेनें. तथा हमभी सामान्य विशेप रूप होनेसे वस्तुको कथंचित् सामान्यरूप मानतेही है, इस वास्ते द्रव्यके ग्रहण करनेसे सामान्यकाभी ग्रहण हो गया, इस हेतुसे सामान्य जो है, सो कुछ द्र व्यसे पृथक् पदार्थ नही

५ अथ विशेप जो है, सो अत्यंत व्यावृत्ति बुद्धिके हेतु होने करकें वैशेपिकोने माने है. तहा यह विचार करते है कि तिन विशेपोनें जो विशेप बुद्धि है, सो अपर विशेपों करके है ? वा स्वत ही स्वरूप करके है ? अपर विशेप हेतुक तो नही है, अनवस्था अरु विशेपमे विशेपका अगी कार नही है, जे कर कहोगेकि स्वत ही विशेप बुद्धिके हेतु है, तव तो द्रव्यादिकभी स्वत ही विशेप बुद्धिके हेतु है, तो फेर विशेपोको द्रव्यसे अतिरिक्त पदार्थ कल्पने व्यर्थ है अरु द्रव्योसे अव्यतिरिक्त विशेपोको स र्वे वस्तुओंको सामान्य विशेपात्मक होनेसे हमभी मानते है

६ अरु समवाय जो है, सो अयुत सिद्ध आधार आधेय भूतोंका जो इह प्रत्ययका हेतु है, सो समवाय कहते है, अरु समवाय जो है, सो नित्य अरु एक है, ऐसे वैशेपिक मानते है तिस समवायके नित्य होनेसें समवायीभी नित्य होने चाहियें जे कर समवायी अनित्य है, तो समवा यभी अनित्य होना चाहिये ? क्योंकि समवायका आधार समवायी है,इस

वास्ते. तथा समवायके एक होनेसें समवायीजी एकही होने चाहियें, अथवा समवायीयोंके अनेक होनेसें समवायजी अनेक रूप होना चाहियें, तथा यह जो समवाय पदार्थोंका समवायी संबंध करता है, सो समवाय उन पदार्थोंके साथ अपणा संबंध अपर समवायके योगसें करता है? किंवा आपही अपणा संबंध करता है? जे कर कहोगे कि अपर समवायसें करता है, तब तो अनवस्थादूषण है. अरु समवायजी दूसरा है नहीं, जे कर कहोगे कि आपही आपणा संबंध करता है, तब तो गुण क्रियादिकजी ड्व्यसें स्वरूप करकें तथा अविष्वंगजाव संबंध करकें संबंधी है, तब तो समवायजी कल्पना व्यर्थही है.

ऐसें वैशेषिक मतमेंजी सम्यक् पदर्थोंका कथन आप्तोक्त नहीं, तथा नैयायिक वैशेषिक मतमें जो मोक्ष मानी है, सोजी प्रेक्षावानोंकों मानने योग्य नहीं है, क्योंकि जब आत्मा ज्ञानसें रहित होवे, एतावता जडरूप हो जावे, तब आत्माको मोक्ष मानते है, ऐसी मोक्षको कौन बुद्धिमान् उपादेय मानता है? क्योंकि ऐसा कौन बुद्धिमान् है, जो सर्व सुख और ज्ञानसें रहित पाषाण तुल्य आपणी आत्माकों करना चाहे? इसी वास्तेकिसीने वैशेषिकोंका उपहास्यजी करा है, सो कहते हैं॥ श्लोक॥ वरं वृंदावने रम्ये, क्रोष्टृत्वमनिवांछति॥ नतु वैशेषिकीं मुक्तिं, गौतमोगंतुमिच्छति ॥ १॥ अस्यार्थः—स्वर्गके जो सुख हैं, सो सोपाधिक, सावधिक, परिमितआनंद रूप हैं, अरु मोक्ष जो है, सो नैरुपाधिक, नैरवधिक, अपरमितानंद ज्ञानसुख स्वरूप, विचक्षण पुरुष कहते हैं, जब मोक्ष होना पाषाणके तुल्य है, तब तो ऐसी मोक्षसें कुछ प्रयोजन नहीं. इससेंतो संसारही अच्छा है कि जिस संसारमें डुःख करकें कलुषित सुख जोगनमें आता है, जरा विचार तो करो, कि थोडे सुखका जोगनां अच्छा है? वा सर्व सुखोंका उच्छेद अच्छा है? इत्यादि विशेष चर्चा स्याद्वादमंजरीकी टीकासें जाननी. इस वास्ते नैयायिक मत, अरु वैशेषिक मत उपादेय नहीं है॥इति॥

अथ सांख्य मतका खंमन लिखते है. सांख्य मतका स्वरूप तो उपरलिखा है,सो जान लेनां,सांख्यका मत ठीक नहीं हैं,क्योंकि परस्पर विरोधी सत्त्व, रजो, तम, गुणोंका प्रकृति रूपोंका गुणीके बिना एकत्र अवस्थान अर्थात् रहणां युक्त नहीं है, जैसें कृष्ण श्वेतादि गुण गुणी विना एकत्र नहीं रह

सके हैं, तथा महदादि विकारके होनेमें प्रकृतिमें विषमता उत्पन्न करनेमे कोइभी कारण नही है,क्योंकि प्रकृतिके विना और वस्तु, सांख्य कोइ मानते नहीं है,अरु आत्माको अकर्त्ता अकिंचित् कर मानते है,जे कर स्वभावसे वैषम्य मानेंगे, तब निर्हेतुकताकि आपत्ति होवेगी, क्योंकि जो कार्य कभी होवे,अरु कभी न होवे, वो हेतुके विना नही हो सक्ता है,अरु जो खरशृंगादि नित्य असत् है,तथा आकाशादिनित्य सत् है, सो हेतुसे नही होते है॥ उक्तंच॥ श्लोक॥ नित्यसत्त्वमसत्त्व वा, हेतोरन्यानपेक्षणात् ॥ अपेक्षातोहि भावानां, कदाचित्त्वसंभव ॥ १ ॥

तथा स्वभाव प्रकृतिसे भिन्न है? वा अभिन्न है? भिन्नतो नहीं. क्योंकि प्रकृति विना सांख्योने अपर कोइ वस्तु मानी नहीं है, जे कर कहोगे कि अभिन्न है, तब तो प्रकृति है "नतुस्वभाव" (स्वभाव नही है)

तथा एक औरभी बात है कि महत् अरु अहंकार ज्ञानमे भिन्न हम नही देखते है, सोइ दिखावते है, कि बुद्धि जो है सो अध्यवसायमात्र है, अरु अहंकार जो है सो अह सुखी, अह दुःखी, ऐसे स्वरूप वाला है, इन दोनोको चिद्रूप होनेसे आत्माका गुणत्व पणा है, परंतु जडरूप प्रकृतिका विकार नहीं

तथा यह जो तन्मात्रोंसें भूतोंकी उत्पत्ति मानते है, कि जैसे १ गंध तन्मात्रात् पृथिवी, २ रसतन्मात्रासे जल, ३ रूप तन्मात्रासे अग्नि, स्पर्श तन्मात्रासे वायु, ५ शब्दतन्मात्रासें आकाश, यहभी मानना युक्ति नहीं है, जे कर बाह्यभूतकी अपेक्षा करके कहते हो सो अयुक्त है. इन बाह्य पाच भूतोंके सदाही होनेसे उत्पत्ति नही "न कदाचिदनीदृगं जगत् इति वचनात्" अर्थात् यह जगत् प्रवाह करकें अनादि कालसे ऐसाही चला आता है.

जे कर कहोगेकि प्रति शरीरकी अपेक्षा हम कहते हैं,तिनमेंसू त्वचा,हाड, कठीन लक्षणा पृथिवी है श्लेष्म,रुधिर द्रव लक्षण आप (जल)है पंक्ति लक्षण अग्नि है, पानापान लक्षण वायु है, शुषिर अर्थात् पोलाड लक्षण आकाश है, यहभी कहना ठीक नही है, क्योंकि तिनमेभी कितने शरीरोंकी उत्पत्ति पिताका शुक्र, अरु माताके रुधिरसे होती है, तहा तन्मात्राओंकी गंधभी नही है, अरु अदृष्ट वस्तुको कारण कल्पनेमें अति प्रसंग

दूषण है, अरु अंमज, उद्भिज्ज, अंकुरादिकोंकीभी उत्पत्ति अपरही वस्तुसें होती दीख पडती है, इस वास्ते महदहंकारादिकोंकी उत्पत्ति जो सांख्यों नें अपनी प्रक्रिया करकें मानी है, सो युक्ति रहित मानी है, केवल अपने मतके रागसेंही यह माननां है. अरु आत्माकों अकर्त्ता माने हैं, तब तो कृतनाश अकृताभ्यागम दूषण है, अरु बंध मोक्षका अभाव है. अरु निर्गुण होनेसें आत्मा ज्ञानशून्य हो जावेगी, इस वास्ते यह सर्व पूर्वोक्त बालप्रलापमात्र है.

अथ सांख्यमतकी मोक्ष विचारियें हैं, " प्रकृतिपुरुषांतरपरिज्ञानात् मुक्तिः" अर्थात् प्रकृति पुरुषसें अन्य है, असा जब ज्ञान होता है, तब मुक्ति होती है. सोइ दिखाते हैं ॥ श्लोक ॥ शुद्धचैतन्यरूपोयं, पुरुषः पुरुषार्थतः ॥ प्रकृत्यंतरमज्ञात्वा, मोहात्संसारमाश्रितः ॥ १ ॥ भावार्थः- पुरुष जो है, सो परमार्थसें शुद्ध चैतन्यरूप है, अपणें आपकों प्रकृतिसें एकमेक समझता है, इस मोहसें संसारकों आश्रित हो रहा है, तिस हेतुसें प्रकृतिसुखादि स्वभावसें जहां लगि विवेक करकें न ग्रहण करेगा, तहां लगि मुक्ति नहीं. अरु केवल ज्ञानके उदय होनेसें मुक्ति है, यहभी असत् है, क्योंकि आत्मा एकांत नित्य है, अरु सुखादिक जो हैं, सो उत्पाद व्यय स्वभाव वाले हैं, तब तो विरुद्ध धर्म संसर्गसें आत्मासेंती प्रकृतिका भेद प्रतीतही है, तो फेर मुक्ति क्यों नहीं ?

अथ यही तो संसारी विचार नहीं करता है, इस वास्ते मुक्ति नहीं. जे कर ऐसें कहोगे तब तो तुमारे कहनेसें कदापि मुक्ति नहीं होवेगी, असा विवेकाध्यवसाय संसारीकों कदापि नहीं हो सक्ता है,सोइ दिखाते हैं.

जहां लग संसारी है, तहां लग विवेक परिभावना करकें संसारी पणा दूर नहीं होता है, इस वास्ते विवेकाध्यवसायके अभावसें कदापि संसारसें छूटनां नहीं है.

एक औरभी बात है, कि इस सृष्टिके पहिला केवल आत्मा है, असे तुम मानते हो, तब फेर आत्माकों संसार कहांसें लिपट गया ? जे कर कहोगेकि निर्मल आत्माको संसार लिपट जाता है, तब तो मोक्ष हूआ पीछे फेरभी संसार लिपट जायगा, तब तो मोक्षभी क्या हूइ, एक विडंबना खडी हो गई.

पूर्वपक्ष—सृष्टिसें पहिला आत्माकों दिदृक्षा भइ, तब तिस दिदृक्षाके व शमें प्रधानके साथ आपणा एकरूप देखने लगा, तब ससारी हो गया, अरु जब प्रकृतिका दुष्टपणा विचारमे आया, तब प्रकृतिसे वैराग्य हुआ, फेर प्रकृतिविषे दिदृक्षा नही. तब ससारभी नही

उत्तरपक्ष—यहभी तुमारा कहना स्वकृतात विरोध होनेसे अयुक्त है,सोई दिखाते है दिदृक्षा सो देखनेकी अभिलाषाका नाम है, सो अभिलाषा पूर्व देखे हूये पदार्थोंमे तथा स्मरणसे होता है,अरु प्रकृति तो पूर्व कदापि देखी नही है, तब कैसें तिस विषे स्मरण अभिलाषा होवे? जे कर कहोगेकि अनादि वासनाके वशसे प्रकृतिमेही स्मरण अभिलाषा है, सोभी अ सत् है, क्योकि वासनाभी प्रकृतिका विकार होने करके प्रकृतिके पहिला नही थी, जे कर कहोगेकि वासना जो है, सो आत्माका स्वभावरूप है, तब तो आत्मस्वरूपवत् वासनाका कदापि अभाव नहीं होवेगा, अरु मोक्षभी कदापि नहिं होवेगी,तब तो साख्यका मतभी बालकोका खेल जैसा हो गया ॥ इति साख्यमत खमन समाप्तम् ॥

अथ मीमासक मतका खमन लिख्यते ॥ इस मतका स्वरूप उपर लिख आये है, अरु वेदातियोके ब्रह्म (अद्वैत)का खंमन ईश्वर वादमे अछी तरेसे कर चुके है इस वास्ते यहा नही लिखा. इति मीमासक मत ॥

अथ जैमिनीयमतका खमन लिखते है जैमिनीया ऐसें कहते है, कि जो "हिसागाध्यात्' अर्थात् इंद्रियोके रस वास्ते अथवा कुव्यसन करके करिये सोइ हिसा अधर्मका हेतु है, प्रमादके उदय करनेसे शौनिक लु ब्धकादिकोकी तरे अरु वेदोमें जो हिसा कही है, सो हिसा नही है, किंतु धर्मका हेतु है देवता, अतिथि, पितरोके प्रीतिसपादक हो नेसें तथाविध पूजा उपचारवत् अरु यह प्रीति संपादकत्व असिद्ध नहीं है, क्योके कारीरी प्रभृति यज्ञोके स्वसाध्य विषे वृष्टयादि फलोका जो अ व्यभिचारी पणा है, सो यज्ञ करनेसे जो देवता तृप्त होते है, वो वृष्टया दिकोके हेतु है, ऐसेही "त्रिपुरार्णववर्णित छगल" अर्थात् बकरेके मा सका होम करनेसे परराष्ट्रका जो वश होना है, सोभी उस मासकी आहु तीयोसें तृप्त हूये होय देवताओकाही अनुभाव है, अरु अतिथि प्रीतिभी "मधुसपर्कसस्कारादिसमासाद्या" प्रत्यक्षही दीख पडता है, अरु पित

रोंके तांइ जो श्राद्ध करते हैं, उस करकें पितर तृप्त हुवे होयें, स्वसंतानकी वृद्धि प्रत्यक्षही करते दीखते हैं, अरु इस बातमें आगमभी प्रमाण देता है, आगममें देव प्रीत्यर्थ अश्वमेध, नरमेध, गोमेधादिक करणे कहे हैं,अरु अतिथि विषय "महोक्षं वा महाजं वा,श्रोत्रियाय प्रकल्पयेदिति" ऐसा कहा है, अरु पितरोंकी प्रीति वास्ते यह श्लोक है ॥ श्लोक ॥ द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन,त्रीन् मासान् हारिणेन तु ॥ औरभ्रेणाथ चतुरः, शाकुनेनेह पंच तु ॥ १ ॥ षण्मास छागमांसेन, पार्षतेनेह सप्त वै ॥ अष्टावेणस्य मांसेन, रौरवेण नवैव तु ॥ २ ॥ दशमासांस्तु तृप्यंति, वराहमहिषामिषैः ॥ शशकूर्मयोर्म्मांसेन, मासानेकादशैव तु ॥ ३ ॥ संवत्सरं तु गव्येन, पयसा पायसेन तु ॥ वाध्रीणशस्य मांसेन, तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ ॥ ४ ॥ यह श्लोक स्मृतिके हैं, इनका अर्थ कहते हैं.

जे कर पितरोंकों मत्स्यका मांस देवे,तो पितर दो मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर हरिणका मांस पितरोंकों देवे, तो पितर तीन मास लग तृप्त रहते हैं. जे कर मीढेका मांस पितरोंको देवे, तब चार मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर जंगली कूकडका मांस पितरोंकों देवे, तो पितर पांच मास तृप्त रहते हैं ॥ १ ॥ जे कर बकरेका मांस देवे, तो पितर छमास लग तृप्त रहते हैं, जे कर पृषतबिंदु करकें युक्त जो हरिण होवे, उसकों पार्षत कहते हैं, तिसका मांस जो पितरोंकों देवे, तो पितर सात मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर एण मृगका मांस देवे, तो आठ मास लग पितर, तृप्त रहते हैं, जे कर बडे काले मृगका मांस देवे, तो नव मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर सूवर अरु महिषका मांस देवे, तो दश मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर शश अरु कछु,इन दोनोंके मांस देवे, तो अग्यारह मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर गोका दूध अथवा खीर देवे, तो बारह मास लग पितर तृप्त रहते हैं, तथा वाध्रीण कहते हैं जो अति बूढा बकरा होवे तिसका मांस देवे, तो बार वर्ष लग पितर तृप्त रहते हैं, यह मीमांसक मानते हैं.

अब इसका खंडन लिखते हैं. कि हे मीमांसक! वेदोमें जो हिंसा कही है, सो धर्मका हेतु कदापि नहीं हो सक्ती है, इस तुमारे कहनेमें प्रगट स्ववचनविरोध है, तथाहि. जे कर धर्मका हेतु है, तब तो हिंसा क्यों कर

है? अरु जे कर हिंसा है,तो धर्मका हेतु क्यो कर हो सक्ती है?॥श्लोक॥ श्रूयता धर्मसर्वस्व, श्रुत्वा चैवावधार्यता ॥ आत्मन प्रतिकूलानि, परेषा न समाचरेत् ॥१॥ इत्यादिक जे धर्म कहे है, तो हिसा क्यो कर है? क्यो के मातानी है, अरु वध्यानी है, ऐसा कन्नी नही होता है

पूर्वपक्ष—हिंसा कारण है, अरु धर्म तिसका कार्य है

उत्तरपक्ष—यहनी तुमारा कहना असत् है, क्योंकि जो जिसके साथ अन्वय व्यतिरेक वाला होता है, सो तिसका कार्य होता है, जैसे मृत्पिंमादिकोंका घटादिक कार्य है,तो कुछ धर्म हिसाही करनेसे नही होता है, क्योकि तप, दान, पढनादिकनी धर्मके कारण है

पूर्वपक्ष—हम सामान्य हिसाकों धर्म नहीं कहते है, किंतु विशिष्ट हिसाको धर्म कहते है, सो विशिष्ट हिंसा वोही है, जो वेदोमे करनी कही है

उत्तरपक्ष—जे कर वेदकी हिंसा धर्मका हेतु है, तो क्या जो जीव यज्ञादिकोंमे मारे जाते है, वो मरते नही है? इस वास्ते धर्म है? अथवा क्या उनके मरणेमे उनको आर्त्तध्यानका अनाव है, इस वास्ते धर्म है? अथवा जो यज्ञादिकोमे मारे जाते है, वो मरके स्वर्गको जाते है? इस वास्ते धर्म है? इसमे आद्य पक्ष तो ठीक नही, क्योकि प्राण त्यागते हूये तो वो जीव प्रत्यक्ष दीख पडते है तथा दूसरा पक्षनी असत् है, क्योंकि दूसरेके मनका ध्यान डर्लक्ष है, इस वास्ते आर्त्तध्यानका अनाव कहना, यहनी परमार्थ शून्य वचनमात्र है, आर्त्तध्यानका अनाव तो क्या होना था? बल्कि हा डुखी है? है कोइ करुणारस नरा जो हमकू छुडावे? ऐसा अपनी नापामे कहते हूये अरु अपनी नाषा करके विरस आरराट करता हूआ वदन दैन्य,नयन तरलादिक लिंग देखनेसे स्पष्ट उन विचारोके आर्त्तध्यान उपलब्ध होता है

पूर्वपक्ष—जैसें लोहेका गोला पानीमें डूबने वालानी है, तोनी तिसके सूक्ष्म पत्र कर दीये जाय तो जलके उपर तरेंगे, परंतु डूबेंगे नही, तथा विष जो है सो मारणे वालानी है, तोनी मंत्रो करके संस्कार करा हूआ गुण करता है, तथा जैसे अग्नि दाहक स्वनाव वालानी है, तोनी सत्य शीलादिकके प्रनावसे दाह नही करता है ऐसेही वेद मत्रादिको करके संस्कार करी हुइ जो हिसा सो दोषका कारण नही, अरु वैदिकी हि

सा निंदनीय कभी नहीं है, क्योंकि तिस हिंसाके करने वाले याज्ञिक ब्राह्मणोंको जगत्में पूजनिक देखते हैं.

उत्तरपक्षः—यहभी तुमारा कहनां असत् है, क्योंकि जितने दृष्टांत तुमने कहे हैं, सो सर्व वैषम्य है इस वास्ते सिद्धि कुछभी नहीं कर सक्के हैं, लोहेका जो पिंम, पत्रादि रूप होनेसें जलके उपरि तरता है, सो परिणामांतर होनेसें तरता है, परंतु वेद मंत्रोसें संस्कार करकें जव पशुकों मारते हैं, तब उसमें क्या परिणामांतर होता है? क्या उस परिणामांतर सें उन पशुओंकों मारते दुःख नहीं होता है? दुःख करकें तो वे प्रगट आरराट शब्द करते हैं, तो फेर लोह पत्रका दृष्टांत कैसें समीचीन हो सक्ता है?

पूर्वपक्षः—जो पशु यज्ञमें मारे जाते हैं, वो सर्व देवता हो जाते हैं, यह यज्ञ करनेमें परोपकार है.

उत्तरपक्षः—इस बातमें कौनसा प्रमाण है? तिसमें प्रत्यक्ष प्रमाण तो नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष तो इंद्रिय संबंध वर्त्तमान वस्तुकाही ग्राहक है, "संबंधोवर्त्तमानं च, गृह्यते चक्षुरादिनेति वचनात्" अरु अनुमानभी नहीं है, क्योंकि तत्प्रतिबद्धलिंग कोइभी नहीं दीखता है, अरु आगम प्रमाणभी नहीं. क्योंकि आगम तो झगडेका घर है, इस वास्ते सिद्ध हूआ नहीं है. तथा अर्थापत्ति अरु अनुमान यह दोनो अनुमानकेही अंतर्गत है, तो अनुमानके खंमनेसें यहभी दोनुं खंमन हो गये.

पूर्वपक्षः—जैसें तुम जिनमंदिर बनाते हूये पृथिवीकायादि जीवोंकी हिंसाको परिणाम विशेष करकें पुण्यके तांइ कल्पते हो, ऐसें हमभी यज्ञमें जो हिंसा करते हैं, सो पुण्यके वास्ते है, क्योंकि वेदोक्त विधि विधान रूप परिणाम विशेष इहांभी निःसंदेह होनेसें पुण्य क्यों कर नहीं होता?

उत्तरपक्षः—परिणाम विशेषभी वेही पुण्यका कारण होते हैं, जहां और कोइ उपाय न होवे, अरु यत्नसें प्रवृत्त होवे, ऐसी प्रवृत्ति जिनमंदिरमें हो सक्ती है, क्योंकि जिनमंदिरके बिना श्रीभगवान्की प्रतिमा रहती नहीं. जहां प्रतिमा रहेगी उसीका नाम जिनमंदिर है, जे कर कहोगेकि जिनप्रतिमा पूजनेसें क्या लाभ है? तो हम तुमकूं पूछते हैं कि जो पुस्तकमें ककारादि अक्षर लिखते हो, इनके लिखनेसें क्या लाभ है? जे कर कहोगे कि ककारादि अक्षरोंकी स्थापना देखनेसें वस्तुका ज्ञान होता है, तो तै

सेही जिनप्रतिमा देखनेसेंभी श्रीजिनेश्वर देवके स्वरूपका ज्ञान होता है,जे कर कहोगेकि प्रतिमा तो कारीगरने पाषाणकी बनाइ है, इससे क्या ज्ञान होता है? तो हम पूछते है कि वेद, कुरान, इञ्जील, प्रमुख पुस्तक लिखारीयोंने स्याही, और कागजोंके बनाये है, इनसे क्या ज्ञान होता है? जे कर कहोगेकि ज्ञान तो हमारी समझसे होता है, अक्षरोंकी स्थापना तो हमारे ज्ञानका निमित्त है, तैसेही जिनेश्वरदेवका ज्ञान तो हमारी समझ से होता है परतु उस स्वरूपका निमित्त प्रतिमा है. क्योंकि जो बुद्धिमान् पुरुष, किसी वस्तुका नकशा नहीं देखेगा, अर्थात् चित्र नही देखेगा, वो कभी उस वस्तुका स्वरूप नही जान सकेगा? इस वास्ते जो बुद्धिमान् है, वो अवश्य स्थापना मानता है

जे कर कहोगेकि परमेश्वर तो निराकार, ज्योति स्वरूप,सर्व व्यापक है, तिसकी मूर्त्ति क्योंकर बन सकी है?

उत्तरः—यह तुमारा कहना बडे उपहास्यका कारण है, क्योकि जब तुमने परमेश्वरका रूप आकार (मूर्त्ति) नहीं मानी, तब तो वेद, वा इञ्जील, वा कुरान, इनको परमेश्वरका बचन मानना क्यो कर सत्य हो सकेगा? विना मुखके साक्षर शब्द कदापि नही हो सक्ता है

जे कर कहोगेकि ईश्वर, विनाही मुखके शब्द कर सक्ता है, तो इस बात कहेनेमें कोइ प्रमाण नही. इस वास्ते जो साक्षर शब्द है, सो विना मुखके नही, अरु शरीरके विना, मुख नहीं हो सक्ता है, इस वास्ते जो कोइ वादी किसी पुस्तकको ईश्वरका वचन मानेगा, वो जरुर ईश्वरका मुख और शरीरभी मानेगा, अरु जब शरीर माना, तब भगवान्की प्रतिमाभी जरुर माननी पडेगी, जब प्रतिमा सिद्ध हो गइ, तब मंदिरभी जरुर बनाना पडेगा, इस वास्ते जिनमंदिरका बनाना जो है, सो आवश्यक है, अरु जो बनानें वाला है, सो यत्न पूर्वक बनाता है, अरु पृथिवी कायादिकके जो जीव है, सो अस्पष्ट चैतन्य है उनकी हिंसामे अल्प पाप अरु बहुत निर्जरा है, अरु तुमारे पक्षमे तो श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास प्रमुखोमें यम नियमादिको करकेभी स्वर्गको होना कहा है, तो फेर कृपण, दीन, अनाथ, ऐसे पंचेंद्रिय जीवोका वध काहेको यज्ञमे करते हो? इस्से यही सिद्ध होता है कि जो तुम निरपराध, कृपण, दीन, अनाथ,

जीवोंको यज्ञादिकोंमें मारते हो, तिस्सें संपूर्ण पुण्यका नाश करकें अन स्य दुर्गतिमें जाओगे, शुजपरिणामका होनां तुमकों बहुत दुर्लज है.

जे कर कहोगेकि जिनमंदिर बनानेमेंजी हिंसा होती है, इस वास्ते जिनमंदिर बनानेमेंजी पुण्य नहीं है.

उत्तरः—यह तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि जिनमंदिर, जिनप्रतिमा के देखनेंसें उनके दर्शनसें जगवान्के गुणानुराग करकें कितनेक जव्यजी वोंकों बोधिलाज होता है, अरु पूजातिशय देखनेंसें मनः प्रसाद होता है, तिस मनःप्रसादसें समाधि होती है, पीछें क्रम करकें निःश्रेयस अर्था त् मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ तथा च जगवान् पंचलिंगीकारः ॥ पुढवाइया ण जइविहु, होइ विणासो जिणालयाहिं तो ॥ तविसयावि सुदिट्ठिस्स, नि यमओ अत्थि अणुकंपा ॥ १ ॥ एआहिं तो बुद्धा, विरिया रक्कंति जेण पु ढवाइ ॥ इत्तो निव्वाण गया, अबाहया आजव मणंतं ॥ २ ॥ रोगसिरावे हो इव, सुविज्ज किरियाव सुप्पउत्ताउ ॥ परिणाम सुंदरच्चिय, चिट्ठासे वाह जोगेवित्ति ॥ ३ ॥ इनका जावार्थ लिखते हैं. यद्यपि जिनमंदिर बनानेमें पृथिवीआदिक जीवोंकी हिंसा होती है, तोजी सम्यक् दृष्टिकी तिन जी वों उपर निश्चयही अनुकंपा है ॥ १ ॥ इनकी हिंसासें निवर्त्त हो कर ज्ञानी निर्वाणकों प्राप्त होये हैं. कैसें निर्वाणकों? अव्याहत, अनंत काल लगि ॥ २ ॥ जैसें रोगीकी नाडीकों बडे यत्नसें वैद्य वींधता है. उस वैद्यके असे परिणाम अच्छे हैं कि कदाचित वो रोगी मरजी जावे, तोजी वैद्यकों पाप नहीं, तैसेही जिनमंदिरके बनानेमें यत्नपूर्वक प्रवर्त्तमान पुरुषोकों उ नजीवोंके उपर अनुकंपाही है, अरु वेदके कहे मुजब वंध करनेमें किंचित् मात्रजी पुण्य हम नहीं देखते हैं.

पूर्वपक्षः—ब्राह्मणोंके तांइ पुरोमाशादि प्रदान करनेसें पुण्यानुबंधी गुण होता है.

उत्तरपक्षः—यहजी तुमारा कहनां ठीक नहीं. क्योंकि पवित्र सुवर्णादि प्रदान मात्रसेंजी पुण्योपार्ज्जनेका संजव होता है, अरु जो कृपण, दीन, अनाथ, पशु गणकों मारणां, अरु तिनके मांसका दान करनां, यह केवल तुमारी निर्दयता अरु मांस लोलुपताहीका चिन्ह है.

पूर्वपक्ष- हम नि केवल प्रदान मात्रही पशुवध क्रियाका फल नही करते है, किंतु नूत्यादिक अर्थात् लक्ष्मी आदिनी होती है, यदाह श्रुति "श्वेतवायव्यामजमालानेत् नूतिकामऽस्यादि" नावार्थ -श्वेतवर्णका जिसका वायु देवता स्वामी है ऐसे बकरेको आलानेत् हिंसेत् अर्थात् मारे कौन मारे ? लक्ष्मीका कामी मारे

उत्तरपक्ष -यहनी तुमारा कहना व्यनिचार पिशाच करी ग्रस्त होनेसे अप्रामाणिक है,क्योकि नूति जो है,सो अन्य उपाय करकेनी साध्यमान है

पूर्वपक्ष - तहा यज्ञमे जो गगादिक मारे जाते है वे मरके देवगतिको प्राप्त होते है, यह यज्ञ करनेमे उन जीवो उपरि उपकार है

उत्तरपक्ष -यहनी तुमारा कहना प्रमाणके अन्नावसे वचन मात्र है, क्योकि यज्ञमे मारे गये पशुयोमेसू सगतिके लान होनेसे मुदित मन हो करके कोइनी पशु पीछा आ करके अपणे स्वर्गके सुखोका निरूपण नही करता है

पूर्वपक्ष -इस कहनेमे आगम प्रमाण है ॥ यथा ॥ औषध्य. पशवोवृक्षा,स्तिर्यंच पक्षिणस्तथा ॥ यज्ञार्थ निधन प्राप्ता ,प्राप्नुवत्युच्छ्रित पुनरित्यादि ॥ नावार्थ -औषधियो, अजादिक पशु, किंजल्कादि पक्षी, जो ये यज्ञमे मारे जाते है, वे फेर उच्छ्रित अर्थात् उन्नतिको प्राप्त होते है

उत्तरपक्ष -यहनी तुमारा कहना ठीक नही तुमारा आगम पौरुषेय अपौरुषेय विकल्पो करके हम आगे खमन करेगे अरु श्रोत्रविधि करके पशुओंके मारनेसे जे कर स्वर्गप्राप्ति होती होवे, तब तो कसाइ (खटीक) प्रमुख नी स्वर्गवासी हो जावेगे ॥ तथा च पठति पारमर्षा ॥ यूप छित्वा पशून् हत्वा, कृत्वा रुधिरकर्दम ॥ यद्येव गम्यते स्वर्गे, नरके केन गम्यते ॥ १ ॥ एक औरनी बात है, जे कर अपरिचित, अस्पष्ट चैतन्य, अनुपकारी पशुओके मारनेसे त्रिदिव पदवी प्राप्त होवे, तदा परिचित, स्पष्ट चैतन्य, परमोपकारी, माता पितादिकोके मारनेंसे याज्ञिकोको अधिकतर पदकी प्राप्ति होवेगी? यहनी करना चाहिये

पूर्वपक्ष -" अचिंत्योहि मणिमंत्रौषधीना प्रनाव इति वचना त् " इस वास्ते वैदिक मन्त्रोकी अचिंत्य शक्ति होनेसे उन मन्त्रो करके सस्कार करा हूआ पशुके मारनेसे अवश्य स्वर्ग प्राप्ति होती है

उत्तरपक्षः–यहजी कहनां व्यभिचारी है. क्योंकि इह लोकमें विवाह, गर्भाधान, जातकर्मादिकोंके विषे तिन मंत्रोंका व्यभिचार देखनेमें आता है, तो अदृष्ट स्वर्गादिकोंमेंजी तिनोके व्यभिचारका अनुमान करते हैं. क्योंकि वेदोक्त मंत्रो करिकें संस्कार करे हूये विवाहसेंजी अनंतरही स्त्री, विधवा, अल्पायुष्या, दारिद्यादि उपद्रव करकें विधुर होते हूये, देखनेमें आते हैं, अरु वेद मंत्रोंके संस्कार विनाजी कितनेक विवाह करने वाले सुखी, धनी, आदिक दीखते हैं.

पूर्वपक्षः–जिस विवाहादिकोंमें विधवादि हो जाती हैं तहां क्रियाकी वैगुण्यतासें विसंवाद होता है.

उत्तरपक्षः–इस तुमारे कहनेमें यह संशय कजी दूर नहीं होवेगा, क्या तहां क्रियाकी वैगुण्यता विसंवादका हेतु है? किंवा वेदमंत्रोकी असमर्थता विसंवादका हेतु है?

पूर्वपक्षः–जैसे तुमारे मतमें "आरोग्ग बोहिलानं समाहिवरमुत्तमं दिंतु" इत्यादिक वचनोंका कालांतरमेंही फल चाहते (वांछते) हैं, ऐसें हमारे अभिमत वेद वचनोंकाजी इस लोकमें फल नहीं कल्पना करते हैं, किंतु लोकांतरमें फल होता है. इस वास्ते विवाहादिकका उपालंजावकाश नहीं.

उत्तरपक्षः–अहो वचन वैचित्री! जैसें वर्त्तमान जन्मविषे विवाहादिकोंमें प्रयुक्त मंत्र, संस्कारों करकें आगम जन्ममें तिसका फल है, ऐसे ही द्वितीयादि जन्ममेंजी विवाहादिकोंके पुण्य हेतु माननेसें अनंत जवोंका अनुसंधान होवेगा, ऐसें तो कदापि संसारकी समाप्ति नहीं होवेगी, तब तो किसीकोंजी मोक्षप्राप्ति नहीं. इस्से यही सिद्ध हूआ जो वेदही अपर्यवसित संसार वल्लरीका मूल (कंद) है, अरु आरोग्यादि प्रार्थना जो है, सो असत्य अमृषा जाषा है, परिणाम विशुद्धिका कारण होनेसें दोषके वास्ते नहीं, क्योंकि तहां जाव आरोग्यादिककीही विवक्षा है, अरु वो जो आरोग्यपणा है, सो चातुर्गतिक संसार लक्षण जावरोग परिक्षय रूप होनेसें उत्तम फल है, तिस विषयक जो प्रार्थना है, वो कैसें विवेकवानोंको आदरणीय नहीं? ऐसेंजी मत कहनां जो परिणाम शुद्धिसें तिस फलकी प्राप्ति नहीं, क्योंकि सर्व वादीयोंके जावशुद्धिसें फल पानेमें विवाद नहीं. ऐसेंजी मत कहनां जो वेदविहित हिंसा बुरी नहीं, क्यों

कि सम्यक् दर्शन ज्ञान संपन्न अर्चिमार्गप्रतिपन्न वेदांतवादीयोंनेंभी निंदी है "तथा च तत्त्वदर्शिन पठंति ॥ श्लोक ॥ देवोपहारव्याजेन, यज्ञव्याजेन वाथवा ॥ घ्नंति जंतून् गतघृणा, घोरा ते यांति दुर्गति ॥ १ ॥ वैदांतिका अप्याहु ॥ अंधे तमसि मज्जाम, पशुभिर्ये यजामहे ॥ हिंसा नाम नवेद्धर्मो, न भूतो न भविष्यति ॥१॥ "तथा अग्निर्मामेतस्मात् हिंसाकृतादेनसोमुंचतु ठादसत्वान्मोचयतु इत्यर्थ" व्यासेनाप्युक्तं ॥ ज्ञानपालिपरिक्षिप्ते, ब्रह्मचर्यदयाम्भसि ॥ स्नात्वातिविमले तीर्थे, पापपंकापहारिणि ॥ १ ॥ ध्यानाग्नौ जीवकुंडस्थे, दममारुतदीपिते ॥ असत्कर्मसमित्क्षेपै, रग्निहोत्रं कुरुत्तम ॥२॥ कषायपशुभिर्दुष्टै, धर्मकामार्थनाशकै ॥ शममंत्रहुतैर्यज्ञ, विधेहि विहित बुधै ॥ ३ ॥ प्राणिघातात्तु यो धर्म, मीहते मूढमानस ॥ स वांछति सुधावृष्टिं, कृष्णाहिमुखकोटरात् ॥ ४ ॥ इत्यादि

अरु जो यज्ञ करने वालोको पूजनिक पणा तुम कहते हो, सोभी असार है, क्योकि अबुद्ध जनही उनको पूजते है, नतु विविक्त बुद्धिमान् अरु मूर्खोंका जो पूजना है, सो प्रामाणिक नहि, क्योकि मूर्ख तो कुत्ते औ गर्द्धकोभी पूजते है

अरु जो तुमने कहा था कि देवता, अतिथि, पितृ प्रीति संपादक होने से वेद विहिता हिंसा, दोषके ताइ नहीं, यहभी जूठ है, क्योंकि देवताओके संकल्प मात्रसेही अभिमत आहारके रसका स्वाद, प्राप्त हो जाता है, अरु देवताओंका शरीर वैक्रियरूप है, सो तुमारी जुगुप्सित पशुमांसादि आहुतिके लेनेको उनकी इच्छाही नहीं हो सक्ती है, क्योंकि औदारिक शरीर वालेही तिन मांसादिकोके ग्राहक है, जे कर देवताओंकोभी कवल आहारी मानोगे, तब तो देवताओंका शरीर तुमने मंत्रमय माना है, तिस के साथ विरोध होवेगा, अरु अभ्युपगमकी बाधा है, देवताओंका शरीर मंत्रमय तुमारे मतमे असिद्ध नहीं है, "चतुर्थ्यंत पदमेव देवता इति जैमिनीय वचनप्रामाण्यात् ॥ तथा च ॥ मृगेंद्र शब्देतरत्वे युगपद्भिन्नदेशेषु यष्टृषु नसा प्रयाति सांनिध्य मूर्त्तत्वादस्मादिवदिति"

तथा जिस वस्तुकी आहुति देवताओंको देते है, वोतो भस्मीभावमात्र हो जाती है, तो फेर देवता क्या उस भस्म अर्थात् राखको खाते है? इस वास्ते तुमारा कहना प्रलापमात्र है.

तथा एक औरभी बात है, यो यह त्रेताग्नि है, सो तेतीस कोटि देवतांका मुख है, "अग्निमुखा वै देवा इति श्रुतेः" तब तो उत्तम, मध्यम, अधम, सर्व देवता एकही मुख करकें खाने वाले सिद्ध हूये. अरु सर्व आपसमें जूठ खाने वाले बन गये, तब तो तुरकोंसेंभी अधिक हो गये. क्यों कि तुरकभी एक पात्रमें एकठे खाते हैं, परंतु एक मुख करकें सर्व नहीं खाते हैं.

एक औरभी दूषण है, एक शरीरमें मुख बहुत हैं, यह बात तो हम आगेंभी सुनते थे, परंतु अनेक शरीरोंका एक मुख, यह तो बडा आश्चर्य है. जब सर्व देवताओंका एक मुख माना, तब तो किसी पुरुषने जब एक देवताकी पूजादि करकें आराध्या, अरु अन्य देवताओंकी निंदादि करकें विराध्या, तब तो एक मुख करकें युगपत् अनुग्रह, निग्रह, वाक्यके उच्चारणमें संकरका प्रसंग होवेगा.

तथा एक औरभी बात है कि, मुख जो है सो देहका नवमा भाग है, तो जब उन देवताओंका मुखही दाहात्मक है, तब एक एक देवताका शरीर दाहात्मक होनेसें तीनो भवनही भस्मीभूत हो जाने चाहियें? इत्यलमतिचर्चया ॥

अरु जो कारीरी यज्ञादिकोंमें वृष्ट्यादि फलका अव्यभिचार है, तिस फलमें आहुति करकें प्रीणीत देवताका अनुग्रह जो तुम कहते हो सोभी अनेकांतिक है. किसी जगे व्यभिचारभी देखनेमें आता है, अरु जहां व्यभिचार नहीं, तहांभी आहुतिके भोजन करनेसें अनुग्रह नहीं. किंतु वो देवता विशेष अतिशय ज्ञानी हैं, स्वउद्देश्य पूजोपचारकों देख करकें, अपणे स्थानमेंही स्थित हूये थके पूजा करनें वाले प्रति प्रसन्न हो कर उसका कार्य, अपणी इछासें कर देता है, अनुपयोग करकें अनजानता अथवा जानता थकाभी पूजकके अभाग्य करकें कार्य नहींभी करता? क्योंकि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादि सहकारियों करकें कार्यका होनां दीख पडता है, अरु वो जो पूजा उपचार है, सो निःकेवल पशुओंहीके मारनेसें नहीं हो सक्ती, दूसरी तरेसेंभी हो सक्ती है, तो फेर पाप एक फल रूप शौनिकवृत्ति करनेसें क्या है?

अरु जो छगल अर्थात् बकरेके मांस होमनेसें परराष्ट्र वश करने वाली सिद्धयादेवीके परितोष होनेका जो अनुमान है, तो इसमें क्या आश्चर्य है?

क्योंकि कितनेक क्षुद्र देवताकों तैसेही प्रीति है, तहांनी वें दुष्ट देव सो अपनी पूजा देखके राजी होते है, परतु मलिन (बीनत्स) मांसके खानेसे नही राजी होते जे कर होम करी हूइ वस्तुकों खाते है, तब तो निंबपत्र, कडुवा तेल, आरनाल, धूमाशादिनी हूयमान इव्यनी तिनका नोजन हो जावेगा, वाह क्याही तुमारे देवता सुंदर नोजन करते है!

अरु अतिथिकी जो प्रीति है, सो सत्कार संपन्न पक्वान्नादिक करकेनी हो सक्ती है, तो फेर तिनके अर्थे महोक्ष महाजादिकोंका कल्पना सो नि केवल तुमारी निर्विवेकताकों कहता है

अरु श्राद्धादिकोंके करनेसे पितरोकी जो प्रीति है, सोनी अनेकांतिक है, क्योकी कितनेक श्राद्ध नहीनी करते है, तोनी तिनकी संतानवृद्धि देखते है, गर्त्तशूकरादिके जैसे वृद्धि है तिस वास्ते श्राद्धादिकोंका जो करणा है, सो मुग्ध जनोको विप्रतारणमात्रही फल है जो पितर लोकांतरमे प्राप्त हूये है, सो अपणे सुकृत दुःकृत कर्मोके अनुसार सुर नारकादि गतियोमें सुख दुःख नोग रहे है, तो फेर पुत्रादिकोके दीये हूये पिंडोको क्योकर नोगनेकी इछा कर सक्ते है? "तथा च युष्मद्यूथिन पठंति ॥ श्लोक ॥ मृतानामपि जंतूनां, श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणं ॥ तं निर्वाणप्रदीपस्य, स्नेहः संवर्द्धयेच्छिखामिति ॥

तथा श्राद्ध करनेसे पुण्य क्यो कर उस पितरोके पास चला जाता है? क्योंकि वो पुण्य तो औरने करा है, अरु पुण्य जो है, सो आप जडरूप है, औ पगोंसे रहित है जे कर कहोगेकि उद्देशतो पितरोहीका है, परंतु पुण्य, श्राद्ध करनेवाले पुत्रादिकोकों होता है, यहनी कहना ठीक नहीं पुत्रादिकोको पुण्य नहीं होता है, पुत्रादिकोंके मनमे यह वासना नहीं जो हम पुण्य करते है, इसका फल हमकों मिलेगा, तो बिना पुण्यकी नावनासे पुण्य फल नही होता है, इस हेतुसे नतो पितरोको, अरु न पुत्रादिकोको श्राद्ध करनेका फल है, किंतु बिचमेही त्रिशंकुके दृष्टांत करिके विलीन हो गया

अरु पापानुबंधी जो पुण्य है, वो तत्त्वसे पाप रूपही है, जे कर कहोगे कि ब्राह्मण जो कुछ खाते है, वो उनको मिलता है, तो इस कहनेकी तुमकोही सत्यता प्रतीत होती होवेगी, ब्राह्मणोहीका मोटा उदर दिखला

६ देता है, परंतु उनके पेटमें प्रवेश करकें पितर खाते हूये कदापि नहीं दिखते हैं, नोजनावसरमें ब्राह्मणोंके उदरमें प्रवेश करते हूये पितरोंका कोइनी लिंग हम नहीं देखते हैं,केवल ब्राह्मणोंहीकों तृप्त होते देखते हैं.

अरु जो तुमने कहाथाकि हमारे पास आगम प्रमाण है, सो तुमारा आगम पौरुपेय है? वा अपौरुपेय है? जे कर कहोगेकि पौरुपेय है,तो क्या सर्वज्ञका करा हूआ है? वा असर्वज्ञका करा हूआ है? जे कर आद्य पक्ष मानोगे, तब तो तुमारे मतकी व्याहति होवेगी, क्योंकि तुमारा यह सिद्धांत है, "अतींद्रियाणामर्थानां, साक्षाद्द्रष्टा न विद्यते ॥ नित्येन्यो वेदवाक्येन्यो, यथार्थत्वविनिश्चयः ॥ १ ॥ दूसरे पक्षमें दूपण वाले करता के करे हूये शास्त्रका विश्वास नहीं होता है; जे कर कहोगेकि अपौरुपेय है, तब तो संनवही नहीं हो सक्ता है, स्वरूप निराकरणेसें तुरंगशृंगवत् पुरुषक्रियानुगत रूप इसका है. पुरुप क्रियाके विना यह क्योंकर हो सक्ता है? इस वास्ते जो साक्षर वचन है, सो पौरुषेयही है, कुमारसंनवादि वचनवत्. वचनात्मकही वेद है, "तथा चाहुः ॥ ताल्वादिजन्मा ननु वर्ण वर्गो, वर्णात्मको वेद इति स्फुटं च ॥ पुंसश्च ताल्वादिरतः कथं स्या,दपौरुषेयोयमिति प्रतीतिः ॥१॥ इति श्रुतिकों अपौरषेयत्व" अंगीकार करकेंनी तुमने तदर्थव्याख्यान पौरुषेयही अंगीकार करी है, अन्यथा "अग्निहोत्रं जुहूयात् स्वर्गकामः" इसका अर्थ "श्वमांसं नक्षयेत् इति" नियामकके अनावसें ऐसें क्यों न हो जावे? तिस वास्ते यही अछा है जो शास्त्रकों पौरुषेय माननां होवे. तुमारे हठसें अपौरुषेय वेद माने, तोनी तिसकों प्रमाणता नहीं, क्योंकि प्रमाणता जो है, सो आप्त पुरुषाधीन है, जब वेद प्रमाण न हूये, तब तिन वेदोंका कहा हूआ तथा वेदानुसारी स्मृतिनी प्रमाणनूत नहीं, हिंसात्मक याग श्राद्धादिविधि प्रामाण्य विधुरही है.

पूर्वपक्षः—जो यह कहा है कि "न हिंस्यात् सर्वनूतानीत्यादि" करकें जो हिंसाका निषेध करा है, सो औत्सर्गिक मार्ग है, अर्थात् सामान्य विधि है, अरु वेदविहिता जो हिंसा है,सो अपवाद विधि है, अर्थात् विशेप विधि है, तब तो अपवाद करकें उत्सर्गकी बाधा होनेसें वैदिकी हिंसा दोषका कारण नहीं "उत्सर्गापवादयोरपवादविधिर्बलीयानिति न्यायात्" तुमारे जैनोंके मतमेंनी एकांत हिंसाका निषेध नहीं है, कितनेक कारणोके

होनेसें पृथिव्यादिक जीवोंकी हिंसा करनेकी आज्ञा है, अरु जब साधु रोग पीडित होता है, "असंस्तरे" अर्थात् असामर्थ्य होता है, तब आधाकर्मादि आहारके ग्रहणेकीभी आज्ञा है, ऐसेही हमारे मतमे याज्ञिकी हिंसा जो है, सो देवता अतिथिकी प्रीतिके वास्ते पुष्टालंबनरूप होनेसे अपवाद रूप है, इस वास्ते दोष नही

उत्तरपक्ष –अन्यकार्यके वास्ते उत्सर्ग वाक्य, अरु अन्य कार्यके वास्ते अपवाद पद कहनां, यह उत्सर्ग, अपवाद, कदाभी नही हो सक्ता है, किंतु जिस अर्थके वास्ते शास्त्रमे उत्सर्ग कह्या है, तिसी अर्थके वास्ते अपवाद होवे, तबही उत्सर्ग अपवाद हो सक्ता है, तिन दोनोंहीकों उन्नत निम्नादि व्यवहारवत् परस्पर सापेक्ष होनेसेही एकार्थके साधक हो सक्ते है, जैसे जैनोके संयम पालनेके अर्थ नवकोटि विशुद्ध आहारकों ग्रहणा, सो उत्सर्ग है, तैसेही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, आपत्मे पडनेसे गत्यंतर के अभावसे पंचकादि यत्ना करके अनेषणीयादि आहारको जो ग्रहण करना, सो अपवाद है, सोभी संयमहीके पालने वास्ते है, ऐसेभी मत कहनां कि जिस साधुको मरणाही एक शरणा है तिसको गत्यतर अभाव की असिद्धि है ॥ उक्त चार्षेभि ॥ सव्वह स जम स,जमाउ अप्पाणमेव रक्खिज्जा ॥ मुच्चइ अइवायाउ, पुणो विसोही नयाविरई ॥१॥ इत्यागमात् ॥ इसका भावार्थ –सर्वत्र संयम करणा, जे कर संयमके दूषित होनेसे प्राण रहित होवे, तो संयममे दूषणभी लगा कर प्राणोकी रक्षा करणी, प्राणो के रहणेसे प्रायश्चित्त द्वारा उस पापसे छूट करके शुद्ध हो जावेगा, अरु अविरतिभी नही रहेगी, तथा आयुर्वेदमे भी जो वस्तु किसी रोगम किसी अवस्थामें अपथ्य है, सोइ वस्तु उसी रोगमे उसी अवस्थामें अवस्था. देश, काल, देख कर देवे, तो पथ्य है. देशादि अपेक्षा करके ज्वर वालेकों दही खानेको देते है॥ तथाच वैद्या ॥ कालाविरोधिनिर्दिष्ट, ज्वरादौ लघनं हित ॥ क्षतेऽनिलश्रमक्रोध, शोककामरुतज्वरात् ॥ १ ॥ जैसे प्रथम अपथ्यका परिहार करना, अरु जो तद्वादी अवस्थातरमें तिसीको भोगनां, सो दोनोही जगे रोगके दूर करनेका प्रयोजन है इस्सें यह सिद्ध हूआ जो एकही वस्तुविषयक उत्सर्ग अपवाद है

अरु तुमारे तो उत्सर्ग, और अर्थ वास्ते है, तथा अपवाद,और अर्थ

वास्ते है, क्योंकि तुमारे तो "न हिंस्यात् सर्वभूतानि" यह जो उत्सर्ग है सो ठुर्गतिके निषेध वास्ते है, अरु जो तुमारी अपवाद हिंसा है, सो देवता, अतिथि, पितरोंकी प्रीति संपादनेके अर्थ है, इस वास्ते परस्पर निरपेक्ष होनेसें उत्सर्ग अपवाद विधि नहीं हो सक्ती है. तब कैसें तुमारा अपवाद, उत्सर्ग विधिकों बाधा कर सक्ता है?

ऐसेंभी मत कहनां कि वैदिक हिंसाकी जो विधि है, सो स्वर्गहेतु होनेसें ठुर्गति निषेधार्थही है, वैदिकहिंसा स्वर्गका हेतु नहीं है, यह उपर अछी तरेसें लिख आये हैं, वैदिक हिंसाके विनाभी स्वर्गकी प्राप्ति हो सक्ती है, गत्यंतरके अभावमेंही अपवाद हो सक्ता है, कुछ हमही नहीं यज्ञ करनेसें स्वर्गका निषेध करते हैं, किंतु तुमारा व्यासजीभी कहता है. यदाह व्यास महर्षिः ॥ पूजया विपुलं राज्य,मग्निकार्येण संपदः ॥ तपः पापविशुद्ध्यर्थं, ज्ञानं ध्यानं च मुक्तिदं ॥१॥ यहां अग्निकार्य शब्दवाच्यस्य यागादिविधि उपायांतर करकें जो साध्य है संपदा, तिसहीका हेतु कहता हूआ आचार्य तिस यागकों सुगतिका हेतु अर्थात् ही कदर्थन करता हूआ है, तथा सोइ व्यासजी भावाग्निहोत्र "ज्ञानपाली" इत्यादि श्लोकों करकें स्थापन कर गया है ॥ इति मीमांसकमतखंमनम् ॥ ५ ॥

अथ चार्वाकमत खंमन लिखते हैं ॥ चार्वाक कहता है की आत्माही नहीं है, तब किस वास्ते मतावलंबी पुरुष, वचनकलहा करते हैं? जब आत्माही नास्ति है. तब जैन, बौद्ध, सांख्य, नैयायिक, वैशेषिक, अरु जैमिनीय, यह जो षट् दर्शन है, सो निःकेवल लोकोंकों भ्रममें माल करकें भोग विलास छुडा देते हैं; वास्तवमें आत्मानामा कोइ वस्तु नहीं. इस वास्ते हमारा मत अछा है, जे कर आत्मा है,तो कैसें तिसकी सिद्धि है?

उत्तरपक्षः—प्रतिप्राणी स्वसंवेदन प्रमाण चैतन्यकी अन्यथानुपपत्तिसें सिद्ध है, तथाहि यह जो चैतन्य है. सो भूतोंका धर्म नहीं है, जे कर भूतोंका धर्म होवे, तब तो पृथिवीकी कठीनताकी तरें सर्वत्र सर्वदा उपलंभ होनां चाहियें, सो सर्वत्र सर्वदा उपलंभ होता है नहीं,क्योंकि लोष्ठादिकोंमें अरु मृत् अवस्थामें चैतन्य उपलंभ नहीं होता.

पूर्वपक्षः—लोष्ठादिकोंमें अरु मृत् अवस्थामेंभी चैतन्य है, केवल शक्तिरूप करिकें है, तिस वास्ते नहीं उपलंभ होता है.

उत्तरपक्ष.—दो विकल्पके न उल्लंघनेसें यह तुमारा कहना अयुक्त है, तथाहि वो शक्ति, चैतन्यसे विलक्षण है? अथवा चैतन्यही है? जे कर कहोगेकि विलक्षण है,तब तो शक्तिरूप करके चैतन्य है ऐसा मत कहो, क्योंकि नही पटके विद्यमान हूआ पटरूप करके घट रहता है, "आह च ॥ प्रज्ञाकरगुप्तोपि ॥ श्लोक ॥ रूपांतरेण यदित, त्तदेवास्तीति मारटी ॥ चैतन्यादन्यरूपस्य, नावे तद्विद्यते कथम् ॥१॥ जे कर दूसरा पक्ष मानोगे,तब तो चैतन्यही वो शक्ति है,तो फेर क्यु नही उपलंन होती? जे कर कहोगेकि आवृत्त होनेसे उपलंन नही होती,तो यहनी वीक नही, क्योंकि आवृत्ति नाम आवरणका है, सो आवरण क्या विवक्षित परिणामका अनाव है? अथवा परिणामांतर है? अथवा नूतोंसें अतिरिक्त और वस्तु है? उसमे विवक्षित परिणामोका अनाव तो नही है, क्योंकि एकांत तुछ होने करके तिस विवक्षित परिणाम अनावको आवरण शक्ति नहीं है, अन्यथा तिसकों अतुछ रूप होनेसे सोनी नावरूप हो जावेगा. अरु जब नावरूप हूआ, तब तो पृथिवी आदिकोमेसू अन्यतम हूआ,क्योंकि "पृथिव्यादीन्येव नूतानि तत्त्वमिति वचनात्" अरु पृथिवी आदिक जो नूत है, सो चैतन्यके व्यंजक है, परंतु आवरक नहीं तब कैसे आवरकत्व सिद्ध होवे?

अथ जे कर कहोगेकि परिणामांतर है,सोनी अयुक्त है, क्योंकि परिणामांतरको नूत स्वनाव होने करकें नूतोंकी तरे चैतन्यका व्यंजकही हो सक्ता है, आवरक नही

अथ जे कर कहोगेकि नूतोंसे अतिरिक्त वस्तु है, यह कहनां बहुत ही असंगत है, क्योंकि नूतोसे अतिरिक्त वस्तु माननेसे "चत्वार्येव पृथ्व्यादि नूतानि तत्त्वमिति" इस कहनेसे तत्त्वसंख्याका व्याघात हो जावेगा

एक औरनी बात हैकि यह जो चैतन्य है, सो एक एक नूतका धर्म है? वा सर्व नूत समुदायका धर्म है? एक एक नूतका धर्म तो नहीं, क्योंकि एक एक नूतमे दीखता नही औ एक एक परमाणुमे संवेदन उपलंन नही होता है जे कर प्रति परमाणुमे होवे, तब तो पुरुष, सहस्र चैतन्य वृंदकी तरे परस्पर निन्न स्वनाव होवेगा, परंतु एक रूप चैतन्य नही होवेगा, अरु देखनेमें एक रूप आता है, "अहं पश्यामि' अर्थात् मै देखता हू, मै करता हू, ऐसे सकल शरीरका अधिष्ठाता एक उपलंन होता है

जे कर समुदायका धर्म मानोगे सोन्नी प्रत्येकमें अन्नाव होनेसें असत् है, क्योंकि जो प्रत्येक अवस्यामें असत् है, वो समुदायमेंन्नी नहीं होस क्ता है, जैसें रेणुकायोंमें तेल.

जे कर कहोगेकि मद्यांगोमें मद शक्ति नहीं है समुदायमें हो जाती है, ऐसें चैतन्यन्नी हो जावे, तो क्या दोष है? यहन्नी अयुक्त है, क्योंकि प्रत्ये क मद अंगोमें मद शक्त्यनुयायि माधुर्यादि गुण दीखते हैं, तथाहि ॥ दीखता है माधुर्यादि इक्षुरसमें धातकी फूलोंसें थोडीसी विकलता उत्पा दक शक्ति, ऐसें चैतन्य, सामान्य प्रकारसें न्नूतोमें नहीं उपलंन्न होता है, तब कैसें न्नूत समुदायमें चैतन्य हो सक्ता है? जे कर प्रत्येक अवस्यामें असत् समुदायमें हो जावे, तब तो सर्व समुदायसें सर्व कुछ हो जानां चा हियें. यह अति प्रसंग होवेगा.

एक औरन्नी बात है, कि जे कर तुमने चैतन्य धर्म माना है, तब तो अ वश्य धर्मके अनुरूप धर्मीन्नी मानना चाहियें, जे कर अनुरूप न मानोगे, तब तो जल अरु कठिनता इन दोनोकों धर्म धर्मी माननां चाहियें, ऐ सेंन्नी मत कहनां जो न्नूतही धर्मी हैं, क्योंकि न्नूत, चैतन्यसें विलक्षण हैं, तथाहि चैतन्य बोध स्वरूप, अरु अमूर्त्त है, अरु न्नूत इससें विलक्ष ण हैं, तब कैसें परस्पर धर्म धर्मी न्नाव हो सक्ता है? अरु यह चैतन्य न्नू तोंका कार्यन्नी नहीं है, अत्यंत वैलक्षण्य होनेसें कार्य कारण न्नाव कदा पि नहीं होता है ॥ उक्तंच ॥ काठिन्यावोधरूपाणि, न्नूतान्यध्यक्षसिद्धितः ॥ चेतना च न तद्रूपा, सा कथं तत्फलं न्नवेत् ॥ १ ॥

एक औरन्नी बात हैकि जे कर न्नूतकार्य चेतना होवे, तब तो सकल जगत् प्राणीमय होवे, जे कर कहोगेकि परिणति विशेष सद्भावके अन्नाव सें सकल जगत् प्राणिमय नहीं होता है, तो वो परिणति विशेष सद्भाव सर्वत्र किसी वास्ते नहीं होती है? सोन्नी परिणति न्नूतमात्र निमित्तकही है, तब कैसें तिसका किस जगें होनां न होनां सिद्ध होवे? तथा वो परि णति विशेष किस स्वरूपवाली है, जे कर कहोगेकि कठिनादि रूप है, सो इ दिखाते हैं कि घुणादि जंतु उत्पन्न होते हूये काष्ठादिकोंमें दीखते हैं तिस वास्ते जहां कठिनत्वादि विशेष है, सो प्राणिमय हैं, शेष नहीं. यह न्नी व्यन्निचार देखनेसें असत् है तथाहि अविशिष्टन्नी कठिनत्वादि विशेषके

हूया कहीं होता है, और कहीं नहीं होता, अरु किसी जगे कठिनत्वादि विशेषके विनाभी संस्वेदज घने आकाशमे संमूर्छिम उत्पन्न होते है

एक औरभी वात है कि कितनेक जीव समानयौनिकभी विचित्रवर्ण संस्थान वाले दीखते है, तथाहि गोवर आदि एक योनिवालेभी कितनेक नीले शरीर वाले है, अपर पीत शरीर वाले है, अन्य विचित्र वर्ण वाले है, अरु सस्थानभी इनका परस्पर भिन्न है, जे कर भूतमात्र निमित्त चैतन्य होवे, तब तो एक योनिक सर्व एक वर्ण सस्थान वाले होने चाहियें, परतु सोतो होते है नहि, तिस वास्ते आत्माही तिस तिस कर्मके वश तैसें उत्पन्न होती है, यही सिद्ध माननां चाहिये

जे कर कहोगेकि आत्मा होवे, तब जाता आता क्यो नही उपलब्ध होता? केवल देहके हुवाही सवेदन उपलब्ध होता है, अरु देहके अभाव होया भस्म अवस्थामे नही दीखता है, तिस वास्ते आत्मा नही किंतु सवेदन मात्रही एक है, सो सवेदन देहका कार्य है, देहहीमे आश्रित है, भीतके चित्रवत् चित्र, भीतके विना नही रह सक्ता है, अरु दूसरी भीत उपर सक्रमणभी नही होता है, किंतु भीत उपर उत्पन्न हूआ है, अरु भीतके साथही विनाश हो जाता है, सवेदनभी ऐसेही जान लेना यहभी असत् है, क्योंकि आत्मा स्वरूप करके अमूर्त्त है. अरु आतर शरीर अति सूक्ष्म है, इस वास्ते दृष्टिगोचर नही ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ अतराभावदेहोपि, सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते ॥ निःक्रामन् प्रविशन् वात्मा,नाभावोऽनीक्षणादपि ॥१॥ तिस वास्ते आत शरीर युक्तभी आत्मा आता जाता हूआ नही दीखता है, परतु लिंगसे उपलब्ध होता है, तथाहि तत्काल उत्पन्न हूआभी कृमी जीवको अपने शरीर विषे ममत्व है, घातकको जान करके दौड जाता है, जिसका जिस विषे ममत्व है, सो पूर्वले ममत्वके अभ्यास पूर्वक है, तैसेही देखनेसे अरु जितना चिर, किसी वस्तुके गुण दोष नही जानता, उतना चिर, उस वस्तुमे किसीकोभी आग्रह नही होता है, तब तो जन्मकी आदिमे जो शरीरका आग्रह है, सो शरीर परिशीलन अभ्यासपूर्वक सस्कार निबधन है, इस वास्ते आत्माका जन्मातरसे आवना सिद्ध हूआ ॥ उक्त च ॥ शरीरग्रहरूपस्य, चेतस सभवोयदा ॥ जन्मादौ देहिना दृष्ट, किन्न जन्मातरा गति ॥ १ ॥

अथ आगति प्रत्यक्षसें नहीं दीखती है, तब कैसें तिसका अनुमानसें बोध होवे ? यह तुमारा कहनां कुछ दूषण नहीं, क्योंकि अनुमेय अर्थ विषे प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति नहीं हो सक्ती है, परस्पर विषयकों परिहार करकें प्रत्यक्ष अनुमानका प्रवर्त्तनां बुद्धिमान् मानते हैं, तब कैसें यह तुमारा दूषण है ? आह च ॥ अनुमेयेस्ति नाध्यक्ष, मिति कैवात्र डुष्टता ॥ अध्यक्षस्यानुमानस्य, विषयो विषयो नहि ॥ १ ॥

अरु जो चित्रका दृष्टांत तुमने कहा था, सोभी विषम होनेसें अयुक्त है, तथाहि चित्र जो है सो अचेतन है अरु गमन स्वभाव रहित है, औ आत्मा जो है सो चैतन्य है सो कर्मोंके वशसें गति आगति करता है, तब कैसें दृष्टांत अरु दार्ष्टांतकी साम्यता होवे ? जैसें देवदत्त किसी विवक्षित ग्राममें कितनेक दिन रह करकें फेर ग्रामांतरमें जाता रहता है,तैसेंही आत्माभी विवक्षित भवमें देहकों त्याग कर भवांतरमें देहांतर रच कर रहता है,

अरु जो तुमने कहा था कि संवेदन देहका कार्य है, सोभी ठीक नहीं. क्योंकि चक्षुषादि इंड्रियद्वारें उत्पन्न होनेसें चाक्षुषादि संवेदन कथंचित् देहसेंभी उत्पन्न होता है, परंतु जो मानस ज्ञान है, वो कैसें देहका कार्य हो सक्ता है ? तथाहि सो मानस ज्ञान देहसें उत्पद्यमान होता हुवा इंड्रियरूपसें उत्पन्न होता है ? वा अनिंड्रिय रूपसें उत्पन्न होता है ? वा केश नखादि लक्षणसें उत्पन्न होता है ? प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं. जेकर इंड्रियरूपसें उत्पन्न होवे, तब तो इंड्रिय बुद्धिवत् वर्त्तमानार्थकाही ग्राहक होनां चाहियें, इंड्रियज्ञान जो है, सो वर्त्तमान अर्थही ग्रहण कर सक्ता है, इस सामर्थ्यसें उपजायमान मानस ज्ञानभी इंड्रियज्ञानवत् वर्त्तमान अर्थकाही ग्रहण कर सकेगा.

अथ जब चक्षुरूप विषय व्यापार करता है, तब रूप विज्ञान उत्पन्न होता है, शेष काल नहीं. तब वो रूपविज्ञान वर्त्तमानार्थी विषय है, क्योंकि वर्त्तमानार्थी विषयही चक्षुका व्यापार होनेसें. अरु रूप विषय व्यावृत्तिके अभावमें मनोज्ञान है, तिस वास्ते नियत काल विषयक नहीं है, ऐसेही शेष इंड्रियमेंभी जान लेनां, तब कैसें मनोज्ञानकों वर्त्तमानार्थ ग्रहण प्रसक्ति होवे ? उक्तं च ॥ अक्षव्यापारमाश्रित्य, भवदक्षजमिष्यते ॥ तद्व्यापारोन तत्रेति, कथमक्षभवं भवेत् ॥ १ ॥

अथ अनिंद्रिय रूपसें है, सोभी तिसकों अचेतन होनेसे अयुक्त है, अरु केश नखादिक तो मनोज्ञान करकें स्फुरत चिद्रूप नही उपलंभ होते है, तब कैसे तिनसेती मनोज्ञान होवे? आह च ॥ चेतयंतो न दृश्यते, केशश्मश्रुनखादयः ॥ ततस्तेभ्यो मनोज्ञानं, भवतीत्यतिसाहस ॥ १ ॥

जे कर केश, नखादिको करकें प्रतिबद्ध मनोज्ञान होवे, तब तो तिनोके उच्छेद हूया मूलसेंही मनोज्ञान नही होवेगा? अरु केश, नखादिकोको उपघात हूआ ज्ञानभी उपहत होना चाहिये, परंतु सोतो होता है नही, इस वास्ते यह तीसरा पक्षभी ठीक नही

एक औरभी बात है, कि मनोज्ञानके सूक्ष्म अर्थ चेतृत्व अरु स्मृतिपाटवादि विशेष जो है, सो अन्वयव्यतिरेक करके अभ्यासपूर्वक देखे है, तथाहि वोही शास्त्र, ईहा अपोहादि प्रकार करकें जे कर वार वार विचारिये, तब सूक्ष्म सूक्ष्मतर अर्थावबोध उल्लास होता है, अरु स्मृति पाटव अपूर्व वृद्धि होती है, ऐसे एक शास्त्रविषे अभ्याससेती सूक्ष्मार्थ चेतृत्व शक्तिके होया, अरु स्मृतिपाटवके हूया अन्य शास्त्रोमेंभी सहजसेंही सूक्ष्मार्थावबोध, अरु स्मृतिपाटव उल्लास होती है, ऐसे अभ्यास हेतुक सूक्ष्मार्थ चेतृत्वादिक मनोज्ञानके विशेष देखे है, अरु किसीको अभ्यासके विनाभी देखिये है, तिस वास्ते अवश्य परलोकका अभ्यास हेतु है, सो काहेते? कि कारणके साथ कार्यका अन्यथानुपपन्न पणा है, तिस प्रतिबंधसे अदृष्ट तिसके कारणकीभी सिद्धि है, तिस वास्ते जीवका परलोकमे जाना सिद्ध हूआ

अरु देह, क्षयोपशमका हेतु है, इस वास्ते देहभी कथंचित् ज्ञानको उपकारी हम मानते है नही देहके दूर होनेसे सर्वथा ज्ञानकी निवृत्ति होती जैसे अग्नि करकें घटको कुछ विशेषता है, परंतु अग्निकी निवृत्ति हूया घट मूलसेंही उच्छेद नही हो जाता है, केवल कतुक विशेष दूर हो जाता है, जैसे सुवर्णकी द्रवता ऐसें इहाभी देहकी निवृत्ति हूआ कोइक ज्ञानविशेष तत्प्रतिबद्धही निवृत्त होता है, परंतु समूल ज्ञानका उच्छेद नही होता है, जे कर देहही ज्ञानका निमित्त मानेगे, अरु देहकी निवृत्तिसे ज्ञान निवृत्तिवाला मानोगे, तब तो स्मशानमें देहके भस्म हूया तो ज्ञान न होवे, परंतु देहके विद्यमान हूआ मृत अवस्थामें किस वास्ते नही होता?

जे कर कहोगे कि प्राण, अपानभी ज्ञानके हेतु हैं, तिनके अभावसें ज्ञान नहीं होता है, यहभी कहनां ठीक नहीं, क्योंकि प्राणापान ज्ञानके हेतु नहीं हो सक्के हैं, किंतु ज्ञानहीसें तिनकी प्रवृत्ति होनेसें. तथाहि जब प्राणापानका करने वाला मंद इच्छा करता है, तब मंद होता है. अरु जब दीर्घकी इच्छा करता है, तब दीर्घ होता है, जे कर देहमात्र नैमित्तिक प्राणापान होवे, अरु प्राणापान नैमित्तिक विज्ञान होवे, तव तो इच्छाके वशसें प्राणापानकी प्रवृत्ति न होवेगी; क्योंकि जिनका निमित्त देह है, ऐसी जो गौरता औ श्यामता, वो इच्छाके वशसें प्रवृत्त नहीं होती है, जे कर प्राणापान ज्ञानका निमित्त होवे, तब तो प्राणापानके थोडे वा बहुतेके होनेसें ज्ञानभी थोडा वा बहुत होनां चाहियें, क्योंकि जिसका कारण हीन अथवा अधिक होवेगा, तब उसका कार्यभी हीन अधिक होवेगा. जैसें माटीका पिंम बडा किंवा छोटा होवेगा, तव घटभी बडा अरु छोटा होवेगा, अन्यथा वो कारणभी नहीं. तुमारेभी तो प्राणापानके न्यून अधिक होनेसें ज्ञान, न्यून अधिक नहीं होता है. किंतु विपर्यय होता तो दीखता है क्योंकि मरणावस्थामें प्राणापान अधिकभी होते हैं, तोभी विज्ञान घट जाते है.

जे कर कहोगे कि मरणावस्थामें वात पित्तादि दोषो करकें देहके विगुणी हो जानेसें प्राणापानकी वृद्धिसेंभी ज्ञानकी वृद्धि नहीं होती है, ऐसेंही मृतावस्थामेंभी देहके विगुणीभूत होनेसें चेतनता नहीं है, यहभी असमीचीन है, जे कर ऐसें होवे, तब तो मरा हूआभी जिंदा होनां चाहियें॥ तथाहि ॥ "मृतस्य दोषाः समीभवंति" अर्थात् मरण पीछें वात पित्तादि दोष नहीं रहते हैं, औ ज्वरादि विकारके न देखनेसें दोषोका न रहना प्रतीत होता है, अरु जो दोषोका समपणा है, सोइ आरोग्यता है, "तेषां समत्वमारोग्यं, क्षयवृद्धिविपर्ययः॥ इति वचनात्" ॥ आरोग्य लाभसें देहको फेर जिंदा होनां चाहियें, अन्यथा देह कारणही नहीं, चित्तके साथ देहका अन्वय व्यतिरेक नहीं. जे कर मारा हुवा जी उठे, तो हम देहकों कारणभी मान लेवे.

पूर्वपक्षः—यह फेर जी उठनेका प्रसंग तुमारा अयुक्त है,क्योंकि यद्यपि दोष, देहकों वैगुण्य करकें निवृत्त हो गये हैं, तोभी तिनका वैगुण्य पणा

करा हुआ नहीं निवृत्त होता है, जैसें अग्निका करा हुआ काष्ठमें विकार अग्निके निवृत्त होनेंसेंभी नही निवृत्त होता है

उत्तरपक्ष—यह तुमारा कहना अयुक्त है,क्योंकि विकारभी दो प्रकारका है, एक निवृत्त होता है, एक नही निवृत्त होता है, अनिवृत्त विकार जैसे काष्ठमें अग्निका करा हूआ श्यामता मात्र अरु निवृत्त विकार जैसे अग्निकृत सुवर्णमे द्रवता वायु आदिक जो दोष है, सो निवृत्त विकार है, चिकित्सा प्रयोग देखनेसें जे कर वायु आदि दोषभी अनिवृत्त विकार होवे, तब तो चिकित्सा वैफल्य हो जावेगी, ऐसेभी मत कहना मरणेसे पहिलां दोषनिवृत्त विकारारंभक है, अरु मरण कालमे अनिवृत्त विकारारंभक है, क्योंकि एककों एक जगे निवृत्त अनिवृत्त विकार दो रूप नही हो सक्के है,

पूर्वपक्ष—व्याधि दो प्रकारकी लोकमे प्रसिद्ध है, एक साध्य, दूसरी असाध्य, उसमे साध्य जो है, सो चिकित्सासे दूर हो सक्की है, अरु दूसरी दूर नही होती है, तब दो प्रकारकी व्याधि क्यों नही सिद्ध हो सक्की है?

उत्तरपक्षः—यहभी असत् है, क्योंकि तुमारे मतमे असाध्य व्याधिही नहीं हो सक्की है. तथाहि व्याधिका जो असाध्यपणा है, सो आयुके क्षय होनेसे होता है, क्योकि तिसी व्याधिमे समान औषध वैद्यके योगसे भी कोइ मर जाता है, कोइ नही मरता है, अरु जो प्रतिकूल कर्मोंके उदय करकें चित्रादि व्याधि है, वो हजार औषधसेभी साधी नही जाती है, यह दोनो प्रकारकी व्याधि परमेश्वरके बचनोके जानने वालोंके मतमेंही सिद्ध होती है, परतु तुमारे भूतमात्र तत्त्ववादीयोके मतमे नहीं हो सक्की है. कहीक असाध्य व्याधि इस वास्ते हो जाती है, दोषकृत विकारके दूर करणेमे समर्थ औषधि, अरु वैद्यके अभावसे जब औषधि अरु वैद्यके अभावसे व्याधि वृद्धिमान हो कर सकल आयुको उपक्रम करती है, अर्थात् क्षय कर देती है तथा कोइक दोषोके उपशम होनेसे अकस्मात् मर जाता है अरु कोइक अति दुष्ट दोषोके होनेंसेभी नही मरता है यह बात तुमारे मतमे नही हो सक्की है॥ आह च॥ श्लोक॥ दोषस्योपशमेऽप्यस्ति, मरण कस्यचित्पुन ॥जीवन दोषदुष्टत्वे. प्येतन्न स्याभवन्मते ॥ १ ॥ हमारे मतमे तो जहा लगि आयु है, तहा लगि दोषो करके पीडितभी जीता रहता है, अरु जब आयु क्षय हो जाता है, तब

दोषोंके विकार विनाजी मर जाता है, इस वास्ते देह,ज्ञानका निमित्त नहीं है,

एक औरजी बात है कि देह जो तुम ज्ञानका कारण मानते हो, सो सहकारी कारण मानते हो? वा उपादान कारण मानते हो? जे कर सहकारी कारण मानते हो, तब तो हमजी देहकों क्षयोपशमका हेतु मानते है, कथंचित् विज्ञानका हेतु मानते है, जे कर उपादान कारण मानोगे तब तो अयुक्त है, उपादान वो होता है कि जिसके विकारी होनेसें कार्यजी विकारी होवे, जैसें मृत्तिका और घट. देहके विकार करकें संवेदन विकारी नहीं होता है, अरु देह विकारकें विनाजी जय शोकादिकों करकें संवेदनकों विकारी देखते हैं, इस वास्ते देह, संवेदनका उपादान कारण नहीं॥ उक्तं च ॥ अधिकृत्य हि य वस्तु, यः पदार्थोविकार्यते ॥ उपादानं न तत्तस्य, युक्तं गोगवयादिवत् ॥१॥ इस कहने करकें जो कहते हैं, कि माता पिताका चैतन्य, पुत्रके चैतन्यका उपादान कारण है,सोजी खंमन हो गया. तहां माता पिताके विकारी होनेसें पुत्र विकारी नहीं होता है, अरु जो जिसका उपादान होता है, सो अपने कार्यसें अजेद होता है, जैसें माटी और घट. जब माता पिताका चैतन्य,पुत्रके चैतन्यके साथ अजेदरूप हूआ, तब तो पुत्रका चैतन्य,माता पिताके चैतन्यसें अजेद होनां चाहियें. इसी वास्ते तुमारा कहनां किसी कामका नहीं है, इस हेतुसें जूतोंका धर्म वा जूतोंका कार्य चैतन्य नहीं है, इस वास्ते आत्मा सिद्ध है. विशेष करकें चार्वाकमतका खंमन देखनां होवे, तदा सम्मतितर्क, स्याद्वाद रत्नाकरादि शास्त्र देख लेनां॥ इति चार्वाक मत खंमनं॥ इस परिछेदमें जो कुगुरुके लक्षण कहे हैं, वे लक्षण चाहो जैनके साधुमें होवें, चाहो अन्यमतके साधुमें होवे, उन सर्वकों कुगुरु कहनां चाहियें॥ इतिश्री तपगछीये मुनि श्रीबुद्धिविजयशिष्य मुनि आनंदविजयआत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे कुगुरुस्वरूपनिर्णयनामा चतुर्थः परिछेदः संपूर्णः ॥ ४ ॥

॥ इति चतुर्थ परिछेदः संपूर्णः ॥ ४ ॥

॥ अथ पंचम परिछेद प्रारंभ ॥

यह पंचम परिछेदमे धर्मतत्त्वका स्वरूप लिखते है धर्म उसकों कह ते है, जो दुर्गति जाते हुये आत्माको धरी राखे, एतावता दुर्गतिमे न जा ने देवें, उसकूं धर्म कहते है तिस धर्मके तीन भेद है १ सम्यक् ज्ञान, २ स म्यक् दर्शन, ३ सम्यक् चारित्र, इन तिनोमेसू प्रथम ज्ञानका स्वरूप संक्षेपसें लिखते है ॥श्लोक॥ यथावस्थिततत्त्वाना, संक्षेपाद्विस्तरेण वा ॥ योवबो धस्तमत्राहु, सम्यग्ज्ञान मनीषिण ॥ १ ॥ अस्यार्थ – यथावस्थित नय प्रमाणों करके प्रतिष्ठित है स्वरूप जिनका, ऐसे जो जीव,अजीव,आश्रव, संवर, निर्ज्जरा, बंध, मोक्ष रूप सप्त तत्त्व, तथा प्रकारांतरे पुण्य पापके अधिक होनेसें नव तत्व होते है, इनका जो अवबोध, अर्थात् ज्ञान सो सम्यक् ज्ञान जानना. अरु वह जो ज्ञान है, सो क्षयोपशमके विशेपसे किसी जीवको संक्षेप करके अरु किसी जीवको विस्तार करके होता है. इन नव तत्त्वोंमे प्रथम जो जीवतत्त्व है तिसका स्वरूप ऐसा है कि जीव कहो अ थवा आत्मा कहो यह दोनो एकही वस्तुके नाम है.

प्रश्न – जैनमतमे आत्माका क्या लक्षण है ?

उत्तर – चैतन्य लक्षण है,

प्रश्न – जैनमतमे जीव प्राणी आत्मा किसको कहते है ?

उत्तर –॥ श्लोक ॥ य कर्त्ता कर्मभेदाना, भोक्ता कर्मफलस्य च ॥ स सर्त्ता परिनिर्वाता, सह्यात्मा नान्यलक्षण ॥ १ ॥ इस श्लोकसे जान ले ना. इसका भावार्थ कहते है, कि जो मिथ्यात्वादिको करकें कलुषित अर्थात् मैला हो करके वेदनीयादिक कर्मोंका कर्त्ता,(करनेवाला) अरु तिन अपने करे हूये कर्मोका जो फल सुख दुखादिक तिनोका भोगनेवाला, अरु नारकादि भावो विषे कर्म विपाकके उदय करके जो भ्रमण करनेवाला अरु सम्य क्दर्शनादि तीन रत्नोके उत्कृष्ट अभ्यास करके संपूर्ण कर्मांशको दूर करके जो निर्वाण रूप होनेवाला, सोइ प्राणी है, सोइ जीव है, सोइ आत्मा है, यह नंदीसूत्रमे लिखा है आत्माकी सिद्धि चार्वाकमतखंडनमे लि ख आये है जेकर आत्माकी सिद्धि विशेष करकें देखनी होवे, तदा शुभ्रा भोनिधि, गंधहस्ती महाभाष्य देख लेनी यह आत्मा सर्व व्यापीभी नही है, औ एकांत नित्य, कूटस्थभी नहीं है. एकांत अनित्यक्षणिकभी नही है,किंतु

शरीरमात्रव्यापी कथंचित् नित्यानित्य रूप है. इनका खंमन मंमन स्याद्वादरत्नाकर, स्याद्वादरत्नाकरावतारिका, अनेकांतजयपताका प्रमुख शास्त्रोंसें देख लेनां. इस वास्ते मैनें नहीं लिखा है. जो ग्रंथ वडा नारी हो जावेगा, अरु पढनेवाले आलस कर जायेंगे.

तहां जे जीव हैं सो दो प्रकारके है. एक मुक्त रूप, दूसरा संसारी, यह दोनोही प्रकारके जीव अनादि अनंत है. अरु ज्ञान दर्शन इनका लक्षण है. अरु जो मुक्त स्वरूप आत्मा है वो सर्व एक स्वनाव है. जन्मादि क्लेशों करकें वर्जित है अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंतवीर्य, औ अनंत आनंदमय स्वस्वरूपमें स्थित है, निर्विकार निरंजन ज्योतिःस्वरूप है.

अरु जो संसारी जीव हैं, सो दो प्रकारकें है. एक स्थावर, दूसरा त्रस, उसमें स्थावरके पांच नेद हैं, १ पृथिवीकाय, २ अप्काय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय. तथा त्रस जीवके चार नेद हैं. १ दोइंद्रिय, २ तीनइंद्रिय, ३ चारइंद्रिय, ४ पांचइंद्रिय. स्थावर जो है सो सर्व एकही स्पर्शेंद्रिय वाले है. कृमी, गंमोला, जलोक, सुंमी, इत्यादि जीव एक स्पर्शन अर्थात् शरीर इंद्रिय, दूसरा रसनेंद्रिय अर्थात् मुख, इन दो इंद्रिय वाले हैं. कीडी, जू, सुरसली, ढोरा, इत्यादि जीव, दो पूर्वोक्त अरु एक नासिका, यह तीन इंद्रियवाले है. माखी, नमर, सहेतकी माखी, मैंनू, धमोडी, विछू, इत्यादि जीव, तीन पूर्वोक्त, अरु चउथा नेत्र, इन चार इंद्रिय वाले है. नारक, तीर्यंच, मनुष्य, अरु देवता, ये पंचेंद्रिय जीव हैं. यह सर्व स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र, कान, इन पांच इंद्रिय वाले हैं. स्थावर जीवनी दो तरेंके हैं, एक सूक्ष्म नामकर्मके उदयवाले सूक्ष्म, दूसरा बादर नामकर्मके उदय वाले बादर, यह जो स्थावर अरु त्रस जीव है, सो समुच्चय छै पर्याप्ति वाले हैं. इन छै पर्याप्तिका नाम लिखते हैं. १ आहारपर्याप्ति, २ शरीरपर्याप्ति, ३ इंद्रियपर्याप्ति, ४ श्वासोछ्वासपर्याप्ति, ५ नाषापर्याप्ति, ६ मनःपर्याप्ति.

अथ पर्याप्तिका स्वरूप लिखते हैं. आहार (नोजन) तिसके ग्रहणेकी जो शक्ति, तिसका नाम आहारपर्याप्ति कहते हैं. २ शरीर रचनेकी जो शक्ति, तिसका नाम शरीरपर्याप्ति कहते हैं. ३ इंद्रिय रचनेकी शक्ति, सो इंद्रियपर्याप्ति है. ऐसेंही सर्वत्र जान लेनां. जिस जीवके पूर्वोक्त छै शक्ति, अधूरी हैं, उसकूं अपर्याप्ति कहते हैं. स्थावर जीवोंमें आदिकी चार पर्या

प्ति है अरु दोइंड्रिय, तीनइंड्रिय, चौरिंड्रिय, इन जीवोंमें एक मन विना पाच पर्याप्ति है. पचेंड्रिय जीवोंमें छही पर्याप्ति है. १ पृथिवीकाय,२ जल काय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, (पवन) इन चारोमे असख्य जीव है. तथा वनस्पतिकायमें जो प्रत्येक वनस्पति है, उसमें तो असख्यजीव है अरु साधारण वनस्पतिमे अनंत जीव है. इन स्थावर अरु त्रसोके जघन्य तो चौदह नेद है. मध्यम (५६३) नेद है अरु उत्कृष्ट अनंत नेद है तिनमै मध्यम चौदह नेद नरक वासीयोंके है. अडतालीश नेद तिर्यंच गतिवालोके है, औ तीनसो तीन नेद मनुष्यगति वालोके है. (१९८) नेद देवगति वालोंके है. यह सर्व मध्यम नेद (५६३) है. इनका विचार पूरा देखना होवे, तदा प्रज्ञापन्न सिद्धांत, तथा जीव समास प्रकरणादि शास्त्रोसे देख लेना

प्रश्न – हे जैन ! दो इंड्रियादिक जीव तो जीव लक्षण संयुक्त होनेसे जिव सिद्ध हो जाते है, परंतु पृथिवीआदि पाच स्थावरोमें जीव केसे हम मान लेवे ? क्योंकि पृथिवी आदिकोमे जीवका कोइनी चिन्ह उपलब्ध नहीं होता है

उत्तर –यद्यपि पृथिवी आदिकमे प्रगट जीवके होनेका चिन्ह नहीं दीखता, तोनी अव्यक्तपणेमे जीवके चिन्हसें जीव सिद्ध होते है जैसें धतूरेके तथा मदिरापानादिकके नशे करके मूर्छित हूये जीवोके व्यक्त लिंगके होनेसेनी जीवपणा है, तैसेंही पृथिवी आदिककोंकानी सजीव मानना चाहियें

प्रश्न –मदिरेकी मूर्छामे उश्वासादिकोके देखनेसे अव्यक्तमेंनी चेतना लिंग है परतु पृथिवी आदिकोमे तैसा चेतनताका लिंग कोइनी नहीं तिनकों कैसे चैतन्य माना जावे ?

उत्तरपक्ष –जैसें तुमने कहा है,सो ऐसे है नहीं. क्योंकि पृथिवीकायमें प्रथम स्व स्व आकारमे रहे हूये लवण, विद्रुम, पाषाणादिकोको अर्श मास अकुरकी तरे समान जातीय अकुरउत्पत्ति पणा है वनस्पतिकी तरे चैतन्यपणेका चिन्ह है, इस वास्ते अव्यक्त उपयोगादि लक्षणके होनेसे पृथिवी सचेतन है यह सिद्ध हुआ

प्रश्न –विद्रुम पाषाणादि पृथिवी कठिन रूप है, तो फेर कठिन रूप होनेसे कैसे पृथिवी सचेतन हो सक्ती है ?

उत्तरः–जैसें शरीरमें अस्थि अर्थात् हाड अनुगत है, सो कठिनभी हे तोभी सचेतन है,ऐसेंही जीवानुगत पृथिवीका शरीरभी सचेतन है. अथवा पृथिवी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, इनके शरीर जीव सहित हें. छेद्य, भेद्य, उत्क्षेप्य, भोग्य: घ्रेय, रसनीय, स्पृश्य, द्रव्य होनेसें. सास्ना विषाणादि संघातवत् पृथिवी आदिकोंकों छेद्यत्वादि जो दिखते हें, तिनकों कोइभी गोप नहीं सक्ता है. अरु यहभी मत कहनां कि पृथिवी आदिकोंकों जीव शरीरत्व जो साधनां है, सो अनिष्ट है, क्योंकि सर्व पुद्गल द्रव्यकों हम द्रव्य शरीर मानते हें,अरु जीव सहित तथा जीव रहित जो विशेष है सो ऐसें है शस्त्र करकें अनुपहत जो पृथिवी आदिक हें सो हाथ पगके संघातवत्. संघात न होनेसें कदाचित् सचेतन है, ऐसेंही कदाचित् शस्त्रोपहत होनेसें हाथादिकोंकी तरें अचेतनभी है, सो अचेतनही है.

प्रश्नः–प्रश्रवणवत् अर्थात् मूत्रकी तरें जीवके लक्षण न होनेसें जल जीव नहीं है.

उत्तरः–हेतु असिद्ध होएसें यहभी कहनां ठीक नहीं है तथाहि हाथीका शरीर कलल अवस्थामें (अधुना उत्पन्न होयेकों) द्रवपणा अरु सचेतन पणा देखते हें, ऐसेंही जलमेंभी जाननां. तथा अंडेमें रस मात्र है परंतु अवयव कोइ उत्पन्न हूआ नहीं. औ व्यक्त (हाथ पगादिक) भी नहीं, तोभी सचेतन है,इस उपमासें जलभी सचेतन है. यह इसमें प्रयोग है. शस्त्र करकें अनुपहत हूआ द्रवरूप होनेसें हस्तिशरीरके उपादानभूत कललवत् जल सचेतन है. इस हेतुमें विशेषणके उपादानसें अर्थात् ग्रहणेसें प्रश्रवण दूधादिकोंमें व्यभिचार नहीं. तथा अनुपहत द्रव होनेसें अंडेमें रहे कललवत् सात्मक जल है. तथा हिमादि किसीक अवस्थामें अप्काय होनेसें इतर उदकवत् सचेतन है. तथा किसी जगे भूमि खननेंसें स्वाभाविक संभव होनेसें मैंडकवत् सचेतन जल है, अथवा आकाशमें उत्पन्न हूआ जल बादलादि विकारके हूवा स्वतःही अर्थात् आपही उत्पन्न हो करकें पडनेंसें मत्स्यवत् सचेतन है तथा शीतकालमें बहुत शीतके पडते हूये नदी आदीकोंमें अल्पके हूआं अल्प अरु बहुतके हुआं बहुत,उष्मा देखते हें,सो उष्मा सजीव हेतुकही है. अल्पबहुत मिलित मनुष्योंके शरीरोंसें जैसें अल्प बहुत उष्म होता है. जलमें शीत स्प

शीही हैं, ऐसें वैशेषिक कहते है, तथा शीतकालमें शीतके बहुत पडनेसें प्रात कालमे तलावादिकोके पश्चिम दिशामे खडे हो कर जब तलावादि देखिये, तदा तिस जलसेंही निकलता हूआ वाष्पका समूह दिखता है, सो भी जीवहेतुकही है, तिसका प्रयोग ऐसे है कि शीतकालमें जो वाष्प है, सो उष्ण स्पर्शवाली वस्तुसे होता है. वाष्प होनेसें शीत कालें शीत जल करकें सींचे हूए मनुष्य शरीर वाष्पवत् अरु जो उकुडिका कूडे कचवरमे से धूआ वाष्प निकलता है, तहांभी हम पृथिवीकायके जीव मानते है इन हेतुओसे जल सजीव सिद्ध होता है

प्रश्न —तेजस्कायमे जीव किस तरे सिद्ध होता है ?

उत्तर —जैसे रात्रिमे खद्योतका शरीर जीव शक्तिसे बना हूआ, प्रकाशवाला है, ऐसे अगारादिकभी प्रकाशमान होनेसें सचेतन है. तथा जैसे ज्वरकी उष्मा जीवके प्रयोग विना नहीं होती, ऐसेही अग्निमेंभी गरमी जीवोके विना नही है क्योकि मृतकके शरीरमे ज्वर कदापि नही होता है ऐसे अन्वय व्यतिरेक करके अग्नि सचित्त जाननी यहा यह प्रयोग है कि आत्माके सयोगसे प्रगट भया है अगारादिकोको प्रकाश परिणाम शरीरस्थ होनेसें खद्योत देह परिणामवत् तथा आत्मा सयोग पूर्वक शरीरस्थ होनेसे ज्वरोष्मवत् अगारादिकोमे उष्णता है ऐसेभी मत कहना कि सूर्यके उष्मके साथ अनेकातिक हेतु है. तो सूर्यादिकोमें जो उष्मा है, सो भी आत्मसयोग पूर्वकही हम मानते है, तथा अग्नि सचेतन है, क्योंकि यथायोग्य आहारके करनेसे वृद्धिआदि विकारके उपलंभ होनेसे पुरुषके शरीरवत् इत्यादि लक्षणो करके अग्निको सचेतनता है

प्रश्न —वायुकायमे (पवनमे) सचेतनताकी सिद्धि कैसे करोगे ?

उत्तर —जैसे देवताका शरीर शक्तिके प्रभाव करके. अरु मनुष्योका शरीर अजनादि विद्यामंत्रके प्रभाव करके अदृश्य हो जानेसे नेत्रोंसे नहीं दिखता, तोभी विद्यमान चेतना वाला है, ऐसे सूक्ष्म परिणाम होनेसे परमाणुकी तरे वायुकाय जो नेत्रोंसे नही दीखता तोभी विद्यमान चेतनावाला है तथा अग्नि करकें दग्ध पाषाण खद्गत अग्निवत् प्रयोग यह है कि चेतनावान् वायु है, विना दूसरायोके प्रेरणेसे, नियम करकें तिर्यग्ग

ति होनेसें, गवाश्वादिवत् तिर्यग्गतिके नियम करनेसें, परमाणुके साथ व्यभिचार नहीं. ऐसें वायु शस्त्र करकें अनुपहत सचेतन है.

५ अरु बनस्पतिमें तो प्रत्यक्ष प्रमाणसें जीव सिद्धही है. इस वास्ते यहां विस्तारसें नहीं लिखा. आगमभी सर्वज्ञका कथन करा हूआ पृथिवी, जल, अग्नि, पवन अरु बनस्पतिमें जीवका होनां कहता है. अरु जो कोइ द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय अरु पंचेंद्रियमें जीव नही मानते हैं, तो तिन मूढोंके न माननेसें कुछ हानी नहीं. यह संक्षेपसें जीवोंका स्वरूप लिखा है. जब विस्तारसें देखनां होवे, तब जैनमतके सिद्धांत देख लेने ॥ इति प्रथम जीवतत्त्वं संपूर्णं ॥

अथ दूसरा अजीव तत्त्व लिखते हैं. अजीव उसकों कहते हैं, कि जो जीवके लक्षणोंसें विपरीत होवे, जो ज्ञानसें रहित होवे, औ जो रूप, रस, गंध, अरु स्पर्शवाला होवे, नर अमरादि भवमें न जावे, अरु ज्ञानावरणीयादिक कर्मका कर्त्ता न होवे, अरु तिनोके फलका भोगने वाला न होवे, जडस्वरूप होवे, तिसकों अजीव कहते हैं, सो अजीव द्रव्य पांच प्रकारकें हैं उसका नाम कहते हैं, १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ पुद्गलास्तिकाय, ५ काल.

१ तिनमें जो धर्मास्तिकाय है, सो लोकव्यापी है, औ नित्य है, अवस्थित है, अरूपी है, असंख्य प्रदेशी है, जीव अरु पुद्गलकी गतिमें उपष्टंभक है, यद्यपि जीव अरु पुद्गल स्वशक्तिसें चलते हैं, तोभी चलनेंमें धर्मास्तिकाय अपेक्षा कारण है. जैसें मछी जलमें तरती तो अपनी शक्तिसें है, परंतु अपेक्षा कारण जल है. ऐसेंही जीव पुद्गलकों गति साहायक धर्मास्तिकाया है. जहां लगि यह धर्मास्तिकाया है, तहां लगि लोककी मर्यादा है. जे कर धर्मास्तिकाया न मानीयें, तो लोकालोककी मर्यादा न रहेगी. अरु जहां लगि धर्मास्तिकाया है, तहां लगि जीव पुद्गल गति करते हैं. इसका पूरा स्वरूप जैनमतके ग्रंथ पढेबिना नहीं जान सक्ता है ॥ इति ॥ १ ॥

२ दूसरा अधर्मास्तिकाय द्रव्य है. इसका सर्व स्वरूप धर्मास्तिकायकी तरें जाननां. परंतु इतना विशेष है, कि यह द्रव्य, जीव पुद्गलकों स्थिति साहायक है. जैसें पथिक जन जब चलता चलता थक जाता है, तब किसी वृक्षादिककी छायामें बैठता है, सो बैठता तो वो आपही है, परंतु आश्रयबिना

नही बैठ सक्ता है ऐसेंही जीव पुजल स्थित तो आपही होते है, परतु अपेक्षा कारण अधर्मास्तिकाय है ॥ इति अधर्मास्तिकाय ॥

३ तीसरा आकाशास्तिकाय द्रव्य है, इसका स्वरूपनी धर्मास्तिकायवत् जानना, परतु इतना विशेष है कि यह द्रव्य लोकालोक सर्वव्यापी है, अरु अवगाह दान लक्षण है, जीवपुजलके रहनेमे अवकाश दाता है, यह तीनो द्रव्य आपसमे मिले हूये है जहां लगि आकाशमे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय है,तहा लगि लोक है,अरु जहा केवल एकला आकाशही है, और कोइ वस्तु नही, तिसका नाम अलोक है इति आकाश द्रव्य

४ चउथा पुजलास्तिकाय द्रव्य है, पुजल नाम परमाणुओंकानी है,अरु जो परमाणुओका घट पटादि कार्य है, उसकोनी पुजलही कहते है, एक परमाणुमे एक वर्ण है, एक रस है, एक गध है, दो स्पर्श है, औ कार्यही जिनका लिंग है, वर्णसे वर्णातर, रससे रसातर, गधसे गधातर, स्पर्शसे स्पर्शातर हो जाते है यह परमाणु द्रव्यरूप करके अनादि अनंत है, पर्यायस्वरूप करके सादि सात है, इन परमाणुओका जो कार्य है, सो कोइक प्रवाहसे तो अनादि अनंत है, अरु कोइ सादि सातनी है, जो यह जड दीखता है, सो सर्व इन परमाणुओंका कार्य है सूकी हुइ वनस्पति सर्व अरु अग्नि आदिक शस्त्रो करकें परिणामातरको प्राप्त हूये पृथिव्यादिक सर्व पुजल है, समुच्चय पुजल द्रव्यमे पाच वर्ण, पाच रस, दो गध, आठ स्पर्श, पाच सस्थान, उसमे काला, नीला, रक्त, पीत, शुक्ल, यह पाच तो वर्ण है तीक्ष्ण, कडुआ, कषाय, खाटा, मीठा, यह पाच रस है सुगध, डुर्गंध, यह दो प्रकारकी गध है खरखरा अर्थात् कठोर, सुकोमल, हलका, नारी, शीत, उष्ण, चीकणा, रूखा, यह आठ स्पर्श है. इनसे अधिक जो वर्णादि है, सो सर्व इनहीके मिलनेसे हो जाते है इन पुजलोमे अनत शक्तिया अनत स्वनाव है १ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ नाव, इत्यादि तिस तिस निमित्तोके मिलनेसे विचित्र परिणाम हो जाते है इति पुजलद्रव्य ॥ ४ ॥

५ पाचमा कालद्रव्य है, सो प्रसिद्ध है यह पाच द्रव्य अजीव है, सो निमित्त जैन श्वेताबराचार्य श्रीसिद्धसेनदिवाकरकृत सम्मतितर्क ग्रथमें पाच लिखे है. सो कहते है, १ काल, २ स्वनाव, ३ नियति, ४ पूर्वकृत

कर्म, ५ पुरुषाकार. इन पांचोंमेंसूं एककों माने, तो वो मिथ्याज्ञान अरु मिथ्यादृष्ट है, अरु इन पांचोंके समवायकों माने, तो सम्यक्ज्ञान अरु सम्यक्दृष्ट है, इन पांच निमित्तोमेंसूं १ काल, २ स्वभाव, ३ नियति, इन तिनों निमित्तोंका स्वरूप क्रियावादीके मतमें लिख आये हैं. अरु चउथा पूर्वकृत कर्म, उनका स्वरूप आगें कर्मोंके स्वरूपमें लिखेंगें. अरु पांचमा पुरुषाकार, सो जीवके उद्यमका नाम है. इन पांचों निमित्तोंसें जगत्की प्रवृत्ति निवृत्ति हो रही है, इन निमित्तोंहीसें नरकादि गतियोमें जीव जाते हैं, अरु सुख दुःखका फल भोगते हैं, इन निमित्तोंके विना फलका दाता ईश्वरादिक कोइभी नहीं, जे कर कोइ वादी इन पांचो निमित्तोंके समवायकों ईश्वर माने, तब तो हमभी ईश्वर कर्त्ता मान लेवेंगें, क्योंकि जैनमतकी तत्त्वगीतामें लिखा है, कि अनादि जो द्रव्यमें द्रव्यत्व शक्ति है. सोइ सर्व पदार्थोंकों उत्पन्न करती है,औ लयभी करती है, सो शक्ति चैतन्याऽचैतन्यादि अनंत स्वभाव वाली है, तिसकों कर्त्ता ईश्वर माननेंसें जैनमतकी कुछ हानी नहीं है ॥ इति अजीवतत्त्वं संपूर्णं ॥ २ ॥

३ अथ पुण्यतत्त्व लिखते हैं. प्रथम तो पुण्य उपार्जन करनेका नव कारण हैं, "उक्तं च स्थानांगसूत्रे ॥ अन्नपुन्ने पाणपुन्ने वत्थपुन्ने लेणपुन्ने सयणपुन्ने मणपुन्ने वयपुन्ने कायपुन्ने नमोक्कारपुन्ने इति सूत्रं ॥" व्याख्याः—१ पात्रके तांइ अन्नका दान करनेसें जो तीर्थंकर नामादि पुण्य प्रकृतिका बंध होवे, तिसका नाम अन्न पुण्य है. ऐसेंही २ पीनेंकों जल देवे, ३ वस्त्र देवे, ४ रहनेकों स्थान देवे, ५ सोने बैठनेकों आसन देवे, ६ गुणिजनकों देख कर मनमें तोष धरे, ७ बचन करकें गुणिजनोंकी प्रशंसा करे, ८ काया करकें पर्युपासन अर्थात् सेवा करे, ९ गुणिजनकों नमस्कार करे. यह बात पुण्यकी जो कही, सो कुछ जैनीयोंकेही देनेसें नहीं, किंतु किसी मत वाला कोइ क्यों न हो, कोइभी अनुकंपा करकें जिसकों दान देवेगा, वो पुण्य उपार्जेगा, परंतु इतना विशेष है, कि पात्रकों जो दान देना है, सो पुण्य अरु मोक्ष इन दोनोकाही हेतु है, अरु जो अनुकंपा करकें सर्वजनोंकों देवेगा, सो केवल पुण्यही उपार्जेगा. जैनमतके किसी शास्त्रमें पुण्य करनां निषेध नहीं. क्योंकि जैनमतके ऋषभदेवादि चोवीश तीर्थंकर भये हैं, उनोंनेंभी दीक्षा लेनेसें पहिलां एक क्रोड, आठ लाख, सोनइये दिन दिन

प्रति एक वर्ष तांइ दीये है इसी कारणसे जैनमतमे प्रथम दानधर्म है तथा जैनमतके शास्त्रमे औरजी केई तरेंसे पुण्यका उपार्जन लिखा है.

अथ पुण्यका फल बेतालीस प्रकार करके जोगनेमे आता है, सो बेतालीस प्रकार लिखते है १ जिसके उदयसे जीव शाता जोगता है, सो शातावेदनीय, २ जिसके उदयसे जीव क्षत्रियादि उच्च कुलमे उत्पन्न होता है, सो उच्चगोत्र, ३ जिसके उदयसे जीव मनुष्य गतिमें उत्पन्न होता है, सो मनुष्यगति, ४ जिसके उदयसे जीव देवगतिमें उत्पन्न होता है, सो देवगति, ५ जिसके उदयसे जीव अपातराल गतिमे नियतदेश अनुश्रेणी गमन करता है, अरु नियत मर्यादापूर्वक अगोका विन्यास, अर्थात् स्थापपन करनेवाली नामकर्मकी प्रकृतिको आनुपूर्वी कहते है, उसमें जो मनुष्य गतिमे आने वाली जीवके उदयमें है, सो मनुष्यानुपूर्वी, ऐसेही ६ देवानुपूर्वी, ७ जिसके उदयसे जीव पचेंद्रिय पणा पाता है, सो पचेंद्रिय जाति. अथ पाच शरीर कहते है. ८ जिसके उदयसें जीव औदारिक वर्गणाके पुजलोंकों ग्रहण करके औदारिक शरीरकी रचना करता है, अर्थात् ओदारिक शरीर पणे परिणाम करता है, सो औदारिक शरीर नामकर्मकी प्रकृति है, ऐसेही ए वैक्रियक, १० आहारिक, ११ तैजस, १२ कार्मण, इन पाचो शरीरोकी प्रकृतियोका अर्थ कर लेना तथा अगोपाग तीन है, उसमे अंग सो शिर प्रमुख, उपाग सो अंगुली प्रमुख है, शेष अगोपांग है, यथा १ शिर, २ गती, ३ पेट, ४ पीठ, ६ दो बाहु, ७ दो साथला, यह आठ अंग है, तथा अगुल्यादि उपाग है, शेष नखादि अगोपाग है, जिसके उदयमे जीवको आदिके तीन शरीरोंमें अगोपागकी उत्पत्ति होवे, तिसका नाम तिन शरीरके अगोपाग है सो यह है, १३ औदारिक अगोपाग, १४ वैक्रिय अगोपाग, १५ आहारक अगोपाग. १६ जिसके उदयमे जीव आदिका सहनन जिसका नाम वज्र रूषजनाराच है, तहा वज्र नाम कीलिका है, अरु रूषन नाम परिवेष्टन पट्ट अर्थात् उपर लपेटनेका हाड, तथा नाराच सो मर्कटबंध इन तीनो रूपो करकें जो उपलक्षित है, तिसको वज्ररूषननाराच सहनन कहते है हाडके सचय सामर्थ्यका नाम संहनन है, यह सहनन औदारिक शरीर वालोमेंही होता है, १७ जिसके उदयसे जी

वकों आदिके समचतुरस्त्र संस्थानकी प्राप्ति होवें. तहां सम है चारों अस्र जिसके तुल्य शरीर लक्षण युक्त प्रमाण सहित, ऐसा आद्य संस्थान सुंद राकार मनोहर होवे, सो समचतुरस्त्र संस्थान नाम कर्मकी प्रकृति जान नी. अब वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, यह चारों कहते हैं. तिनमें जिसके उदय सें १८ वर्ण कृष्णादिक, १ए रस तिक्तादिक, २० गंध सुरन्यादिक, २१ स्पर्श मृदुआदिक, यह चारों शुभ होवे, सो वर्णादि चार प्रकृति जाननी. २२ जिस कर्मप्रकृतिके उदयसें जीवका शरीर न तो भारी होवे, जिसकों जीव उठा न सके, अरु नतो हलका होवे, जो पवन करकें उड जावे, तिसका नाम अगुरु लघु है, तिसकी प्राप्ति होवे, सो अगुरु लघु नामकर्म, २३ जिसके उदयसें प्राणी परकों हणे, अरु शरीरकी आकृति ऐसी होवे जिसके देखनेंसें दूसरोंकों अभिभव होवे, सो पराघात नाम कर्म, २४ जिसके उदयसें उच्छ्वासन लब्धि अर्थात् उच्छ्वास लेनेकी शक्ति, आत्माकों होती है, सो उच्छ्वास नामकर्म, २५ जिसके उदयसें जीव प्रका श अरु आतप शरीर पावे है, तिसका नाम आतप नामकर्म, २६ जिसके उदयसें जीव, उष्ण प्रकाशरूप उद्योत वाला शरीर पाता है, सो उद्योत नामकर्म, २७ जिस कर्मके उदयसें जीव विहायनाम आकाशका है, तिसमें जो गति सो विहायोगति, सो राजहंस सरखी गति होवे, सो सुविहायोगति नामकर्म, २८ जिसके उदयसें जीवके शरीरके अंगोपांगा दिकोंकों नियतस्थानमें स्थापने वाला सूत्रधार (कारीगर) समान अर्था त् नसा, जाल, माथेकी खोपडीके हाड, आंख, कानके पडदे, केश, नखा दि सर्व शरीरके अवयवोंकों रचनेवाला निर्माण नामकर्मकी प्राप्ति हो वे, सो निर्माण नामकर्म, २ए जिसके उदयसें जीवकों त्रस पणेकी प्रा प्ति होवे, उष्णादि करकें तप्त हूआ विवक्षित स्थानसें छायादिकमें जा नां, और दो इंद्रियादिक पर्यायका जो फल भोगनां पावे, सो त्रस ना मकर्म, ३० जिसके उदयसें जीव बादर अर्थात् स्थूल शरीर वाला होता है, सो बादर नामकर्म, ३१ जिस कर्मके उदयसें जीव ब पर्याप्ति पीछें कही है वो पूर्ण करता है, सो पर्याप्तनामकर्म, ३२ जिसके उदयसें प्रत्येक एक एक जीवके एक एक शरीर होता है. सो प्रत्येक नामकर्म, ३३ जिसके उदयसें जीवकों हाडादि अवयव स्थिर निश्चल होते हैं, सो स्थि

र नामकर्म, ३४ जिसके उदयसे जीवके शिर प्रमुख अवयव शुन होते हैं, सो शुननामकर्म, ३५ जिसके उदयसे जीव सौनाग्यवान् होता है, सो सुनगनामकर्म, ३६ जिसके उदयसे जीवका स्वर कोकिलावत् रमणिक होवे, सो सुस्वर नामकर्म, ३७ जिसके उदयसे जीवका उपादेय वचन होवे, जो कुछ कहे, सो हो जावे, सो आदेय नामकर्म, ३८ जिसके उदयसे जीवकी विशिष्ट कीर्त्ति (यश) जगत्में विस्तरे, सो यशोनामकर्म, ३९ जिसके उदयसे जीवको चोसठ इंद्र पूजा करते है, अरु उपदेश द्वारा धर्म तीर्थका कर्त्ता होवे, सो तीर्थंकर नामकर्म, ४० तिर्यंचोका आयु, ४१ मनुष्यायु, ४२ देवायु आयु उसको कहते हैं कि जिसके उदयसे तिर्यंचादि नवमें जीव जाता हे,जिस्से यह पूर्वोक्त तीन आयुकी जीवको प्राप्ति होती हे, ए तीन आयुकी प्रकृति जाननी यह बैतालीस प्रकार करकें पुण्य फल नोगनेमे आता है ॥ इति पुण्यतत्त्व संपूर्ण ॥ ३ ॥

४ अथ चौथा पापतत्त्व लिखते है. पाप उसको कहते है, कि जो आत्माका आनंद रस पीवे, यह पाप जो हे, सो पुण्यसे विपरीत नरकादि फलका प्रवर्त्तक होनेसें अशुन है, आत्माके साथ संबंध है, कर्मपुज्ञलरूप हे, यद्यपि बंधतत्त्वके अंतर्नूतही पुण्य पाप हे, तोनी न्यारे जो कहे हे, सो पुण्य पाप विषे नानाविध परमतनेद निरासार्थ है, सो परमत यह हे, सो कहते है कोइक मत वालोका यह कहना हे, कि एक पुण्यही है, परंतु पाप नही. तथा कोइक मतवाले कहते है, कि एक पाप ही है, परंतु पुण्य नहीं तथा कोइक कहते है कि पापपुण्य दोनो आपसमे अनुविद्ध स्वरुप है, मेचक मणि सरीखे, सो मिश्र सुख दुःख फलके हेतु हे, इस वास्ते साधारण पुण्य पाप एक वस्तु हे कोइक ऐसे कहते हे कि मूलसेंही कर्मही नही है, सर्व जगत्मे स्वनावसेंही विचित्रता सिद्ध है यह सर्व पूर्वोक्त मत मिथ्या हैं, क्योंकि सुख दुःख दोनो न्यारे न्यारे अनुनवमे आते है, तिस वास्ते तिनके कारणनूत पुण्य पापनी स्वतंत्रही अंगीकार करणे योग्य है, परंतु एकिला पाप वा एकिला पुण्य वा मिश्रित मानने ठीक नहीं

अथ कर्मानाववादी नास्तिक अरु वेदांतिक कहते हे.कि पुण्य पाप लो

हैं, सो आकाशके फूल सदृश असत् जानने; परंतु सत् नहीं, तो फेर पुण्य पापके फल भोगनेके स्थान नरक स्वर्ग क्यों कर माने जावे?

उत्तरः—पुण्य पापके अभावसें सुख दुःख निर्हेतुक होनेमें उत्पन्न होने चाहियें, सो प्रत्यक्ष विरोध है, सोइ दिखाते हैं, मनुष्यपणा सदृश है, तो भी कोइ स्वामी है, कोइ दास है, कोइ अपणाही उदर भर सक्ते हैं, कोइ अपणाभी उदर नहीं भर सक्ते हैं, कोइ देवताकी तरें निरंतर सुख भोग विलास करते हैं, कितनेक नारकीकी तरें दुःख भोग रहे हैं, इस वास्ते अनुभूयमान सुख दुःखांके निबंधनभूत पुण्य पाप जरूर मानने चाहियें. जब पुण्य पाप माने, तब तिनोंके उत्कृष्ट फल भोगनेके स्थान जो नरक स्वर्ग है, सोभी माने गये. जे कर न मानोगे, तब अर्द्ध जरतीय न्यायका प्रसंग होवेगा, आधा शरीर बूढा,आधा जुवान. इसमें यह प्रयोग अर्थात् अनुमानभी है, सुख दुःख कारण पूर्वक हैं, अंकुरवत् कार्य होनेसें इसीवास्ते जे सुख दुःखके कारण हैं, सो मानने चाहियें. जैसें अंकुरका बीज.

पूर्वपक्षः—नीलादिक जे मूर्त्त पदार्थ हैं, जैसें वे नीलादिक स्वप्रतिभासि अमूर्त्त ज्ञानके कारण हैं, ऐसेंही अन्न, फूल माला, चंदन, स्त्रीयादिक मूर्त्त दृश्यमानही सुख अमूर्त्तोंके कारण होवेंगे. सर्प विष, कंटकआदिक दुःखोंके कारण हैं, तो फेर काहेकों अदृष्ट पुण्य पापोंकी कल्पना करते हो?

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि इस कहनेसें व्यभिचार है, तथाहि ॥ दो पुरुषोंके पास तुल्य साधनभी है, तोभी फलमें बडा भेद दिखता है, तुल्य अन्नादिकें भोगनेमेंभी किसीकों आल्हाद अर्थात् हर्ष दिखता है अरु दूसरेकों रोगोत्पत्ति देखते हैं,यह फलभेद अवश्य सकारण है, नहीं तो नित्य सत् नित्य असत् होनां चाहियें, क्योंकि जो वस्तु कार्य कदे होवे, कदे न होवे, सो कारणके विना नहीं होता है, अथवा कारणानुमानसें कार्य पुण्य पाप जाने जाते हैं, तहां कारणानुमान यह है, कि दानादि शुभक्रियाका अरु हिंसादि अशुभक्रियाका फलभूत कार्य कारण होनेसें है.कृष्यादि क्रियावत्.जो इन क्रियायोंका फलभूत कार्य है, सो पुण्य पाप जानने. जैसें खेती करनेवालेकी क्रियाका फल शालि, यव, गेहुं, आदिक है.

पूर्वपक्षः—जैसें कृष्यादि क्रियाका दृष्ट फल शाल्यादिक है, तैसें दाना

दिक पक्षु हिंसादिक क्रियाकाभी श्लाघा मासनक्षी निर्दय आदि दृष्ट फ लही है, तो फेर काहेकों अदृष्ट धर्माधर्मका फल कल्पना करना? क्योंकि लोक जो है सो बाहुल्यता करकें दृष्ट फलमेंही प्रवृत्त होते है, खेती व णिज्यादि हिंसादिक क्रियामें बहुत लोक प्रवृत्त होते है, अरु अदृष्ट दान फलादि क्रियामे थोडे लोक प्रवृत्त होते है इस वास्ते कृषि हिंसादि अ शुभ क्रियायोका अदृष्टफल पापरूप हम नही मानते

उत्तरपक्ष –जे कर तुमारा कहना ठीक होवे, तब तो परभवमे फलके अभावसें मरणके अनंतरही सर्व जीव विना यत्नके मोक्ष हो जावेगे, त ब तो प्राय संसार, शून्य हो जावेगा, तब ससारमे दुःखी कोइभी न होवे गा, दानादि शुभक्रियाके करने वाले तथा तिसका शुभ फल भोगने वाले ही रहने चाहिये, परतु ससारमे दुःखी बहुत दीखते है, अरु सुखी थोडे दीखते है, तिस करकें जाना जाता है कि जे कृषी,वाणिज्य, हिंसादिक्रि या निबंधन अदृष्टपाप रूप फल, यह दुःखित जीवोंकों है, अरु सुखी जीवोको दानादि अदृष्ट धर्मका फल है

वादी कहता है कि जो सुखी है, वो हिंसादि क्रियासे है, अरु जो दु खी है, वो धर्म दानादिकके फलसे है ऐसे क्यो न हो जावे?

उत्तर –ऐसे नही होता है, क्योंकि अशुभक्रिया हिंसादिकके करने वालेही बहुत है, अरु शुभक्रिया दानादिकके करने वाले थोडे है, यह कारणानुमान है अथ कार्यानुमान कहते है कि जीवोको आत्मत्वके अ विशेषभी हूआ नर पश्वादिकोकी देहोंमे कार्य होनेसे विचित्रताका कारण है, जैसे घटका दंम, चक्र, चीवरादि सामग्री सयुक्त कुंभकार तथा ऐसे भी मत कहना कि दीखते जो है माता, पिता, सोइ इस देहके कारण है नतु पुण्य पाप, ऐसेभी मत कहना क्योंकि माता, पिता, एक सरीखेभी है, तोभी पुत्रोके देहमे विचित्रता देखते है, सो विचित्रता अदृष्ट (शुभा शुभ कर्मके) विना नही हो सक्ती है, इस वास्ते जो शुभ देह है, सो पु ण्यका कार्य है, अरु जो अशुभ देह है, सो पापका कार्य है, यह कार्या नुमान है सर्वज्ञके वचन प्रमाणसे पुण्य पापकी सत्ता सिद्धही है, विशे षार्थी पुरुषने विशेषावश्यककी टीका देख लेनी

पाप अढारह प्रकारसे बंधाता है. सो व्यासी प्रकारसे भोगनेमें आता

है, सो जेद यह है, कि पांच ज्ञानावरण, पांच अंतराय, नव दर्शनावरण, मोहनीकी छवीश प्रकृति, नामकर्मकी चउत्तीस प्रकृति, एक अशातावेदनी, एक नरकायु, एक नीचगोत्र, यह सब मिल कर ब्यासी जेद हूये. इनका विवरा लिखते हैं.

अथ ज्ञानावरण कर्मकी पांच प्रकृति. प्रथम ज्ञान पांच प्रकारका है, उसमें मतिज्ञान, औ श्रुतज्ञान, ए दो अभिलाप प्लावितार्थ ग्रहणरूप ज्ञान हैं, तथा तीसरा इंद्रियोंकी अपेक्षा बिना आत्माकों साक्षात् अर्थके ग्रहणे वाला ज्ञान, सो अवधिज्ञान, चउथा मनमें चिंतित अर्थका साक्षात् करनेवाला ज्ञान, सो मनःपर्यवज्ञान, पांचमा केवल संपूर्ण निःकलंक जो ज्ञान, सो केवल ज्ञान. इन पांचों ज्ञानोंका जो आवरण सो ज्ञानावरण है, १ मतिज्ञानावरण, २ श्रुतज्ञानावरण, ३ अवधिज्ञानावरण, ४ मनःपर्यव ज्ञानावरण, ५ केवलज्ञानावरण. उसमें १ जिसके उदयसें जीव निर्म्मति निःप्रतिजा होता है, सो मतिज्ञानावरण, २ जिसके उदयसें पठन करते जीवकों कुछजी न आवे, सो श्रुतज्ञानावरण, ३ जिसके उदयसें अवधि ज्ञान न होवे, सो अवधिज्ञानावरण, ४ जिसके उदयसें मनःपर्यवज्ञान न होवे, सो मनःपर्यवज्ञानावरण, ५ जिसके उदयसें केवलज्ञान न होवे, सो केवल ज्ञानावरण यह पांच प्रकृति पापरूप है.

अथ अंतराय कर्मकी पांच प्रकृति कहते हैं. १ जिसके उदयसें देनेवाली वस्तुजी है, गुणवान् पात्रजी है, दानका फलजी जाना है, परंतु दान नहीं दे सक्ता है,सो दानांतराय,२ जिसके उदयसें देने योग्य वस्तुजी है, अरु दाताजी बहुत प्रसिद्ध है, तथा मांगने वालाजी मांगनेमें बडा कुशल है,तोजी मांगने वालेकों कुछजी न मिले,सो लाजांतराय,३ जिसके उदयसें एक वार जोगने योग्य वस्तु जो आहारादिक, सो विद्यमानजी है, तोजी जोग नहीं सक्ता, सो जोगांतराय, ४ जिसके उदयसें वारंवार जोगने योग्य वस्तु जो शयन अंगनादि, सो विद्यमानजी है, तोजी जोग नहीं सक्ता, सो उपजोगांतराय, ५ जिसके उदयसें अनुपहत पुष्टांगवालाजी शक्ति विकल हो जाता है, सो वीर्यांतराय यह पांच प्रकृति पापरूप है.

अथ दर्शनावरण कर्मकी नव प्रकृति लिखते हैं. इहां जो सामान्य बोध है,तिसका नाम दर्शन है,अरु जो विशेष बोध है,सो ज्ञान है,तहां ज्ञानका

जो आवरण, सो ज्ञानावरण, सो तो पूर्व लिख आये है अरु जो दर्शन का आवरण है, सो दर्शनावरण इनके नव भेद है, तिनमे जो आदिके चार भेद है, सो मूलसेही दर्शन लब्धियोके आवरक होनेसे आवरण शब्द करके कहे जाते है जैसे १ चक्षुदर्शनावरण २ अचक्षुदर्शनावरण, ३ अवधिदर्शनावरण, ४ केवलदर्शनावरण अरु निद्रादि जे पाच है, सो दर्शनावरण क्षयोपशम करके लब्ध आत्मलाभका दर्शन लब्धियोका आवरक है, इसका भावार्थ यह है कि चक्षु करके सामान्यग्राही जो बोध, सो चक्षुदर्शन, सो जिसके उदय करके तिसकी लब्धिका विघात करे, सो चक्षुदर्शनावरण ऐसेही अचक्षु करके चक्षु वर्जके शेष चार इंद्रिय तथा पाचमा मन, इन करके जो दर्शन, सो अचक्षुदर्शन, तिसका जो आवरण, सो अचक्षुदर्शनावरण, तथा रूपी पदार्थोका जो मर्यादापूर्वक देखना, सामान्यार्थका ग्रहण करना सो अवधिदर्शन, तिसका जो आवरण, सो अवधिदर्शनावरण तथा वर प्रधान, क्षायक होनेसे केवल अनंत ज्ञेयके होनेसे जो अनंत दर्शन, सो केवलदर्शन, तिनका जो आवरण,सो केवलदर्शनावरण. अरु जो चैतन्यको सर्व तरेसे अतिकुत्सित पणा करे, सो निद्रा दर्शन उपयोग सामान्य ग्रहण रूप, तिसका विघ्न करने वाली, सो निद्रा जाननी तिस निद्राके पाच भेद है १ निद्रा, २ निद्रानिद्रा, ३ प्रचला, ४ प्रचलाप्रचला, ५ स्त्यानर्द्धि तहा १ निद्रा उसको कहते है, कि जो चपटी बजानेसे जाग उठे,सो सुखप्रतिबोधनिद्रा, जिसके उदयसे ऐसी निद्रा आवे तिसका नाम निद्रा है तथा २ अतिशय करके जो निद्रा होवे, उसका नाम निद्रानिद्रा है, जैसेकि बहुत हलानेसे दुखें जागे, कपडे खेचनेसे जागे, जिसके उदयसे ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मप्रकृतिका नाम निद्रानिद्रा है तथा ३ जो बैठेको खडेको जो निद्रा आवे तिसका नाम प्रचला है, जिस कर्मके उदयसे ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मका नाम प्रचला है, तथा ४ जो चलतेको निद्रा आवे, तिसका नाम प्रचलाप्रचला है, जिस कर्मके उदयसे ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मकी प्रकृतिका नामभी प्रचलाप्रचला है, तथा ५ स्त्याना नाम है पिंडीभूतका सो पिंडीभूत है ऋद्धि आत्माकी शक्ति जिस निद्रामें सो स्त्यानर्द्धि, तिस निद्रमे वासुदेवके बलसे आधा बल होता है, जिस कर्म

के उदयसें ऐसी निंद आवे, तिसका नाम स्त्यानर्द्धिकर्म है, इस निद्रा में कितनेक कार्यभी कर लेता है, परंतु उसकों कुछ खबर नहीं रहती है.

अथ मोहकर्मकी प्रकृति लिखतेहैं. मोहे तत्त्वार्थ श्रद्धानकों विपरीत करे, सो मोहनीय है. उसमें १ मिथ्यात्वही जो मोह, सो मिथ्यात्व मोहनीय कहीयें, मोह कर्मकी उत्तरप्रकृति मिथ्यात्व हैं, यद्यपि यह मिथ्यात्व १ अभिग्रहिक, २ अनभिग्रहिक, ३ सांशयिक, ४ अभिनिवेशिक, ५ अनाभोगादि अनेक प्रकारसें है, तोभी यथावस्थित वस्तुतत्त्वके अश्रद्धानसें सर्वभेदोंका एकही मिथ्यात्वरूप गिना जाता है. यह प्रथम मिथ्यात्व मोह कर्मकी प्रकृति है, अरु सोला भेद, कषाय मोहनीयके हैं. क्योंकि यह क्रोधादिकभी तत्त्वश्रद्धानसें भ्रष्ट कर देते हैं, सो सोला भेद ऐसें हैं, १ अनंतानुबंधी क्रोध, २ अनंतानुबंधी मान, ३ अनंतानुबंधी माया, ४ अनंतानुबंधी लोभ. ऐसेंही अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ. ऐसेंही प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ. ऐसेंही संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ. यह सर्व सोलह भेद कषायमोहनीयके हैं.

जे क्रोधादिक अनंत संसारके मूल कारण हैं, अरु अनंतभवानुबंधि जिनका शील है, उसमें जिसका स्वभाव ऐसा है, कि जैसी पथ्थरकी रेखा; जिसके साथ क्लेश हो जावे, फेर जहां लगि जीवे, तहां लगि रोष न छोडे, सो अनंतानुंबंधि क्रोध है. तथा मान, पथ्थरके स्थंभ सरिखा कदापि नमे नहीं, तथा माया, बांसकी जड समान, कदापि सरल न होवे, तथा लोभ, कृमीके रंग समान, कदापि दूर न होवे, ऐसें क्रोध, मान, माया, अरु लोभ करकें संयुक्त जो परिणाम है, तिसका नाम अनंतानुबंधि क्रोधादिक कर्म प्रकृति है. तथा अप्रत्याख्यान यहां नञ् अल्पार्थ वास्ते है, सो थोडाभी प्रत्याख्यान जिसके उदय होनेसें नहीं होता है, उसकों अप्रत्याख्यान कहते हैं. इसका स्वरूप कहते हैं क्रोध, पृथिवीकी रेखा समान, मान, हाडके स्थंभ समान, माया, मेषके सींग समान, लोभ, कर्दमके दाग समान, एक वर्ष तांइ रहता है. तथा जिसके उदयसें सर्व विरतिपणा जीवकों न आवे, सो प्रत्याख्यानावरण कषाय है. उसमें क्रोध, रेणुकी रेखा समान, मान, काष्ठके स्थंभ समान, माया, गौके मूतने समान, लोभ, खंजनके रंग समान. चार मास जिसकी रहनेकी स्थिति है. त

था संज्वलनका चार कषाय कहते है, क्रोध, पाणीकी लकीर समान, मान, तिनिशलताका स्थंन समान, माया, वासकी छिलक समान, लोभ, हरिद्रके रंग समान, यह चारों एक पक्षकी स्थिति वाले है, यह सोला कषायका स्वरूप लिखा अथ नवनो कषाय कहते है

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा यह नव नोकषाय मोहनीयकी प्रकृति है नोशब्द सहकारी अर्थमे है कषायोंके सहचारि जो होवे, उनकों नोकषाय कहते है. अब इन नव प्रकृतिका स्वरूप लिखते है १ जिसके उदयसे स्त्री, पुरुषकी अभिलाषा करती है, जैसे पित्तके उदयसे मीठी वस्तुकी अभिलाषा होती है. फुफक अग्नि समान स्त्रीवेदक उदय है, जैसे फुफक अग्नि फोलनेसे वृद्धिमान् होती है, ऐसेही स्त्रीके स्तन कक्षादिके स्पर्शनेसे स्त्रीवेदका प्रबल उदय होता है, तथा जिसके उदयसे पुरुष, स्त्रीकी अभिलाषा करता है, सो पुरुषवेद जानना जैसे कफकें उदयसे खाटी वस्तुकी अभिलाषा होती है, यह पुरुषवेदका विकार ऐसा है कि जैसी तृणकी अग्नि क्योंकि तृणकी अग्नि एक वारही प्रज्वलित होती है, अरु तत्काल शातभी हो जाती है, ऐसें पुरुषवेदभी एक वारही तत्काल उदय हो जाता है, फेर शातभी तत्काल हो जाता है. तथा जिसके उदयसे स्त्री, अरु पुरुष इनदोनोकी अभिलाषा उत्पन्न होवे, सो नपुसक वेद है, जैसें पित्त अरु कफके उदयसे खट मीठी वस्तुकी अभिलाषा होती है यह नपुसक वेदका उदय ऐसा है कि जैसा मोटे नगरके दाहकी अग्नि, यह तीन वेद है तथा जिसके उदयसे सनिमित्त निर्निमित्त हसना आवे, सो हास्यनामा मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा जिसके उदयसे रमणिक वस्तुओमें रमे, खुशी माने, सो रतिनामा मोहकर्मकी प्रकृति है तथा इस्से जो विपरीत होवे, सो अरतिनामा मोहकर्मकी प्रकृति है तथा जिसके उदय करके प्रियविप्रयोगादिमें विकल मन, शोचन, क्रदन, परिदेवनादि करता है, सो शोकनामा मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा जिसके उदयसे सनिमित्त अथवा विना निमित्तके भयभीत होवे, सो भयनामा मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा गंदादि मलिन वस्तुके देखनेसे जो नाक चढाना है, तिसका जो हेतु है,

सो जुगुप्सानामा मोहकर्मकी प्रकृति है. यह नव नोकषाय मोहकर्मकी प्रकृति हैं, यह सर्व पैंतालीस भेद हुये.

अथ नामकर्मकी चउत्तिस प्रकृति पापरूप हैं, उसका नाम कहते हैं. १ नरक गति, २ तिर्यंचगति, ३ नरकानुपूर्वी, ४ तिर्यंचानुपूर्वी, ५ एकेंद्रिय जाति, ६ द्वींद्रियजाति, ७ त्रींद्रियजाति, ८ चतुरिंद्रियजाति, १३ पांच संहनन, १८ पांच संस्थान, १९ अप्रशस्त वर्ण, २० अप्रशस्तगंध, २१ अप्रशस्त रस, २२ अप्रशस्त स्पर्श, २३ उपघात, २४ कुविहायोगति, २५ स्थावर, २६ सूक्ष्म, २७ अपर्याप्त, २८ साधारण, २९ अथिर, ३० अशुभ, ३१ असुभग, ३२ दुःस्वर, ३३ अनादेय, ३४ अयशःकीर्ति.

इनका स्वरूप ऐसे हैं. १ नरकगति उसकों कहते हैं कि जिसके उदयसें नारकी नाम पडे, अरु नरकगतिमें ले जावे, २ ऐसेही तिर्यंचगतिभी जान लेनी, तथा ३ जिसके उदयसें नरकगतिसें जाते हूये जीवकों दो समयादि विग्रहगति करकें अनुश्रेणीमें नियत गमन परिणति होवे, सो नरकगतिके सहचारी होनेसें नरकानुपूर्वी कहियें. ४ ऐसेही तिर्यंचानुपूर्वी भी जान लेनी. तथा ५ जिसके उदयसें एकेंद्रिय जो पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, बनस्पति इनमें जीव उत्पन्न होता है, सो एकेंद्रिय जाति. ६ ऐसेही द्वींद्रिय जाति, ७ त्रींद्रियजाति, ८ चतुरिंद्रिय जाति.

तथाआद्य संहनन वर्जके शेष, ऋषभनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलिका, सेवार्त्त, यह पांचो, संहननोंके नाम हैं. इनका स्वरूप ऐसा है कि "ऋषभ परिवेष्टनपट्टः नाराच उभयतोमर्कटबंधः" दोनो हाडोंकों दोनों पासें मर्कटबंधन बांधके पट्टेकी आकृति समान हाडकी पट्टी उपर वेष्टन जिसके है, सो दूसरा ऋषभनाराच संहनन है. तथा वज्र ऋषभ करकें हीन दोनों पासें मर्कटबंध युक्त, तीसरा नाराच नामक संहनन है, तथा एक पासें मर्कट बंध अरु दूसरे पासें कीलि करकें वींध्या हूआ हाड, यह चउथा अर्धनाराचनामा संहनन है, तथा ऋषभ अरु नाराच, इन करकें वर्जित मात्र कीलि करकें बींधे हूये दोनों हाड, ऐसा जो हाडका संचय, सो पांचमा किलिका नामा संहनन है, तथा दोनो हाडका स्पर्श पर्यंत लक्षण है जिसमें, अरु मूठी चांपी करानेमें आर्त्त (पीडित) सो सेवार्त्त नामा संहनन है.

तथा १८ आद्य संस्थान वर्जके १ न्यग्रोध परिमंडल, २ सादि, ३ वामन,

४ कुब्ज, ५ हुंमक, यह पाच संस्थान इनका स्वरूप लिखते है तहा ' न्यग्रोधवत् बडवृक्षकी तरे परिमंडल, न्यग्रोधपरिमंडल जैसें बडवृक्ष उप रि संपूर्ण अवयववाला होता है, अरु हेठे तैसे नही होता है, तैसेही यह संस्थान नाभिके उपरि तो विस्तार बाहुल्य संपूर्ण लक्षणवाला है, अरु नाभिके हेठे संपूर्ण लक्षण नही, सो न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान दूस रा है २ तथा सादि आदि इहा उचपणा नाभिसे हेठला देहका विभाग, सो लक्षणो करके पूर्ण, अरु नाभिसे उपरि लक्षण विसवादी होवे,तिसका नाम सादिसस्थानहै तथा ३ हाथ, पग, शिर, ग्रीवा, यथोक्त लक्षणादि यु क्त, अरु शेष उदरादिरूप कोष्ठ शरीरमध्य,लक्षणादि रहित, सो वामननामा सस्थान है ४ तथा उर उदरादि,लक्षण युक्त होवे, अरु हाथ पगादि लक्ष णों रहित होवे, सोकुब्जसस्थान है, ५ तथा जिसके शरीरका एक अवय वभी सुदर न होवे, सो हुंमसस्थान जान लेना यह पाचसस्थान

२२ जिसके उदयसे वर्णादि चार अप्रशस्त होवे, सो कहते है कि जो अति बीभत्स दर्शन, कृष्णादि वर्ण वाला प्राणी होता है, सो अप्रशस्त वर्णनाम सो वर्ण, कृष्णादि भेदो करके पाच प्रकारका है, तिनो करके जो जीव युक्त होवे, सो अप्रशस्त वर्णनाम ऐसेही जिसके उदयसे कुथि त मृतमूशकादिवत् दुर्गंधता प्राणीयोके शरीरमे होवे, सो अप्रशस्तगंधनाम तथा जिसके उदयसे प्राणीयोकी देहमे रसनेंद्रियको दुःखदायी स्वभाववाला कौडीतोरीकी तरे तिक्त कटुकादि ऐसा असार रस होवे, सो अप्रशस्तरस नाम तथा जिसके वशसे स्पर्शेंद्रियको उपतापका हेतु ऐसा कर्कशादि स्प र्शविशेष, जीवोके देहमे होवे, सो अप्रशस्तस्पर्शनाम यहवर्णादिचार

२३ तथा जिसके उदयसे अपणेही शरीरके अवयवो करकें प्रतिजिह्वा, गल, वृंद, लंबक, चोर दातादिक शरीरके अदर वर्द्धमान हो करके शरीर हीको पीडा देते है, तिसका नाम उपघातनाम तथा २४ जिसके उदय से जीवोकों खर उष्ट्रादिककी तरे चलना, अप्रशस्त होवे, सो कुविहायोगति नाम तथा २५ जिसके उदयसे पृथिवी आदिक एकेंद्रिय स्थावरकायमे प्राणी उत्पन्न होता है, अरु स्थावरनामसें कहे जाते है, सो स्थावरनाम. २६ जिसके प्रभावसे लोकव्यापि सूक्ष्म, पृथिवी आदि जीवोमें जीव उ त्पन्न होता है, सो सूक्ष्मनाम २७ जिसके उदयसे आहार पर्याप्ति आ

दिक पूर्वोक्त पर्याप्ति पूरी न होवे, सो अपर्याप्तनाम. २८ जिसके उदयसें अनंत जीवोंका साधारण एक शरीर होवे, सो साधारण नाम. २९ जिसके उदयसें जिह्वादि अवयव, शरीरमें अस्थिर होवे, सो अस्थिर नाम. ३० जिसके उदयसें नाभिके हेठले अवयव अशुभ होवे, सो अशुभ नाम. क्योंकि किसीकों हाथ लग जावे, तो रोष नहीं करता, परंतु पग लगनेसें क्रोध करता है, इस वास्ते अशुभनाम है. ३१ जिसके उदयसें जीवकों जो जो देखे, तिस तिसकों वो जीव अनिष्ट लगे, उद्वेगकारी होवे, सो असुभगनाम. ३२ जिसके उदयसें कठोर, भिन्न, हीन, दीन, स्वर वाला जीव होवे, सो दुःस्वरनाम. ३३ जिसके उदयसें चाहो युक्तियुक्तभी बोले, तोभी तिसका कहनां कोइ न माने, सो अनादेय नाम. ३४ जिसके उदयसें जीव, ज्ञान विज्ञान दानादिक गुण युक्तभी है, तोभी जगत्में उसकी यश (कीर्त्ति) नहीं होती बलके उलटी निंदा जगत्में होती है, सो अयशःकीर्त्तिनाम ॥ इति नामकर्मकी चउत्तीस पापप्रकृति कही.

जिसके उदयसें जात्यादि करकें विकल जीव होता है, सो नीचगोत्र जाननां. नीचगोत्र उसकों कहते हैं, कि जो अधम कैवर्त्त,चांडालादि, "कुलं गूयते संशब्द्यतेऽनेन हीनोयमजातिरित्यादि शब्दैरिति गोत्रं कुलं नीचमिति विशेषणाऽन्यथानुपपत्त्या नीचैर्गोत्रमित्यर्थः"

प्रश्नः– यह जो तुम नीच गोत्रके उदयसें नीच कुल कहते हो, तिनोंके साथ खान, पान, नहीं करते हो, तिनोंकी छूत मानते हो, अरु निंदा जुगुप्साभी करते हो, यह तुमारी बडी अज्ञानता है, क्योंकि मनुष्यत्व धर्म करकें सर्व सरीखे हैं, एक सरीखे हाथ पगादि अवयव हैं, तो फेर एककों उंच माननां, तथा एककों नीच माननां, यह केवल ब्राह्मण, और जैनीयोंनें बुरी रसम,भारतवर्षमें जारी कर रक्खी है,इस बातमें क्या युक्तिका अंग है? क्योंकि भारत वर्षीयोंकों वर्जके और सर्व द्वीप द्वीपांतरमें तथा भारतवर्षमेंभी सर्व विलायतादिकमें कोइभी उंच नीच नहीं गिनते हैं, सर्व निवाले प्यालेमें एक है, यह निःकेवल तुमारी मूढता अर्थात् अंध परंपरा है, वास्तवमें उंच नीच कोइभी नहीं.

उत्तरः–यह तुमारा कहनां बहुत वे समजका है, क्योंकि तुम हमारे कहेका अभिप्राय नहीं जानते, हमारा अभिप्राय तो यह है, कि जो इस

जगत्में होता है, सो निमित्तके विना नहीं होता है, यह जो भिल्ल, को ल, धागड, धाणक, गरीले, चमाल, थोरी, वाघरी, सासी, कंजर प्रमुख अ सन्य जातिके लोक है, सो जगलोमे गामोके बाहिर रहते है, अनेक प्रका रके क्लेश सहते है, काले, दुर्गंधवाले, रूपमे बुरे शरीर पाते है, सुंदर खा नेको नहीं मिलता है, यह सब इनके निमित्त है ? अथवा निमित्त नही ? जे कर कहोगेकि बिनाही निमित्तके होते है, तव तो तुम नास्तिक मती हो, इस नास्तिकमतीका खमन हम पूर्व लिख आये है,जे कर कहोगेकि सनि मित्तक है तव तो ऐसे असन्य जातिके कुलमे उत्पन्न होनेका कारणभी जरुर चाहिये जिसके उदयसे ऐसे कुलमे उत्पन्न होता है, तिसकाही नाम नीचगोत्र है, इस नीचगोत्रके प्रभावसे औरभी बहुत पाप प्रकृतियो का उदय है, जिस्से वे दुखादि क्लेश पाते है बुद्धिहीन, आलमस्वभाव, निर्दयता, कुत्सित आहार, पशुओकी तरे जगलोमे वास, धर्मकर्मसे परा ङ्मुख, सत्सग रहित, गम्यागम्यके विवेक रहित, भक्ष्याभक्ष्य पेयापेया विचार शून्य, इन सबका मुख्य कारण नीचगोत्र है, जैसेंही धनवान् और निर्धन ए दोने एक सरीखे सर्वथा नही हो सक्के है, तैसे नीचगोत्र वाले उचगोत्र वालोके सदृश नही हो सके हैं

जे कर कहोगे कि विलायतमे सर्व एक सरीखे है, तो इस वातमें क्या आश्चर्य है ? जहा उच नीच पणा नही, तहा सर्व जीवोने एक सरीखा गोत्रकर्मका बध करा है, इस वास्तेही सर्व सरीखे हुये है, परतु जहा उ च नीचपणा माना जायगा, तहा अवश्यमेव उच नीच गोत्रका व्यवहा र जरुर होवेगा, अरु जो हीन जातियोको बुरे जानते है, सो बुद्धिमान् नहीं, क्योकि बुराइ तो खोटे कर्मोंके करनेसे होती है, जे कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, हो कर खोटे कर्म, जीवहिंसा, जूठ, चोरी, परस्त्रीगमन, पर निंदा, विश्वासघात, कृतघ्न, मासभक्षण, मदिरापान, इत्यादिक जो कुकर्म करेगा, हम उनको जरुर बुरा मानेंगे, अरु नीच जातिवाला है, सोभी जे कर सुकर्म करेगा, दया, सत्य, चोरीका त्याग, परस्त्रीत्याग, इत्यादि करेगा, तो हम अवश्य उसको अछा कहगे, तो फेर हमारी समझ किसी रीति से बुरी है अरु जो उसके साथ खाते नहीं है, यह कुलरूढी है, अरु जो नीच जातिवालोकी निंदा (जुगुप्सा) करते है, वे अज्ञानी है, निंदा जु

गुप्सा तो किसीकीनी करनी न चाहियें. अरु जो तिनकी ठूत मानते हैं, वोनी कुलारूढी है, अरु जो मनुष्यत्व धर्म करकें सरीखे हैं, तोनी जैसें माता, वहिन, बेटी, नार्या, यह सब स्त्रीत्व स्वरूप करकें समान हैं, तोनी जैसें अगम्य गम्यका विनाग है, तैसेंही उंच नीचकानी विनाग है, यह व्यवहार ब्राह्मण, अरु जैनोने नहीं बनाया है, किंतु अछे बुरे कर्मोंके उदयसें है, यह परस्पर जातिका आहार न खानेका व्यवहार मिश्रदेशमेंनी था, इस वास्ते उंच नीच गोत्रके प्रनावसेंही उंच नीच जाति होती है.

तथा आयुः कर्ममेंसूं नरकायुकी प्रकृति पापमें गिनी जाती है,नरक शब्दकी व्युत्पत्ति ऐसें है, "नरान् प्रकृष्टपापफलनोगाय गुरुपापकारिणः प्राणिनोनरानित्युपलक्षणत्वात् कायंति शब्दयंतीति नरकास्तेष्वायुस्तन्नव प्रायोग्यसकलकर्मप्रकृतिविपाकानुनवकारणं प्राणधारणं यत्तन्नरकायुष्कं तद्विपाकवेद्यकर्म्मप्रकृतिरपि नरकायुष्कमिति ॥"

तथा वेदनीकर्मकी अशातावेदनी पाप प्रकृतिमें गनी जाती है, सो अशाता नाम दुःखका है, जिसके उदयसें जीव दुःख नोगता है, तिसका नाम अशातावेदनी है.

यह ज्ञानावरणी पांच, अंतराय पांच, दर्शनावरणी नव,मोहनी ठवीस, नामकर्मकी चौत्तीस, नीचगोत्र एक, नरकायु एक, तथा अशातावेदनी एक, सब मिल कर व्यासी नेदें पाप फल नोगनेमें आता है ॥ इति पाप तत्त्वंसंपूर्णं॥

अथ आश्रवतत्त्व लिखते हैं. मिथ्यात्वादि आश्रवके हेतु हैं. १ असत् देव, २ असत् गुरु, ३ असत् धर्म, इनों विषे सत् देव, सत् गुरु, अरु सत् धर्म, ऐसी जो रुचि, तिसका नाम मिथ्यात्व है. तथा हिंसादिकसें जो न निवृत्तनां, तिसका नाम अविरति है, तथा प्रमाद मद्यादि, तथा कषाय क्रोधादय, अरु योग मन वचन कायाका व्यापार, ये मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अरु योग, यह पांच पुनर्बंधक जीवके ज्ञानावरणीयादिक कर्मोंके बंधके हेतु हैं, इसकों जैन मतमें आश्रव कहते हैं. आश्रवें कर्म जिनोसेंती सो आश्रव. तब तो मिथ्यात्वादि विषयादिक मन,वचन,कायाका व्यापारही शुनाशुन कर्मबंधका हेतु होनेसें आश्रव होय. यह तात्पर्य है.

प्रश्नः—बंधके अनाव होये कैसें आश्रवकी उत्पत्ति है? जे कर कहोगे कि आश्रवसें पहिलां बंध है, तबतो वो बंधनी आश्रवहेतु विना नहीं

हो सक्ता है, क्योंकि जो जिसका हेतु है, सो तिसके अनाव हूया नहीं हो सक्ता है, जे कर होवेगा, तव अतिप्रसंग दूषण होवेगा

उत्तर —यह कहना असत् है, क्योंकि आश्रवको पूर्वबंध अपेक्षया कार्य पणा है, अरु उत्तरबंधापेक्षया कारणत्व है, ऐसेही बंधकोंनी पूर्वोत्तर आश्रवकी अपेक्षा करके कार्यत्व कारणत्व जाननां, बीजांकुरकी तरें बंधाश्रव दोनोंका परस्पर, कार्य कारण नावका नियम है, यहां इतरेतर दूषण नहीं है, प्रवाहापेक्षा करकें अनादि होनेसें

यह आश्रव पुण्य पापका बंधहेतु होने करके दो प्रकारें है, यह दोनो नेदोंके मिथ्यात्वादि उत्तर नेदोंके उत्कर्षापकर्ष, अर्थात् अधिक न्यून होनेसे अनेक प्रकार है इस शुनाशुन मन वचन कायके व्यापार रूप आश्रवकी सिद्धि अपणी आत्मामे स्वसंवेदनादि प्रत्यक्षसे है, अरु दूसरोंमे वचन काय व्यापारकी प्रत्यक्षसे सिद्धि है, औ शेषकी तिसके कार्य प्रनव अनुमानसे जाननी तथा आप्तप्रणीत आगमसे जाननी

अथ आश्रवके उत्तर नेद बैतालीस है, सो लिखते है पांच इंद्रिय, चार कषाय, पाच अव्रत, पच्चीश क्रिया, तीन योग, यह बैतालीस नेद है.

जीवरूप तलावमे कर्मरूप पाणी जिस करके आवे, सो आश्रव है, तहां इंद्रिय पाच है, तिनका स्वरूप कहते है, १ स्पर्शीये स्वविषय स्पर्श लक्षण, जिस करके सो स्पर्शनेंद्रिय, २ "रस्यते आस्वाद्यते रसोऽनयेति" आस्वादियें रस लीजीयें जिस करकें सो रसना (जिव्हा) इंद्रिय, ३ सूंघीयें गंध जिस करके सो घ्राणेंद्रिय (नासिकेंद्रिय,) ४ चक्षु (लोचन,) ५सुणियें शब्द जिस करके सो श्रोत्रेंद्रिय. यह पाच इंद्रिय मूलनेदकी अपेक्षासे पाच कारण आश्रवके है

"क्रुध्यति कुप्यति" सचेतन अचेतन वस्तुमें क्रोध जो करे, सनिमित्त, निर्निम्मित्त येन जिस करके प्राणी, सो क्रोधवेदनीय कर्म है, तिसका उदय नी उपचारसे क्रोध है. ऐसेही मान, माया, अरु लोनमेनी कह देना इसमे मान आठ प्रकारका है, तिसका नाम कहते है १ जातिमद, २ कुलमद, ३ बलमद, ४ रूपमद, ५ ज्ञानमद, ६ लानमद, ७ तपोमद, ८ ऐश्वर्यमद १ जातिमद, उसकों कहते है जो अपणी माताके पक्षका अनिमान करेकि मेरी माता ऐसे वडे घरकी वेटी है, इस तरें आपको उचा माने,

अरु दूसरोंकों निंदे, इसका नाम जातिमद है, २ कुलमद सो है, कि जो अपने पिताके पक्षका अभिमान करे, जैसेंकि मेरे पिताका बडा उंच कुल है, इस तरें आपकों बडा माने, औरोंकों निंदे, तिसका नाम कुलमद है, ३ जो अपणे बलका अभिमान करे, अरु दूसरोंके बलकों निंदे, सो बल मद, ४ जो अपने रूपका अभिमान करे, दूसरोंके रूपकूं निंदे, सो रूपम द, ५ जो अपने आपकों बडा ज्ञानी जाने, अरु दूसरोंकों तुछमति जाने, सो ज्ञानमद, ६ जो अपणे आपकों बडा नसीबे वाला समझे, अरु दूस रोंकों हीण पुण्यी समझे, सो लाभमद, ७ जो तप करकें अभिमान करेकि मेरे समान तपस्वी कोइ नहीं, सो तपोमद, ८ जो अपणी ऐश्वर्यताका अभिमान करे, दूसरोंकों घासनू समझे, सो ऐश्वर्यमद. इस प्रकारसें मान के आठ भेद हैं. तथा तीसरी माया, सो "मयति गछति" अर्थात् जावे, तिस तिस विकारोंकों परवंचनेके अर्थे जीव, उसकों माया (कपट) कहते हैं. तथा जिस करकें परधनमें गृद्धी होवे, तिसकों लोभ कहते हैं, इन चारोंकों कषाय कहते हैं. यह चार कषाय हैं.

अथ पांच अव्रत कहते हैं, तहां पांच इंद्रिय, ६ मनोबल, ७ वच नबल, ८ कायबल, ९ उछ्वासनिःश्वास, १० आयु, यह दस प्राण हैं. इ न दश प्राणोंके योगसें जीवकोंभी प्राण कहियें हैं. तिन प्राणोंका जो व ध (हननां) अर्थात् मारनां सो प्रथम प्राणवध अव्रत जाननां. तथा २ झूठ बोलनेका नाम मृषावाद है. तथा ३ दूसरोंकी वस्तु चुराय लेनी, ति सका नाम अदत्तादान है, तथा ४ स्त्री पुरुषका जो जोडा, तिसका नाम मिथुन है, इन दोनोंके मिलनेसें जो कर्म, सो मैथुन. (अब्रह्म सेवनं) त था ५ "परिगृह्यते" सर्व ओरसें अंगीकार करियें, चार गतिके निबंधन कर्म जिस करकें, सो परिग्रह, इन पांचोंके चार चार भेद हैं,सो कहते हैं.

१ एक द्रव्यें हिंसा है, परंतु भावें नहीं, २ एक द्रव्यें हिंसा नहीं,परंतु भावें है, ३ एक द्रव्येंभी हिंसा है, अरु भावेंभी हिंसा है, ४ एक द्रव्येंभी हिंसा नहीं, अरु भावेंभी हिंसा नहीं, यह प्रथम अव्रतके चार भेद कहे. तिसमें प्रथम भंगका स्वरूप ऐसें है कि साधुकी समाचारी प्रतिलेखना क रनेसें, मार्गमें विहार करनेसें, नदी आदिकके लंघनेसें, नावमें बैठ कर नदी उतरनेसें, नदीमें साध्वी आदिकके काढनेसें, वर्षा वर्षतामें शौच जानेसें,

ग्लानि रोगीकी लघुशकाकों मेघ वर्षतामें गेरनेसे, गुरुके शरीरमे वाय तथा थकेवा दूर करके मूठी चापी करनेसे, जो हिंसा होती है, सो सर्व द्रव्यहिंसा है, तथा श्रावकको जिनमंदिर वनानेमे, जिनपूजा करनेसे, सधर्म्मिवत्सल करनेसे, तीर्थयात्रा जानेसे, रथोत्सव, अष्टा१ उत्सव, प्र तिष्ठा अरु अंजनशलाका करनेसे, तथा भगवान्के सन्मुख जानेसे, गुरुके सन्मुख जानेसे, इत्यादि कर्त्तव्यसे जो हिंसा होवे सो सर्व द्रव्यहिंसा है, परंतु भावहिंसा नही, इसका फल अल्प पाप, अरु वहुत निर्ज्जरा है यह भगवती सूत्रमे लिखा है, यह हिंसा साधु आदि करते है परंतु उन का परिणाम उस अवसरमें खोटे नही है, इस वास्ते द्रव्यहिंसा है

प्रश्न—यज्ञादिमे जो गोमेध प्रमुख जीव मारे जाते है, यहभी द्रव्यहिं सा क्यो नही ? इसका उत्तर, मीमांसक मत खमनमे लिख आये है, सो देख लेना यह प्रथम भग

दूसरे भगमे द्रव्यहिंसा नहीं परंतु भाव हिंसा है, तिसका स्वरुप कह ते है, कि जो पुरुष उपरसे तो शांतिरुप बना हूआ है परंतु परिणाम अं त करण जिसका खोटा है, वो ऐसा चाहता है कि मेरे शत्रुके घरमे आ ग लग जावे, मरी पड जावे, नदीमे डूब जावे, चोरी हो जावे, वदीखाने मे पडे, तथा वेष बदलके भला मानस बनके ठग बाजी करे, तथा अग लेका बुरा करनेके वास्ते अनेक प्रकारसे उसकों विश्वास करावे, तथा फ कीरीका वेष करकें लोकोंमे मन एकठा करे, इत्यादि तथा साधुके गुण तो उसमें नही है, परंतु लोकोमे अपने आपको गुण प्रकट करे, इत्यादिक का ममे द्रव्य हिंसा तो नही करता, परंतु भावसे तो वो पुरुष, हिंसक है,इसका फल ससारमे भ्रमण करने सीवाय और कोइ फल नहीं यह दूसरा भग

तीसरे भगमें प्रकट इंद्रियोकी विषयमें गृद्ध हो कर जीवहिंसा कराइ, (खटिक) वागुरी अहेडी, (शिकार मारना) विश्वासघात, इत्यादि करके जीवहिंसा करनी, अरु मनमे आनंद मानना, इसका फल दुर्गति है, यह द्रव्येंभी हिंसा है, अरु भावेभी हिंसा है, यह तीसरा भग

चौथा भगमे द्रव्येभी हिंसा नहीं, अरु भावेभी हिंसा नहीं, उसकों हिंसा कहना यह भग शून्य है, इस भग वाला कोइभी जीव नहीं ॥इति॥

ऐसेंही कूरकेभी चार भेद हैं. तिसका स्वरूप कहते हैं. १ साधु, र स्तेमें चला जाता है, तिसके आगें हो कर एक जंगली गौआंका तथा मृ गादि जानवरोंका टोला निकल जावे, तिसके पीछें शिकारी बंदूक प्रमुख शस्त्र लीयां चला आता है, उनके मारने वास्ते वो शिकारी साधुकों पूछे कि तुमने अमुक जीव जाते देखे हैं? तब साधु मौन कर जावे, जे कर मौन करेभी पीछा न छोडे, साधुकों मारे, तब साधु कह देवे, मैं नहीं देखे, यद्यपि यह द्रव्यें कूठ है, परंतु भावें कूठ नहीं, क्योंकि जो कोइ इंद्रियोंकी विषय वास्ते तथा अपने लोभ वास्ते कूठ बोले, तब भावतः कूठ होवे, परं तु यह तो जीवोंकी दया वास्ते कूठ बोले है. वास्तवमें यह कूठ नहीं. इसी तरें और जगेंभी समझ लेनां. यह प्रथम भंग.

तथा दूसरा भंगमें कोइ पुरुष मुखसें तो कुछ नहीं बोलता, परंतु दूसरों के ठगने वास्ते मनमें अनेक विकल्प करता है, यह दूसरा भंग. तथा तीस रे भंगमें तो द्रव्येंभी कूठ बोलता है, अरु भावेंभी कूठ बोलता है, तिस का अभिप्रायभी महा छल कपट करनेका है, क्योंकि मुखसेंभी कूठ बोलता है, अरु चित्तमेंभी दुष्टता संयुक्त है, यह तीसरा भंग. तथा चौथा भंग तो पूर्ववत् शून्य है. इति कूठ स्वरूप.

अथ चोरीका यही चार भंग कहते हैं. तहां प्रथम भंगमें जैसें कोइ स्त्री शीलवान् है, औ कोइ दुष्ट राजा उसका शीलभंग करा चाहाता है, त ब कोइ धर्मज्ञादि पुरुष रात्रिमें अथवा दिनमें उस स्त्रीके शीलकी रक्षा वा स्ते उस राजसें बाहिर ले जावे, तो व्यवहारमें उस राजाकी उसने आज्ञा भंगरूप चोरी करी है, परंतु वास्तवमें वो चोर नहीं. इसी तरें और जगा मेंभी जान लेनां. यह प्रथम भंग. दूसरे भंगमें चोरी तो नहीं करता, परंतु चोरी करनेका मन उसका है, तथा जो भगवान् वीतराग सर्वज्ञकी आ ज्ञा भंग करने वाला है, सोभी भावचोर है. यह दूसरा भंग. तथा तीसरे भंगमें चोरीभी करता है, अरु मनमेंभी चोरी करनेका भाव है, यह तीस रा भंगहै. अरु चउथा भंग तो पूर्ववत् शून्य है. इति अदत्तादान भंग.

ऐसेंही मैथुनके चार भंग कहते हैं. जो साधु, जलमें डूबती साध वीकों देख कर काढनेके वास्ते पकडे, तथा धर्मी गृहस्थ छतसें गिरती अपनी बहिन बेटीकों पकडे, तथा बावरी होइ दौडतीकों पकडे, यह द्

व्यें मैथुन है, परतु भावे नही यह प्रथम भंग तथा द्रव्यें तो मैथुन नही सेवता हे, परतु मैथुन सेवनेकी वडी अभिलाषा करता है,सो भावे मैथुन है यह दूसरा भंग तथा तीसरे भंगमे तो द्रव्ये अरु भावे मैथुन सेवता है अरु चौथा भंग पूर्ववत् शून्य है ॥ इति मैथुन स्वरूपं ॥

ऐसेही परिग्रहका चार भग कहते है, १ जैसे कोइ मुनि कायोत्सर्ग कर रहा है, उसके गलेमे कोइ हारादिक आभूषण गेर देवे, वो द्रव्ये तो परिग्रह दीखता है, परतु भावे परिग्रह नही है, यह प्रथम भंग तथा दूसरा द्रव्ये तो उसके पास कौडी एकभी नही है, परतु मनमे धनकी वडी अभिलाषा रखता है, सो भावपरिग्रह है तथा तीसरेमे धनभी पास है, अरु अभिलाषाभी है, सो द्रव्यभाव करके परिग्रह है, तथा चौथा भग पूर्ववत् शून्य है इन सर्व भंगोमे दूसरा अरु तीसरा भग निश्चय करकें अविरतिरूप है यह पाच प्रकारकी अविरति

अथ पच्चीस क्रियाका नाम अरु स्वरूप कहते हैं १ काया (देह) करके जो होवे, सो कायिकीक्रिया, २ आत्माको नरकादिमें जाने वास्ते जीव अधिकारी करे, इस करके सो अधिकरण परोपघात करनेसे वागुरादि गल कूटपाशा करके जो उत्पन्न होवे, सो अधिकरणकी क्रिया, ३ अधिक जो होवे दोष सो प्रदोष कहिये क्रोधादिक, तिनमे जो उत्पन्न होवे, सो प्रदोषक्रिया, ४ जीवको परिताप देनेसे जो उत्पन्न होवे, सो पारितापनिकी क्रिया, ५ प्राणीयोंके बिनाश करनेकी जो क्रिया, सो प्राणातिपातकी क्रिया, ६ पृथिवीआदिक कायाका उपघात करना यह जिसका लक्षण है, ऐसे जो शुष्क तृणादि छेद, लेखनादि, तिनमे जो क्रिया होवे, सो आरम्भकी क्रिया, ७ जो विविध उपायो करके धन उपार्जन तथा धनरक्षण करणेमे मूर्छाके परिणाम, उसका नाम परिग्रह है, तिनमें जो उत्पन्न होवे क्रिया, सो परिग्रहकी क्रिया, ८ मायाही है हेतु प्रत्यय जिसका मोक्षके साधनोंमे माया प्रधान प्रवृत्ति, सो माया प्रत्ययकीक्रिया, ९ मिथ्यात्वही है,प्रत्यय कारण जिसका सो मिथ्या दर्शन प्रत्ययकी क्रिया,१० सयमके विघातकारक कषायोके उदयसे प्रत्याख्यानका न करना, सो अप्रत्याख्यानकी क्रिया, ११ रागादि कलुषितका जो जीव अजीवको देखना,

सो दृष्टिकी क्रिया, १२ राग, द्वेष, मोह संयुक्त चित्तसें जो स्त्री आदिकोंके शरीरका स्पर्श करनां, सो स्पृष्टिकाक्रिया, १३ पूर्वे अंगीकार करे हूये पापोपादान कारण अधिकरणकी अपेक्षा जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो प्रातीत्यकी प्रत्ययक्रिया, यह तात्पर्यार्थः १४ "समंतात्" सर्व ओरसें "उपनिपात" आगमन आवणां, स्त्री आदिक जीवोंका जिस स्थानमें भोजनादिकमें, सो समंतोपनिपात, तहां जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो सामंतोपनिपातिका क्रिया, १५ जो परोपदेशित पापमें चिर काल प्रवृत्ते, उस पापकी जो भावसें अनुमोदना करे, सो नैसृष्टिकी क्रिया, १६ अपणे हाथ करकें जो करे, जैसें कोइ पुरुष बडे अभिमान करकें क्रोधित चित्त हूआ थका जो काम उसके नौकर कर सक्ते हैं, उस कामकों अपने हाथसें करे, सो स्वाहस्तिकीक्रिया, १७ भगवत् अर्हंतकी आज्ञा उल्लंघन करकें अपणी बुद्धिसें जीवाजीवादि पदार्थोंके प्ररूपण द्वारा जो क्रिया, सो आज्ञापनिका क्रिया, १८ दूसरायोंके अण होये खोटे आचरणका प्रकाश करणां, उनकी पूजाका नाश करनां, तिस करनेसें जो उत्पन्न होवे, सो वैदारणिका क्रिया, १९ आभोग नाम है उपयोगका, तिस्सें जो विपरीत होवे, सो अनाभोग है, तिस करकें उपलक्षित जो क्रिया, सो अनाभोग क्रिया. बिना देखे, बिना पूंजे देश अर्थात् भींत भूम्यादिकमें शरीरादिकका निक्षेप करणां, सो अनाभोग क्रिया, २० अपणी अरु परकी जो अपेक्षा करणी, तिसका नाम अवकांक्षा है, इस्सें जो विपरीत तिसका नाम, अनवकांक्षा है, सोइ है कारण जिसका सो अनवकांक्षा प्रत्यय क्रिया. तात्पर्य यह है कि जिनोक्त कर्त्तव्य विधियोमें किसी विधियोंमें जो अपनेकों अरु और जीवोंकों हितकारी है, तिन विधियोमें प्रमादके वश हो कर आदर न करनां, सो अनवकांक्षा प्रत्ययकी क्रिया, २१ "प्रयोग" दौडना चलनादि कायाका व्यापार, अरु हिंसाकारी कठोर झूठ बोलनादि बचनव्यापार, पराभिद्रोह, ईर्ष्या अभिमानादि मनोव्यापार, इन तीनोंका जो करणां, सो प्रयोगक्रिया, २२ जिस करकें विषय ग्रहण करियें, सो समादान इंद्रिय हैं, तिसकी जो क्रिया देश सर्व उपघातरूप व्यापार, सो समुदान क्रिया, २३ प्रेम नाम है माया अरु लोभका, तिन करकें जो होवे, सो प्रेमप्रत्यय क्रिया, २४ द्वेष नाम है क्रोध अरु मां

नका,तिन करकें जो होवे,सो द्वेषप्रत्ययिकी क्रिया, २५ चलनेसे जो क्रिया होवे, सो ईर्यापथक्रिया यह क्रिया वीतरागकों होती है

अथ इन पच्चीश क्रियाका व्याख्यान करते है १ प्रथम कायिकी क्रिया दो प्रकारकी है, एक अनुपरता कायिकी क्रिया, दूसरी अनुपयुक्त कायिकी क्रिया, उसमे प्रदुष्ट मिथ्यादृष्टि जीवके मन वचनकी अपेक्षा रहित पर जीवोके पीडाकारी ऐसा जो कायाका उद्यम, सो प्रथम भेद है, तथा प्रमत्त सयतके विना उपयोग अनेक कर्त्तव्यरूप कायाका व्यापार, सो दूसरा भेद, यह कायिकी क्रियाका सरूप कहा. २ दूसरी अधिकरणकी क्रिया दो प्रकारे है एक संयोजना,दूसरी निवर्त्तना,उसमे विष,गरल,फासी, धनु, यत्र, तलवार, आदि शस्त्रोकों जीवोके मारणे वास्ते जो इनका "स योजन" अर्थात् मिलाप करणा, जैसे धनुष अरु तीरका मिलाप करना, इसी तरे सर्व जानना. यह प्रथम भेद तथा तरवार, तोमर, शक्ति, तोप, वडुक, इनका जो नवे सिरसे बनाना, यह दूसरा भेद यह दूसरी क्रियाका स्वरूप कहा ३ जिन निमित्तोंसे क्रोध उत्पन्न होवे, सो निमित्त जीव अजीव है, उसमे जीव तो प्राणी, अरु अजीव खूटा, काटा, पत्थर, ककरादि, इनके उपर द्वेष करे, यह तीसरी प्रदोषक्रिया, ४ तथा अपणे हाथो करके अरु परके हाथो करके, जीवको ताडना (पीडा देनी) सो परितापना, इस परितापनाके दो भेद है, एक तो "स्व" (अपणे आपको) पीडा देनी, जैसे पुत्र कलत्रादिके वियोगसे दुखी हो कर अपणे हाथो करी छाती शिरका कूटना, यह प्रथम भेद तथा पुत्र शिष्यादिकोको ताडना (पीटना) यह दूसरा भेद, यह चौथी पारितापनिकी क्रिया तथा ५ पाचमी प्राणातिपातकी क्रियाके दो भेद है, एक तो अपणे आपकी घात करणी, जैसेकि जान बूझ कर पर्वतसे गिरके मर जाना, भर्त्ताके साथ सती होनेके वास्ते अग्निमे जल मरना, पाणीमें डूबके मरना, विष खा के मरना, शस्त्र से मरना, इत्यादि स्वप्राणातिपात यह महापाप रूप क्रिया, यह प्रथम भेद तथा दूसरी मोह, लोभ, क्रोधके वश हो कर पर जीवको स्व अथवा परहाथ करके मारणा यह पाचमी क्रिया, ६ जीव, अजीवका आरंभ करणा, सो आरंभकी क्रिया, ७ जीव अजीवका परिग्रह करणा, सो परिग्रहकी क्रिया, ८ माया करणी, सो माया प्रत्ययकी क्रिया, ९ मि

परीत वस्तुका श्रद्धान सोइ है, निमित्त जिसका सो मिथ्यात्व दर्शन प्र त्ययकी क्रिया, १० जीवके हननेका तथा अजीव मद्य मांसादि पीने खा नेका जिसके त्याग नहीं, ऐसा जो असंयती जीव, तिसकों अप्रत्याख्या नकी क्रिया, ११ घोडा, रथ,प्रमुख जीव तथा अजीवोंके देखने वास्ते जा नां, सो दृष्टिकीक्रिया,१२ जीव, अजीव, स्त्री,पूतली, आदिकका राग करकें स्पर्श करनां, सो स्पृष्टिका क्रिया, १३ जीव, अजीवकी अपेक्षा जो कर्मका बंध होवे, सो प्रातीत्यकी क्रिया, १४ जीव सो पुत्र, नाइ, शिष्यादिक, अ रु अजीव सो भूषण, घर, हाटादि. इनकों लोक सर्व दिशोंसें देखने आवे, देखके प्रशंसा करे, तब तिन वस्तुओंका स्वामी हर्षित होवे, सो सामंतो पनिपातिका क्रिया, १५ जीव मनुष्यादि अरु अजीव इंटका टुकडा,इनोकों फैंके सो नैसृष्टिकी क्रिया, १६ अपने हाथों करी जीवकों तथा अजीव कों (प्रतिमादिकों) ताडे, वींधे, सो स्वहस्तकी क्रिया,१७ जीव अजीवकी मिथ्या प्ररूपणा करणी, तथा जीव अजीवकों मंत्रसें मंगावा लेनां, सो आज्ञापनिका क्रिया, १८ जीव अजीवकों विदारणां,सो वैदारणिका क्रिया, १९ विना उपयोगकुं जो वस्तु लेवे, तथा भूमिकादि उपर छोडे, सो अ नाभोगक्रिया, २० इस लोकमें औ परलोकमें जो विरुद्ध ऐसा जो चोरी, परदारागमनादिक है, उनकों सेवे, मनमें डरे नहीं, सो अनवकांक्षा प्रत्य य क्रिया, २१ मन, वचन, कायाका जो सावद्य (सपाप) व्यापार, सो प्रयोग क्रिया, २२ अष्टविध कर्म परमाणुओंका जो ग्रहणां, सो समुदान क्रिया, २३ राग जनक वीणादिकका जो शब्दादि सो प्रेम प्रत्यय क्रिया. २४ अपणे उपर तथा पर उपर द्वेष करनां, सो द्वेषप्रत्ययिकीक्रिया, २५ केव ल योगोंसें जो क्रिया, सो केवलीकों ईर्यापथ क्रिया. यह पच्चीस क्रिया का स्वरूप संक्षेप मात्र लिखा है. यद्यपि इन क्रियाओंमें कितनीक क्रिया आपसमें एक सरखी दीखती हैं, तोभी एक सरखी नहीं है, इनका अच्छी तरें स्वरूप देखनां होवे, तो गंधहस्तीभाष्य देख लेनां.

अथ योग तीन है, सो लिखते हैं. १ मनका व्यापार, सो मनोयोग, २ वचनका व्यापार, सो वचनयोग, ३ कायाका व्यापार, सो काययोग, यह सर्व मिल कर बैंतालीस भेद आश्रव तत्त्वके हूये हैं. इन बैंतालीस भेदों में जीवकों शुभाशुभ कर्मकी आमदनी होती है. इति आश्रवतत्त्वं संपूर्णं ॥

अथ संवरतत्त्व लिखेते है पूर्वोक्त आश्रवका जो रोकने वाला सो संवर है, तिस संवरके सत्तावन नेद है, सो कहते है पांच समिति, तीन गुप्ति, दश प्रकारका यतिधर्म, बारह नावना, बावीश परीसह, पांच चारित्र यह सब मिल कर सत्तावन नेद हूये. इनमेसू पाच समिति, तीन गुप्ति, दशविध यतिधर्म, बारह नावना, इनका स्वरूप गुरु तत्त्वमें लिख आये है. तहासे जान लेना इहां नहीं लिखते

अथ बावीश परीषहका स्वरूप लिखते है १ क्षुधापरीषह, सो क्षुधा नाम नूखका है, शेष वेदनासे अधिक नूखकी वेदना है, सो जब क्षुधा लगे, तब अपनी प्रतिज्ञासे न चले, अरु आर्त्तध्याननी न करे, सम्यक् परिणामोसे क्षुधा सहे, सो क्षुत्परीषह, २ ऐसेही पिपासा जो तृषा तिसका परीषहनी जान लेना, ३ शीतपरीषह, सो बडा नारी जब शीत पडे, तबनी अकल्पनिक वस्त्रकी वांछा न करे, जैसे जीर्ण वस्त्र होवे, उनोंहीसे शीत सहे, अरु अग्निसेनी न तापे, इसी रीतीसे सम्यक् शीत परीषह सहै ४ ऐसेही उष्णपरीषहनी सहै, ५ दंशमशकपरीषह, सो दंश मशक जब काटे, तब उस स्थानसे चले जानेकी इछा न करे, तथा दश मशकके दूर करने वास्ते धूमादि यत्ननी न करे, तथा तिनके दूर निवारण वास्ते पखानी न करे, ऐसा पुरुष, दश मशक परीषह सहे, ६ अचेलपरीषह, जो सर्वथा वस्त्रोका अनाव, तिसका नाम अचेल परीषह नहीं, किंतु आगममे जो वस्त्रादिक रखनेका प्रमाण कह्या है, तिस प्रमाण रखना सो परिग्रह नहीं है, परिग्रह तो उसको कहते है कि जो मूर्छा करके रक्खे॥ उक्तं च॥ जंपि वछं च पायं च, कंबलं पायपुछणं॥ सोपि संजम लज्जठा, धारिंति परिहरंति य॥ १॥ न सो परिग्गहो वुत्तो, नाइपुत्तेण ताइणा॥ मुछापरिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्तं महेसिणत्ति॥२॥ चेल नाम वस्त्रका है, सो शीर्ण अर्थात् फटे हूये अरु जीर्णनी होवे, तोनी अकल्पनिक न लेवे, सो अचेलपरीषह, ७ अरतिपरीषह, संयम पालनेकों जो अरति संयममे उत्पन्न होवे, तिसको सहे, इसके सहनेका उपाय दशवैकालिककी प्रथम चूडामें अगारह वस्तुके चिंतनरूप करनेसे अरतिदूर हो जाती है ८ स्त्रीपरीषह, सो स्त्रीयोंके अंग प्रत्यंग संस्थान सुरति, हसना, मनोहर पणा, विभ्रमादि चेष्टायोकों मनमे चिंतवना न करे, मोक्ष मार्गमे अर्गलसमान स्त्रीयोको जान करकें

तिनोमें कामकी बुद्धि करकें, नेत्रोंसें देखे नहीं. ए चर्या नाम है चलने का चलनां घर रहित ग्राम नगरादिमें अनियतवास ममत्व रहित मास कल्पादि करणां, सो चर्यापरीषह है, १० निषद्यापरीषह, सो निषद्या यह रहनेके स्थानका नाम है, सो स्थान, स्त्री, पंमक विवर्जित होवे, तिस स्थानमें रहतेकों इष्टानिष्ट जो उपसर्ग होवे, तोजी अपणे चित्तमें चलायमान न होवे, सो निषद्यापरीषह, ११ 'शेरते' शयन करियें इस विषे सा शय्या, संस्तारक, वसति, तहां संस्तारक सो सोनेंका आसन, कोमल, कठिन, ऊंचा, नीचा, धूल, कूडा, कंकर वाली जगामें होवे, तथा वो स्थान, शीत गर्मी वाला होवे, तोजी मनमें उद्वेग न करे, दुःख सहन करे, सो शय्यापरीषह, १२ आक्रोश परीषह, सो अनिष्ट वचन कोइ कहे, तब ऐसें विचारे, जे कर यह पुरुष सच्ची बातके वास्ते अनिष्ट वचन कहता है, तो मुझकों कोप करनां ठीक नहीं, क्योंकि यह पुरुष मुझे शिक्षा देता है, फेर ऐसा काम न करुंगा, जे कर इस पुरुषका मेरे पर झूठा कोप है, तोजी मुझकों कोप करनां युक्त नहीं, ऐसें चिंतन करकें आक्रोशपरीषह सहे, १३ वध नाम है हाथादि करकें ताडनां, (मारनां,) तिसका सहनां सो इसी रीतीसें कि यह जो मेरा शरीर है, सो अवश्य विध्वंस होवेगा. इस शरीरके संबंधसें जो मेरेकों दुःख होता है, सो मेरे करे हूये कर्मका फल है. इस बुद्धसें वधपरीषह सहे, १४ याचना नाम मांगनेका है, सर्वही वस्त्र अन्नादिक साधुकों मागनेसेंही मिलता है, इस बुद्धिसें याचना परीषह सहे, १५ साधुकों किसी वस्तुकी इछा है, अरु वो वस्तु गृहस्थके घरमेंजी बहुत है, साधु मांगनेकों गया, परंतु गृहस्थ देता नहीं, तब साधु मनमें विषाद न करे, अरु देने वालेका बुराजी नहीं चिंतवे, दुर्वचनजी न बोले, समता करे, आज नहीं मिला, तो कलकों मिल जायगा, इस तरें अलाजपरीषह सहे, १६ रोग (ज्वर अतिसारादि) जब हो जावे, तब गछके बाहिर जो साधु होवे, सो तो कोइजी औषधि न खावे, अरु जो गछवासी साधु होवे, सो गुरु लाघवता विचार करकें रोग परीषह सहे, अरु जो रीति शास्त्रमें औषध करनेकी कही है, तिस रीतिसें करे, सो रोगपरीषह सहे, १७ तृणस्पर्श परीषह, सो दर्जादिक कठोर तृणका स्पर्श सहे, १८ मलपरीषह, सो साधुके शरीरमें पसीना आनेसें रजका पुं

ज शरीरमें लगनेसें कठिन मैल लग जाता है, अरु उष्ण कालकी तप्तसे प्रगट हूआ है दुर्गंध तिस करके उत्पन्न हूआ है उद्वेग, तोभी स्नानादि शरीरकी विभूषा साधु न करे, यह मलपरीषह है, १९ सत्कारपरीषह, सो भक्त लोकोंने वस्त्रान्न पानादिक करके साधुको बहुत सत्कारभी किया,तोभी मनमे अभिमान न करणा,तथा और और साधुओंकी भक्त लोक पूजा भक्ति करते है, अरु जैनमतके साधुकी कोइ बातभी नही पूछता, तोभी मनमे विषाद न करे, यह सत्कारपरीषह है, २० प्रज्ञापरीषह, सो बहुत बुद्धि पा कर अभिमान न करे तथा अल्पबुद्धि होवे तदा ' मै महा मूर्ख हू, सर्वके पराभवका स्थान हूं," ऐसी ताप दीनता मनमे नही लावे, सो प्रज्ञापरीषह, २१ अज्ञानपरीषह, सो ज्ञान चौदहपूर्व पाठी, एकादशांगपाठी, तथा उपांग, छेद, प्रकर्ण, शास्त्रोंका पाठी ज्ञानका समुद्र मैं हूं ऐसा गर्व न करे अथवा मे आगम ज्ञान रहित हू, धिक् है, मुझे निरक्षर कुक्षिभरको ? ऐसी दीनताभी न करे, ऐसें विचारे कि निकेवल ज्ञानावरणका क्षयोपशमके उदयसे मेरा यह स्वरूप है, स्वकृतकर्मका फल है, जातो भोगनेसे दूर होवेगा, वा तपोनुष्ठानसें दूर होवेगा ? ऐसे विचारि अज्ञान परीषह सहे, २२ शास्त्रोमें देवता अरु इंद्र सुनते है, परंतु सानिध्य कोइभी नही करता, इस वास्ते क्या जाने देवता इंद्र है ? वा नही ? तथा मतांतरकी ऋद्धि वृद्धि देख कर जिनोक्त तत्त्वमें समोह करनां, ऐसी विकलता जो मनमे न लावे, सो दर्शनपरीषह यह बावीस परीषह जो साधु जीते, सो सबरी कहा जाता है, इन परीषहोंका विस्तार देखना होवे, तो श्रीशांतिसूरिकृत उत्तराध्ययन सूत्रकी बृहद्वृत्ति, तथा तत्त्वार्थ सूत्रकी वृत्ति देख लेनी

अथ पाच प्रकारका चारित्र लिखते है १ सामायिक चारित्र, २ छेदोपस्थापनिका चारित्र, ३ परिहारविशुद्धि चारित्र, ४ सूक्ष्मसंपराय चारित्र, ५ यथाख्यात चारित्र, यह पांच प्रकारका चारित्र है इन पाचोके धारक साधु भी जैनमतमे पाच प्रकारके है, इस कालमे प्रथम दो चारित्रके धारक साधु है, अरु तीन चारित्र व्यवछेद गये है, इन पाचोका विस्तार पूर्वक देखनां होवे तदा देवाचार्यकृत नवतत्त्व प्रकरणकी टीका, तथा भ

गवती अरु पन्नवणासूत्रकी वृत्ति देख लेनी. यह सर्व मिल कर सत्तावन भेद आश्रवके रोकने वाले हैं. इति संवरतत्त्वं संपूर्णं ॥

अथ निर्जरातत्त्व लिखते हैं. निर्जरा उसकों कहते हैं, जो बांधे हूये कर्मोंको खेरु करे, जिस करकें निर्जरा होती है, तिसका नाम तप है. सो तप बारह प्रकारका हैं, उसका स्वरूप गुरुतत्त्वमें संक्षेप करकें लिख आये हैं, तहांसें जान लेनां. अरु जे कर विस्तार देखनां होवे, तदा नव तत्त्वप्रकरणवृत्ति तथा श्रीवर्द्धमानसूरिकृत आचारदिनकर शास्त्र, तथा श्रीरत्नशेखरसूरिकृत आचारप्रदीप, तथा भगवतीसूत्र, अरु उववाई शास्त्र देख लेनां ॥ इति निर्जरातत्त्वं संपूर्णं ॥

अथ बंधतत्त्व लिखते है, बंध चार प्रकारका होता है, १ प्रकृतिबंध, २ स्थितिबंध, ३ अनुभागबंध, ४ प्रदेशबंध. बंध कहते है जीवके प्रदेश, अरु कर्मपुद्गल,ये दोनों दूध अरु पाणीकी तरें परस्पर मिल जावे,उसकों बंध कहते हैं. अथवा बंध नाम बंदीवानका है, जैसें बंधुआ कैदमें स्वतंत्र नहीं रहता, ऐसें आत्माभी ज्ञानावरणीयादि कर्मोंके वश हो जाता है, स्वतंत्र नहीं रहता है, इस कर्मके बंधमें ७ विकल्प है, सो कहते हैं.

१कोइक वादी कहता हैं, कि निर्मलजीव पुण्य पापके बंध रहित था, पीछेसें पुण्य पापका बंध हूआ है, यह प्रथम विकल्प. यह विकल्पमिथ्या है, क्योंकि निर्मल जीव कर्मका बंध नहीं कर सक्ता है, अरु कर्मके विना संसारमें उत्पन्नभी नहीं हो सक्ता है, जे कर निर्मल जीव कर्मका बंध करे, तब तो मोक्षस्थ जीवभी कर्मका बंध कर लेवेगा, जब मोक्षस्थ जीवकों कर्मबंध हूआ,तब मोक्षका अभाव हो जावेगा, जब मोक्ष नहीं, तब तो मोक्षोपायके शास्त्र अरु शास्त्रोंके बनाने वाले मिथ्यावादी हो जावेंगे, तब तो नास्तिकमती बन जायंगे,अरु निर्मल आत्मा संसारमें शरीरके अभावसें कर्मभी काहेसें करेगा? इस वास्ते यह प्रथमविकल्प मिथ्या है.

२ दूसरा विकल्प कर्म पहेले थे,अरु जीव पीछेसें बना है, यहभी मिथ्या है, क्योंकि जीवोंके बिना वो कर्म किसनें करे थे, कारणकि कर्त्ताके बिना कर्म हो नहीं सके हैं, अरु प्रथम कर्मोंका फल इस जीवकों नहीं होवेगा, क्योंकि वो कर्म जीवके करे हूए नहीं हैं, जे कर कर्मके करे विनाभी कर्मका फल होवे, तब तो अतिप्रसंग दूषण होवेगा, अरु बिना कर्मके क

रे ईश्वरन्नी कर्मफल नोगने वास्ते नरककुन्दमे जा गिरेगा, अरु जीव पी ठेसे काहेसे बनेगा ? जीवका उपादान कारण कोइ नही. जे कर कहोगे कि ईश्वर जीवका उपादान कारण है, तब तो कारणके समान कार्यन्नी होना चाहिये जैसा ईश्वर निर्मल, नि पाप, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है, तैसाही जीव होवे, परतु तैसा है नही अरु जो ईश्वर जीवोंका उपादान कारण होवे, तब तो ईश्वरही जीव बन कर नाना क्लेश जन्म मरण गर्नावासादि डुखोंका नोगने वाला हूआ, तब ईश्वरने यह अपने पगमे आप कुहाडा क्यो मारा ? जो पूर्णानंद पद गेड कर ससारकी विटंबनामे फसा ? फेर अपने आपको नि पाप करने वास्ते वेदादि शास्त्र द्वारा कैइ तरेका तप जपादिक क्लेश करना बताया ? इस वास्ते यह सर्व कहना महा मूर्खोंका है, इस वास्ते यह दूसरा विकल्पन्नी मिथ्या है

३ तीसरा विकल्प, जीव और कर्म यह दोनो एक साथ उत्पन्न हूये, यहन्नी मिथ्या है, क्योंकि जो वस्तु समकालमे उत्पन्न होती है, सो आपसमे कारण कार्य रूप नही होती है, जब कर्म, जीवके करे सिद्ध न हूये, तब कर्मफलन्नी जीव नही नोगेगा, यह प्रत्यक्ष विरोध है, क्योंकि जीव तो कर्म नोक्ते दीखते है, अरु कर्म तथा जीवका उपादान कारण कोइ नही इस वास्ते यह तिसरा विकल्पन्नी मिथ्या है

४ चौथा विकल्प, जीव तो है परतु जीवके कर्म नही यहन्नी मिथ्या है, क्योंकि जब जीवके कर्म नही, तो जीव डुख सुख क्यो नोक्ता है ? कर्मके विना संसारकी विचित्रता कदापि न होवेगी ? इस वास्ते यह चौथा विकल्पन्नी मिथ्या है

५ पाचमा विकल्प, जीव अरु कर्म, यह दोनोही नही, यहन्नी मिथ्या है, क्योंकि जब जीवही नहीं, तब यह कौन कहता है, जो जीव अरु कर्म नही है, ऐसा कहने वाला जीव है ? कि दूसरा कोइ है ? इस वास्ते यह स्ववचनविरोध है, तो यह पाचमा विकल्पन्नी मिथ्या है यह पाच विकल्प मिथ्यात्वरूप है, अरु सत्य विकल्प ठा है, सो यह है

६ ठा विकल्प, जीव अरु कर्म, यह दोनो अनादि अपश्चानुपूर्वी है.

प्रश्न –जब जीव अरु कर्म यह दोनो अनादि है, तब तो जीवकी त रे कर्मका नाश कदापि न होना चाहिये ?

उत्तरः—कर्म जो अनादि कहे हैं, सो प्रवाह अनादि हैं, इस वास्ते उसका क्षय हो जाता है.

प्रश्नः—यह जो तुम बंध कहते हो, सो निर्हेतुक है? अथवा सहेतुक है? जे कर कहोगे कि निर्हेतुक है, तब तो "नित्य सत्त्वं" होवेगा, वा "नित्य असत्त्वं" होवे गा, क्योंकि जिस वस्तुका हेतु नहीं, वो आकाशवत् नित्य सत्त्व होती है, अथवा खरशृंगवत् नित्य असत् होती है, निर्हेतुक होनेसें मोक्षका अभाव हो जावेगा. जे कर कहोगेकि सहेतुक है, तो हमकों कहो कि इस बंधके क्या हेतु है?

उत्तरपक्षः—इस बंधके मूल हेतु चार हैं, अरु उत्तर हेतु सत्तावन हैं, यहां प्रथम चार प्रकारका बंध कहते हैं, तिसमें प्रथम तो प्रकृतिबंध है, सो प्रकृति कौनसी है? अरु उसका बंध क्या है? तहां मूल प्रकृति आठ हैं, उसमें १ मत्यादि ज्ञानका जो आवरण आछादन, सो ज्ञानावरण, २ सामान्य बोध चक्षु आदिका जो आवरण सो दर्शनावरण, ३ सुख दुःख वेदीयें (भोगीयें) सो वेदनीय, ४ मोहे जीवकों विचित्रताकों प्राप्ति करे, सो मोह, ५ सर्वथा जो कर्म चला जावे "एति याति चेत्यायुः" जिसके उदयसें जीव जीता है सो आयु, ६ नमावे जो शुभाशुभ गत्यादि रूप करकें आत्माकों, सो नामकर्म, ७ गोत्र शब्दकी व्युत्पत्ति ऐसें है "गां वाचां त्रायतइति गोत्रं" जिसके उदयसें जीव ऊंच नीच कुलका कहाता है, सो गोत्र, ८ अंतर कहियें विचाले लाभादिके जो हो जावे, एतावता दान लाभादिक जीवमें होतांकों न होने देवे, सो अंतराय, यह आठ स्वभावरूप कर्म जो जीवके साथ क्षीर नीरकी तरें मिथ्यात्वादि हेतुओंसें बंध जावे, तिसका नाम प्रकृतिबंध है. २ इनहीं आठ प्रकृतियोंकी स्थिति अर्थात् काल मर्यादा, जैसी कि यह प्रकृति इतना काल तक आत्माके साथ रहेगी, पीछेसें न रहेगी, जिस करकें ऐसी स्थिति होवे, सो स्थिति बंध. ३ इनही आठ प्रकृतियोंमें तीव्र, मंद, रसका जो करनां, सो अनुभागबंध, ४ कर्मप्रदेशका जो प्रमाण यथा इतने परमाणु इस प्रकृतिमें है, उन परमाणुओंका जो आत्माके साथ बंध सो प्रदेशबंध.

इसका बंध इस तरें चार प्रकारें है. सो भव्य जीवोंके सुबोधके वास्ते चार प्रकारके बंधमें लड्डुका दृष्टांत लिखते हैं, जैसें एक लड्डु है, तिसका

स्वनाव वात हरणेका वा पित्त हरणेका वा कफ हरणेका इत्यादि होता है, असेही प्रकृति स्वनाव कर्मोका, किसी प्रकृतिका ज्ञानावरण करनेका स्वनाव, कीसी प्रकृतिका दर्शन आवरण करनेका स्वनाव होता है,सो प्रकृतिवध, २ कोइ लड्डु एक दिन रहके विगड जाता है,कोइ दो, तिन, चार, पाच, ७, सात, आठ, नव, दश, इग्यारह, बारह, तेरह, चौदह दिन, कोइ पक्ष, मासादि रहता है, पीछें विगड जाता है असेंही कर्मस्थितिनी कोइ घडी, पहर, दिन, पक्ष, मास,यावत् सीत्तेर कोटाकोटी सागरोपम लग रह कर फल दे कर, चली जाती है, यह दूसरा स्थितिबंध ३ जैसें लड्डुमें रस है किसीमे कडुवा, किसीमें कपायेला,किसीमे मीठा, असेंही कर्मोमें रस है किसीमे डुःख रूप, किसीमें सुख रूप, जो जो अवस्था जीवकी ससारमे होती है, सो सर्व कर्मके अनुनागसें होती है, यह तीसरा अनुनाग बंध तथा ४ जैसे लड्डुका तोल, मान,कोइ तोला,कोइ ७ टांकादि होता है, असे ही कर्मप्रदेशोंकी गिणती किसी कर्ममें थोडी, किसीमे अधिक, होती है, यह चोथा प्रदेश बंध यह दृष्टात कर्मग्रंथमे है

अथ बधके हेतु लिखते है. एक तो मिथ्यात्व सो तत्त्वार्थ श्रद्धान रहित होनां, डुसरा पापोसें निवर्त्त होनेके परिणाम रहित होनां, सो अविरतिपणा, तीसरा कप नाम ससारका है, तथा कर्मका है, तिसका जो आय नाम लान सो कपाय, क्रोध, मान, माया, लोन रूप. चौथा योग सो मन, बचन, कायाका व्यापार, यह चारों, बंधके मूलहेतु है.

अब उत्तर हेतु सत्तावन लिखते है उसमें प्रथम तो मिथ्यात्व पाच प्रकारका है १ अनिग्रह मिथ्यात्व, २ अननिग्रह मिथ्यात्व, ३ अनिनिवेश मिथ्यात्व, ४ सशयमिथ्यात्व, ५ अनानोग मिथ्यात्व

१ प्रथम अनिग्रह मिथ्यात्व है, सो जो जीव असा जानता है. कि जो कुछ मैनें समझा है, सो सत्य है, औरोकी समझ ठीक नहीं है, सच्च झूठकी परीक्षा करनेका मननी नही है, सच्च झूठका विचारनी नही करता है, यह मिथ्यात्व दीक्षित शाक्यादि अन्यमत ममत्व धारीयोंकों होती है, वो अपने मनमे असे जानते है, कि जो मत, हमने अंगीकार कीया है, वो सत्य है, और मत सर्व झूठ है, असे जिसके परिणाम होवे, सो अनिग्रह मिथ्यात्व.

२ दूसरा अनभिग्रह मिथ्यात्व, सो सर्व मतोंकों अच्छा माने, सर्वमतोंसें मोक्ष है, इस वास्ते किसीकों बुरा न कहनां, सर्वकों नमस्कार करनी, यह मिथ्यात्व, जिनोंने कोइ दर्शन ग्रहण नहीं करा, ऐसें जो गोपाल बालकादि तिनकों है, क्योंकि यह अमृत अरु विषकों एक सरिखे जानने वाले हैं.

३ तीसरा अभिनिवेश मिथ्यात्व, सो जो पुरुष जान करकें झूठ बोले, प्रथम तो अज्ञानसें किसी शास्त्रार्थको भूल गया, पीछें जब कोइ विद्वान् कहे कि तुम इस बातमें भूलते हो, तब झूठे मतका कदाग्रह ग्रहण करे, जात्यादि अभिमानसें कहनां न माने, उलटी स्वकपोलकल्पित कुयुक्तियों बना करकें अपने मनमाने मतकों सिद्ध करे, वादमें हार जावे, तोभी न माने, ऐसा जीव अतिपापी, अरु बहुल संसारी होता है. ऐसी मिथ्यात्व, प्रायः जो जैनी (जैनमतकों) विपरीत कथन करता है, उसमें होती है, जैसें गोष्टमाहिलादिक हूये हैं, इस बात्तीकों भाष्यकार श्रीअभयदेवसूरि नवांगीवृत्तिकारक नवतत्त्वप्रकरणकी भाष्यमें कहता है, "तथा च भाष्यकारः॥ गोठामाहिलमाई णं, जं अभिनिविसि तु तयं॥" आदि शब्दसें बोटिक शिवभूतिकों अभिनिवेशिक मिथ्यात्व जाननां.

४ चौथा संशय मिथ्यात्व, सो जिनोक्त तत्त्वमें शंका करणी, क्या यह जीव असंख्य प्रदेशी है? वा नहीं है? इस तरें सर्व पदार्थोंमें शंका करणी, तिससेंति जो उत्पन्न होवे, सो सांशयिक मिथ्यात्व. "तदाह भाष्यकृत्॥ सांशयिकं मिथ्यात्वं तदशेषया शंका संदेहोजिनोक्ततत्वेष्विति॥" संशय मिथ्यात्वके होनेके कारण श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमण ध्यानशतकमें लिखते हैं, कि एक तो जैनमत स्याद्वादरूप अनंतनयात्मक है, इस वास्ते समझनां कठिन है, तथा सप्तभंगीके सकलादेशी, विकलादेशी भंगोंका स्वरूप, अष्टपक्ष, सात सौ नय, चार निक्षेप, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, तथा १ उत्सर्ग, २ अपवाद, ३ उत्सर्गापवाद, ४ अपवादोत्सर्ग, ५ उत्सर्गोत्सर्ग, ६ अपवादापवाद, यह षड्भंगी तथा १ विधिवाद, २ चारित्रानुवाद, ३ विधिवाद, ४ यथास्थितवाद, इत्यादि अनंतनयापेक्षा जैनमतके शास्त्र कथन कीये हूये हैं; जब तांइ जिस अपेक्षा शास्त्रोमें कथन है वो अपेक्षा न समझे, तब तांइ जैनशास्त्रका यथार्थ अर्थ समझनां कठिन है. इनके समझनेके वास्ते बडी निर्मल बुद्धि चाहियें. सो थोडे जीवोंकों है, तथा

शास्त्रके अर्थ बताने वाला गुरु पूरा चाहियें, सो नही है. इत्यादि निमि त्तोंसें संशयमिथ्यात्व होता है.

५ पाचमा अनाजोग मिथ्यात्व, सो जिन जीवोंकों उपयोग नहीं कि धर्म, अधर्म, क्या वस्तु है ? ऐसा जो विकलेंद्रियादि जीव, तिनकों अना जोगमिथ्यात्व होता है यह मिथ्यात्वके पांच जेद है यह पाच मिथ्या त्वमें औरजी मिथ्यात्वके अनेक जेद है सोजी इन पाचोंके अंतर्जूत है, सो जेद इस प्रकारसे है

१ प्रथम प्ररूपणा मिथ्यात्व, सो जिनवाणी रूप जो सूत्र, निर्युक्ति, जाष्य, चूर्णी, टीका, इनसे विपरीत प्ररूपणा करे

२ दूसरी प्रवर्त्तना मिथ्यात्व, सो जो काम,मिथ्यादृष्टि जीवो धर्म जान करकें करते है,उनकी देखा देखीसे उनकी करणी करें,३ तीसरी परिणाम मिथ्यात्व, सो मनमे परिणाम विपरीत कदाग्रह रहे,शुद्ध शास्त्रार्थ माने नहीं

४ चौथा प्रदेशमिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वके पुजल जो सत्तामे है, उन का नाम प्रदेश मिथ्यात्व है. इन चारों जेदोकें अनेक जेद है, उसमेसूं कितनेक लिखते है

१ धर्म जो वीतराग सर्वज्ञने कहा है, तिसको अधर्म माने, २ अरु जो हिंसा प्रवृत्ति प्रमुख आश्रवमयी अशुद्ध अधर्म है, उसको धर्म माने, ३ जो सत्यमार्ग है, उसको मिथ्यात्व कहे, ४ जो विपर्यायोंका मार्ग है, उ सको सत् मार्ग कहे, ५ जो साधु सत्तावीश गुणों करी बिराजमान है, उ सको असाधु कहे, ६ जो आरंज परिग्रह विषय कषाय करके जरा हूआ है, अरु उपदेश ऐसा देता है, कि जिसके सुननेसे लोकोंकों कुवासना, लुच्चपणा, कुबुद्धि उत्पन्न होवे, ऐसा गुरु पत्थरकी नौका समान ऐसे जो अन्यलिंगी कुलिंगी तिनको साधु कहे, ७ षट्कायोंके जीवोंको अजीव माने, ८ काष्ठ, सोना, जो अजीव है, उनकों जीव माने, ९ मूर्त्ति पदार्थोंकों अमू र्त्ति माने, १० अमूर्त्त पदार्थोंकों मूर्त्त माने, यह दश जेद मिथ्यात्वके है

तथा दूसरे ६ जेद मिथ्यात्वके है, सो कहते हैं १ लौकिक देव, २ लौकिक गुरु, ३ लौकिक पर्व, ४ लोकोत्तर देव. ५ लोकोत्तर गुरु, ६ लोको त्तर पर्व

१ प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व जो है, सो जो देव, राग द्वेष करके जरा हूया है, एक उपर महेरबान होता है, एकका विनाश करता है, स्त्री

के जोगविलासमें मग्न है, अरु अनेक प्रकारके शस्त्र जिसके हाथमें हैं, अपनी ठकुराइमें अभिमानी है, हाथमें माला जपता है, सावद्य जोग पंचेंद्रियका वध चाहाता है, ऐसे देवकों जो पुरुष परमेश्वर माने, अथवा परमेश्वरका अंश अवतार माने, और पूजे, तिसके कहे हूये शास्त्रसें हिंसाकारी यज्ञादि करे, अनेक तरेंके पाप, धर्मके नामसें प्रवृत्त करे, इस लौकिक देवके अनेक भेद हैं. सो मिथ्यात्व सित्तरी प्रमुख ग्रंथोंसें जानने. यह प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व है.

२ दूसरा लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व, सो जो अगरह पाप सेवे हैं, नव प्रकारका परिग्रह राखे, गृहस्थाश्रम सेवे, स्त्री, पुत्र, पुत्रीके परिवार वाला होवे, तथा कुलिंगी मनःकल्पित नवा नवा वेष बना कर स्वकपोलकल्पित चलावे, अरु आमंबरी होवे, बाह्य परिग्रह तो त्याग दीया है, परंतु अभ्यंतर ग्रंथि गेडी नहीं, गुरु नाम धरावे, मंमलीसें विचरे, जिसकी अनादि भूल मिटी नहीं, औ जिसकों शुद्ध साध्यकी पीछाण नहीं, तिसकों गुरु माने, तिसका बहुमान करे, तिस्सें मोक्ष जाणी दान देवे, उसकों परम पात्र जाणे, सो लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व है.

३ तीसरा लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व, सो १ अजापडवा, २ प्रेतदूज, ३ गुरुतीज, ४ गणेशचौथ, ५ नागपंचमी, ६ झीलणाछठ, ७ सीयलसातम, ८ बुद्धाष्टमी, ९ नोलीनवमी, १० विजयदशमी, ११ व्रतएकादशी, १२ वत्सद्वादशी, १३ धनतेरस, १४ अनंतचौदश, १५ अमावास्या, १६ सोमवतीअमावास्या, १७ रक्षाबंध, १८ होली, १९ आहोइ, २० दसहरा, २१ सोमप्रदोष, २२ लोडी, २३ आदित्यवार, २४ उत्तरायण, २५ संक्रांति, २६ ग्रहण, २७ नवरात्र, २८ श्राद्ध, २९ पीपलकों पाणी देनां, ३० गर्द्धेकों माताका घोडा मानके पूजणां, ३१ गोत्राटी, ३२ अन्नकूट, ३३ अनेक समशान, कबरोंका मेला. इत्यादि यह लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व है.

४ चौथा लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व, सो देव श्रीअरिहंत, धर्मका आकर, विश्वोपकार सागर, परमपूज्य, परमेश्वर, सकल दोष रहित, शुद्ध, निरंजन, तिनकी स्थापनारूप जो प्रतिमा, तिसके आगें इस लोकके पौद्गलिक सुखकी आशासें मनमें कल्पना करे, जे कर मेरा यह काम हो जावेगा, तो मैं बडी भारी पूजा करुंगा; छत्र चढाउंगा, दीपमालाकी रोशनी करुंगा, रात जा

ग्रना करुंगा, ऐसें नावोंसें वीतरागकों माने, इस वास्ते यह मिथ्यात्व है, जो पुरुष चिंतामणिका दातासेती काचका टुकडा मागे, वो युक्त नही जिसको अपणे कर्मोदयका स्वरूप मालुम नहीं, वोही जीव ऐसा होता है, यह लोकोत्तरदेवगत मिथ्यात्व है

५ पांचमा लोकोत्तरगुरुगत मिथ्यात्व, सो जो साधुका वेप रक्खे, अरु आप निर्गुणी होवे, जिनवाणीका उछापक होवे, अपणे मन कल्पितका उपदेश देवे, सूत्रका सच्चा अर्थ तोडे, ऐसा लिंगी उत्सूत्रका प्ररूपक तिसकों गुरु जान कर मान, सन्मान करे. तथा जो साधु गुणी, तपस्वी, आचारी बहुक्रियावत, तिसकी इस लोक इछा करके सेवा करे, बहुमान करे, मनमे ऐसें जाणे कि इनकी बहुत सेवा करुगा, तब इनकी मेहरबानगीसे धन, ऋद्धि, स्त्री, पुत्रादि मुजकों मिलेंगे, यह लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व है

६ छठा लोकोत्तरपर्वगत मिथ्यात्व, सो प्रजुके पाच कल्याणिककी तिथि तथा दूसरे पर्वके दिन, तिन दिनोमे धनादिके वास्ते जप, तप, धर्मकरणी करे, सो लोकोत्तरपर्वगत मिथ्यात्व है इत्यादि मिथ्यात्वके अनेक विकल्प है, परतु वो सब पूर्वोक्त अनिग्रहादि मिथ्यात्वमेंही अतर्नूत है यह पाच प्रकारका मिथ्यात्व कह्या, यह प्रथमबंध हेतु कह्या

अब बारह प्रकारकी अविरति कहते है. पाच इंद्रिय, छठा मन, अरु छे काय, यह बारह प्रकार है तिसका स्वरूप इस तरेसे है, पांच इंद्रियोकों अपणे अपणे विषयमे प्रवृत्तावें, सो पाच अव्रत, अरु छठा किसी पापकी वस्तुसे मनका निरोध न करना सो अव्रत है, तथा षड्विध जीवनिकायकी हिंसामें प्रवृत्त होवे,यह बारह प्रकारे अविरति है,यह दूसरा बंधहेतु कह्या

, तीसरा कषायबध हेतु है, उनके सोलां कषाय, अरु नव नोकषाय, मिल कर पच्चीस नेद है. अनतानुबधि क्रोध, मान, माया, अरु लोन, ऐसेही अप्रत्याख्यान क्रोधादि चार, तथा प्रत्याख्यान क्रोधादि चार, अरु संज्वलन क्रोधादि चार, एव सोलह कषाय, इनके सहचारी नव नोकषाय है, उसका नाम कहते है. १ हास्य, २ रति, ३ अरति, ४ शोक, ५ नय, ६ जुगुप्सा, ७ स्त्रीवेद, ८ पुरुषवेद, ९ नपुसकवेद इन सर्वका व्याख्यान पीछें लिख आये है, इनसे कर्मका बध होता है, यही ससार स्थितिका मूल कारण है. यह तीसरा बध हेतु कह्या.

चौथा योगनामा बंधहेतु हैं. सो योग, मन, वचन, अरु काया, यह तीन प्रकारका है. इन तीनोंके पंदरा भेद हैं. तहां प्रथम मनोयोग चार प्रकारका है, और वचन योग चार प्रकारका है, अरु काययोग सात प्रकारका है, ये सब मिलकर पंदरा भेद हैं.

मन नाम अंतःकरणका है, सो चार प्रकारें है. १ सत्यमनोयोग, २ असत्यमनोयोग, ३ मिश्रमनोयोग, ४ व्यवहारमनोयोग. मन क्या वस्तु है? कायाके व्यापारसें पुज्ञल ग्रहण करकें उन पुज्ञलोंकों जब मनोयोग करकें काढता है, तिसका नाम द्रव्यमन कहते हैं, अरु उन पुज्ञलोंके संयोगसें जो ज्ञान उत्पन्न होता है, तिसका नाम भावमन है. उस ज्ञान करकें जो व्यवहार सिद्ध होता है, तिस व्यवहार करकें मनभी सत्यादि व्यपदेशकों प्राप्त होता है, अरु उपचार करकें द्रव्यमनभी ज्ञायक है, मनमें जो सत्य व्यवहारका धारण करता, सो सत्यमन, सो व्यवहार यह है कि पापसें निवृत्तनां बचनके उच्चारण विना जो चिंतवन करनां कि मुनि है, जीवादि पदार्थ सत् हैं, इत्यादि मन शब्द करकें इहां मनोयोग नोइंद्रियावरण कर्मके क्षयोपशमसें उत्पन्न हुआ जो मनोज्ञान, उस करकें परिणत आत्माकों बलाधान करने वाला मनोवर्गणाके संबंधसें उत्पन्न हूआ वीर्यविशेष, सो इहां मन जाननां. इसी मनके चार भेद हैं. ऐसेंही वचनयोग, सो बचनकी वर्गणा अर्थात् परमाणुका समूह, उस वचन वर्गणा करकें उत्पन्न भइ सामर्थ्यविशेष, आत्माकी परिणति, सो बचनयोग जाननां.

मनके चार भेदमेंसूं सत्यमनोयोगका स्वरूप उपर लिख आये हैं, सो प्रथम भेद. अरु दूसरा मृषामन, सो धर्म नहीं, पाप नहीं, नरक, स्वर्ग, कुछ नहीं. इत्यादिक जो बचन निरपेक्ष चिंतवना करनी, सो जाननां. तीसरा मिश्रमन, सो सच्च, अरु जूठ, इन दोनोंका चिंतन, जैसें गोवर्गकों देख कर मनमें चिंतन करनां कि यह सर्व गौवां हैं, यह मिश्र इस वास्ते है कि उस गोवर्गमें बलदभी है, इत्यादि मिश्रबचन. चोथा "हे ग्रामं गछ" इत्यादि चिंतन करनां, सो व्यवहारमन, इसी तरें जब बचन योगसें पूर्वोक्त चारोंका उच्चारण करे, तब बचन योगभी चार प्रकारका जान लेनां. यह चार मनके अरु चार बचनके एवं आठ भेद हूवे.

अब सत्यबचन दश प्रकारका है, १ जनपद सत्य, सो जिस देशमें जि

स वस्तुका जो नाम बोलते है, उस देशमे वो नाम सत्य है, जैसें कोंकण देशमे पाणीको पिछ कहते हे, कोइ देशमे वडा पुरुपको बेटा कहते है, वा बेटेको काका कहते है, किसी देशमे पिताकों जाइ, सासुको आइ,इत्यादि कहते हे, सो जनपदसत्य २ दूसरा सम्मतसत्य, सो जैसे पंकसे उत्पन्न हूआ मैंमक, सिवाल, कमल, तोनी पकज शब्द करके कमलही पूर्व विद्वानोने सम्मत कीया है,परतु मैंमक, सिवाल नहीं ३ तीसरा स्थापनासत्य, सो जिसीकी प्रतिमा होवे, तिसकों उसके नामसें कहना,जैसें महावीर, पार्श्वनाथ जी अर्हतकी प्रतिमा होवे, उस प्रतिमाको महावीर, पार्श्वनाथ कहे, तो सत्य है, परंतु उसको पत्थर कहे, सो मृषावादी है, जैसें स्याही और कागज का नाम, स्थापना करनेसे ऋग्, यजु, साम, अथर्व, कहे जाते है, आचारागादि अग कहे जाते हे, तथा काष्ठके आकार विशेषकों किवाड कहे जाते है, ईट, पत्थर, चूनेको स्थल कहना, पुस्तकमें त्रिकोणादि चित्र लिखकें उसको आर्यावर्त्त, जारतवर्ष, जबूद्वीपादि कहना तथा ककार, खकार, स्याहीकी स्थापनाकों कहना इस स्थापनासे पुरुपकी कछुक सिद्धि जरुर होती है, नहीं तो नाना प्रकारकी स्थापना, पुरुप, किस वास्ते करते है? इस वास्ते श्रीमहावीर तथा श्रीपार्श्वनाथजीकी स्थापनारूप प्रतिमाकों श्री महावीर पार्श्वनाथजी कहना,यह स्थापना सत्य है इसमे इतना विशेष है,कि जो देव शुद्ध है, उसकी स्थापनाभी शुद्ध है, अरु जो देव शुद्ध नहीं, उसकी स्थापनाभी शुद्ध नहीं, परंतु उस स्थापनाको उनका देव कहना, यह बात सत्य है ४ चौथा नामसत्य, सो किसीने अपने पुत्रका नाम कुलवर्द्धन रक्खा है, अरु जिस दिनसें वो पुत्र जन्मा है, उस दिनसें उस कुलका नाश होता चला जाता है, तोभी उस पुत्रकों कुलवर्द्धन नामसें पुकारे, तो सत्य है ५ पांचमा रूपसत्य,सो चाहे गुणोसे भ्रष्टभी है, तोभी साधुके वेपवालेको साधु कहे, तो सत्य है, ६ छठा प्रतीतसत्य, अर्थात् अपेक्षासत्य, सो जैसे मध्यमाकी अपेक्षा अनामिकाकों छोटी कहना ७ सातमा व्यवहारसत्य, सो जैसे पर्वत जलता है, रसता चलता है ८ आठमा भावसत्य,सो जैसे तोतेमे पाच रंग है, तोभी तोता हरे रगका कहना ९ नवमा योगसत्य, सो जैसे दमके योगसे दमी कहना १० दशमा उपमासत्य, सो जैसें मुख,चद्रवत् कहना यह दश प्रकारका सत्य है

अब दश प्रकारके कूठ कहते हैं. १ क्रोधनिश्रित सो क्रोधके वश हो कर जो वचन बोले, सो असत्य, २ ऐसेंही मानके उदयसें बोले, सो असत्य, ३ ऐसें मायाके उदयसें बोले, सो असत्य, ४ लोभके, ५ रागके, ६ द्वेषके उदयसें बोले, सो असत्य, ७ हास्यके वश बोले, ८ भयके वश बोले, ए विकथा करे, सो असत्य. १० जिस बोलनेमें जीवकी हिंसा होवे, सो असत्य. यह दश प्रकारका असत्य वचन है.

अब दश प्रकारका मिश्रवचन कहते हैं. १ उत्पन्न मिश्रित, सो विना ख बर कह देनां कि इस नगरमें आज दश बालक जन्मे हैं, इत्यादि. २ विगत मिश्रित, सो जैसें विना खबरके कहनां कि इस नगरमें आज दश मनुष्य मरे हैं. ३ उत्पन्नविगतमिश्रित, सो जैसें विना खबरके कहनां कि इस न गरमें आज दश जन्मे हैं, अरु दशही मरे हैं. ४ जीवमिश्रित, सो जीवा जीवकी राशिकों कहनां कि यह जीव है. ५ अजीवमिश्रित, सो अन्नकी रा शिको कहनां कि यह अजीव है. ६ जीवाजीवमिश्रित, सो जीवाजीव दो नोंकी मिश्रनाषा बोले. ७ अनंतमिश्रित, सो मूली आदिकोंके अवयवोंमें किसी जगे अनंत जीव हैं, किसी जगे प्रत्येक जीव हैं, उनकों प्रत्येक काय कहै. ८ प्रत्येकमिश्रित, सो प्रत्येक जीवोंकों अनंतकाय कहे. ए अ द्धामिश्रित, सो दो घडीके तडकेमें कहे कि दिन उग्या है. १० अद्धद्धामिश्रित, सो घडी एक रात्रि गया, दिनका उदय कहै. यह दश प्रकारका मिश्रवचन है.

अब व्यवहार वचनके बारह भेद कहते हैं. १ आमंत्रण करनां, कि हे भगवन्! २ आज्ञापना, सो यह काम कर, तथा यह वस्तु लाव. ३ या चना, सो यह वस्तु हमकों दीजीयें. ४ पृछना, सो अमुक गामका मार्ग कौन सा है? ५ प्रज्ञापना, सो धर्म ऐसें होता है. ६ प्रत्याख्यानी. सो यह काम हम नहीं करेंगे. ७ इच्छानुलोम, सो यथासुखं. ८ अनभिगृहीता, सो मुझकों खबर नहीं. ए अभिगृहीता, सो मुझे खबर है. १० संशय, सो क्यों कर खबर नहीं है? ११ प्रगट अर्थ कहे. १२ अप्रगट अर्थ कहे. यह बारह प्रकारका व्यवहारबचन है.

औ काययोगके सात भेद हैं. प्रथम काययोग उसकों कहते हैं, कि आत्माके निवासभूत पुजलद्रव्य घटित बूढेकों डुर्बलकों अवष्टं भगत जैसें लाठी आदि है, तिसकी तरें विषम काममें जिसके योगसें

जीवके वीर्यका परिणाम सामर्थ्य, सो काययोग है, जैसे अग्निके संयोग से घटकी रक्तता होती है, तैसेही आत्माको कायके करण सबंधसे वीर्य परिणाम है, इस काययोगके सात भेद है १ औदारिककाययोग, २ औदारिकमिश्रकाययोग, ३ वैक्रियकाययोग, ४ वैक्रियमिश्रकाययोग, ५ आहारककाययोग, ६ आहारकमिश्रकाययोग, ७ कार्मणकाययोग इसमेसु प्रथमके दो काययोग तो मनुष्य, अरु तिर्यचमे होते है, अगले दो स्वर्ग वासी देवताओमें होते हे, अरु अगले दो चौदह पूर्वधारी साधुमे होते है, अरु जीव जब काल करके परभवमे जाता हे, तब रस्तेमे कार्मण शरीर होता है, तथा समुद्घात अवस्थामे केवलीमे होता है, अरु जो तैजस शरीर, आहार पाचन करनेमें समर्थ युक्त है, सो कार्मण योगके अतर भूत होनेसे पृथग् ग्रहण नही कीया है यह सप्तविध काययोग है यह सब मिल कर बधतत्त्वके उत्तर भेद सत्तावन्न हूये है॥ इति बधतत्त्व संपूर्ण

अथ मोक्षतत्त्व लिखते है तहा प्रथम मोक्ष किसको कहते हे?॥ यदुक्तं॥ जीवस्य कृत्स्नकर्मक्षयेण यत्स्वरूपावस्थान तन्मोक्ष उच्यते॥ भावार्थ – जीवके सपूर्ण ज्ञानावरणादि कर्मोके क्षय होने करके जो स्वरुपमे रहना है, सो मोक्ष कहते हे वो जो मोक्ष है, सो जीवका धर्म है. अरु धर्म धर्मीका कथचित् अभेद होनेसे धर्मी जो सिद्ध, तिनकी जो प्ररूपणा, सो भी मोक्ष प्ररूपणा है, क्योंकि मोक्ष जो है, सो जीवपर्याय है, सो जीव पर्याय कथचित् सिद्ध जीवसे अभिन्न है, सर्वथा जीवकी पर्याय जीवसे भिन्न नहीं हो सक्ती है ॥ तदुक्त ॥ श्लोक ॥ द्रव्यं पर्यायवियुतं, पर्यायाद्रव्यवर्जिता ॥ क्क कदा केन किं रूपा, दृष्टा मानेन केन वेति ॥ १ ॥ भावार्थ – द्रव्य पर्यायो करके रहित अरु पर्यायो द्रव्य वर्जित अर्थात् रहित, किसी जगे, किसी अवसरमे, किसी प्रमाणसे, किसीने कोइ रूप देखा है?

अब सिद्धोका स्वरूप नव द्वारोसें सूत्रकार अरु भाष्यकार कहते है १ सत्पद प्ररूपणा, २ द्रव्यप्रमाण, ३ क्षेत्र, ४ स्पर्शना, ५ काल, ६ अतर, ७ भाग, ८ भाव, ९ अल्पबहुत्व इन नव द्वारो करकें सिद्धोका स्वरूप लिखते हे १ प्रथम सत्पद प्ररूपणा द्वार, सो जो सत्ता विद्यमानता, तिसका कहने वाला पद, सो सत्पद सिद्ध है, वा नहीं सिद्ध है? सो गति आदि चौद पदोमें कहना यथा "पंचविधा" १ पाच प्रकार गति है,

१ नरकगति, २ तिर्यग्गति, ३ मनुष्यगति, ४ देवगति, ५ सिद्धगति. तहां सिद्धगति वर्जके शेष चार गतिमें सिद्ध नहीं. यद्यपि १ कर्मसिद्ध, २ शिल्पसिद्ध, ३ विद्यासिद्ध, ४ मंत्रसिद्ध, ५ योगसिद्ध, ६ आगमसिद्ध, ७ अर्थसिद्ध, ८ यात्रासिद्ध, ९ अभिप्रायसिद्ध, १० तपःसिद्ध, ११ कर्मक्षयसिद्ध. ऐसें अनेक तरेंके सिद्ध आवश्यककी निर्युक्तिकारने कहे हैं. तोभी इहां जो कर्मक्षय करकें सिद्ध हूआ है, तिसका अधिकार है, उनहींकों मोक्षपर्याय है, औरोंकों नहीं. २ इंद्रिय स्पर्शनादि पांच है, एक इंद्रिय, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, पांच इंद्रिय. इन पांचों प्रकारोमें सिद्ध पणां नहीं, क्योंकि सर्वथा शरीरके परित्यागनेसें सिद्ध होता है, जहां शरीर नहीं, तहां इंद्रियभी कोइ नहीं. इसी वास्ते सिद्ध अतींद्रिय हैं. ३–१ पृथिवीकाय, २ अप्काय, ३ तेजःकाय, ४ पवनकाय, ५ वनस्पतिकाय, ६ त्रसकाय. इन छही कायोंके जीवोंमें सिद्धपणां नहीं. क्योंकि सिद्ध जो हैं, सो अकाय (काय रहित हैं) ४ काय, बचन, अरु मन भेद करकें योग तीन है. उसमें केवल काययोग वाले एकेंद्रिय जीव हैं, अरु काय बचन योग वाले दींद्रियादि असंज्ञी पंचेंद्रिय पर्यंत जीव हैं, अरु काय, बचन, मन योग वाले संज्ञी पंचेंद्रिय पर्यंत जीव हैं, इन तीनों योगोमें सिद्धपणेकी सत्ता नहीं, क्योंकि सिद्ध अयोगी हैं, अरु अयोगी पणां तो काय बचन अरु मनके अभावसें होता है. ५ स्त्री, पुरुष, नपुंसक, इन तीनों वेदोमें सिद्ध पदकी सत्ताका अभाव है, क्योंकि सिद्ध जो हैं, सो पूर्वोक्त हेतुसें अवेदी हैं. ६ क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चारों कषायोंमें सिद्ध पणां नहीं है, क्योंकि सिद्ध अकषायी हैं, सो अकषायिपणा कर्मके अभावसें होता है, ७ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान, केवल ज्ञान. यह पांच प्रकारका ज्ञान है. अरु मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंगज्ञान, यह तीन अज्ञान हैं. उसमें आदिके चारों ज्ञानोमें अरु तीनों अज्ञानोमें सिद्धपणा नहीं है, एक केवलज्ञानमें सिद्धपणां हैं, सो केवलज्ञान, इहां सिद्धावस्थाका जाननां, परंतु सयोगी अवस्थाका नहीं. ८ सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय, अरु यथाख्यात. यह पांच चारित्र, तथा इनके विपक्षी देश संयम, अरु असंयम. तहां पांचविध चारित्रमें तथा दोनो विपक्षोमें सिद्धपणा मोक्ष

णा नहीं, क्योंकि यह सर्व शरीरादिकके हूयें होते है, सो शरीरादिक सि
द्धोको है नहीं. ए चक्षु, अचक्षु, अवधि, अरु केवल, इन चारो दर्शनमें
सूं आदिके तीनो दर्शनमे सिद्धपणां नही, परतु केवलदर्शनमे केवल ज्ञा
नवत् जान लेनां १० कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म, अरु शुक्ल, यह
छै प्रकारकी लेश्यायोमे सिद्धपणा नही, क्योकि लेश्या जो है, सो भव
स्थ जीवकी पर्याय है, सिद्ध तो अलेशी है ११ भव्य, अभव्य, इन दो
नोमे सिद्धपणां नही, क्योकि भव्यजीव उसको कहते है, कि जिसको सि
द्धपदकी प्राप्ति होवेगी, अरु सिद्धोनें तो नवीन कोइ सिद्ध पदवी पाव
णी नहीं है, इस वास्ते भव्य पणा सिद्धोमे नही अरु अभव्यजीव उस
को कहते है, कि जिसमे सिद्ध होनेकी योग्यता किसी कालमेभी न होवे,
अैसा सिद्धका जीव नही है, क्योकि उसमे अतीतकालमे सिद्ध होनेकी
योग्यता थी, इस वास्ते सिद्ध अभव्यभी नहीं सिद्ध जो है, सो नोभव्य
नोअभव्य है, यह आप्त वचनभी है १२ क्षायिक, क्षायोपशम, उपशम,
सास्वादन, अरु वेदक यह सम्यक्त्व पांच प्रकारका है इनका विपक्षी ए
क मिथ्यात्व, दूसरा सम्यक्त्व मिथ्यात्व, सो मिश्र है, तिनमेसू क्षायिक व
र्जित चार सम्यक्त्व अरु मिथ्यात्व, तथा मिश्र, इनमे सिद्धपद नही, क्यो
कि यह सर्व क्षायोपशमिकादि भाव वर्त्ती है, अरु क्षायिक सम्यक्त्वमे सि
द्ध पद है, क्षायिक सम्यक्त्वभी दो तरेकी है एक शुद्ध, दूसरी अशुद्ध,
तहा शुद्ध अपाय, सत् द्रव्य रहित भवस्थ केवलीयोंके है, अरु सिद्धोके
शुद्ध जीव स्वभावरूप सम्यक् दृष्टि है, सादि अपर्यवसान है, अरु अशु
द्ध अपाय सहचारिणी श्रेणिकादिकोंकी तरे सम्यक् दृष्टि होना, यह क्षा
यिक सादि सपर्यवसाना है तहा अशुद्ध क्षायिकमें सिद्ध पद नही क्यो
कि उसके अपाय सहचारी है, अरु शुद्ध क्षायिकमे तो सिद्ध सत्ताका वि
रोध नही, क्योंकि सिद्ध अवस्थामे शुद्ध क्षायिक जाती नही रहती है
अपाय, मतिज्ञानांशका नाम है अरु सत् द्रव्य शुद्ध सम्यक्त्वके दलियों
का नाम है, इन दोनोका अभाव होनेसे क्षायिक सम्यक्त्व होता है, १३
सज्ञा यद्यपि तीन प्रकारकी है १ हेतुवादोपदेशिनी, २ दृष्टिवादोपदेशि
नी, ३ दीर्घकालिकी तोभी दीर्घकालिकी सज्ञा करकें जो सज्ञी है, सोही
व्यवहारमें प्राय ग्रहण कीये जाते है, सज्ञा होवे जिनके सो सज्ञी

जैसेंकि यह करा है, यह करुंगा, यह में कर रहा हों, ऐसा जो त्रिकाल विषय मनोविज्ञानवाले जीव हैं, तिनकों संज्ञी कहते हैं. इनमें जो विपरीत होवे, सो असंज्ञी जानने. यह संज्ञी तथा असंज्ञी, इन दोनोंहीमें सिद्ध पद नहीं. क्योंकि सिद्ध तो नोसंज्ञी नोअसंज्ञी हैं, १४ ओज आहार, लोम आहार, प्रक्षेप आहार, ये आहार, तीन प्रकारका है. इन तिनों आहारोमें सिद्ध नहीं. यह प्रथम सत्पद प्ररूपणा द्वार कहा.

दूसरा द्रव्य प्रमाण द्वार लिखते हैं. गिणती करियें तो सिद्धोंके जीव अनंत हैं. तीसरा क्षेत्र द्वार, सो आकाशके एक देशमें सर्व सिद्ध रहते हैं, वो आकाशका देश कितना बडा है? सो कहते हैं, कि धर्मास्तिकायादिक पांच द्रव्य, जहां तक हैं, तहां तक लोक है, ऐसा जो लोक संबंधि आकाश, तिसके असंख्यमे भागमें सिद्ध रहेते हैं. चौथा स्पर्शना द्वार, सो जितने आकाशमें सिद्ध रहते हैं, स्पर्शना उससें किंचित् अधिक है. पांचमा काल द्वार, सो एक सिद्धके आश्री सादि अनंतकाल है, अरु सर्व सिद्धाश्रित अनादि अनंतकाल जानना. छठा अंतर द्वार, सो सिद्धोंके विचाले अंतर नहीं, सर्व सिद्ध मिलकें एकही रूपवत् रहते हैं. सातमा भाग द्वार, सो सिद्ध जे हैं ते सर्व जीवोंके अनंतमे भागमें हैं. आठमा भाव द्वार, सो सिद्धोंकों क्षायिक पारिणामिक भाव है, शेष भाव नहीं. नवमा अल्प बहुत्व द्वार, सो सर्वसें थोडे अनंतर सिद्ध हैं, अनंतर सिद्ध उनकों कहते हैं कि जिनकों सिद्ध हुआ, एक समय हुआ है. तिनसें परंपर सिद्ध अनंत गुणे हुए हैं, छै मास सिद्ध होनेमें उत्कृष्ट अंतर होता है. यह अल्प बहुत्व द्वार कहा. यह मोक्षतत्त्वका स्वरूप संक्षेपमात्र लिखा है, जे कर विशेष करकें सिद्धोंका स्वरूप देखनां होवे, तदा नंदीसूत्र, प्रज्ञापन्नसूत्र, सिद्धप्राभृतसूत्र, सिद्धपंचाशिका, देवाचार्यकृत नवतत्त्व प्रकरणकी वृत्ति देख लेनी. तथा आगें चतुर्दश गुणस्थानमेंभी सिद्धोंका कछुक स्वरूप लिखेंगे ॥ इतिश्री तपगच्छीयमुनिश्रीबुद्धिविजयशिष्य मुनि आनंदविजय आत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे नवतत्त्व स्वरूपनिर्णयनामा पंचमः परिच्छेदः संपूर्णः ॥ ५ ॥

॥ अथ षष्ठ परिच्छेद प्रारंभः ॥

यह षष्ठ परिच्छेदमे चौदह गुणस्थानका स्वरूप किंचित् मात्र लिखते है यह जैन मतमें भव्य जीवोंको सिद्धिसौधके चढने वास्ते गुणोंकी जो श्रेणी है, सोही निसरणी है, तिस गुण निसरणीमे पगथरणरूप गुणोसे गुणांतरकी प्राप्तिरूप जो स्थान, अर्थात् भूमिका है, सो चौदह है, तिन के नाम कहते है १ मिथ्यात्व गुणस्थानक, २ सास्वादन गुणस्थानक, ३ मिश्र गुणस्थानक, ४ अविरतिसम्यक्दृष्टि गुणस्थानक, ५ देशविरति गुणस्थानक, ६ प्रमत्तसयत गुणस्थानक, ७ अप्रमत्तसंयत गुणस्थानक, ८ अपूर्वकरण गुणस्थानक, ९ अनिवृत्तबादर गुणस्थानक, १० सूक्ष्मसपराय गुणस्थानक, ११ उपशांतमोह गुणस्थानक, १२ क्षीणमोह गुणस्थानक, १३ सयोगीकेवली गुणस्थानक, १४ अयोगीकेवली गुणस्थानक. यह चौदह गुणस्थानक अर्थात् गुणरूप भूमिकाके नाम है

तहां प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानकका स्वरूप कहते है, उसमेंभी प्रथम व्यक्त, अव्यक्त, मिथ्यात्वका स्वरूप कहते है जो स्पष्टचैतन्यसंज्ञी पचेंद्रिय जीवोकी अदेव, अगुरु औ अधर्म, इन तीनोमे क्रम करकें देव, गुरु, औ धर्मकी बुद्धि होवे, सो व्यक्तमिथ्यात्व है अरु उपलक्षणसे जीवादि नव पदार्थोमे जिसकी श्रद्धा नही,अरु जिनोक्त तत्त्वसे जो विपरीत प्ररूपणा करणी, तथा जिनोक्त तत्त्वमे सशय करणा, तथा जिनोक्त तत्त्व मे दूषणोका आरोप करणा, इत्यादि तथा आभिग्राहिकादि जो पांच मिथ्यात्व है, तिनमे एक अनाभोगिकमिथ्यात्व तो अव्यक्त मिथ्यात्व है, शेष चार भेद, व्यक्त मिथ्यात्वके है तथा "अधम्मे धम्मसन्ना इत्यादि" दश प्रकारकी जो मिथ्यात्व है, सो सर्व व्यक्त मिथ्यात्व है अरु अपर जो अनादि कालसे मोहनीय प्रकृतिरूप मिथ्यात्व सत् दर्शनरूप आत्माके गुणका आच्छादक जीवके साथ सदा अविनाभावि है, सो अव्यक्तमिथ्यात्व है

अथ मिथ्यात्वकों गुण स्थानक किसी रीतीसें कहते है? सो लिखते है अनादि अव्यक्त मिथ्यात्व अव्यवहार राशिवर्त्ती जीवमे सदा होती है, परतु व्यक्त मिथ्यात्वकी जो बुद्धि है, तिस बुद्धिकी जो प्राप्ति है, सोइ मिथ्यात्व गुणस्थानक है.

प्रश्नः– मिथ्यात्व गुणस्थानमें सर्व जीवोंके स्थान मिलते हैं, यह जैनशास्त्रका कथन है, तो फेर कैसें व्यक्त मिथ्यात्वकी बुद्धिकों गुणस्थान रूपता कहते हो ?

उत्तरः–सर्वभाव सर्व जीवोने पूर्वे अनंत वार पाया है, इस वचनके प्रमाणसें जो प्राप्तव्यक्त मिथ्यात्वबुद्धिवाले जीव, व्यवहार राशिवर्त्ती हैं, सोही प्रथम गुणस्थानवाले जीव कहे जाते हैं, नतु अव्यवहार राशि वर्त्ती जीव ? क्योंकि वो अव्यक्तमिथ्यात्व वाले हैं, इस वास्ते दोष नहीं.

अथ मिथ्यात्व रूप दूषणका स्वरूप कहते हैं. जैसें जीव मनुष्यादिक प्राणी मदिरेके उन्मादसें हित, वा अहित, यह कुछभी नष्टचैतन्य होनेसें नहीं जानता है, तैसेंही मिथ्यात्व करकें मोहित जीव धर्माधर्म सम्यक् नहीं जानता है ॥यदाह ॥श्लोक॥ मिथ्यात्वेनालीढचित्ता नितांतं, तत्त्वातत्त्वं जानते नैव जीवाः ॥ किं जात्यंधाः कुत्रचिद्वस्तुजाते, रम्यारम्यं व्यक्तमासादयेयुः ॥ १ ॥ इति ॥ अथ मिथ्यात्वकी स्थिति कहते हैं, अभव्य जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व जो है, अरु सामान्य प्रकारें अव्यक्त मिथ्यात्व, इनकी अनादि अनंत स्थिति है, सोइ स्थिति भव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि सांत है, यह स्थिति सामान्यप्रकार करकें मिथ्यात्वको अपेक्षा दिखलाइ है, जे कर मिथ्यात्व गुणस्थानककी स्थिति बिचारियें, तदा भव्य जीवोंको अपेक्षा अनादि सांत है. तथा सादि सांतभी हैं, अरु अभव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि अनंत हैं, जब मिथ्यात्व गुणस्थानकमें जीव वर्त्तता है. तब एक सौ वीश बंध प्रायोग्य कर्मप्रकृतियोंमेंसूं १ तीर्थंकर नाम कर्मकी प्रकृति, २ आहारकशरीर, ३ आहारकोपांग, यह तीन प्रकृति नहीं बांधता है. शेष एक सौ सत्तरां प्रकृतिका बंध करता है, तथा एक सौ बावीश कर्म प्रकृति जो उदय प्रायोग्य है, तिनमेंसूं १ मिश्रमोहनीय, २ सम्यक्त्वमोहनीय, ३ आहारक, ४ आहारकोपांग, ५ तीर्थंकर नाम, यह पांच कर्मप्रकृति वर्जके शेष एक सौ सत्तरां प्रकृतिका उदय है, अरु एक सौ अडतालीस कर्म प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति ॥ १ ॥

अथ दूसरा सास्वादन गुणस्थानकका स्वरूप कहते हैं. उसमें प्रथम तो यह गुणस्थानकका कारणभूत उपशम सम्यक्त्व है, तिसका स्वरूप कहते हैं, जीवमें अनादिकालसंभूत (उत्पन्न) मिथ्याकर्मकी उपशां

तिसे अनादिकाल उन्नव मिथ्याकर्मके उपशम होनेसें, ग्रंथिन्नेद करण कालसें पीछें औपशमिक सम्यक्त्व होता है, यह सामान्य स्वरूप है, अरु विशेपस्वरूप ऐसे है कि औपशमिक सम्यक्त्व दो प्रकारका है, एक तो अंतरकरणौपशमिक सम्यक्त्व, अरु दूसरा स्वश्रेणिगत, अर्थात् उपशमश्रेणिगत औपशमिक सम्यक्त्व है तहा अपूर्व करण करकेही करा है, ग्रथिन्नेद जिसने, अरु मिथ्यात्व कर्म पुजल राशिके तीन पुज करे है जिसने, सो तीन पुज यह है, १ अशुद्ध, २ अर्द्धशुद्ध, ३ शुद्ध इसमे अशुद्ध पुज जो है, सो मिथ्यात्वमोहनीय है, अरु अर्द्ध शुद्ध जो है, सो मिश्रमोहनीय है, तथा शुद्धपुज जो है, सो सम्यक्त्व मोहनीय है इनका स्वरूप पीछें लिख आये है, यह तीन पुंज जिसने नही करे है, अरु उदय आया मिथ्यात्व क्षय कीया है, तथा जो मिथ्यात्व उदय नही आया, तिसकों उपशमाया है, अतर करणमे अंतर्मुहूर्त्तकाल लगे सर्वथा मिथ्यात्वके अवेदकको, अंतर करणमे औपशमिक सम्यक्त्व होता है, यह एक न्नेद तथा औपशम श्रेणिप्रतिपन्नकों मिथ्यात्व अनंतानुबंधीके उपशम हूआ स्वश्रेणिगत औपशमिक सम्यक्त्व होता है,सो दूसरा न्नेद ये दोनो प्रकारकी जो उपशम सम्यक्त्व है, सो सास्वादन उत्पत्तिमे मूल कारण है

अथ सास्वादनस्वरूप लिखते है औपशमिक सम्यक्त्ववाला जीव शात हूये अनंतानुबधी चारो कषायोमे एकन्नी क्रोधादिकके उदय हूया थका औपशमिकरूप गिरिशिखर तुल्यसें “ परिच्युतो ज्रष्टो ” अर्थात् गिरा सो जहां लगि मिथ्यात्वरूप नूतलको नही प्राप्त हूआ, तहा लगि एक समयसे ले कर षट्आवलिकाप्रमाण सास्वादन गुणस्थानकवर्त्ती होता है,

प्रश्न —व्यक्तबुद्धिप्राप्तिरूप प्रथम अरु मिश्रादि गुणस्थानोको उत्तरोत्तर चढण रूपोंको तो गुणस्थानपणा युक्त है, परतु सम्यक्त्वसे पडनेवाले सास्वादनको गुणस्थानपणा कैसे सन्नवे ?

उत्तर —मिथ्यात्व गुणस्थानककी अपेक्षा सास्वादनन्नी ऊर्ध्व आरोहणरूप होनेसें गुणस्थान है, क्योकि मिथ्यात्व गुण अन्नव्य जीवोकोन्नी होता है, अरु सास्वादन तो न्नव्य जीवोंहीकों हो सक्ता है, न्नव्य जीवोमेन्नी जिसका अर्द्ध पुजलपरावर्त्त शेप ससार है, तिनहीको होता है. इस वास्ते सास्वादनकोन्नी मिथ्यात्व गुणस्थानसे आरोहरूप गुणस्या

नत्व हो सक्ता है. तथा सास्वादन गुणमें वर्त्तता हुआ जीव, १ मिथ्यात्व, ४ नरकत्रिक, ८ एकेंद्रियादि जाति चार, ए आतपनाम, १० स्थावरनाम, ११ सूक्ष्मनाम, १२ अपर्याप्तनाम, १३ साधारणनाम, १४ हुंमकसंस्थान, १५ सेवार्त्तसंहनन, १६ नपुंसकवेद, यह सर्व सोलां प्रकृतिका बंध व्यवछेद करता है, शेष अेक सौ अेक प्रकृतिका बंध करता है, तथा ३ सूक्ष्म त्रिक, ४ आतप, ५मिथ्यात्वोदय, ६ नरकानुपूर्वी,यह छै प्रकृतिका उदय व्यवछेद होनेसें १११ कर्मप्रकृति वेदता है, तथा तीर्थंकरनामकी सत्ता विना १४७ प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति दूसरे सास्वादन गुणस्थानकका स्वरूप ॥२॥

अथ तीसरे मिश्रगुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. दर्शनमोहनीय प्रकृतिरूप मिश्र मोहकर्मके उदयसें जीवविषये जो समकाल समरूप करकें सम्यक्त्व मिथ्यात्वके मिलनेसें मिश्रितनाव अंतरमुहूर्त्त यावत् मिश्र गुणस्थान कहते हैं, जो जीव, सम्यक्त्वमिथ्यात्व दोनोंके एकत्र मिलनेसें मिश्रनावमें वर्त्ते है, सो मिश्रगुणस्थानस्थ होता है, क्योंकि मिश्रपणा जो है, सो दोनोंके मिलनेसें एक रूप जात्यंतर है. अथ दोनों नावोंके एकत्व जात्यंतर होनेमें दृष्टांत लिखते हैं. कि जैसें घोडी और गधा इन दोनोके संयोगसें जात्यंतर खच्चर उत्पन्न होता है, अथवा जैसें गुड और दहींके मिलनेसें जात्यंतर रस शिखरणी रूप उत्पन्न होता है, तैसें ही जिस जीवकों सर्वज्ञ असर्वज्ञके कहे दोनो धर्मोंमें समबुद्धिसें एक सरीखी श्रद्धा उत्पन्न होवे, सो जात्यंतर नेदात्मक होनेसें मिश्रगुणस्थानक होता है. जब यह मिश्रगुणस्थानस्थ जीव होता है, तब परनवका आयु नहीं बांधता है, अरु मिश्रगुणस्थानकमें वर्त्तता हूआ जीव, मरतानी नहीं है, जातो सम्यक्दृष्टि हो कर चौथे सम्यक्दृष्टिगुणस्थानकमें आरोह कर मरता है, अथवा कुदृष्टि हो कर मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकमें पीछा आ कर मरता है, परंतु मिश्रगुणस्थानमें वर्त्तमान नहीं मरता है. यह मिश्रकी तरें बारहवा क्षीणमोह, अरु तेरहवा सयोगी, इन दोनो गुणस्थानोमेंनी जीव नहीं मरता है, शेष इग्यारह गुणस्थानोमें काल कर जाता है, अरु मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरति सम्यक्दृष्टि, यह तीन गुणस्थानक जीवके साथ परनवमें जाते है. शेष इग्यारह गुणस्थानक नहीं जाते हैं. तथा जिन जीवोने मिथ्यात्वादि गुणस्थानोमें पू

वैं आयु बांधा है, अरु पीछें उनको मिश्रगुण स्थानक हूआ है,वो जब मरे गा, तब जीस गुणस्थानकमे आयु बाधा है, तिसी गुणस्थानमें जा कर मरता है, औं गतिनी उसकी उसी मरण वाले गुणस्थानकके अनुसारे होती है, तथा मिश्रगुणस्थानक वाला जीव, १ नरकगति, २ नरकायु, ३ नरकानुपूर्वी, ६ स्त्यानर्द्धित्रिक, ७ डुर्नग, ८ डुस्वर, ए अनादेय, १३ अनतानुबंधी चार १७ मध्यके चार सस्थान, २१ मध्यके चार सहन न, २२ नीचगोत्र, २३ उद्योतनाम, २४ अप्रशस्तविहायोगति, २५ स्त्रीवेद यह पच्चीश प्रकृतिका बधव्यवछेद करता है तथा मनुष्यायु, देवायु, यह दोनी नही बांधता है, यह सत्तावीश प्रकृति बिना शेष चोह त्तर प्रकृतिका बध करता है ४ तथा अनतानुबधी चार, ५ स्थावरनाम, ६ एकेंड्रिय,ए विकलत्रिक, इनके उदयके व्यवछेद होनेसे अरु मनुष्यानुपूर्वी, तथा तिर्यगानुपूर्वी, इन दोनोके उदय न होनेसें एक सौ प्रकृतिका उदय वेदता है, अरु पूर्वोक्त १४७ प्रकृतिकी सत्ता है॥ इति मिश्रगुणस्थानकं॥३॥

अथ चौथा अविरतिसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका स्वरूप लिखते है तहा प्रथम सम्यक्त्व प्राप्तिका स्वरूप कहते है, कि नव्य सज्ञी पंचेंड्रिय जीव को यथोक्ततत्त्व यथावत् सर्ववित् प्रणीत तत्त्वोमे जीवादि पदार्थोमे नि सर्गसें अर्थात् पूर्वनव अन्यासविशेष करके उत्पन्न नइ अत्यंतनिर्मल गु णात्मक रुप स्वनाव,इन स्वनावसे अथवा गुरुके उपदेश श्रवण करणेसे रु चि नावना प्रगट उत्पन्न होती है, सो सम्यक्त्व, सम्यक्श्रद्धान लक्षण कहते है ॥ यदाह् ॥ श्लोक ॥ रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु, सम्यक् श्रद्धानमु च्यते ॥ जायते तन्निसर्गेण, गुरोरधिगमेन वा ॥ १ ॥ अथ अविरति सम्य ग्दृष्टिपणा जैसें होता है,तैसे कहते है दूसरी कषाय अप्रत्याख्यान,जिस का नाम है, ऐसे जे क्रोध, मान,माया, लोन, तिनके उदय करके, वर्जित हुआ विरतिपणा इसी वास्ते केवल सम्यक्त्व मात्र जहा होवे, सो चौथे गुणस्थान वालोको अविरति सम्यग्दृष्टिनामक गुणस्थानक होता है इस का तात्पर्य यह है,कि जैसे कोइ पुरुष, न्यायोपपन्न धन नोग विलास सौंद र्यशालिकुलमें उत्पन्ननी हूआ है. परतु डुरत जूआ आदि व्यसन सेवन करने लगा, इत्यादि अनेक अन्याय करे है, सो अपराध करनेसे उसको राजदंम मिला है, सो खमित करा है जिनोने अनिमान, ऐसें जो दंम

पाशिक कोटवाल तिनों करकें विडंब्यमान अपने व्यसन जनित कुत्सित कर्मकूं विरूप जानता हूआ अपणे कुलके सुंदर सुख संपदाकी अभिला षा करताजी है, परंतु कोटवालोंसें छूटके सुखका अभ्यासजी नहीं जे स का है. तैसेंही यह जीवजी अविरतिपणेंकों खोटे कर्मका फल जानता है, विरतिके सुंदर सुखकी अभिलाषाजी करता है, परंतु कोटवाल समा न दूसरी कषायके पाशों छूटनेका उत्साहजी नहीं कर सक्ता है. यों अ विरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका अनुभव करता है.

अथ चौथे गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं. इस अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानककी स्थिति उत्कृष्टी तो तेत्तीस सागरोपम प्रमाण कछुक अधि क है, सो सर्वार्थ सिद्धादि विमानवासीयोंकी स्थिति मनुष्यायु अधिक है. तथा यह सम्यक्त्व, जब जीवका अर्द्ध पुद्गलपरावर्त्त शेष संसार रहता है. तब जीवकों आता है. दूसरोंकों नहीं आता है.

अथ सम्यग्दृष्टिका लक्षण कहते हैं, १ दुःखी जीवके दुःख दूर कर णेकी जो चिंता, तिसका नाम कृपा है, २ किसी कारणसें क्रोध उत्पन्न जी हो गया है, तोजी तीव्र अनुशय अर्थात् तीव्र वैर नहीं रखता है, ति सका नाम प्रशम है. ३ सिद्धिसौधके चढने वास्ते सोपानसमान सम्य ग् ज्ञानादि साधनोंमें उत्साह लक्षण मोक्षाभिलाष, तिसका नाम संवेग है, ४ अत्यंत कुत्सिततर अर्थात् अत्यंत बुरा संसाररूप बंदीखानेसें निकलने वास्ते परम वैराग्य रूप दरवाजेमें जो आ जानां है. तिसका नाम निर्वेद है, ५ श्रीसर्वज्ञ प्रणीत समस्त जावोंकी अस्तित्वका चिंतनां तिसका नाम आस्तिक्य है, यह पांच लक्षण जिस जीवमें होवे, वो ज व्यजीव सम्यग् दर्शन करकें अलंकृत होता है.

अथ सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकवर्त्ती जीवोंकी कौनसी गति है? सो क हते हैं. इहां जीवपरिणामविशेषरूपकों करण कहते हैं, सो करण, तीन प्रकारका होता है, १ यथाप्रवृत्तिकरण, २ अपूर्वकरण, ३ अनि वृत्तिकरण. तहां पर्वतकी नदीके जल करकें आलोडयमान पाषाणकी तरें घंचनां (घोलनां) न्याय करकें जीव आयु वर्जके शेष कर्मोंकी स्थिति किंचित् ऊनी एक कोटाकोटी सागर प्रमाण स्थिति करता हूआ जिन अ ध्यवसाय विशेष करकें ग्रंथिदेश तक आता है, सो यथाप्रवृत्तिकरण क

हते है, २ तथा जिन अप्राप्त पूर्वं अध्यवसाय विशेष करके तिस ग्रंथिको ग्रंथि घन निबिड राग द्वेष परिणतिरूपको कहते है तिस ग्रंथिके भेदनेका जो आरंभ, तिसको अपूर्वकरण कहते है,३ तथा जिन अध्यवसायविशेष करके अनिवृत्त, ग्रंथिभेद करके अति परम आनंद जनक सम्यक्त्व पाता है, तिसका नाम अनिवृत्ति करण है, यह तीनो करणका स्वरूप श्रीजिन भ द्रगणिक्षमाश्रमण आचार्य, आवश्यककी बृहद्यानोनिजि गंधहस्ती महा भाष्यमे लिखते है तीन पथिकके दृष्टांतसे तीनों करणका स्वरूप दिखाते है जैसे तीन पथिक उजाडके रस्ते चले जाते थे, तहा चलते चलते वि काल वेला हो गइ, औ सूर्य अस्त हो गया, वे पथी, मनमे बहुत मरने लगे, इतनेमे उस वखत तहा तत्काल दो चोर आ पहुचे, तिन चोरोको देख कर तिनमेसू एक पथिक तो मरता हूआ पीछेको दौड गया, अरु ए क पथिकको चोरोने पकड लीया, अरु एक पथिक तिन चोरोसे लड भिड मार पीट करके अगले नगरमे पहुच गया, यह तो दृष्टांत है. इसका दा ष्टांत असे है, कि उजाड जो है, सो मनुष्य भव है, तिसमे कर्मोंकी जो स्थिति है, सो दीर्घ रस्ता है, औ जो गाव है,सो भयका स्थानक है,अरु राग द्वेष यह दोनो चोर है अब जो पुरुष पीछेको दौडा है, तिसकी तो स्थिति ससारमें रहणेकी अधिक हो जाती है,अरु जो पुरुष,पकडा गया, वो गावके पास जा कर खडा हो गया, सो रागद्वेष, चोरोनें पकड ली या, वोभी दुःखी है, अरु जिसने सम्यक्त्व पा लिया, सो गाममें पहुच गया, तातें सुखी भया यह दृष्टांत तीनो करणके साथ जोड लेना.

अथ कीडीयोके दृष्टांत करके तीनो करणोका स्वरूप लिखते है, जैसे कीडीयो बिलमेसू निकलके एक खूंटेके तले भ्रमण करती है, एकैके की डीया उस खूटेके उपरि चढती है,अरु कितनिक खूंटेके उपर चड कर प ख लग जानेसे उड गइ है यह तीनो करणभी इसी तरे जान लेने. तब तो जीव यथाप्रवृत्ति करण करकें ग्रंथिदेशको प्राप्त होता है, अरु अपूर्व क रण करकें ग्रंथिका भेद करता है, ग्रंथिभेद करके कोइक जीव मिथ्यात्व के पुद्गल राशिको विभज्य (बांट) करकें १ मिथ्यात्व मोह, २ मिश्रमो ह, ३ सम्यक्त्व मोह रूप तीन पुंज करता है, जब अनिवृत्तिकरण कर के विशुद्ध मानके उदय हूये अरु मिथ्यात्वके क्षय हूये ? उदय नही हूये

के उपशांत हूये, क्षायोपशमिक सम्यक्त्वकों प्राप्ति होता है. जब जीवों कों क्षायोपशमिक सम्यग् दर्शन उत्पन्न होता है, तब जीवोंके मनुष्यगति देवगतिकी संपत् होती है. तथा अपूर्व करण करकेंही कृत तीन पुंज वाले जीवकों चौथे गुणस्थानमेंही क्षपकपणेकों जब आरंभ करता है, तब अनंतानुबंधी चार, मिथ्यामोह, मिश्रमोह, अरु सम्यक्त्व मोहरूप तीनों पुंजोंके क्षय हूये,क्षायिक सम्यक्त्व होता है, तब वो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जे कर अबद्धायु है, तब तो तिसी नवमें मोक्ष रूप होवेगा. अरु जे कर आयु बांध कर पीछें क्षायिकसम्यक्त्ववान् हूआ है, तब तो तीसरे नवमें मोक्ष होता है. अरु जे कर असंख्यात वर्ष जीवने वाले मनुष्य, तिर्यंचका आयु बांध कर पीछेसें क्षायिकसम्यक्त्व पावे, तब चौथे नवमें मोक्ष होता है.

अथ अविरति गुणस्थानकवर्त्ती जीवका कृत्य लिखते हैं. व्रत नियम तो उसके कोइनी नहीं होता है, परंतु देवमें अर्थात् नगवान् श्रीवीतराग में, अरु उक्तलक्षण गुरुमें, तथा श्रीसंघमें, क्रम करकें नक्ति, पूजा, नमस्कार, वात्सल्यादि कृत्य करता है. तथा प्रनावक श्रावक होनेसें शासनकी उन्नति,शासनकी प्रनावना करता है. तथा अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक वाला जीव, १ तीर्थंकर नामकर्म, २ मनुष्यायु, ३ देवायु. यह तीन प्रकृति तीसरे गुणस्थानसें अधिक बांधता है. इस वास्ते सत्तत्तर प्रकृतिका बंध करता है, तथा मिश्र मोहके व्यवछेद होनेसें अरु आनुपूर्वी चार, अरु सम्यक्त्वमोहके उदय होनेसें एक सौ चार कर्म प्रकृतिकों वेदता है. अरु क्षायिक सम्यक्त्व वालेकों १३८ प्रकृतिकी सत्ता होती है ,अरु उपशम सम्यक्त्व वालेकों चौथे गुणस्थानकसें ले कर इग्यारहमे गुणस्थानक पर्यंत १४८ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है. अरु क्षायिकसम्यक्त्व वालेकों जिस जिस गुण स्थानमें जितनी जितनी कर्मप्रकृतिकी सत्ता है, सो आगें चल कर लिख देवेंगे ॥ इति अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका स्वरूप ॥ ४ ॥

अथ पंचम गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. जीवकों सम्यग् तत्त्वाववोध करकें उत्पन्न हूआ वैराग्य, तिस वैराग्यसें सर्वविरतिकी वांछा करता नी है, तोनी सर्वविरतिघातक प्रत्याख्यान नाम कषायके उदयसें सर्व विरति अंगीकार करणेकों सामर्थ्य नहीं, किंतु जघन्य, मध्यम, उत्कृष्टरूप

देशविरति हो सक्ता है, तिनमें जघन्य देशविरति आकुट्टि स्थूलहिंसादि त्याग. मद्य मांसादि परिहार, अरु परमेष्ठि नमस्कारका स्मरण करणा॥य दाह ॥श्लोक॥ आउट्टि थूल हिंसाइ, मद्य मसाइचायउ ॥ जहन्नो सावउ होइ, जो नमुक्कार धारउ ॥ १॥ तथा मध्यम देशविरति "अक्षुद्रादि न्याय सं पन्न विनव इत्यादि धर्म योग्यता गुणो करि आकीर्ण गृहस्थ उचित षट्क र्मे धर्ममे तत्पर , द्वादश व्रतका पालक, सदाचारवान्, ऐसा होवे, तो म ध्यम श्रावक जानना तथा उत्कृष्टदेशविरति, सचित्त आहारका वर्जक, प्रतिदिन एकाशन करे, ब्रह्मचारी होवे, महाव्रत अंगीकार करनेकी इच्छावा ला होवे, गृहस्थका धंदा जिसने त्यागा है, ऐसा जो होवे, सो उत्कृष्ट देशविरति यह तीन प्रकारकी विरति जिसको होवे, उसको श्राद्ध, अर्थात् श्रावक कहते है देशविरतिकी उत्कृष्टी स्थिति देशोन कोटिपूर्वकी है

अथ देशविरति गुणस्थानकमे ध्यानका सनव कहते है यह गुणस्थान में १ अनिष्टयोगार्त्त, २ इष्टवियोगार्त्त, ३ रोगार्त्त, ४ निदानार्त्त यह चार पाद रूप आर्त्तध्यान तथा १ हिंसानंदरौद्र, २ मृषानंदरौद्र, ३ चौर्यानंद रौद्र, ४ सरक्षणानंदरौद्र यह चार पादवाला रौद्र ध्यान है वे देशविरतिके आर्त्तध्यान मंद होता है, जैसे जैसे देशविरति अधिक अधिकतर होती है, तैसे तैसें आर्त्त रौद्र ध्यान, मंद मंदतर होता जाता है,अरु धर्म ध्या न तो जैसे जैसे देशविरति अधिक होती है, तैसे तैसे अधिक अधिक हो ता है, मध्यमरूपही रहता है, परंतु उत्कृष्ट धर्मध्यान नही होता है जे कर उत्कृष्ट धर्मध्यान हो जावे, तव सर्व विरति हो जायगा, वो पांचमे गुणस्थान संवधी धर्मध्यान कैसा है? जिसमे षट् कर्म, एकादश प्रतिमा, अरु श्रावक व्रत पालनेका सनव है

उक्त षट् कर्मका नाम कहते है १ तीर्थकर अर्हंत नगवंत वीतराग सर्वज्ञकी प्रतिमाद्वारा पूजा करे, २ गुरुकी सेवा करे, ३ स्वाध्याय, ४ संय म, ५ तप,६ दान, यह षट्कर्म है ॥यदुक्तं॥ देवपूजा गुरूपास्ति ,स्वाध्याय संयमस्तप ॥ दान चेति गृहस्थाना, षट् कर्माणि दिने दिने ॥ ' ॥

प्रतिमा जो है,सो अनिग्रहविशेषको कहते है,सो नाममात्र यह है॥गाथा॥ दंसण वय सामाइय, पोसह पडिमा अवंन सचित्ते॥आरंन पेस उद्दिठ,वज्जए समणनूए य ॥१॥ इनका विस्तार देखना होवे, तदा पचाशकनामा शास्त्रके

प्रतिमा पंचाशकमें देख लेनां. अरु श्रावकके व्रत बारह हैं, सो आगें चल कर लिखेंगे. यह षट् कर्म, एकादश प्रतिमा, बारह व्रत. इनके पालनमें मध्यम धर्म ध्यान होता है, तथा देशविरति गुणस्थानस्थ जीव, अप्रत्याख्यान चार कषाय, नरकगति, नरकायु, नरकानुपूर्वी, यह नरक त्रिक. आद्य संहनन तथा औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, यह औदारिक द्विक. यह सब मिल कर दश कर्मप्रकृतिका बंध, व्यवछेद होनेसें सतसठ कर्मप्रकृतिका बंध करता है. तथा अप्रत्यख्यान चार, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानुपूर्वी, नरकत्रिक, देवत्रिक, वैक्रियद्विक, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति. यह सत्तरां कर्मप्रकृतिका उदय व्यवछेद करनेसें सत्तासी कर्म प्रकृतिका फल भोक्ता है. अरु एक सौ अडत्तीस प्रकृतिकी सत्ता है॥ इति देशविरतिगुणस्थानं ॥५॥

अथ पांचमे गुणस्थानक उपरांत जो गुणस्थान है. तिनमेंसूं तेरहवा गुणस्थान वर्जके शेष सर्वगुणस्थानोंमें पृथक् पृथक् अंतर मुहूर्त्तमात्र स्थिति है.

अथ छठा प्रमत्तसंयत गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. सर्व विरति साधु, यह छठे प्रमत्त गुणस्थानकमें होता है, वो साधु कैसा है? कि अहिंसादि पांच महाव्रतका धारक है, वो साधु किस करकें प्रमत्त होता है? कि प्रमादके होनेसें प्रमत्त होता है, सो प्रमाद पांच प्रकारका है॥

॥यदाह॥ गाथा॥ मज्जं विसय कसाया, निद्दा विगहा य पंचमी भणिया॥ ए ए पंच पमाया, जीवं पाडंति संसारे ॥१॥ भावार्थः—मद्य, विषय, कषाय, निद्रा, अरु विकथा, यह पांच प्रमाद हैं, सो जीवकों संसारमें गेरते हैं, जो साधु इन पांचो प्रमादों करकें संयुक्त होवे, अरु संज्वलनकी चौथी कषायका उदय होवे, तब महामुनि महाव्रती साधु अवश्य अंतर मुहूर्त्त काल लगि सप्रमाद होनेसें प्रमादी होता है. जे कर अंतरमुहूर्त्तसें उपरांतभी सप्रमादी होवे, तदा प्रमत्त गुणस्थानसेंभी नीचें गिर पडता है. अरु जे कर अंतर मुहूर्त्तसें उपरांतभी प्रमाद रहित होवे, तदा फेर अप्रमत्त गुणस्थानमें चढता (आरोहता) है.

अथ प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें ध्यानका संभव कहते हैं. यह गुणस्थानमें मुख्य तो आर्त्तध्यान, उपलक्षणसें रौद्रध्यानकाभी संभव है, क्योंकि नोकषाय, हास्यादि षट्कके होनेसें. तथा आज्ञादि आलंबन युक्त धर्मध्यानकी गौणता है, १ आज्ञा, २ अपाय, ३ विपाक, ४ संस्थान. इन

चारोंके चिंतनलक्षण आलंबनों करके संयुक्त धर्मध्यान होता है इहा धर्मध्यानके चार पाद है॥ उक्तं च ॥ आज्ञापायविपाकानां, संस्थानस्य वि चिंतनात् ॥ इत्र वा ध्येयजेदेन, धर्मध्यान चतुर्विध ॥ १ ॥ आज्ञा उस कों कहते है, कि जो कुछ सर्वज्ञ अर्हंत जगवतने कहा है, सो सर्व सत्य है, अरु जो बात, मेरी समझमे नही आती है, वो मेरी बुद्धिकी मंदता है, तथा दुषम कालके प्रजावसे, संशय मिटाने वाले गुरुके अजावसे, इत्यादि निमित्तोसे मेरी समझमें नही आता है, परतु अर्हंत जगवतके कहे हुवे वाक्य सत्य है, क्योंकि उनकें मृषा बोलनेका कोइजी निमित्त नही है, ऐसा जो चिंतन करना, सो आज्ञा विचयनामा प्रथम जेद है तथा राग, द्वेष, कषायादिकों करके जो अपाय (कष्ट) उत्पन्न होते है, तिनका जो चिंतन करना, सो अपायविचयनामा दूसरा जेद है तथा क्षण क्षण प्रति जो कर्मफलोदय विचित्ररूप उत्पन्न होता है, सो विपाकविचयनामा तीसरा जेद है, तथा यह लोक अनादि अनंत है, अरु उत्पाद,व्यय,ध्रुव रूप सर्व पदार्थ है, तथा पुरुषाकार लोकका संस्थान है, ऐसा जो चिंतन करना,सो संस्थानविचयनामा चौथा जेद है. इत्यादि आलंबना युक्त धर्मध्यानकी गौणता, प्रमत्त गुणस्थानमे है, परतु सप्रमाद होनेसे मुख्यता नही.

अथ जे कर कोइ प्रमत्त गुणस्थानमे निरालंबन धर्मध्यान कहे, तिसका निषेध करते है जिनजास्कर (जिनसूर्य) ऐसे कह गये है, कि जो साधु जहा लगि प्रमाद संयुक्त होवे, तहा लगि तिस साधुको निरालंबन ध्यान नही होता है, क्योंकि इहा प्रमत्त गुणस्थानमे मध्यमधर्मध्यानकी जी गौणताही कही है, परतु मुख्यता नहीं तिस वास्ते प्रमत्तगुणस्थानमे उत्कृष्ट निरालंब धर्मध्यानका संजव नही.

अथ जो यह अर्थ न माने, तिसको कहते है, जो साधु, प्रमाद युक्तजी आवश्यक सामायिकादि षडावश्यकसाधक अनुष्ठानका परिहार करके निश्चल निरालंबन ध्यानाश्रित होवे, वो साधु, मिथ्यात्वमोहित मिथ्याजाव करके मूढ हुआ थका जैनागम श्रीसर्वज्ञप्रणीत शास्त्र नही जानता, क्योंकि वो साधु व्यवहार तो छोड बेठा है, अरु निश्चयको प्राप्त नही हुआ है अरु जो जिनागमके जानने वाले है, सो तो व्यवहारपूर्वक निश्चय को साधते है ॥ यदाह ॥ जइ जिणमय पवज्जह, ता मा विवहार निच्छए मु

यह ॥ विवहारनउ छेए, तिछुछेउ जउ जणिओ ॥ १ ॥ अर्थः—जे कर जिनमतकों अंगीकार करते हो, औ जैनमतमें साधु होते हो, तो व्यवहार निश्चयका त्याग मत करो,क्यों कि व्यवहार नयके उछेद होनेसें तीर्थका उछेद हो जायगा,इस बात उपर यह दृष्टांत है,कि जैसें कोइक पुरुष अपने घरमें सदा बाजरेकी रोटी खाता है, किसीने उसकों निमंत्रण कर कें अपूर्व मिष्टान्नाहार कराया, तब तो वो उस स्वादका लोलुपी हो कर अपणे घरकी बाजरेकी रोटी निःस्वाद जान कर खाता नहीं, उस दुःप्राप्य मिष्टान्नकी अभिलाषा करता है, तब तो वो अपणे घरका कदन्न तो खाता नहीं, अरु मिष्टान्नभी मिलता नहीं, तब वो उभयभ्रष्ट होता है. तैसें यह जीवभी कदाग्रहरूप भूतके लगनेसें प्रमत्तगुणस्थान साध्यस्थूलमात्र पुण्यपुष्टिका कारण षडावश्यकादि कष्टक्रिया नहीं करता, अरु कदाचित् प्रमत्तगुणस्थानमें जिसका लाभ है, ऐसा जो निर्विकल्प मनोजनित समाधिरूप निरालंबन, ध्यानांशरूप, अमृत आहारतुल्य पाया है. तब तो तिस करिकें उत्पन्न हूआ जो परमानंद सुखस्वाद, तिस करकें प्रमत्त गुणस्थानगत षडावश्यकादि कष्टक्रिया कर्म,कदन्न समान कर सम्यक्आराधन न करे, अरु मिष्टान्न तुल्य निरालंबन ध्यानांश सो तो प्रथम संहननके अभावसें प्राप्त नहीं होता है,तब तो षडावश्यकके न करनेसें उभयभ्रष्ट हो जाता है,क्योंकि निरालंबन ध्यानका मनोरथही पंचम कालके महामुनि ऋषियोने करा है ॥ तथाच पूर्वमहर्षयः ॥ चेतोवृत्तिनिरोधनेन करण, ग्रामं विधायोद्दशं ॥ तत्संहृत्य गतागतं च मरुतो, धैर्यं समाश्रित्य च ॥ पर्यंकेन मया शिवाय विधिवत् शिथत्वैकभूभृद्दरीमध्यस्थेन कदाचिदर्पितदृशा, स्थातव्यमंतर्मुखं ॥१॥ चित्ते निश्चलतां गते प्रशमिते, रागादिनिद्रामदे ॥ विद्राणेऽक्षकदंबके विघटिते, ध्वांते भ्रमारंभके ॥ आनंदे प्रविजृंभिते पुरपते, ज्ञाने समुन्मीलते ॥ मां द्रक्ष्यंति कदा वनस्थमभितो, दुष्टाशयाः श्वापदाः ॥ २ ॥ तथा श्रीसूरप्रभाचार्याः ॥ चित्तावदातैर्भवदागमानां, वा भैषजैरांगरुजं निवर्त्य ॥ मया कदा प्रौढसमाधिलक्ष्मी इत्यादि " तथाश्री हेमचंद्रसूरयः ॥ वनपद्मासनासीनं, क्रोडस्थितमृगार्भकं ॥ कदा घ्रास्यंति वक्त्रे मां, चरतो मृगयूथपाः ॥ १ ॥ शत्रौ मित्रे तृणे स्त्रैणे,सुवर्णेऽश्मनि मणौ मृदि ॥ मोक्षे भवे भविष्यामि, निर्विशेषमतिः कदा ॥२॥ इन श्लोकोंका थोडासा अर्थभी

लिख देते है, चित्तकी वृत्ति निरोध करके, इंद्रिय समूह औ इंद्रियोके विषयोंको दूर करके, तिस पीछें पवनकी अर्थात् श्वासोछ्वासकी गतागति को रोक करके, अरु धैर्यको अवलंबके, पद्मासनसे बैठ करके,शिवके वास्ते विधि संयुक्त किसी पर्वतकी गुफामे बैठ करके,एक वस्तु उपरि दृष्टि रख कर, मुझको अंतर्मुख रहना योग्य है ॥१॥ चित्तके निश्चल हूया थका राग, द्वेष, कषाय, निद्रा, मदके शांति हूया,अरु इंद्रिय समूहके दूर हूया, अरु भ्रमात्मक अधकारके दूर होया, अरु आनदके प्रगट वृद्धिमान् भये,ज्ञानके प्रकाश भये, ऐसी जीवकों अवस्थामे मेरेकों वनमे रहेको दुष्टाशयवाले सिंह कब रक्षा करेगे? ॥ २ ॥ तथा श्रीसूरप्रभाचार्यजी कहते है, कि हे भगवन्! तुमारा आगमरूप भेषज करके, राग रूप रोग निवर्त्त करके,निर्मल चित्त करके कब वो दिन आवेगा कि जिस दिन मै समाधि रूपी लक्ष्मीकूं देखुगा? इत्यादि तथा श्रीहेमचद्रसूरिजी कहते है कि वनमे पद्मासन बैठे हुवे मेरी गोदमें मृगका बच्चा बैठे, अरु हिरणोका स्वामी वडा हरण मेरे मूखकों सूंघे, अरु मै अपणी समाधिमे स्थित रहूं॥१॥ तथा शत्रुमे मित्रमे, तृण अरु स्त्रीमें, सुवर्ण अरु पाषाणमे, मणि अरु मट्टिमे, मोक्ष अरु संसारमे, निर्विशेषमति, मै कब होवूंगा? ॥ ४ ॥ ऐसेंही मत्री वस्तुपालने तथा परमतमे भर्तृहरिनेभी मनोरथही करा है ऐसे स्वसमय परसमयमे प्रसिद्ध जो पुरुष हूये है, तिनोंने परमात्मतत्त्वसवित्तिमे मनोरथही करा है, अरु मनोरथ जो लोकमे करते है, सो दुप्राप्य वस्तुकाही करते है, परतु जो वस्तु, सुखेन मिल जावे, तिसका मनोरथ कोइभी नहीं करता है, जो सदा मिष्टान्न खाता है, अरु वडा भारी राज्य भोगता है, वो कभी मिष्टान्न खानेका अरु राज्य भोगनेका मनोरथ नहीं करता है, तिस वास्ते सर्व प्रकारसे प्रमत्त गुणस्थानस्थ विवेकी जनोनें परम सवेग आरुढ अप्रमत्त गुणस्थानकका स्पर्श कराभी है, तोभी परम शुद्ध परमात्मतत्त्वसवित्तिका मनोरथ करणा, परतु षट्कर्म षडावश्यकादि व्यवहार क्रिया जो हे, उसका परिहार न करना अरु जो मूढ, योगग्रह कर के ग्रस्त है, अरु सदाचार व्यवहारसे पराङ्मुख है, तिनका योगभी किसी कामका नहीं है,अरु उनका यह लोकभी नहीं अरु परलोकभी नहीं क्योकि वो जीव जडात्मा है ॥ यत ॥ योगिन सम्मतामेता,

प्राप्य कल्पलतामिव ॥ सदाचारमयीमस्या, वृत्तिमातत्त्ववतां बहिः ॥ १ ॥ ये तु योगग्रहग्रस्ताः, सदाचारपराङ्मुखाः ॥ एष तेषां च योगोपि, न लो कोपि जडात्मनां ॥ २ ॥ तिस वास्ते साधुकों जो दूषण दिन रात्रिमें लगता है, तिसके छेदने वास्ते अवश्यमेव षडावश्यकादि क्रिया करे, जहां लगि उपरिले गुणस्थानों करि साध्य जो निरालंबन ध्यान है, तिसकों न प्राप्ति होवे, तहां लगि करे. तथा प्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव, चार प्रत्याख्यानके बंध, व्यवछेद होनेसें त्रेशठ प्रकृतिका बंध करता है, तथा तिर्यग्गति, तिर्यगानुपूर्वी, नीचगोत्र, उद्योत, अरु प्रत्याख्यान चार, यह आठ प्रकृतिके उदय उछेद होनेसें अरु आहारक तथा आहारकोपां ग, यह दो प्रकृतिके उदय होनेसें एकासी प्रकृति वेदता है, अरु एक सौ अडत्तीस प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति प्रमत्तगुणस्थानकं षष्ठं ॥ ६ ॥

अथ सप्तम अप्रमत्त गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. पांच महाव्रत धारी साधु, पांच प्रमाद रहित, अप्रमत्त गुणस्थानस्थ होता है, अरु सं ज्वलनकी चारों कषायोंका उदय मंद होवे, तथा नोकषायोंकाभी उदय मंद होवे. तात्पर्य यह है कि संज्वलन कषाय तथा नोकषायोंका जैसा जैसा मंदोदय होता है, तैसें तैसें साधु अप्रमत्त होता है ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ यथा यथा न रोचंते, विषयाः सुलभाअपि ॥ तथा तथा समायाति, सं वित्तौतत्त्वमुत्तमं ॥ १ ॥ यथा यथा समायाति, संवित्तौतत्त्वमुत्तमं ॥ तथा तथा न रोचंते, विषयाः सुलभाअपि ॥२॥ अर्थः—जैसें जैसें अप्रमत्तगुण स्थान वाला जीव मोहनीय कर्मके उपशम करणेमें तथा क्षय करणेमें निपुण होता है,तथा जैसें सद्ध्यानका आरंभ करता है,सोइ स्वरूप कहते हैं.

दूर करे हैं, सर्व प्रमाद जिसने ऐसा जो जीव, तथा पांच महा व्रतका धारक, अरु अष्टादश सहस्र जो शीलांगलक्षण, तिनों करकें संयुक्त, सदागमका अभ्यासी, ज्ञानवान्,ध्यान एकाग्रता रूप,ऐसा ज्ञान ध्यानरूप जि सके पास धन है,इसी वास्ते "मौनी" मौनवान् है. क्योंकि मौनवान्ही ध्यान रूप धनवान् हो सक्ता है, तिस पीछें ज्ञान ध्यान मौनवान्, उपशम कर णेके अर्थे अथवा क्षय करणेके अर्थे सन्मुख हूआ थका ऐसा पवित्र मुनि सप्तोत्तर मोहकों पूर्वोक्त सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, मिथ्यात्वमोह, अरु अनंतानुबंधी चार. यह सात प्रकृतिके विना शेष इक्कीस प्रकृतिरूप मो

हनीय कर्मके उपशम करणेके सन्मुख तथा क्षय करणेके सन्मुख जब होता है,तब सालंबन ध्यान त्यागके निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करनेका आरंभ करता है यह निरालंबन ध्यानमे प्रवेश करने वाले योगी, तीन तरेके होते है १ यथाप्रारंभका , २ तन्निष्ठा , ३ निष्पन्नयोगा ॥ यदाह ॥श्लोक॥ सम्यग् नैसर्गिकीं वा, विरतिपरिणतिं, प्राप्य सांसर्गिकीं वा ॥ क्वाप्येकांते निविष्टा , कपि च पलचलं, न्मानसस्तंभनाय ॥ शश्वन्नासाग्रपाली, घनघटितदृशो, धीरवीरासनस्थो ॥ ये नि पापा समाधे, र्विदधति विधिना, रंभमारंभकास्ते ॥१॥ कुर्वाणो मरुतासनेंद्रियमनः , क्षुत्तर्पनिद्राजयं ॥ योत जल्पति रूपणानिरसकृ, त्तत्व समभ्यस्यति ॥ सत्वानामुपरि प्रमोदकरुणा, मैत्रिर्नृश मन्यते ॥ ध्यानाधिष्ठितचेष्टयाऽभ्युदयते, तस्येह तन्निष्ठता ॥ २ ॥ उपरतबहिरंतर्जल्पकल्लोलमाले, लसदविकलविद्यापद्मिनीपूर्णमध्ये ॥ सततममृतमत मानसे यस्य हंस , पिबति निरुपलेप. सोऽत्र निष्पन्नयोगी ॥ ३ ॥

अथ अप्रमत्त गुणस्थानमे ध्यानका संभव कहते है सर्वज्ञका कह्या हूआ धर्म ध्यान मैत्र्यादि अनेक भेदरूप है ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ मैत्र्यादिभिश्चतुर्भेद, यदाज्ञादि चतुर्विधं॥ रूपस्थादि चतुर्धा वा, धर्मध्यानं प्रकीर्त्तितम् ॥ १ ॥ तत्र ॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्य, माध्यस्थानि नियोजयेत् ॥ धर्मध्यानमुपस्कर्तुं, तद्धि तस्य रसायन ॥ २ ॥ आज्ञापायविपाकानां, संस्थानस्य चिंतनात् ॥ इत्थं वा ध्येयभेदेन, धर्मध्यानं प्रकीर्त्तितं ॥ ३ ॥ तथा १ पिंडस्थध्यान अपणे अंग अंगीका स्वरूप, २ वाणीव्यापाररूप पदस्थध्यान, ३ संकल्पित आत्मरूप रूपस्थ ध्यान, ४ कल्पनासे रहित रूपातीत ध्यान, ऐसा जो जिनेश्वरका कह्या हूआ धर्मध्यान, सो अप्रमत्त गुणस्थानमे मुख्यवृत्ति करके प्रधानपणे होता है तथा रूपातीतपणे करके शुक्लध्याननी अंशमात्र करकें गौणपणे है इहां अप्रमत्त गुणस्थानमे आवश्यक क्रियाका जो अभाव है, तोभी शुद्ध है, यह वार्त्ता कहते है

इस पूर्वोक्त अप्रमत्त गुणस्थानकमे सामायिकादि षट् आवश्यक, सोभी नही है, "कोथी" सामायिकादि छे आवश्यक व्यवहार क्रियारूप, इस गुणस्थानमें नहीं, परंतु निश्चय सामायिकादि सर्व कुछ है, क्योंकि सामायिकादि सर्व आत्माके गुण है, " आया सामाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे " अ

र्थात् आत्माही सामायिक है, अरु आत्माही सामायिकका अर्थ है, यह आगमके बचनसें है.

प्रश्नः— किस वास्ते अप्रमत्त गुणस्थानमें व्यवहार क्रियारूप षट् आवश्यक नहीं?

उत्तरः— अप्रमत्त गुणस्थानमें निरंतर ध्यानके सत् योगसें निरंतर ध्यानहीमें प्रवृत्त होता है, इस वास्ते स्वाभाविकी सहज नित्य संकल्प विकल्प मालाके अभावसें एक स्वभावरूप निर्मल आत्मा होती है, इस गुणस्थानमें वर्त्तमान जो जीव हैं. वो भावतीर्थ स्नान करकें परम शुद्धिकों प्राप्त होता है ॥ यदाह ॥ दाहोवसमं तण्हाइ, छेयणं मलप्पवाहणं चेव ॥ तिहिं अछेहिं निउत्तं, तम्हा तं दव्वउ तिछं ॥ १ ॥ कोहंमि उ निग्गहिए, दाहस्सो वसणं हवइ तिछं ॥ लोहंमि उ निग्गहिए, तण्हाइ छेयणं जाण ॥ २ ॥ अछविहं कम्मरयं, बहुएहिं भवेहिं संचियं जम्हा ॥ तव संयमेण धोयइ, तम्हा तं भावउ तिछं ॥ ३ ॥ अर्थः—दाह उपशांत करे, तृषाका छेद करे, शरीरकी मलकों दूर करे, इन पूर्वोक्त तीनो अर्थों करकें जो नियुक्त होवे, ऐसे जो गंगा मागधादि, तिसकों इस वास्ते द्रव्यतीर्थ कहते हैं ॥ १ ॥ तथा क्रोधके निग्रह करणेसें दाह उपशम होता है, अरु लोभके निग्रह करणेसें तृषा छेद होती है,ऐसें जाननां. अरु आठ प्रकारकी कर्मरज बहुत भवों करकें जो संची है,सो तप संयम करकें जो धोवे, तिस वास्ते तिसकों भाव तीर्थ कहते हैं ॥ अन्यच्च ॥ श्लोक ॥ रुद्धप्राणप्रचारे, वपुषि नियमिते, संवृतेऽक्षप्रपंचे ॥ नेत्रस्पंदे निरस्ते, प्रलयमुपगतें, तर्विकल्पेंद्रजाले ॥ भिन्ने मोहांधकारे, प्रसरति महसि, क्वापि विश्वप्रदीपे ॥ धन्यो ध्यानावलंबी, कलयति परमानंदसिंधौ प्रवेशं ॥ १ ॥ अर्थः— प्राण, श्वासोश्वासका प्रचार आना जानां जिसने रोका है, औ जिसने शरीरकों वश कीया है, औ जिसने नेत्रका टपकारनां बंद कीया है, औ पांच इंद्रियकों अपणे अपणे विषयसें रोका है,तथा अंतर विकल्परूप इंद्र जालके लय हूये,मोहरूप अंधकारके नष्ट हूयां, अरु त्रिभुवन प्रकाशक ज्ञान प्रदीपके, प्रगट हूये धन्य वो ध्यानावलंबी पुरुष है,सो परमानंदरूप समुद्रमें प्रवेश करता है.

यह अप्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव, १ शोक, २ रति, ३ अरति, ४ अस्थिर, ५ अशुभ, ६ अयश, ७ अशातावेदनी. इन सातों प्रकृतियोंका बंध

व्यवछेद करता है, अरु १ आहारक, २ आहारकोपांग, यह दो प्रकृतिका बंध करता है इस वास्ते ऊणसठ प्रकृतिका बंध करता है अरु जे कर देवायु न बांधे, तब अठावन प्रकृतिका बंध करता है, तथा स्त्यानर्द्धि त्रिक, अरु आहारक द्विकोदयका व्यवछेद करे, तब छिहत्तर प्रकृतिका फल वेदता है, अरु १३० प्रकृतिकी सत्ता है॥ इति अप्रमत्त गुणस्थानक सप्तम॥७॥

अथ आठवा अपूर्वकरण, नवमा अनिवृत्तिबादर, दसवा सूक्ष्मसंपराय, इग्यारवा उपशांत मोह, बारहवा क्षीणमोह. यह पांच गुणस्थानोंका नामार्थ सामान्य प्रकारसे लिखते है

जो अप्रमत्तसंयत सातमे गुणस्थान वर्त्ती दिखलाया है, सोइ संज्वलन कषाय चार, नो कषाय छे, इनके मंद उदय हूये प्राप्त अप्राप्तपूर्व अत्यंत परमाल्हादरूप अपूर्व पारिणामिक आठवा गुणस्थान है, इसका नाम अपूर्वकरण इस वास्ते कहते है कि इस गुणस्थानकमे अपूर्व आत्मगुणकी प्राप्ति होती है.

तथा देखा, सुना, औ अनुभव्या, जो भोग, तिनकी कांक्षारूप संकल्प विकल्प रहित निश्चल परमात्मैकतत्त्वरूप प्रधानपरिणतिरूप भावोंकी निवृत्ति नही, इस वास्ते इसका नाम अनिवृत्ति गुणस्थान कहते है अरु इसका नाम जो अनिवृत्तिबादर कहते है, सो इहा अप्रत्याख्यानादि जो द्वादश बादर कषाय है, तिनका, अरु नव नोकषायोका शमक, उपशम करने वास्ते अरु क्षपक, क्षय करणेके वास्ते उद्यमी होता है, इस कारणसे इसका नाम अनिवृत्तिबादर कहते है यह नवमा गुणस्थान है

तथा सूक्ष्म परमात्मतत्त्वभावनाबल करके सत्तावीश प्रकृतिरूप मोहके उपशांत हूये, तथा क्षय हूये, एक सूक्ष्म खंडीभूत लोभकी अस्तित्व जहा है, सो सूक्ष्मसंपराय नामक गुणस्थानक है, संपराय नाम कषायका है, इस वास्ते सूक्ष्मसंपराय दशमा गुणस्थानकका नाम कह्या

तथा उपशामकही उपशम मूर्त्तिरूप सहजस्वभाव बल करके सकल मोह कर्मके उपशांत करनेसे उपशांत मोहनामक एकादशम गुणस्थान होता है

तथा क्षपककोही क्षपकश्रेणि मार्गे करके दशमे गुणस्थानसेही निःकषाय शुद्धात्मभावना बल करके सकल मोहके क्षय करणेसे क्षीणमोह

नामक बारहवा गुणस्थान होता है. यह पांचों गुणस्थानोंका सामान्य प्रकारें नामार्थ कहा.

अथ अपूर्वकरणादि अंशसेंही दोनो श्रेणिका आरोह कहते हैं. तहां अपूर्वकरणस्थानमें आरोह समयमें अपूर्वकरणके प्रथम अंशसेंही उपशमक, उपशमश्रेणिमें चढता है, अरु क्षपक, क्षपकश्रेणिमें चढता है.

अथ प्रथम उपशमश्रेणिके चढनेंकी योग्यता कहते हैं. इहां उपशमक मुनि, शुक्लध्यानका प्रथम पाया, जिसका आगें स्वरूप लिखेंगे उसकों ध्याता हूआ उपशमश्रेणिकों अंगीकार करता है. कैसा वो मुनि है? कि पूर्वगत श्रुतका धारक, निरतिचार, चारित्रवान्, आदिके तीन संहनन युक्त, ऐसा मुनि उपशमश्रेणि करता है.

उपशमश्रेणिवाला मुनि जे कर अल्प आयुवाला होवे, तब काल करकें "अहमिंद" अर्थात् पांच अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, परंतु जिसके प्रथम संहनन होवे, वो अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, क्योंकि अपर संहनन वाला अनुत्तर विमानमें उत्पन्न नहीं होता है, सेवार्त्त संहननवाला चौथे महेंद्र स्वर्ग तक जा सक्ता है, अरु कीलिकादि चार संहनन वालोंके दो दो देवलोककी वृद्धि कर लेनी, अरु प्रथम संहनन वाला तो मोक्ष तक जाता है. अरु जिसकी आयु जे कर सात लव अधिक होती, तो मोक्ष जाता, सोइ सर्वार्थसिद्ध विमानमें उत्पन्न होता है. ॥ यदाह ॥ गाथा॥ सत्त लवा जइ आउं, पहुप्पमाणं तउ हु सिझंता ॥ तित्तियमित्तं न हुयं, तत्तो लव सत्तमा जाया ॥१॥ सव्वठ्ठ सिद्धनामे, उक्कोसठ्ठिइसु विजयमाईसु ॥ एगावसेस गप्पा, हवंति लव सत्तमा देवा ॥ २ ॥

प्रश्नः—उपशमश्रेणिवाला मोक्षके योग्य कैसें हो सक्ता है?

उत्तरः—सात जो लव है,सो एक मुहूर्त्तका इग्यारवा हिस्सा है,तब तो लवसत्तमावशेष आयुंवालाही खंम्फित उपशमश्रेणि करने वाला पराङ्मुख सातमे गुणस्थानमें आ करकें फेर क्षपकश्रेणिमें चढ कर सात लवके बिचहीमें क्षीणमोह गुणस्थानमें हो कर अंतःकृत केवली हो कर मोक्ष हो जाता है,इस वास्ते दूषण नहीं. तथा जो पुष्टायु उपशमश्रेणि करता है,सो अखंम्फित श्रेणि करकें, चारित्र मोहनीयका उपशम करकें इग्यारवे गुणस्थानमें पहुंच कर उपशमश्रेणि समाप्ति करकें गिर पडता है.

अथ औपशमकही अपूर्वादि गुणस्थानोमें जो करता है, सो कह ते है. सज्वलनका लोन्न वर्जके शेष वीश प्रकृति मोहनीय कर्मकी अपूर्वकरण, अरु अनिवृत्तिबादर, इन दोनों गुणस्थानोंमे उपशम करता है तिसके पीछें क्रम करके सूक्ष्म सपराय गुणस्थानमे संज्वलनके लोन्नको सूक्ष्म करता है तिस पीछें क्रम करकें उपशातमोह गुणस्थानमें ति स सूक्ष्म लोन्नका सर्वथा उपशम करता है, तथा इहा उपशातमोह गुण स्थानमे जीव, एक प्रकृति, शातावेदनीय रूप बांधता है अरु उगणसठ प्रकृति वेदता है, तथा १४७ प्रकृतिकी उत्कृष्टी सत्ता है

अथ उपशातमोह गुणस्थानकमे, जैसा सम्यक्त्व चारित्र नाव लक्ष ण तीन है, सो कहते है. यह गुणस्थानमें उपशम सम्यक्त्व अरु उप शम चारित्र होता है, अरु इहा नावन्नी उपशमही होता है, परतु क्षा यिक नाव तथा क्षायोपशमिक नाव नहीं होता है

अथ उपशातमोह गुणस्थानसे जैसे पड जाता है, तैसे कहते है उ पशमी मुनि तीव्र मोहोदय अर्थात् चारित्र मोहनीयका उदय पा करके उपशातमोह गुणस्थानसे पड जाता है, फेर मोहजनित प्रमादसे पतित होता है जैसे पानीमे मल हेठ बैठ जाते है, तिस करकें उपरसे निर्म ल हो जाता है, फेर कोइ निमित्त पा कर मलीन हो जाता है ॥ यदाह ॥ सुय केवलि आहारग, उजुमइ उवसतगावि हु पमाय ॥ हिमति नवमण त, तं अणतरमेव चउ गइया ॥ १ ॥ अर्थ –१ श्रुतकेवली, २ आहार क शरीरी, ३ ऋजुमति, ४ उपशातमोह वाला यह सर्व प्रमादके वशसे अनत नव करते है, प्रमादके वशसे चार गतिमे वास करते है

अथ उपशमक जीवोको गुणस्थानोमें चढनां, अरु पडना जिस तरे होता है, सो कहते है. अपूर्वकरण गुणस्थानसे अनिवृत्तिबादर गु णस्थानमे जाता है, अरु अनिवृत्तिबादरगुणस्थानसे सूक्ष्मसपराय गुण स्थानमे जाता है, अरु सूक्ष्मसपराय वाला उपशांतमोह गुणस्थानमे जाता है तथा अपूर्वकरणादि चारो गुणस्थानसे उपशम श्रेणिवाला पडा हुआ, प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानमे आ जाता है, अरु जे कर चरमशरीरी होवे,तव सातमे गुणस्थान तक आ करकें फेर सातमे गुणस्थानमे क्षपकश्रे णि माडता है, परतु एक वार जिसने उपशमश्रेणि करी होवे, सो क्षपक

श्रेणि कर सक्ता है, अरु जिसने एक नवमें दो वार उपशमश्रेणि करी होवे, सो क्षपकश्रेणि तिस नवमें नहीं कर सक्ता है ॥ यदाह ॥ गाथा ॥ जीवो हु एक जम्मंमि, इक्कसिं उवसामगो ॥ खयंति कुज्जा नो कुज्जा, दोवारे उवसामगो ॥ १ ॥

अथ उपशमश्रेणि वालेके नवोंकी संख्या कहते हैं. इस संसारमें बहुत नवोंमें चार वार उपशमश्रेणि होती है, अरु एक नवमें दो वार होती है ॥ यदाह ॥ उवसमसेणि चउक्कं, जायइ जीवस्स आनवं नूणं ॥ तो पुण दो एगनवे, खवगे स्सेणी पुणो एगा ॥ १ ॥ उपशमश्रेणिकी स्थापना इस अगले यंत्रसें जान लेनी. इस यंत्रकी संवादक यह गाथा है ॥ गाथा ॥ अणदंसण पुंसित्थी, वेयछक्कं च पुरिसवेयं च ॥ दो दो एगंतरिए, सरिसे सरिसं उवसमेइ ॥ १ ॥ अर्थः—प्रथम अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, अरु लोन. इन चारोंको उपशम करता है, पीछे मिथ्यात्व मोह, मिश्रमोह, अरु सम्यक्त्व मोह, यह तीनोंका उपशम करता है, पीछे नपुंसकवेद, पीछेसें स्त्रीवेद, फेर हास्य, रति, अरति, नय, शोक, जुगुप्सा, यह छे प्रकृतिका उपशम करता है. फेर पुरुषवेद, फेर अप्रत्याख्यानी क्रोध अरु प्रत्याख्यानी क्रोध, फेर संज्वलनका क्रोध, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी मान, फेर संज्वलनका मान, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी माया, फेर संज्वलनकी माया, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी लोन, फेर संज्वलनका लोन, उपशांत करता है ॥ इति उपशमश्रेणि स्वरूपं ॥

अथ क्षपकश्रेणिका स्वरूप लिखते हैं. जिस क्षपकश्रेणिमें चढ कर योगी (क्षपक मुनि) कर्म क्षय करणेमें प्रवृत्त होता है. अथ अष्टम गुणस्थानकसें पहिलें जो कर्मप्रकृति क्षपक मुनि क्षय करता है, सो लिखते हैं. चरमशरीरी, अबद्धायु, अल्पकर्मी, क्षपकके चौथे गुणस्थानमें नरकायु क्षय हो जाता है, नरक योग्य आयुका बंध नहीं करता है, तथा पांचमे गुणस्थानमें तिर्यगायु क्षय होता है, अरु सातमे गुणस्थानमें देवायु क्षय हो जाता है, तथा इहां सातमे गुणस्थानमें दर्शनमोहसप्तकनी क्षय हो जाता है, तिस पीछे क्षपक साधुके एक सौ अडत्तीस कर्मप्रकृतिकी सत्ता रहती है, तब आठमे गुणस्थानकों प्राप्त होता है, कथंनूतो? उत्कृष्ट धर्मध्यान रूपातीत लक्षण विषे कीया है, अन्यास जिसनें, जो वारं वार सेवन करना उसकों अन्यास कहते हैं, तिस अन्यास करकेंही तत्त्वप्राप्ति हो

ती है ॥ यदाह ॥ अभ्यासेन जिताहारो, ऽभ्यासेनैव जितासनः ॥ अभ्यासेन जितश्वासोऽ भ्यासेनैवानितत्रुटिः ॥ १ ॥ अभ्यासेन स्थिरं चित्त, मभ्यासेन जितेंद्रियः ॥ अभ्यासेन परानंदोऽभ्यासेनैवात्मदर्शनं ॥ २ ॥ अभ्यासवर्जितैर्ध्यानैः, शास्त्रस्थैः फलमस्ति न ॥ नवेन्नहि फलैस्तृप्तिः, पानीयप्रतिबिंबितैः ॥३॥ तिस वास्ते अभ्याससेंही विशुद्ध (निर्मल) तत्त्वानुयायि बुद्धि होती है

अथ अष्टम गुणस्थानमें शुक्लध्यानका आरंभ कहते है. क्षपक साधु यह आठमे गुणस्थानमे "शुक्लसध्यान" शुक्ल नामक प्रधान ध्यानका प्रथम पाद पृथक्त्व वितर्क सप्रविचार नाम है, तिसका स्वरूप आगे लिखेंगे ऐसा ध्यान ध्याता है, सो कैसा साधु है? "आद्यसंहननसमन्वितः" वज्रऋषभनाराचनामा प्रथम संहननयुक्त है.

अथ ध्यान करने वालेका स्वरूप लिखते है योगींद्र क्षपक मुनींद्र, व्यवहारापेक्षय, ध्यान करने योग्य होता है,क्या करके? निबिड दृढ पर्यंकासन करकें, कथनूतं? निश्चल आसन करकें, क्योंकि आसनजयही ध्यानका प्रथम प्राण है ॥ यदाह ॥ आहारासणनिद्दा, जयं च काऊण जिणवरमएण ॥ झाइज्ज नियं अप्पा, उवइठं जिणवरिंदेण ॥१॥ तत्र पर्यंकासन, जघाके अधोभागमे पग उपर करनेसे होता है, तथा केइक सिंहासन कहते है, तिसका स्वरूप ऐसा है कि ॥श्लोक॥ योनिं वामपदाऽपरेण निबिडं, सपीड्य शिश्नं हनुं ॥ न्यस्योरस्यचलेंद्रियः स्थिरमना, लोला च तालंतरे ॥ वशस्थैर्यतया सुनिश्चलतया, पश्यन् भ्रुवोरंतरं ॥ योगी योगविधिप्रसाधनकृते, सिंहासनं साधयेत् ॥ १ ॥ अथवा आसनका कोइ नियम नहीं, चाहो कोइ आसन होवे, जिस आसनमें चित्त स्थिर हो जावे, सोइ आसन ठीक है, सो कैसा योगींद्र है कि नासिकाके अग्रमे दीनी है सत् नेत्रकी दृष्टि, ऐसे प्रसन्न नेत्र है जिसके, क्योंकि नासाग्रन्यस्तलोचनवालाही ध्यानका साधक होता है ॥ यदाह ॥ ध्यानदंमकस्तुतौ ॥ नासावंशाग्रभाग, स्थित नयनयुगो, मुक्ततारप्रचारः ॥ शेषाक्षक्षीणवृत्तिः, स्त्रिभुवनविवरो, द्भ्रांतयोगैकचक्रः ॥ पर्यंकातंकशून्यः, परिगलितघनोल्लासनिःश्वासवातः ॥ सद्ध्यानारंभमूर्त्तिः, श्चिरमवतु जिनो, जन्मसंभूतिभीतेः ॥ १ ॥ फेर कैसा है योगींद्र? किंचित् उन्मीलित अर्द्धविकसित है नेत्र जिसके, क्योंकि योगीयोंके समाधि समयमें अर्द्धविकसित नेत्र होते है ॥यदाह॥ गंभीरस्तंभमूर्त्तिः, र्व्यपगतक

रणं, व्याप्टतिमेदमंदं ॥ प्राणायामोल्लाट,स्थलनिहितमना, दत्तनासा ग्रदृष्टिः ॥ नाऽत्युन्मीलन्निमीलं, न्नयनमतितरां, बद्धपर्यंकबंधो ॥ ध्याने प्र ध्याय शुक्लं, सकलविदलवद्यः स पायाज्जिनो वः ॥ १ ॥ फेर कैसा योगींइ है? "मानस" (मन) चित्त अंतःकरण विकल्परूप वावरके बंधनसें दूर करा है, क्योंकि विकल्पही दृढ कर्मबंधनका हेतु है ।। यदाह ॥ शुन्ना वा ह्य शुन्ना वापि, विकल्पा यस्य चेतसि ॥ स स्वं बभ्रात्ययः स्वर्ण, बंधना तेन क र्मणा ॥ १ ॥ वरं निद्रा वरं मूर्छा, वरं विकलतापि वा, नत्वार्त्तरौद्दड्लेश्या, विकल्पाकुलितं मनः ॥ २ ॥ फेर कैसा है योगी? संसारके उछेद करने वा स्ते उद्यम है जिसके क्योंकि नवछेदक ध्यानार्थी उत्साह वालोंकेही योग सिद्धि होती है ।। यदाह ॥ उत्साहान्निश्चयाद्धैर्या, त्संतोषात्तत्त्वदर्शनात् ॥ मुनेर्जनपदत्यागा, त्षड्भिर्योगः प्रसिद्ध्येदिति ॥१॥ तथा मुनि योगींइ अ निल (पवनकों) ऊर्ध्व प्रचारास्ति दशम द्वार गोचरकों प्राप्त करता है, क्या कर कें प्राप्त करता है? कि अपान द्वार मार्ग करकें गुदाके रस्ते पवन अपणी इछासें निकलतेकों निरुध्य (संकोच) करकें,मूलबंध युक्ति करकें करता है. सो मूलबंध यह है, कि ॥ श्लोक ॥ पार्ष्णिन्नागेन संपीड्य, योनिमाकुंच येद्गुदं ॥ अपानमूर्ध्वमाकृष्य, मूलबंधो निगद्यते ॥ १ ॥ यह आकुंचनक र्महीं प्राणायामका मूल है ॥ यडुक्तं ॥ ध्यानदंमस्तुतौ ॥ संकोच्यापानरंध्रं, हुतवहसदृशं, तंतुवत्सूक्ष्मरूपं ॥ धृत्वा हृत्पद्मकोशे, तदनु च गलके, तालु नि प्राणशक्तिं ॥ नीत्वा शून्यातिशून्यां, पुनरपि खगतिं, दीप्यमानं समंता, ल्लोकालोकावलोकां, कलयति स कलां, यस्य तुष्टो जिनेशः ॥ १ ॥

अथ पूरक प्राणायाम कहते हैं. योगी पूरक ध्यानके योगसें अतिप्रयत्न करकें (कोष्ठं) सकल देहगत नाडीसमूहकों पवन करकें पूरता है, क्या करकें? द्वादशांगुल पर्यंत पवनकों आकर्षण करकें, बारां आंगुल प्रमाण बाहिरसें सर्व औरसें खैंच करकें पूरता है. इहां यह तात्पर्यार्थ है कि पवन आका श तत्त्वके वहते हूये नासिकाके अंदरही पवन होता है, अरु अग्नितत्त्व के वहते हूये चार अंगुल प्रमाण बाहिर ऊर्ध्वगति स्फुरत होता है, अरु वायु तत्त्वके वहते हूयें छै अंगुल प्रमाण बाहिर तिर्यग् फिरता है, अरु पृथिवी तत्त्वके वहते हूये आठ अंगुल प्रमाण बाहिर मध्यम न्नागमें रह ता है, अरु जल तत्त्वके वहते हूये बारह अंगुल प्रमाण नीचेकों वहता

है, तब द्वादश अंगुल पर्यंत वारुणमंडल प्रचार अमृतमय पवन आक र्षण करकें इसका नाम पूरक ध्यानकर्म कहते है.

अथ रेचक प्राणायाम कहते है तब पूरक ध्यानके अनंतर साधक योगी योगसामर्थ्यसे अरु प्राणायाम अभ्यासके बलसे रेचकनामा पवन नाभिकम लोदरसें हलुवे हलुवे बाहिर काढता है;तिसका नाम रेचकध्यान कहते है ॥यदाह॥ वज्रासन स्थिरवपु· स्थिरधी सचित्त,मारोप्य रेचक समीरणजन्म चक्रे॥ स्वांतेन रेचयति नाडिगत समीर,तत्कर्म रेचकमिति प्रतिपत्तिमेति ॥१॥

अथ कुंभकध्यान कहते है. योगी कुंभकनामा पवन नाभिपंकजकुंभक ध्यान अर्थात् कुंभककर्म प्रयोग करकें कुंभवत् (घटाकार) करकें अतिशय क रके स्थिर करता है ॥ यदाह ॥ चेतसि श्रयति कुंभकचक्र,नाडिकासु निबि डीकृतवात· ॥ कुंभवच्चरति यज्जलमध्ये, तद्वदंति किल कुंभककर्म ॥ १ ॥

अथ पवनके जितनेसे मन जीत्या जाता है, यह बात कहते है क्यो कि जहा मन है, तहा पवन है,अरु जहा पवन है, तहा मन वर्त्तता है॥ यदाह ॥ दुग्धांबुवत्समिलितौ सदैव, तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि ॥ याव न्मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्ति, र्यावन्मरुत्तत्र मन प्रवृत्ति· ॥ १ ॥ तत्रैकनाशादपरस्य नाश, एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्ति ॥ विध्वस्तयोरेंद्रियवर्गशुद्धि, स्तन्नुसनान्मोक्ष प दस्य सिद्धि ॥२॥ इस प्रकार करकें पूरक, रेचक, कुंभकके क्रम करकें प वनोका आकुंचन निर्गमन, साध्य करके वायुका संग्रह, अरु चित्तका एका ग्रपणा चिंतन करके समाधिविषे निश्चलपणेको धारण करता है, क्योंकि पवनके जीतनेसेही मन निश्चल होता है ॥ यदाह॥ प्रचलति यदि, क्षोणी चक्र, चलत्यचला अपि ॥ प्रलयपवन, प्रेंखालोला, श्चलंति पयोधय ॥ प वनजयिन , स्वावष्टंभ, प्रकाशितशक्तय· ॥ स्थिरपरिणते, रात्म ध्याना, च्चलति न योगिन ॥ १ ॥

अथ भावकीही प्रधानता कहते है इहा क्षपकश्रेणि आरोहविषे जो प्राणायामका क्रम प्रौढि पवनका अभ्यासक्रम कहा है, सो प्रागल्भता अ र्थात् रूढि करकें जो प्रसिद्ध है, सो दिखलाया है, परंतु जो प्राणायाम ही करे, तो क्षपकश्रेणि चढे,ऐसा कुछ नियम नही, क्योंकि क्षपकका भा वही केवल क्षपकश्रेणिका कारण है, परंतु प्राणायामादि आडंबर नहीं चर्पटिनापि ॥ नासाकंदं नाडीवृंद, वायोश्चार प्रत्याहार ॥ प्राणायामो बी

जयामो, ध्यानाभ्यासोमंत्रन्यासः ॥ १ ॥ हृत्पद्मस्थं भ्रूमध्यस्थं, नासाग्र स्थं श्वासांतःस्थं ॥ तेजः शुद्धं ध्यानं बुद्धः, ॐकाराख्यं सूर्यप्रभाख्यं ॥२॥ ब्रह्माकाशं शून्याभ्यासं, मिथ्याजल्पं चिंताकल्पं ॥ कायाक्रांतं चित्तभ्रांतं, त्य क्त्वा सर्वं मिथ्यागर्वं ॥ ३ ॥ गुर्वादिष्टं चिंत तमिष्टं ॥ देहातीतं भावोपेतं ॥ त्यक्त्वा द्वंद्वं नित्यानंदं, शुद्धं तत्त्वं जानीहि त्वं ॥४॥ अन्यच्च ॥ ॐकाराऽभ्यस नं विचित्रकरणैः, प्राणस्य वायोर्जया, त्तेजश्चिंतनमात्मकायकमले, शून्यांत रालंबनं ॥ त्यक्त्वा सर्वमिदं कलेवरगतं, चिंतामनोविभ्रमं ॥ तत्त्वं पश्यत ज ल्पकल्पनकला, तीतं स्वभावस्थितं ॥ १ ॥ यह सर्व रूढि करकें क्षपकश्रेणि के आमंबर है,परंतु तत्त्वमें मरुदेवादिवत् भावही प्रधान है.

अथ आद्य शुक्लध्यानका नाम कहते हैं. मन, वचन, अरु कायाके योग वाले मुनिके प्रथम शुक्ल ध्यानका पाद होता है,सो कैसा है ? कि वितर्क कर कें सहित जो वर्त्ते, सो सवितर्क. अरु सहविचार करकें जो प्रवर्त्ते, सो सविचा र. तथा सह पृथक्त्वेन वर्त्तते इति सपृथक्त्व. इन तीनो विशेषणों करकें संयु क्त होनेसें सपृथक्त्व,सवितर्क,सप्रविचार नामक प्रथम शुक्लध्यानका नाम है.

अथ विशेषण तीनोंका स्वरूप कहते हैं, यह पूर्वोक्त प्रथम शुक्लध्यान त्रयात्मक क्रमोत्क्रम करकें गृहीत विशेष तीन रूप हैं,तहां श्रुतचिंता रूप वितर्क है, तथा अर्थ शब्द योगांतरमें जो संक्रमण करनां है, सो विचार है, अरु द्रव्य गुण पर्यायादि करकें जो अन्यपणा है, सो पृथक्त्व है.

अथ इन तीनोंका प्रगट अर्थ कहते हैं, उसमें प्रथम वितर्कका स्वरूप कहते हैं, जिस ध्यानमें अंतरंग ध्वनिरूप वितर्कविचार रूप होवे, सो सवितर्कध्यान है, क्योंकि स्वकीय निर्मल परमात्मतत्त्व अनुभवमय अंतरंगभावगत आगमके अवलंबनसें. यह सवितर्क ध्यान है.

अथ सविचार कहते हैं. जिस ध्यानमें सपूर्वोक्त वितर्क विचाररूप अर्थसें अर्थांतरमें संक्रम होवे, शब्दसें शब्दांतरमें संक्रम होवे, योगसें योगांतरमें संक्रम होवे, सो ध्यान, सविचारससंक्रमण कहते हैं.

अथ पृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं. जिस ध्यानमें वो पूर्वोक्त वितर्क सवि चार अर्थ व्यंजन योगांतर संक्रमणरूपभी शुद्धात्मकी तरें द्रव्यसें द्रव्यांत रमें जाता है, अथवा गुणोंसें गुणांतरमें जाता है, अथवा पर्यायोंसें पर्या यांतरमें जाता है, तहां जो सहजात है, सो गुण है,जैसें सुवर्णमें स्निग्ध

ता पीतता है अरु जो क्रमभूत है, सो पर्याय है, जैसे सुवर्णमे मुद्रा कुं भलादिक तिन द्रव्य गुण पर्यायातरोमे जिस ध्यानमें अन्यत्व पृथक्त्व है, सो सपृथक्त्व है.

अथ आद्य शुक्लध्यान करके जो शुद्धि होती है, सो कहते है योगी समाधिवान् ऐसा पूर्वोक्त त्रयात्मक पृथक्त्व वितर्क सप्रविचाररूप जो प्रथम शुक्लध्यान है उसका ध्याता हूआ परम प्रकृष्ट शुद्धिको प्राप्त होता है, सो कैसी शुद्धिकों प्राप्त होता है? कि जो शुद्धि मुक्तिरूप लक्ष्मीके सुखके दिखलाने वाली है, तिस शुद्धिको प्राप्त होता है

अथ इसहीका विशेष स्वरूप कहते है. यद्यपि यह शुक्लध्यान प्रतिपाति (पतनशील) उत्पन्न होता है,तोनी अतिविशुद्ध होनेसे औ अति निर्मल होनेसें अगले गुणस्थानमे चढनां चाहता है, एतावता अगले गुणस्थानकों दौडता है, तथा अपूर्वकरण गुणस्थानस्थ जीव निद्राद्विक, देवद्विक, पंचेंद्रिय जाति, प्रशस्त विहायोगति, त्रसनवक, वैक्रिय,आहारक, तैजस, कार्मण, वैक्रियोपाग, आहारकोपाग, आद्य संस्थान, निर्माण, तीर्थंकरनाम, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास यह बत्तीस कर्म प्रकृतिका व्यवछेद होनेसे छवीश कर्मप्रकृतिका बंध करता है तथा अतिम तीन सहनन अरु सम्यक्त्व मोह,इन चारके उदय व्यवछेद होनेसे बहत्तरी कर्मप्रकृति वेदता है अरु १३८ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपक श्रेणिवालेका आठमा गुणस्थानका स्वरूप ॥

अथ क्षपक अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानकमे आरोहण करता हूआ जौनसी कर्मप्रकृति जहा जैसे क्षय करता है, सो कहते है. पूर्वोक्त आठमे गुणस्थानसे अनतर क्षपक मुनि अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानमे चढता है, तब तिस नवमे गुणस्थानके नव भाग करता है, तिहा प्रथम भागमें सोला कर्म प्रकृति क्षय करता है,सो यह है १ नरकगति, २ नरकानुपूर्वी, ३ तिर्यग्गति, ४ तिर्यचानुपूर्वी, ५ साधारणनाम, ६ उद्योतनाम, ७ सूक्ष्म, ८ द्वीद्रिय जाति, ९ त्रीद्रिय जाति, १० चतुरिंद्रिय जाति,११ एकेंद्रियजाति,१२ आतप नाम,१५ स्त्यानर्द्धि त्रिक, अर्थात् निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानर्द्धि, यह त्रिक, १६ स्थावर नाम यह सोला कर्म प्रकृतिको नवमे गुणस्थानकके प्रथम भागमे क्षय करता है,

तथा अप्रत्याख्यानकी चौकडी, अरु प्रत्याख्यानकी चौकडी, यह आठ मध्यकी कषायकों दूसरे भागमें क्षय करता है, तीसरे भागमें नपुंसकवेद, अरु चौथे भागमें स्त्रीवेद क्षय करता है, तथा पांचमे भागमें हास्य, रति, अरति, भय, शोक, अरु जुगुप्सा, यह छे प्रकृतिका क्षय करता है. शेष छठे भागसें ले कर नवमे भाग तांइ चारों भागमें क्रमसें शुद्ध हूवा थका ध्यानकी अति निर्मलतासें क्रम करकें छठे भागमें पुरुषवेद, सातमे भागमें संज्वलनका क्रोध, आठमे भागमें संज्वलन मान, नवमे भागमें संज्वलनकी मायाकों क्षय करता हैं, तथा यह गुणस्थानमें वर्त्तता हुआ मुनि, हास्य, अरति, भय, जुगुप्सा. इन चारोंके व्यवछेद होनेसें बावीस प्रकृतिका बंध करता हैं. अरु हास्य षट्कके उदय व्यवछेद होनेसं छासठ प्रकृतिकों वेदता है, तथा नवमे अंशमें माया पर्यंत प्रकृतियोंके क्षय करणेसें पैंतीस प्रकृतिके व्यवछेद होनेसें एक सौ तीन प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपकके नवमे गुणस्थानकका स्वरूप.

अथ क्षपकके दशमे गुणस्थानका स्वरूप लिखते हैं. पूर्वोक्त नवमे गुणस्थानकसें अनंतर क्षपकमुनि सूक्ष्मसंपरायनामक दशमे गुणस्थानमें चढता है. क्या करता हुआ चढता है? कि क्षणमात्रसें संज्वलनके स्थूल लोभकों सूक्ष्म करता हुआ चढता है, तथा सूक्ष्म संपराय गुणस्थानस्थ जीव, पुरुषवेद तथा संज्वलन चतुष्कके बंध व्यवछेद होनेसें सत्तरां प्रकृतिका बंध करता है, अरु तीन वेद, तथा तीन संज्वलन कषायके उदय व्यवछेद होनेसें साठ प्रकृति वेदता है, मायाकी सत्ता व्यवछेद होनेसें एक सौ दो प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपकस्य दशमं गुणस्थानं ॥

अथ क्षपककों इग्यारहवा गुणस्थानक नहीं होता है, किंतु दशमे गुणस्थानसें क्षपक, सूक्ष्मलोभांशोंकों सूक्ष्मकृत लोभखंडोंकों क्षय करता हूआ बारहमे क्षीणमोह गुणस्थानमें जाता है. इहां क्षपकश्रेणि समाप्त करता है. उसका क्रम यह हैं, कि प्रथम अनंतानुबंधी चार क्षय करता है, फेर मिथ्यात्व मोहनीय, फेर मिश्रमोहनीय, फेर सम्यक्त्व मोहनीय, फेर अप्रत्याख्यान चार कषाय, तथा प्रत्याख्यान चार कषाय. एवं आठ क्षय करता है. फेर नपुंसकवेद, फेर हास्यषट्क, फेर पुरुष वेद, फेर संज्वलन क्रोध, फेर संज्वलन मान, फेर संज्वलन माया, फेर संज्वलन लोभ क्षय करता है.

अथ तदा वारहमे गुणस्थानमे शुक्लध्यानके दूसरे अंशको आश्रित करता है, यह बात कहते है अथानतर सो क्षपकक्षीणमोहरूप हो करकें क्षीणमोह गुणस्थानकके मार्गमे परिणतिमान् हो करकें, प्रथम शुक्लध्यानकी रीति करके दूसरे शुक्लध्यानकों आश्रित होता है, कथन्नूत क्षपक ? वीतराग विशेष करकें "इतो (गतो) रागो यस्मात् स वीतराग" फेर कैसा है क्षपकमुनि ? महायति, यथाख्यातचारित्री फेर कैसा है मुनि ? कि शुद्धतर नाव करके सयुक्त ऐसा क्षपक, दूसरे शुक्ल ध्यानकों आश्रित होता है

अथ सोइ शुक्लध्यान सनाम विशेषण कहते है, सो क्षपक क्षीणमोह गुणस्थानवर्त्ती, दूसरा शुक्लध्यान एक योग करके ध्याता है ॥ यदाह ॥ एक त्रियोगनाजा, माद्यं स्यादपरमेकयोगवता ॥ तनुयोगिना तृतीय, नियोगाना चतुर्थ हि ॥ १ ॥ कैसा ध्यान है ? कि " अपृथक्त्व पृथक्त्व वर्जित अविचार विचार रहित सवितर्कगुणान्वित वितर्क मात्र गुण सयुक्त" दूसरा शुक्लध्यान ध्याता है

अथ अपृथक्त्वका स्वरूप कहते है तत्त्वज्ञाता एकत्व अर्थात् अपृथक्त्वज्ञानको धारण करता है,सो एकत्वपणा क्या है ? जो निजात्मद्रव्य एक केवल अपणा द्रव्य विशुद्ध परमात्मद्रव्य है,अथवा तिसही परमात्म द्रव्यका एक केवल पर्याय,अथवा एक केवल गुण,इस प्रकारसे एक द्रव्य, एक गुण, एक पर्याय, निश्चल, चलन वर्जित जहा ध्यावे, सो एकत्व है

अथ अविचारपणा कहते है इस कालमे सद्ध्यानकोविद अर्थात् शुक्लध्यानका जो जाननहारा है. सो पूर्वमुनिप्रणीत शास्त्राम्नायविशेष से है, परतु शुक्ल ध्यानका अनुनवी इस कालमे कोइ नही ॥यदाहु॥ श्रीहेमचद्र सूरिपादा ॥ श्लोक ॥ अनविच्छित्त्याम्नाय , समागतोऽस्येति कीर्त्यतेऽस्मानि ॥ दुष्करमप्याधुनिकै , शुक्लध्यान यथाशास्त्र ॥ १ ॥ जिनसद्ध्यानकोविदोने शास्त्राम्नायसे शुक्ल ध्यानका रहस्य जान्या है, तिनोने अविचार विशेषण सयुक्त दूसरे शुक्लध्यानका स्वरूप कह्या है, सो क्या है ? जो पूर्वोक्त स्वरूपोमे व्यजन अर्थयोगोमे एतावता शब्दार्थ योग रूपोमे परावर्त्त विवर्जित शब्दसे शब्दातर, इत्यादि क्रमसे रहित चितन श्रुतानुसारेही करिये है, सो अविचार है

अथ सवितर्क कहते हैं. सवितर्क एक गुणसंयुक्त दूसरा शुक्लध्यान किससेंति होता है ? तहां कहें हैं, कि भावश्रुतके आलंबनसें होता है. सूक्ष्म अंतर्जल्परूप भावगत अवलंबनमात्र चिंतनसें होता है.

अथ शुक्लध्यानजनित समरसी भाव कहते हैं. इस पूर्वोक्त प्रकार करकें एकत्वविचार सवितर्करूप तीन विशेषण संयुक्त दूसरा शुक्लध्यान कह्या, तिस दूसरे शुक्लध्यानमें वर्त्तता हुआ ध्यानी समरसी भावकों धारण करता है, सो यह समरसी भाव जो है, सो तदेकशरण मान्या है, कारणकि आत्मा जो अपृथक्त्व करकें परमात्मासें लीन करीयें, सोइ समरस भावका धारण करणां है, समरस किससेंति करे ? कि आत्माके अनुभवसें करे.

अथ क्षीणमोहगुणस्थानके छेहडे क्या करता है? सो कहते हैं. इस पूर्वोक्त ध्यानके योगसें औ दूसरे शुक्लध्यानके योगसें प्रज्वलित कर्मेधनो त्कर दह्यमान है. कर्मरूप इंधनका समूह. ऐसा योगींद्र अंतके प्रथम स मय अर्थात् बारहवे गुणस्थानकके दूसरे चरम समयमें निद्रा अरु प्रच ला, इन दो प्रकृतिका क्षय करता है.

अथ अंत समयमें जो करता है, सो कहते हैं. क्षीणमोह गुण स्थानके अंत समयमें १ चक्षुदर्शन, २ अचक्षुदर्शन, ३ अवधिदर्शन, ४ केवलदर्शन. यह चार दर्शनावरणीय तथा पंचविध ज्ञानावरण, तथा पं चविध अंतराय, यह चौदह प्रकृतिका क्षय करकें क्षीणमोहांश हो करकें केवल स्वरूप होता है. तथा क्षीणमोह गुणस्थानस्थ जीव, दर्शनचतुष्क, अरु ज्ञानांतरायदशक, उच्चैर्गोत्र, यशनाम. यह सोलां प्रकृतिका बंध व्यवछेद होनेसें एक शातावेदनीका बंध करता है, तथा १ संज्वलनका लोभ, २ ऋषभनाराचसंघयण, इनकें उदय विछेद होनेसें सत्तावन प्रकृति वेदता है. तथा संज्वलनके लोभकी सत्ता दूर होनेसें एक सौ एक प्रकृति की सत्ता है. इति क्षपकस्य द्वादश गुणस्थानकस्वरूपं ॥ १२ ॥

अथ क्षीणमोहांत प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं. चौथे गुणस्थानसें ले कर क्षय होती हुइ त्रेसठ प्रकृति, क्षीणमोहमें संपूर्ण भइ है, सो कहते हैं. एक प्रकृति चौथे गुणस्थानमें क्षय हुइ, एक पांचमें, आठ सा तमें, छत्तीस नवमें, सत्तरे बारहमें. यह सर्व त्रेसठ भइ. तथा शेष पंचासी

प्रकृति पुराणे वस्त्रकी तरें (अत्यंत जीर्णवस्त्रसमान) तेरहवे सयोगी केवली गुणस्थानमें रहती है

अथ सयोगी केवलीके जो नाव होता है, अरु जो सम्यक्त्व चारित्र होता है, सो कहते है तिस केवल आत्मा नगवतको इहा सयोगी गुणस्थानमें नाव तो क्षायिक शुद्ध (निर्मल) होता है, औ सम्यक्त्व परम प्रकृष्ट क्षायिक होता है, तथा चारित्र क्षायिक यथाख्यातनामक होता है, इसका तात्पर्य्य यह है, कि उपशम अरु क्षायोपशमिक यह दो नाव नहीं होते है.

अथ तिस केवलात्मकों केवल कहते है. तिस केवल रूप सूर्यके प्रकाश करकें चराचर जगत् हस्तामलक उपमावत् (हस्त तलेमे ग्रहण करा आमलेकी तरे) प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) करके नासन करते है. इहा प्रकाशमान सूर्यकी उपमा जो कही है, सो व्यवहार मात्र कही है, नतु निश्चयसेंति कही है,कारण कि निश्चय करकें तो केवलज्ञानका अरु सूर्यका बडा अंतर है

अथ जिसने तीर्थकरनाम उपार्ज्या है, तिसका विशेष कहते है विशेष करकें अर्हत् नक्ति प्रमुख वीश पुण्यके स्थानक जो जीव, आराधन करता है, सो तीर्थकरनामकर्म उपार्जन करता है सो वीश स्थानक यह है॥ गाथा ॥ अरिहंत सिद्ध पवयण, गुरु थेर बहुस्सुए तवस्सीसु ॥ वछलयाइ एसु, अनिरकणं णो वउग्गेय ॥ १ ॥ दंसण विणए आव, स्सए सीलव्वए निरइयारे ॥ खणलवत्तियाए, वेयावच्चे समाहीय ॥ २ ॥ अपुव्व नाण ग्गहण, सुयनत्ती पवयण पन्नावणया ॥ एएहि कारणेहि, तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥ ३ ॥ इनका अर्थ आगे लिखेगे, तिस वास्ते इहा सयोगी गुणस्थानमे तीर्थकर कर्मोदयसे वो केवली (त्रिजगत्पति) त्रिभुवनपति जिनेंद्र होता है जिन, सामान्य केवलीयोकों कहते है, तिनमे जो इंद्रकी तरें होवे, सो जिनेंद्र जानना

अथ तीर्थंकरकी महिमा कहते हैं, सो नगवान् तीर्थकर पूर्वोक्त चउत्तीस अतिशय करकें सयुक्त होता है, औ सर्व देवता जिसको नमस्कार करते है, तथा सकल देव मानवोनें जिसको नमस्कार करा है, सो सर्वोत्तम, औ सकल शासनोमे प्रधान, असा तीर्थप्रवर्त्तन प्रगट करता हूआ उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि लग विद्यमान रहता है

अथ सो तीर्थंकर नामकर्म जैसें वेदनेमें आता है, तैसें कहते हैं. तिस तीर्थंकरनें सो तीर्थंकर नामकर्म नोगीयें हैं, क्या करनेसें? सो कहते हैं. पृथ्वीमंमलमें नव्यजीवोंके प्रतिबोधनेसें, देशविरति औ सर्वविरति करनेसें, तीर्थंकर नामकर्म वेदनेमें आता है. जे कर तीर्थंकर नामकर्म का उदय न होवे, तब कृतकृत्य होनेसें नगवान्कों उपदेश देनेका क्या प्रयोजन है? इस वास्ते जे वादी नगवान्कों निःशरीरी नैरुपाधिक मुख रहित सर्वव्यापी मानते हैं, सो देहादिकके अनावसें धर्मका उपदेशक न हीं हो सक्ता है, जे कर उपाधि रहित सर्वव्यापी परमेश्वरनी उपदेशक होवे, तब तो अब इस कालमें अस्मदादिकोंकों क्यों नहीं उपदेश करता है? क्योंकि पूर्वकालमें अग्नि आदिक ऋषियोंकों उसने प्रेरा, तथा ब्रह्मा दि द्वारा चार वेदका उपदेश करा, तथा मूसा, ईसा द्वारा जगत्कों उप देश करा, तो फेर अब क्यों नहीं उपदेश करता? परोपकारीके क्या ढील है? जे कर कहोगेकि इस कालमें सर्व जीव उपदेश मानने योग्य नहीं है, इस वास्ते उपदेश नहीं देता, तब तो पूर्वकालमेंनी सर्व जीवोने परमेश्वर का उपदेश नहीं माना है. प्रथम तो कालासुर प्रमुख अनेक जीवोनें न हीं माना, दूसरा अजाजीलने नहीं माना, औ यहूदानें, तथा कितनेक इसराइलियोंनें नहीं माना, इस वास्ते पूर्वकालमेंनी परमेश्वरकों उपदेश देनां योग्य नहीं था. जे कर कहोगेकि उसकी ओही जाने क्यों कर उप देश दीया अरु अब किस वास्ते उपदेश नहीं देता. तो फेर तुम क्यों कर कहते हो कि परमेश्वरके मुख नहीं? इस वास्ते यही सत्य है, कि जो तीर्थंकर नामकर्मके वेदने वास्ते नगवान् उपदेश करते हैं, अरु जिस वखत उपदेश करते हैं उस वखत देहधारी होते हैं. इत्यलं प्रसंगेन ॥ केवली केवलज्ञानवान् पृथ्वीमंमलमें उत्कृष्ट आठ वर्ष ऊणा पूर्वकोटि प्र माण विचरता है, औ देवताओंके करे हूए कंचनकमलोंके उपरि पग र ख कर चलता है, अरु आठ प्रत्याहार करकें संयुक्त अनेक सुरासुर कोटि संसेवित विचरता है. यह स्थिति सामान्य प्रकारें केवलीयोंकी कही है, अरु जिनेंद्र तो मध्यस्थिति वाला होता है.

अथ केवलि समुद्घातकरण कहते हैं. "असौ" वो केवली जब वेद नीय कर्मसेंती आयुःकर्मकी स्थिति थोडी जानता है, तब तिसके तुल्य

करने वास्ते केवली, समुद्घात करता है, तिस समुद्घातका स्वरूप कहते है, तहां प्रथम समुद्घात पदका अर्थ कहते है यथास्वभावस्थित आत्मप्रदेशोंको वेदनादि सात कारणो करके समंतात् उद्घातन स्वभावसें अन्यभावपणे परिणमन करनां, तिसका नाम समुद्घात है. सो समुद्घात सात प्रकारे है १ वेदनास०, २ कषायस०, ३ मरणस०, ४ वैक्रियस०, ५ तेज.स०, ६ आहारकस०, ७ केवलिस०, इन सातो समुद्घातोमेसू केवलिसमुद्घात इहां ग्रहण करणी तिस केवलिसमुद्घातके अर्थ केवली भगवान् आयु अरु वेदनी कर्मके सम करने वास्ते प्रथम समयमे आत्मप्रदेशो करके ऊर्ध्वलोकांत लगि दंमरू (दंमाकार) लावे आत्मप्रदेश करता है दूसरे समयमे पूर्व, पश्चिम, दिशामें आत्मप्रदेशों करकें कपाटाकार करता है, तीसरे समयमे उत्तर, दक्षिण, आत्मप्रदेशोका मथानाकार करता है, चौथे समयमें अंतर पूर्ण करनेसे सर्व लोक व्यापी होता है इस तरें केवली, चौथे समय विश्वव्यापी होता है

अथ इहांसे निवृत्ति कहते है इस प्रकार करके केवली आत्मप्रदेशोको विस्तार करनेके प्रयोगसे कर्मलेशको सम करता है. सम करके पीछें तिस समुद्घातसे उलटा निवर्त्तता है, सो ऐसे है, कि केवली चार समयमे जगत् पूर्ण करकें पांचमे समय पूर्णसे निवर्त्तता है छठे समयमे मथानपणा दूर करता है, सातमे समयमे कपाट दूर करता है, आठमे समयमें दंमरू उपसंहार करता हूआ स्वभावस्थ होता है ॥ यदाहुरौचकमुख्या ॥ दंम प्रथमे समये, कपाटमथ चोत्तरे तथा समये ॥ मथानमथ तृतीये, लोकव्यापी चतुर्थे तु ॥ १ ॥ संहरति पंचमे त्व, तराणि मथानमथ पुन षष्ठे ॥ सप्तमेके तु कपाट, संहरति तथाऽष्टमे दंम॥२॥

अथ केवली समुद्घात करता हूआ जैसा योगवान्, अरु अनाहारक होता है, सो कहते है केवली समुद्घात करता हूआ प्रथम अरु अंत समयमे औदारिककाय योगवाला होता है, दूसरे, अरु छठे समयमे मिश्रौदारिककाय योगी होता है, मिश्रपणा इहां कार्मण करके औदारिकका है, तथा तीसरे, चौथे, अरु पांचमे समयोमे केवल कार्मणकाय योगवाला होता है, जिन समयोमें केवली केवल कार्मण काययोग वाला होता है, तिनही समयोमें अनाहारक होता है

अथ जौनसा केवली समुद्घात करता है, अरु जौनसा नहीं करता है, सो कहते हैं. जिसकी छै महिनेसें अधिक आयु शेष है, जे कर उसकों केवल ज्ञान होवे,वोतो निश्चय समुद्घात करे, अरु जिसकी छै महीनेके भीतर आयु होवे, उसकों जो केवल ज्ञान होवे, तो भजना है. वो केवल समुद्घात करेभी, अरु नहींभी करे ॥ यदाह ॥ छम्मासाऊ सेसा, उप्पन्नं जेसिं केवलं नाणं ॥ ते नियमा समुग्घाइय,सेसा समुग्घाय भइयव्वा १

अथ समुद्घातसें निवृत्त हो करकें जो कुछ करता है, सो कहते हैं. वो मन, बचन, अरु काययोगवान् केवली, केवल समुद्घातसें निवृत्त हो कर योग निरोधनके वास्ते शुक्लध्यानका तीसरा पाद ध्याता है. सोइ तीसरा शुक्लध्यान कहते हैं. तिस अवसरमें तिस केवलीकों तीसरा सूक्ष्मक्रिया निवृत्तिक नाम शुक्लध्यान होता है. सो कंपनरूप जो क्रिया है, तिसकों सूक्ष्म करता है.

अथ मन, बचन, कायाके योगोंकों जैसें सूक्ष्म करता है, सो कहते हैं. सो केवली, सूक्ष्मक्रियानिवृत्तिनामक तीसरा शुक्लध्यान ध्याता, अचिंतात्मवीर्यकी शक्ति करकें बादरकाययोग स्वभावमें स्थित करकें बादर बचन योग, बादर मनोयोग, यह युगलकों सूक्ष्म करता है,तिस पीछें बादरकाययोगकों सूक्ष्म करता है, फेर सूक्ष्मकाययोगमें क्षण मात्र रह करकें तत्काल सूक्ष्म बचन, मनोयोग, यह युगलका अपचय करता है. तिस पीछें सूक्ष्म काययोगमें क्षण मात्र रह कर प्रगट सो केवली निजात्मानुभव सूक्ष्म क्रिया चिद्रूपकों स्वयमेवही अपणे स्वरूपका अनुभव करता है,(जानता है.)

अथ जो सूक्ष्मक्रियावाले शरीरकी स्थिति है, सोइ केवलीयोंका ध्यान होता है, ऐसी बात कहते हैं. जिस प्रकार करकें छद्मस्थ योगीयोंके मनके स्थिरताकों ध्यान कहते हैं, तैसेंही शरीरकी निश्चलताकों केवलीयोंके ध्यान होता है. अथ शैलेशीकरणका आरंभ करने वाला सूक्ष्म काययोगी जो कुछ करता है, सो कहते हैं. केवलीके ह्रस्वाक्षर पांचके उच्चारण करण मात्र काल जितना आयु शेष रहता है, तब शैलवत् निश्चलकायकों चौथा ध्यानाऽपरिपातरूप शैलेशीकरण होता है. तिस पीछें सो केवली शैलेशीकरणारंभी सूक्ष्मरूप काय योगमेंरहता हुआ शीघ्रही अयोगी गुणस्थानमें जाणेकी इच्छा करता है.

अथ सो भगवान् केवली सयोगी गुणस्थानके अंत्य समयमें औदारिकद्विक, अस्थिरद्विक, विहायोगतिद्विक, प्रत्येक त्रिक, संस्थान षट्क, अगुरुलघुचतुष्क, वर्णादिचतुष्क, निर्माण, तैजस, कार्मण, प्रथम संहनन, स्वरद्विक, एकतर वेदनीय. यह तीस प्रकृतिका उदय विच्छेद होता है. तब तो इहां अंगोपांगके उदय व्यवच्छेद होनेसे अत्याग संस्थानावगाहनासे तीसरे भाग ऊणी अवगाहना करता है, किस कारणसे ? अपने प्रदेशोंको घनरूप करनेसे चरम शरीरके अंगोपांगमे जो नासिकादि छिद्र है, तिनकों पूर्ण करता है, तब स्वात्मप्रदेशोंका घनरूप हो जाता है, तिस वास्ते स्वप्रदेशोंका घनरूप होनेसें तीसरा भाग ऊना होता है सयोगी गुणस्थानस्थ जीव, एकविध बंधक उपांत्य समय तांइ अरु ज्ञानांतराय, दर्शन चतुष्कोदय व्यवच्छेद होनेसें बैतालीस प्रकृति वेदता है, तथा १ निद्रा, २ प्रचला, १२ ज्ञानांतराय दशक, १६ दर्शनचतुष्क रूप सोला प्रकृतियोकी सत्ता व्यवच्छेद होनेसे पंचासी प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति सयोगी गुणस्थानं ॥ १३ ॥

अथ अयोगी गुणस्थानककी स्थिति कहते है. तेरहवे गुणस्थानके अनंतर चोदहवे अयोगी गुणस्थानमे रहते हूए जिनेंद्रकी लघु पंचाक्षर उच्चारणमात्र "अ इ उ ऋ ऌ" ये पांच वर्ण उच्चारण करतां जितना काल लगता है, तितनी स्थिति है यह अयोगी गुणस्थानमे ध्यानका संभव कहते है इहां अनिवृत्ति नामक चौथा ध्यान होता है, इस चौथे ध्यानका स्वरूप कहते है. जिस ध्यानमे सूक्ष्मकाययोग रूप क्रियाभी "समुच्छिन्ना" सर्वथा निवृत्त हूइ है, सो समुच्छिन्नक्रिय नाम "चतुर्थ" चौथा ध्यान कहते है,कैसा वो ध्यान है ? कि मुक्ति महिलका द्वार (दरवाजे) समान है

अथ शिष्यके करे दो प्रश्न कहते है, शिष्य पूछता है कि हे प्रभु ! देहके होतें हूआ अयोगी क्यो कर हो सक्ता है ? यह प्रथम प्रश्न, तथा जेकर सर्वथा काय योगका अभाव हो गया है, तब देहके अभावसे ध्यान क्यो कर घटेगा ? यह दूसरा प्रश्न है

अथ आचार्य इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर देते है, आचार्य कहता है, कि भो शिष्य ! अत्र अयोगी गुणस्थानमे सूक्ष्म काययोगके होतेंभी अयोगी कहते है,किस वास्ते ? कि १ काययोगके अति सूक्ष्म होनेसे सूक्ष्मक्रिया रूप होनेसे अरु वो काययोग शीघ्रही क्षय होनेवाला है, तथा कायके

धिक सुगंधिवाली है, अरु कोमल है, सूक्ष्मम है अवयव जिसके. फेर वो शिला कैसी है ? पुण्या, पवित्र, परमन्नासुरा, प्रकृष्ट तेजवाली है, मनुष्यक्षेत्र प्रमाण लंबी चौडी है. श्वेत छत्रके आकार है, उत्तान छत्राकार है, उसका बडा शुन्न रूप है, वो ईषत् प्राग्न्नारा नामा पृथ्वी सर्वार्थ सिद्ध विमानसें बारा योजन उपरि है, अरु वो पृथ्वी, मध्य न्नागमें आठ योजनकी मोटी है, तथा प्रांतमें घटती घटती मक्षीके पांखसेंन्नी पतली है, तिस शिलाके उपरि एक योजन लोकांत है, उस योजनका जो चौथा कोस है, उस कोसके छठे न्नागमें सिद्धोंकी अवगाहना है, सोइ दो हजार धनुष प्रमाण कोशके छठे न्नागमें तीन सौ तेत्तीस धनुष अरु बत्तीस अंगुल होता है, उतनी सिद्धोंके आत्मप्रदेशोंकी अवगाहना है.

अथ सिद्धोंके आत्मप्रदेशोंकी अवगाहनाका आकार लिखते हैं. जैसें कुठाली (मूषा) तिसमें मोम न्नरकें गालियें, तिसके गलनेंसें जो आकाशका आकार है, तैसा सिद्धोंका आकार है.

अथ सिद्धोंके ज्ञान दर्शनका विषय लिखते हैं. त्रैलोक्योदरवर्त्ती चउदह रज्ज्वात्मक लोकमें जो गुणपर्याय करकें संयुक्त वस्तु है, तिन जीवाजीव पदार्थोंकों सिद्धमुक्त जानते हैं, सामान्य रूप करकें देखते हैं, विशेष रूप करकें जानते हैं, क्योंकि वस्तु जो है,सो सर्व सामान्य विशेषात्मक हैं.

अथ सिद्धोंके आठ गुण कहते हैं. १ जिस हेतुसें सिद्धोंकों ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेसें केवलज्ञान प्रगट हुआ है, तथा २ सिद्धोंकों दर्शनावरण कर्मके क्षय होनेसें दर्शन अनंता हूआ है. तथा ३ सिद्धोंकों शुद्ध, सम्यक्त्व चारित्र क्षायिकरूप हूये हैं, किस हेतुसें हुये हैं ? कि दर्शन मोहनीय औ चारित्र मोहनीयके क्षय होनेसें हूये हैं, तथा ४ सिद्धोंकों अनंत अक्षयसुख अरु ५ अनंत वीर्य शक्ति हूये हैं, किस हेतुसें हूये हैं ? कि वेदनी कर्मक्षय होनेसें अनंत सुख हूये हैं, अंतराय कर्मके क्षय होनेसें अनंत वीर्य प्रगट हुआ है. तथा ६ सिद्धोंकी अक्षयगति हुइ है, किस हेतुसें ? कि आयुःकर्मके क्षय होनेसें हुइ है,तथा ७ नामकर्मके क्षय होनेसें अमूर्त्तपणा सिद्धकों प्रगट न्नया है, तथा ८ गोत्रकर्मके क्षय होनेसें सिद्धोंकी अनंतावगाहना है.

अथ सिद्धोंका सुख कहते हैं, जो सुख, चक्रवर्त्तीकी पदवीका, अरु जो

सुख, इत्यादि पदवीका है, तिनसेंभी सिद्धोका सुख अनंत गुणा है, कैसा वो सुख है? कि क्लेश रहित है "अविद्यास्मिता" राग, द्वेष, अभिनिवेश, ए क्लेश है, सो जिनमें नही है, फेर कैसा है सुख? "अव्ययं न व्येति स्वस्वभावसेती इति अव्ययं"

अथ तिन सिद्ध भगवतोंने जो पाया है, तिसका सार कहते है सिद्ध भगवतोने परम पद पाया है, सो कैसा परम पद पाया है? जो आराधकों को आराध्य है, सो पद पाया है, तथा जो पद, साधकोने सम्यग् दर्शनज्ञान चारित्रादि करकें साधीये है, तथा जो पद, ध्यायकोको ध्येय है, तथा जो पद, सदाही नानाविध ध्यानोपाय करकें ध्याइये है, तथा जो पद, अभव्य जीवोको सदा डुर्लभ है, अरु कितनेक भव्य जीवोकोभी डुर्लभ है, अरु डुर्भव्योको कष्टसे प्राप्त होता है, ऐसा डुर्लभ पद, तिन सिद्ध भगवतोने पाया है सो पद कैसा है? कि तत्परम पद है, चिदानदमय चिद्रूप परमानद रूप है

अथ मुक्तिका स्वरूप कहते है कोइक वादी अत्यताऽभावरूप मोक्ष मानते है, सो बौद्धोकी मोक्ष है अरु कोइ वादी जडमयी, ज्ञान अभावमयी मोक्ष मानते है, सो नैयायिक वैशेषिक मत वाले है अरु कोइक वादी मोक्ष हो कर फेर ससारमे अवतार लेना, फेर मोक्षरूप हो जाना, ऐसी मोक्ष मानते है, सो आजीवका मतवाले है? अरु कोइ तो क्लिष्ट कर्म करके विषय सुखमय मोक्ष मानते है वे कहते है, कि मोक्षमे भोग करने वास्ते बहुत अप्सरा मिलती है, औ खाने पीनेकों बहुत वस्तु मिलती है, तथा पान करनेकों बहुत अच्छी मदिरा मिलती है, औ रहनेको सुंदर बाग मिलता है, इत्यादि तथा कोइक वादी कहते है कि मोक्ष, जीवकी कदापि नही होती है, यह जैमिनी मुनिका मत है तथा कोइ खरड ज्ञानी ऐसे कहते है कि जो वेदोक्त अनुष्ठान करता है, वो सर्वथा उपाधि रहित तो नही होता, परतु उन पुण्यफलसे सुदर देह पा कर ईश्वर के साथ मिल कर कितनेक कल्पों लगि सुख भोग करता है, जदा इच्छा होवे, तदा उड कर चला जाता है फेर ससारमे जन्म लेता है, फेर पूर्ववत् सुखभोग करता है, इसी तरें अनादि अनतकाल लगि करता रहेगा, परतु एक जगे स्थित न रहेगा, ऐसी मोक्ष कहता है अरु सर्वज्ञ अर्हंत परमेश्वरनें तो सतूरूप, ज्ञानदर्शनरूप, तथा असारभूत जो यह ससार

नप्रतिमाभी है, जे कर कहोगे कि कागजों ऊपर स्याहीके अक्षर संस्थानसंयुक्त लिखे जाते हैं, उनके वांचनेसें परमेश्वरका कहनां मालुम हो जाता है, तब इसी तरें परमेश्वरकी मूर्त्ति देखनेसेंभी परमेश्वरका स्वरूप मालुम होता है.

प्रश्नः—प्रतिमाके देखनेंसें अर्हंत स्वरूप तो स्मरण होता है, परंतु प्रतिमाकी भक्ति करनेसें क्या लाभ है?

उत्तरः—शास्त्रके श्रवण करनेसें परमेश्वरके वचन तो मालुम हो गये,तोभी भक्त जन जैसें शास्त्रकों उच्चस्थानमें रखते हैं, कोइ शिर ऊपर ले कर फिरते हैं,कितनेक गलेमें लटका रखते हैं,औ कितनेक मंजी ऊपर,कितनेक चौकी आदि ऊपर शास्त्रोंकों सुंदर सुंदर रुमालोमें लपेटके रखते हैं, औ नमस्कारादि करते हैं, ऐसेंही जिनप्रतिमाकी भक्ति, पूजाभी जान लेनी.

प्रश्नः—जैसें पत्थरकी गायसें दूधकी गरज पूरी नहीं होती है, ऐसें प्रतिमासेंभी कोइ गरज पूरी नहीं होती, तो फेर प्रतिमाकों काहेकों माननां चाहियें?

उत्तरः—जैसें कोइ पुरुष मुखसें गौ, गौ, सच्ची गौ कहता है, उस कहनेंसें उसका बरतन क्यां दूधसें भर जाता है? अर्थात् नहीं भरता है. ऐसें परमेश्वरके नाम लेनें और जाप करनेंसेंभी कुछ नहीं मिलता. इस वास्ते परमेश्वरका नामभी न लेनां चाहियें.

प्रश्नः—परमेश्वरका नाम लेनेसें तो हमारा अंतःकरण शुद्ध होता है.

उत्तरः—ऐसेंही श्रीजिनप्रतिमाके देखनेसेंभी परमेश्वरके स्वरूपका बोध होता है, तातें अंतःकरणकी शुद्धि इहांभी तुल्यही है.

प्रश्नः—परमेश्वरके नाम लेनेसें पुण्य है, तो फेर प्रतिमा काहेकों पूजनी?

उत्तरः—नामसें ऐसें शुद्धपरिणाम नहीं होते, जैसें स्थापना देखनेसें होते है. क्यों कि? जैसें किसी सुंदर यौवनवंती स्त्रीका नाम लेनेसें राग जागता है, अरु जब उस सुंदर यौवनवती स्त्रीकी मूर्त्ति प्रगट सर्वाकार वाली सन्मुख देखीयें, तब अधिकतर विषयराग उत्पन्न होता है, इसी वास्ते श्रीदशवैकालिकसूत्रमें लिखा है, "चित्तभित्ती न निज्झाए नारी वा सुअंकियं" अर्थात् स्त्रीके चित्रामकी भींत देखेसेंभी विकार उत्पन्न होवेगा. यह बात तो प्रगट (प्रसिद्ध) है, कि रागीकी मूर्त्ति देखनेंसें राग उत्पन्न हो

ता है, तथा कोक शास्त्रोक्त स्त्री पुरुषके विषय सेवनके चौरासी चिन्ह दे
खनेसे तत्काल विकार उत्पन्न होता है, ऐसेही निर्विकार स्थापनारूप
शांतमुद्रा, श्रीवीतरागकी देखनेसें निर्विकार शांतिभाव उत्पन्न होता है, ऐ
सा नाम लेनेंसे नही होता है

प्रश्न —जैसे किसी स्त्रीके भर्त्तारका नाम देवदत्त है, सो जब देवदत्त मर
गया, तब तिसकी स्त्रीने अपने भरतार देवदत्तकी मूर्त्ति बनाइ है, उस मू
र्त्तिसें उस स्त्रीका सुहाग तथा संतानोत्पत्ति तथा काम इच्छा नहीं होती
है, इसी तरे भगवान्‌की मूर्त्तिसेभी कुछ लाभ नही है

उत्तर —देवदत्तकी स्त्री देवदत्तके मरे पीछें आसन बिछाय कर देवदत्त
के नामकी माला फेरे, तब उस स्त्रीका सुहाग नही रहता, तथा भरतार
का नाम लेनेसे संतानोत्पत्तिभी नही होती? तथा कामेच्छाभी पूरी नही
होती? इसी तरे जो कहेगे तब तो भगवान्‌के नाम लेनेसेभी कुछ सिद्धि
नहीं होगी. इस दृष्टांतमे तो भगवान्‌का नामभी न लेनां चाहिये.

प्रश्न —प्रतिमा तो कारीगर बनाता है, उस कारीगरकोभी पूजना चाहिये?

उत्तर —वेदादि शास्त्रकोभी लिखारी लिखते है, उनकोभी पूजनां चाहि
ये? तथा साधुके मात पिताकोभी साधुसे अधिक पूजना चाहिये

प्रश्न —स्थापना कोइभी इस कालमे बुद्धिमान् नही मानता है

उत्तर —बुद्धिमान् तो सर्व मानते है, परंतु मूर्ख नही मानते हैं

प्रश्न —कौनसे बुद्धिमान् स्थापना मानते है? तिनोका नाम लेना चाहियें.

उत्तर —प्रथम तो सांसारिक विद्यावाले सर्व बुद्धिमान्, भूगोल, खगोल,
द्वीप, अर्थात् युरोपखंडमे विलायत प्रमुखका चित्र सर्व, स्थापनारूप मान
ते है, और बनाते है, तथा जो ककार आदि अक्षर है, वे सर्व पुरुषके (ई
श्वरके) शब्दकी स्थापना करते है, तथा जैनीयोके मतमें एक सौ आठ म
णिये, मालामे रखते है, परंतु अधिक न्यून नहीं रखते है, इसका हेतु य
ह है,कि जैन, बारह गुण तो अरिहंत पदके मानते है,अरु आठ गुण, सिद्ध
पदके मानते है, तथा छत्तीस गुण, आचार्यपदके मानते है, तथा पच्चीस
गुण, उपाध्याय पदके मानते है, तथा सत्ताइस गुण, मुनि साधु पदके
मानते है यह सर्व मिल कर एक सौ आठ गुण होते है इस वा
स्ते जैनीयोके मतमें मालामे जो मणिये है, सो एकेक मणिया एकै

क गुणकी स्थापना है. यह मालाभी स्थापना है. इसी तरें दूसरे म तोंमेंभी जो माला तसबी है, सो सर्व किसीनकिसी वस्तुकी स्था पना है. नहीं तो एक सौ आठ तथा एक सौ एकका नियम न चाहियें. तथा पादरी लोकोंकीभी छापी हूइ पुस्तकोंके ऊपर ईशामसीहकी मूर्त्ति उ स वखतकी छापी हूइ है, जिस अवसरमें मसीहकों शूली ऊपर देनेकों ले जाते थे, उस मूर्त्तिके देखनेसें ईशामसीहकी अवस्था सर्व मालुम होती है, बस, स्थापनाका यही तो प्रयोजन है, कि जो उसके देखनेसें असली वस्तु का स्वरूप याद (स्मरण) हो जाता है. आश्चर्य तो यह है कि अब (इ स कालमें) कितनेक तुछबुद्धिवाले अपनी बनाई पुस्तकमें यज्ञशाला तथा यज्ञोपकरणकी स्थापना अपणे हाथोंसें करकें अपणे शिष्योंकों जनाते हैं, जो यज्ञोपकरण इस आकृतिके चाहियें, फेर कहते हैं कि हम स्थाप नाकों नहीं मानते हैं. अब विचार करनां चाहियें कि इनसेंभी कोइ अधिक मूर्ख जगत्में है ? जो आप तो स्थापना करते हैं अरु फेर कहते हैं कि हम स्थापनाकों नहीं मानते हैं, इस वास्ते जो पुरुष अपने शास्त्रके उप देशककों देहधारी मानेगा, वो अवश्य उसकी मूर्त्तिकूंभी मानेगा, अरु जो अपणे शास्त्रके उपदेष्टाकों देह रहित मानते हैं, वेभी थोडी बुद्धि वाले हैं. क्योंकि जिसके देह नहीं, वो शास्त्रका उपदेष्टा कदापि नहीं हो सक्ता है, कारण कि देह रहित होनां अरु शास्त्रका उपदेश देने वालाभी होनां, इ स बातमें कोइभी प्रमाण नहीं है. अरु निराकार सर्वव्यापी परमेश्वरका ध्यानभी कोइ नहीं कर सक्ता है. जैसें आकाशका ध्यान नहीं हो सक्ता है. इस वास्ते अठारह दूषणसें रहित जो परमेश्वर है, तिसकी मूर्त्ति अव श्य माननी पूजनी चाहियें. सो ऐसा देव तो अर्हंतही है, इस वास्ते अर्हं तकी प्रतिमा माननी चाहियें. परंतु किसी डुर्बुद्धिके कुहेतुओंसें छोडनी न चाहियें ॥ इति स्थापना निक्षेप दूसरा.

अब तीसरा द्रव्यनिक्षेप, सो जिस जीवने तीर्थंकर नामकर्मका निका चित बंध कीना है, तिस जीवसें भावि गुणोंका आरोप अर्थात् ऐसा आ गेंकों तीर्थंकर भगवान् होवेगा? ऐसा वर्त्तमानमें आरोप करकें वंदन (नम स्कार) पूजन करकें, अनेक जीव, मोक्षकों प्राप्त हूये हैं.

चौथा भावनिक्षेप, सो जो वर्त्तमान कालमें सीमंधर प्रमुख तीर्थंकर

केवलज्ञानसंयुक्त समवसरणमे विराजमान भव्यजीवोके प्रतिबोधक चतुर्विध संघके स्थापक, सो भाव अर्हत इनके चरण कमलकी सेवा करके अनेक जीव मोक्ष होते है, यह भावनिक्षेप है यह चार निक्षेप करकें संयुक्त, ऐसा जो अरिहंत देवाधिदेव, महा गोप, महा माहण, महा निर्यामक, महा सार्थवाह, महा वैद्य, महा परोपकारी, करुणासमुद्र, इत्यादि अनेक उपमा लायक सो भव्य जीवोके अज्ञानांधकार दूर करणेको सूर्य समान, प्रमाण करकें अविरोधि जिसके वचन है, औ मुनिमनमोहन, योगीश्वर, चिदानद घनरूप, ऐसे अरिहंतको मै देव, अर्थात् परमेश्वर करिके मानता हू, तिसकी सेवा करु, तिसकी आज्ञा शिर धरु, ऐसा जो माने, सो प्रथम व्यवहारशुद्ध देवतत्त्व है

दूसरा निश्चयशुद्ध देवतत्त्व कहते है जो शुद्धात्मस्वरूपको अनुभव करना, सो शुद्धात्मस्वरूपही निश्चयदेवतत्त्व है, कैसा है वो आत्मस्वरूप? कि पाच वर्ण, दो गध, पाच रस, आठ स्पर्श, शब्द, क्रिया, इनोसे रहित, तथा योगसें रहित, अतींद्रिय, अविनाशी, अनुपाधि, अबधी, अक्लेशी, अमूर्त्ति, शुद्धचैतन्य, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि अनत गुणोका भाजन, सच्चिदानदस्वरूपी ऐसी मेरी आत्मा है, सोइ निश्चयदेव है

अथ दूसरा गुरुतत्त्व कहते है तिसकेभी दो भेद हैं, एक शुद्धव्यवहारगुरु, दूसरा शुद्ध निश्चयगुरु उसमे शुद्धव्यवहारगुरुका स्वरूप तो गुरुतत्त्वनिरूपण परिछेदमे लिख आये है, तहासे जान लेना, ऐसे साधुकों गुरु करके माने ऐसे गुरुकी आज्ञासे प्रवर्त्ते, ऐसे मुनिकों पात्र बुद्धि करकें शुद्ध अन्नादिक देवे इति व्यवहार शुद्धगुरुतत्त्व। तथा निश्चय गुरुतत्त्व तो शुद्धात्म विज्ञानपूर्वक है, जो हेयोपादेय उपयोगयुक्त परिहार प्रवृत्तिज्ञान, सो निश्चयगुरुतत्त्व है

अथ तीसरा धर्मतत्त्व कहते है धर्मतत्त्वकेभी दो भेद है, एक व्यवहारधर्मतत्त्व, दूसरा निश्चयधर्मतत्त्व तिनमे जो व्यवहाररूप धर्म है, सो दयामुख्य है क्यो कि जो सत्यादि व्रत है, सो सर्व दयाकी रक्षा वास्ते है, इस वास्ते दयाका स्वरूप लिखते है यह दयाके आठ भेद है, सो कहते है १ द्रव्यदया, २ भावदया, ३ स्वदया, ४ परदया, ५ स्वरूपदया, ६ अनुबंधदया, ७ व्यवहारदया, ८ निश्चयदया

१ तहां द्रव्यदया उसकों कहते हैं, कि जो यत्न पूर्वक सर्व काम करणां, यह तो जैनमतवालेके कुलका धर्म है, सर्व जैन लोक, पाणी ठाणके पीते हैं, औ अन्न शोधके खाते हैं; जे कर कोइ जैनी ठल (कपट) करता है, झूठ बोलता है, औ विश्वासघात करता है, वो पापी जीव है. सो जैनमतकों कलंकित करता है. वो सर्व उस जीवकाही दोष है, परंतु उसमें जैनधर्मका कुछ दोष नहीं है, जैनधर्म तो ऐसा पवित्र है. कि जिसमें कोइजी अनुचित उपदेश नहीं है, यह बात सर्व सुज्ञ जनोंकों विदित है, इस वास्ते जो काम करणां, सो यत्नपूर्वक जीवरक्षा करकें करणां, सो द्रव्यदया है.

२ दूसरी जावदया है, सो दूसरे जीवोंके गुणप्राप्ति वास्ते तथा दुर्गति पडतेकों रक्षण वास्ते, अंतःकरणमें अनुकंपा बुद्धि संयुक्त जो परजीवकों हितोपदेश करनां, सो जावदया है.

३ तीसरी स्वदया है, सो अपणी आत्मा अनादि कालमें मिथ्यात्व अशुद्ध उपयोग, अशुद्ध श्रद्धानपूर्वक अशुद्ध प्रवृत्ति, कषायादि जावशस्त्रों करी समय समयमें आत्माके ज्ञानादि गुणोंकी घातरूप जावप्राणोंकी हिंसा होती है, ऐसें जिनवचन सुननेसें पूर्वोक्त जाव शस्त्रोंका त्याग करकें स्वसत्तासें प्रवृत्ति करकें शुद्धोपयोग धारकें विषय कषायोंसें दूर रहनां, अरु शुज, अशुज कर्मफलके उदयमें अव्यापक रहनां, अर्थात् सुखदुःखमें हर्ष विषाद न करणां, प्रतिक्षण अशुज कर्मके निदान दूर करणेकी जो चिंता, तिसका नाम स्वदया है. इस स्वदयाकी रुचि वाला जीव अपनी परिणति शुद्ध करने वास्ते जिनपूजा, तीर्थयात्रा, रथयात्रा प्रमुख शुज प्रवृत्ति करे, जिन गुण गावे, बहुमान करकें. असत् प्रवृत्तिसें चित्तकों हटा करकें तत्त्वालंबी करे, पुजलावलंबीपणां हटावे, इस शुजाश्रवमें यद्यपि देखनेमें कितनेक जीवोंकी हिंसा दीख पडती है, तोजी आत्माकी अशुद्ध परिणति मिटनेसें आत्मा गुणग्राही हो जाती है, जब गुणग्राही जइ, तब ज्ञानवान् हो गइ. इस वास्ते सर्व साधक जीवोंकों यह स्वदया परम साधन है. इस स्वदयाके वास्ते साधुजी नवकल्पी विहार करते हैं, औ उपदेश देते हैं, चर्चा करते हैं, तथा पूजन, प्रतिलेखन करते हैं, यद्यपि नदी नाले उतरने पडत हैं, तहां योगोंकी चपलतासें आश्रव होता है, तोजी चेत

न स्वरूपानुयायी रहता है, जिनाज्ञा पालता है, औ कषायस्थान मंद करता है, स्वछंदता दूर करता है, तथा धर्मप्रवृत्तिकी वृद्धि करता है, यह स्वदयाके वास्ते शुनाश्रव साधुजी अपणे कल्प प्रमाणे आचरण करता है, परंतु यह आश्रव साधकदशामे बाधक नहीं है ॥ इति स्वदया ॥

४ चौथी परदया, सो जो छै कायके जीवोंकी रक्षा करणी, जहा स्वदया है, तहा परदया तो नियम करकें है, अरु जहा परदया है, तहा स्वदयाकी नजना है, अर्थात् होवेनी, नहीनी होवे

५ पाचमी स्वरूपदया, सो जो इहलोक परलोकके विषयसुख वास्ते तथा लोकोकी देखा देखी करके जीवरक्षा करे, यह स्वरुप दया है इस दयासे विषय सुख तो मिल जाते है, परंतु मेरुक चर्णवत् संसारकी वृद्धि हो जाती है, यह देखनेमे तो दया है, परंतु नावे हिंसाही है

६ छठी अनुबंधदया, सो श्रावक बडे आम्बरसे मुनिको वंदना करनेकों जावे, तथा उपकार बुद्धिसे दूसरे जीवोको सन्मार्गमे लाने वास्ते आक्रोश (ताडनादि) करे, कोइकों शिक्षा देवे यहा देखनेमे तो हिंसा है, परंतु अंतमे स्वपरको लाभका कारण है, इस वास्ते ये दया है जैसे साधु, आचार्य, अपणे शिष्य शिष्यणीयोको शिक्षा देता है, किसीको नूल याद कराता है, तथा किसीकों अनुचित कामसे मना करता है, किसीकों एक वार कहता है, अरु किसीको वारवार शिक्षा देता है, किसी उपर क्रोध नी करता है, शासनके प्रत्यनीकको अपणी लब्धिसे दंम देता है, इत्यादि कामोमे यद्यपि हिंसा दीखती है, तोनी फल दयाका है इति अनुबंधदया

७ सातमी व्यवहारदया, सो विधिमार्गानुयायी जीवदया पाले, सर्व क्रिया कलाप उपयोग पूर्वक करे, सो व्यवहार दया है

८ आठमी निश्चयदया, सो शुद्ध साध्य उपयोगमे एकत्व नाव, अनेदोपयोग साध्यनावमे एकताज्ञान, सो नावदया इस दयासेती उपरिले गुणस्थानोमे जीव चढता है, तिस वास्ते उत्कृष्ट है इत्यादि अनेक प्रकारसे दयाके स्वरूप, निक्षेपपूर्वक सूत्र, निर्युक्ति, नाष्य, चूर्णी, वृत्ति, इस पचांगीसम्मत प्रत्यक्षादि प्रमाणपूर्वक नैगमादिनय, नामादि निक्षेप, सप्तनंगी, ज्ञाननय, क्रियानय, तथा निश्चयव्यवहारनय, तथा द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, इत्यादि उनय नावमे यथावसरें अर्पित, अनर्पित नयनिपु

एतासें मुख्य गौण नावें उन्नयनयसम्मत, शुद्धस्याद्वादशैली विज्ञानपूर्वक, श्रीसिद्धांतोक्त दान, शील, तप, नावनारूप शुन प्रवृत्ति, तिसका नाम शुद्ध व्यवहारधर्म कहियें हैं.

तथा दूसरा निश्चयधर्म, सो अपणी आत्माकी आत्मताकों जाणे, औ वस्तुके स्वनावकों जाणे कि जो मेरी आत्मा है. सो शुद्ध चैतन्यरूप, असंख्यातप्रदेशी, अमूर्त्ति, स्वदेहमात्रव्यापी, सर्व पुजलोंमें निन्न. अखंम, अलिप्त, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य, अव्याबाध, सत्‌चिदानंदादि अनंत गुणमयी, अविनाशी, अनुपाधि, अविकारी, ऐसी मेरी आत्मा है, सोइ उपादेय है. इससें विलक्षण जो परपुजलादिक सो मेरे नहीं. तिस पुजलके पांच विकार हैं, १ शब्द, २ रूप, ३ रस, ४ गंध, ५ स्पर्श. इन पांचोंके उत्तर नेद अनेक हैं. इस लोकाकाशमें जो उद्योत, तथा अंधकार, तथा जो शब्द है, तथा सर्व रूपी वस्तुकी जो गया, रत्नकी कांति, शीत, धूप, नानाप्रकारके रूप, रंग, संस्थान, औ नाना प्रकारके सुगंध, डुर्गंध, नाना प्रकारके रस, तथा सर्व संसारी जीवोंकी देह, नापा, औ मनके विकल्प, दश प्राण, ६ पर्याप्ति, हास्य, रति, अरति, नय, शोक, जुगुप्सा, औ खुशी, उदासी, कदाग्रह, हठ, लडाइ, क्रोधादि चार कषाय, तथा शाता, अशाता, उंच, नीच, निड्रा, विकथा, तथा सर्व पुण्यप्रकृति, सर्व पापप्रकृति, तथा रीफ, मोज, खीफना, खेद, तथा ६ लेश्या, लानालान, यश, अपयश, मूर्ख, चतुरता, स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद, कामचेष्टा, गति, जाति, कुल. इत्यादि आठ कर्मका विपाक फल, यह सर्व बातों जीवके अनुनवसें सिद्ध हैं, अरु सूक्ष्मपुजल, इंड्रिय अगोचर है. सो परमाणु आदि लेकें अनेक तरेंका है, इस पूर्वोक्त पुजलके संयोगसें जीव चारों गतिमें नटकता है. यह पुजल, मेरी जाति नहीं, इस पुजलका मेरे साथ कोइ वास्तव संबंध नहीं, औ यह पुजल सर्व त्यागने योग्य है, जो इस पुजलका संसर्ग है, सोइ संसार है, तथा इस पुजलकी संगतिसें ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि गुण बिगड जाते हैं, जो यह पुजल, ड्रव्यकी रचना है, सो मेरी आत्माका स्वनाव नहीं; तथा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, यह चारों ड्रव्य ज्ञेय रूप हैं, इनसेंनी मेरा स्वरूप अन्य है, अरु और जो संसारी जीव हैं, सो सर्व अपणी अपणी स्वनाव सत्ताके स्वामी

है, सो मेरे ज्ञानमें ज्ञेय रूप है परतु मै इन सर्वसें अन्य हूं, ये मेरे न हीं है, मै इनका नहीं, मै इनका साथीनी नहीं, औ मै अपणे स्वरूपका स्वामी हू, मेरा स्वनाव सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप है, वर्णरहित, त था गधरहित, रस रहित, चैतन्य गुण, अनत, अव्यावाध, अनत दान, ला न, नोग, उपनोग वीर्यादिक अनत गुण स्वरूप है तिनकी श्रद्धा नासन पूर्वक गुणस्वादिक रूप चिदानद घन मेरा स्वनाव है, ऐसा जो मेरा पू र्णानद स्वनाव, तिसके प्रगट करणे वास्ते सर्वशुद्ध व्यवहारनय निमित्तमात्र है, परतु मुख्य तो मेरा स्वनाव जो है, तिसहीमे जो रमणता करणी, सोइ शुद्ध साधन है सोइ धर्म है, यह निश्चय धर्म स्वरूप जाननां॥इति धर्मतत्त्व तीसरा॥

इन तीनो तत्त्वोकी जो श्रद्धा, निश्चल परिणतिरुप, तिमको सम्यक्त्व कहते है अरु जिस जीवको इतना बोध न होवे, वो जीव जे कर ऐसे मनमे धारे, पक्षपात न करे, "तं सव्व निस्सकं, ज जिणेहि पवेइय इत्यादि" जो जिनेश्वर देवोने कह्या है अर्थ, सो सर्व नि शकित सत्य है, ऐसी त त्वार्थ श्रद्धाकोनी सम्यक्दर्शन सम्यक्त्व कहते हे, इस्से जो विपरीत हो वे, तिसकों मिथ्यात्व कहते है, इस मिथ्यात्वका स्वरूप नव तत्त्वमे लिख आये है, तहासे जान लेना, इस मिथ्यात्वकों त्यागे, तिसको सम्यक्त्व क हते है इति व्यवहारसम्यक्त्व स्वरूप सपूर्ण ॥

अथ निश्चय सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते है जो पूर्वे निश्चय देव, गुरु, और धर्मका स्वरूप कह्या है, सोइ निश्चयसम्यक्त्व है चार अनतानुवधी, सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, अरु मिथ्यात्व मोह, इन सातों प्रकृतिका उप शम करे. तथा क्षयोपशम करे, तथा क्षय करे, तिस जीवको निश्चय स म्यक्त्व होती है परतु निश्चय सम्यक्त्व परोक्ष ज्ञानविषय नहीं. केवली जान सक्ता है, जो इसके निश्चय सम्यक्त्व है, इस सम्यक्त्वके प्रगट नये जीव नरक अरु तिर्यंच इन दोनो गतिका आयु नहीं वांधता है॥ इति नि श्चय सम्यक्त्वं सपूर्ण ॥

अथ सम्यक्त्वकी करणी लिखते है, नित्य योगजाइके मिले, अरु श रीरमें कोइ विघ्न न होवे, तव जिनप्रतिमाका दर्शन करिके पीछेसे नोजन करे, जे कर जिनप्रतिमाका योग न मिले, तो पूर्वदिशि तरफ मुख करके व र्त्तमान तीर्थंकरोका चैत्यवदन करे, अरु जे कर रोगादि कोइ विघ्नसे दर्शन

न होवे, तो जिसका आगार है, उनका नियम नहीं टूटता है, अरु नग वान्के मंदिरमें मोटी दश आशातना न करे, यह दश आशातनाका नाम कहते हैं. १ तंबोल पान, फल, प्रमुख सर्व खानेकी वस्तु नगवान्के मंदिरमें न खावे, २ पाणी, दूध, ठास, अर्क प्रमुख पीवे नहीं, ३ जिनमंदिरमें बैठके नोजन न करे, ४ जूती प्रमुख मंदिरके अंदर न ल्यावे, ५ स्त्र्यादिकसें मैथुन सेवे नहीं, ६ जिनमंदिरमें शयन न करे, ७ जिनमंदिरमें थूंके नहीं, ८ जिनमंदिरसें लघुशंका न करे, ९ जिनमंदिरसें दिशा न जावे, १० जिनमंदिरमें जूआ, चोपट, सतरंज प्रमुख न खेले, ये दश आशातना टाले, तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना वर्जे, तथा एक मासमें इतना फूल सेरादि चढाउं, अेक मासमें इतना आदि घृत देऊं, (चढाऊं) एक वर्षमें इतना अंगलूहणां चढाउं, वर्षमें इतना केशर, इतना चंदन, इतना नीमसेनी वरास, कर्पूर प्रमुख नगवान्की पूजा वास्ते खरच करुं, अपने धनके अनुसारें वर्ष प्रति धूप अगरबत्ती, कर्पूर, चढाऊं. वर्षमें अष्ट प्रकारी सत्तरे प्रकारी इतनीयां पूजा कराऊं तथा करुं, औ वर्षमें इतना रूपैया साधारण द्रव्यमें खरचुं, वर्षप्रति पूजावास्ते इतना द्रव्य खरचूं, दिन दिन प्रति एक नवकरवाली, अर्थात् माला, पंच परमेष्ठिमंत्रकी मोक्षनिमित्त जाप करुं, जेकर कोइ दिन न जपणां हो जावे, तो अगले दिन दूणा जाप करुं, परंतु रोगादि कारणें आगार है, दिन प्रति समर्थ होतें नमस्कार सहित, अर्थात् दो घडी दिन चढे तक चार आहारका प्रत्याख्यान करुं, रात्रिमें डविहार प्रत्याख्यान करुं, औ रस्ते चलते रोगादि कारणसें न होवे, तो आगार. वर्ष प्रति इतना सार्धार्मिवात्सल्य करुं, (सार्धार्मि जिमावुं) इस रीतीसें सम्यक्त्व पालुं, अरु सम्यक्त्वके पांच अतिचार टालुं, सो पांच अतिचार कहते है.

१ प्रथम शंका अतिचार, सो जिनवचनमें शंका करणी, क्यों कि जिन वचन बहुत गंनीर हैं, अरु तिनका यथार्थ अर्थ कहने वाला इस कालमें कोइ गुरु नहीं, अरु शास्त्र जो है, सो अनंतनयात्मक है, तिसकी गिणती, तथा संज्ञा, विचित्र तरेंकी है, कहीक जगें तो कोडी शब्द क्रोडका वाचक है, अरु किसी जगें रूढी वस्तुका वाचक है, क्योंकि श्रीजिननद्रगणि क्षमाश्रमण सर्वसंघका सम्मत आचार्य, संघयण नामा पुस्तकमें तथा विशे

पणवती ग्रंथमे लिखते है, कि कोइक आचार्य कोडी शब्दको एक क्रोड का वाचक नही मानते है, किंतु संज्ञांतर मानते है, क्यो कि अब वर्त्तमा न कालमेजी वीशको कोडी कहते है, तथा सौराष्ट्र देश अर्थात् सोरठ दे शमे अब वर्त्तमान कालमेजी पाच आनेको एक कोडी कहते है, यह जैसे कोडी शब्दमें मतांतर है, असेही शत सहस्र शब्दजी किसी संज्ञाका वाचक होवे तो कुछ दोष नही तथा शत्रुंजय तीर्थमे जहा मुनि मोक्ष गये है, तहाजी पाच कोडी आदि शब्दोकी कोइ संज्ञा विशेष है असेही उप्पन कुल कोडी यादव कहते है, तीहाजी यादवोके उप्पन कुलोकी कोडी कोइ संज्ञा विशेष है, इसी तरे सर्व जग्गे शास्त्रोमें चक्रवर्त्तीकी सेना तथा कोणि क चेटक राजाओकी सेनामें जो कोडी, अरु शत सहस्र शब्द है, सो स ज्ञाविशेषके वाचक संजव होते है, इस वास्ते सर्व शब्दोका सर्व जग्गे ए क सरीखा अर्थ मानना युक्त नही, इस कथनमे पूज्यश्री जिनजद्रगणि क्षमाश्रमण पूरे साक्षी देने वाले है

तथा कितनेक जव्य जीवोने सामान्य प्रकारे असा सुण रक्खा है, जो पाचमे आरेमे उत्कृष्ट एक सौ वीश वर्षका आयु है, जब वो जीव कीसी अंग्रेज के मुखसे सुनते है, तथा और किसीके मुखसे सुनते है, कि डेढ सौ तथा दो सौ, तथा अढाइ सौ वर्षकी आयुवालेजी जोटानादि किसी देशमे मनु ष्य होते है, तब दृढ श्रद्धावाले जोले जीव तो कदापि किसीका कहना नही मानते है, चाहो वडी आयु वाला मनुष्य उनके सन्मुखजी खडा क र दो, तोजी वे जूठही मानेंगे, क्योकि वे जानते है, कि जो हमारे जिनेंद्र देवका कथन है, सो कदापि जूठा नहीं है, परंतु जिनको जैनमतकी दृढ श्र द्धा नही है, वे कुछ सांसारिक विद्यामे निपुन है, चाहो जैनमत वालेही हैं, उनके मनमे अवश्य शंका पड जायगी, क्यो कि उनोनेजी सर्व जैन मतके शास्त्र सुने नही है, शास्त्रमें जो कथन है, सो सापेक्षिक है, बाहु ल्यता करके कहा हूआ है, सो कथंचित् जो अन्यथा होवे, तो आश्चर्य नही क्यो कि बहुत शास्त्रोमे लिखा है कि ज्योतिषचक्र, अर्थात तारा मंमल है, सो सर्व तारे मेरु पर्वतको प्रदक्षिणा देते है ये बात सर्व जै नी मानते है, परंतु ध्रुवका तारा कहीजी नही जाता है, अरु ध्रुवके पा स जो तारे सप्त ऋषि रूढिमें प्रसिद्ध है, जिनको बालक मजी पहरेदार

कुत्ता, और चोर कहते हैं, तथा औरभी, कितनेक तारे ध्रुवके पार्श्ववर्त्ती हैं, वे सर्व ध्रुवकी प्रदक्षिणा देते हैं, परंतु मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा नहीं देते हैं, यह बात हमने आंखोंसें देखी है, अरु औरोंकों दिखा सकते हैं, तो फेर प्रथम जो शास्त्रकारने कहा था कि सर्व तारे मेरुकी प्रदक्षिणा दे ते हैं यह कहनां जैनी, क्यों कर सत्य मानते हैं?

इसका समाधान ऐसा है, कि प्रथम जो कथन है, सो बाहुल्यताकी अपेक्षा है, क्योंकि बहुत तारा मंमल ऐसा है, जो मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देता है, अरु कितनेक ऐसे हैं जो ध्रुवकेही आस पास चक्र देते हैं. यह समाधान, पूज्यश्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणजीनें संघयण, तथा विशेष णवती ग्रंथसें लिखा है, कि मेरु पर्वतके चारों ओर चार ध्रुव हैं, अरु उ न चारों ध्रुवोंके पास ऐसे ऐसे तारे हैं, जो सदा उन चारों ध्रुवोंकेही आस पास चक्र देते हैं. इस्सें यह सिद्ध हूआकि जो शास्त्रका कहनां है सो बाहुल्यतासें अरु किसी अपेक्षा करकें संयुक्त है, अरु किसी जग्गे स्थूल व्यवहार नयके मतसें कथन है, परंतु सूक्ष्म, अधिक न्यूनताकी विवक्षा नहीं करी है, इसी तरें सौ वर्षसें अधिक आयु जो पंचम कालमें क ही है. सो बाहुल्यताकी अपेक्षा तथा आर्यखंम अर्थात् मध्यखंमकी अ पेक्षा है, जे कर किसी पुरुषकी १५०, २००, २५०, इत्यादि वर्षोंकी आयु हो जावे, तो मनमें जिनवचनकी शंका न करणी कि क्या जाने जिनवचन सत्य हैं कि जूठ हैं? ऐसा विकल्प मनमें नहीं करनां, क्यों कि शास्त्रका आशय अतिगंभीर है, अरु ऐसा गीतार्थ कोइ गुरु नहीं है, जो यथार्थ बतला देवे.

इस आयुके कहनेका यह समाधान है, कि भगवान् श्रीमहावीरके निर्वाण पीछें (५७५) वर्षके लग भग जैनमतका आचार्य श्रीआर्यरक्षित सूरि साढे नव पूर्वका पाठक जिनोके पास शक्रइंद्र, निगोद जीवोंका स्व रूप सुनने आया था, तब शक्रइंद्रने प्रथम वृद्धब्राह्मणका रूप करकें श्रीआर्यरक्षित सूरिकों पूछा, कि हे भगवन्! में वृद्ध हो गया हों, जे क र मेरी आयु थोडी होवे, तो मुझे बता दीजीयें, जो मैं अनशन करूं, तब श्रीआर्यरक्षित सूरिजीने दशमे पूर्वके यवका अध्ययनमें उपयोग दे कर देखा, तो तिसकी आयु सौ वर्षसें अधिक जानी, फेर उपयोग दे कर

देखा, तो दोसें वर्षसे अधिक आयु जानी, फेर उपयोग दीया, तो तीन से वर्षसे अधिक आयु जानी, तब आचार्य श्रीआर्यरक्षितसूरिजीने वि चार कीया, जो यह भारत वर्षका मनुष्य नही है ये कथानक, आव श्यकसूत्रकी सामायिकअध्ययनकी उपोद्घात निर्युक्तिमे है, इस कथानकसे असा निकलता है, जो भारत वर्षके मनुष्यकी आयु तीन सौ वर्षकी होवे, तो आश्चर्य नही, क्यो कि श्रीआर्यरक्षितसूरिजीने जो तीन सौ वर्षसे जब अधिक आयु देखी, तब कह्या,ये भारत वर्षका मनुष्य नहीं इसी कहनेसे कथंचित् तीन सौ वर्षकी आयु भारत वर्षकी होवे, तो क्या आश्चर्य है?

तथा कितनेक जीवोके मनमें असीभी शका होवे, तो उसका क्या स माधान है? भरत खम जैनमतवाले कहा तक मानते है? जो कुछ इस कालमे लोकोके देखने वा सुननेमे आता है, कि अमेरिकादि देश वे सर्व जैनलोक भारत वर्ष मानते है, रूस, वा चीनादि देश इन सर्वको भारत वर्ष कहते है अरु अमेरिकादि विलायतादि सर्व मुलकोंके बीचमें जो समुद्र पडा है, सो ऋषभ देव अरु भरत चक्रवर्त्तीके समयमे नहीं था, किंतु जगती बाहिर जो महासमुद्र है, सोइ था, इस कारणसे अर्था त् समुद्रके अदर आ जानेसे असली भरत क्षेत्रका स्वरूप बिगड ग या, कही समुद्र हो गया, और कही द्वीपें बन गये

इस विषे जैनमतका शत्रुंजय महात्म्यनामा जो ग्रथ है, तिसमें लिखा है कि दूसरा सगरनामा चक्रवर्त्ती हूआ है,वो इस समुद्रको भारतव र्षमें जंबू द्वीपके दक्षिणदिशिके विजयत नामक दरवाजेके रस्तेसे ल्याया है, ति सके लानेसें बर्बरादि अनेक हजारो देश तो जलमे डूब कर समुद्रकी भूमिका ब न गये, अरु जो उच्चस्थल थे,वे द्वीप और विलायतादि देशो बन गये,पीछे से असली देशोका नाम नष्ट होनेसे बहुत देशोके नाम कल्पित रखे गये, अरु भरतखम कुछ औरका और बन गया, कितनेक देशोंके चारों ओर स मुद्र फिर गया, अरु कितनेक देशोके उत्तर खमोमें बर्फके पड जानेसे,और समयके बदलनेसे, सर्वथा पानी जम गया, अरु समुद्रके साथ मिल गया, तब तो चारो ओर समुद्रही दीखने लगा है, तिस लिये आना जाना बंद हो गया, अरु हमारे शास्त्रकार तो प्रथम आरेमे तथा ऋषभ देव अरु भरतचक्रवर्त्तीके समयमे जो इस भारत वर्षका हाल था, सोइ सदासें लि

खते चले आये, परंतु जरत क्षेत्रके बिगड तिगडके औरका और बन जानेसें किसीने विस्तार पूर्वक वृत्तांत ठीक ठीक नहीं लिखा; अरु जे कर लिखाजी होवेगा, तोजी जैनमतके उपर बडी बडी विपत्तीयों पडीयों है, उनसें लाखों क्या, बलकि क्रोडों ग्रंथ नष्ट हो गये हैं, इस वास्ते हम ठीक ठीक सर्व वृत्तांत बता नहीं सक्के हैं, परंतु जितनेक जैन मतके ग्रंथ मेरे बांचनेमें आये हैं, उनमेंसूं जो मुझे ठीक पडी है, सो मैं इस ग्रंथमें लिखता हूं.

इस वास्ते सर्वक्षेत्र अदल बदल हो गये हैं, गंगा सिंधु असलस्थानमें वहनेमें रह गइ, क्योंकि अगला प्रवाह तो, समुद्रने रोक लीया, अरु पीछेसें पाणी आनां बंद हो गया, फेर जिस पर्वतसें अधिक नदीकी प्रवृत्ति जइ, वो नदी, उसी पर्वतसें निकलती लोकोनें मान लीनी, इस वास्ते गंगा अरु सिंधुमें क्षुल्लक हेमवंत पर्वतसें जल आनां बंद हो गया, नाममात्र गंगा सिंधु रह गइ, औ नगरीयोंमें बनिता नगरीकी कल्पना पर अयोध्या बनाइ गइ, अरु काबलके परें तक्षिला अर्थात् बाहुबलकी नगरीकी कल्पना करी गइ, इस समयमें वो तक्षिलाजी नहीं रही. उसका नाम गजनी प्रसिद्ध है, क्योंकि जैनीयोंकी श्रद्धा अनुसारें प्रथम आरेकों अरु ऋषभदेव तथा जरत राजाके समयके व्यतीत होनेमें असंख्य वर्ष व्यतीत हो गये हैं, तो फेर नदी, पर्वत, देश, नगरोंके उलट पलट हो जानेमें क्या आश्चर्य है ?

औ समुद्रका देशों उपर फिर जानां, तो तौरेत ग्रंथसेंजी ठीक ठीक सिद्ध होता है, अरु पुराणादि ग्रंथोमेंजी लिखा है, जो कोइ ऐसा समयजी था कि समुद्रमें पाणी नहीं था, पीछेसें आया है, इस वास्ते शत्रुंजय माहात्म्यमें जो लिखा है कि जरत क्षेत्रमें समुद्रका पाणी सगर चक्रवर्ती ल्याया है, सो कहनां ठीक है.

तथा विजयसेन सूरि श्रीतपगच्छका आचार्य, अपने प्रश्नोत्तरोंमें लिखते हैं, कि मागध, वरदाम, अरु प्रजासक नामक तीन जो तीर्थ हैं, सो जगतीके बाहिरले समुद्रमें हैं, इस्सेंजी यही सिद्ध होता है, कि जरतचक्रवर्ती जब षट् खंम साधने, अरु मागधादि तीर्थोंकों साधनेकों गये थे, तब यह समुद्रका पानी रस्तेमें नहीं था, अरु शास्त्रकारोने तो सर्व शास्त्रोंकी

शैली श्रीषरूजदेवके कथानुसार रक्वी है, इस वास्ते चक्रवर्त्यादिकोंका कथन जरतचक्रवर्त्तीके सरीखा कह दीया है,

तथा इस कालमे कितनेक विद्वानोनें जूगोलके हिसाबसे जो कुतब बनाये है, अरु उनके अनुसारे शरद् तथा गरम देशोका विनाग कीया है, यद्यपि उनके देखने सुनने मूजब तथा उनके अनुमानके अनुसारे वर्त्तमान समयमे असाही होवेगा, परतु सदा असाही था, यह कहना ठीक नही क्योकि जूगोलहस्तामलक पुस्तकमे लिखा है, कि रूपदेशकी उत्तरके पासे जहा बरफके सिवाय और कुछजी नही है, तहा गरमीके दिनोमे बर्फके गलनेसें तथा किसी जगे बर्फके करार गिर पडनेसें उसके हेठसे एक किसमके हाथी निकलते है, सोजी सेंकडो हजारो निकलते है, जिनका नाम उस देशवाले मेमाथ कहते है, अब वडा आश्चर्य तो इन मेमाथोके देखनेसे ये आता है, कि ये जानवर गरम मुलकोके रहनेवाले है, अरु यह शरद मुलकमे कहांसे आये? अरु इनके खाने वास्तेजी कुछ नही, इस कालमे जो एकजी हाथी उस मुलकमें जा कर बांधीये, तो थोडेसे कालमें मर जायगा, नही तो ये लाखो मेमाथ इस मुलकमे क्यो कर जाते होयगे? और क्या खाते होयंगे? इसमे यही कहना पडेगा कि किसी समयमे ये मुलक गरम होवेगा, पीछें पवनकी तसीर बदलनेसे शरद मुलक हो गया, इस वृत्तातसें यह सिद्ध होता है, कि जो शरद मुलक है, वे गरम हो सक्ते है, अरु जो गरम मुलक है, वे किसी कालमें शरद हो जाते है, इस वास्ते जूगोलके अनुसारे जो शरदी गरमीकी व्यवस्था कल्पना करनी है, वे हमेशाके वास्ते डुरस्त नही, क्या जाने देशोकी क्या क्या व्यवस्था बदल चूकी है? और क्या क्या बदलेगी? इसका पूरा स्वरूप तो सर्वज्ञ जान सक्ता है

तथा इस पृथ्वीकों जूगोल कहते है अरु यहजी कहते है कि सूर्य नही फिरता, किंतु पृथ्वी, सूर्यके इर्द गिर्द घूमती है, यह बात कुछ इंग्रेजोहीने नहीं निकाली है, किंतु इंग्रेजोसें पहिलेंजी इस बातके माननेवाले जारत वर्षमे थे, क्यो कि जैनमतका शीलगाचार्य जो विक्रमके ७०० वर्षमें हूआ है, वे आचार्य आचारांगसूत्रकी वृत्तिमें लिखते है, कि कितनेक असाजी मानते है, जो जूगोल फिरता है, अरु सू

उनकों कहते हैं, कि हे पुत्र! तूं बडा पुण्यात्मा है, कि जिसने जैनधर्म अं गीकार कीया है, जिस दिनसें तूने जैनधर्म अंगीकार कीया है, उस दिन सें हम नरककुंमसें निकल कर स्वर्गवासी हूए हैं, इस वास्ते तूं धर्ममें दृ ढ रहियो. तद् पीछें श्री हेमचंद्रसूरि, राजा कुमारपालकों बाहिर लाये, पीछें राजाने पूछी कि महाराज! यह क्या तमासा आश्चर्यकारी है? तब श्रीहेम चंद्रसूरि कहते नये कि हे राजा! ये इंद्रजालकी विद्या जिसकों आती होवे, वो कर सक्ता है, क्योंकि इंद्रजाल विद्याके सत्ताईस पीठ, है, जिनमेंसूं सत्त रे पीठ संसारमें प्रचलित हैं, परंतु सत्ताईस पीठ मैं जानता हूं, और कोइ नी नारत वर्षमें नहीं जानता है, अरु जिन गुरुवोने हमकों ये विद्यादी नी थी, उनोने ऐसी आज्ञानी करी है, कि आगेकों तुमनें किसीकों ये विद्या न देनी, क्यों कि इस विद्यासें बडे अनर्थ उत्पन्न हो जायगे, क्योंकि इस कालमें जीव तुछबुद्धिवाले हैं, इस लिये उनकों ये विद्या जरेगी नहीं, इसी वास्ते हमारे आचार्योनें योनिप्रानृत शास्त्र विछेद कर दीया है, उसी योनिप्रानृतके अनुसार यह इंद्रजाल रचा हूआ है, इस योनिप्रा नृतका कथन व्यवहारनाष्यचूर्णीमें लिखा है, कि उस योनिप्रानृ तमें तंत्रविद्या है, जिस्सें सर्प, घोडे, हाथी, वगैरे जिंदे जानवर वस्तु वोंके मिलानेंसें बन जाते हैं, तथा सुवर्ण, मणि, रत्नप्रमुख बन जाते हैं, उन मसालोंमें ऐसी मिलन शक्ति है, कि चाहे सो बना लो? इस वास्ते कोइ आज नवी वस्तु देख कर जैनधर्मसें चलायमान न होनां चाहियें. तत्त्वार्थकी महानाष्यमें सामंतनद्र आचार्यजी लिखते हैं, कि इंद्रजालिया तीर्थंकरकें समान बाह्य सिद्धि सर्व बना सक्ता है, इ स वास्ते कोइ बातका चमत्कार देखकें जिन बचनोमें शंका कदापि न करनी.

तथा कितनेक जैनमत वालोंकों यहनी आश्चर्य है, कि जदा आर्याव र्त्तमें दो प्रहर दिन होता है, तदा अमेरीकामें अर्द्धरात्रि होती है अरु ज दा अमेरीकामें दो प्रहर दिन होता है, तदा आर्यावर्त्तमें अर्द्धरात्रि होती है, कितनेक लोकोनें घडीयोंके हिसाबसें तथा तारकी खबरोंसें इस बात का निश्चय अछी तरेसें करा बतलाते है, इस बातका उत्तर मैं यथार्थ नहीं दे सक्ता हूं, मैरी श्रद्धा ऐसी नहीं है कि पूर्व आचार्योंके अनुसारें विना समाधान कर सकूं? क्योंकि मेरी कल्पनासें कुछ जैनमत सत्य नहीं

हो सक्ता है, जैनमत तो अपणे स्वरूपसेंही सत्य बनेगा, जे कर मेरी क ल्पनाही सत्यका कारण होवे, तब तो किसी पूर्वाचार्योंकी अपेक्षा न रहे गी, तब तो जिसके मनमे जो अर्थ अच्छा लगे, सो अर्थ कर लेवेगा जैसे वर्त्तमानमे किसी पाखंडी मस्करीने ऋग्वेदादि वेदों उपर स्वकपोलकल्पित अर्थ बनाये है, सो हमने वाचभी लीये है, उनोने वेद मंत्रादिकोके उपर जो भाष्य बनाया है,उसमे मंत्रोंके अर्थोमें ऐसा लिखा है कि "अग्निबोट" अर्थात् धूयेकी कलसे चलनेवाले जहाज तथा रेलगाडीके चलनेकी विधि, तथा पृथ्वी गोल है, अरु सूर्यके चारों ओर घूमती है, अरु सूर्य स्थिर है, इत्यादि जो अंग्रेजोने अपनी बुद्धिके बलसे विद्या उत्पन्न करी है, इन स र्वे विद्यायोंका वेदोमेभी कथन है, अपने शिष्योंकों वेदका महत्त्व ज नानेके वास्ते स्वकपोलकल्पित अर्थ बना लीये है. अरु पूर्वे जो म हीधरादि पंडितोने वेदोके उपर दीपिका तथा भाष्य रचे है, उनकी नि दा अर्थात् मूर्खता प्रगट करी है, वे मूर्ख थे, उनको वेदका अर्थ न हीं आता था

प्रश्न –पिछले अर्थ छोड कर जो नवीन अर्थ बनायें गये, इनका क्या कारण है ?

उत्तर –प्रथम तो वेदोके प्राचीन भाष्य और दीपिका माननेसें वेदोंकी सत्यता, अरु ईश्वरोक्तता, तथा प्राचीनता सिद्ध नही होती. इसी वास्ते ईशावास्य उपनिषद् वर्जके सर्व उपनिषदों, और सर्व ब्राह्मण भाग, त था सर्व स्मृति, पुराणादि शास्त्र, भाष्य, दीपिकादि, मानने छोड दीये, उनो ने यह विचार कीया है कि इन सर्व पूर्वोक्त ग्रथोंके माननेसे हमारा मत दूसरें मतवाले खंडित कर देवेगे, क्योंकि ये पूर्वोक्त सर्व ग्रंथ युक्ति प्रमा णसे विकल है, अरु प्राचीनोनें जो अर्थ करे है, उनमे बहुत अर्थ ऐसे है, कि जिनोके सुननेसे श्रोता जनोकोभी लज्जा उत्पन्न होती है, क्योकि महीधरकृत दीपिका जो वेदकी टीका है उसमे मंत्रादिकोके जो अर्थ लिखे है, उनमें लिखा है कि यज्ञपत्नी घोडेका लिंग पकडके अपनी योनिमे प्रक्षेप करे इत्यादि अर्थ है, सो मै आगे लिखुगा इत्यादि अर्थोंके छोडने वास्ते अरु वेदोके खंडन न होने वास्ते स्वकपोलकल्पित भाष्य बना कर मानु अंग्रेजोके चाल चलन, और इंजिलके मतानुसार अर्थ बना

ये गये हैं, परंतु उसकों बुद्धिमान् तो कोइभी मानता नहीं है, अरु जो मानते हैं, वो कुछ जानते नहीं है, क्योंकि जब पूर्वले ऋषि, मुनि, पंमित झूठे हैं, अरु उनके बनाये हूये अर्थ असत्य हैं. तो अबके बनाये हूये कदापि सत्य नहीं हो सकेंगे? जो जडमेंही झूठ है, वे नवीन रचनासें कदापि सत्य न होवेंगे, इस वास्ते अपनी बुद्धिका विचार सत्य माननां, अरु प्राचीन उन वेदोंके माननें वालोंका संप्रदाय अर्थकों झूठा माननां इस्सें अधिक निर्विवेकी और अन्यायशिरोमणि कौन है? क्योंकि जब प्राचीनोंके बनाये अर्थ झूठे ठहरेंगे, तब तिनके बनाये हुये वेदभी झूठेही ठहरेंगे, इस वास्ते जो मतधारी है, यातो उनको अपणे प्राचीनोंके कथन करे हूये अर्थ माननें चाहियें, नहीं तो उस मतको अरु उस मतके शास्त्रोंकों छोड देनां चाहियें. इसी वास्ते मेरी ऐसी श्रद्धा है, कि जो जैन मतमें प्रामाणिक अरु पंचांगीकारक आचार्य लिख गये हैं, उनके अनुसारही हमकों कथन करनां चाहियें, परंतु स्वकपोलकल्पित नहीं. जे कर कोइ स्वकपोलकल्पित मानेगा, वो जैनमती कदापि नहीं बन सकेगा, अरु उसकी कल्पनाभी सर्वथा सत्य नहीं होवेगी? क्योंकि जब सर्व मतोंके पूर्वाचार्य झूठे ठहरेंगे, तब नवी कल्पना करने वाले क्यों कर सच्चे बन बेठेंगे? इस वास्ते पूर्वोक्त प्रश्नका उत्तर पंचांगीके प्रमाणसें नहीं दे सक्ता हूं, क्यों कि १ शास्त्र बहुत विछेद हो गये हैं, तथा २ आर्यरक्षित सूरिके समयमें चारों अनुयोग तोडके पृथक्त्वानुयोग रचा गया है, तथा ३ स्कंधिल आचार्यके समयमें बारह वर्ष काल पडा था, उसमें शास्त्र कंठसें भूल गये थे, फेर सर्व साधुओंका दक्षिण मथुरामें समाज करकें जिस जिस आचार्य, साधुके जिस जिस शास्त्रका जो जो स्थल, कंठ रह गया, सो सो स्थल एकत्र करकें लिखा गया, ४ पीछें देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण प्रभृति आचार्योंनें पत्रोंके उपरि एक क्रोड ग्रंथ लिखा, शेष छोड दीये, ५ प्रभावक चरित्रमें लिखा है, कि सर्व शास्त्रोंकी टीका लिखी थी, वो सर्व विछेद हो गइ, ६ तथा पीछेसें ब्राह्मणोने तथा बौद्धोने ग्रंथोंका नाश किया, ७ तथा मुसलमानोने तो सर्वमतोंके शास्त्र मट्टीमें मिलाय दीये, तिनमैंसें जो रह गये, वे भंडारोंमें गुप्त रहनेसें गल गये, तथा जो अब भंडारोंमें हैं, वे सर्व हमने वांचे नहीं हैं, तो फेर इतने उपद्रव जैन शा

स्त्रोंमे बीतनेसे हम क्योंकर सर्व शंकायोंका समाधान कर सके? इस वा स्ते जिनमतमे शका न करनी चाहिये हमने सर्वमतोके शास्त्र देखे है, परतु जैनमत समान अति उत्तम मत कोइ नही देखा है, इस वास्ते इस मतमें दृढ रहना चाहिये, १ शका अतिचार उसको कहते है, कि जो जि नवचनोंमे शका करे, जैसेकि ए वार्त्ता जिनेश्वर देवकी कही सत्य है, वा नही? यह प्रथम अतिचार है

२ दूसरा आकक्षा अतिचार, सो अन्यमत वालोका अज्ञान कष्ट देख कर तथा किसी पाखमीके पास किसी विद्यामत्रका चमत्कार देख कर तथा पूर्व जन्मके अज्ञान कष्टके फल करके अन्यमत वालोंकों सुखी अ रु धनवान् देख कर मनमे विचारें जो अन्यमत वालोंका धर्म अरु ज्ञान अच्छा है, जिसके प्रजावसे वे धनी, अरु पुत्र आदि परिवार वाले होते है, इस वास्ते मेजी इनहीका धर्म करु, कि जिस कर के मैजी धनी, अरु पुत्रादि परिवार वाला हो जाउगा, यह आकाक्षा अतिचार, उन जीवोको होता है, कि जिनको जिनधर्मका अच्छी तरेसे बोध नही है, क्योकि जैनधर्मवालेजी सर्व दरिद्री अरु पुत्रादि परिवारसे रहित नही है, तैसे ही अन्यमत वालेजी सर्व धनी अरु परिवारवाले नही है, इस वास्ते सर्व अपने अपने पूर्व जन्म जन्मातरके करे हूए पुण्य पापके फल है, क्योंकि जे जीव, मनुष्य जन्ममे सात कुव्यसनी है, अरु कसाइ, वागुरी (बुचड) प्रमुख कितनेक धनी (धनवाले) अरु पुत्रादि परिवारवाले है, अरु कितनेक इस अवस्थासे विपरीत है, इस वास्ते यही सत्य है कि पूर्व ज न्ममे करे हूए सुकृत डुकृतका फल है, प्राय इस जन्मके कृत्यों का फल नहीं है, सर्व मतोवाले राजा हो चुके है, अरु रकजी बहुत है, इस वास्ते अन्यमतकी आकाक्षा न करे, जे कर करे, तो डुसरा अतिचार

३ तीसरा वितिगिच्छा नामक अतिचार है, सो कोइ जीव अपणे पूर्व जन्मके करे हुये पापोके उदयसे डुःख पाता है, तब ऐसा विचार करे, जो मै धर्म करता हू, तिसका फल मुझे कब मिलेगा? अर्थात् मिलेगा कि नहीं? अरु जो धर्म नही करते हे, वो सुखी है, अरु हम तो धर्म करते है, तोजी डुःखी है,इस वास्ते कौन जाने धर्मका फल होवेगा कि नही हो वेगा? तथा साधुके मलिन वस्त्र तथा मलिन शरीर रखते देख कर मनमे

जुगुप्सा करे, कि यह साधु अछे नहीं है, जो मलिन वस्त्र तथा मलिन शरीर रखते हैं, इस वास्ते यह संसारसें क्यों कर तरेंगे ? जे कर उष्ण जलसें स्नान कर लेवे, तो कौनसा महाव्रत भंग हो जाता है ?

उत्तरः–जे कर धर्मका फल न होवे, तो संसारकी विचित्रता कदापि न होवे, इस वास्ते धर्मका फल अवश्यमेव है, तथा जो साधु मलिन वस्त्र रखते हैं, उनका तो यह कारण है कि सुंदर वस्त्र रखनेसें मन शृंगाररसकूं चाहाता है, अरु स्त्रीयोंभी सुंदर वस्त्र वालोंकों देख कर उनसें भोग करनेकी इछा करती हैं, इस वास्ते शील पालनें वाले साधुओंकों शृंगार करनां अछा नहीं, अरु स्नान जो है, सो कामका प्रथमांग है, इस वस्ते साधुओंकों उचित नहीं, अरु कोइ कारण पडवेसें साधु हाथ पगादिकोंकूं धोय लेवे, तो कुछ दूषण नहीं. अरु साधुओंकों आपणा शरीर उपर ममत्वभी नहीं है, अरु शुचिमात्र स्नान तो साधु करते हैं, परंतु शरीरके सुख वास्ते तथा शरीरके चमकाने (दमकानेके) वास्ते नहीं करते हैं, क्योंकि जैनीयोंकी ये श्रद्धा नहीं है, जो जलमें स्नान करनेसें पाप दूर हो जाते हैं, परंतु जलस्नानसें शरीरकी मैल दूर हो जाती है, शरीरकी तप्त मिट जाती है, आलस्य दूर हो जाता है, परंतु पाप दूर नहीं होते हैं, जे कर जलस्नानसें पाप मिट जावें, तो अनायास करकें सर्वकी मोक्ष हो जावेगी? ऐसा कौन है, जो जलसें स्नान नहीं करता है ? अरु जो साधुकों मैला समझनां, यही बडी मूर्खता है, क्योंकि शरीरके मैले होनेसें आत्मा मैला नहीं होता है, मैला तो पाप करनेसें होता है, अरु जगत् व्यवहारमें स्त्रीसें संभोग करनेसें और किसी मलिन वस्तुका स्पर्श करनेसें, मैलापनां मानते हैं, अरु साधु तो इन सर्व वस्तुओंका त्यागी है, इस वास्ते मैला नहीं, बलके साधुओंकों धन्यवाद देनां चाहियें. जो तप्त पडती है, लो चलती है, पसीना वहता है, तोभी साधु नंगे पांव, अरु नंगा शिर करकें चलते हैं, औ रातकों ढके हूये मकानमें सोते हैं, पंखा करते नहीं तथा कोमल शय्या (पल्यंकादि) पर सोते नहीं औ रात्रिको जल पीते नहीं, दिनमेंभी उष्ण जल पीते हैं, यह तो बडा भारी तप है, परंतु जो कोइ साधु तो बन रहे हैं, अरु जब गरमी लगती है, तब महिषकी तरे जलमें जा पडते हैं, ऐसे सुखशीलिये तो तर

जायंगे कि जिनोके किसी बातका नियम नहीं, हाथी, घोडे, रेल प्रमुख की असवारी करनी, तथा जो फल है, सो सर्व नक्षण करने, धन रख णा, मकान बाधणे, खेती करणी, गौ, नैस, हाथी, घोडे, रथ, शस्त्र रख ने, छल बलसे लोको पासों धन ले लेनां, स्त्रीयोसे विषय सेवन करना, अच्छा खाना, मासनक्षण करना, मदिरा पीना, नागके रगडे, चरसकी चिलमे उडाना, पगोंको तथा शरीरको वेश्याकी तरें मांजना, चित्तमें वडा अनिमान रखना, दंन पेले, गस्त करने जाना, इत्यादि अनेक साधुओंके अनुचित काम करने, फेर श्रीश्री स्वामीजी महाराज बन बैठना, हम म हंत है, हम गद्दीधर है, हम नट्टारक है, हम श्रीपूज्य है, हम जगत्का उद्धार करते हे, हम बडे अद्वैत ब्रह्मके वेत्ता है, हम शुद्ध ईश्वरकी उपा सना बताते है, मूर्त्तिपूजन पाखमका नाश करते है

अब नव्य जीवोको विचार करना चहिये कि यह पूर्वोक्त कुगुरु क्या जलके स्नान करनेसे संसारसमुद्रसे तर जायंगे ? अरु जो जीवहिंसा, फू ठ, चोरी, स्त्री, अरु परीग्रह, इन पाचोंके त्यागी, शरीरमे ममत्व रहित, प्र तिबंध रहित, काम क्रोधके त्यागी, महातपस्वी, मधुकर वृत्तिसे निक्षा लेने वाले इत्यादि अनेक गुण सुशोनित है, वे क्या जलमे स्नान न कर नेसे पातकी हो जावेगे ? कदापि न होवेंगे इस वास्ते साधुको देख के जु गुप्सा न करनी, जे कर करे, तो तीसरा अतिचार लागे ॥

चौथा मिथ्यादृष्टिकी प्रशसारूप अतिचार है, मिथ्यादृष्टि उसकों कहते है, जो जिनप्रणीत आज्ञासे बाहिर है, क्यो कि सर्वज्ञके कहे हूए वचन कों तो वो मानता नही, अरु असर्वज्ञोके कहे हूए शास्त्रोंकों सच्चा मान ता है, उन शास्त्रोंमे जो अयोग्य बातें कही है, उनके छिपाने वास्ते स्वकपोलकल्पित नाष्य, टीका, अर्थ, बना करकें मूर्खलोकोकों बहका ते गल्ल बजाते फिरते है, औ जिनके नियमधर्म कोइ नहीं, कृपण पशु योंको मार जानते है, धूर्त्तपणेंते सच्चा बन कर मूर्खोंको मिथ्यात्व जा लमे फसाते है, ऐसे मिथ्यादृष्टि होते है, उनकी प्रशसा करनी, तथा जो अज्ञानी जिनाज्ञासे बाहिर है, उनको कहना कि ये बडे तपस्वी है ? महा पुरुष है ? बडे पमित है ? इनके बराबर कौन हे ? इनोनें धर्मकी वृद्धि वास्ते अवतार लीया है ? तथा मिथ्यादृष्टि कोइ व्रत यज्ञादि करे, तब ति

सकी प्रशंसा करे कि तुम बडा अच्छा काम करते हो, तुमारा जन्म सफल है, इत्यादि प्रशंसा करे, सो चौथा अतिचार है.

५ पांचमा मिथ्यादृष्टिकी परिचयकरनी सो अतिचार है, सो मिथ्या दृष्टिके साथ बहुत मेल (मिलाप) रक्खे, एक जगें भोजन संवास करे, इत्यादि है, क्योंकि बहुत मिथ्यादृष्टिके साथ मेल रखनेसें मिथ्यादृष्टिकी वासना लग जानेंसें धर्मसें भ्रष्ट हो जाता है, इस वास्ते मिथ्यादृष्टिका बहुत परिचय करनां ठीक नहीं. यह पांचमा अतिचार है.

अब जब गृहस्थकों सम्यक्त्व देते हैं, तब उसकों गुरु छै आगार बत लाते हैं. जे कर ये छै कारणोसें तुमकों कोइ अनुचित कामभी करणां प डे, तो तुमकों ये छै आगार रखाये जाते हैं, जिनसें तुमारा सम्यक्त्व क लंकित न होवेगा, सो छै आगार कहते हैं.

१ प्रथम "रायाभिउगेणं" सो राजा उस नगरका स्वामी जे कर वो राजा कोइ अनुचित काम जोरावरीसें करावे, तो सम्यक्त्वमें दूषण नहीं.

२ दूसरा "गणाभिउगेणं" गणनाम ज्ञाति तथा पंचायत, वे कहे, जो यह काम तुम जरूर करो, नहीं तो ज्ञाति, तथा पंचायत तुमकों बडा दंड देवेंगी, उस वखत जे कर वो काम करनां पडे, तो सम्यक्त्वमें अतिचार नहीं.

३ तीसरा "बलाभिउगेणं" सो बलवंत चोर म्लेछादि तिनोंके वश पड नेंतें वो कोइ अपनी जोरावरीसें अनुचित काम करवावें, तोभी दूषण नहीं.

४ चउथा "देवाभिउगेणं" सो कोइ दुष्ट देवता क्षेत्रपालादि व्यंतर श रीरमें आवेश करकें अनुचित काम करावे, तो भंग नहीं. तथा कोइ देव तो मरणांत दुःख देवे, तब मनमें धैर्य न रहे, तब मरणांत कष्ठ जानके कोइ विरुद्ध काम करनां पडे, तो सम्यक्त्वमें अतिचारभंग नहीं.

५ पांचमा "गुरुनिग्गहेणं" गुरु सो माता, पितादि उनके आग्रहसें कु छ अनुचित करणां पडे, तथा गुरु कहियें, धर्माचार्यादि, तथा जिनमंदिर, सो कोइ अनार्य गुरुकों संकट देता होवे, तथा जिनमंदिरकों तोडता हो वे, जिनप्रतिमाकों खंडन करता होवे, सो गुरु निग्रह है. तिनोंकी रक्षा वास्ते कोइ अनुचित काम करणां पडे, तो सम्यक्त्वमें दूषण नहीं.

६ छठा "वित्तिकंतारेणं" वृत्ति जे दुष्कालादि आपदा आ पडे, तब आजीविकाके वास्ते किसी मिथ्यादृष्टिके अनुसार चलनां पडे, तथा आ

जीविकाकें वास्ते कोइ विरुद्ध आचरण करना पडे, तो दूषण नही एक तो यह छे वस्तुके आगारोंकों छे हमी कहते है तथा चार आगार और नी है, सो कहते है

१ "अन्नथ्यणाज्ञोगेण" अस्यार्थ. कोइ कार्य अजाण पणे उपयोग दीया विना औरका और हो जावे, अरु जब याद आ जावे, तब वो कार्य फेर न करे, यह प्रथम आगार

२ "सहस्सागारेण" सो अकस्मात् कोइ काम करे, अपणे मनमे जानता है, यह काम मैने नही करणा, परतु योगोकी चपलतासें तथा नित्य बहुत अभ्याससेती जानता हूआजी विरुद्ध कार्य हो जावे, तो सम्यक्त्वमे जग नही यह दूसरा आगार

३ "महत्तरागारेण" सो कोइ मोटा लाज होता है, परतु सम्यक्त्वमे दूपण लगता है तथा कोइ मोटा ज्ञानीकी आज्ञासे कमवेशी करना पडे, तो यहजी आगार है यह तीसरा आगार

४ चौथा "सवसमाहिवत्तिआगारेण" सो सर्व समाधिव्यत्ययसे कोइ वडा सन्निपातादि रोगोके विकयसेती बावरा हो जावे, तथा अतिवृद्ध हो जानेसें स्मृतिजंग हो जावे, तथा रोगादिक आयें मनमे आर्त्तध्यान हो जानेसे, तथा सर्पादिके मक मारणेसे, इत्यादि असमाधिमे यह आगार है इस्से सम्यक्त्व तथा व्रत जग नही होता है, परतु किसी मूर्खके कहे सुनेंसे आर्त्तध्यानमे प्राण त्यागने योग्य नही, कितनेक जिनमतके अनभिज्ञोका यह जी कहना है, कि चाहो कुछ हो जावे, तोजी जो नियम लीया है, उसको कजी तोडना न चाहिये, परतु यह कहना सर्वथा ठीक नहीं क्यो कि जब पहिलाहि आगार रखे गये, तो फेर व्रतजग क्यों कर हूआ ? अरु जो आर्त्तध्यानमे मरजाते है, अरु आगार नही रखते है, वे जिनमार्गकी शैलीके अजान है, इस वास्ते छे हमी, अरु चार आगार, सर्व वारोही व्रतोमें जाननें, अरु साधुके सर्वप्रत्याख्यानोमे अनशन पर्यंत यही चार आगार जानने ॥ इतिश्री तपगच्छीये गणिश्रीमणिविजय तच्छिष्य मुनिश्री बुद्धिविजय तच्छिष्य मुनि आत्माराम अनदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे सम्यग्दर्शननिर्णयनामा सप्तमपरिच्छेद सपूर्ण ॥ ७ ॥

॥ अथ अष्टम परिच्छेद प्रारंभः ॥

इस परिच्छेदमें चारित्रका स्वरूप लिखते हैं. चारित्र धर्मके दो भेद हैं. एक सर्वचारित्र, एक देशचारित्र, उसमें सर्वचारित्र धर्म तो साधुमें होता है, तिसका स्वरूप गुरुतत्त्व परिच्छेदमें लिख आये हैं. तहांसें जान लेनां अरु देश चारित्रके बारह भेद हैं, सो गृहस्थका धर्म है, सो बारह व्रतोंका किंचित् स्वरूप लिखते हैं. तिनमें प्रथम स्थूलप्राणातिपात व्रतका स्वरूप लिखते है.

१ प्रथम प्राणातिपातविरमणव्रतके दो भेद हैं. एक द्रव्यप्राणातिपात, दूसरा भावप्राणातिपात व्रत, तिनमें द्रव्य पाणातिपात व्रत ऐसें है, कि पर जीवोंकों अपणी आत्मा समान जान करकें तिनके दश द्रव्यप्राणोंकी रक्षा करे, सो द्रव्यप्राणातिपात विरमणव्रत कहियें. ये व्यवहार दयारूप है, तथा दूसरा भावप्राणातिपात, सो अपणा जीव कर्मके वश पडा हूआ दुःख पाता है, अपणे जे भाव, प्राण, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादिक, तिनका मिथ्यात्व कषायादिक अशुद्ध प्रवर्त्तनसें प्रतिक्षण घात हो रही है, सो अपणे जीवकों कर्मशत्रुसें छुडाने वास्ते उपाय करणां, सो उपाय यह है, क आत्मरमणता करे, परभाव रमणता त्यागे, शुद्धोपयोगमें प्रवर्त्ते, कर्मके उदयमें अव्यापक रहे, एक स्वभावमग्नता, यही समस्त कर्मशत्रुके उच्छेद करनेंकों अमोघ शस्त्र हैं. एतावता सकल परभाव इष्टता दूर करी, स्वरूप सन्मुख उपयोग रखे, तिसका नाम भावप्राणातिपात विरमणव्रत कहियें, इसीका नाम भाव दयाहै. इहां स्थूल नाम मोटा दृष्टिगोचर हाले, चाले, ऐसा जो त्रस जीव तिसकों संकल्प करकें न हणूंगा.

इहां हिंसा चार प्रकारकी है. एक आकुट्टी, सो निषेध वस्तुकों उत्साहसें करे, जैसें सपूर्ण फलका भडथा करनां, श्रावककों निषेध है, अरु जिसने जितने फल खानेमें रखे हैं, उन फलोंमेंसूंभी किसी फलका भडथा नहीं करनां, अरु जो मनमें उत्साह धरके भडथा करे, तो आकुट्टी हिंसा होवे. दूसरी दर्पहिंसा, सो चित्तके उछरंगसें (उन्मत्तपणेसें) मनमें गर्व धरकें दौड करे, जैसें गाडी घोडा प्रमुख दोडते हैं, यह आकुट्टी द

र्पहिंसा है. तीसरी प्रमादहिंसा, सो आकुट्टी अर्थात् जानके काम जोगमें तीव्र अभिलाषासे कामका जोस चढाने वास्ते त्रस जीवकी हिंसा करे, किसी जीवको मारके गोली माजुम प्रमुख बना करके खावे, सो आकुट्टी प्रमादहिंसा है चौथी कल्पहिंसा, सो अपणा घरका काम काज, रधण, पीसणादि करते त्रस जीवकी हिंसा हो जावे, सो प्रमादहिंसा है इन चारो हिंसायोमे प्रथम हिंसा तो बिलकुल नही करणी, तिस वास्ते यहा सकल्प करके आकुट्टी, तथा दर्प करके त्रस जीव हणनेका त्याग करे, जैसे यह कीडी जाती है, इसको मै मारु? असे सकल्प करके हणे,हणा वे, तिसको आकुट्टीसंकल्प कहते है. असे सकल्प कर के निरपराधी जीवोंको विना कारणके न हणुं न हणाउ, अरु सासारिक आरंभ रधनादि करते, तथा पुत्रादिकके शरीरमें कीडे आदिक जीव उत्पन्न होवे, तदा औषधादि करते यत्नसे करे तथा घोडा, बलद, प्रमुखकों चाबकादि मारणा पडे उसका आगार रखे, तथा पेटमे कृमी, गंडोला, तथा पगमे नहरवा, अर्थात् वाला, तथा दरस, चम, जू, प्रमुख अपणे शरीरमे उपजे, तथा मित्रादिक स्वजनादिकके शरीरमे उपजे, तिसके उपचार करणेकी जयणा रखे, क्योंकि साधुको तो त्रस, अरु स्थावर, सूक्ष्म, अरु बादर, सर्व जीवोंकी हिंसा नवकोटी विशुद्ध प्रमादके योगोंसे सर्व हिंसाका त्याग है, इस वास्ते साधुको तो वीस विश्वा दया है, अरु गृहस्थसे तो सवा विश्वा दया पल सक्ती है, तिसका स्वरूप लिखते है

॥ गाथा छंद ॥ जीवा सुहुमा थूला, सकप्पा आरंभा भवे दुविहा ॥ सवराह निरवराहा, साविस्का चेव निरविस्का ॥ १ ॥ अर्थ —जगत्मे जीव दो प्रकारके है एक थावर, दूसरा त्रस, तिनमे थावरोके दो भेद है एक सूक्ष्म, दूसरा बादर, तिनोमे सूक्ष्मजीवोकी तो हिंसा होतीही नही है, क्योकी अति सूक्ष्म जीवोके शरीरको बाह्य शस्त्रका घाव नही लगता है, परंतु इहा तो सूक्ष्म शब्द, थावर जीव, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, पवन, वनस्पतिरूप जो बादर पाच थावर है, तिनका वाचक है, अरु स्थूलजीव सो द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रिय, पचिंद्रिय, जानना, इन दोनो भेदोमें सर्व जीव आ गये, तिन सर्वकी त्रिकरणशुद्धसे साधु, रक्षा करता है, तिस वास्ते साधुके वीस विश्वा दया है, अरु श्रावकसे तो पांच थावरकी दया पलती

नहीं है, सचित्त आहारादि करणसें अवश्य हिंसा होती है. इस वास्ते दश विश्वा दया दूर हो गई, शेष दश विश्वा रह गइ, एतावता एक त्रस जीवकी दया रहे, उस त्रस जीवकेजी दो जेद हैं, एक संकल्पसें हननां, दूसरा आरंजसें हननां, तिनमें आरंज हिंसाका श्रावककों त्याग नहीं है, किंतु संकल्प हिंसाका त्याग है, अरु आरंज हिंसामें तो यत्न है, परंतु त्याग नहीं है, क्योंकी आरंज हिंसा तो श्रावकसें होती है, इस वास्ते दश विश्वामेंसूं पांच विश्वा फेर जाता रह्या, एतावता संकल्प करकें त्रस जीवकी हिंसाका त्याग है, फेर इसकेजी दो जेद हैं, एक सापराधी है, दूसरा निरपराधी है, तिनमें जो निरपराधी जीव हैं, उसकों नहीं हननां, अरु सापराधी जीवकूं हननेकी जयणा है, जिस वास्ते सापराधी जीवकी दया सदा सर्वथा श्रावकसें नहीं पलती है, क्योंकि घरमेंसें चोर चोरी करकें वस्तु लीये जाता है, सो बिना मारे कूटे छोडता नहिं, तथा श्रावककी स्त्रीसें कोइ अन्य पुरुष अनाचार सेवता देखनेमें आवे, तिसकों मारणां पडे, तथा कोइ श्रावक, राजा है, तथा राजाका आदेशसेंती युद्ध करनेकों जावे, तब प्रथम तो श्रावक शस्त्र चलावे नहीं, परंतु जब शत्रु शस्त्र चलावे मारणेकों आवे, तब तिसकों मारणां पडे, तथा सिंहादि जनावर खानेकों आवे, तब उसकों मारणां पडे, तब संकल्पसेंजी हिंसाका त्याग नहीं. इस वास्ते पांच विश्वामेंसूंजी अर्द्ध जाते रहे, पीछे अढाइ विश्वा दया रह गइ, मात्र निरपराधी त्रस जीव दृष्टिगोचर आवे, तिसकों न मारुं ? यह नियम रहा, इसकेजी दो जेद हैं. एक सापेक्ष, दूसरा निरपेक्ष, इनमेंजी सापेक्ष निरपराधी जीवकी श्रावकसें दया नहीं पलती है, क्योंकि श्रावक जब आप घोडा, घोडी, बैल, रथ, गाडी प्रमुखकी अस्वारी करकें घोडादिककों हांकता है, तब घोडे आदिककों चाबकादि मारता है, यहां घोडे तथा बैलादिकोंनें कुछ इसका अपराध नहीं करा है, उसकी पीठ ऊपर तो चढ रहा है,अरु यह जानता नहीं कि इस बिचारे जीवकी चलनेकी शक्ति है, कि नहीं है ? जब वे जीव हलवे चलते हैं, तथा नहीं चलते हैं, तब अज्ञानके उदयसें उनकों गालीयां देता है, मारताजी है, यह निरपराधीकोंजी दुःख देता है, तथा अपणे शरीरमें, तथा आपणा पुत्र, पुत्री, न्याती, गोतीके मस्तकमें तथा कर्णादि अवयवमें तथा अपणे मुखके दांतमें कीडा पडे, ति

नोंके दूर करणे वास्ते कीडायोंकी जगामे औषधि लगानी पडती है, अरु इन जीवोने श्रावकका कुछ अपराधभी नहीं करा है, क्योंकि वो बिचारे अपने कर्मोंके वशसे ऐसी योनिमे उत्पन्न हूयें है, कुछ श्रावकका बूरा करनेकी भावनासे उत्पन्न नही हूवे है, तो उनकी हिंसाभी श्रावकसें त्यागी नही जाती है, इस वास्ते फेर अर्द्ध जाता रहा शेष सवा विश्वाकी दया रह गइ, यह सवा विश्वा दयाभी शुद्ध श्रावक होवे, सो पाल सक्ता है, एतावता सकल्पसें निरपराध त्रस जीवोंको कारण विना हणु नहीं, यह प्रतिज्ञा जहा लगि अपणी शक्ति रहे, तहा लगि पाले, निर्ध्वंसपणा न करे, सदा मनमे यह भावना रक्खे, कि मत मेरेसे कोई जीव मर जाय ?

तथा घरमे आरंभ करतेभी यत्न करे, तथा लकडी जलाने वास्ते लेवे, तब सडी हूई न लेवे, परतु आगेको जिसमे जीव न पडे, ऐसी पक्की, सूकी लकडी लेवे, और रसोईकी वखत लकडीको झटका कर जीव रहित करके जलावे, तथा घी, तेल, मीठा प्रमुख रस भरी वस्तुके वासणका मुख बांध कर यत्नसे राखे, उघाडा न रक्खे, तथा चूलेके उपर अरु पाणीके स्थान उपर चंद्रवा अर्थात् छत, उपर कपडा ताणे, तथा खानेको जो अन्न ल्यावे, सो भीजा हूआ न ल्यावे, शुद्ध नवा अन्न खानेको ल्यावे, कदापि एक वर्षके उपरांतका अन्न ल्यावे, तो जिसमे जीव न पडे होवे,सो ल्यावे, तथा पाणीके छानने वास्ते बहुत गाढा दृढ वस्त्र रक्खे,एक प्रहर पीछे पाणीकों फेर छान लेवे, जो जीव निकले, सो जीव जिस कूवेका पाणी होवे, उसीमे झाल देवे, तथा वर्षा ऋतुमे बहुत जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है, तिस वास्ते गाडी, रथकी असवारी न करे, क्योकि जहा चक्र फिरता है, तहा असख्य जीवोका विध्वस होता है, हरिकाय, बहुबीजा फल, त्रस संयुक्त फल, न खावे, तथा खाटमे माकड प्रमुख जीव पड जाते है, इस वास्ते धूपमे न रक्खे, दूसरी खाट बदल लेवे, तथा सड्या हूवा अन्न धूपमे न रक्खे, जूठा पाणी, अन्नके ससर्गवाला मोरीमे न गेरे, क्योकि मोरीमें बहुत जीव उत्पन्न हो जाते है, अरु मोरीके सड जानेसे घरमे बिमारी हो जाती है, तथा चैत्रवदि एकमसे ले कर पत्तोवाला शाक, आठ मास तक न खावे, क्योकि पत्रशाकमे बहूत त्रस जीव उत्पन्न हो जाते है, एक तो त्रस जीवोकी हिंसा होती है, अरु दूसरा उन त्रस जी

वोंके खानेसें अनेक रोग (बिमारीयां) उत्पन्न हो जातीयां हैं, अरु शीत कालमें एक मास तथा उष्णकालमें बीस दिन, तथा वर्षा ऋतुमें पंदरह दिनके उपरांतकी बनी हुइ मिगई (पक्वान्न) न खावे, क्योंकि उसमें त्रस स्थावर जीव उत्पन्न होते हैं. अरु खानेवालेकों रोगोत्पत्तिभी हो जाती है, तथा वासी अन्न, रोटी प्रमुख न खावे, क्योंकि इनमें जीवोत्पत्ति होती है. अरु रोगभी हो जाता है, बुद्धि मंद हो जाती है, तथा घरमें सावरणी अर्थात् बुहारी, कोमल शण प्रमुखकी रखे, जिस्सें जीव न मरे, तथा स्नान, बहुत जलसें न करे, अरु रेतली भूमिकामें स्नान करे, तथा मोटी परातमें बैठकें स्नान करे, अरु स्नानका पाणी मैदानमें थोडा थोडा करकें गेर देवे, मोरी उपर बैठके स्नान न करे, तथा जहां पर्य्यंत थोडे पापवाला व्यापार मिले, तहां लग महापापकारी व्यापार नौकरी आदिक न करे, तथा किसीका हक्क तोडे नहीं, घरमें जूठे अन्नका पाणी दो घडी उपरांत न रखे, क्योंकि उसमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं, तथा जो वस्तु उठावे, तथा रखे, तब पहिलां उस जगाकों नेत्रोंसें देख लेवे, पूंज लेवे, पीछेसें वस्तु रखे, मोटी मोरीमें जल गेरे नहीं, तथा दीवा बत्ती जलावे, तो फानसादि यत्नसें जीवरक्षा करे, तथा जिस पात्रसें पाणी पीवे, वो पात्र, फेर जलमें जूठा न डबोवे, क्योंकि मुखकी लालां लगनेसें जीव उत्पन्न होते हैं, अरु बहुतोंकी जूठ खाने पीनेसें बुद्धि संक्रमण हो जाती है, अरु केइक रोग ऐसें हैं कि जिस रोगीका जूठा खावे, पीवे, उस रोगीका रोग, खाने पीनेवालेकों लग जाता है, सो रोग यह है कि कुष्ट, क्षय, रेजस, शीतला वगरे. इस वास्ते वस्तु जूठी न करनी, अरु बहुतोंके साथ एकठा खावे नहीं, अरु मटकेसें पाणी काढने वास्ते डंडीदार काठका चट्टू रखे. इत्यादि शुद्ध व्यवहारमें प्रवर्त्ते, तो श्रावकके दया,सवा विश्वा होवे, इसी रीतीसें प्रथम व्रत श्रावकके शुद्ध हैं, इस व्रतके पांच अतिचार हैं, अर्थात् पांच कलंक हैं,तिनकों वर्जे,सो लिखते हैं.

१ प्रथम वधअतिचार. सो क्रोधके उदयसें, अरु बलके अभिमानसें, निर्दय हो कर गाय,घोडा,प्रमुखकों कूटे,मारके चलावे,सो प्रथम अतिचार.

२ दूसरा बंधअतिचार. सो गाय, बलद, वछडा प्रमुख जीवोंकों कठिन जबरा बंधनसें बांधे, वो जीव कठिन बंधनसें अति दुःख पाते हैं,

अरु कदापि अग्निका भय हूआ तो जलदि टूट नही सकते है, तब मर भी जाते है, इस वास्ते कठिन बधनभी अतिचार है, इस हेतुसे जनावर को ढीले बधनसे बाधना चाहियें अरु कोइ गुनेगार मनुष्य होवे, उस कोभी निर्दय हो कर गाढा वंध न बांधनां चाहिये, यह दूसरा अतिचार है

३ तीसरा छविछेद अतिचार है सो बैल प्रमुखका कान, नाक, छिदा वे, नथ गेरे, खस्सी करे, यह तीसरा अतिचार है

४ चउथा अतिभारारोपण अतिचार है, सो बैल प्रमुखके उपर जितना भार लादनेकी रीती है, तिस्से अधिक भार लादे, तब अतिभारा रोपण अतिचार होता है, श्रावकको तो सदा जिस बैल, रासभ, गाडी प्रमुखमें भार लादते होवे, उस्मेभी पाच सेर, दश सेर, भार कम लादना चाहिये, तो व्रत शुद्ध रहे तिसमेभी जे कर कोइ जानवरकी चल नेकी शक्ति कम होवे, तब विवेकी होवे, सो तिस भारकोंभी थोडा कर देवें, अरु जानवर दुर्बल होवे, तो तिसकी घास दाणेकी खवर लेवे, पर तु मनमे अैसा विचार न करे कि, सर्व लोक जितना भार लादते है, तिन के बराबर मैभी लादता हू, यह तो व्यवहार शुद्ध है अैसा न विचारे, अधिक बोझ होवे, तो और भाडा कर लेवे, श्रावकोका यह व्यवहार है

५ पाचमा अतिचार भात पाणीका व्यवछेद करना, सो जो बलद घोडेके खाने योग्य होवे, सो बद कर देवे, अथवा उसमेंसूं कछुक काढ लेवे, अरु खानेका समय लंघा कर पीछें खानेको देवे, तो अतिचार लगे. तथा किसीकी आजीविका नौकरी बंद करे, वोभी इसी अतिचारमे है श्रावक तो दासी, दास, कुटुव, चौपाये, बैलादि, इन सर्वके खाने पीनेकी खबर ले के पीछे आप भोजन करे अरु उपलक्षणसे हिंसाकारी मत्र, तंत्रादि किसीको करे, वेभी अतिचार जानने. यह पाच अतिचार, श्रावक जान तो लेवे, परतु करे नही यहा बारह व्रतोंके सर्व अतिचार भग होने के सभवासभवकी विशेष चर्चा देखनी होवे, तव धर्मरत्न प्रकरणकी टीका श्रीदेवेंद्रसूरिकृत है, सो देख लेनी, इहा तो नि केवल अतिचारही मै लिखू गा ॥ इति श्रावक प्रथम व्रत सपूर्ण ॥

अथ दूसरा स्थूलमृषावाद विरमणव्रतका स्वरूप लिखते है स्थूल नाम है, मोटेका उस मोटे झूठका विरमण (त्याग) करना, क्योंकि झूठ

बोलनेसें जगत्में उसकी अप्रतीति हो जाती हैं, अपयश होता है, धर्मकी निंदा होती है, तथा अपणे मतलब वास्ते जो कम वेश करनां इसका जो त्याग, सो मृषावादविरमणव्रत कहते हैं. तिस मृषावादके दो भेद हैं, एक द्रव्यमृषावाद, दूसरा भावमृषावाद, तिनमें जो जान कर तथा अजान पणेसें कूठ बोले, सो द्रव्यमृषावाद है, तथा सर्व परभाव वस्तुकों अर्थात् पुजलादि जड वस्तुकों आत्मत्व बुद्धि करकें अपणा कहे, तथा राग, द्वेष, कृष्णादि लेश्यासें आगमविरुद्ध बोले, शास्त्रका सच्चा अर्थ कुयुक्तिसें नष्ट करे, उत्सूत्र बोले, उसकों भावमृषावाद कहते हैं.

यह व्रत सर्वव्रतोमें मोटा है, इसके पालनेमें बहुत शुद्ध उपयोग अरु हुस्यारी चाहियें, क्यों कि प्रथमव्रतमें तो जीव मात्रके जाननेसें दया पल सक्ती है. अरु दूसरोंकी वस्तुकों बिना दीये न लेनेसें अदत्तविरमण तीसरा व्रत पल जाता है, तथा स्त्री मात्रका संग त्यागनेसें चौथा व्रत पलता है, तथा नवविध परिग्रहके त्यागनेसें परिग्रहव्रतभी पलजाता है, इसी तरें एकेक द्रव्यके जाननेसें यह चारो व्रत पाले जाते हैं, अरु मृषावादविरमणव्रत तो जहां लगि षट्द्रव्यकी गुणपर्यायसें तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अच्छी तरेंसें पिछाण न होवे, सम्मति प्रमुख द्रव्यानुयोगके शास्त्र न पढे, बहुत निपुन ज्ञानवान् न होवे, तहां तलक पालनां कठिन है, क्योंकि एक पर्यायमात्रभी विरुद्ध भाषण करनेसें यह व्रत भंग हो जाता है, इसी वास्तेही साधुओंकों बहुत बोलणां शास्त्रमें निषेध करा है, अरु जे पूर्वोक्त चारों महाव्रतोमेंसूं एक महाव्रत जेकर भंग हो जावे, तब तो चारित्र भंग होवे, अरु नहींभी भंग होवे, क्योंकि जे कर एकही कुशील सेवे, तो सर्वथा चारित्र भंग होवे,शेष व्रतो खंडनसें देशभंग होवे, परंतु सर्वथा भंग नहीं होवे, यह व्यवहार भाष्यमें कहा है. परंतु उसका ज्ञान, दर्शन, भंग नहीं होवे, अरु जब मृषावादविरमणव्रत भंग होवे, तब तो ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, यह तीनोही जडामूलसें जाते रहते हैं. अरु मर करकें दुर्गतिमें जाता है, अनंत संसारी दुर्लभ बोधी हो जाता है, इस वास्ते जे कर यह व्रत पालनां होवे, तो षट्द्रव्यके गुण पर्याय जाननेमें अति उद्यम करे, जे कर बुद्धिकी मंदता होवे, तब गीतार्थके कहने प्रमाण श्रद्धा प्ररूपणा करे, क्योंकि द्रव्यमृषावाद

के त्यागी जीव तो षट् दर्शनमेंनी हो सक्ते है, परतु नावमृषावादका त्यागी तो एक श्रीजिनेंद्रदेवके मतमेही मिलेगा, जो जीव श्रद्धारुचि शुद्ध धारेगा, सोइ होवेगा अब इस मृषावादके पांच मोटे नेद है; सो श्रावककों अवश्य वर्जने चाहियें, सो कहते है

१ प्रथम कन्यालीकफूव, सो अपणे मिलापीकी कन्या है, उसकी सगाइ होने लगी होवे, तव कन्याके लेने वाले पूछे कि यह कन्या कैसी है ? तव वो मिलापीकी प्रीतिसे उस कन्यामे जो दूषण होवे, सो छिपावें, गुण न होवे, तोनी अधिक गुणवाली कह देवे, कि यह कन्या निर्दोष है, ऐसी कुलवान्, लक्षणवान्, साक्षात् देवागना समान तुमको मिलनी मुशकिल है, ऐसा कह देवे, अरु जे कर मिलापीके साथ द्वेष होवे, तदा वो कन्या जो निर्दोष लक्षणवती होवे, तोनी कहे कि इस कन्यामे अछे लक्षण नहीं है, विडालनेत्री है, इसके साथ जो संबंध करेगा, वो पश्चात्ताप करेगा, ऐसे अणहोये दूषण बोल देवे, यह कन्यालीक फूव है प्रथम तो व्रतधारी श्रावक किसीकी सगाइ कगडेमे पडे नहीं, अरु जे कर आपणा सबंधी मित्रादिक होवे वो पूछे, तव यथार्थ कहे, कि नाइ! तुम अपणा निश्चय कर लो, क्योंकि जन्मपर्यंतका संबंध है, ऐसे कहे, परतु फूव न बोले यह कन्यालीकमे उपलक्षणसेती सर्व दो पगवालेका फूव न बोले

२ दूसरा गवालीक फूव सो सर्व चौपद जो हाथी, घोडा, बलद, गाय, नैंस, प्रमुख सबंधी फूव न बोले.

३ तीसरा नूम्यालीक फूव सो दूसरेकी धरतीको अपनी कहे, तथा औरकी नूमिको औरकी कहे, तथा घर, हवेली, वाडी, वाग, (वगीचा) वृक्षादिक, सबंधी तथा सर्व परीग्रह सबंधीनी फूव न बोले

४ चौथा थापणमोसाका फूव है कोइ पुरुष श्रावकको प्रतीत वाला जान कर, उसके पास विना साक्षी तथा लिखत करे विना कोइ वस्तु रख गया है, फिर वो मागने आवे, तव नामुकर जावे, कहे कि मे तुमको जानताही नही, तुम कौन हो ? ऐसा फूव वोलके उसकी वस्तु रख लेवे, यहनी श्रावकने नहीं करना.

५ पाचमा फूठी साक्षी नरनी सो दो जणे आपसमे कगडते है, तिसमे फूठे पासो धन ले कर अथवा उसके मुहलाहजेसे फूठी गवाही देनी,

दे देवे, जे कर उस वस्तुके स्वामीकों न जाने, अरु अपणा मन दृढ रहे, तो लेवे नहीं, अरु कदाचित् बहुमोली वस्तु होवे, अरु मनदृढ न रहे, तो उस वस्तुकों ले कर अपने पास कितनेक दिन रक्खे, जे कर उसका मालक कोइ जान पडे, तो उसकों दे देवे, जे कर उसका स्वामी कोइ मालम न पडे, तो धर्मखातेमें उस धनकों लगा देवे, जेकर लोभ अधिक होवे, तो अर्द्ध धर्ममें लगा देवे. तथा अपणी जमीनकूं खोदतां तिसमेंसूं धन निकल आवे, तो रखनेका आगार है, परंतु इसमेंभी अर्द्धा भाग अथवा चौथा हिस्सा धर्ममें लगावे, तथा दूसरेकी जगा मोलसें लीनी होवे, उसमेंसूं खोदतां जे कर धन निकल आवे, जे कर मनमें संतोष होवे, तब तो उस मकान वालेकों वो धन दे देवे, जे कर लोभ होवे, तब आधा धर्ममें लगावे, अरु आधा अपने पास रक्खे, तथा कोइ पुरुष अपने पास धन रक्ख कर, पीछेंसें मर गया होवे, अरु उसका कोइ वारस न होवे, तब श्रावक उस धनकों भले पंचके आगें जाहर करे, जो कुछ पंच कहे, सो करे, कदापि देश कालकी विषमतासें उस धनकों जाहेर करते कोइ राजसंबंधी क्लेश उठता मालुम पडे, कोइ दुष्ट राजा लोभके वशसें कहे कि तेरे घरमें औरभी ऐसा धन है. इत्यादि होवे, तब तो मौन करकें उस धनकों धर्मस्थानमें लगा देवे.

तथा घरकी चोरी सो यह है कि:— घरकी सर्व वस्तुओंका मालक माता पिता है, तिनके पूछे विना धन वस्त्रादि लेनेकी जयणा रक्खे, अथवा जिस के साथ प्रेम होवे, तथा जो संबंधी होवे, जिसके घरमें जाने आनेका अरु खाने पीनेका व्यवहार होवे, उसके विना पूछे कोइ फलादि वस्तु खानेमें आवे, उसका आगार रक्खे, परंतु जे कर उस वस्तुके खानेसें मालककोंका मन दुःखे, तो न लेवे. इसी रीतीसें तीसरा अदत्तव्रत पाले. यह व्यवहार शुद्ध अदत्तादान विरमणव्रत है.

अरु निश्चयसेंतो तो जितना अबंधपरिणाम हुआ है, गुणस्थान की वृद्धि होनेसें बंध व्यवछेद हुआ, सो निश्चय अदत्तविरमणव्रत कहियें है. इस व्रतके पांच अतिचार है, उसकों वर्जे सो कहते हैं.

१ प्रथम तेनाहड अतिचार है, सो चोरकी चोराइ वस्तु तिसकों तेनाहृत कहते है. सो वस्तु न लेवे, एतावता चोरीकी वस्तु जाण कर कें न लेवे,

क्यो कि जो चोरीकी वस्तु जानके लेता है, वो लेने वालाभी चोर है, जे कर जैनमतके शास्त्रोमे सात प्रकारके चोर लिखे है ॥ यदाह ॥ चौरश्चौ रापको मंत्री, भेदज्ञ काणकक्रयी ॥ अन्नद स्थानदश्चैव, चौर सप्तविध स्मृत ॥ १ ॥ यह प्रथम अतिचार है

२ दूसरा प्रयोगअतिचार सो चोरी करने वलोको प्रेरणा करणी कि— अरे! तुम चुप चाप निर्व्यापार आज कल क्यो बेठ रहे हो? जे कर तुमा रे पास खरची नही होवे, तो मै देता हूं, अरु तुमारी ल्याइ हुइ वस्तु मै बेच देऊगा, तुम चोरी करणे वास्ते जाउ इत्यादि वचनो करके चोरोंको प्रेरणा करणी, यह दूसरा अतिचार है

३ तीसरा तत्प्रतिरूपकव्यवहार अतिचार सो सरस वस्तुमे नीरस वस्तु मिला करकें वेचे, जैसे केशरमें कशुंनादिमिला करके वेचे, घीमे ग ब्बादि, हिंगमे गुदादि, खोटी कस्तूरी खरी करके वेचे, अफयूनमें खोट मि लाने, पुराणा वस्त्र रगा कर नवेके भाव वेचे, रुइको पाणीसे भिजो कर वेचे, दूधमे पाणी मिलायकें वेचे, इत्यादि करे, तो तीसरा अतिचार लगे

४ चौथा राजविरुद्धगमन अतिचार है सो अपणे गामके वा देशके राजाने आज्ञा दीनी है, जो फलाणे गाममे जाणा नही इत्यादि जो राजाकी आज्ञा है, उसका उल्लघन करना, वैरी राजाके देशमे अपने रा जाके हुकुम विना जाना, सो चौथा अतिचार है

५ पांचमा खोटा तोला, मापा, करणेका अतिचार है सो कूट तोला, मापा, करणा, कमती तोलसे तो देणा, अरु अधिक तोलसे ले लेणा, यह पाचमा अतिचार है यह पाचो अतिचारको वर्जे ॥इति तृतीयव्रत सपूर्ण॥

४ चौथा मैथुनसेवनेका त्याग करना, तिसका नाम मैथुनत्याग व्रत कहते है तिस मैथुनके दो भेद है, एक द्रव्यमैथुनत्याग,दूसरा भाव मैथु नत्याग, उसमे द्रव्यमैथुन तो परस्त्री तथा परपुरुषके साथ सगम करना, सो पुरुष स्त्रीका त्याग करे, अरु स्त्री पुरुषका त्याग करे, रतिक्रीडा काम सेवनका त्याग करे तिसकों द्रव्यब्रह्मचारी तथा व्यवहारब्रह्मचारी कहिये

दूसरा भाव मैथुन है सो एक चेतन पुरुषके विषयविलास परपरिण तिरूप, तथा तृष्णा ममता रूप, इत्यादि कुवासना, सो निश्चय परस्त्रीको मिलना तिसके साथ लाल पाल कामविलास करना, सो भावमैथुन जान

नां. तिसकों जिनवाणीके उपदेशसें, तथा गुरुकी हितशिक्षासें ज्ञान हूआ, तब जातिहीन जान करकें अनागत कालमें महा दुःखदायी जान कर पूर्वकालमें इसकी संगतसें अनंत जन्म मरणका दुःख पाया, इस वास्ते इस विजातीय स्त्रीकों तजनां ठीक है, अरु मेरी जो स्वजाति स्त्री परम नक्त, उत्तम, सुकुलिनी, समतारूप सुंदरी, तिसका संग करनां ठीक है. अरु विभाव परिणतिरूप परस्त्रीनें मेरी सर्वविभूति हर लीनी है, तो अब सद्गुरुकी सहायसेंती ए दुष्ट परिणामरूप जो स्त्री, संग लगी हूई थी, तिसका थोडा थोडा निग्रह करुं, त्यागनेका भाव आदरुं, जिस्सें शुद्धस्वभाव घटरूप घरमें आ जावे, तथा स्वरूप तेजकी वृद्धि होवे, असी सक्त पा करकें परपरिणतिमें मग्नता त्यागे, औ कर्मके उदयमें व्यापक न होवे, शुद्ध चेतनाका संगी होवे, सो भाव मैथुनका त्यागी कहीयें. इहां द्रव्यमैथुनके त्यागी तो षट् दर्शनमें मिल सक्ते हैं, परंतु भावमैथुनका त्यागी तो श्रीजिनवाणी सुननेसें भेदज्ञान जब घटमें प्रगट होता है, तब भवपरिणतिसें सहज उदासीन रूप भाव मैथुनका त्यागी जैनमत मेंही होता है. इहां स्थूल परस्त्रीगमन व्रत. सो परस्त्रीका त्याग करनां, परपुरुषकी विवाहिता स्त्री, तथा परकी रक्खी हूइ स्त्री, तिसके साथ अनाचार न सेवनां, असा जो प्रत्याख्यान करनां, सो परदारगमन विरमणव्रत है. अरु जो अपणी स्त्री है, तिसमें संतोष करुं, असा जो व्रत धारण करे, तिसकों स्वदारसंतोष व्रत कहियें.

देवांगना तथा तिर्यंचणी इनके साथ तो कायासें मैथुन सेवनका निषेध है, तथा वर्त्तमान स्त्री वर्जकें और स्त्रीसें विवाह न करे, तथा दिनमें अपणी स्त्रीसेंभी संभोग न करे, क्योंकि दिनसंभोगसें जो संतान उत्पन्न होता है, सो निर्बल होता है, जे कर कामाधिक होवे, तो दिनकीभी मर्यादा कर लेवे, इसी तरें स्त्रीभी पर पुरुषका त्याग करे, इसी रीतिसें चौथा व्रत पाले, इस व्रतके पांच अतिचार है, उसकों वर्जे, सो लिखते है.

१ प्रथम अपरिगृहीतागमन अतिचार. सो विना विवाही स्त्री (कुमारी) तथा विधवा इनकों अपरिगृहीता कहते हैं, क्योंकि इनका कोइ भर्त्तार नहीं है, जे कर कोइ अल्पमति विषयाभिलाषी मनमें विचारे, कि मैंनें तो परस्त्रीका त्याग करा है, अरु एतो किसीकीभी स्त्रीयां नहीं है, इनके

साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतजंग नही होवेगा ? अैसा विचार करकें कुमारी तथा विधवा स्त्रीके साथ जोग विलास करे, तो प्रथम अतिचार लग जावे, तथा स्त्रीजी व्रत धारक हो कर कुमारे पुरुषसे तथा रंके पुरुषसें व्यजिचार सेवे, तब तिस स्त्रीकोंजी अतिचार लगे

२ दूसरा इत्वरपरिगृहीतागमन अतिचार है तिसका स्वरूप कहते है इत्वर नाम थोडे कालका है, सो थोडेसे काल वास्ते किसी पुरुषने धन खरच कें वेश्यादिकोको अपनी करकें रक्खी है, इहा कोइ अज्ञानके उदयसे मनमें अैसा विचार करें कि मेरे तो परस्त्रीका त्याग है, अरु इस वेश्यादिकको तो मैंने अपणी स्त्री बना करकें थोडेसे काल वास्ते रक्खी है, तो इसके साथ विषय सेवनेसे मेरा व्रतजग नही होवेगा ? अैसे अज्ञानके विचारसे उसके साथ सगम (विषय सेवन) करे, तो दूसरा अतिचार लगे. अरु स्त्रीकोंजी जब अपणी सौकणकी वारीके दिनमें अपने जर्त्तारसे विषय सेवे, वो अपणे मनमें अैसा विचार करे, कि अपणे पतिके साथ विषय सेवनेसे, मेरा व्रतजग नही होवेगा, क्यो कि मैंने तो परपुरुषका त्याग करा है ? यह दूसरा अतिचार. इन पूर्वोक्त दोनो अतिचारोंको जो श्रावक जानता है, कि ये श्रावकको करने योग्य नहीं अरु फेर जे कर करे, तो व्रतजग होवे, परतु अतिचार नही

३ तीसरा अनंगक्रीडा अतिचार है सो अनग नाम कामका है, तिस काम कदर्प्यको जाग्रत करना, आलिंगन, चुंबन प्रमुख करना, नेत्रोका हाव, जाव, कटाक्ष, हास्य, ठठा, मस्करी प्रमुख परस्त्रीसे करे, सो दिलमे शोचता है कि मैंने तो परस्पर एक शय्या उपरि विषय सेवनेका त्याग करा है, परतु पूर्वोक्त अनंगक्रीडा तो नही त्यागी है, परतु वो मूढमति यह नहीं जानता है, कि अैसा काम करने वालेका व्रत कदापि न रहेगा, अरु मनसे उस जीवने माहापाप उपार्जन कर लीया, निश्चय नयके मतमे उसका व्रतजगजी हो गया, तथा अपणी स्त्रीसे चौरासी आसनोसे जोग करे, तथा पदरा तिथिके हिसावसें स्त्रीके अगमर्दनादि कर कें काम जगावे, तथा परम कामाजिलापी होनेसे जब अपनी स्त्रीका जोग न मिले, तब हस्तकर्म करे, स्त्रीजी काम व्याप्त हो कर गुह्यस्थानमे कोइ वस्तु सचार करके हस्तकर्म करे, तब स्त्रीकोंजी अतिचार है, तिस वास्ते श्रावकको जे

सें तैसें करकें कामेछा घटानी चाहियें. क्यों कि विषयके घटानेंसें अरु वीर्यके रखनेसें बुद्धि, आरोग्य, दीर्घायु, बल प्रमुखकी वृद्धि होती है, अरु अधिक काम सेवनेसें मन मलिन, पापवृद्धि,राजयक्ष्मा, (क्षय) भ्रम, मूर्छा, क्लम, स्वेदादि रोग उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते श्रावककों अत्यंत विषय मग्न होनां न चाहियें. केवल जिस्सें वेदविकार शांत हो जावे, तितनांही मैथुन करनां चाहियें. अरु जब काम उत्पन्न होवे, तब स्त्री संबंधि काम सेवन की जगाकों जाजरू समान मलमूत्रसें भरी हूई विचारे, मलीन वस्तु है, मुखमें दुर्गंध भरी है, नाकमें सिंघाणकी दुर्गंध है, कानोंमें मैल है, पेटमें विष्टा, मूत्र, भरा है, नसायोंमें खाये पीयेका रस, रुधिर, हाड, चाम, चर्बी, वाय, पित्त, कफ, भरा है, महा अशुचिका पूतला है, जिस अंगमें वास लेवेगा, उहां महा दुर्गंध उछलती है, अनित्य अशाश्वत है, सडन, पतन, विध्वंसन हो जानां, यह इसका स्वभाव है, तो फेर हे मूढ जीव! स्त्रीकों देखकर क्यों कामाकुल होता है? ऐसें विचारसें कामकों शांत करे, ए तीसरा अतिचार है.

४ चौथा परविवाह करण अतिचार है. सो अपणी पुत्र पुत्री विना, यश के वास्ते, पुण्यके वास्ते, और लोकोंके विवाह करावे, सो चौथा अतिचार.

५ पांचमा तीव्रानुराग अतिचार है. सो जे पुरुष स्त्री ऊपर तीव्र अभिलाष धरे, पराइ स्त्रीकों देख कर मनमें बहुत चाहना धरे, उस स्त्रीके देखे विना क्षणमात्र रहि न सके, चलतां, फिरतां, उस स्त्रीहीमें चित्त रहे, अथवा देहमें कामकी वृद्धि वास्ते अफयून, माजूम, भांग, हरताल, पारा प्रमुख खावे, तीव्रकामसें प्रीति करे, तब पांचमा अतिचार लगे, अथवा स्त्रीभी कामकी वृद्धि करने वास्ते अनेक उपाय करे, बहुत हाव भाव विषय लालसा करे, तब पांचमा अतिचार लगे, यह पांच अतिचार श्रावक जाने, परंतु आदरे नहीं, इन पांचो अतिचारोंका विशेष स्वरूप धर्मरत्न प्रकरणकी टीकासें जाननां ॥ इति चतुर्थव्रतं समाप्तं ॥

५ अथ पांचमा स्थूलपरिग्रहपरिमाण व्रत लिखते हैं. परिग्रहके दो भेद हैं, एक तो बाह्यपरिग्रह अधिकरण रूप, सो द्रव्यपरिग्रह नव प्रकारका है. दूसरा भाव परिग्रह, सो चौदह अभ्यंतर ग्रंथिरूप जो परभावका ग्रहण समस्त प्रदेश सहित संकपाई पणे बंध, सो भावपरिग्रह है, अरु

शास्त्रमे मूर्छाकों मुख्य वृत्ति करके भावपरिग्रह कहा है, तिनमेंसूं चौद ह प्रकारका जो अभ्यतर परिग्रह है, सो लिखते है १ हास्य, २ रति, ३ अरति. ४ भय, ५ शोक, ६ जुगुप्सा, ७ क्रोध, ८ मान, ९ माया, १० लो भ, ११ स्त्रीवेद, १२ पुरुषवेद, १३ नपुंसकवेद, १४ मिथ्यात्व यह चौदह प्रकारकी अभ्यतर ग्रंथि है, इहा संसारमें इस जीवको केवल अविरतिके बलसे इछा, आकाश समान अनंती है कदापि भरणेमे आती नही, अ विरतिके उदयसें इछा अरु इछासेती कर्मबधनमे पडा हूआ चार गतिमे भ्र मण करता है सो कोई पुण्यके उदयसे मनुष्य भवादि सकल सामग्रीका योग पा कर, सद्गुरुकी सगतिसे श्रीजिनवाणी सुणी, तब चेतना जागृत भई, तब विचार करा कि अहो मे समस्त परभावसे अन्य हू! अवधि, अ छेद्य, अभेद्य, अदह्यधर्मी हू! परतु इछाके वश हो कर समस्त छेदन, भे दन परिभ्रमणादि दुखोंकों भोगने वाला परधर्मी बन रह्या हू! ईस वास्ते समस्त परभावका मूल जो इछा है, तिसको दूर करे तव समस्त परभाव त्यागरूप चारित्र आदरे, साधुवृत्ति अंगी कार करे. अरु जिस जीवके इछा प्रवल होनेसे एक साथ सर्व परिग्रह त्यागनेका सामर्थ्य न होवे, अरु दो पसे मरे, तव गृहस्थ, धर्मइछा परिमाण रूप व्रत आदरे, सो इछा परिमा णव्रत नव प्रकारका है, सो कहते है —

१ प्रथम धन इछा परिमाण व्रत है सो धन चार प्रकारका है प्रथम गणिम धन, सो नालिकेर प्रमुख, जो गिणतीसे वेचनेमे आवे दूसरा धरि म धन, सो गुड प्रमुख जो तोलके वेचनेमे आवे तीसरा परिछेद्य धन, सो सोना, रूपा, जवाहिर प्रमुख जो परिक्षासे वेचनेमे आवे चोथा मेयधन, सो दूधादि वस्तु जो मापके वेचनेमे आवे, यह चार प्रकारका धन है इसका जो परिमाण करे, सो धनपरिमाण व्रत है

२ दूसरा धान्य परिमाण व्रत सो धान्य चौवीस प्रकारका है १ शालि, २ गेहू, ३ जुवार, ४ बाजरी, ५ जव, ६ मूग, ७ मुठ, ८ उडद, ९ तूट, १० वोडा, ११ मटर, १२ तूअर, १३ किसारी, १४ कोद्रवा, १५ कगणी, १६ चणा, १७ वाल, १८ मेथी, १९ कुलथ, २० मसूर, २१ तिल, २२ ममवा, २३ कूरी, २४ बरटी. यह खाने वास्ते तथा व्यवहार वास्ते उपयो गी है तथा १ धनीया, २ भींमी, ३ सोवा, ४ अजवयन, ५ जीरा यह

नी धान्यकी जातिमें है, परंतु ये औषध्यादिकमें काम आते हैं. तथा १ सामक, २ मणकी, ३ नुरट, ४ चेकरीया, ये मारवाड देशमें प्रसिद्ध हैं. औरनी जो अडक धान्य, विना बोयां ऊगता है, जिसकों लोक काल डकालमें खाते हैं, यह सर्व जातिका अन्न, तिसका परिमाण करे.

३ तीसरा क्षेत्रपरिग्रह व्रत है. सो बोनेका खेत, तथा बाग (बगीचादिक) जाननां, इस क्षेत्रके तीन नेद हैं, उसमें एक क्षेत्र तो ऐसा है, कि जो वर्षाके पाणीसें होता है, दूसरा कूपादिकके जल सींचनेसें होता है, तीसरा तो यह पूर्वोक्त दोनो प्रकारसें होता है, इनका परिमाण करे.

४ चौथा वास्तुक परिमाण व्रत है. सो घर, हाट, हवेली प्रमुख तिनकेनी तीन नेद हैं. एक तो नूंहरा प्रमुख, दूसरा उछ्रित सो उंची हवेली, एक मजली, दो मजली, तीन मजली, यावत् सातनूमि तक, तीसरी हेठ नूंहरा प्रमुख, उपर एक दो आदि मजल, तिसका परिमाण करे.

५ पांचमारूप्यपरिग्रहपरिमाण व्रत है. सो सिक्के विनाका काचा रूपा तिसका तोलका परिमाण करे.

६ छहा सुवर्णपरिग्रह परिमाण व्रत है. सो विना सिक्केका सोना, तिसके तोलका परिमाण करे.

७ सातमा कूपद परिग्रह परिमाण व्रत है. सो त्रांबा, पीतल,रांग,कांसुं, सींसा, नरत, लोहाप्रमुख सर्व धातुके बर्त्तनोंके तोलका परिमाण करे.

८ आठमा डुपद परिग्रहपरिमाण व्रत है. सो दासी, दास, अथवा पगारदार गुमास्ता प्रमुख रखणां, तिनकी गणतीका परिमाण करे.

९ नवमा चौपदपरिग्रह परिमाण व्रत है. सो गाय, महीषी, घोडा, बलद, बकरी, नेम प्रमुख, तिनकी गिणतीका परिमाण करे.

अथ अपनी इछा परिमाणसें परिग्रह किस तरें रखे? सो कहते हैं. रूपा घडा हूआ अरु अनघडा तथा नगद रूपक इतना रखुं, तथा सोनानी घडा अनघडा असर्फी तथा जवाहीर इतना रखुं, इस रीतिसें परिमाण करे, उपरांत पुण्योदयसें धन वधे, तो धर्मस्थानमें लगावे, तथा वर्ष दिनमें इतने इस नांतके वस्त्र पहिरूं, तथा एक वर्षमें इतना अन्न मैं घरखरच वास्ते रखुं, अरु इतना वणिज वास्ते रखुं, तिसका स्वरूप सातमे व्रतमें लिखेंगे. तथा क्षेत्रपरिमाणमें क्षेत्र, वाडी, बगीचा प्रमुख सर्व मिल क

र इतने विग्घे धरती रखुंगा, तथा घर, खिडकी वंध. अरु खुल्ली डुकान, तवेला, वखारी, तथा परदेश संबंधी डुकानकी जयणा, तथा इतना नाडे देणे वास्ते घरकी रखनेकी जयणा. तथा नाडे लीये हूये घरकों समराव णेकी जयणा, तथा कुटुब संबंधि घर बनानेमे उपदेशकी जयणा, तथा अपणा सबंधी अरु गुमास्ता परदेश गया होवे, पीछेसें तिसके घर प्रमुख समरावणेकी जयणा, तथा आजीविकाके वास्ते किसीकी चाकरी करनी प डे, तब उसके घर प्रमुखके समरावणेकी जयणा, तथा कुपदपरिमाणमे तावा, पीतल, राग, लोहखम, कासी, नरत, सर्व मिलीके धातुके वर्त्तन, त था और घाट, तथा बूटा, इतने मण रखणेकी जयणा, तथा डुपद परिमा णमे श्रावकने दासी, दासको मोल दे कर नहीं लेना, परतु पगारवाले (नौकर) गिणतीमे इतने रखने चाहिये, तथा गुमास्ता रखनेकी जयणा, तथा चौपद परिमाणमे गाय, नैस, बकरी प्रमुख रखनेका परिमाण करे अब यह इछा परिमाण व्रतके पाच अतिचार है, सो लिखते है

१ प्रथम तो धनपरिमाण अतिक्रम अतिचार. इस रीतिसे होता है सो जब इछा परिमाणसे धन अधिक हो जावे, तब लोनसज्ञासे दिलमे ऐ सा मनसुबा करे कि जो मेरा पुत्र वडा हो गया है, तिसकोनी धन चा हिये है, अरु मैनेनी पुत्रकों धन देनाही है? ऐसा कुविकल्प करके पुत्रके नामके पाच हजारादि रूपक जूदे रखे, तथा अन्न प्रमुख अपणे नियम परिमाण घरमे पडा है, तब अधिक रखनेकी इछासे दूसरायोके घरमे रख छोडे, जब चाहिये तब ले आवे, अरु अज्ञानसें ऐसा विचारे कि मैने तो इछा परिमाणसे अधिक अपने घरमे रखनेका नियम करा है, अरु य ह तो दूसरोके घरमे रखा है, इस वास्ते मेरे नियममे दूषण नही, तथा व्रत लेनेके वखतमे कच्चे मणके हिसावसे अन्न रखा है, अरु जब परदे शातरमे गया, तब पक्के मणका उहा तोल जान कर अन्ननी पक्के मणके हिसावसे रखे, ऐसे विचार वालेको प्रथम अतिचार लगता है

२ दूसरा क्षेत्रपरिमाण अतिक्रम अतिचार है सो जब इछा परिमाणसेती अधिक घर हाटादिक हो जावे, तब विचली नित तोडके दो तिनादि घरा दिकोका एक घरादि वनावे, तथा दो तीनादि खेतोकी विचली मौली तोडकें एक बना लेवे, अरु मनमे यह विचारे कि मैने तो गिणती रखी है, सो तो

मेरा नियम अखंडित है, बडा कर लेनेमें क्या दूषण है? ऐसें करे, तो दूसरा अतिचार लगे.

३ तीसरा रूप्यसुवर्णप्रमाण अतिक्रम अतिचार है. सो जब इच्छा परिमाणसेंती अधिक होवें, तब अपणी स्त्रीकें घेणे भारी तोलके बनवावे, तथा अपणे आभरण तोलमें भारी बनवावे, यह तीसरा अतिचार है.

४ चौथा कुपदपरिमाण अतिक्रम अतिचार है. सो त्रांबा, पीतल, कांसी प्रमुखके वर्त्तन राठ वगैरें जो गिणतीमें रखे हैं, सो जब घरमें संपदा होवे, तब गिणतीमें तो उतनेही रखे, परंतु तोलमें वजनदार दूगणे तिगुणे बनवावे, अरु मनमें ऐसा विचारे जो मेरा व्रत तो अखंडित है? क्योंकि वर्त्तनोकी गिणती तो मेरे तितनीही है? तथा कच्चे तोल परिमाणें रखे थे, फेर पक्के तोल परिमाण रख लेवे,सो चौथा अतिचार है.

५ पांचमा द्विपदचतुष्पद प्रमाणातिक्रम अतिचार है. सो दास, दासी, घोडा, गाय, बलद प्रमुख अपणे परिमाणसें जब अधिक हो जावे, तब वेच गेरे, अथवा गर्भ ग्रहण अवेरी करावे, जितने गिणतीमें हैं, उनमेंसें प्रथम वेचके फेर गर्भ ग्रहण करावे, अथवा भाइ पुत्रके नामके कर रखे, तो पांचमा अतिचार लगता है. इति पंचमव्रतं संपूर्ण ॥

६–७–८ अथ छठा, सातमा, अरु आठमा, इन तीनो व्रतोंकों गुणव्रत कहते हैं. तिनमें छठे व्रतमें दिशांका विचार है, इस वास्ते इसका नाम दिक्परिमाण व्रत कहते हैं. तिसका स्वरूप लिखते हैं.

पूर्वे जो पांच अणुव्रत कहे हैं. तिनकों इन तीनो व्रतों करकें गुण वृद्धि होती है, इस वास्ते इनका नाम गुणव्रत है, क्योंकि जब दिशिपरिमाणव्रत कीया, तब तिस क्षेत्रसें बाहिरले सर्व जीवोंकों अभयदान दीया, यह पहिले प्राणातिपात व्रतकों गुण पुष्टि भइ, तथा बाहिरले जीवोंके साथ कूड बोलनां मिट गया, यह मृषावाद व्रतकों पुष्टि भइ, तथा बाहिरले क्षेत्रकी वस्तुकी चोरीका त्याग हूआ, यह तीसरे व्रतकों पुष्टि भइ, तथा बाहिरले क्षेत्रकी स्त्रीयोंके साथ मैथुन सेवनेका त्याग हुआ यह चौथे व्रतकी पुष्टि भइ, तथा नियम बाहिरके क्षेत्रमें क्रय विक्रयका निषेध भया, यह पांचमे व्रतकी पुष्टि भइ, इस वास्ते पांचो अणुव्रतोंकों यह तीन व्रत गुणकारी है.

तहां दिशिप्रमाण व्रत. सो चारों दिशि, तथा चारो विदिशि, तथा ऊर्ध्व, अरु अधो, इन दश दिशिका परिमाण करे, तिसके दो नेद है एक व्यवहारसे, सो अपणी कायासे दशो दिशिमे जानेका, तथा मनुष्य नेजनेका, तथा व्यापार करनेका परिमाण करे, उसकों व्यवहार दिशि परिमाण व्रत कहिये

दूसरा निश्चयसें सो जो कुछ नरकादि गतिमे गमन है, सो सर्व कर्मका धर्म है जिसके वश पडकें यह जीव चारो गतिमे नटकता है, परानुयायी चेतना हो रही है, इसी वास्ते जीव परनावानुसारी गतिभ्रमण करता है, परतु जीव तो शुद्ध चैतन्य, अगतिस्वनाव, तथा निश्चल स्वनाव है, ऐसा श्री जिनवाणीके उपदेशसे समझके चेतना शुद्धस्वरूपानुयायी होवे, तव अपणा अगति स्वनाव जानिके सर्व क्षेत्रसे उदास रहे, समस्त क्षेत्रसे अप्रतिवधक नावसे वर्त्ते, सो निश्चयसे दिक्परिमाण व्रत कहिये यह दशो दिशिका परिमाण करें, तिसके दो नेद है

प्रथम जलमार्ग सो जहाज नावों करके इतने योजन अमुक दिशिमें अमुक वदर, तथा अमुक द्वीप तक जाऊ, जे कर पवन, तथा वर्षातके वशसे और दूर किसी वदरमे ले जावे तो आगार, अर्थात् व्रतनंग न होवे, अथवा अजाण पणे कर कें नूल चूकसे किसी वदरमे चला जाऊ, उसकानी आगार है

दूसरा स्थलका मार्ग. सो जिस जिस दिशिमे जितने जितने योजन तक जानेका परिमाण करा है, तहा तक जाणेकी जयणा, जे कर चोर, म्लेछ, पकडके नियम क्षेत्रसे वाहिर ले जावे, तिसका आगार है, तथा ऊर्ध्व दिशिमे वारा कोश तक जाणेकी जयणा रखे, तथा अधोदिशिमे आठ कोश तक जाणेकी जयणा, परतु जो उचा चढके फेर नीचा उतरे, वो अधोदिशिमे नही, तथा जितनें क्षेत्रका परिमाण करा है, तिस्से वाहिरका कोइ पिछाण वाले पुरुषका पत्र आवे, सो वाच कर उसका उत्तर लिखना पडे, तिसका आगार है, परतु मै अपणी तरफसे विना कारण पत्र प्रमुख नही लिखुगा, तथा परदेशकी विकथा सुननेका आगार, इस व्रतके पाच अतिचार है सो कहते है

१ प्रथम ऊर्ध्वदिशापरिमाणातिक्रम अतिचार है. सो अनाभोगसें अथ वा बे सुरतिसें अधिक चला जावे, तो प्रथम अतिचार.

२ दूसरा अधोदिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार. पूर्ववत्.

३ तीसरा तिर्य्यादिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार. ऊपर वत्. जे कर निय म भंगके भयसें गुमास्ता भेजे, तोभी अतिचार लगे.

४ चौथा एक दिशिमें सौ योजन रक्खे हैं, अरु एक दिशिमें पच्चास योजन रक्खे हैं, पीछें जब एकही दिशिमें मौढसौ योजन जानां पडे, तब दूसरी तरफके पच्चास योजनभी उसी तरफ जोड लेवे, अरु अज्ञानसें ऐसा विचारे कि मेरे नियमकेही पच्चास योजन हैं, इस वास्ते मेरे व्रतका भंग नहीं.

५ पांचमा स्मृतिअंतर्धान अतिचार. सो अपणे नियमके योजनकों भूल जावे, क्या जाने पूर्वदिशिके सौ योजन रक्खे हैं ? कि पच्चास योजन रक्खे हैं ? इत्यादि ऐसा संशयके हूए फेर पच्चास योजनसें अधिक जावे, तो पांचमा अतिचार लग जावे, यह पांच अतिचार वर्जे ॥ इति षष्ठव्रतं संपूर्ण.

७ अथ सातमा भोगोपभोग व्रतका स्वरूप लिखते हैं. यह दूसरा गुण व्रत है. इस व्रतके अंगीकार करणेसें सचित वस्तु खानेका त्याग करे, अ थवा परिमाण करे, तथा जिसमें बहुत हिंसा होवे, ऐसा व्यापार न करे, तथा जिस काममें अवश्य हिंसा बहुत करनी पडे, तिसका त्याग करे, अभक्ष्य त्यागे, अरु चौदह नियमभी इस व्रतमें गिणे जाते हैं, इस वास्ते यह व्रत पूर्वोक्त पांचही अणुव्रतोंकों गुणकारी है, इस व्रतके दो भेद हैं, सो कहते हैं.

१ प्रथम व्यवहार. सो भक्ष्याभक्ष्यका ज्ञान करी त्यागे, दूसरा आश्रव संवरका ज्ञान कर कें खान पानादिक जो इंद्रिय सुखका कारण है, उसमें अपणी शक्ति प्रमाण बहुत आरंभ छोडकें अल्पारंभी होनां, सो व्यवहार भोगोपभोगविरमण व्रत है.

२ दूसरा निश्चयसें, तो श्रीजिनवाणी सुण कर वस्तु तत्त्वस्वरूप जान कर विचारे कि जो जगत्में परवस्तु है, सो सर्व हेय है, इस वास्ते तत्त्व वेत्ता पुरुष परवस्तुकों न खावे, न अपणे पास रक्खे, तब शुद्ध चैतन्य भाव धार कें परम शांतिरूप हो कर जो वस्तु सडे, पडे, गिरे, जाती रहे,

तब परवस्तु जान कर ऐसा विचार करे कि यह पुद्गलकी पर्याय है, सर्व जगत्की जूठ है, ऐसी वस्तुका भोगोपभोग करणां, सो तत्त्ववेत्ताकों उचित नही, ऐसे ज्ञानसे परभावको त्यागे, स्वगुणकी वृद्धि करे, ऐसा ज्ञान पा कर आत्माकों स्वस्वरूपानदी करे, चिद्विलासका अनुभवी होवे, सो निश्चय भोगोपभोगविरमण व्रत कहियें

अथ भोगोपभोग शब्दका अर्थ कहते है जो आहार, पुष्प, विलेप नादि, एक वार भोगनेमे आवे, सो भोग कहिये अरु जो भुवन, वस्त्र, स्त्रीयादि वार वार भोगनेमे आवे, सो उपभोग कहिये अरु कर्माश्रयी इस व्रतके अनेक भेद है, सो आगे लिखुगा

तथा श्रावककों उत्सर्ग मार्गमे तो निरवद्य आहार लेनां लिखा है, जे कर शक्ति न होवे, तब सचित्तका त्यागी होवे, जेकर यहभी न कर सके, तो बाईस अभक्ष्य अरु बत्तीस अनंतकाय इनका तो जरूर त्याग करे, तिनमें प्रथम बाईस अभक्ष्य वस्तुका नाम लिखते है

१ वडके फल, २ पीपलके फल, ३ पिलखणके फल, ४ कठवरके फल, ५ गूलरके फल, यह पाचतो फल अभक्ष्य है, क्योंकि इन पाचों फलोंमें बहूत सूक्ष्म कीडे त्रस जीव भरे हूये होते है, जिनोंकी गिणती नही हो सक्ती है, इस वास्ते धर्मात्मा जीव, इन पाचो फलोंकों न खावे, जे कर दौर्भिक्षमे अन्न न मिले, तोभी विवेकी पूर्वोक्त पांच फल भक्षण न करे.

६ मदिरा, ७ मास, ८ मधु, ९ माखण, इन चारोंमे तद्वर्ण असंख्य जीव उत्पन्न होते है, अरु यह चारों विगय, महाविगय है सो महाविकारकी करनेवाली है, तिनमे प्रथम मदिरा त्यागने योग्य है, क्योंकि मदिराके पीनेमे जो दूषण है, सो हेमचंद्रसूरिकृत योगशास्त्रके दश श्लोकोंके अर्थसे लिखते है

१ मदिरा पीनेसे चतुर पुरुषकी बुद्धि नष्ट हो जाती है,जैसे दुर्भागी पुरुषको सुंदर स्त्री छोड जाती है, तैसे इस पुरुषको बुद्धी छोड जाती है, २ मदिरापानी पुरुष, अपणी माता, बहिन, बेटीको अपणी भार्याकी तरें समज के जोरा जोरीसे विषयभी सेवन कर लेता है, अरु अपणी भार्याको अपणी माता समजता है, मदिरा पीनेवाला ऐसा निर्लज्ज और महा पापके करने वाला होता है, ३ मदिरापानी, अपनेको अरु परकोभी नहीं

जानता, ४ मदिरापानी, अपणे स्वामीकों अपणा किंकर जानता है, अरु अपणेकों स्वामी जानता है, एसी निर्लज्ज बुद्धिवाला होता है, ५ मदिरा पीने वाले पुरुषकों चौंकमें लेटा हूआ देख कर मुदरि जान कर, कुत्ते उसके मुहमें मूत जाते हैं, ६ मदिराके रसमें मग्न पुरुष चौंकमें नंगा मादर जात, निर्लज्ज हो कर, सो जाता है. ७ मदिरा पीने वालेने जो अगम्य गम्य, चोरी, यारी, खून प्रमुख कुकर्म करे हैं. वो सर्व लोकोंके आगें प्रकाश देता है. ८ मदिरा पीनेसें शरीरका तेज, कीर्त्ति,यश,तात्कालिकी बुद्धि, यह सब नष्ट हो जाते हैं. ए मदिरापानी जूत लगेकी तरें नाचता है, १० मदिरा पीने वाला कीचड और गंदकीमें लोटता है, ११ मदिरा पीनेसें अंग शिथिल हो जाते हैं, १२ मदिरा पीनेसें इंद्रियोंकी तेजी घट जाती है, १३ मदिरा पीनेसें बडी मूर्छा आजाती है,१४ मदिरा पीनेवालेका विवेक नष्ट हो जाता है, १५ संयम नष्ट हो जाता है,१६ ज्ञान नष्ट हो जाता है, १७सत्य नष्ट हो जाता है, १८ शौच नष्ट हो जाता है,१ए दया नष्ट हो जाती है,२० क्षमा नष्ट हो जाती है,जैसें अग्निसें तृण जस्म हो जाते हैं, तैसें पूर्वोक्त गुणजी उसका नष्ट हो जाते हैं, २१ मदिरा है, सो चोरी, अरु परस्त्रीगमनादिकोंका कारण है, क्योंकि मदिरा पीनेवाला कौनसा कुकर्म नहीं कर सक्ता है? २२ मदिरा, आपदा तथा वध, बंधनादिकोंका कारण है, २३ मदिरेके रसमें बहुत जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते दया धर्मिकों मदिरा न पीनी चाहियें. २४ मद्य पीने वाला दीयेकों अणदीया कहता है, २५ लीयेकों नहीं लीया कहता है, २६ करेकों न करा कहता है, २७ मद्यपी, घरमें तथा बाहिर, पराये धनकों निर्जय हो कर लूंट लेता है, २८ मदिरेके उन्मादसें बालिका, यौवनवती, वृद्धा, ब्राह्मणी, चांमालिनी प्रमुख स्त्रीयोसें जोग कर लेता है, २ए मद्यप अरराट शब्द करता है, ३० गीत गाता है, ३१ लोटता है, ३२ दौडता है, ३३ क्रोध करता है, ३४ रोता है, ३५ हसता है, ३७ स्तंजवत् हो जाता है, ३७ नमस्कार करता है, ३८ जमता है, ३८ खडा रहता है, ४० नटकी तरें अनेक नाटक करता है, ४१ ऐसी वो कौनसी दुर्दशा है. जो मदिरा पीने वालेकों नहीं होती है? शास्त्रोमें सुणते हैं कि सांब कुमारने मदिरा पी कर द्वैपायन ऋषिकों संताया, तब द्वैपायननें द्वारकांकों दग्ध कीया, ४२ मदिरा पीनां,वो

सर्व पापोंका मूल है, ४३ मदिरा पीने वाला निश्चय नरक गतिमें जावेगा. ४४ मदिरा सर्व आपदाका स्थान है ४५ मदिरा अकीर्त्तिका कारण है,४५ मदिरा नीच म्लेछ लोक पीते है, ४७ गुणीजन लोक जो है,सो मदिरा पीनेवालेकी निंदा करते है, ४८ मदिरा पछेमे लग जानेंसे तत्काल मरजाता है,४९ मदिरा पीने वालेके मुखसें महादुर्गंध आती है, ५० मदिरा सर्व शास्त्रोमे निंदित है, ५१ मदिरा पीनेवाला ईश्वरका भक्त नही इत्यादि मदिरा पीनेमे अनेक दोष है,इस वास्ते श्रावक मदिरा न पीवे, यह छठा अभक्ष्य

सातमा अभक्ष्य मांस है यह मास भक्षण करनेमे जो दूषण है, सो लिखते है जो पुरुष मांस खानेकी इछा करता है, वो पुरुष, दयाधर्मरूपी वृक्षकी जड काटता है, क्योकि जीवके मारे विना मास कदापि नहि हो सक्ता है, जे कर कोइ कहेगा कि हम मांसभी खा लेवेगा, अरु प्राणीयोकि दयाभी करेगा,ऐसे कहने वालेकों हम उत्तर देते है,कि सदा सर्वदा जो मांसके खानेवाले है, अरु वो अपने मनमे दयाधर्मी बना चाहता है, वो पुरुष अग्निमे कमल लगाना चाहता है, क्योंकि जव उसने मास खाया, तव प्राणीयोकी दया उसके मनमें कदापि नहीं हो सक्ती है, जैसे अवका खानेवाला आम्रफल देखता है, तब उसकी मनसा आव खानेहीको दोडती है, तैसे मासाहारी किसी गौ, भेडी, वकरी, प्रमुखको देखता है, तव उन जीवोंका मास खानेकी तर्फ उसकी सुरती दौडती है, ऐसे पुरुषको दयाधर्म, क्यो कर सभवे ? जे कर कोइ कहेगा कि जीवके मारने वाला सौकरिक अर्थात् कसाइ है, तिस पासो वना वनाया मास ल्या कर खावे, तो क्या दोष है ? ऐसे मूढमतिको उत्तर देते है, कि जो मास खानेवाला है, वोभी जीवका हिंसक है, क्यो कि भगवतने शास्त्रोमे सात जनोको घातक (हिंसक) अर्थातु कसाइही कहा है, उसका नाम कहते हे एक जीवके मारने वाला, दूसरा मास वेचने वाला, तीसरा मास रधने वाला, चौथा मास भक्षण करने वाला, पाचमा मास खरीदने वाला, छठा मासकी अनुमोदना करने वाला, सातमा पितरोके, देवताओंकों, अतिथिकों, मास देने वाला, यह सात साक्षात् परपरा करकें घातक अर्थात् जीववधके करने वाले है, मनुजीभी मनुस्मृतिमे कहते हे ॥श्लोक॥ अनुमता विशसिता, निहता क्रयविक्रयी॥ सस्कृता चोपहर्ता च, खादकश्चेति

घातकाः ॥ १ ॥ अस्यार्थः—१ अनुमोदक केतां अनुमोदन करने वाला, २ विशसिता केतां मारे हुये जीवके अंगका विभाग करने वाला, ३ निहंता केतां मारने वाला, ४ मांसका वेचनेवाला, ५ मांसका रांधने वाला, ६ मांसका परोसने वाला, ७ मांसका खाने वाला. यह सातों घातकी हैं, अर्थात् जीवके वध करने वाले हैं, दूसरा श्लोकभी मनुस्मृतिका लिखते हैं ॥श्लोक ॥ अकृत्वा प्राणिनां हिंसां,मांसंनोत्पद्यते क्वचित् ॥ नच प्राणिवधः स्वर्ग, स्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥ २ ॥ अस्यार्थः— जितना चिर जीवकों न मारे, तहां तक मांस नही होता है, अरु जीववधसें स्वर्ग नहीं अपितु नरक गति होती है, इस वास्ते मांस खानां वर्जे ॥ २ ॥

अब मांस खाने वालेकोंही वधकपणा है, यह वात कहते हैं. दूसरा जीवोंका मांस जो अपने मांसकी पुष्टाइके वास्ते खाते हैं, वास्तवमें वेही कसाइ हैं, क्यों कि जे कर खानेवाले न होवे, तो काहेकों कोइ जीवकोंभी मारे ? जो पर प्राणीयोंकों मार करकें अपणेकों सप्राण करते हैं, वे जीव थोडीसी जिंदगीके वास्ते अपणा नाश करते हैं, एक अपणे जीवने वास्ते क्रोडों जीवोंकों जो दुःख देता है, तो वो क्या सदा काल जीता रहेगा ? जिस शरीरमें सुंदर मिष्टान्न, विष्टा हो जाता है, अरु दूध प्रमुख अमृत वस्तुओं मूत्र हो जातीयां है, तिस शरीरके वास्ते कौन बुद्धिमान् जीववध अरु मांस भक्षण करे ?

जे केइ महामूढ, निर्विवेकी, लिख गये हैं, कि मांसभक्षण करनेमें दूषण नहीं. वेभी म्लेछ थे, क्यों कि वे लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ न मांसभक्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेषा भूतानां, निवृत्तिस्तु महाफला ॥ १ ॥ इस श्लोकके कहने वालोंने व्याध, गृध्र, भेडीयें, श्वान, (कुत्ते), व्याघ्र, गीदड, काग प्रमुख हिंसक जीवोंकों अपना धर्मोपदेश गुरु माने हैं, क्योंकि जे कर ये पूर्वोक्त गुरु न होते तो इनकों मांस खाने कौन सिखाता ? विना गुरुके उपदेशके पूज्यजन उपदेश नहीं देते हैं, इस श्लोक बनाने वालोंकी अज्ञानता देखियें, वे कहते हैं कि मांस खानेसें, मदिरा पीनेसें, अरु मैथुन सेवनेमें पाप नहीं, परंतु निवृत्तिस्तुमहाफला इनसें जो निवृत्ति करे तो महाफल है, यह स्ववचन विरोध है, क्योंकि जिसके करनेमें पाप नहीं,उसके त्यागनेंमें धर्मफल कदापि नहीं हो सक्ता है.

अथ निरुक्त बल करकेभी मास त्यागने योग्य है, सो कहते है ॥ श्लोक ॥ मांसभक्षयितामुत्र, यस्य मांसमिहाद्म्यहं ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वे, निरुक्त मनुरब्रवीत् ॥ १ ॥ अस्यार्थ – जिसका मांस मे खाता हू, वो जीव मुझको परभवमे भक्षण करेगा, यह निरुक्तसे मनुजी मांस का अर्थ कहते है, मांसभक्षण वालेकों महा पाप लगता है, जो पुरुष मांस भक्षणमे लंपट है, वो पुरुष जिस जिस जीवकों जलचर मत्स्यादि को, स्थलचर मृग, सूअर प्रमुखकों, खेचर तित्तर लाल बटेरे प्रमुखको देखता है, तिस तिसको मारके खानेकी बुद्धि करता है, शाकनकी तरे सर्वको खाया चाहता है, मांस खानेवाला उत्तम पदार्थोंका परिहार करके नीच पदार्थके लेनेमे उद्यत होता हे, जैसे काग, पचामृत छोड कर विष्टेमे चाच देता है, तिसी तरे जान लेना. इसका नाम तो निर्विवेकता है, ॥ श्लोक ॥ ये भक्षयंति पिशितं, दिव्यभोज्येषु सत्स्वपि ॥ सुधारसं परित्यज्य, भुंजते ते हलाहलं ॥ १ ॥ अर्थ – सकल धातुओंके वृद्धि करने वाला दिव्य भोजन विद्यमान हूआ, सर्व इंद्रियोके आल्हादजनक दूध, क्षीर, किलाट, कूर्चिका, रसाल, दधि आदिक, मोदक, मदक, मण्डिका, खाजे, पापड, घेवर, इण्डरिका, खण्डवडे, पूरणवडे. गुडपापडी, इक्षुरस, गुड, मिसरी, द्राक्ष, आंब, केले, अनार, नालियर, नारंगी, सतरे, खजूर, अक्षोट, राजादनखिरणी, फनस, अलूचे, बदाम, पिस्ता इत्यादि अनेक दिव्य भोजनोको छोड के मूढमति, विस्रगंधि, सूगवाला, वमनका करनेवाला, ऐसा बिभत्स्य मांसको भक्षण करता है, वो जीव, जीवितव्यकी वृद्धि वास्ते अमृत रस छोड कर जीवितांतकारी, हालाहल विष भक्षण करता है, बालक जे होता हे, सोभी पत्थरकों छोड कर सुवर्णको ग्रहण करता है, अरु जे मांसाहारी पुरुष है, वो जे मांससेभी अधिक पुष्टताके करने वाला ऐसे दिव्य भोजन है, तिनको छोड के मांस खाता है, तो वो बालकसेभी अज्ञानी है

और तरेसे मांसभक्षणमे दूषण लिखते हैं जे निर्दय पुरुष है, उसको धर्म नही, क्योकि धर्मका मूल दया है, ये बात सर्व संत जन मानते है, अरु मांसाहारीको दया तो है नहीं, मांस खाने वालेकों पूर्व कसाइ कह्या है, इस वास्ते मांसाहारीके धर्म नही

अब मांस खानेमें अनुत्तर दूषण कहते हैं, तत्काल इस मांसमें संमूर्छिम जीव उत्पन्न होते हैं, अरु अनंत निगोद रूप जीव तिनका संतान वारं वार होनां तिस करकें दूषित हैं, यदाहु आमासु अपकासु, अविपच्चमाणासु मंसपेसीसु ॥ सयय चिय उववाउ, जणिउ निगोय जीवाणं ॥ १ ॥ अर्थः—कच्ची तथा अपक्व ऐसी जो मांसकी पेसी वोटी रंधती है, तिसमें निरंतर निगोदके जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते मांसका खानां जो है, सो नरकमें जाने वालोंकों पूरी खरची है,इस कारण के लीये बुद्धिमान् पुरुष जो है सो मांस कदापि न खावे.

अथ यह मांस खाना किन्होने कथन करा है,तिनोका नाम लिखते हैं. १ मांस खानेके लोलीयोने, २ मर्यादा रहितोने, ३ नास्तिको ने, ४ थोडी बुद्धि वालोंने, ५ खोटे शास्त्रोंके बनाने वालोंने, ६ वैरीयोंने, मांस खाना कहा है. तथा मांसाहारीसें अधिक कोइ निर्दयी नहीं. तथा मांसाहारीसें अधिक कोइ नरककी अग्निका इंधन नहीं. गंदगी खा कर जो सूअर अपणे शरीरकों पुष्ट करता है, सो अछा है, परंतु जीवकों मारके जो निर्दयी हो कर मांस खाता है, सो अछा नहीं है.

प्रश्नः— सर्व जीवोंका मास खानां तो सर्व कुशास्त्रोंमें लिख दीया है, परंतु मनुष्यका मांस खानां तो कहीं किसी शास्त्रमें नहीं लिखा है, इसका क्या हेतु होगा ?

उत्तरः—अपने मांसकी रक्षा वास्ते मनुष्यका मांस खानां नहीं लिखा, क्यों कि वे कुशास्त्रोंके बनाने वाले जानते थे कि जो मनुष्यका मांस खाना लिखेंगें,तो मनुष्य कबी हमकोंही न खा लेवे ? इस शंकासें नहीं लिखा, तो जो पुरुषमांसमें अरु पशुमांसमें विशेष नहीं मानता है,तिस समान कोइ धर्मी नहीं,अरु तिसमें जो भिन्न मानके मांस खाते है इस समान कोइ पापीभी नहीं, तथा मांस जो है, तिसकी रुधिरसेंती उत्पत्ति होती है, अरु विष्टेके रससें वृद्धि होती है, तथा लहु जिसमें भरा रहता है, अरु कृमि जिसमें उत्पन्न होते हैं,ऐसे मांसकों कौन बुद्धिमान् खाता है ? आश्चर्य तो यह है कि ब्राह्मण लोक शुचिमूल तो धर्म कहते हैं,अरु सप्त धातुसें जो मांस हाड बनते हैं, तिस मांस हाडकों मुखमें दांतोसें चवाते हैं, अब उनको कुत्तों के समान समजीयें कि शुचिधर्मवाले मानीये ? यह आश्चर्य हैं, जिन

इष्टोंकी ऐसी समझ है, कि अन्न और मास यह दोनो एक सरीखे है, तिनकी बुद्धिमें जीवित अरु मृत्युके देनेवाले अमृत और विषन्नी तुल्यही है,
अरु जो जडबुद्धि ऐसा अनुमान करते है,कि मास खाने योग्य है,इति प्राणीका अग होनेसे यह हेतु उदनादिवत् यह दृष्टांतसे यह मासन्नी प्राणीका अंग है, इस वास्ते मासन्नी खाने योग्य है,तब तो गौका मूत तथा माता, पिता, न्नार्या, वेटी, इनका मूत पुरिषन्नी क्यो नहीं पीते खाते है ? क्योंकि यहन्नी प्राणीका अग है, तथा अपनी न्नार्याकी तरें अपनी माता, वहिन, वेटीकों क्यो नही गमन करते है ? स्त्रीत्व अरु प्राणी अंगत्व सर्व जगे वरावर है, तथा जैसे गौका दूध पीते है, तैसे गौका रुधिर तथा माता पितादिकोका रुधिरन्नी क्यों नहीं पीते है ? क्योकि प्राणी अंग हेतु तो सर्व जग्गे तुल्य है, इस वास्ते जो अन्न और मास इन दोनोको तुल्य जानते है, वेन्नी महा पापीयोंके सिरदार है,

तथा शंखकों शुचि मानते है, परंतु पशुके हाडकों कोइ शुचि नही मानता, इस वास्ते अन्न और मास यद्यपि प्राणी अग है, तोन्नी अन्न न्नक्ष्य है, अरु मांस अन्नक्ष्य है, एक पंचेंद्रिय जीवका वध करकें जो मांस खाता है, जैसी तिसको नरकगति होती है, तैसी खोटी गति, अन्न खानेवालेकों नही होती है, क्योंकि अन्न मास नही हों सक्ता है, मांसकी तसीरोंसे अन्नकी तसीरे और तरेकी है, मास महाविकारका करने वाला है, तैसा अन्न नही. इत्यादि विलक्षण स्वन्नाव है, इस वास्ते मास खाने वालोंकी नरकगति जान कर सत पुरुष अन्नके न्नोजनसे तृप्ति मानते है,अरु सरस पदकों प्राप्त होते है, यह तो मासके दूषण श्रीहेमचद्र सूरिकृत योगशास्त्रके अनुसार लिखे हैं अरु इस कालमेंन्नी युरूपियन लोक जो बुद्धिमान् है, उनोनेन्नी मास खानेमे चौवीस दूषण प्रगट करे है, अरु मदिरा पीनेसे जो खरावीया होती है, तिनकी तो गिणतीन्नी नहीं है,इस वास्ते मदिरा अरु मास यह दोनों अन्नक्ष्यको श्रावक त्यागे यह सातवा अन्नक्ष्य कहा

८ आठमा अन्नक्ष्य माखण है, क्योकि जैन मतके शास्त्रानुसारे ग्रासे वाहिर काढे माखणको जब अंतर मुहूर्त्त अर्थात् दो घडीके लगन्नग काल व्यतीत हो जाता है, तब उस माखणमे सूक्ष्म जीव तद्वर्णके उत्पन्न हो जाते हैं, इस वास्ते माखण खानां वर्जित है जैन लोकोकों ग्रासे वाहिर

अहो शब्द उपहासे ॥यथा॥ करनाणां विवाहे तु, रासनास्तत्रगायनाः ॥ परस्परं प्रशंसंति, अहो रूपमहोध्वनिः ॥ १ ॥ यह नवमा अनक्ष्य कहा.
१० दशमा पाणीकी बनी हूइ बरफ अनक्ष्य है,क्योंकि यह असंख्य अपकाय जीवोंका पिंम है इसके खानेसें चेतना मंद होती है अरु तत्काल शरदी करती है कुछ बल वृद्धिनी नहीं करती है अरु वीतराग अर्हंत सर्वज्ञ परमेश्वरने, निषेध कराहै इस वास्ते यह अनक्ष्य है.

११ अफीम प्रमुख विषवस्तुके खानेसें पेटमें कृमि गंमोलादिक जो जीव होते हैं सो मरजाते हैं विष खानेसें चेतना मुरफा जाती है अरु जे कर खानेका ढबपड जाता है तो फेर छूटना मुस्किल होता है वखत पर अमल न मिले तो क्रोध उत्पन्न होता है शरीर शिथिल होजाता है अरु जो अमली होजाता है, उसकों व्रत नियम अंगीकार करना डुक्कर है अमलीका स्वनाव बदल जाता है जब अमल खाता है,तब एक रंग होता है अरु जब अमल उतरजाता है तब दूसरा रंग होजाता है तथा स्वतंत्रता छोड कर पराधीन होना पडता है इसके खानेमे स्वादनी बुरा है तथा विष खाने वाला जहां लघुनीत वडीनीत करता है तिस क्षेत्रमें त्रस थावर जीवोंकी हिंसा होती है सोमल, वछनाग, मीग, तेलीया, संखीया, हरताल, प्रमुख ये सर्व विषहीमें जानने इसके खानेका त्याग करना.

१२ करकओले (घडे) जे आकाशसें गिरते हैं यहनी अनक्ष्य है.

१३ सर्वजातकी कच्चिमट्टि अनक्ष्य हैं कच्चि सचित्तमट्टि नाना प्रकारकी असंख्य जीवात्मक जाननी मट्टी खानेसें पेटमें बहुतजीव उत्पन्न होजाते हैं तथा पांमु रोग, आम वात पित्त पथरी प्रमुख बहुत रोग उत्पन्न होजाते हैं बहुत मट्टी खाने वालेका पीला रंग होजाता है तथा कितनीक जातकी मट्टीमें मैंमक प्रमुख जीवोंकी योनी है इस वास्ते अनक्ष्य है.

१४ रात्रीनोजन अनक्ष्य है रात्रिनोजन मैं तो प्रत्यक्षसें दूषण इस लोकमें है अरु परलोकमें डःखका हेतु है रात्रिमें चारों आहार अनक्ष्य है रात्रिमें जो जैसे रंगका आहार होता है तिसमें तैसे रंगके जीव जिनका नाम तमस्काय जीव हैं वो उत्पन्न होते हैं तथा आश्रित जीवनी बहुत होते हैं तथा रात्रिमे उचित्त अनुचित्त वस्तुका नेल संनेल हो जाता है तथा रात्रिनोजन करनेसें प्रसंग दोष बहुत लगते हैं सो किसतरेंकि जब

रात्रिकों खावेगा तब नित्य रात्रकों भोजन करने वास्ते रसोइभी करनी पडेगी तिसमें जीवोंका संहार होवेगा श्रावकके कुलका आचार भ्रष्ट होजाता है सूक्ष्म त्रस जीव नजरमे नहीं आते है कदापि दीखभी जायें तोभी यत्न नहीं होता है जब अग्नि बलतीहै तब पासकी भीतमे रात्रिकों जो जीव आश्रित है वो तपसे आकुल व्याकुल होकर अग्निमें गिर पडते है सर्प्पादिकोंके मुखसे जेकर भोजनमे लाल गिरे तब कुटुबका तथा अपणी आत्माका विनाश होवे तथा पतंगीये प्रमुखपडे तथा छत्तमें अरु छपरमे रात्रिकों सर्प्प गिरली, छपकली, मकडी मछरादि बहुत जीव वसते है जेकर यें जीव भोजनमे खायें जायें तोभारी रोगोत्पन्न होजाते है यदुक्त योगशास्त्रे ॥ मेधापिपलिकाहत्ति, यूकाकुर्याज्जलोदरं ॥ कुरुते मक्षिकावांति, कुष्टरोगंच कोलिका ॥ १ ॥ कंटकोदारुखंडंच, वितनोतिगलव्यथा ॥ व्यंजनातर्निपतित, स्तालुविध्यति वृश्चिक ॥ २ ॥ विलग्नश्च गलेवाल , स्वरभंगायजायते ॥ इत्यादयोदृष्टदोषा , सर्वेषा निशिभोजने ॥ ३ ॥ अर्थ –कीडी अन्नादिमें खाइ जावेतो बुद्धिको मंद करती है तथा यूंका (जूके) खानेसे जलोदर करती है, मक्षी वमन करती है, मकडी कुष्ठ रोग करती है,अरु वेरी प्रमुखका कांटा तथा काष्टका टुकडा गलेमे पीडा करता है तथा वटेरे आदिके व्यंजनमे जेकर विछु आया जावेतो तालुयोंकों वींधता है इत्यादि रात्रिभोजन करनेमे दृष्ट दोष सर्वलोकोके देखनेमें आते है तथा रात्रिभोजन करता हूआ अवश्य पाक अर्थात् रसोइकरनी पडेगी तिनमें आवश्य षट्कायके जीवोंका वध होवेगा भाजन धोनेंसे जलगत जीवोंका विनाश होता है जलगेरनेसे भूमिमें कुथु कीडा प्रमुख जीवोंकी घात होती है इसवास्ते जिसके जीव रक्षणेका आकाक्षा होवे वो रात्रि भोजन न करे

प्रश्न जहा अन्नभी राधना न पडे भाजनभी धोनें न पडे असे जो वने वनाये लड्डु खज्जुर द्राक्षादि भक्ष है तिनके खानेमें क्या दोष है?

उत्तर – श्लोक ॥ नाप्रेक्ष्यसूक्ष्मजतूनि, निश्याद्यात्प्राशुकान्यपि ॥ अप्युत्केवलज्ञानै, नर्हितंयन्निशाशनं ॥ १ ॥ अर्थ – मोदकादि फलादि यद्यपि प्राशुक अर्थात् अचेतनभी है तोभी रातकों न खाना चाहियें किस वास्ते कि सूक्ष्मजीव कुंथ्वादि देखे नहीं जाते है क्योंकि केवलीभी जिनकों सदा सर्वकुछ दीखता है सोभी रात्रिमें भोजन नहीं करते हैं केवली

सूक्ष्म जीवोंकी रक्षा वास्ते अरु अशुद्ध व्यवहार दूर करने वास्ते रात्रि कों नहीं खाते हैं यद्यपि दीवेके चादणेसें कीडी प्रमुख दीख जाती है तोभी मूलगुणकी विराधना टालने वास्ते रात्रि भोजन अनाचीर्ण है

अब लौकीक मतवालोंकि सम्मति देकर रात्रिभोजनका निषेध करते है श्लोक ॥ धर्मविन्नैवभुंजीत, कदाचनदिनात्यये ॥ बाह्याअपि निशी भोज्यं, यदभोज्यंप्रचक्ष्यते ॥ १ ॥ अर्थः— श्रुतधर्मका जानने वाला कदा चित् रात्रिभोजन न करे क्योंकि जो जिनशासनसें बाहिरले मतवाले है वेभी रात्रिभोजनको अभक्ष्य कहते हैं तिनका शास्त्रही लिखते हैं श्लोक ॥ त्रयीतेजोमयोभानु, रितिवेदविदोविदुः ॥ तत्करैःपूतमखिलं, शुभंकर्मसमाचरे त् ॥ १ ॥ अर्थः— ऋग यजुः साम लक्षण तीनो वेद तिनका जो तेज है सो सूर्य है आदित्यः त्रयीतनुः ऐसा सूर्यका नाम है ऐसावेदोंके जानने वाले जानते हैं तिस सूर्यकी किरणाकरके पिः— पूतं (पवित्रं) संपूर्ण शुभकर्म अंगीकार करे जब सूर्योदय न होवे तब शुभकर्म न करे तिन शुभकर्मोंका नाम लिखते हैं श्लोक ॥ नैवाहुतिर्नचस्नानं, नश्राद्धदेव तार्चनं ॥ दानंवाविहितंरात्रौ, भोजनंच विशेषतः ॥ २ ॥ अर्थः—आहुति सो अग्निमें घृतादि प्रक्षेप करना स्नानसो अंग प्रत्यंग प्रक्षाल करना श्राद्ध पितृकर्म देवपूजा दानदेना भोजन तो विशेष करकेही नज करना इतना काम रात्रिमें न करने.

तथा परमतके यहभी दो श्लोक हैं ॥ देवैस्तुभुक्तंपूर्वान्हे, मध्यानेऋ षिभीस्तथा ॥ अपरान्हेतुपितृभि,ः सायान्हेदैत्यदानवैः ॥ १ ॥ संध्यायां य क्षरक्षोभिः, सदाभुंक्तकुलोद्वहः ॥ सर्ववेलां व्यतिक्रम्य, रात्रौभुक्तमभोज नं ॥ २ ॥ अर्थः— सवेरेतो देवता भोजन करते है मध्यान्ह अर्थात् दो पहर दिन चढें ऋषि भोजन करते हैं अपरान्ह अर्थात् दिनके पीछले भागमें पितर भोजन करते है अरु सायान्हे विकाल वेलामें दैत्य दान व भोजन करते हैं संध्यामें रातदिनकी संधिमें यक्ष गुह्यक राक्षस खाते हैं ॥ कुलद्वहे तियुधिष्टरस्यामंत्रणं ॥ सर्वदेवताओंका वखत उलंघके रात्रिकों जो खाना है सो अभक्ष है यह पुराणोंके श्लोकों करके रात्रि भोजनके निषेधका संवाद कहा

अब वैद्यक शास्त्रकाभी रात्रिभोजनके निषेधका संवाद कहते हैं श्लो

क ॥ आयुर्वेदेपु ॥ हृन्नाभि पद्मसंकोच, श्चंडरो चिरपायत ॥ अतोनक्तं न भोक्तव्य, सूक्ष्मजीवादनादपि ॥ १ ॥ अर्थ – इस शरीरमें दो पद्म अर्थात् कमल है एकतो हृदय पद्म सो अधोमुख है दूसरा नाभिपद्मसो ऊर्ध्वमुख है यह दोनो कमल सो सूर्यके अस्त होनेंसे रात्रिमे सकोच हो जाते है किस कारणसे सकोच होजाते है? सूर्यके अस्त होजानेंसे सकोच हो जाते है इस वास्ते रात्रिको न खाना चाहिये तथा रात्रिको सूक्ष्म जीव खाये जाते है इस्से अनेक रोगोत्पन्न होते है यह पर पक्षका सवाद कह्या

अब फेर स्वमतसें रात्रिभोजनकानिषेध कहते है श्लोक ॥ ससक्तजीवसघातं भुजानानिशिभोजनं, राक्षसेभ्योविशिष्यते, मूढात्मान. कथनुते ॥ १ ॥ अर्थ –जब रात्रिमे खाता है तब जीवोका समूह भोजनमे पड जाता है असे अयरूप रात्रिके भोजनके खानेवालोंको राक्षसोसेभी क्योकर विशेष नही कहना? जब पुरुष जिनधर्मसे रहित होकर विरति नहीं करता है तब श्रृग पुछसे रहित पशु रूपही है यडुक्त ॥ वासरेचरजन्याच, य. खादन्नेवतिष्ठति ॥ श्रृंगपुछपरिभ्रष्ट ॥ स्स्पष्टपशुरेवहि ॥ १ ॥

अब रात्रिभोजन निवृत्तिके वास्ते पुण्यवतोकों अभ्यास विशेष दिखाते है श्लोक ॥ अन्होमुखेवसानेच, योद्वेद्वेघटिकेत्यजेत् ॥ निशाभोजनदोषज्ञो, ऽश्नात्यसौपुण्यभाजनं ॥१॥ अर्थ –दिन उदयमे अरु अस्त समयमें दो दो घडी वर्जनी चाहिये क्योंकि रात्रि निकट होनेसे वर्जनी चाहिये इसी वास्तें आगममे सर्व जघन्य प्रत्याख्यान मुहूर्त्त प्रमाण नमस्कार सहित कहते है रात्रिभोजनके दूषणोका जानकार श्रावक दो घटी जब शेष दिन रहे तब भोजन करे जेकर दो घडीसे थोडादिन रहे भोजन करे तो रात्रिभोजनके प्रत्याख्यानका उसको फल नहीं होता है जेकर कोइ रात्रिको नभी खावे परतु जो उसने रात्रिभोजनका प्रत्याख्यान न करा है तो उसकोभी कुछ फल नहीं मिलता है क्योकि उसने प्रतिज्ञा नही करी है जैसे रूपइये जमा करावे अरु व्याजका करार न करे उसको व्याज नहीं मिलता है इस वास्ते नियम जरुर करना चाहिये

अब रात्रिभोजन खानेका फल परलोकमें कहते है श्लोक ॥ उलूककाकमार्जार, गृध्रशवरशूकरा ॥ अहिवृश्चिक गोधाश्च, जायतेरात्रिभोजनात् ॥ १ ॥ अर्थ –उलू, काग. बिल्ली, गृध्रचील, बारांसिगा, सूअर, सर्प,

विछु, गोह, इत्यादि तिर्यंच योनीमें रात्रिभोजन खानेवाले मरके जाते हैं अरु जो रात्रिभोजन न करे उनकों एक वर्षमें ६ महीनेका तपका फल होता है ॥ इतिरात्रिभोजन अनदय संपूर्ण ॥ १४ ॥

१५ बहुबीजा फलभी अनदय है जिसमें गिर थोडा अरु बीज बहुत होवे सो वइंगण, पटोल, खसखस, पंपोटा प्रमुख फल, जिसमें जितने बीज हैं उसनें उतने पर्याप्त जीव हैं जेकर खानेमें तो थोडा आता है अरु जीवघात बहुत होती है तथा बहुबीजा फल खानेसें पित प्रमुख रोगों का हेतु होता है अरु जिनाज्ञा विरुद्ध है इति बहु बीजा अनदय ॥१५॥

१६ संधान अथाणा (आचार) तीन दिनसें उपरांतका अनदय है सो अथाणा (आचार) अंबका, निंबुका, पत्रका, करमदाका, आदेका, जिमीकंद का, गिरमिरका इत्यादिक अनेक वस्तुका अथाणा (आचार) बनता है चाहो घीका होवे वा तेलका होवे वा पाणीका होवे सर्व तीन दिन उपरांत अनक्ष है परंतु इतना विशेष है किः— जो फल आप खट्टे हैं अथवा दूसरी वस्तुमें खट्टा अंबादिकजो मेल देवे वेतो तीन दिन उपरांत अनक्ष है अरु जिस वस्तुमें खट्टाई नहीं है उसका अथाणा (आचार) एक रात्रिसें उपरांत अनदय है क्यों किः— इस आचार (अथाणामें) त्रस जीव उत्पन्न होते हैं अरु विद्न प्रमुखतो प्रथमही अनदय हैं तो फेर उनके अथाणे (आचारका) तो क्याही कहना है? आचारमें चौथे दिन निश्चय दोइंडीयजीव उत्पन्न होते है तथा जूग हाथ लग जावेतो पंचें डी, जीव उत्पन्न हो जाते हैं दूसरे मतवालोंके शास्त्रोंमेंभी अथाणा (आचार) नरकका हेतु लिखा है. इति अथाणा अनदय समाप्तः ॥१६॥

१७ द्विदल जिसकी दो दाल होजावें अरु घाणीमें पीले जिसमेंसुं तेल न निकले ऐसें सर्व अन्नको द्विदल कहते हैं तिस द्विदलके साथ जो गोरस अग्नि उपर नहीं चढा है ऐसा कच्चा दही कच्चा दूध छाछ इनके साथ नहीं जीमणा अरु जेकर दही दूध छाछ गरम करी होवे फेर पीछे चाहो ठंढा हो जावे उसमें जो द्विदल मिलाकर खावे तो दोष नहीं है

१८ सर्व जातके वैंगण एकतो बहु बीजे हैं इस वास्ते अनदय हैं तिसके बीटमें सूक्ष्म त्रस जीव रहते हैं तथा वैंगण कामकी वृद्धि करते हैं नींद अधिक करते हैं कुछक बुद्धिकोंभी ढीठ करते हैं इनका नामभी बुरा है इन

का आकारजी अछा नहीं है तथा कफ रोगके करता हैं इनके अधिक खा नेसे चौथइयातप खइ रोगादि होजाते है और सब जातका फलतो सूकेजी खानेमें आता है परतु यहतो सूकेजी खाने योग्य नही है क्योकि सूके पीछे अैसे हो जाते है कि मानों चूहोकी खलडी है ताते यह द्रव्य अशुद्ध है इस वास्ते अनक्ष्य है इति वैगण अनक्ष्य ॥१८॥

१९ तुछ फल जो ढींमु पीलु पेंचु तथा अत्यत कोमल फल सोजी अनक्ष्य है क्योकि अैसी वस्तु बहुतजी खावे तोजी तृप्ति नहीं होती है अरु खानेमे थोडा आता है और गेरना बहुत पडता है तथा फल खाया पीछें तिनकी गुठली जो मुखमे चबोलके गेरते है उसमे असख्य पचेंद्रीय सम्मूर्छिम जीव उत्पन्न होते है तथा जो पुरुष बहुत तुछफल खाता है तिसको तत्काल रोग होजाता है इति तुछफल अनक्ष्य ॥१९॥

२० अजाणा फल सो जिसका नाम कोइ न जानता होवे तथा न किसीने खाया होवे सो फलजी अनक्ष्य है क्योकि क्या जाने कजी जह र फल खाया जावे तो मरण हो जावे तथा बावला होजावे ॥ २० ॥

२१ चलित रस सो जिस वस्तुका काल पूरा होगया होवे अरु स्वाद बदल गया होवे सो जब स्वाद बदल जाताहै तब तिसका कालजी पूरा होजाता है जिसमेसे दुर्गंध आने लगे, तार पड जावे, सो चलितरस व स्तु है यहजी अनक्ष्य है रोटी, तरकारी, खीचडी, वडा, नरमपूरी, सीरा, हलवा इत्यादि रसोइकी अनेक वस्तु जिनमे पाणीकी सरसाइ है अैसी वस्तु एक रात उपरात अनक्ष्य है तथा द्विदल (दाल,) वडे, गुलगले, छु जीये जिनमें पाणीकी सरसाइ है वे चार पहर उपरात अनक्ष्य है जुग लीकी राब (घेंस) जो विना विदलके और उदन गाढमे राधा है सो आठ पहर उपरात अनक्ष्य है तथा वर्षाकालमे अठोरीतोंसे जो मिठाइ बनी होवे तो पदर दिन उपरात अनक्ष्य है जेकर पदर दिनसे पहिले बिगड जावे तो पहिलाही अनक्ष्य है अैसी तरे सर्वत्र जान लेना तथा उष्णकालमे मिठाइकी स्थिति बीस दिनकी है अरु शीतकालमे मिठाइ की स्थिति एक मासकी है उपरात अनक्ष्य है तथा दही सोला पहर उपरात अनक्ष्य है छाठजी दहीवत् जानलेनी इस चलित रसमे बे इंद्रिय जीव उत्पन्न होवे है इस वास्ते यह अनक्ष्य है ॥ २१ ॥

जानता, क्योंकि सचित्तके त्यागनेसें आत्मदमनता, औत्सुक्य निवारण ता, विषय कषायकी मंदता होती है, अरु जिसमें स्वदयागुण बहुत है, सोभी वो नहीं जानते इस वास्ते सचित्त त्यागनेमें बहुत लाभ है.

२ दूसरा द्रव्य नियम. सो धातुका वा शिला, काष्ठ, मट्टीका पात्र प्रमुख तथा अपणी अंगुली प्रमुख विना जो मुखमें खावे सो द्रव्य कहते हैं, "परिणामांतरापन्नं द्रव्यमुच्यते" तिनमें खीचडी तो मोदक, पापड, वडा, प्रमुख बहुत द्रव्यसें बनते हैं, तोभी परिणामांतरसें? एकही द्रव्य है, तथा एकही गेहूंकी बनी रोटी, पोली, घूगरी, बाटी प्रमुख है, तोभी यह सर्व भिन्न द्रव्य हैं, क्योंकि नामांतर स्वादांतर रूपांतर परिणामांतरसें द्रव्यांतर हो जाते हैं, तथा कोइक आचार्य और तरेंभी द्रव्यका स्वरूप कहते हैं, परंतु जो उपर लिखा है, सो बहुत वृद्ध आचार्योंको यही सम्मत है. इस वास्ते द्रव्योंका परिमाण करे कि आजसें इतने द्रव्य खाऊंगा?

३ तीसरा विगय नियम सो विगय दश प्रकारका है, तिनमें १ मधु, २ मांस, ३ माखन, ४ मदिरा, यह चार तो महाविगय हैं, इन चारोंका त्याग तो बावीश अभक्ष्यमें लिख आये हैं, शेष छै विगय रही, तिसका नाम कहते हैं. १ दूध, २ दही, ३ घृत, ४ तेल, ५ गुल. ६ सर्वजातका पकवान्न, इस छै विगयमेंसें नित्य एक, दो, तीनादि विगयका त्याग करे, अरु एकेक विगयके पांच पांच निवीताभी विगयके साथ त्यागनां चाहियें, जेकर निवीता त्यागनेकी मनमें न होवे, तब प्रत्याख्यान करनेके अवसर में मनमें धारे कि मेरे विगयका त्याग है, परंतु निवीताका त्याग नहीं.

४ चौथा उपानह. सो जूता पहिरनेका नियम करे, पगरखी, खडावा, मोजा, बूट, प्रमुख सर्वका नियम करे, क्योंकि यह सर्व जीवहिंसाके अधिकरण हैं, तिनमें श्रावकने जिनपूजादि कारण विना खडावां तो कदापि नही पहरनी, क्योंकि इनके हेठ जो जीव आ जाता है, वो जीता नहीं रहता है, अरु गृहस्थ लोकोंको जूते विना सरता नहीं इस वास्ते मर्यादा कर लेवे, फेर दूसरेके जूतेमें पग न देवे भूल चूक हो जावेतो आगार.

५ पांचमां तंबोल. सो चौथा स्वादिम नामा आहार है, उसका नियम करे, उसमें पान, सोपारी, लवंग, एलायची, तज. दारचीनी, जातिफल, जावंत्री, पीपलामूल, पीपर, प्रमुख करियाणेकी चीज, जिस्सें मुख शुद्ध हो

जावे,परतु उदर नरण न होवे,तिसकों तबोल कहते है तिसका परिमाण करे

६ छठावस्त्र नियम है सो पुरुषके पाचो अंगोके वस्त्रोंका वेष पहरने का तिसकी सख्या करे, कि आजके दिनमे मेरेको इतने ? वेष रखने है, तथा इतने खुल्ले वस्त्र उढने है, तथा रात्रिकों पहेरनेका वस्त्र तथा स्नान समय पहरनेका वस्त्रको वेषमे गिणती नही तथा समुच्चय वस्त्रकी सख्या रख लेवें, अजाण पणे चेल सचेल हो जावे तो आगार

७ सातमा फूलोके नोगका नियम करे,सो मस्तकमे रखनेवाले, अरु ग लेमे पहरने वाले, तथा फूलोकी शय्या, फूलोका तकीया, फूलोंका पखा, फूलोका चड्वा, जाली प्रमुख जो जो वस्तु नोगमे आवे, फूलकी बडी सेहरा, कलगी, अरु फूल जो सूघनेमे आवे, तिनका तोल परिमाण रखना

८ आठमा वाहन नियम करे, सो रथ, गाडी, घोडा, पालखी, उंट बल द, नाव, प्रमुख जिसके उपर बैठके जहा जाना होवें, तहां जावे, सो वाहन सर्व तीन तरेका है, १ तरता, २ फिरता, ३ उडता, तिनकी संख्याका नियम करे कि इसतरेकी अस्वारीमे आज चढना

ए नवमा शयन शय्याका नियम करे सो खाट, चौकी, पाट, तखत, कुरसी, पालकी, सुखासन प्रमुख जितने रखने होवे सो मनमे धार लेवे

१० दशमा विलेपनका नियम करे सो नोगके अर्थे केसर, चदन, चोवा, अतर, फूलेल, गुलाबादिक जो वस्तु अगके लगानी होवे, तिसका नाम मनमे धार लेवे, तथा अंगलूहणाजी इसीमे रख लेना। इसमे इतना विशेष है कि देवपूजा, देवदर्शन, इत्यादि धर्म करणी करता हाथमे धूप, अगरवत्ती लेनी पडे, तथा अपणे मस्तकमे तिलक करना पडे, तथा नग वानकी प्रतिमाको तिलक करना पडे, तिसका श्रावकको नियम नही है

११ इग्यारवा ब्रह्मचर्यका नियम करे, सो दिनमे अरु रात्रिमे इतनी वार स्त्रीसे मैथुन सेवना, उपरात स्त्रीसेनी नही सेवना, अरु हास्य विनोद आलिगन चुबनादिक करनेका नागा राखे

१२ बारहवा दिशिका नियम करे, सो अमुक दिशिमे आज मैने इत ने कोस उपरात नही जाना, इसमें आदेश, उपदेश, माणस नेजना, चिठी लिखनी, ये सर्व नियम आ गये, जैसें पाल सके. तैसे नियम करे.

१३ तेरहवा स्नानका नियम करे,सो आजके दिनमें तैलमर्दनपूर्वक तथा

बिनमर्दनपूर्वक कितनी वखत स्नान करनां, सो धार लेवें, इसमें देव पूजाके वास्ते नियमसें अधिक स्नान करनां पडे, तो व्रतभंग नहीं.

१४ चौदहवां भात पाणीका नियम सो चार आहारमेंसुं स्वादिमका तो तंबोलके नियममें परिमाण रख्या है, शेष तीन आहार हैं, तिनमें प्रथम अशन, सो भात,रोटी,कचौरी,सीरा प्रमुख, तिसका परिमाण करे, कि आजके दिनमें इतना सेर मैरेकों खाना है उपरांत त्याग है यहां घरमें बहुत परिवार होवे तिसके वास्ते बहुत अशनादि कराने पडे, तिसकी जयणा रखे, तथा औरोंके घरमें पंचायत जीमें तहां जाना पडे, उहां बहुत आदमीउंकी रसोई बना रखी है, उसका दूपण नियम धारीको नहीं, क्योंकि नियम धारीने तो अपणेही खानेकी मर्यादा करी है,परंतु न्यातिके खानेकी मर्यादा नहीं करी है,इस वास्ते अपणे खानेका परिमाण करे कि इतने सेर उपरांत मैं आज नहीं खाउंगा,तथा दूसरा पाणीतिसके पीनेका परिमाणकरे, कि इतने कलसो उपरांत पाणी मैंने आज नहीं पीनां, तथा तीसरा खादिम, सो मिठाई अथवा मिष्टान्न मोदकादिक तिनका परिमाण करे, यह चौदह नियम हैं, इहां अधिक भाव वाला श्रावक होवे, सो सचित्तादि परिमाणमें द्रव्यका परिमाण जूदा जूदा नाम ले कर रखे, तो बहुत निर्जरा होवे ॥ इति चौदह नियमका स्वरूप संपूर्ण ॥

अथ पंदरा कर्मादानका स्वरूप लिखते हैं यह पंदरह व्यापार श्रावककों निषेध हैं, सो करणां नहीं, क्यों कि इनके करणेसें बहुत पाप लगता है, जे कर श्रावककी आजीविका न चलती होवे तो परिमाण कर लेवे सो पंदराकर्मादानका नाम कहते हैं.

१ प्रथम इंगालकर्म, सो कोयले बना कर वेचने इंट बनाकर वेचने, भाडे खिलोने बनापका करकें वेचे, लोहारका कर्म, सोनारका कर्म, बंगडीकार, सीसकार, कलाल, भडीयारा, भडभूंजा, हलवाइ, धातुगालक,इत्यादि जो व्यापार अग्नि करकें होवे, सो सर्व इंगालकर्म हैं. इसमें पाप बहुत लगता है, अरु लाभ थोडा होता है, इस वास्ते यहकर्म श्रावक न करे.

२ दूसरा वनकर्म. सो छेद्या अनछेद्या वन वेचे, बगीचेके फल पत्र वेचे फल, फूल, कंदमूल, तृण, काष्ठ, लकडी, वंशादिक वेचे, तथा जो हरि वनस्पति वेचे, यह सर्व वनकर्म है.

३ तीसरा साडीकर्म सो गाडी,वहिल तथा अस्वारीका रथ,नावाँ,जहाज, तथा हल, दताल, चरखा, घाणीका अग, तथा धूंसरा, चक्की, उखली, मूशल, प्रमुख बना करकें वेचे, यह सर्व शकटकर्म है

४ चौथा नाडीकर्म सो गाडा, वलद, उंट, नैस, गधा, खच्चर, घोडा, नाव, रथ प्रमुखसे दूसरोका वोझ वहे नाडे करी आजीविका करे

५ पाचमा फोडीकर्म. सो आजीविका वास्ते कूप, वावडी, तलाव, खोदावे, हल चलावे, पत्थर फोडावे, खान खोदावे, इत्यादिक स्फोटिक कर्म है इन पाचो कर्मोमे वहूत जीवोकी हिंसा होती है इस वास्ते इन पाचोको कुकर्म कहते है अब पाच कुवाणिज्य लिखते है

१ प्रथम दंतकुवाणिज्य, सो हाथीका दात, उल्लूके नख, जीन, कलें जा, पक्षीयोका रोम, तथा गायका चमर, हरणके सींग, वारासिंगेके सींग, कृम जिस्से रेसम रंगते है, इत्यादिक जो त्रस जीवका अगोपां ग वेचना है, सो सर्व दतकुवाणिज्य है जब इन वस्तुओंके लेने वास्ते आगरमे जावे, तब निल्लादिक लोक तत्काल हाथी, गैंमा, प्रमुख जी वोकी हिंसामें प्रवर्त्त होते है, महा पाप अनर्थ करे, तहां जानेसे अ पणा परिणामनी मलिन हो जाते है, कदाचित् लोनपीडित हो कर निल्ल व्याधोको कहना पडेकि, हमको मोटा नारी दांत चाहीता है, तब वो लोक तत्काल हाथीको मारकें वैसा दात ल्यावेंगे, इस वास्ते जे कर वस्तु लेनी पडे, तब व्यापारीके पाससे लेवे, परतु आगरमे जाकर न लेवे, क्योंकि आगरमे जा कर एक चमर लेवे, तो एक गाय मरे इस वास्ते विचार करके वाणिज्य करे यह प्रथम दत कुवाणिज्य है

२ दूसरा लाखकुवाणिज्य सो लोहा, धावडी, नील, सज्जीखार, सा वन, मनसिल, सोहागा, इत्यादि तथा लाख, ये सर्व लाख कुवाणिज्य है, प्रथम तो त्रस जीवोका समूहहीसे लाख बनती है, अरु पीछें जब रग काढते है, तब तिसको अन्नसे सडाते है, तब त्रस जीवकी उत्पत्ति होती है, अरु महा दुर्गंध रुधिर सरीखा वर्ण दीखता है, तथा धावडीमें त्रस जीव उपजते है, कुथुयेनी वहुत होते है, अरु यह मदिरेके अंग है, तथा नीलको जब प्रथम सडाते है, तब त्रस जीव उत्पन्न होते है, पीछेंनी नीलके कुंडमे त्रसजीव बहुत उत्पन्न होते है,अरु नीला वस्त्र पहि

रनेसें उसमें जू लीखादि त्रसजीव उत्पन्न होते हैं, तथा हरताल मनसिलकों पीसती वखत जो यत्न न करे, तो मरकी प्रमुख अनेक जीव मर जाते हैं.

३ तीसरा रस कुवाणिज्य. सो मदिरा, मांस, इत्यादि वस्तुका व्यापार महा पापरूप है, तथा दूध, दहीं, घृत, तेल, गुड, खांड़ प्रमुख जो ढीली वस्तु है, इसका जो व्यापार करनां सो रसकुवाणिज्य है. इसमें अनेक जीवोंकी घात होती है. वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

४ चौथा केशकुवाणिज्य है. सो द्विपद जो मनुष्य, दास, दासी प्रमुख, खरीद, कर वेचनें; तथा चौपद जो गाय, घोडा, भैंस प्रमुख खरीदके वेचनें तथा पंखीयोंमें तीत्तर, मोर, तोता, मैंनां, बटेरा प्रमुख वेचे, इस वाणिज्यमें पाप बहुत है. इस वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

५ पांचमा विष कुवाणिज्य. सो शंखीया (सोमल) वछनाग, अफीम, मनसिल, हरताल, चरस, गांजा प्रमुख तथा शस्त्र जो धनुष, तलवार, कटारी, छुरी, बरछी, फरसी, कुहाडी, कुशी, कुदाल, पेसकबज, बंदूक, ढाल, गोली, दारू, बक्तर, पाखर, जिलम, तोप प्रमुख जिन करकें संग्राम करते हैं, तथा हल, मूशल, उखल, दंताली, कर्वत, दात्री, गोला, हवाइ, पटाका, कुहक, शतघ्नी प्रमुख सर्व हिंसाहीका अधिकरण है इनका जो व्यापार करनां, सो सब विषवाणिज्य है. इसमें बहुत हिंसा होती है, ये पांच कुवाणिज्य हैं. अब पांच सामान्य कर्म कहते हैं.

१ प्रथम यंत्रपीलन कर्म. सो तिल सरसों, इक्षुआदि पीलाय करकें वेचना, यह सर्व जीवहिंसाके निमित्तरूप यंत्रपीलन कर्म है.

२ दूसरा निर्लांछन कर्म. सो वैल घोडाकों खस्सी करणां, घोडे, बलद, ऊंट प्रमुखकों दाग देनां, कोतवालकी नौकरी, जेलखानेका दरोगा ठेका लेनां, मसूल इजारे लेनां, चोरोंके गाममें वास करनां, इत्यादि जो निर्दयपणेका काम है, सो सर्व निर्लांछन कर्म है.

३ तीसरा दावाग्निदान कर्म. सो कितनेक मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव धर्म मानके वनमें आग लगा देते हैं, वो अपने मनमें जानते हैं कि नवा घास उत्पन्न होवेगा तब गौ चरेंगी, भिल्लादिक लोक सुखसें रहेंगें, अन्न उपजेगा, इत्यादि कार्य अज्ञानपणेसें धर्म जाणके करे, आग लगानेंसें लाखो जीव मरजाते हैं, उस वास्ते आग न लगानी चाहियें.

४ चौथा शोषणकर्म. सो वावडी, तलाव, सरोवर, इनका जल अप णे खेतमें देवे, जब पाणीकों बहार काढे, तब लाखो जीव जल रहित त डफडके मर जाते है,इस वास्ते सर्वपाणी शोषण न करना.

५ पाचमा असतीपोषण कर्म. सो कुतूहलके वास्ते कुत्ते, बिल्ले, हिंसक जीवोंको पोषे, तथा दुष्ट नार्या, अरु दुराचारी पुत्रको मोहसे पोषण करे, साचा झूठा जाणे नही, जो मनमे आवे सो करे, तिनको राजी रखे, तथा वेचणे वास्ते दुराचारी दास दासीको पोषे, सो असती कर्म कहिये तथा माछी, कसाई, वागुरी, चमार प्रमुख बहु आरंभी जीवोके साथ व्या पार करे, तिनकों द्रव्य तथा खरची प्रमुख देवे, यहभी दुष्ट जीवोंका पोषण है, जे कर अनुकंपा करके श्वान (कुत्ते) प्रमुख किसी जीवको पुण्य जान कर देवे, तो उसका निषेध नही, तथा अपणे महेलमे जो जीव होय तिनकी खबर लेनी पडे, तथा अपणे कुटुंबका पोषण करना पडे, इसमें पूर्वोक्त दोष नही क्योंकी यह लोकनीति राजनीतिका रस्ता है, यह पाच सामान्य कर्म कहा इति पदंग कर्मादान संपूर्ण.

अब यह सातमे भोगोपभोग व्रतका पाच अतिचार लिखते है।

१ प्रथम सचित्त आहार अतिचार सों मूलभागेमे तो श्रावक सर्व स चित्तका त्याग करे, जेकर नही करे, तो परिमाण कर लेवे, तदा सर्व स चित्तके त्यागी तथा सचित्तके परिमाणवाले जो अनाभोगादिकसे सचि त्त आहार करे, तथा जल, तीन उकाली आजानेसें शुद्ध प्राशुक होता है, तिनमे एक उकाला, दो उकालाका पाणी तो मिश्र उदक कहा जाता है, तिस पाणीको अचित्त जाणके पीवे तथा सचित्त वस्तु अचित्त होनेमे देर है, उस वस्तुकों अचित्त जान कर खावे, तो प्रथम अतिचार लागे

२ दूसरा सचित्त प्रतिबद्धाहार अतिचार सो जिसके सचित्त वस्तुका नियम है, सो तत्काल खैरकी गाछसे गूंद उखेडके खावे, गूंद तो अचित्त है परंतु सचित्तके साथ मिला हूआ था सो दूषण लगता है, तथा पका हूआ अंब खिरणी बेर प्रमुखको मुखसे खावे,अरु मनमे जानता है कि मै, तो अचित्त खाता हू, सचित्त गुठलीको तो गेर देउगा, इसमे क्या दोष है? ऐसा विचार करके खावे तब दूसरा अतिचार लागे

३ तीसरा अपकौषधि भक्षण अतिचार सो बिना गल्या आटा, अ

ग्निका संस्कार जिसकों करा नहीं, ऐसा कच्चा आटा खावे, क्योंकि श्री सिद्धांतमें आटा पीस्यां पीछे विना छाण्यां कितनेही दिन मिश्र रहता है, सो कहते हैं. श्रावण, भाद्रव मासमें अनछान्या आटा पीस्या पीछें पांच दिन मिश्र रहता है, आश्विन और कार्त्तिक मासमें चारदिन मिश्र रहता है, मगसिर और पोष मासमें तीन दिन मिश्र रहता है, माघ अरु फागुण मासमें पांच प्रहर मिश्र रहता है, चैत्र अरु वैशाख मासमें चार प्रहर मिश्र रहता है, ज्येष्ठ अरु आषाढ मासमें तीन प्रहर मिश्र रहता है, पीछें अचित्त हो जाता है, सो मिश्र खावे, तो तीसरा अतिचार लागे.

४ चौथा डुपक्कौषधि भक्षण अतिचार. सो कछुक कच्चा, कछुक पक्का जैसें सर्व जातके पोंक अर्थात् सिट्टे जो मक्की, जवार, बाजरे, गेहूं प्रमुखके बीजोंसें भरे हूए होते है, इनकों अग्निका संस्कार कर्‍यां, कछुक कच्चे पक्के हो जावे तिनकों अचित्त जान कर खावे, तो चौथा अतिचार लागे.

५ पांचमा तुच्छौषधि भक्षण अतिचार. सो तुच्छ नाम इहां असारका है, जिसके खानेसें तृप्ति न होवे, तिसके खानेमें पाप बहुत है, जैसें चणाका फूल खावे, तथा बेरकी गुठलीमेंसें गिर निकालके खावे, तथा वाल, समा, मूंग, चवलाकी फली खावे, इसके खानेसें प्रसंग दूषणभी लग जाते हैं, क्योंकि कोइ बनस्पति अतिकोमल अवस्थामें अनंतकाय भी होती है, तिसके खानेंसें अनंतकायका व्रतभंग हो जाता है, यह पांचमा अतिचार कह्या ॥ इति सप्तम भोगोपभोग व्रतं संपूर्णं ॥ ७ ॥

अथ आठमा अनर्थदंड विरमणव्रतका स्वरूप लिखते हैं. प्रथम अर्थदंड उसकों कहते हैं, कि जो अपणे प्रयोजनके वास्ते करे, सो धन, धान्य, क्षेत्रादि नवविध परिग्रहमें हानी वृद्धि होवे, तब करे, क्योंकि धनवृद्धिके निमित्त संसारी जीवकों बहुत पापके कारन सेवने पडते हैं, तब सत्य झूठ बोले विना रह्या नहीं जाता है, पापके उपकरणभी मेलने पडते हैं, जब कोई मनसूबा करनां पडता है, तब अनेक विकल्प रूप आर्त्तध्यान करना पडता है, क्योंकि धनादिक परिग्रह आजीविकाके अर्थ हैं, तिस वास्ते धनकी वृद्धि वास्ते जो जो पाप करता है, सो सो सर्व अर्थ दंड है. दूसरा जब धनकी हानि होती है, तब धनहानि दूर करणे वास्ते अनेक विकल्प रूप पाप करता है, सोभी अर्थ दंड है, क्योंकि संसारके सुखका कारण

रूप धन व्यवहार है, तिस व्यवहारके वास्ते जो पाप करनां पडे, सो अर्थदंम है तीसरा अपणा स्वजन कुटुंब परिवारादिकके वास्ते अवश्य जो जो पाप सेवना पडे, सो सो सब अर्थ दंम है चौथा पांच प्रकारकी इंद्रियोके नोग वास्ते जो पाप करे, सोजी अर्थ दंम है, इन पूर्वोक्त चारों प्रयोजनो विना जो पाप करे,सो अनर्थदंम जानना तिसके चार नेद है, सो कहते है प्रथम अपध्यान अनर्थदम, दूसरा पापोपदेश अनर्थदंम, तीसरा हिंसप्रदान अनर्थदंम, चौथा प्रमादाचरित अनर्थदम है इनमेंसू प्रथम जो अपध्यान अनर्थदम है, उसके फेर दो नेद है, एक आर्त्तध्यान दूसरा रौद्रध्यान,तिनमे फेर आर्त्तध्यानके चार नेद है, सो पृथक् पृथक् कहते है

१ प्रथम अनिष्टार्थ संयोगार्त्तध्यान. सो इंद्रिय सुखका विघ्नकारी ऐसे अनिष्ट शब्दादिकके सयोग होनेकी चिता करे कि मत मेरेको अनिष्ट शब्द मिले

२ दूसरा इष्टवियोगार्त्तध्यान. सो हमको नवविध परिग्रह अरु परिवार जो मिला है, इसका वियोग मत होवे, ऐसी चिता करे, अथवा इष्ट जो माता, पिता, स्त्री, पुत्र, मित्र प्रमुख है, इनके विदेश गमनसें तथा मरण होनेसें वहुत चिता करे, खाए पीए नहीं, वियोगके डुखसे आत्मघात करनेका विचार करे, अथवा सर्वदिन क्रोधहोमे रहे, तथा घरमे यह कुपूत है, यह नाई वेदिल है, मेरे पिताका मेरे उपर मोह नहीं है, यह स्त्री मुऊकों वहुत खराव मिली है, सो मेरे उपर दिल नहीं देती है, इसका कोई उपाय होवे तो अछा है, अरु स्त्री मनमें विचारे कि मुऊे शौकन खराव करती है, मेरे पतिको नूलाती है, क्या जाने किसी दिन पतिसें मुऊे दूर करेगी? इस वास्ते इस रामका कुठ उपाय करनां चाहिये, तथा सेवक ऐसा विचार करे कि —मेरे स्वामीके आगें फलाना मेरा डुश्मन गया है,सो जरूर मेरी खोटी कहेगा, मेरी रीत नातकों अदल वदल कर देवेगा, मेरे स्वामीको जूठ साच कह कर मेरी नौकरी ठुडा देवेगा, तव मैं क्या करूंगा? इसका कुठ उपाय करना चाहिये, तिसके निग्रह वास्ते यंत्र, मंत्र, कामन, मोहन, वशीकरण करे,तिसको फूठा कलंक देवे, वलिदान देने वास्ते त्रस जीवकों मारे, यह सव अपने शत्रुके निग्रह वास्ते करें तथा मूठ चलाके मारा चाहे, परंतु वो मूर्ख यह नहीं विचारता कि —जे कर तू अपणे दिलसें सचा है, तो तुऊे क्या फिकर है? अरु जहा तक अगलेका पु

ण्योदय है, तहां तक तूं यंत्र, मंत्रसें उसका कुछ बुरा नहीं कर सकता है, ये सर्व संसारी जीवकी मूर्खता है, यह सर्व अनर्थदंम हैं. तथा प्रथम अ पणी आतुरतासेंति मनमें कुविकल्प करे, कि मेरे वैरीके कुलमें अमुक जब रदस्त उत्पन्न हूआ है, सो मेरेकों दुःख देवेगा, इसकी राजदरबारमें आबरू जावे, अरु दंम होवे, तो ठीक है, तथा इसका कोई छिद्र मिले तो सरका रमें कह कर इसकों गामसें निकलवाय देउं तो ठीक है, ऐसा विचार मू ढ अज्ञानी करता है. तथा यहां चोर बहुत पडते हैं, सो पकडे जाँय, फांसी दीये जाँय, तो बडा अच्छा काम होवे, तथा अमुक पुरुष, मेरे उप र हो कर चलता है, इस हरामजादेका खूब बंदोबस्त करना चाहियें, ज्युं फेर कदापि शिर न उठावे, इत्यादि खोटे विकल्प करकें अनर्थ करे, क्योंकि किसिकी चिंतवणासें दूसरोंका बिगाड नहीं होता है, जो कुछ हो ना है, सो तो सब पुण्य पापके अधीन है, तो फेर तूं काहेकों [illegible] मनोरथ करता है ? क्यों कि:– यह विना प्रयोजनके पाप लगता है, तो अनर्थदंम है, ये दूसरा आर्त्तध्यानका भेद कह्या.

३ तीसरा रोगनिदानार्त्त ध्यान. सो मेरे शरीरमें किसी वखत रोग होता है, वो न होवे तो अच्छा है, लोकोंकों पूछे कि अमुक रोग क्यों कर न हो वे ? तब कोइ कहेकि अमुक अमुक अनक्ष्य वस्तु खानेसें नहीं होता है, तब अनक्ष्नी खा लेवे, तथा जब शरीरमें रोग होवे, तब बहुत हाय हाय श ब्द करे, बहुत आरंन करे, घडी घडीमें ज्योतिषीकों पूछे, कि मेरा रोग क ब जायगा ? तथा वैद्यकों वार वार पूछे, तथा मेरे उपर किसीने जादु कि [illegible] है ? ऐसी शंका करे, अरु रोग दूर करने वास्ते कुल विरुद्ध, धर्म [illegible] करे, तथा अनक्ष्य खानेमें तत्पर होवे, रोग दूर करनेके वास्ते औषधके जं डी, बूटी, मंत्र, यंत्र, तंत्र, सीखे तथा सीखे हूए किसी वखत मेरे [illegible] छूट वेगा, यह रोगनिदानार्त्तनामा आर्त्तध्यानका तीसरा भेद है.

४ चौथा अग्रशोचनामा आर्त्तध्यान. सो अनागत कालकी चिंता करे, कि आवता वर्षमें यह विवाह करुंगा, तथा ऐसी हाट, हवेली बनाउंगा, कि जिसकों देख कर सर्व लोक आश्चर्य करे, तथा अमुक क्षेत्रमें बगीचा लगाना है, जिसके आगें सर्व बाग निकम्मे होजावें सर्व दुश्मनकी छाती जले, तथा अमुक वस्तुका मैनें सौदा करा है, सो वस्तु आगेकों महंगी हो

जावे तो ठीक है मुझे बहूत नफा मिल जावे, इत्यादि अनागत कालकी अपेक्षा अनेक कुविकल्प शेखशल्लीकी तरे चिंते, इसका नाम अग्रशोच नामा आर्त्तध्यान है इति आर्त्तध्यानका संक्षेप स्वरूप लिखा ॥

अथ रौद्रध्यानका स्वरूप कहते है? प्रथम हिंसानंद रौद्र. सो त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा करके मनमे आनंद माने, तथा बहूत पाप करकें सुंदर हाट, हवेली, बाग प्रमुख बनावे उसको देखके जब लोक प्रशंसा करे, तब मनमे सुख माने कि मैंनें कैसी हिकमतसे बनाया है, मेरे समान अकल किसीमेंनी नही है, तथा रसोइ प्रमुख खानेकी वस्तु बनावे, तब बहुत मसाले माले, जक्ष वस्तुको अनक्ष सदृश बनाके खावे, तथा मानके उदयसें औसी जमणवार (ज्योंनार) करे, कि जिसको सर्व लोक सराहे, तथा राजाओकी लडाइ सुन कर खुसी माने, एक राजाका पक्षी बन कर महिमा करे, दूसरेकी निंदा करे, तथा अमुक योद्धेने एक तरवारसे सिंहादिक मारा है, वाह रे सुनट! औसी प्रशंसा करे, तथा अपणे डुश्मनको मरा सुन कर राजी होवे, मुख मरोडे, मूछ उपर हाथ फेरे, हाथ घसे, अरु मुखसे कहे कि ये हरामखोर मेरे पुण्यसे मर गया, औसी औसी खोटी चिंतवणा करके कर्म बांधे, परंतु औसा न विचारेकि— दूसरा कोइ किसीका मारणे वाला नही है, उसकी आयु पूरी हो गइ इस वास्ते मर गया, एक दिन इसीतरे तूंनी मर जायगा फूग अनिमान करना ठीक नही, औसा विचार न करे, सो हिंसानंद रौद्रध्यान कहियें.

२ दूसरा मृषानंद रौद्रध्यान सो कूठ बोलके खुशी होवे अरु मनमे औसा चिंते कि मैंने कैसीकबात बनाके करी किसीकोंनी खबर न पडी, मैं बडा अकलवंत हूं? मेरे समान कौन है? मेरे सन्मुख कौन जवाब करनेकु समर्थ है? बोलना है, सो करामात है, बोलना किसीको आता है, इस अवसरमे जेकर मै ना होता, तो देखते क्या होता? औसा मनमे फूले और अपने डुश्मनको संकटमे गेरके मनमें आनंद माने अरु कहे कि देखा मैनें कैसी हिकमत करी? राज दरबारमे लोकोंकी चुगली करकें स्थानभ्रष्ट करे, मनमे खुसी माने इत्यादि मृषानंद रौद्र है.

३ तीसरा चौर्यानंद रौद्र सो जद्रक जीवोसे कूड कपटकी बाता बनाकरके बहु मूली वस्तु थोडे दाममें ले लेवे. तथा पराया धन, लेखेसे अधि

क लेवे, तथा चोरी करकें किसीकी वहीमें अधिका उंगा लिख देवे, आप पैसा खाय जावे, अनेक कपटकी कलासें शेठकों राजी कर देवे, पीछें विचारे कि मैं कैसा चतुर हूं, कि पैसाभी खाया, अरु सेठके आगें सच्चाभी बन गया? तथा व्यापार करे, तब खोटी झूठी सौगंद खावे, मीठा बोल कर दूसरोंकों विश्वास उपजा कर न्यून अधिक देवे, लेवे, अरु मनमें राजी होके कहेकि मेरे समान कमाऊ कौन है? तथा चोरी करकें मनमें आनंद मानें कि मैने कैसी चोरी करी, कि जिसकी किसकों खबरभी नहीं पडी? तथा झूठे खत पत्र बनाकर सरकारसें फत्ते पावे, तब मनमें बडा आनंदित होवे, जो में बडा चलाक हूं, मैनें हाकमकोंभी धोखा दीया, इत्यादि चौर्यानंद, सो रौद्र ध्यानका तीसरा भेद है.

४ चौथा संरक्षणानंद रौद्र. सो परिग्रह, धन, धान्य, बहुत बढावे, पीछें औरभी इच्छा करे, पाप कुटुंबके पोषणे वास्ते परिग्रहकी वृद्धि करे, बहुत कुबुद्धि करे, जैसे तैसे कामकों अंगीकार करे, लोक विरुद्ध, राजविरुद्ध, कुलविरुद्ध, धर्मविरुद्धादिक कामकी उपेक्षा न करे, ऐसे करतां पूर्व पुण्योदयसें पाप परिग्रह पावे, धन बहुत हो जावे, तब मनमें बहुत खुशी माने कि इतना धन मैने एकिलाने पैदा कीया है,ऐसा और कौन हुस्यार है, जो पैदा कर सके? ऐसा अहंकार करे, अहंकारमें मग्न रहे, रातदिन मनमें चिंता रहे, कि मत कभी मेरा धन नष्ट हो जावे, रातकों पूरा सोवेभी नहीं, हाट हवेलीके ताले टटोलता रहे, सगे पुत्रकाभी विश्वास न करे, लोकोंकों कुबुद्धि सिखावे,इत्यादि संरक्षणानुबंधी रौद्रध्यान है,ये आर्त्त अरू रौद्र मिलकर प्रथम अपध्यानार्थदंडके भेद हैं, सो न करनां चाहियें.

२ अब दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थदंड कहते हैं.सो हरेक अवसरमें घर संबंधि तथा दाक्षिण्यता वर्जीके पापोपदेश करे, जैसें तुमारे घरमें वछडे बडे हो गये हैं, इनकों बधीया करकें समारो, नाकमें नथ घेरो, घोडेकों चाबक अस्वारकों देवो, वो ईसकों फेरकें सिखावे, तथा तुमारे क्षेत्रमें झाड बहुत हो रहा है, उसको काटना तथा जलाना चाहियें, इत्यादि जो पापकारी काम है, तिसका विना प्रयोजन अज्ञानपणेसें उपदेश करे, यह दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थदंड है.

३ तीसरा हिंस्रप्रदान अनर्थदंड, सो हिंसाकारी वस्तु गाडी,हल, शस्त्र

तलवारादि, अग्नि, मूशल, उखल, धनुष, तरकस, चक्र, छुरी, दात्र प्रमुख दूसरोंकों दाक्षिणता विना, मागे विना, देवे सो हिंसप्रदान.

४ चौथा प्रमादाचरण अनर्थदंड सो कुतूहलसें गीत, नाटक, तमाशा, मेला प्रमुख सुनने देखने जाना, इंद्रियोंकी विषय पोषणी, इहां कुतूहल कहनेसे जिनयात्रा, संघ, अष्टाह्मिहोत्सव, रथयात्रा, तीर्थयात्रा, इनके देखने वास्ते जावे, तो प्रमादाचरण नही, किंतु यह तो सम्यक्त्व पुष्टिके कारण है, तथा कामशास्त्र वात्सायनादिकोके कर्म तिनमें अत्यंत गृद्धि वार वार उसका अभ्यास करनां तथा जूआ खेलना, मद्य पीना, शिकार मारने जाना, तथा जलक्रीडा (तलाव प्रमुखमे कूदना) जल उछालना, तथा वृक्षशाखाके साथ रस्सा बांधकर झूलना (हिचना) हिंडोले (झुलाना) हिचना, तथा लाल, तीत्तर, वटेरे, कूकडे, मिंढे, भैंसें, हाथी, बुलबुल, इनको आपसमे लडानां तथा अपणे शत्रुके बेटे पोतेसे वैर रखना, वैर लेना, तथा भक्तकथा सो "मांस. कुलमाष, मोदक, उंदनादि बहूत अछा भोजन है, जो खाते है, उनको बडा स्वाद आता है, अरु हमभी यह खायगें" इत्यादि कहना, तथा स्त्री कथा, सो स्त्रीयोंके पहननेकी तथा अंगप्रत्यंग हावभावादि कथन रूप, तथा "कर्णाटी सुरतोपचारकुशला, लाटी विदग्धा प्रिये" इत्यादि तथा स्त्री के रूपोत्पादन, कुच कठन करणा, योनिसंकोच, इत्यादि स्त्री कथा करणी तिथा देशकथा सो जैसे दक्षिण देशमे अन्न, पाणी, अरु स्त्रीयोसे संभोग करनां बहूत अछा है इत्यादि तथा पूर्वदेशमें विचित्र वस्तु गुड, खंड, शालि, मद्यादि प्रधान चीजे होती है, तथा उत्तरदेशके लोक सूरमे है, घोडे बडे शीघ्र चलने वाले अरु दृढ होते है, तथा गेहूं प्रमुख धान्य बहुत होता है, तथा केशर, मीठी द्राक्ष, दाडिम, कौठादि जहां सुलभ है इत्यादि तथा पश्चिम देशमे इंद्रियकों सुखकारी सुख स्पर्शवाले वस्त्र है, इत्यादि तथा राजकथा सो जैसे हमारा राज बडा सूरमा है, बडा धनवान् है, अश्वपति तुरक इत्यादि है. यह जैसे चार अनुकूल कथा कही, ऐसे ही चारो प्रतिकूल कथाभी जान लेनी, तथा ज्वरादिरोग अरु मार्गका थकेवा, यह दोनो वर्जके संपूर्ण रात्रिको सो रहना (निद्रा लेनी) यह सर्व पूर्वोक्त प्रमादाचरणकों श्रावक वर्जे, तथा देशविशेषमेभी प्रमाद न करना, तथा जिनमंदिरमे कामचेष्टा, हासी, लडाइ, हसना, थूकनां, निंद

लेनां, चोर परदारिकादिकी खोटी कथा करनी, चार प्रकारका आहार खानां, यह चौथा अनर्थदंम है. इस व्रतके पांच अतिचार कहते हैं.

१ प्रथम कंदर्पचेष्टा. सो मुखविकार, भ्रूविकार, नेत्रविकार, हाथकी संज्ञा बतावे, पगकों विकारकी चेष्टा करके औरोकों हसावे, किसीकों क्रोध उत्पन्न हो जावे, कुठका कुठ हो जावे,अपणी लघुता होवे, धर्मकी निंदा होवे, ऐसी कुचेष्टा करे, सो प्रथम कंदर्पचेष्टा अतिचार है.

२ दूसरा मुखसेंती मुखरता करे, असंबंध वचन बोले, जिस्सें दूसरां का मर्म प्रगट होवे, कष्टमें गेरे, अपणी लघुता करे, वैर वधे, ढीठ, लबाड, चुगल खोरु, इत्यादि नाम धरावे,लोकोमें लज्जनीय होवे, इसी तरें बहुत वाचालपणा करणां, सो दूसरा मुखारिवचन अतिचार.

३ तीसरा भोगोपभोगातिरिक्त अतिचार है, सो यहां स्नान,पान,भोजन, चंदन, कुंकुम, कस्तूरी, वस्त्र, आभरणादिक अपणे शरीरके भोगसें अधिक करणे, सो अनर्थदंम है. इहां वृद्ध आचार्योंकी यह संप्रदाय है. कि:- तेल, आमले, दही प्रमुख, जे कर स्नानके वास्ते अधिक ले जावे, तो तद् लौल्यता करकें स्नान वास्ते बहुत लोक तलाव आदिकमें जायगे, तहां पाणीके पूरे, तथा अप्कायके जीवोंकी बहुत विराधना होवेगी, इस वास्ते श्रावककों ऐसे स्नान न करनां चाहियें. क्योंकि श्रावकके स्नानका यह विधि है कि:- श्रावकने प्रथम तो घरमेंही स्नान करनां चाहियें. तिसके अभावसें तेल, आमले, आकदिसें घरमेंही शिर घस करकें मैल गेर करकें तलावके कांठे उपरि बैठके अंजलिसें पाणी शिरमें झाल करकें स्नान करनां, तथा जिस फूलादिकमें जीवोंकी संसक्ति जाने, तिनकों परिहरे, ऐसे सर्व जगे जान लेनां. यह तीसरा भोगाधिक आरंभ अतिचार है.

४ चौथा कौकुच्य अतिचार. सो जिसके बोलने करनेसें अपणी तथा औरोंकी चेतना, कामक्रोधरूप हो जावे,तथा विरहकी बात संयुक्त कथा, दोहा, साखी, वैंत, झूलना, कवित, छंद, परजराग, श्लोक, शृंगाररसकी भरी हूइ कथा कहनी, यह चौथा काममर्म कथन अतिचार है.

५ पांचमा संयुक्ताधिकरण अतिचार. सो उखलके साथ मूसल, हलके साथ फाला, गाडीसें जुग, धनुषसें तीर, इत्यादि. इहां श्रावकने संयुक्त अधिकरण नहीं रखनां, क्योंकि संयुक्त रखनेसें कोइ ले लेवे, तो फेर ना

नहीं करी जाती है, अरु जब अलग अलग होवे, तब उसकों सुखसें उत्तर दे सकेगा, ये पांचमा अतिचार कहा ॥ इति अष्टमव्रत संपूर्ण ॥

अथ नवमा सामायिकव्रतका स्वरूप लिखते है इन पूर्वोक्त आगें व्रतोंकों तथा आत्मगुणोंकों पुष्टिकारक अविरति कषायमें तादात्म्यभावसें मिली अनादि अशुद्धता रूप विभाव परिणति, तिसके अभ्यासको मिटाने वास्ते अरु आत्मअनुभव करने वास्ते तथा सहजानंद स्वरूपरस प्रगट करने वास्ते यह नवमा शिक्षाव्रत है,अर्थात् शुद्ध अभ्यासरूप नवमा सामायिक व्रत लिखते है दो घडी काल प्रमाण समतामें रहना,राग द्वेषरूप हेतुओमे मध्यस्थ रहणा, तिसकों पंडित सामायिक व्रत कहते है, (सम) नाम है राग द्वेषरहित परिणाम होनेसे जो ज्ञान दर्शन चारित्ररूप मोक्ष मार्ग, तिसका ' आय" नाम लाभ होवे प्रशमसुख रूप इनका जो इक केता भाव सो सामायिक है, मन, वचन, कायकी खोटी चेष्टा एतावता आर्त्तध्यान तथा रौद्रध्यान त्यागके अरु सावद्य मन, वचन, काया, पाप चिंतन, पापोपदेश, पापकरणरूप वर्जके श्रावक सामायिक करे इहा आवश्यक शास्त्रमे लिखा है, कि जब श्रावक सामायिक करता है, तब साधुकी तरें हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमे देवस्नात्र, पूजादिक, न करे, क्यो कि भावस्तवके वास्ते द्रव्यस्तव करना है, सो भावस्तव सामायिकमे प्राप्त हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमे द्रव्यस्तव रूप जिनपूजा न करे, सामायिक करने वाला मनुष्य बत्तीस दूषण वर्जके सामायिक करे, सो बत्तीस दूषणमें प्रथम कायाके बार दूषण कहते है

१ सामायिकमें पग उपर पग चढा करके उंचा आसन (पालठी) लगाकर बैठे, सो प्रथम दूषण है, कारण कि गुरुविनयकी हानि कारक होनेतें यह अभिमानका आसन है,इस वास्ते जिस बैठनेंसें विनयगुण रहे,औ उद्धता मालुम न होवे, तथा अजयणा न होवे, ऐसे आसन उपर बैठे

२ दूसरा चलासन दोष. सो आसन स्थिर न रक्खे, बार बार आगे पीछें हलावे, चपलाइ करे, मुख्य मार्ग तो यह है, कि श्रावक एक जगे एकही आसन उपर सामायिक पूरा करे, अडिग पणेसे रहे, कदापि रोग निर्बलतादि कारण करकें एक आसन उपर टिका न जाय, फिरना पडे, तो उ

पयोग संयुक्त जयणा पूर्वक चरवलासें जहां तहां पूंजना प्रमार्जना करकें आसन फिरावे, यह पूर्वोक्त विधि न करे,तो दूसरा दूषण लगे.

३ तीसरा चलदृष्टि दोष है. सो सामायिक करे.पीछे नासिका ऊपरदृष्टि राखे, अरु मनमें शुद्ध उपयोग राखे, मौन पणेसें ध्यान करे, अरु सामायिकमें शास्त्राभ्यास करनां होवे, तो यत्नपूर्वक मुख आगें मुखवस्त्रिका दे कर, दृष्टि पुस्तक उपर रख कें पढे, अरु सुणे, तथा जब कायोत्सर्ग करे, तब चार अंगुल पीछें पग चौडा राखे, ऐसी योग मुद्रासें खडा हो कर दोनो बाहु प्रलंबित करे, दृष्टि नासिका उपर रखे, अथवा सज्जे (दहिने) पगके अंगूठे ऊपर रखे, यह शुद्ध सामायिक करनेकी विधि है, इस विधिकों छोडकें चपल पणेसें चकितमृगकी तरें चारोंदिशि आंखें फिरावे, सो तीसरा दोष है.

४ चौथा सावद्यक्रियादोष. सो क्रिया तो करे, परंतु तिसमें कछुक सावद्य क्रिया करे, अथवा सावद्य क्रियाकी संज्ञा करे, सो चौथा दोष.

५ पांचमा आलंबन दोष. सो सामायिकमें भींतादिकका आलंबन, अर्थात् पीठ लगा कर बैठे. यह विना पूंजी भींतमें अनेक जीव बैठे हूए होते हैं, सो मर जाते हैं, तथा आलंबनसें नींदभी आ जाती है.

६ छठा आकुंचन प्रसारण दोष. सो सामायिक करकें विना प्रयोजन हाथ, पग, संकोचे, लांबा करे, सामायिकमें तो महोटे कारण विना हलनां नहीं, जरूरी काममें चरवलासें पूंजन प्रमार्जन करकें हलावे.

७ सातमा आलस दोष. सो सामायिकमें अंगमैं आलस मोडे,अंगुलीयोंके कडाके काढे, कमर वांकी करे, ऐसी प्रमादकी बाहुल्यतासें व्रतमें अनादर होता है, कायामें अरति उत्पन्न हो जाती है, जब ऊठे,तब आलस मोड कर अतिअशोभनिक उठे. यह सातमा आलस दोष.

८ आठमा मोटन दोष. सो सामायिकमें अंगुली प्रमुख टेढी करी कडाका काढे. ए पण प्रमादकी प्रबलतासें होता है.

९ नवमा मल दोष. सो सामायिक ले करकें खाज करे, मुख्यवृत्ति तो सामायिकमें खाज नहीं करणी, परंतु जब लाचार होवे, तब चरवला प्रमुखसें पूंजन प्रमार्जन करकें हलवे हलवे खाज करे यह शैली है.

१० दशमा विमासण दोष. सो सामायिकमें गलेमें हाथ दे कर बैठे.

११ इग्यारवा निद्रा दोष. सो सामायिकमें नींद लेवे

१२ बारमा शीत प्रमुखकी प्रबलतासे अपणे समस्त अंगोपाग वस्त्र करकें ढाके, यह बारा दोष कायासे उत्पन्न होते है, इनकों सामायिकमें वर्जे. अब वचनके दश दोष है सो लिखते है

१ प्रथम कुबोल दोष सो सामायिकमे कुवचन बोले

२ दूसरा सहसात्कार दोष. सो सामायिक ले करकें विना विचारे बोले

३ तीसरा असदारोपण दोष सो सामायिकमें दूसरोकों खोटी मति देवे

४ चौथा निरपेक्ष वाक्य दोष सो सामायिकमे शास्त्रकी अपेक्षाविना बोले

५ पाचमा संक्षेप दोष. सो सामायिकमें सूत्र, पाठ, संक्षेप करे, अक्षर पाठ हीना कहे यथार्थ कहे नही, सो पाचमा दोष है

६ छठा कलह दोष. सो सामायिकमें साधर्मीयोंसे क्लेश करे, सामायिकमें तो कोइ मिथ्यात्वी गालीया देवे, उपसर्ग करे, कुवचन बोले, तोभी तिसके साथ लडाइ नहीं, करनी चाहियें, तो फेर अपने साधर्मीके साथ तो विशेष करके लडाइ करणीही नही, जेकर करे, तो छठा दोष लगे

७ सातमा विकथा दोष. सो सामायिकमे बैठके देशकथादि चार विकथा करे, सामायिकमे तो स्वाध्याय अरु ध्यानही करना चाहिये

८ आठमा हास्य दोष सो सामायिकमे दूसरोंकी हासी करे, मस्करी करे

९ नवमा अशुद्धपाठ दोष सो सामायिकमें सामायिकका सूत्रपाठ शुद्ध न उच्चारे, हीनाधिक उच्चारे, यद्वा तद्वा सूत्र पढे

१० दशमा मुणमुण दोष. सो सामायिकमे प्रगट स्पष्ट अक्षर न उच्चारे, दूसरोकों तो जैसा मच्छर णणणणाट करता होवे, अैसा पाठ मालुम पडे, पद अरु गाथाका कुछ ठिकाना मालुम न पडे गडबड करकें उतावलसे पाठ पूरा करे, यह दश दोष वचनके है अब मनके दश दोष लिखते है

१ प्रथम अविवेक दोष सो सामायिक करके सर्वक्रिया करे, परंतु मनमे विवेक नही निर्विवेकतासे करे, मनमे अैसा विचारे कि सामायिक करनेसे कौन तरा है? इसमें क्या फल है? इत्यादि विकल्प करे

२ दूसरा यशोवाछा दोष सो सामायिक करकें यश कीर्त्तिकी इछा करे

३ तीसरा धनवाछा दोष सो सामायिक करनेसे मुजे धन मिलेगा

४ चौथा गर्वदोष. सो सामायिक करकें मनमे गर्व करे कि मुझे

लोक धर्मी कहेंगे, मैं कैसें सामायिक करता हूं, मूर्ख लोक क्या समजे ?

५ पांचमा नय दोष. सो लोकोंकी निंदासें डरता हूआ सामयिक करे, क्योंकि लोक कहेंगे कि देखो श्रावकके कुलमें उत्पन्न हूआ है, बडा पुरुष कहनेमें आता है,परंतु धर्म कर्मका नामभी नहीं जानता,धर्म तो दूर रहा, परंतु हररोज सामायिकभी नहीं करता, औसी निंदासें डरता हूआ करे.

६ छठा निदान दोष. सो सामायिक करकें निदान करे कि इस सामायिकके फलसें मुझे धन, स्त्री, पुत्र, राज्य, भोग, इंद्र, चक्रवर्त्तिका पद मिले.

७ सातमा संशय दोष. सो क्या जाने सामायिकका फल होवेगा कि नहीं होवेगा ? जिसको तत्त्वकी प्रतीत न होवे, सो यह विकल्प करे.

८ आठमा कषाय दोष. सो सामायिकमें कषाय करे,अथवा क्रोध करकें तुरत सामायिक करकें बैठ जाय. सामायिकमें तो कषाय त्याग नां चाहियें.

९ नवमा अविनय दोष. सो विनय हीन सामायिक करे.

१० दशमा अबहुमान दोष. सो सामायिक बहुमान भक्तिभाव उत्साह पूर्वक न करे. यह दश मनके दोष कहे. अरु पूर्वोक्त बारह कायाके तथा दश वचनके मिल कर बत्तीस दूषण रहित सामायिक करे, इस सामायिक व्रतके पांच अतिचार टाले, सो पांच अतिचार कहते हैं.

१ प्रथम कायदुःप्रणिधान अतिचार. सो शरीरके अवयव हाथ, पग प्रमुख, बिना पूंजे प्रमार्जे हलावे, भींतके पीठ लगा कर बैठे.

२ दूसरा मनोदुःप्रणिधान अतिचार. सो मनमें कुव्यापार चिंतन क्रोध, लोभ, द्रोह, अभिमान, ईर्ष्या, व्यासंग, संभ्रमचित्त सहित सामायिक करे.

३ तीसरा वचन दुःप्रणिधान अतिचार. सो सामायिकमें सावद्य वचन बोले, सूत्राक्षर हीन पढे. सूत्रका स्पष्ट उच्चार न करे.

४ चौथा अनवस्था दोषरूप अतिचार. सो सामायिक वखत सिर न करे,जेकर करेभी तोभी बे मर्यादासें आदर विना उतावलसें करे.

५ पांचमा स्मृतिविहीन अतिचार. सो सामायिक करी, कि नहीं ? सामायिक पारीकि नहीं ? औसी भूल करे. इति नवम सामायिक व्रत संपूर्ण ॥

अथ दशमा दिशावकाशिक व्रत लिखते है. छठे व्रतमें जो दिशोंका परिमाण करा है,सो जावज्जीवे तहां तक है,उसमें तो क्षेत्र बहुत बुट रक्खा है, तिसका तो रोज काम पडता नहिं, इस वास्ते दिन दिन प्रत्ये संक्षेप

करें, जैसें आजके दिन दश कोश वा पदरा कोश वा पाच कोश, अथवा नगरके दरवाजे तक, वा कोश, अर्द्धकोश,बाग बगीचे तक, घरका हद तक जाना आनां है,उपरात नियम करनां,सो दिशावकाशिकव्रत है ए छठे व्रत का सक्षेपरूप है, उपलक्षणसे पाच अणुव्रतादिकका सक्षेप थोडे कालका सोजी इसी व्रतमे जान लेना, यह व्रत चार मास, एक मास, वीश दिन,पाच दिन अहोरात्रि, अथवा एक दिन, एक रात्रि, तथा एक मुहूर्त्तमात्रजी हो सक्ता है, इसका नियम औसे करे कि मै अमुक ग्रामादिकमे काया करके जाउंगा, उपरात जानेका निषेध है, इस व्रत वाले प्राणीके देश परदेशका जिनके व्यापार होवे, सो औसे कहे कि मुझकों काय करके इतने क्षेत्र उपरांत जाना नाहि, परतु दूर देशका कागज प्रमुख लिखा हूआ आवे, सो वाचु अथवा कोइ मनुष्य जेजना पडे, उसका आगार है परदेशकी वात सुननेका आगार है,अरु जिसका दूरका व्यापार नहि होवे, सो चीठी खत, पत्रजी न वांचे, अरु आदमीजी न जेजे, तथा चित्तकी वृत्तिसे जेकर सकल्प विकल्प न होवे,तो परदेशकी वातजी न सुने. जेकर नहि रहा जावे, तो आगार रक्के, परतु जान करके दोष न लगावे यह देशावकाशिक व्रत सदा सवेरके वखत चौदह नियमकी यादगिरीमे उपयोगसे रक्के, अरु रात्रिकों जूदा रक्के, यह व्रत जैसे गुरुमुखसे धारे, तैसे करे (पाले) अरु इस व्रतके पाच अतिचार टाले, सो कहते है

१ प्रथम आणवण प्रयोग अतिचार सो नियमकी जूमिकासे वाहिरकी कोइ वस्तु होवे, तिसकी गरज पडे,तव विचारे की मेरे तो नियमकी जूमिकासे वाहिर जानेका नियम है, तव कोइ जाता होवे, तदा तिसकों कह करके वो वस्तु मगवा लेवे, अरु मनमें यह विचारेकी मेरा व्रतजी जग नहि हूआ, अरु वस्तुजी आ गइ, यह प्रथम अतिचार है

२ दूसरा पेसवण प्रयोग अतिचार. सो दूसरे आदमीके हाथ नियमसें वाहिरली जूमिकामें कोइ वस्तु जेजे,सो दूसरा अतिचार है

३ तीसरा सद्दाणुवाय अतिचार सो नियमकी जूमिकासे वाहिर, कोइ आदमी जाता है, तिस्सें कोइ काम है, तव तिसकों खुखारादि शब्द करकें वोलावे, फेर कहे कि अमुक वस्तु ले आनां, तव तीसरा अतिचार लगे

४ चौथा रूपानुपाती अतिचार सो कोइक पुरुष उसके नियमकी जूमि

कासें बाहिर जाता है, तिसके साथ कोइ काम है, तब हाट हवेली ऊप र चढकें उसको अपणा रूप दिखावे, तब वो आदमी उसके पास आवे, पीछें आपणे मतलबकी उस्सें बातां करे, तब चौथा अतिचार लगे.

५ पांचमा पुद्गलक्षेप अतिचार. सो नियमकी भूमिकासें बाहिर कोइ पुरुष जाता है, तिसके साथ कोइ काम है, तब तिसकों कंकरा मारे, जब वो देखे, तब तिसके पास आवे, तब उसके साथ बात चीत करे, यह पांचमा अतिचार ॥ इति दशम देशावकाशिकं व्रतं संपूर्णं ॥

अथ इग्यारहवा पौषधोपवास नामा व्रत लिखते हैं. यह पौषधव्रतके चार भेद हैं, उसमें प्रथम आहार पोषध है, तिसकेभी दो भेद हैं. एक देशतः दूसरा सर्वतः तहां देशसें तो त्रिविहार उपवास करकें पोषध करे, अथवा आचाम्ल करकें पोषध करे, अथवा त्रिविहार एकाशनां करकें पोषध करे, यह तीन प्रकारसें देश पोषध होता है, तिसकी विधि लिखते हैं.

पोषध करनेसें पहिले अपने घरमें कह रखे कि मैं आज पोषध करुंगा, इस वास्ते आचाम्ल अथवा एकाशना करा है, भोजनके अवसरमें आहार करनेकों आउंगा,अथवा तुमने पोषधशालामें ले आनां, पीछेसें पोषध करने को जावे, तहां पोषध करकें देववंदन करकें, पीछे चरवला, मुखवस्त्रिका, पूंछणा, ये तीन उपकरण साथ ले करकें चादर ओढ करकें साधुकी तरें उपयोग संयुक्त मार्गमें यत्नसें चल कर भोजनके स्थानकमें जा करकें, इ रियावहिया पडिक्कमे, गमनागमनकी आलोचना करे, पीछे पूंछणा उप र बैठके आहार करनेका भाजन प्रतिलेखकें पीछें अपने लेने योग्य आहा र लेवे, साधुकी तरें रसगृद्धिसें रहित आहार करे, मुखसें आहारकों अ च्छा बूरा न कहे, आहारका जूठ गेरे नहीं, आहार करे पीछे उष्ण जल सें आहारका बरतन धो कर पी जावे, बरतन शुद्ध करकें सूका करकें उ पयोग संयुक्त पोषधशालामें आवे, पूर्वस्थानमें जा कर बैठे, परंतु मार्गमें जाते आते किसीके साथ बात न करे, इस रीतसें स्वस्थानकमें आवे. इरि यावही पडिक्कमकें चैत्यवंदन करकें धर्मक्रियामें प्रवर्त्ते,तथा आहार अपना कोइ संबंधी अथवा सेवक ले आवे,तोभी पूर्वोक्त रीतिसें आहार करकें बरत न पीछें दे देवे,पीछें धर्मक्रियामें प्रवर्त्ते,तिसकों देशसें पोषध कहते हैं. तथा जो चउविहार करकें पौषध करे, सो सर्वसें पोषध कहियें, यह प्रथम भेद.

२ दूसरा शरीरसत्कार पोषध सो सर्वथा शरीरका सत्कार, स्नान, धोवन, धावन, तैलमर्दन, वस्त्राभरणादि शृंगार प्रमुख कोइभी शुश्रूषा न करे, साधुकी तरे अपरिकर्मित शरीर रहे, तिसको सर्वथा शरीर सत्कार पोषध कहते है तथा पोषधमे हाथ, पग प्रमुखकी शुश्रूषा करनी, तिसका आगार रक्खे, उसकों देशसत्कार पोषध कहते है

३ तीसरा अब्रह्मपोषध सो त्रिकरण शुद्ध ब्रह्मचर्यव्रत पाले, वो सर्वथा ब्रह्मचर्य पोषध है अरु मन, वचन, दृष्टि प्रमुखका आगार रक्खे, अथवा परिमाण रक्खे, सो देशसें ब्रह्मचर्य पोषध है

४ चौथा सर्वथा सावद्य व्यापारका त्याग सो सर्वसे अव्यापार पोषध है. अरु जे एकादि व्यापारका आगार रक्खे, सो देशसे अव्यापार पोषध जाननां

एव चार प्रकारके पोषधके दो दो भेद है,सो प्रथम जब आगम व्यवहारी गुरु होते थे, अरु श्रावकभी शुद्ध उपयोग वाले होते थे, तब जो जो प्रतिज्ञा लेते थे, सो सो प्रतिज्ञा अखण्डित तैसीही पालते थे, परतु भूलते नही थे, अरु न्यूनाधिकभी नही करते थे, और गुरुभी अतिशय ज्ञानके प्रभावसे योग्यता जान कर देश,सर्व, पोषधका आदेश देते थे, तथा श्रावक कदाचित् भूलभी जाते थे, तो भी तत्काल प्रायश्चित्त ले लेते थे, अरु इस कालमे तो ऐसे उपयोगी जीव है नही, दुखमकालके प्रभावसे जडबुद्धि जीव बहुत है, इस वास्ते पूर्वाचार्योंने उपकारके अर्थ आहार पोषध तो दोनो करने, अरु शेष तीन पोषध जीतव्यवहारके अनुसारें निषेध कर दीये है यही प्रवृत्ति वर्त्तमान समयमे प्रचलित है,पोषध तो श्रावकको जरुर करना चाहिये, कारणकि कर्मरूप भावरोगकी यह औषधि है, ताते जब पर्वदिन आवे, तब जरुर पोषध करे. इसका पाच अतिचार टाले, सो कहते है

१ प्रथम अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सिज्जासथारक अतिचार सो जिस स्थानमे पोषध सस्थारक करा है,तिस भूमिकी तथा सथाराकी पडिलेहणा न करे, एतावता सथारेकी जगा अच्छी तरें निगाह करिके नेत्रोसे देखे नही अरु कदापि देखे,तोभी प्रमादके उदयसे कुछ देखी कुछ न देखी ऐसे करे.

२ दूसरा अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सिज्जासथारक अतिचार सो सथाराको रजोहरणादिक करके पूजे नहीं, कदापि पूंजे, तोभी यथार्थ न पूजे, गडबड कर देवे, जीवरक्षा न करे, तो दूसरा अतिचार लागे.

३ तीसरा अप्पडिलेहिय डुप्पडिलेहिय उच्चारपासवण भूमि अतिचार. सो लघुशंका, बडीशंका, परिठवणेकी भूमिका, नेत्रोंसें अवलोकन न करे, अरु अवलोकन करे, तोभी अलसु पलसु करकें काम चलावे. भी यत्न विना करे, परिठवे, तो तीसरा अतिचार लागे.

४ चौथा अप्पमज्जियडुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमि अतिचार. सो जहां मूत्र, विष्ठा करे, उस भूमिकाकों उच्चारप्रस्रवण करनेसें पहिलां पूंजे नहीं, जे कर पूंजे, तोभी यद्वा तद्वा पूंजे, परंतु यत्नसें न पूंजे.

५ पांचमा पोसहविहिविवरीए अतिचार. सो पोषधमें क्षुधा लगे, तब पारणेकी चिंता करे, जैसेंकि प्रभातमें अमुक रसोइ अथवा अमुक वस्तुका आहार करुंगा, तथा अमुक कार्य करणा है, तहां जानां पडेगा, अमुक उपर तगादा करुंगा, तथा प्रभातमें पोषध पारकें अच्छी तरें तेलमर्दन कराऊंगा, अच्छे गरम पानीसें स्नान करुंगा, तथा अमुक पोसाक करुंगा, स्त्रीके साथ भोग करुंगा, इत्यादि सावद्य चिंतवणा करे, तथा संध्या समयें पोषधके मंमल शोधन न करे, सर्व रात्रि सूता रहे, विकथा करे, पोषधके अठारह दूषण हैं, सो वर्जे नहीं, सो अठारह दूषण लिखते हैं.

१ बिना पोषेवालेका ल्याया हूआ जल पीवें, २ पोषध वास्ते सरस आहार करे, ३ पोषधके अगले दिन विविध प्रकारका संयोग मिलायकें आहार करे, ४ पोषध निमित्त अथवा पोषधके अगले दिनमें विभूषा करे, ५ पोषध वास्ते वस्त्र धोवावे, ६ पोषध वास्ते आभरण घडाकें पहिरे, स्त्रीभी नथ, कंकणादि सोहागके चिन्ह वर्जकें दूसरा नवा गहेनां घडाकें पहिरे, ७ पोषध वास्ते वस्त्र रंगा कर पहिरे, ८ पोषधमें शरीरकी मैल उतारे, ९ पोषधमें विना काल निद्रा करे, १० पोषधमें स्त्रीकथा करे, स्त्रीकों भली बूरी कहे, ११ पोषधमें आहार कथा करे, भोजनकों अच्छा बूरा कहे, १२ पोषधमें राजकथा करे, युद्धकी बात सुने, कहे, १३ पोषधमें देश कथा करे, अच्छा बूरा देश कहे, १४ पोषधमें लघुशंका अरु बडीशंका सो भूमिका पूंज्या विना करे, १५ पोषधमें दूसरोंकी निंदा करे, १६ पोषधमें स्त्री, पिता, माता, पुत्र, भाइ प्रमुखसें वार्त्तालाप करे, १७ पोषधमें चोरकी कथा करे, १८ पोषधमें स्त्रीके अं

गोपांग, स्तन, जघनादि देखे, यह अठारह दूषण पोषधमे वर्जे, तो शुद्ध पोषध जानना अन्यथा पांचमा अतिचार लागे. इति एकादश व्रतं॥

अथ बारहवा अतिथिसंविभागव्रत लिखते है अतिथि उसकों कहते है, कि जिसने लौकिक पर्वोत्सवादि तिथियोंकों त्याग दीया है, सो अतिथि है, जैसे प्राहुणा विनातिथि आता है. एतावता तिथि देखके नही आता है, असेही जो साधु अण चिंत्याही आ जावे है, सो अतिथि जानना असे मधुकर वृत्तिवालेसे जो विभाग करे, एतावता शुद्ध व्यवहार न्यायोपार्जित धन करकें अपणा उदर पूरणे योग्य जो रसोइ करी है, उत्तम कुल आचार पूर्वक पूर्वकर्म पश्चात्कर्मादि दोष रहित असा शुद्ध निर्दोष आहार भक्तिपूर्वक जो देवे, सो अतिथिसंविभाग व्रत है. तहां प्रथम दान देनेवालेमें पाच गुण होवे, तो वो दातार शुद्ध होता है, सो पाच गुण लिखते है

१ प्रथम जैनमार्गी दातारकू, शुद्ध पात्रकी प्राप्ति पा करकें अपणे घरमें मुनिका दर्शन मात्र होनेसें अतरगमे बहुत दिनकी चाहनाके उल्लाससे आनंदके आसु आवे, जैसे अपणा प्यारा अति हितकारी वल्लभ विछडके परदेशमें गया है, उसकों मनसे कभी विसरता नही, मिलाही चाहाता है, उस मित्रके अकस्मात् मिलनेसे आनद आसु आवे, तैसे मुनिकों घरमे आया देखकें आनद आसु ल्यावे, अरु मनमे विचारे कि मेरा बडा भाग्य है, जो असा मुनि मेरे घरमे आया है? अरु मै कैसा हुं? अनादिका भूल्या, द्रव्य सबल रहित, दरिद्रपीडित, ज्ञानलोचनरहित, अंधभाव करि पीडित, अपार संसारचक्रमें भटकता हूआ, बहुत अकथनीय दुःख संयुक्त देख कर मेरे पर परमदया दृष्टि करकें प्रथम मेरेकों ज्ञानांजन शलाकासे ज्ञानरूप देखने वाला नेत्र खोल दीना, अरु तीन तत्त्व सेवा रूप व्यापार सिखलाया, तथा मुझकों रत्नत्रयीरूप पूंजी (रास) दे कर मेरा अनादि दरिद्र दूर करा, मुझे भले आदमीयोंकी गिणतीमें करा, असे गुरु मुनिराज विना गरजके परोपकारी मेरे घरांगणमें आया, असी पुष्ट भावना प्रशस्त राग भावकें उल्लाससे आनंदके आंसु आवे, यह दातारका प्रथम गुण है,

२ दूसरा जैसें संसारमें जीवकों अत्यंत इष्ट वस्तुके संयोगसें रोमावली

खडी होती है, तैसें बडी भक्तिके प्रभावसें मुनिकों देखकें रोमावली विकस्वर होवे, हृदयमें हर्ष समावे नहीं, यह दूसरा गुण है.

३ तीसरा मुनिकों देखकें बहुमान करे, जैसें किसी गरीबके घरमें राजा आप चल कर आवे, तब वो गरीब गृहस्थ जैसा राजेका आदर करे, अरु मनमें विचारे कि महाराजा मेरे घरमें आया है, तो मैं अच्छी वस्तु इनकों भेट करुं तो ठीक है, क्योंकि राजाका आवनां वारंवार मेरे घरमें कहां है? अैसा विचारकें जैसें वस्तु भेट करे, तैसें श्रावकभी साधुकों घरमें आया देखकें बहुत मान करे, अरु मनमें अैसा विचारेकि यह अैसा निःस्पृहीयोमें शिरोमणि, जगद्बंधु, जगत् हितकारी, जग वत्सल, निष्कामी, आत्मानंदी, करुणासागर, संसारजलधि उद्धरण, परोपकार करणीमें चतुर, क्रोधादि कषाय निवारक, आप तरे परतारक, अैसा मुनिराज, मेरे घरमें चल कर आया, इस्सें मेरा अहो भाग्य है? अैसा जान कर संभ्रम संयुक्त सन्मुख जावे, त्रिकरण शुद्ध परिणामसें कहे कि हे स्वामी! दीनदयाल! पधारो, मेरे गृह अंगण पवित्र करो, अैसा बहुमान दे कर घरमें पधरावे, मनमें विचारे कि मेरे बडा पुण्योदय है, जो साधु आहार पाणीका अनुग्रह करते हैं, क्योंकी साधुके आहार लेनेमें बडी विधि है, साधु शुद्ध भात पाणी जाणे, तो लेवे, इस वास्ते मत मेरेसें कोइ दोप उपजे? अैसा विचार कें त्रिकरण शुद्ध बहुमान पूर्वक उपयोग संयुक्त विधिपूर्वक आहार ल्यावे, अरु मधुरस्वरसें विनति करे, कि हे स्वामी! यह शुद्ध आहार है, इस वास्ते सेवक उपर परम कृपा नजर करकें पात्र पसारकें मेरा निस्तार करो. अैसे वचन बोलता हूआ आहार देवे, मुनिभी उस आहारकों योग्य जाण कर ले लेवे, अरु श्रावकभी जितनी दान देने योग्य वस्तु है, उसके सर्वकी निमंत्रणा करे, इस विधिसें दान दे कर हाथ जोडकें पृथिवी उपर मस्तक लगा कर नमस्कार करे, पीछें मीठे वचनोसें विनति करे की हे कृपानिधान! सेवक उपर बडी कृपा करी, आज मेरा घर पवित्र हूआ, क्योंकि पुण्योदय विना मुनिका योग कहां होता है? फेरभी हे स्वामी! कृपा करकें अशन, पान, खादिम, स्वादिम, औषध, वस्त्र, पात्र, शय्या, संस्तारकादिसें प्रयोजन होवे, तब अवश्य सेवक उपर अनुग्रह करकें पधारनां, तुम तो मुनिराज गुणवान् बे परवाह हो, तुमकों किसी बात

की कमी नहिं, किसीके साथ प्रतिबंध नाहि, पवनकी तरें अप्रतिबंध हो, तोजी मेरे उपर जरूर कृपा करणी, असे मुखसे कहता हूआ अपणे घरकी सीमा तक पहुंचावे, यह तीसरा गुण है.

४ चौथा तहांसे वंदना करके पीछें आ कर जोजन करे, परंतु मनमें आनंद समावे नहीं, विचारे कि मेरा वडा जाग्योदय हूआ, आज कोइ जली बात होवेगी क्योंकि आज मुनि, निःस्पृही, सहजउदासी, स्वसुख विलासीको मैं विनति करी आहार दीया, अरु आहार देता बिचमें कोइ विघ्न न हूआ, इस वास्ते मेरा बडा जाग्य है,फेरजी कदे असे मुनिका योग मिलेगा? असी अनुमोदना वारवार करे, यह चौथा गुण है

५ पांचमा जैसे कोइ मंदजाग्यवान् व्यापार करता थोडा थोडा कमाता है, तिसको किसी दिन कोइ सौदेमें लाख रूपैयेकी प्राप्ति होवे, तब वो कैसा आनंदित होवे है, अरु फेर उस व्यापारकी कितनी चाहना रखता है, तिस्सेंजी अधिक साधुकों दान देनेकी चाहना श्रावक रक्खे, यह पांचमा गुण है यह पांच गुणयुक्त शुद्ध दान देवे, तो अतिथि संविजाग व्रत होवे इस व्रतके पांच अतिचार वर्जे, सो लिखते है

१ प्रथम सचित्तनिक्षेप अतिचार सो सचित्त सजीव पृथ्वी, जल, कुंज, चुल्हा, इंधनादिकोंके उपर न देनेकी बुद्धिसे आहारको रख गेडे अरु मनमें असा विचारेकि ए आहार साधु तो नहीं लेवेगा, परंतु निमंत्रणा करनेसें मेरा अतिथि संविजागव्रत पल जावेगा, यह प्रथमातिचार

२ दूसरा सचित्त पीहण अतिचार सो सचित्त करके ढक गेडे, सूरण, कंद, पत्र, पुष्प, फलादि करके न देनेकी बुद्धिसे ढक गेडे

३ तीसरा कालातिक्रम अतिचार सो साधुओंके जिक्षाका काल लंघ करके अथवा जिक्षाके कालसे पहिलां अथवा साधु आहार कर चूके तब आहारकी निमंत्रणा करे, सो तीसरा अतिचार है

४ चौथा परव्यपदेश मत्सर अतिचार सो जब साधु मागे तब क्रोध करे, तथा वस्तु पासमें है, तोजी माग्या न देवे,अथवा इस कंगालने असा दान दीया तो मै क्या इस्से हीन हूं, जो न दंकु? इस जावनासें देवे

५ पांचमा गुड, खंड प्रमुख अपणी वस्तु है, जो न देनेकी बुद्धिसें औरोकी कहे, यह पांचमा अतिचार ॥ इति श्रीअतिथिसंविजागव्रत संपूर्ण॥

जैसें मेष संक्रांतिके दिन सूर्यस्वर चले, अरु वृषसंक्रांति दिन चंद्र नाडी चले, तो शुभ जाननी इत्यादि. तथा किसीके मतमें चंद्रमा राशि पलटे तिस क्रम करकें अढाइ घडी तक एक नाडी वहती है इत्यादि. परंतु जैनाचार्य श्री हेमचंद्रादिकोंका तो प्रथम जो लिखा है, सो मत है. बत्तीस गुरु अक्षरोंके उच्चारणेमें जितना काल लगता है. तितना काल वायु नाडीकों दूसरी नाडीमें संचार करते लगता है.

अब पांच तत्त्वोंकी पहिचान इसी तरें है, सो कहते हैं. नासिकाकी पवन जेकर ऊंची जावे, तब तो अग्नि तत्त्व है, जेकर नीची जावे, तो जल तत्त्व है, तिर्छी जावे, तो वायुतत्त्व, जेकर नासिकासें निकलके सूधी तिर्छी जावे, तो पृथ्वीतत्त्व, जेकर नासिकाके दोनो पुटोंके अंदर वहे, बाहिर नहीं निकले. तो आकाश तत्त्व जाननां.

पहिलां पवन तत्त्व वहता है. पीछें अग्नि तत्त्व वहता है, पीछें जल तत्त्व वहता है, पीछें पृथ्वीतत्त्व वहता है, पीछें आकाश तत्त्व वहता है. क्रम इनका सदा यही है. दोनोही नाडीयोंमें पांचो तत्त्व वहते हैं, उसमें पृथ्वी तत्त्व पंचाश पल प्रमाण वहता है, जल तत्त्व चालीश पल प्रमाण वहता है, अग्नितत्त्व तीस पल प्रमाण वहता है, वायुतत्त्व वीस पल प्रमाण वहता है, आकाश तत्त्व दश पल प्रमाण वहता है.

पृथ्वी अरु जल तत्त्वमें शांतिकार्य करणां, अरु अग्नि, वायु, तथा आकाश इन तीन तत्त्वमें दीप्तिमान् अरु स्थिरकार्य करणां, तो फलोन्नति शुभ होवे है, तथा जीवणेका प्रश्न पूछनां, जयप्रश्न, लाभप्रश्न, धन उत्पन्न करणेका प्रश्न, मेघ वर्षनेका प्रश्न, पुत्र होनेका प्रश्न, युद्धका प्रश्न, जाने आनेका प्रश्न, इतने प्रश्न जेकर पृथ्वी अरु जलतत्त्वमें करे, तो शुभ होवे, जेकर अग्नितत्त्व अरु वायु तत्त्वके वहता ये प्रश्न करे, तो शुभ नहीं, पृथ्वी तत्त्वमें प्रश्न करेतो कार्यकी सिद्धि स्थिरपणेहोवेअरुजलतत्त्वमें शीघ्रकार्य होवे.

जब पहल पहिलां जिनपूजा करे, तथा धन कमावनेंके वास्ते जावे, पाणिग्रहणकी (विवाहकी) वेलां, गढ लेनेकी वेलां, नदी उतरनेकी वेलां, गया है सो आवेगाकि नहीं ? ऐसे प्रश्न करते वेलां. जीवनेके प्रश्नमें तथा घर क्षेत्रादि लेंती वेला, क्रियाणां लेतां, वेचतां, वर्षके प्रश्नमें, नौकरी करणेकी वेलां,

खेती करनेके वखत, शत्रुके जीतनेमें, विद्यारंनमें, राज्यानिषेकमें. इत्यादि शुनकार्यमें चंड्रनाडी वहे, तो कल्याणकारी है

प्रश्नके समय कार्यके आरंनमे पूर्ण वामी नाडी प्रवेश करती होवे, तदा निश्चय कार्यकी सिद्धि जाननी इसमें संदेह नही, तथा कैदसे कब छूटेगा ? रोगी कब अछा होवेगा ? अरु जो अपने स्थानसे ज्रष्ट हूआ है, तिसका प्रश्नमे तथा युद्ध करनेके प्रश्नमे, वैरीको मिलती वखत, अकस्मात् नय हूआ, स्नान करण लगें, नोजन, पाणी पीने लगें, सोने लगे, गइ वस्तुके खोज करनेमे, मैथुन करने लगें, विवाद करणमें, कष्टमे, इतने कार्यमें सूर्य नाडी शुन है. कोइक आचार्य ऐसेंनी कहते है कि विद्यारंनमें, दीक्षामें, शास्त्राज्यासमे, विवादमें, राजाके देखनेमें, मंत्र यंत्रके साधनेमे, सूर्यनाडी शुन है अथवा जो चंड्रादि स्वर चलता होवे, निरंतर तिस पासेंका पग उगाके प्रथम चले तो कार्य सिद्धि होवे

पापी जीवोंके शत्रुओंके चार प्रमुख जे क्लेशके करने वाले हैं, तिनके सन्मुख जो नासिका बंध होवे, सो पासा, इनके सामने करे, जो सुख लान जयार्थी है, उसमे प्रवेश करता हूआ पूरा स्वर, वामा पग शुक्ल पक्षमें, अरु जीमणा पग कृष्ण पक्षमे, शय्यासे उठता हूया धरती ऊपर रखता. इसविधिसे श्रावक निंद त्यागे.

अरु श्रावक अत्यंत बहुमान पूर्वक मंगलके वास्ते पंचपरमेष्टि नमस्कार स्मरण करे, शय्यामे बैठा हूआ मनमे पंचपरमेष्टि नमस्कारमंत्र स्मरण करे, परंतु वचनसें उच्चारण न करे, जेकर मुखसें उच्चार करे, तो शय्या छोड कर धरती उपर बैठ कर नमस्कार मंत्र पढे, ऐसे नमस्कार मंत्र हृदयमें स्मरण करता हूआ शय्यासे उठे, पवित्र नूमिका उपर बैठे, तथा पूर्व अथवा उत्तरदिशि सन्मुख मुख करकें खडा रह कर चित्तकी एकाग्रताके वास्ते कमलबंध कर जपादि करकें नमस्कार मंत्र पढे, तद्दा आठ पांखडीका कमल चिंते, उसकी कर्णिकामें अरिहंत पदका स्थापन करे, पूर्व पांखडीमें सिद्ध, दक्षिण पांखडीमें आचार्य, पश्चिम पांखडीमें उपाध्याय, उत्तर पांखडीमें साधु स्थापन करे, अरु बाकी चूलिकाके चार पद जो है, सो अनुक्रमें अग्न्यादि चारों कूणोमें स्थापन करे. उक्तंचाष्टमप्रकाशे योगशास्त्रे ॥ श्रीहेमचंड्रसूरिनि ॥ अष्टपत्रे सितांनोजे,

कर्णिकायां करस्थितिः ॥ आद्यं सप्ताक्षरं मंत्रं, पवित्रं चिंतयेत्ततः ॥ १ ॥ सिद्धादिकचतुष्कं च, दिक्पत्रेषु यथाक्रमं ॥ चूलापादचतुष्कं च, विदिक्पत्रेषु चिंतयेत् ॥ २ ॥ त्रिशुद्धं चिंतयन्नस्य, शतमष्टोत्तरं मुनिः ॥ भुंजानोपि लभ त्येव, चतुर्थतपसः फलम् ॥ ३ ॥

हाथके आवर्त्त करकें जो पंच मंगल मंत्र स्मरण नित्य करे, उसकों पिशाचादिक नहीं छलते हैं, बंधनादि कष्टसें विपरीत शंखावर्त्तकादिक अक्षरों करकें अथवा विपरीत पदों करकें पंचमंगल मंत्र लक्षादि जाप करे, तो शीघ्र क्लेशादिकोंका नाश होवे, जे कर हाथ उपर जाप न कर सके तो सूतकी, रत्नकी, रुद्राक्षादिककी, माला उपर जाप करे, माला वाला हाथ, हृदयके सामने रक्खे, शरीरसें तथा शरीरके वस्त्रोंसें तथा भूमिकासें माला न लगने देनी, अंगूठेके उपर माला रख करकें तर्जनी अंगुलीसें नख, बिना लगाया मणका फेरे, मेरु उल्लंघन न करे, शास्त्रकार लिखते हैं कि जो अंगुलीके अग्रसें जाप करे, अरु जो मेरु उल्लंघके जाप करे, तथा जो विखरे हूए चित्तसें जाप करे, यह तीनो जाप थोडा फल देते हैं, जाप करने वाला बहुतोंसें एकला अच्छा शब्द करकें जाप करनेसें मौन करकें करे, सो अच्छा है, जेकर जप करतां थक जावे, तो ध्यान करे, ध्यान करनेसें थक जावे, तो जप करे, दोनोसें थक जावे, तो स्तोत्र पढे.

श्रीपादलिप्त आचार्यकृत प्रतिष्ठाकल्प पद्धतिमें लिखा है, कि जाप तीन तरेंका है, एक मानस, दूसरा उपांशु, तीसरा भाष्य, इन तीनमें मानस उसकों कहते हैं कि जो मनकी बिचारणासें होवे, स्वसंवेद्य होवे, अरु उपांशु उसकों कहते हैं कि जो दूसरा तो न सुणे, परंतु अंतर्जल्प रूप होवे, तथा जो दूसरोंकों सुनाइ देवे, सो भाष्य. यह तीनों क्रम करकें उत्तम, मध्यम, अरु अधम जान लेने. उसमें मानससें शांति होती है, एतावता शांतिके वास्ते मानस जाप करणां अरु पुष्टिके वास्ते उपांशु जाप करणां. तथा आकर्षणादिकमें भाष्यजाप करणां.

नमस्कार मंत्रके पांच पद, नवपद, अथवा अनानुपूर्वी, चित्तकी एकाग्रताके वास्ते गुणे, तथा जो नवकार मंत्रका एक अक्षर एक पदभी जपे, तोभी जाप हो सक्ता है ॥ यदुक्तं योगशास्त्रे अष्टमप्रकाशे ॥ पंचपरमेष्ठि

मंत्रके "अरिहंत सिद्ध आयरिय उवझाय साहू" इन सोला अक्षरका जाप करे, तथा "अरिहंतसिद्ध" इन षड् वर्ण (छै अक्षर) का जाप करे तथा "अरिहंत" इन चार अक्षरका जाप करे, तथा आकार जो वर्ण है, सोनी मंत्र है इनके जापसे स्वर्ग मोक्षका फल होता है, अरु व्यवहार फल ऐसा जानना, कि—षड्वर्णका जाप तीन सौ वार करे, तथा चार वर्णका जाप चार सौ वार करे, अरु सोला अक्षरका जाप दो सौ वार करे, तो एक उपवासका फल होता है, तथा नाभिकमलमें स्थित तो अ कार ध्यावे, अरु सि वर्ण, मस्तक कमलमे स्थित ध्यावे, तथा आकार मुख कमलमे स्थित ध्यावे, उकार हृदय कमलमे स्थित ध्यावे, तथा सा कार कंठ पिंजरमे स्थित ध्यावे, सर्व कल्याणकारी यह जाप है, असिआ उसा यह पाच बीज है, इन पाचों बीजोका ॐकार बनता है

तथा और बीज मंत्रोंकाभी जाप करे, जैसे "नम सिद्धेभ्य" ऐसा मंत्र तो जे कर इस लोकके फलकी इछा होवे, तब तो ॐकार पूर्वक पढना चाहिये, अरु मोक्ष वास्ते जपे, तो ॐकाररहित पढना चाहिये, यह जपादि करनेसे बहुत फल होता है ॥ यत ॥ पूजाकोटिसम स्तोत्र, स्तोत्रको टिसमोजप ॥ जपकोटिसम ध्यान, ध्यानकोटिसमो लय ॥ १ ॥ ध्यान की सिद्धि वास्ते श्रीजिनजन्मदीक्षादि कल्याणक भूमिरूप तीर्थमें जावे, अथवा और कोइ विविक्त स्थान होवे, तहा ध्यान करे, ध्यानका स्व रूप देखना होवे, तब आवश्यकसूत्रांतर्गत ध्यानशतक देख लेना. नम स्कार मंत्रका जो जाप है, सो इस लोक परलोकमे बहुत गुणकारी है, ॥ उक्तंहि महानिशीथे ॥ नासेइ चोर सावय, विसहर जल जलण बंधण भयाइ ॥ चिंतिज्जंतो रक्खस, रण राय भयाइ भावेण ॥ १ ॥ अर्थ — चोर, सिंह, सर्प, पाणी, अग्नि, बंधन, संग्राम, राजभय, इतने भय पंचपरमेष्ठि मंत्रके स्मरणसे नष्ट हो जाते है एकाग्रता भावसें जपे, तो यह फल होता है पंच परमेष्ठि मंत्र सर्व जगे पढना चाहियें, नमस्कार मंत्रका एक अक्षर जपे, तो सात सागरोपमका करा हूआ पाप नष्ट होता है. जे कर संपूर्ण पंच परमेष्ठिमंत्र जपे, तो पांच सौ सागरका करा हूआ पाप नष्ट हो जाता है, तथा जो पुरुष एक लक्ष वार पंच परमेष्ठि मंत्रका जाप करे, अरु यह नमस्कार नामक मंत्र जो है, तिसकी विधिसें पूजा

करे, तो तीर्थंकर नाम कर्मगोत्रका बंध करे, इस बातमें संदेह नहीं, तथा आठ कोडी, अठ लाख, आठ हजार, आठ सौ, आठ बार, जो पंच परमेष्ठिमंत्रका जाप करे, वो जीव, तीसरे जवमें सिद्ध हो जाता है, इस वास्ते सूते, उठते, प्रथम नमस्कार स्मरण करणां तिसके पीछे धर्मजागरणा करणी, सो इसी तरेंकिः—

यथा में कौन हूं? क्या मेरी जाति है? क्या मेरा कुल है? कौन मेरा इष्ट देव है? कौन मेरा गुरु है? क्या मेरा धर्म है? क्या मेरे अनिग्रह है? क्या मेरी अवस्था है? क्या मैने सुकृतादि करा है? क्या मैने डुःकृतादि नहीं करा है? क्या मैं करने समर्थ हूं? क्या मैं नहीं कर सक्ता हूं? मुझकों कोइ देखता है कि नहीं? अपनी जूलकों आत्मा जानता है, फेर क्यों नहीं ठोडता? तथा आज कौनसी तिथि है? क्या अर्हंतका कल्याणिक दिन है? आज मेरा क्या कृत्य है? मैं किस देशमें तथा किस कालमे हूं? सवेरें उठके असे स्मरण करणेसें जीव सावधान हो जाता है, जो विरुद्ध कृत्य हैं, उसका परिहार करता है अपणे नियमका निर्वाह अरु नवीन गुणकी प्राप्ति होती है, येही धर्मजागरणा, आणंद कामदेवादि श्रावकोंने करकें प्रतिमादि विशेष धर्मकरणी करी है.

तस पीछें जो श्रावक प्रतिक्रमण करनेवाला होवे, सो प्रतिक्रमण करे, अरु जो प्रतिक्रमण न करे, सोजी रागादिमय कुस्वप्न प्रद्वेषादिमय अनिष्ट फलका सूचक तिसके दूर करणे वास्ते तथा स्वप्नमें स्त्रीसें प्रसंगादि करनेका खोटा स्वप्न उपजन्न हूआ होवे, तब एक सौ आठ उच्छ्वास प्रमण कायोत्सर्ग करे, अन्यथा सौ उच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे, चार लोगस्सका काउस्सग्ग करे. यह कथन व्यवहार जाष्यमें है, तथा विवेक विलासादि ग्रंथोमें असा लिखा है, कि स्वप्न देख्यां पीछें फेर नही सोवणां, अरु स्वप्न, दिनमें सद्गुरुके आगें कहनां, जे कर खोटा स्वप्न आवे तो फेर सोवनां ठीक है, किसीके आगें कहनां न चाहियें, तथा समधातुवाला, प्रशांतचित्तवाला, धर्मी और नीरोगी, जितेंद्रिय, इनकों जो शुजाशुज स्वप्न आवे, सो सत्यही होता है, स्वप्न जो आता है, सो नव कारणोसें आता है, सो नव कारण कहते हैं.

एक तो अनुभव करी हुइ वस्तुका स्वप्न आता है, दूसरा सुणी हुइ बातका तीसरा देखा हुआ, चौथा प्रकृति वात, पित्त, अरु कफके विकारसे, पांचमा चिंतित वस्तुका छठा सहज स्वभावसें, सातवा देवताके उपदेशसे, आठमा पुण्यके प्रभावसे, नवमा पापके प्रभावसें, इसमें आदिके छे कारणोसे, जो स्वप्न आवे, सो निरर्थक है, अरु अगले तीन कारणोसे जो स्वप्न आवे तो सत्य होवे

रात्रिके पहिले प्रहरमे स्वप्न आवे, तो एक वर्षमें फल देवे, अरु दूसरे प्रहरमें स्वप्न आवे. तो छे महीनेमें फल देवे, तीसरे प्रहरमे स्वप्न आवे, तो तीसरे महीनेमे फल देवे, चौथे प्रहरमे स्वप्न आवे, तो एक मासमें फल देवे, सवेरे दो घडी रात्रिमें स्वप्न आवे, तो दश दिनमे फल देवे, सूर्योदयमे स्वप्न आवे, तो तत्काल फल देवे

एक जो स्वप्नमे बहुत आल जजाल देखे, तथा दूसरा जो रोगोदयसें स्वप्न आवे, तथा तीसरा जो मलमूत्रकी बाधासें स्वप्न आवे, यह तीनों स्वप्न निरर्थक है जे कर पहिला अशुभ स्वप्न आवे, अरु पीछेसे शुभ स्वप्न आवे, तो शुभ फल देवे, तथा पहिला शुभ स्वप्न आवे, पीछे अशुभ आवे, तो अशुभ फल देवे, जेकर खोटा स्वप्न आवे, तो शांति अर्थात् देवपूजा दानादिक करणा, तथा स्वप्नचिंतामणि नामक ग्रंथमेंभी लिखा है, कि अनिष्ट स्वप्न देख कर सो जावे, अरु किसीकों कहे नहीं, तो फेर वो स्वप्न, फल नहीं देता है, सूता उठके जिनेश्वरदेवकी प्रतिमाकों नमस्कार करकें जिनेश्वरका ध्यान करे, स्तुति करे, स्मरण करे, पंचपरमेष्ठिमंत्र पढे, तो खोटा स्वप्न वितथ हो जाता है अरु जो पुरुष देव गुरुकी पूजा करते है, तथा निजशक्त्यनुसार तप करते है, निरंतर धर्मके रागी हैं, तिनोंकों खोटा स्वप्नभी अछा फल देता है. तथा जो पुरुष, देवगुरुका स्मरण करके अरु शत्रुंजय समेतशिखर प्रमुख शुभ तीर्थोंका नाम, तथा गौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी प्रमुख आचार्योंका नाम स्मरण करकें सोवे, उसकों कदापि खोटा स्वप्न नहीं होता है

थूकना होवे, तो राखमें थूकना चाहियें, शरीरकों दृढ करने वास्ते हाथों करकें वज्रीकरण करे, अग्नितत्त्व, अरु पवनतत्त्व, जब वहता होवे, तब धाप करकें आकव ताइ दूध पीवे, केइ आचार्य कहते है कि

आठ पसली पाणीकी पीवे, इसका नाम वज्रीकरण कहते हैं. तथा स वेरे उठके माता, पिता, पितामह, बडा नाइ प्रमुखकों नमस्कार करे, तो तीर्थयात्रा समान फल है. इस वास्ते दिन दिन प्रत्यें करणी चाहियें. तथा जिसने वृद्धोंकी सेवा नहीं करी है, उसकों धर्मकी प्राप्ति नहीं होती है, वृद्ध उसकों कहते हैं कि जो शीलमें, संतोषमें. तथा ज्ञान, ध्यानादिकसें बडे होवे, तिनकी सेवा अवश्य करनी चाहियें. तथा जिसने राजाकी सेवा नहीं करी है, अरु जिसने उत्पन्न होते हुए अपने शत्रुकों वंद नही करा. तिस पुरुषसें धर्म, अर्थ, अरु सुख दूर हैं.

श्रावककों सवेरे उठ करकें चौदह नियम धारण करणे चाहियें, तिनका स्वरूप उपर लिख आये हैं. तथा विवेकी पुरुष प्रथम सम्यक्त्व पूर्वक द्वादश व्रत, विधि पूर्वक गुरुके मुखसें धारण करे. अरु विरति जो पलती है, सो अन्याससें पलती है, इस वास्ते धर्मका अन्यास करनां चाहियें. विना अन्यासके कोइ क्रियानी अठी तरे नहीं करी जाती है, ध्यान मौनादि सर्व अन्यास करनेसें दुःसाध्य नहीं. जो जीव, इस जन्ममें अछा वा बूरा जैसा अन्यास करता है, सोइ प्रायः अगले जन्ममें पाता है, तथा पंचमी, अष्टमी, चतुर्दश्यादिकीके दिनमें तपादि नियम जो जो धर्मी पुरुषने अंगीकार किया है, उसमें जो तिथ्यंतरकी ज्ञांत्यादि करकें सचित्त जलादि पान, तंबोल नक्षण, कितनाक नोजननी कर लीया है, पीठेसें ज्ञान हूआ कि आज तो तपका दिन था? तब जो कुछ मुखमें होवे, उनकों राखादिकमें गेर देवे, प्राशुक पाणीसें मुखशुद्धि कर तप करेकी तरें रहे, तो नियम नंग नहीं होता है. अरु जे कर संपूर्ण नोजन करा पीठें जान पडे कि आज तपका दिन है, तब अगले दिन दंमके निमित्त सो तप करे. समाप्ति हूआं उसके उपर पोरिसी एकाशनादि तप अधिक करे, अरु जे कर तपका दिन जान कर एक दाणानी खावे, तो व्रतनंग हो जाता है, अरु जो व्रतका नंग जान करकें करनां है, सो नरकादिकका हेतु है, तथा जे कर तप करे पीठें गाढा मांदा हो जावे, अथवा नूतादि दोषसें परवश हो जावे, अथवा सर्पादिक काटे, ऐसी असमाधिमें तप करने समर्थ न होवे, तोनी चार आगार उच्चारण करनेसें व्रतनंग नहीं होता है, ऐसें सर्व नियमोंमें जान लेनां ॥ उक्तं च ॥ वयनंगे गुरुदो

सो, थोवस्सवि पालणा गुणकारि ॥ गुरु लाघवं च नेयं, धम्ममिय उ आगारा ॥ १ ॥ अस्यार्थ – व्रतभंग करनेसे महा दूषण होता है, अरु जो पालन करे, तो थोडा व्रतभी गुणकारी है, इस वास्ते गुरु लघु जानके धर्ममें आगार भगवान्नें कहे है

तथा नियम ऐसें ग्रहण करणा, सो कहते है प्रथम तो मिथ्यात्व त्यागणे योग्य है, तिस पीछें नित्य यथाशक्ति एक, दो, तीन वार जिन पूजा, जिनदर्शन, संपूर्ण देववंदन, चैत्यवंदन करे, ऐसेही गुरुका योग मिले दीर्घ, लघु वंदन करे, जेकर गुरु हाजर न होवे, तब धर्माचार्यका नाम लेके वंदना करे, तथा नित्य वर्षा ऋतुमें (चौमासेमे) पांच पर्वके दिन अष्ट प्रकारी पूजा करे, जहां लग जीवे, तहां लग नवा अन्न, नवा फल, पक्कान्नादिक देवकों चढाये विना खावे नहीं, नित्य नैवेद्य, सो पारी, बदामादि देवके आगे चढावे, तथा तीन चौमासे संवत्सरी दीवाली प्रमुखमें चावलोंके अष्ट मंगल भरके ढोवे नित्य अथवा पर्वके दिन तथा वर्षमे खादिम, स्वादिम, सर्व वस्तु देव गुरुकों दे कर भोजन करे, प्रतिमास, प्रतिवर्ष, महाध्वजादि उत्सव आडंबर करकें चढावे, स्नात्र महोत्सव, अष्टोत्तरी पूजा, रात्रिजागरण करे, नित्य चौमासे आदिकमें कितनीक वार जिनमंदिर, धर्मशाला, प्रमार्जन करे, देहरा समरावे, पौषधशाला लीपे, प्रतिवर्ष प्रतिमास जिनमंदिरमे अंगलूहना तथा दीपकके वास्ते पूणी देवे, दीवे वास्ते तेल देवे, चंदन खंडादि मंदिरमें देवे, पोषधशालामे मुखवस्त्रिका, जपमाला पूंछणा, चरवला, कितनेक वस्त्र, सूत, कंबली, ऊनादि देवे, वर्षमे श्रावकोके बैठने वास्ते कितनेंक पाट, चौकी प्रमुख देवें, जेकर निर्धन होवे, तो भी वर्ष दिन पीछें सूत मोरा अट्टी प्रमुख दे कर संघ पूजा करे, कितनेक साधर्मीयोकों शक्ति अनुसार भोजन देके, साधर्मीवात्सल्यादि करे, हररोज कितनेक कायोत्सर्ग करे, स्वाध्याय करे नित्य जघन्य नमस्कार सहित प्रत्याख्यान करे, रात्रिमे दिवस चरम प्रत्याख्यान करे, दोनो वखत प्रतिक्रमण करे, यह करणी प्रथम कर लेवे, तो पीछेंसे बारा व्रत स्वीकार करे, तिन व्रतोमें सातमे व्रतमें सचित्त, अचित्त, अरु मिश्र वस्तुका स्वरूप अछी तरे जानना चाहियें

जैसे प्राय सर्व धान्य, अन्न, अरु धनीया, जीरा, अजवयन, सौफ,

सोआ, राइ, खसखस प्रमुख सर्व कण, सर्व पत्र, सर्व हरे फल, तथा लूण, खारी, खारक, अर्थात् बुहारे, रक्त (लाल) रंगका सिंधालूण, खाण का सौंचल लूण, खारा, मट्टी, खरी, हिरमची, हरे दांतण, इत्यादि. ये सर्व व्यवहारसें सचित्त सजीव हैं. तथा पाणीमें भिंजोये चणे, गेहूं, आदि अन्न, तथा चणे, मूंग, उडद. तूअर प्रमुखकी दाल, जिसमें नक्कू रह गया होवे, ये सर्व मिश्र है, तथा पहिलां लूण लगा करकें अग्निकी बाष्पादि दीया विना तप्त वालु (रेतके) बिना गेरें चणे, गेहूं, जूवारादि भूंजे, तथा खारादि दीयां विन मसले हूये तिल, होलां, ऊंबियां, सिट्टे, पहूंक. ईपत्, सेकी फली. मिरच, राइ, हिंग प्रमुख करकें चिर्भटादि फल, वघारे, तथा जिसके अंदर बीज सचित्त है, ऐसे पक्के हूये सर्व फल, यह सब मिश्र है. तथा तिलवट, तिलकूट, जिस दिन करे उस दिन मिश्र है, अरु जेकर तिलोंमें अन्न रोटी प्रमुख गेरकें कूटे, तो एक मुहूर्त्त पीछें अचित्त होवे, तथा दक्षिण मालवादि देशोंमें बहुत गुड प्रक्षेप करनेसें उसी दिन अ चित्त हो जाते है, तथा वृक्षसें तत्कालका उखड्या गूंद, लाख, छिल्लक, त त्कालका फोड्या नालियर, तथा निंबू, दाडिम, अनार, आंब, नींब, इख, इनका तत्कालका काढ्या रस, तथा तत्कालका काढ्या तिलादिका तेल, तत्का लका भांग्या हूया बीज, तथा काटे हूये नलेर, सिंघाडे, सोपारी आदि, त था बीज रहित कीया पक्क फल खरबूजादि, गाढा मर्दन करकें कण काढ्या जीरादि, ये सर्व अंतर्मुहूर्त्त लग मिश्र हैं, पीछे प्राशुकका व्यवहार है, तथा औरभी प्रबल अग्निके योगविना प्राशुक करे हूये अंतर्मुहूर्त्त तांइ मिश्र है, पीछें प्राशुकका व्यवहार है, तथा अप्राशुक पाणी, कच्चा फल, कच्चा अन्नकों जेकर बहुत मर्दनभी करे है, तोभी लवण अग्न्यादिक प्रबल शस्त्र बिना प्राशुक नही होते हैं. क्योंकि श्रीपंचमांग भगवतीसूत्रके उन्नीस मे शतकके तीसरे उद्देशेमें लिखा है, कि:—वज्रमयी शिला, वज्रमयी लोटा, आमले प्रमाण पृथ्वीकाय लेकें एकवीश वार पीसे, तब कितनेक पृथ्वीके जीवोंकों लोटेका स्पर्शभी नही हूआ है, ऐसी उनजीवोंकी सूक्ष्म काया है, तथा सौ योजनसें उपरांत आये हूये हरडां, खारक, किसमिस, लाल द्राक्षा, मेवा, खर्जूर, काली मिरची, पीपर, जायफल, बदाम, अखोड, ने वजा, जरगोजा, पिस्ता, सीतल, चीनी, स्फटिक समान उज्ज्वल सिंधा

लूण, लक्को नदीमे पकाया लूण, बनावटका खार, कुंनारकी कमाइ हूइ मट्टी, एलायची, लवग, जावत्री, सूकी मोथ, कोकणदेश प्रमुखके केले, कदलीफल, उवाले हूये सगाडे, सोपारी, इन सर्वका प्राशूक व्यवहार है, साधुनी कारण पडे ले लेवे. यह वात कल्पनाष्यमेनी लिखी है "जोयण सय तु गतु. अणाहारे नंम सकंति" इत्यादि इनमेंसू हरड, पीपल प्रमुख तो आचीर्ण है, इस वास्ते लेते है, अरु खर्जूर, द्राक्षा प्रमुख अनाचीर्ण है, तथा उत्पलकमल, पद्म कमल, धूपमे रखे, एक प्रहरके अन्यतरही अचित्त हो जाते है तथा मोगरेके फूल, जुहिके फूल यह धूपमें बहुत चिरनी पडे रहे, तोनी अचित्त नही होते है तथा मगदतिना अर्थात् मोगरेके फूल पाणीमे गेरे रहे तो एक प्रहरके अंदरही अचित्त होजाते है, तथा उत्पल, नीलकमल अरु पद्मकमल, ये दोनो पाणीमे गेर रखनेसें बहुत कालमेंनी अचित्त नही होते है, "शीतयोनिकत्वात्" तथा पत्रोका फूलोका जिनफलोमे अनीतक गुठली बंध नही हुइ, तिनका तथा वथुआ प्रमुख हरित वनस्पतिका, इन सबनका वृत, (मूली) कुमलाय जावे, तब जीव रहित हूये जानने यह कथनश्रीकल्पनाष्य वृत्तिमे लिखा है

तथा श्रीपचमागके छठे शतकके पाचमे उदेशेमे सचित्ताचित्त वस्तुका स्वरूप ऐसा लिखा है, शालि, व्रिहि, गेहू, जव, जवजव, ये पाच धान्य की जाति कठोरमें तथा ठेके पालेमे तथा मचा माला, कोठारविशेषोमें मुख ढाकके रखे, लीप्या होवे, तथा चारो तर्फसे लीप्या होवे, उपर कोइ और ढकणा दीया होवे, मुद्रित लांछित करके रखे तो कितने काल ताइ जीवयोनि रहे ? ऐसा प्रश्न पूछनेसे नगवान् कहते है कि हे गौतम ! जघन्य तो अतर्मुहूर्त्त रहे, अरु उत्कृष्ट तो तीन वर्ष रहे, फेर अचित्त हो जावे तथा मटर, मसूर, तिल, मूग, उडद, वाल, कुलथी, चवला, तूयर, गोल चणे, इत्यादि धान्य सर्व उपर वत् जानना नवर, उत्कृष्टसे पाच वर्ष उपरात अचित्त होते है, तथा अलसी, कुसुंनेकी करड, कोड, कगुनी, वरटी, राल, कोडुसक, सण, सरसों, मूलीके बीज, इत्यादि धान्यनी उपरवत् नवर, उत्कृष्टसे सात वर्ष उपरात अचित्त हो जाते है तथा कप्पासके विनौले, उत्कृष्ट तीन वर्षसे [illegible] जीव रहित हो जाते है यहनी कल्पनानाष्यवृत्तिमे है तथा [illegible] आटा (चुन) श्रावण, ना

इवाके महिनेमें पांच दिन तक मिश्र रहता है, पीछें अचित्त होता है, अ सोज, कार्त्तिक मासमें चार दिन तक मिश्र रहता है, पीछें अचित्त हो जाता है. तथा मगसिर, पौष मासमें तीन दिन मिश्र रहता है, पीछें अचित्त होता है, तथा माघ, फागून मासमें पांच प्रहर मिश्र रहता है. तथा चैत्र, वैशाख मासमें चार प्रहर मिश्र रहता है, तथा ज्येष्ठ आषाढमें तीन प्रहर मिश्र रहता है, उपरांत अचित्त हो जावे, जे कर तत्काल छान लेवे, तब अंतर्मुहूर्त्त लग मिश्र रहे, पीछें अचित्त होवे.

शिष्य प्रश्न करता है, कि पीस्या हूआ आटा कितने दिनका अचित्त भोगी कों तथा श्रावककों खानां चाहियें ?

उत्तरः— सिद्धांतमें हमने आटेकी मर्यादाका नियम नहीं देखा है. परंतु बुद्धिमान् नवा, जीर्ण अन्न, तथा सरस नीरस क्षेत्र, तथा वर्षा, शीत, उष्णा दि ऋतु, तिनमें तिस आटेका पंदरा दिन मासादि कालमें वर्ण, गंध, रस स्पर्शादि बिगडा देखे, तथा सुरसली प्रमुख जीव पडा देखे, तब न खावे, जे कर खावे, तो जीवहिंसा अरु रोगोत्पत्तिका कारण है.

तथा मिठाइकी मर्यादा, अरु विदलका निषेध, उपर सातमे व्रतमें लिख आये हैं, तहांसें जान लेनां. तथा दहीमें सोलां प्रहर उपरांत जीव उत्पन्न होते हैं, तथा विवेकी जीवकों वेंगन, टींबरु, जामन, बिल्व, पीलु, पक्क कर्मदा, पक्का गूंदा, लसूडा पेंचु, मधुक, (महुवा) मोंर. वालोल, बडे बोर, फाडीके बोर, कच्चा कौठफल, खसखस, तिल, इत्यादि न खाने चाहियें, इनमें त्रस जीव होते हैं. तथा जो फल रक्त (लालरंग) देखनेमें बूरा लगे, पक्क, गोल, कंकोडा, फणस, कटेल प्रमुखभी बु री भावनाके हेतु होनेसें, न खाने चाहियें. तथा जो फल जिस देशमें खानां विरुद्ध होवे, जैसें कडूवा तूंबा, कूष्मांड अर्थात् कोहला हलुवा (कडु) सोभी न खानां चाहियें, अरु अनक्ष्य, अनंतकाय, कंदमूल, परघरके अचित्त करे, रांधे हूयेभी न खाने चाहियें. क्योंकि एक तो निःशूकता अरु दूसरी रस लंपटता तथा वृद्ध्यादि दोषका प्रसंग होता है. इसी वास्ते न खानां, तथा उकाला हूआ सेलरा, रांध्या हूआ आदादि कंद, सूरण, वैंगनादि, यद्यपि अचित्त हैं. तोभी श्रावक, प्रसंग दूषण त्यागने वास्ते न खावे, तथा मूली तो पंचांगही खाने योग्य नहीं. निद्रिद्धालु, तथा

शुंठ, हलद, नाम अरु स्वाद भेद होनेसे अनदय नहीं है. तथा उष्ण जल, तीन उबाले आ जावे, तब अचित्त होता है, यह कथन पिंमनिर्युक्तिमे है, चावलोंके धोवणका पाणी जब नितरके निर्मल हो जावे, तब अचित्त होता है, तथा उष्णजलकी मर्यादा प्रवचनसारोद्धारादि ग्रंथोमें ऐसी लिखी है. सो कहते है त्रिदंमोत्कृत उष्ण जल, उष्णकालके चारो मासमे पाच प्रहर अचित्त रहता है, यह चुल्हेसे उतारे पीछेकी मर्यादा है तथा वर्षाके चारों मासमें तीन प्रहर अचित्त अरु शीत कालके चारो मासमे चार प्रहर अचित्त रहता है. पीछे सचित्त होता है जे कर ग्लान, बाल, वृद्धादि साधुके वास्ते मर्यादा उपरात रखना होवे, तब क्षारादि वस्तुका प्रक्षेप करके रखना फेर सचित नही होता है प्रवचनसारोद्धारके १३६मे द्वारमें यह कथन है तथा कोरडु मोठ, मूग अरु दग्डादिककी मींजी (गिटक) यह यद्यपि अचेतन है, तोजी योनि रखने वास्ते तथा निःशूकतादिके परिहार वास्ते दातोसें तोडना (नागना) न चाहिये इत्यादि सचित्त वस्तुका स्वरूप जानके सातमा व्रत अंगीकार करना चाहिये

श्रावकको प्रथम तो निरवद्य (दूषण रहित) आहार खाना चाहियें ऐसे न कर सके तो सर्व सचित्त खानेका त्याग करे ऐसेंजो न कर सके तब बावीश अनदय अरु बत्तीस अनतकाय तो अवश्यमेव त्यागने चाहियें तथा चौदह नियम धारने चाहियें ऐसे सदा उठके यथाशक्ति नियम ग्रहण करे पीछें यथाशक्ति प्रत्याख्यान करे, नमस्कार सहित पौरुष्यादि काल प्रत्याख्यान जो है, सो जेकर सूर्य उगनेसे पहिला उच्चारण करिये, तो शुद्ध है, अन्यथा शुद्ध नही अरु शेष प्रत्याख्यान सूर्योदयसें पीछेंनी हो सके है यह तथा नमस्कार सहित जेकर सूर्योदयसे पहिला उच्चार करा हूआ होवे, तब तिसके पूर्ण हूआ तिसके पीछही पौरुषी साढ पौरुष्यादि काल प्रत्याख्यान हो सक्ता है, जे कर नमस्कार सहित सूर्योदयसें पहिला उच्चारन न करिये, तब तो कोइजी काल प्रत्याख्यान करना शुद्ध नहीं अरु जे कर प्रथम नमस्कारादि प्रत्याख्यान मुष्टि सहितादि करे, तब सहितान प्रत्याख्यान करे, तो शुद्ध है

तथा रात्रिमें चोविहार करे अरु दिनमें एकासना करे, पीछे अंथि स

हित प्रत्याख्यान करे, तब तिसकों प्रतिमास एगुन तीस उपवासका फल होता है, दो वार जोजन उक्त रीतिसें करे, तो अठावीस उपवासका फल होता है, क्योंकि दो घडीका काल जोजन करतां लगता है, शेष काल तपमें व्यतीत हूआ, यह कथन पद्मचरित्रमें है, प्रत्याख्यान उप योग पूर्वक पूरा हो जावे, तो पारे.

अरु चार प्रकारके आहारका विजाग ऐसें है, एक तो अन्न, पक्वान्न, मंमक, सत्तूआदि जो क्षुधा दूर करनेकूं समर्थ होवे. सो प्रथम अशन नामक आहार है, दूसरा बबका पाणी, तथा उष्ण जलादि, यह सर्व पानक नामक आहार है. तीसरा फल, फूल, इक्षुरस, पहुंक, सूखडी, आदिक यह सर्व खादिम नामक आहार है. चौथा सूंठ, हरडे, पिप्पली, काली मिर च, जीरा, अजमक, जायफल, जावंत्री, असेलक, कब्रा, खयरवडी, ज्येष्ठी मधु, तज, तमालपत्र, एलायची, कौठ, विडंग, विडलवण, अजमोद, कु लिंजण, पिप्पलीमूल, चीणकबाब, कचूर, मुस्ता, कंटासेलिउ, कर्पूर, सौं चल, हरड, बहेडा,कुंठजठ, बंबूल, धव, खदिर, खेजकी बाल, पान, सोपारी, हिंगुलाष्टक, हिंगु, त्रेवीसउ, पंचकूल. पुष्करमूल, जवासामूल, बावची, तुलसी, कपूरिकंदादिक, जीरा. यह सर्व जाष्य अरु प्रवचनसारो धारादिक ग्रंथोंके लेखसें स्वादिम नामक आहार है, अरु कल्पवृत्तिमें उनकूं खादिम लिखा है. कोइक अजवयनकोंजी खादिम कहते हैं. यह मतांतर है, यह सर्व स्वादिम नामक आहार है, तथा एलायची कर्पूरादि वासित जल द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें पीनां कल्पता है, तथा वेशण, सौंफ, सोय, कोठवडी, आमलागांठ, आंबकी गुटली, निंबूके पत्र प्रमुख खादि म होनेसें द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें नहीं कल्पते हैं. अरु त्रिविध आहार प्रत्याख्यानमें तो जलही पीनां कल्पता है, तिसमेंजी फूंकारा हूआ पाणी, साकर, कर्पूर, एलायची, कब्रा, खदिर, चूर्णक, सेलक, पाड लादि वासित जल, जे कर नितार अरु बानके लेवे तो कल्पे, अन्यथा नहीं.

तथा शास्त्रोंमें मधु, गुड, साकर, खंमादिजी स्वादिम कहे हैं. अरु द्राक्षा, शर्करादि, जल, तक्र, बाबादिकों पानक कहे हैं. तोजी द्विविध आ हार प्रत्याख्यानमें नहीं कल्पते हैं॥ उक्तं च नागपुरीय गबकी करी हूइ प्र त्याख्यानजाष्यमें ॥ दक्खा पाणाईयं, पाणं तह साइमं गुडाईयं ॥ पढियं

सुयंमि तहवि हु, तित्तीजणगंति नायरिअ ॥ १ ॥ स्त्रीके साथ भोग करनें से चौविहार भंग नहीं होता है, परंतु बालकके तथा स्त्रीके होठ मुखमे ले कर चर्वण करे, तो भंग होवे, अरु द्विविध आहार प्रत्याख्यानमे यह भी करे तो भंग नहीं होता, प्रत्याख्यान जो है सो कवल आहारका है, परंतु रोम आहारका नही है इस वास्ते लेपादि करनेसे भंग नही

तथा इतनी वस्तु किसी आहारमेंभी नही है उसका नाम लिखते है. पंचांग नींब, गोमूत्र, गलोय, कडु, चिरायता, अतिविष, कुडेकी छाल, चीड चंदन, राख, हरिद्रा, रोहणी, उपलोट, वज त्रिफला, बाबूलकी छिल्लक, धमासा, नाहि, आसध, रींगणी, एलुवा, गुगल, हरडा, टाल, कपासकी जड जाड, बैरी, कथेरी, करीर, इनकी जड, पुआड, बोहथोरी, आछि मजीठ, बोल, बीउकाष्ठ, कूंआर, चित्रक, कुंदरु प्रमुख जो वस्तु खानेमे अनिष्ट लगे, वो सर्व अनाहार है, यह अनाहार वस्तु रोगादि कष्टमे चौविहार प्रत्याख्यानमेंभी खा लेवे, तो भंग नही इस तरे आहारके भेद जानके प्रत्याख्यान करे.

पीछें मलोत्सर्ग, दंतधावन, जिव्हालेखन, कुरला करना यह सर्व देश स्नान करके पवित्र होवे, यह कहना अनुवाद रूप है क्योंकि यह पूर्वोक्त कर्म सवेरे उठके प्राय सर्व गृहस्थ करते है, इसमे शास्त्रोपदेशकी अपेक्षा नही स्वत ही सिद्ध है, परंतु इनकी विधि शास्त्र कहता है, उसमे प्रथम मलोत्सर्ग विधि यह है, कि मलोत्सर्ग मौनसे करना चाहिये, सो निर्दूषण योग्य स्थानमे करे ॥ यत उक्त विवेकविलासग्रंथे ॥ मूत्रोत्सर्गं मलोत्सर्ग, मैथुनं स्नानभोजने ॥ संध्यादि कर्म पूजा च, कुर्याज्जाप च मौनवान् ॥ १ ॥ अर्थ – मूतना, दिसा फिरना, मैथुन करना, स्नान, भोजन, संध्यादि कर्म, पूजा, जाप, यह सर्व मौनपणे करने, तथा दोनो संध्या वस्त्र पहिरके करे, तथा दिनमे उत्तरके सन्मुख मुख करकें, अरु रात्रिको दक्षिणदिशि सन्मुख मुख करकें लघु शंका उच्चार करे, तथा सर्व नक्षत्रोका तेज सूर्य करके जब भ्रष्ट हो जावे, जहा तक सूर्यका आधा मांडला उगे तहा तक सवेरेकी संध्या करणी, तथा सूर्य आधा अस्त होवे, तब पीछें दो तीन नक्षत्र जहा तक नजर न पडे, तहां तक सायकाल कहते है, तथा राखका ढेर, गोबरका ढेर, गौके बैठनेंके स्थानमें, सर्पकी बवी ऊपर तथा

जहां बहुत लोग पुरीषोत्सर्ग करते होवें, तथा उत्तम वृक्षके हेठ. रस्तेके वृक्ष हेठ, तथा रस्तेमें. तथा सूर्यके सन्मुख, तथा पाणीकी जगामें, तथा मसाणोंमें, तथा नदीके कांठे उपर, तथा जिस जगोकों स्त्री पूजती होवे, इत्यादि स्थानोमें मलोत्सर्ग न करे. परंतु जहां बैठनेंसें कोइ मार पीट न करे, पकडके न ले जावे, धर्मकी निंदा न होवे. तथा जहां बैठनेंसें गिरे, फिसले नहीं, पोली नूमि न होवे, मानादि न होवे. त्रस जीव बीज न होवे, इत्यादि उचितस्थानमें मलोत्सर्ग करे. गामके तथा किसीके घरके समीप मलोत्सर्ग न करे. तथा जिस तर्फसें पवन आती हो वे, तथा गामकी सूर्यकी पूर्वदिशिके तरफ पीठ करकें मलोत्सर्ग न करे. दिसा अरु मूत्रका वेग रोकनां नहीं. क्योंकि मूत्रका वेग रोकनेंसें नेत्रोंसें हानी होती है. तथा दिसाका वेग रोकनेंसें काल हो जाता है. तथा वमन रोकनेंसें कुष्ट रोग हो जाता है जेकर ये तीनो बात न हो वेगी तो रोग तो जरुर हो जावेगा. श्लेष्मादि करकें ऊपर धूलि गेर देवें, क्योंकि श्रीप्रज्ञापनोपांगके प्रथम पदमें लिखा है कि चौदह जगें संमूर्छिम जीव उत्पन्न होते हैं, सो चौदह स्थानक कहते हैं, १ पुरीषमें, २ मूत्रमें, ३ मुखके थूकमें, ४ नाकके मैलमें. ५ वमनमें, ६ पित्तोंमें, ७ वीर्यमें, ८ वीर्यरुधिर दोनोंमें, ए राधमें, १० वीर्यका पुजल अलग निकल पडे उसमें, ११ जीव रहित कलेवरमें. १२ स्त्री पुरुषके संयोगमें. १३ नगरीकी मोरीमें, १४ सर्व अशुचि स्थानमें, कानकी मैल, आंखकी गीडमें, काखकी मैल प्रमुखमें, यह सर्व चौदह बोल मनुष्यके संसर्गवाले ग्रहण करणे, अरु जब शरीरसें अलग होवे, तब जीव उत्पन्न होते हैं.

तथा दातनकी निरवद्य स्थानमें करे, दातण अचित्त जाने हूए वृक्षकी कोमल करे, तथा दांतोंके दृढ करने वास्ते तर्जनी अंगुली करकें दांतोंकी पीड घसे, जो दांतोंकी मैल पडे, उसके ऊपर धूलि गेर देवे, तथा दातणकी कैसी करे जो दातण सूधी होवे, बीचमें गांठ न होवे, कूर्च अच्छा होवे, आगेसें पतली होवे, चैंटी अंगुली समान मोटी होवे, सुनूमिकी उत्पन्न होइ होवे, ऐसी दातण कनिष्ठा अनामिकाके बीच ले कर करे, पहिलां दाहिनी दाढा घसे, फेर वामी घसे, उपयोगवंत स्वस्थ, दांत अरु पीढके मांसकों पीडा न देवे, उत्तर तथा पूर्व सन्मुख करकें निश्चलासन,

मौन युक्त दातण करे, डुर्गंध, पोली, सूकी, खट्टी, खारी, वस्तु दातको न घसे, तथा, व्यतीपात रविवार, सक्राति दिने ग्रहण लगेमे, नवमी, अष्ट मी, पडवा, चौदश, पूर्णमासी, अमावस, इन दिनोंमे दातण न करे जे कर दातण न मिले, तब मुखशुद्धिके वास्ते बारा कुरले करे, अरु जिव्हा उल्लेखन तो सदा करे. दातणकी फाकसे जिव्हाका मैल हलवे हलवे सर्व उतारके शुचिस्थानमे दातण धो करके आपणे मुखके सामने गेरे, तथा खांसी, श्वास, तप, अजीर्ण, शोक, तृषावाला, मुख पकेवाला, म स्तक, नेत्र, हृदय, कान, इतने रोग वाला, दातण न करे

मस्तकके केशोकों सदा समारे, जिस्मे जूआ न पडे, जे कर तिलक कर कें आरीसा देखे, उसमे मुख नही दीखे, सिर नहि दीखे, तो पाच दिनके अदर उ सका मरना जानना अरु जिसने उपवास पोरुष्यादिक प्रत्याख्यान करा होवे, वो दात धोया विनाजी शुद्ध है, क्योकि तपका बडा फल है, लौकिक शास्त्रो मेंजी उपवासादि करे, तो दातण विनाही देवपूजा करते है, इस वास्ते लौकिक शास्त्रोमेंजी उपवासादिमे दातण करनेका निषेध है ॥ यडुक्त विष्णुजक्तिचड्रोदयग्रंथे ॥ प्रतिपदार्शषष्ठीषु, मध्याते नवमीतिथो ॥ सक्राति दिवसे प्राप्ते, न कुर्याद्दतधावन ॥ १ ॥ उपवासे तथा श्राद्धे, न कुर्यात् द तधावन ॥ दताना काष्ठसयोगो, हति सप्त कुलानि वै ॥ २ इत्यादि

तथा जब स्नान करे, तब उत्तिग पनक कुंथुआदि जीवोसे रहित जू मिमें करे, सो जूमि उची, नीची, पोली न होवे, प्रथम तो उष्ण प्राशू क जलसे स्नान करे, जेकर उष्ण जल न मिले, तब वस्त्रसे गान करकें प्रमाण सयुक्त शीतल जलसे स्नान करे, तथा व्यवहार शास्त्रमे ऐसा लिखा है, कि – नग्न हो कर तथा रोगी तथा प्ररदेशसे आया हूआ जोज न करे पीछें आजूपण पहेरके किसीको विदा करके पीछें आ करके मग ल कार्य करके स्नान न करे, तथा अनजाने पानीमे, डुष्प्रवेश जलमे, मैले जलमे, वृक्षों करकें आछादित जलमे, शैवल करके आछादित जल मे, स्नान न करे, तथा शीतल जलसे स्नान करके उष्ण जोजन न खाना चाहिये अरु उष्ण जलसे स्नान करके शीतल जोजन न खाना चा हिये तैलमर्दन सदाही करना चाहियेतथा स्नान कखा पीछें जिसकी काति फीकी दीसे तथा जिसके दात परस्पर घसे, अरु शरीरसे मृतक कैसी

गंध आवे, तिसका मरण तीन दिनके अंदर होगा, तथा स्नान करां पीछें जिसके हृदयमें, तथा दोनो पगोंमें तत्काल पाणी शोष जावे, तब छे दिनोंके बीच उसका मरन जाननां. मैथुन सेवकें तथा वमन करकें इन दोनोमें कछुक देर पीछें स्नान करे, तथा मृतककी चिताके धूम लगनेसें मस्तक मूंमवा करकें, छाने हूये शुद्ध जलसें स्नान करे, तथा तेलमर्दन करी स्नान कर्यां पीछें उज्ज्वल वस्त्र आज्ञरण पहिरनां. पिछें प्रयाण करनेकें दिनमें, संग्राममें जातां हूआ, विद्यामंत्र साधतां, रातकों, सांझकों, पर्वदिनमें, नवमे दिनमें स्नान न करे, मस्तक मुंमनज्ञी न करावे, तथा पक्षमें एक वार दाढी मस्तकके केश तथा नख दूर करावे, परंतु अपणे दांतों करी तथा अपणे हाथ करकें नख न कतरे, स्नान करनेसें शरीर पवित्र चैतन्यसुख कर ज्ञाव शुद्धिका हेतु हो जाता है ॥ उक्तं च द्वितीये अष्टकप्रकरणे ॥ श्लोक ॥ जलेन देहदेशस्य, क्षणं यच्छुद्धिकारणं प्रायोऽन्यानुपरोधेन, इव्यस्नानं तदुच्यते ॥ १ ॥ अस्यार्थः— देहदेश त्वचामात्रहीकी क्षणमात्र शुद्धि है, परंतु प्रज्ञूत काल नहीं, शुद्धि जो है, सोज्ञी प्रायें है, कुछ एकांत नहीं है, क्योंकि अतिसारादि रोग वालेकों क्षण मात्रज्ञी शुद्धि नहीं हो सक्ती है, धोने योग्य मैलसें अन्य दूसरा मैल नासिकादि अंतगेत जो है, सोज्ञी स्नानसें दूर नहीं होता है, अथवा पाणी विना और जीवोंकी हिंसा न करनेसें जो स्नान है, सो बाह्य स्नान है, जो पुरुष स्नान करकें ज्ञगवानकी तथा साधुकी पूजा करे, तिसका स्नानज्ञी अछा है, क्योंकि ज्ञावशुद्धिका निमित्त है, स्नान करनेमें अप्कायके जीवोंकी विराधनाज्ञी है, तोज्ञी सम्यग्दर्शनकी शुद्धि रूप गुण हैं ॥ यदुक्तं ॥ पूआए कायवहो, पडिकुछो सोउ किंतु जिणपूआ ॥ सम्मत्त सुद्धिहेउ, त्ति ज्ञावणीयाउ निरवज्जा ॥ १ ॥ अर्थः— कोइ कहते हैं कि पूजा करनेसें जीववध होता है, अरु जीववध तो शास्त्रमें निषेध करा है, इस वास्ते पूजा न करणी चाहियें. इसका उत्तर कहतें है, कि पूजा जो जिनराजकी है, सो सम्यक्त्व निर्मल करने वाली है, इस वास्ते जिनपूजा निरवद्य है, ऐसें देवपूजाके वास्ते गृहस्थकों स्नान करनां कहा है, तथा शरीरके चैतन्य सुखके वास्तेज्ञी स्नान है, परंतु जो स्नान करनेसें पुण्य मानते हैं, सो वात मिथ्या है. क्योंकि जो कोइ तीर्थमेंज्ञी जान कर स्नान

करता है, तिसकोंभी शरीर शुद्धिके शिवाय और कुछ फल नहीं होता है, यह बात, अन्यदर्शनके शास्त्रोंमेंभी कही है ॥ उक्तं च ॥ स्कंदपुराणे काशीखंडे षष्ठाध्याये ॥ श्लोक ॥ मृदोभारसहस्रेण, जलकुंभशतेन च ॥ न शुध्यते दुराचारा, स्नानतीर्थशतैरपि ॥ १ ॥ जायंते च म्रियंते च, जलेष्वेव जलौकस ॥ नच गछंति ते स्वर्गं, मविशुद्धमनोमला ॥ २ ॥ चित्त समाधिभि शुद्ध, वदन सत्यभाषणै ॥ ब्रह्मचर्यादिभि काय', शुद्धोगंगाविनाप्यसौ ॥ ३ चित्त रागादिभि क्लिष्ट, मलीकवचनैर्मुख ॥ जीवहिंसादिभि· कायो, गंगा तस्य पराङ्मुखी ॥ ४ ॥ परदारापरद्रव्य, परद्रोहपराङ्मुख ॥ गगाप्याह कदागत्य, मामयं पावयिष्यति ॥ ५ ॥ जलसे स्नान करनेसे असख्य जीवोकी विराधना होती है, इस वास्ते पुण्य नहीं है, जलमे जीवोका होना मीमांसा शास्त्रसेभी सिद्ध होता है यदुक्त उत्तरमीमासाया ॥ श्लोक ॥ लूतास्यतंतुगलिते, ये बिंदौ संति जंतव ॥ सूक्ष्मा भ्रमराणास्ते, नैव यांति त्रिविष्टपं ॥ १ इत्यादि.

किसीके स्नान करेभी जे कर गुमडादिमेसे राधादि श्रवे, तदा तिसनें अंगपूजा फूलादिकसे आप नहीं करनी, दूसरोसे करावे अरु अग्रपूजा तथा भावपूजा आपभी करे, तो कुछ दोष नही, थोडासाभी अपवित्र होवे, तव देवका स्पर्श न करे, तथा स्नान कस्या पवित्र मृदु, गंध, कापायिकादि वस्त्र, अंगलूहणा, पोतीयां छोड करकें पवित्र वस्त्रांतर पहिरनेकी युक्तिसे पाणीके भीजे पगोसे धरतीकों अस्पर्शता हूआ पवित्र स्थानमें आ करके उत्तर सन्मुख मुख करकें अछी तरे मनोहर नवा वस्त्र जो फाटा हूआ तथा सिवाया हूआ न होवे, अरु वर्णमे धवला होवे, ऐसा वस्त्र पहिरे, तथा जिस वस्त्रको कटिमे पहिरा होवे, तथा जिस वस्त्रसे दिसा गया होवे, तथा जिस वस्त्रसें मैथुन सेव्या होवे, तिस वस्त्रकों पहिरकें पूजादि न करे, तथा एक वस्त्र पहिनके भोजन तथा देवपूजादि न करे, तथा स्त्री, कचुकी विना पहने देवपूजा न करे, इस रीतिसे पुरुषको दो वस्त्र तथा स्त्रीको तीन वस्त्र विना पूजा करनी नहीं कल्पे है, देवपूजामे धोती अतिविशिष्ट धवली करनी चाहियें, निशीथचूर्णी तथा श्राद्धदिनकृत्यादि शास्त्रोमे ऐसाही लिखा है, तथा पूजा षोडशमें ऐसाभी लिखा है, कि रेशमी आदिक जो सुदर वस्त्र लाल पीला होवे,

सोभी पूजामें पहिरे तो ठीक है, तथा " एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, इत्यादि आगमके प्रमाणसें उत्तरासंग अखंड वस्त्रका करे, दो टुकडे सीव्या वस्त्र न कल्पे, तथा रेशमी कपडेसें भोजनादि करे, अरु मनमें समझे कि यह तो सदा पवित्र है, तोभी तिस्सें पूजा न करे. तथा जिस वस्त्रकों पहिरकें पूजा करे, उसकोंभी वारंवार पहिननेंके अनुसार धोवावे, धूप दे कर पवित्र करे, धोती थोडाही काल तक पहननी चाहियें, उस धोतीसें पसीना श्लेष्मादि न दूर करनां चाहियें. क्योंकि उस्सें अपवित्रता हो जाती है, तथा पहिने हूए वस्त्रोंके साथ पूजाके वस्त्र बुहाने (अडाने) नहीं चाहियें, दूसरायोंकी पहनी हूइ धोती पहननी न चाहियें, तथा बाल, वृद्ध, स्त्रीके पहननेंमें आइ होवे, तो विशेष करकें न पहननी चाहियें, तथा भले स्थानसें ज्ञातगुण, सुमनुष्य पासों पवित्र भाजन आछादनसंयुक्त रस्तेमें लानेकी विधिसंयुक्त पाणी अरु फूल, पूजा वास्ते मंगावने चाहियें. अरु फूलादि लाने वालेकों अछी तरें मोल दे कर प्रसन्न करनां चाहियें, ऐसें मुखकोश बांध के पवित्रस्थानादि युक्तिसें जिसमें कोइ जीव पडा न होवे, ऐसा शोध्या हुवा केशर कर्पूरादिकसें मिश्र, चंदन घसे, शोध्या हूआ सुंदर धूप, प्रदीप, अखंड चावलादि बूत रहित प्रशंसा करनें योग्य ऐसा नैवेद्य फलादि सामग्री मेलकें इस रीतें द्रव्यसें शुचि करकें अरु भावसें शुचि तो राग, द्वेष, कषाय, ईर्ष्या रहित तथा इस लोक परलोकके सुखोंकी इछा रहित हो कर अरु कुतूहल चपलादि त्याग करकें एकाग्र चित्ततारूप भावशुद्धि करे ॥ उक्तं च ॥ श्लोक ॥ मनोवाक्कायवस्त्रोर्वी, पूजोपकरणस्थितेः ॥ शुद्धिः सप्तविधा कार्या, श्रीअर्हत्पूजनक्षणे ॥ १ ॥

ऐसें द्रव्य भाव करकें शुद्ध हो कर जिनघर (देहरेमें) दक्षिणदिशें पुरुष, अरु वामा दिशें स्त्री, यत्न पूर्वक प्रवेश करे, प्रवेशके अवसरमें दक्षिण पग पहिलां धरे, पीछें सुगंध वाले मीठे सरस द्रव्यों करकें पराङ्मुख वामास्वर चलते मौनसें देवपूजा करे. इत्यादि तीन नैषेधिकी करण, तीन प्रदक्षिणा, इत्यादि विधिसें शुचि पाट उपर पद्मासनादि सुखासन पर बैठकें, चंदनका भाजनसें चंदन ले कर दूसरी कटोरीमें तथा हथेलीमें ले कर मस्तकमें तिलक करकें हस्तकंकण, श्रीचंदनचर्चित धूपित, हाथों करी जिन अर्हतकों पूजकें आगें लिखते हैं जो १ अंगपूजा, २ अग्रपूजा, ३ भावपू

जा, तिनोंसें पूजकें प्रत्याख्यान जो पूर्व करा था, सो यथाशक्ति देवकी सा क्षीसें उच्चारण करे, तद् पीछें विधिसे वडे पंचायती मदिरमें जा कर पूजा करे, सो इस विधिसें करे.

यदि राजादि महर्द्धिक होवे, सो तो सर्व ऋद्धि, सर्वदीप्ति, सर्वयुक्ति, सर्वसैन्या, सब उद्यमसे जिनमतकी प्रनावना वास्ते महा आडंबर पूर्वक जिनमदिरमे पूजा करनेको जावे, जैसे दशार्णनद्र राजा श्रीमहावीर नग वतको वदना करने गया था तैसे जावे

अरु जो सामान्य ऋद्धिवाला होवे, सो अनिमान रहित लोकोपहास्य त्यागके यथायोग्य आमवर नाइ, मित्र, पुत्रादिकोंसे परिवृत हो कर जावे, ऐसे जिनमदिरमें जा कर १ पुष्प, तंवोल, सरस, डुर्वादि त्यागे, तथा २ बूरी, पावडी, मुकुट, हाथी प्रमुख सचित्ताचित्त वस्तु शरीरके नोगकी त्यागे, तथा ३ मुकुट वर्जके शेप आनरणादि अचित्त वस्तु न त्यागे, अरु एक वडे वस्त्रका उत्तरासग करे, ४ जिनेश्वरकी मूर्त्ति दीखे अंजलि बांधकें म स्तक उपर चढाकें 'नमो जिणाए' ऐसा कहे, ५ मन एकाग्र करे, इस री तिसे पाच अनिगम सनालके (साचके)नैपेधिकी पूर्वक प्रवेश करे

जे कर राजा जिनमदिरमें प्रवेश करे, तव तत्काल राजचिन्ह दूर करे, १ तलवार, २ छत्र, ३ असवारी, ४ मुकुट, ५ चामर ये पाचो चिन्ह रा जाके त्यागे, अग्रद्वारमे प्रवेश करता घर व्यापारका निपेध करने वास्ते नैपेधिकी तीन करे, परतु तीनो निस्सहीकी एक नैपेधिकी गणतीमें कर णी, क्योंकि एकही घर व्यापार एककाही निपेध कीया है तद् पीछें मूल विवकों नमस्कार करके सर्व कृत्य, कल्याणवाछक पुरुषनें दक्षिणके पासे करणा, इस वास्ते मूलबिंबको दक्षिणके पासे करता हूआ ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, इन तीनोके आराधनार्थ प्रदक्षिणा तीन देवे, प्रदक्षिणा देता हूआ समवसरणस्थ चाररूप सयुक्त जिनेश्वरजीकों ध्यावे, गनारेमें पूठें वामा दक्षिणा दिशिमे जो बिंब होवे, तिनको वदे, इसी वास्ते सर्व मदिर में चारो तर्फ समवसरणके आकारें तीन तर्फ तीन बिंब स्थापे जाते हैं, ऐसे करनेसे जो अरिहंतकी पीछें वसणेमें दोप था, सो दूर हो गया, पीठ किसी पासेनी न रही, तिस पीछें चैत्यप्रमार्जनादि जो आगे लिखेगे, सो करे, पीछें सर्व प्रकारकी पूजा सामग्री प्रत्यें तथा देहराके समारनेके कामके

निषेध करने वास्ते दूसरी मुखमंमपादिकमें नैषेधिकी करे, पीछें मूलबिंबकों तीन प्रणाम करकें पूजा करे, भाष्यकारनेंभी ऐसा कहा है, कि निस्सही तीन करकें प्रवेश करी मंमपमें जिनेश्वरके आगें धरती उपर स्थापन करकें, हाथ गोडे करे, विधिसें तीन वार प्रणाम करे, तिस पीछें हर्षसें उल्हास हो करकें मुखकोश बांध करकें जिनप्रतिमाका निर्माल्य, फूल प्रमुख मोर पीछी करकें दूर करे, जिनमंदिरका प्रमार्जन आप करे, अथवा औरोंसें करावे, पीछें जिनबिंबकी पूजा विधिसें करे, मुखकोश आठ पुडका करे,जिस्सें नासिका अरु मुखका निःश्वास निरोध होवे,वर्षातमें निर्माल्यमें कुंथुआदि जीवभी होते हैं इस वास्ते निर्माल्य अरु स्नात्र जल न्यारा न्यारा पवित्र स्थानमें गेरे, गिरावे, ऐसें आशातनाभी नहीं होती है. पूजा, कलशजलसें करता हूआ ऐसी भावना ल्यावे, सो लिखते हैं.

हे स्वामिन् ! बालपणेमें मेरु शिखर पर सुवर्णकलशें करी इंद्र देवताने स्नान कराया था, सो धन्य थे, जिनोनें तुमारा दर्शन करा था, इत्यादि चिंतवणा करकें पीछें सुयत्नसें वालाकूंचीसें जिनबिंबके अंग उपरसें चंदनादि उतारे, पीछें जलसें प्रक्षालन करकें दो अंगलूहणेसें जिनप्रतिमाकों निर्जल करे, पग, जानु, कर, मस्तकें पूजा यथाक्रमसें नव अंगमें श्रीचंदनादि करकें चर्चे, (पूजे) कोई आचार्य कहते हैं, कि पहिला मस्तकमें तिलक करकें पीछें नवांग पूजा करणी, श्रीजिनप्रभसूरिकृत पूजाविधि ग्रंथमें ऐसा लिखा है किः– सरस सुरभि चंदन करी देवके, दाहिण जानु, दाहिण स्कंध, निलाड, वामा स्कंध, वामा जानु, इस क्रमसें पूजा करे, हृदय प्रमुखमें पूजा करे,तब नव अंगकी पूजा होती है, अंगोंमें पूजा करकें पीछें सरस पांच वर्णके प्रत्यग्र फूलों करकें चंदन सुगंध वास करी पूजे, जे कर पहिलां किसीने बडे मंमाणसें पूजा करी होवे,अरु अपणे पास वैसी सामग्री पूजाकी न होवे, तब पहिली पूजा उतारे नहीं, क्योंकि विशिष्ट पूजा देखनेसें भव्योंकों जो पुण्यानुबंधी पुण्य होता था, तिसकी अंतराय हो जाती है,किंतु तिस वास्ते तिसी पूजाकों शोभनिक करे, यह कथन बृहद्भाष्यमें है.

तथा जो पूजा उपर पूजा करणी, सो निर्माल्यके लक्षण न होनेसें निर्माल्य नहीं, जो भोगविनष्ट द्रव्य है, सोइ निर्माल्य गीतार्थोंनें कहा है,आभूषण वारं वार पहराये जाते हैं,परंतु निर्माल्य नहीं होते हैं,नहीं तो गंध,

कषाय वस्त्र, करकें एक सौ आठ जिनप्रतिमाके अंग क्यों कर लूहे ? इस वास्ते जिनबिंबारोपित जो वस्तु, शोभा रहित सुगंध रहित दीख पडे, अरु भव्य जीवोंको प्रमोदका हेतु न होवे, तिसहीकों बहुश्रुत निर्माल्य कहते है यह कथन सघाचारवृत्तिमें लिखा है, चढे हूये चावलादि निर्माल्य नहीं, कोइ आचार्य निर्माल्यभी कहते है, तत्त्व केवली जाणे क्यों कर है ?

चंदन फूलादि पूजा तैसें करणी, जैसे भगवानके नेत्र मुखादि ढके न जावे, अरु बहुत शोभनिक दीखे, जिस्से देखने वालोकों प्रमोद पुण्यादिककी वृद्धि होवे.

तथा १ अंगपूजा, २ अग्रपूजा, ३ भावपूजा, यह तीन प्रकारकी पूजा है, तिनमे जो निर्माल्य दूर करनां, प्रमार्जना करनां, अंगप्रक्षालन करना, वालकूंचीका व्यापारण, पूजना, कुसुमांजलिमोचन, पंचामृतस्नात्र, शुद्धोदकधारा देनी, धूपित स्वछ मृदुगंध कषायकादि वस्त्रसे अंगलूहण करना, कपूर कुंकुमादि मिश्र गोशीर्ष चंदन विलेपन अंगी रचनी, तथा गोरोचन कस्तूरीसे तिलक करणां, पत्र वेल, फूल प्रमुखकी रचना करनी, बहु मोल रत्न सुवर्ण मोती रूपें पुष्पादिकें आभरण (अलंकार) पहिरावे, जैसे श्री वस्तुपालने अपने कराये हूये सवालक्ष बिंबोके तथा श्रीशत्रुंजयजीमे सर्व बिंबोंके रत्न सुवर्णके आभरण कराये थे, तथा दमयंतीने पिछले भवमे अष्टापद पर्वतपर चौवीस अर्हतोंके तिलक कराये होते, क्योकि प्रतिमाजीकी जितनी उत्कृष्ट सामग्री होवे, उतनेही अधिक भव्य जीवोके शुभ भावोकी वृद्धि होती हैं तथा पहरावणी, चंद्रवादि विचित्र दुकूलादि वस्त्र पहिरावे, तथा १ ग्रथिम, २ वेष्टिम, ३ पूरिम, ४ संघातिम रूप, चतुर्विध प्रधान अम्लान विधिसे ल्याया हूआ शतपत्र, सहस्रपत्र, जाइ, केतकी, चंपकादि विशेष फूलों करी माला, मुकुट, सेहरा, फूलघरादिककी रचना करे. तथा जिनजीके हाथमें बिजोरा, नालियर, सोपारी, नागवल्ली, मोहोर, रूपइया, लड्डु प्रमुख रखनां अरु धूपक्षेप,सुगंध,वासप्रक्षेपादि,यह सर्व अंगपूजाकी गिणतीमें है. महाभाष्यमेभी कहा है ॥ गाथा ॥ न्हवण विलेव आहरण, वत्थ फल गंध धूप पुप्फेहिं ॥ कीरइ जिणगपूया, तछ विही एस नायव्वो ॥ १ ॥ वत्थेण बंधिऊणना,स अहवा जहा समाहीए ॥ व

ज्ञेयव्वं तु तया, देहमवि कंडुअणमाई ॥ २ ॥ अन्यत्रापि गाथा ॥ काय कंडुअणं वज्जे, तह खेलविगिंचणं ॥ थुइ थुत्तनणणं चेव, हुअंतो जगबंधुणो ॥ १ ॥ देवपूजनके अवसरमें मुख्यवृत्ति तो मौनही करणी चाहियें, जे कर न कर सके तो भी पापहेतु वचन तो सर्वथाही त्यागे, नैषेधिकी करनेसें गृहादि व्यापारका निषेध करनेंसें इस वास्ते पापकी संज्ञाभी वर्जे. मूलबिंबकी विस्तार सहित पूजा करे, पीछें अनुक्रमसें सर्व और बिंबोंकी पूजा करे, द्वारबिंब समवसरण बिंबोंकी पूजाभी मूलबिंबकी पूजा कस्यां पीछें, गंभारासें निकलती वखत करनी चाहियें, असा संभव है, परंतु प्रवेश करतां तो मूलबिंबकीही पूजा करणी, उचित मालुम होती है, संघाचारमें असेही लिखा है, इस वास्ते मूलनायककी पूजा, सर्व बिंबोसें पहिलां और सविशेष करनी चाहियें ॥ उक्तमपि ॥ उचिअत्तं पूआए, विसेसकरणं तु मूलबिंबस्स ॥ जं पडइ तब पढमं, जणस्स दिट्ठी सहमणेणं॥ १ ॥

शिष्य प्रश्न करता है कि:— चंदनादि करकें प्रथम एक मूलनायककों पूजीयें अरु दूसरे बिंबोंकी पीछें पूजा करनी, यह तो स्वामी सेवक भाव ठहरा, सो तो लोकनाथ तीर्थंकरसें है नहीं, क्योंकि एकाबिंबकी बहुत आदरसें पूजा करणी, अरु दूसरे बिंबोंकी थोडी पूजा करणी, यह बडी भारी आशातना मुझकों मालुम पडती है ?

गुरु उत्तर कहते हैः— अर्हंत प्रतिमाओंमें नायक सेवककी बुद्धि ज्ञानवंत पुरुषकों नहीं होती है, क्योंकि सर्व प्रतिमाजीके एक सरीखाही परिवार प्रातिहार्य प्रमुख दीख पडते हैं, यह व्यवहार मात्र है, जो बिंब पहिलांही स्थापन कीया गया है, सो मूलनायक है, इस व्यवहारसें शेष प्रतिमाओंका नायक भाव दूर नहीं होता है.

एक प्रतिमाकों वंदन करनां, पूजा करनी, नैवेद्य चढानां, यह उचित प्रवृत्तिवाले पुरुषकों आशातना नहीं है, जैसें माटीकी प्रतिमाकी पूजा फूलादि रहित उचित है, अरु सुवर्णादिककी प्रतिमाकों स्नान विलेपनादि उचित है, तथा कल्याणक प्रमुखका महोत्सव एकही बिंबका विशेष करकें कीया जाता है,परंतु वो महोत्सव दूसरी प्रतिमाओंकी आशातनाका कारण नहीं होता है,जैसें धर्मी पुरुषकों पूजतां और लोकोंकी आशातना नहीं, इस प्रकारकी उचित प्रवृत्ति करतां जैसें आशातना नहीं होती

है, तैसेंही मूलबिंबकी विशेष पूजा करता आशातना नही होती है, जिनमंदिरमें जिनबिंबकी जो पूजा करते है, सो तीर्थंकरोंके वास्ते नही करते है, किंतु अपणे शुन नावोके निमित्त है, जिस निमित्तसे आत्माका उपादान समर जाता है, अरु दूसरोको बोधकी प्राप्ति होती है कोइ जीव तो श्रीजिनमंदिरकों देखके प्रतिबोध हो जाता है, अरु कोइ जीव जिनप्रतिमाका प्रशांतरूप देखके प्रतिबोध हो जाता है, कोइ पूजाकी महिमा देखके, अरु कोइ गुरुके उपदेशसे प्रतिबोध हो जाता है इस वास्ते चैत्य जिनबिंबकी रचना बहुत सुंदर बनानी चाहिये अरु अपणी शक्ति अनुसार मुख्यबिंबकी विशेष अद्भुत शोना करनी चाहिये

तथा घर-देहरासर तो अबनी पीतल ताम्र रूपामय करावनेकुं समर्थ है जदा पीतलादिकका बनानेका सामर्थ्य न होवे, तदा दांतादि मय पीतल सिंगरफकी रगावे, कोरणी विशिष्ट काष्ठादिमय करावे. घरचैत्य तथा चैत्य समुच्चयमे दिनप्रत्ये सर्व जगे प्रमार्जन तैलादिसे काष्ठ चोपडे, जिस्सें घुण न लगे, तथा खडियासे धवला करे, श्रीतीर्थंकरके पचकल्याणकादिकका चित्राम करावे, समग्र पूजाके उपकरण समरावे, पडदा, कनात, चंदुवादि देवे, ऐसे करे कि, जैसे जिनमंदिरादिककी अधिक अधिक शोना होवे घर देहरेके उपर धोती प्रमुख न गेरे, घर देहरेकीनी चौरासी आशातना टाले, पीतल पाषाणादिमय जो प्रतिमा होवे, तिन सर्वको एक अंगलूहणेसे सर्व बिंबोका पाणी लूहे, पीछे निरंतर दूसरे सुकोमल अंगलूहणेसे वार वार सर्व अंगो उपर फेरकें पाणीकी गीलास बिलकुल रहने न देवे, ऐसे करनेसे प्रतिमा उज्ज्वल हो जाती है, जहा जहा प्रतिमाके अंगोपांग पर जल रहि जावे, तहा तहा प्रतिमाके श्यामता हो जाती है, इस वास्ते पाणीकी स्निग्धता सर्वथा प्रकारे टाले, केशर बहुत अरु चंदन थोडा, ऐसा विलेपन करनेसे प्रतिमा अधिक अधिक उज्ज्वल हो जाती है.

नव, पंचतीर्थी, चोवीसीका पट्टादिमे स्नात्रजलका जो प्रतिमाजीकों परस्पर स्पर्श होनेसे आशातना होती है? ऐसी आशंका न करणी चाहिये, अशक्य परिहार होनेसे १ एक अर्हंतकी प्रतिमा होवे, तिसका नाम व्यक्त है २ एकही पाषाणादिकमें नरत ऐरवत क्षेत्रकी चोवीसी बनवावे, तिनका नाम क्षेत्रप्रतिमा है ३ ऐसेही एक सौ सित्तेर प्रतिमा माहात्म्य

कहते हैं, ४ फूलकी वृष्टि करतां जो मालाधर देवता है, तिसका रूप पंचतीर्थीके ऊपर बनाते हैं, जिनप्रतिमाकों न्हवण करतां पहिलां मालाधरकों पाणी स्पर्शीके पीछें जिनबिंब उपर पडता है, सो दोष नहीं है, यह वृद्धोंकी आचरणा है, इसी तरें चौवीसी गट्टे आदिकमेंभी जान लेनां, ग्रंथोंमेंभी असी रीति देखनेमें आती है ॥ वृहद्भाष्येप्युक्तं ॥ भाष्यकारका कहनां यहां लिखते हैं? जिनराजकी ऋद्धि देखने वास्ते कोइ भक्तजन एक प्रतिमा बनवाता है, प्रगटपणे अष्ट प्रातिहार्य देवागमसुशोभित. २ दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी आराधना वास्ते कोइ तीन तीर्थी प्रतिमा बनवाता है. ३ कोइ भक्त पंचपरमेष्ठिके आराधनार्थे उद्यापनमें पंचतीर्थी प्रतिमा भराता है. ४ चौवीस तीर्थंकरोंके कल्याणक तप उजमने वास्ते भरतक्षेत्रमें जो ऋषभादि चौवीस तर्थंकर हूए हैं, तिनके बहुमान वास्ते कोइ चौवीसी बनवाता है, कोइ भक्ति करकें मनुष्य लोकमें उत्कृष्टे एक कालमें एक सौ सित्तेर तीर्थंकर विहरमानकी एक सौ सित्तेर प्रतिमा बनवाता है, तिस वास्ते तीन तीर्थी, पांचतीर्थी, चौवीसी आदिकका बनानां युक्तियुक्त है, यह पूर्वोक्त सर्व अंगपूजा है.

अथाग्रपूजा लिख्यते ॥ रूपेके, सुवर्णके, चावल धवला सरसव प्रमुख अक्षतों करकें अष्टमंगल आलेखन करे, जैसें सैनिकराजा रोजकी रोज एक सौ आठ सोनेके यवां करी त्रिकाल भगवान्‌की प्रतिमा आगें साथीया करता था, अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी आराधनाके वास्ते क्रमसें पट्टादिकमें चावलोंके तीन पूंज करणे, तथा एक भातप्रमुख अशन, दूसरा सकर गुडादि पान, तीसरा पक्वान्न फलादि खादिम, चौथा तंबोलादि स्वादिम, इनका चढानां, तथा गोशीर्ष चंदनके रस करी पंचांगुली तलेसें मंगल आलेखनादि पुष्पप्रकर आरती प्रमुख करणी, यह सर्व अग्रपूजाकी गिणतीमें है ॥ यन्नाष्यं ॥ गाथा ॥ गंधव नट्ट वाइय, लवण जलारत्तिआइ दीवाई ॥ जं किच्चं सव्वंपिउ, अरई अग्ग पूआए ॥१॥ नैवेद्यपूजा तो दिन दिन प्रत्यें करणी सुखाली है, अरु इसमें फलभी मोटा है, कोरा अन्न साबीत तथा रांधा हूआ चढावे. लौकिक शास्त्रोमेंभी लिखा है ॥ श्लोक ॥ धूपोदहति पापानि, दीपोमृत्युविनाशकः ॥ नैवेद्यं विपुलं राज्यं, सिद्धिदात्री प्रदक्षिणा ॥ २ ॥ नैवेद्यका चढानां, आरति करणी प्रमुख आगममेंभी लिखा

है, ' कीरइ बलि" असा पाठ आवश्यक निर्युक्तिमें है, तथा निशीथचूर्णी मेंभी बलि चढानी लिखी है, तथा कल्पभाष्यमेंभी लिखा है, कि जो जिन प्रतिमाके आगे चढाने वास्ते नैवेद्य करा है, सो साधुको न कल्पे, तथा प्रतिष्ठाप्राभृतमें रची श्रीपादलिप्त आचार्यकृत प्रतिष्ठापद्धतिमेंभी लिखा है, कि आरति उतारणी, मंगलदीवा करकें पीछें चार स्त्री मिल कर नैवेद्य, गीतगान, विधिसें करे ॥ तथा च माहानिशीथे तृतीये अध्ययने ॥ अरिहंताण भगवताण गंध मल्ल पइव समज्जणोवलेवण विचित्त बलि वच्छ धूवईएहिं पूआ सक्कारेहि पइदिणमभ्भणपि कुव्वाणा तित्थुपण करेमोत्ति ॥ इति अग्रपूजा ॥

भावपूजा जो है, सो द्रव्यपूजाका जो व्यापार है, तिसके निषेधने वास्ते तीसरी निस्सही तीन वार करे. श्रीजिनेश्वरजीके दक्षिणके पासे पुरुष अरु वामी दिशा स्त्री रह कर आशातना टालने वास्ते जघन्य मंदिरमे भूमिके सभव हूए नव हाथ प्रमाण अरु घर देहरेमे जघन्य एक हाथ प्रमाण अरु उत्कृष्टसे तो साठ हाथ प्रमाण अवग्रह है, तिस्से बाहिर बैठकें चैत्यवदना, विशिष्ट काव्यों करके करे, श्रीनिशीथमे तथा व सुदेवहिंडमे तथा अन्यशास्त्रोमें श्रावकोनेंभी कायोत्सर्ग थुइ आदि करी चैत्यवंदना करी है, सो चैत्यवदनाभी तीन तरेकी भाष्यमे कही है, सो कहते है एक तो जघन्य चैत्यवदना, सो अंजलि बाध कर शिर नमा कर प्रणाम करणा, यथा 'नमो अरिहताण' इति अथवा एक श्लोकादि पढकें नमस्कार करणा, अथवा एक शक्रस्तव पढे, तो जघन्य चैत्यवदना होवे दूसरी मध्यम चैत्यवदना, सो चैत्यस्तवदडक युगल 'अरिहत चेइयाण' इत्यादि कायोत्सर्गके पीछें एक स्तुति कहनी, यह मध्यम चैत्यवदन है, अरु तीसरा उत्कृष्ट चैत्यवदन सो पचदडक, जो १ शक्रस्तव, २ चैत्यस्तव, ३ नामस्तव, ४ श्रुतस्तव, ५ सिद्धस्तव, प्रणिधान, जयवीयराय, इत्यादि यह सर्व उत्कृष्ट चैत्यवदना है तथा कोइ आचार्यका असा मत है कि.— एक शक्रस्तव करी जघन्य चैत्यवदना होती है, दो तीन शक्रस्तव करी मध्यम चैत्यवदना होती है, तथा चार अथवा पाच शक्रस्तव करी उत्कृष्ट चैत्यवदना होती है, इसकी विधि चैत्यवदनभाष्यसे जान लेनी यह तीन प्रकारकी चैत्यवदना कही

अब यह चैत्यवदना नित्यप्रत्ये सात वार करणी, महानिशीथसे साधुकों

कही है, तथा श्रावककोंभी उत्कृष्ट सात वार करणी कही है ॥ यदाह ॥ एक प्रतिक्रमणेमें, दूसरी मंदिरमें, तीसरी आहार करणसें पहिलां करणी, चौथी दिवसचरिमं करतां, पांचमी देवसी पडिक्कमणेमें, छठी सोती वखत.सातमी सूता उठे.उस वखत. यह सात वार चैत्यवंदन साधुकों करणी कही है, तथा जो श्रावक आठों प्रहरमें प्रतिक्रमण करता होवे, वोतो निश्चयें सात वार चैत्यवंदन करे, दो प्रतिक्रमणेमें दो चैत्यवंदन करे, तीसरी सोतां वखत, चौथी ऊठतां वखत, तथा तीन काल पूजा कर्यां पीछें, तीन वार, एवं सात वार श्रावक चैत्यवंदन करे,तथा जो श्रावक एकही वार पडिक्कमणां करे, सो छे वार चैत्यवंदन करे, तथा जो पडिक्कमणां न करे, सो पांच वार चैत्यवंदन करे, तथा जो सूतां ऊठतांभी चैत्यवंदन न करे, सो तीन वार करे, जे कर नगरमें बहुत जिनमंदिर होवे, तदा सातसें अधिक भी करे, तथा जे कर त्रिकाल पूजा न कर सके, तो त्रिकाल देववंदना करे, क्योंकि महानिशीथमें लिखा है, किः—जिसकों गुरु प्रथम जैनमतकी श्रद्धा करावे, उसकों प्रथम ऐसा नियम देवे किः—सवेरेकी वखत जिन प्रतिमाका दर्शन करे विना पाणीभी नही पीनां, तथा मध्यान्ह कालमें जहां तक देव, (जिनप्रतिमा) अरु साधुओंकों वंदना न करे, तहां तक भोजन क्रिया न करे, तथा संध्याके समय चैत्यवंदन करे विना शय्या उपर पग न देवे, ऐसा नियम करावे.

तथा गीत, नृत्य, जो अग्रपूजामें कहे हैं, सो भावपूजामेंभी बन सक्ते हैं. सो गीत, नृत्य,मुख्यवृत्ति करिकें तो श्रावक आप करे, जैसें निशीथचूर्णीमें उदायनराजाकी राणी प्रभावतीका कथन है. तथा पूजा करणेके अवसरमें श्रीअर्हंतकी तीन अवस्थाकी कल्पना करे, उसमें स्नान करती वखत छद्मस्थ अवस्थाकी कल्पना करे, तथा आठ प्रातिहार्यकी शोभा करतां केवली अवस्थाकी कल्पना करे, तथा पर्यंकासन कायोत्सर्गासन देखकें सिद्धावस्थाकी कल्पना करे, इसमें छद्मस्थ अवस्था तीन तरेकी कल्पे, एक जन्मावस्था, दूसरी राज्यावस्था, तीसरी साधुपणेकी अवस्था. तहां स्नानकी वखत जन्म अवस्था कल्पे, तथा माला, फूल, आभरण, पहिरानेकी वखत, राज्यावस्था कल्पे, तथा दाढी, मूछ, शिरके वालोंके न होनेसें साधु अवस्था बिचारे, इनमें साधु, केवली मोक्ष अवस्थाकों वंदना करे.

तहां पूजा पंचोपचार सहित,अष्टोपचार सहित, अरु धनवान् होवे, त दा सर्वोपचारसें पूजा करे, तहां फूल, अक्षत, गंध, धूप अरु दीपसे पूजा करे, सो पंचोपचार पूजा जाननी तथा फूल, अक्षत, गंध, दीप, धूप, नैवेद्य, फल अरु जल, यह अष्टोपचार पूजा है, सो अष्टविध कर्मकी म थने वाली है, तथा स्नात्र, विलेपन, वस्त्र, आनूषणादिक, फल, दीप, गीत, नाटक, आरति आदिक करे, सो सर्वोपचार पूजा है इति बृहद्भाष्ये॥

तथा पूजाके तीन नेद है एक आपही कायासे पूजाकी सामग्री ल्यावे, दूसरी वचनो करकें दूसरोसे मंगवावे, तीसरी मन करके नला फूल फल प्रमुख करी पूजा करे, ऐसें काया, वचन अरु मन, यह तीनो योगों कर कें करे, करावे अरु अनुमोदे, यह तीन तरेंसे पूजा है

तथा एक फल, दूसरा नैवेद्य, तीसरी थुइ, अरु चौथी प्रतिपत्ति, सो वी तरागकी आज्ञापालन रूप, यह चार प्रकारे पूजा, यथा शक्तिसे करे ल लितविस्तरादिक ग्रथोमे "पुष्पामिषस्तोत्र प्रतिपत्ति" अर्थात् फून, नैवेद्य, स्तोत्र, अरु आज्ञा आराधनीय, ये उत्तरोत्तर प्रधान हैं ॥ इत्याग मोक्तं पूजानेदचतुष्टयं ॥

तथा पूजा दो प्रकारकी है, एक द्रव्यपूजा, दूसरी नावपूजा, जो फूला दिकसे जिनराजकी पूजा करणी, सो द्रव्यपूजा है, दूसरी श्रीजिनेश्वरकी आज्ञा पालनी, सो नावपूजा है तथा पुष्पारोहण गधारोहण इत्यादि स त्तरह नेदसे तथा स्नात्रविलेपनादि एकवीश नेदें पूजा है, परतु अगपूजा, अग्रपूजा अरु नावपूजा, यह तीनों पूजा, सर्व पूजायोंके अतर्नाव हें, ति नमें सत्तरह नेद, पूजाके लिखते है

एक १ स्नात्र करना, जिनप्रतिमाकों विलेपन करना, २ चक्षुजोडा, वास सुगंध, ३ फूल चढाने, ४ फूलकी माला चढानी, ५ पच रगे फून च ढाने, ६ वरास नीमसेनी प्रमुखका चूर्ण चढानां, ७ आनरण चढाने, ८ फूलोंका घर करनां, ९ फूलपगर सो फूलोंका ढेर करना, १० आरति, मं गल दीवा, ११ दीपकपूजा, १२ धूपोपक्षेप, १३ नैवेद्य, १४ छत्रफल ढोकन, १५ गीतपूजा, १६ नाटक करणा, १७ वाजत्र. यह सत्तरह नेदों करि पूजा है अथ पूजाके एकवीश नेद लिखते है

तहा प्रथम तो पूजा करणेकी विधि लिखते है, १ पूजा करने वाला पू

वैदिशकी तर्फ मुख करकें स्नान करे, २ पश्चिम दिशकों मुख करकें दातण करे,३ उत्तरदिशाके सन्मुख श्वेत वस्त्र पहिरे,४ पूर्वोत्तर मुख करकें पूजा करे, ५ घरसें प्रवेश करतां वामे पासें शल्य रहित भूमिमें देहरासर करावे, ६ मेढ हाथ-भूमिकासें ऊंचा देहरासर करावे, जेकर देहरासर नीची भूमिकामें क रावे, तब तिसका संतान दिन दिन नीचा होता जावेगा, ७ दक्षिणदिशि तथा विदिशिके सन्मुख मुख न करे, ८ घर देहरेमें पश्चिम सन्मुख मुख करकें, पूजा करे, तो चौथी पेढीमें संतानोच्छेद होवे. ९ दक्षिण दिशिकी तर्फ मुख करी करे, तो संतान हीन होवे, १० अग्निकूणे करे, तो धन हानी होवे. ११ वायुकूणे करे, तो संतान न होवे. १२ नैऋत्यकूणे कुलक्षय होवे, १३ ईशानकूणे करे, तो एक जगे रहणां न होवे. १४ दोनो पग, दोनो जानु, दोनो हाथ, दोनो स्कंध, मस्तक, ये नव अंगमें क्रमसें पूजा करे, १५ चंदन विना पूजा नहीं होती है, १६ मस्तकमें, कंठमें, हृदयमें, पेटमें, तिलक करे. १७ नव अंगमें, नव तिलक करकें निरंतर पूजा करे, १८ सवेरे पहिलां वास पूजा करे, १९ मध्यान्हमें फूलोंसें पूजे, २० संध्याकों धूप, दीप, करकें पूजा करे, २१ जो फूल, हाथमें धरतीमें गिर पडे, तथा पगोंकों लग जावे, तथा जो मस्तकसें ऊंचा चला जावे, तथा जो मैले वस्त्रसें रखा होवे, तथा जो नाभीसें नीचे रखा होवे, तथा जो दुष्ट जनोनें स्पर्शा होवे, जो बहुत ठेकाणोंसें हत होवे, जो जीवोने खाया होवे, असा फूल, फल, भक्त जनोनें जिनपूजामें नही रखनां, २२ एक फूलके दो टुकडे न करे, २३ कलीको छेदे नहीं, चंपक, उत्पल, फूलके भां गनेसें बडा दोष है, २४ गंध, धूप, अक्षत, फूलमाला, दीपक, नैवेद्य, पाणी, प्रधानफल, इनों करकें जिनराजकी पूजा करे, २५ शांतिककार्यमें श्वेत वस्त्र पहिरकें पूजा करे, २६ द्रव्यलाभके वास्ते पीत वस्त्र पहिरकें पूजा करे, २७ शत्रु जीतने वास्ते काले वस्त्र पहिरकें पूजा करे, २८ मांगलिककार्य वास्ते लाल वस्त्र पहिरकें पूजा करे, २९ मुक्तिके वास्ते पांच वर्णके वस्त्र पहिरकें पूजा करे, ३० शांति कार्यके वास्ते पंचामृतका होम, दीवा, घी, गुड, लवणका अग्निमें प्रक्षेप, शांति पुष्टिके वास्ते जाननां, ३१ फाटा हूआ,जोडा हूआ, छिद्र वाला, काटा हूआ, जिसका रक्तवर्ण भयानक, असें वस्त्र पहिरकें दान, पूजा, तप, होम अरु सामायिक प्रमुख करे, तो

निष्फल होवे ३१ पद्मासन बैठकें,नासाग्र लोचन स्थापन करकें मौन धारी वस्त्रसें मुखकोश करके जिनराजकी पूजा करे

अथ इक्कीस प्रकारकी पूजाका नाम लिखते है १ स्नात्रपूजा, २ विलेपन पूजा, ३ आभरण पूजा, ४ फूल, ५ वासपूजा, ६ धूप, ७ प्रदीप, ८ फल, ९ अक्षत, १० नागरवेलके पान, ११ सोपारी, १२ नैवेद्य, १३ जलपूजा, १४ वस्त्रपूजा, १५ चामर,१६ छत्र, १७ वाजित्र, १८ गीत, १९ नाटिक, २० स्तुति, २१ भंडारवृद्धि यह एक्वीश प्रकारकी पूजा है,जो वस्तु बहुत अच्छी होवे, सो जिनराजकी पूजामे चढानी चाहिये ॥ इति॥ यह पूजा प्रकार, श्री उमास्वातिवाचककृत पूजाप्रकरणमे प्रसिद्ध है

तथा ईशानकूणमे देवघर बनाना, यह बात विवेकविलासमे है, तथा विषमासन बैठकें, पग उपर पग धरकें, उकडुआसन बैठकें, वामा पग उचा करकें तथा वामे हाथसें इतने करिकें पूजा न करे, सूके हूए फूलो से पूजा न करे, तथा जो फूल धरतीमें गिरा होवे, तथा जिसकी पाखडी सड गइ होवे, नीच लोकोंका जिसकों स्पर्श हूआ होवे, जो शुभ न होवे, जो विकसे हूए न होवे, जो कीडेने खाये हूए, सडे हूए, रातको वासी रहे, मकडीके जाले वाले, जो देखनेमें अछे न लगे, दुर्गंधवाले, सुगधरहित, खट्टी गधवाले, मलमूत्रकी जगामें उत्पन्न हूये होवे, अपवित्र करे हूए, असें फूलोसे जिनेश्वर देवकी पूजा न करणी तथा विस्तार सहित पूजाके अवसरमें, तथा नित्य, अरु विशेष करकें पर्वदिनमें, सात तथा पांच कुसुमाजलि चढावे, पीछें भगवान्की पूजा करे, तहा यह विधि करे, सो कहते है

प्रभात समय पहिला निर्माल्य उतारे, पीछें प्रक्षाल करे, संक्षेपसे पूजा करे, आरति मगल दीवा करे, पीछें स्नात्रादि विस्तार सहित दूसरी वार पूजाका प्रारंभ करे, तब देवके आगे केसर जल संयुक्त कलश स्थापन करे, पीछें "मुक्तालंकार विका,र सार सौम्यत्वकातिकमनीय ॥ सहजनिज रुपनिर्जित, जगत्त्रयं पातु जिनविंब ॥ १ ॥" यह आर्या कह कर अलंकार उतारे, पीछें " अवणयि कुसुमाहरण, पयइ पइठिय मनोहर छाय ॥ जिणरूव मज्जणपीठं, सठियं वो सिव दिसउ ॥ १ ॥ यह कह कर निर्माल्य उतारे, पीछें प्रागुक्त कलश ढालन पूजा करे, कलश धो कर, धूप दे कर,

स्नात्र योग्य सुगंध जल प्रक्षेप करे, पीछें कलश, श्रेणीबंध स्थापन करे सो सुंदर वस्त्रसें ढक देने, पीछें साधारण केसर, चंदन, धूप करकें हाथ पवित्र करे, मस्तकमें तिलक, हाथमें चंदनका कंकण करे, हाथ धूपन करकें श्रेणीबंध स्नात्री श्रावक कुसुमांजलिका पाठ पढे, तिस कुसुमांजलिकी गाथा लिखते हैं. "सयवत्त कुंद मालइ, बहुविह कुसुमाइ पंचवन्नाइं ॥ जिणनाह न्हवण काले, दिंति सुरा कुसुमांजलि हिठा ॥ १ ॥ यह कह कर देवके मस्तक उपर पुष्पारोपण करे ॥ गाथा ॥ गंधायड्ढिय महुयर, मणहर जंकार सद्द संगीआ ॥ जिणचलणोवरि मुक्का,हरउ तुम्ह कुसुमांजलि डुरियं ॥ १ ॥ इत्यादि पाठ करकें जिन चरणों उपरि एक श्रावक कुसुमांजलि चढावे, सर्व कुसुमांजलिके पाठमें तिलक करणां, फूल, पत्र, धूपादि सर्व, एकत्र करी चढावे, पीछें उदार मधुर स्वर करकें जिस जिनेश्वरका नाम स्थापना करा होवे, तिसही जिनेश्वरका जन्माभिषेक कलशका पाठ कहनां, पीछें घी, इक्षुरस, दूध, दहीं, सुगंधजल, ये पंचामृत करी स्नात्र करावे, स्नात्रके वीचमें धूप देवे, स्नात्रकालमेंभी जिनराजका शरीर फूलों करकें शून्य न करणां, यदाहुर्वादिवेतालश्रीशांतिसूरयआचार्याः ॥ जहां तक स्नात्र समाप्ति न होवे, तहां तक भगवान्का मस्तक शून्य न रखनां, निरंतर पाणीकी धारा. अरु उत्तम फूलोंकी वृष्टि भगवान्के मस्तक उपर गेरे, तथा स्नात्र करती बखत चामर, संगीत, तूर्याद्याडंबर सर्व, शक्तिसें करे.

सर्व श्रावक, जब स्नात्र कर चुके, पीछें निर्मल जलकी धारा देनी, तिसका पाठ यह है ॥ श्लोक ॥ अभिषेकतोयधारा, धारेव ध्यानमंडलाग्रस्य ॥ भवभवनभित्तिभागान्, भूयोपि भिनत्तु भागवती ॥ १ ॥ पीछें अंग लूहे, विलेपनादि पूजा पहेली पूजासें अधिक करणी, सर्व प्रकारका धान्य, पक्वान्न, शाक, विकृतिफलादि, करकें नैवेद्य ढोवे, ज्ञानादि तीनो सहित तीन लोकके स्वामी भगवान्के आगें तीन पुंज भक्त जन श्रावक करकें पीछें स्नात्रपूजा करे, पहिलां बडा श्रावक तीन पुंज करे, पीछें छोटा श्रावक करे, पीछें श्राविका करे, क्योंकि जिनजन्ममहोत्सवमेंभी पहिला अच्युतेंद्र अपणे देवता संयुक्त स्नात्र करता है,पीछें यथाक्रमसें दूसरे इंद्र स्नात्र करते है. स्नात्र जल अपणे मस्तकमें जे कर श्रावक प्रक्षेप करे, तो दोष नहीं ॥ यदुक्तं ॥ श्रीहेमचंद्राचार्यैःश्रीवीरचरिते ॥ अभिषेकजलं तत्तु,सुरासुरन

रोरगा॰ ॥ ववदिरे मुहुमुंहु , सर्वांगं परिचिक्किपु ॥ १ ॥ तथा श्रीपद्मचरित्रे एकुण तीसमे उद्देसेमें राजा दशरथने अपणी राणीयोकों स्नात्रजल भेज्या है, तथा बृहद्शातिस्तोत्रमे "शांतिपानीय मस्तके दातव्यमित्युक्त" तथा सुणते है कि जरासधने जब जरा विद्या छोडी, तब तिस करकें पीडित निज सेनाकों देखके श्रीनेमिनाथके कहनेसे श्रीकृष्णने धरणेंद्रकों आराध्या, धरणेंद्रने पातालमें रही श्रीपार्श्वप्रतिमा शखेश्वरपुरमे दया करकें तिसके स्नात्रका जल, छिंकेके सेना सचेत करी, तथा श्रीजिनदेशनाके पीछें राजा प्रमुख जो चावलोकी बली उछालते है, तिसमेंसे आधे चावल धरतीमे अणपडे देवता ले लेते है, तिसका अर्द्ध, उछालने वाला लेता है, अरु बाकीका चावल सर्व लोक लूट लेते है, उसमेसे एक दाणानी जे कर मस्तकमे रखे तो सर्व रोग उपशांत हो जावे है,अरु छ महीने आगेंकों रोग न होवे, यह कथन आवश्यक शास्त्रमे है पीछे सद्गुरुकी प्रतिष्ठी हुइ बहुत सुंदर हीरागल प्रमुख वस्त्रकी मोटी ध्वजा,वडे उत्सव पूर्वक तीनादि प्रदक्षिणा करकें विधिसें देवे, सर्व सघ यथाशक्ति परिधापनका नैवेद्यप्रमुख चढावे

अथ आरति, मगलदीवा श्रीअरिहतजीके सन्मुख करना, सो लिखते है॰ मगलदीवेके पास अग्निका पात्र स्थापन करना, तिसमें लवण जल गेरना होवेगा, "उवणेउ मगल वो, जिणाणमुह लालि जाल सवलिआ ॥ तित्थ पवत्तण समए, तियसवि व मुक्का कुसुम वुट्ठी ॥ १ ॥" यह पढ कर प्रथम कुसुमवृष्टि करे ॥ गाथा ॥ उअह पडिभग्गपसर, पयाहिण मुणिवई करेउण ॥ पडइस लोणत्तण, लज्जिअ च लोण हु अवहमि ॥ इत्यादि पाठसें विधिपूर्वक जिनराजके तीन वार फूल सहित लवणजल उत्तारणादि करणां, तिस पीछे अनुक्रमे पूजा करके आरार्त्तिक धूपोपक्षेप सहित दोनों पासें अत्यत कलशके पाणीकी धारा देते हूए श्रावक फूलोंकों विखेरे, "मरगय मणि घडिय विसा,ल थालमाणिक मण्डिअ पईव॥ नवणयर करु खित्त,भमउ जिणारत्तिअ तुम्ह ॥१॥ इत्यादि पाठ पूर्वक प्रधान भाजनमें रखकें उत्सव सहित तीन वार उतारे, यह कहना, त्रेशठ शिलाका चरित्रादिकमें,है, मगलदीपकनी आरतिको तरे पूजे, तव यह पाठ पढे ॥ गाथा ॥भामिज्जतो सुरा, सुरिहि तुहनाह मगलपईवो ॥ कणयायलस्स नज्जइ, भाणुव्व पयाहिण दितो ॥१॥ इति॥ यह पाठ पूर्वक मगलदीवा उतारकें, दीप्यमान जिन

चरणोंके आगें रख देनां, आरति बूजा देनेमें दोष नहीं, आरति अरु मंगल दीवा मुख्यवृत्तिसें घृत, गुड, कर्पूरादिकसें करे, विशेष फल होनेसें. यहां मुक्तालंकार इत्यादि जो गाथा है, सो श्रीहरिनद्रसूरिजीकी करी हूइ मा लुम होती है, क्योंकि श्रीहरिनद्रसूरिकृत समरादित्यचरित्र नामक ग्रंथकी आदिमें "उवणेउ मंगलेवो ॥ इति नमस्कारस्य दर्शनात्" अरु यह गाथा तपगछमें प्रसिद्ध है. इस वास्ते सर्व गाथा इहां नही लिखी.

स्नात्रादिकमें समाचारि विशेषसें विविध प्रकारकी विधि देखनेसें व्या मोह न करणां, क्योंकि सर्व आचार्योंकों अर्हन्नक्तिरूप फलकी सिद्धि वा स्तेही प्रवृत्त होनेसें गणधरादि समाचारीयोमेंनी बहुत नेद होता है, तिस वास्ते जो जो धर्मसें विरुद्ध न होवे, अरु अर्हत नक्तिका पोषक होवे, वो कार्य किसीकोंनी असम्मत नहीं, ऐसेंही सर्वधर्म कार्यसें जाण लेनां. यहां लवण, आरति प्रमुखका उतारणां, संप्रदायसें सर्व गछोंमें अरु परद र्शनोंमेंनी करते हुवे दीखते हैं, तथा श्रीजिनप्रनसूरिकृत पूजाविधिशास्त्रमें तो ऐसें लिखा है ॥ गाथा ॥ लवणाई उत्तारण,पालित्तय सूरिमाइ पुव्वपुरिसे हिं ॥ संहारेण अणुन्नयंपि, संपयं सिठी एकारिज्जई ॥ १ ॥ अस्यार्थः— लवणादि उतारणां श्रीपादलिप्तसूरि प्रमुख पूर्व पुरुषोनें एक वार करने की आज्ञा दीनी है, हम इसकालमें उनके अनुसारे कराते है. स्नात्रके करणेमें सर्व प्रकार विस्तार सहित पूजा प्रनावनादिकके करणेसें परलो कमें उत्कृष्ट मोक्ष प्राप्तिरूप फल होता है, जैसें चौसठ इंडोने जिनजन्म स्नात्र करा है, तिसहीके अनुसारें मनुष्य करते हैं, इस वास्ते इस लोक में पुण्य निर्जरा अरु परलोकमें मोक्ष फल होता है, यह कथन राजप्र श्नीय उपांगमें लिखा है ॥ इति स्नात्रविधिः समाप्तः ॥

अब प्रतिमानी अनेक प्रकारकी है, तिनकी पूजाकी विधि सम्यक्त्व प्रकरणमें ऐसें कही है ॥ गाथा ॥ गुरु कारिआइ केइ, अन्नेसय कारिआई तं बिंति ॥ विहिकारिआइ अन्ने,पडिमाए पूअणविहाणं ॥ १ ॥ व्याख्याः— गुरु कहियें माता, पिता, दादा, पडदादा प्रमुख तिनकी कराइ हूइ प्रति मा पूजनी चाहियें. कोइ ऐसें कहते हैं, तथा कोइ कहते हैं कि अपणी कराइ प्रतिष्ठी हूइ पूजनी चाहियें, कोइ कहते हैंकि विधिसें कराइ प्रतिष्ठी प्रतिमा पूजनी चाहियें, इनमें यथार्थ पक्ष तो यह है, कि— ममत्व रहि

त सर्वप्रतिमाकों विशेष रहित पूजना चाहियें, क्योंकि सर्व जगे तीर्थंकर का आकार देखनेंसे तीर्थंकर बुद्धि उत्पन्न होती है, जे कर ऐसें न मानीयें, तब जिनबिंबकी अवज्ञासे दुरंत संसारमें भ्रमण रूप उसको निश्चयही दंम होवेगा.

तथा ऐसाजी कुविकल्प न करणा कि – जो अविधिसें जिनमंदिर जिनप्रतिमा बनी है, उसके पूजनेसें अविधि मार्गकी अनुमोदनासे नगवतकी आज्ञाजंग रूप दूषण लगता है,तथाही श्रीकल्पनाष्ये ॥ गाथा॥ निस्सकड मनिस्सकडे, चेइए सबहिं थुइतिन्नि ॥ वेलं च चेईआणिय, नाउं इक्किकिया वावि ॥ १ ॥ व्याख्या – एक निश्राकृत उसकों कहते है, कि – जो गच्छके प्रतिबधसे बनी है, जैसाकि यह हमारे गच्छका मंदिर है, दूसरा अनिश्राकृत, सो जिस उपर किसी गच्छका प्रतिबंध नहीं है,इन सर्व जिनमंदिरोंमे तीन थुइ पढनी, जे कर सर्वमंदिरोंमें तीन तीन थुइ देता बहुत काल लगता जाणे, तथा जिनमंदिर बहुत होवें, तदा एक एक जिनमंदिरोमें एक एक थुइ पढे,इस वास्ते सर्व जैनमंदिरोंमें विशेष रहित नक्ति करे

तथा जिनमंदिरमे मकडीका जाला लग जावे, तिसके उतारनेकी विधि, जिनके सपूर्द जिनमंदिर होवे, तिनकों साधु निर्भ्रछना करे, कि –जिनमंदिरकी नोकरी खाते हो, तो सार संजाल क्यों नही करते हो ? मकडीका जालाजी तुम नहीं उतारते हो ? तथा जिनकी कोइ सार संजाल न करे, तिनको असविग्न देवकुलिका कहते है, तिन मंदिरोंमे जो मकडीका जाला होवे, तिसके दूर करणे वास्ते सेवकोंकों प्रेरणा करे, कि तुम जिनमंदिरकों मखफलककी तरे चमक दमक वाला रक्खो, जेकर वे सेवक लोक न माने, तब निर्भ्रछना करे, पीछे साधु जयणासे आप दूर करे, क्योंकि जिनमंदिर ज्ञानजंमारादिककी सर्वथा साधुनी उपेक्षा न करे, यह पूर्वोक्त चैत्यगमन पूजा स्नात्रादि विधि जो कहीहै, सो सब धनवान् श्रावककी अपेक्षा कही है, अरु जो श्रावक धनवान् न होवे, वो अपणे घरमें सामायिक करके किसीके साथ लेणे देणेका जगडा न होवे, तदउपयोग संयुक्त साधुकी तरें ईर्या शोधता हूआ नैषेधिकी तीन करी नाव पूजानुयायि विधिसें जावे, पूजादि सामग्रीके अजावसे इव्यपूजा करणे असमर्थ है, इस वास्ते सामायिक पारकें कायासे जो कुछ फूलगुंथनादिक कृत होवे तो करे.

प्रश्नः– सामायिक त्यागकें द्रव्यपूजा करणी उचित नहीं?

उत्तरः– सामायिक तो तिसके स्वाधीन है, चाहे जिस वखत कर लेवे, परंतु पूजाका योग उसकों मिलना दुर्लभ है, क्योंकि पूजाका मंमाण तो संघ समुदायके आधीन है, कदेइ होता है, इस वास्ते पूजामें विशेष पुण्य है ॥ यदागमः ॥ "जीवाण बोहि लाभो, सम्मदिठीण होइ पिअकरणं ॥ आणाजिणिंदभत्ति, तिथ्थस्स पभावणा चेव ॥ १ ॥ इस वास्ते अनेक गुण हैं, तातें चैत्यकार्य करे, यह कथन दिनकृत्य सूत्रमें है, दश त्रिक, पांच अभिगम, इत्यादिविधि प्रधानही सर्वदेवपूजा वंदनकादि धर्मानुष्ठानका महाफल होता है, अन्यथा अल्प फल है, तथा अविधिसें करतां उपद्रवभी हो जाता है ॥ उक्तं च ॥ धर्मानुष्ठानवैतथ्या, त्प्रत्यवायो महान् भवेत् ॥ रौद्र दुःखौघजननो, दुष्प्रयुक्तादिवौषधात् ॥ १ ॥ चैत्यवंदनादि अविधिसें करतां आगमसें प्रायश्चित्त कह्या है, महानिशीथके सातमे अध्ययनमें अविधिसें चेत्यवंदना करे, तो प्रायश्चित्त कह्या है, देवता, विद्या मंत्रभी विधिसेंही सिद्ध होते हैं.

जो कोइ कहे कि विधि न होवे, तब न करणां श्रेष्ठ है? यह कहनां अयुक्त है ॥ यदुक्तं ॥ अविहिकया वरमकयं, असूआ वयणं भणंति समयन्नू ॥ पायछित्तं अकए, गुरुअं वितहं कए लहुयं ॥ १ ॥ अस्यार्थः– अविधि करणेसें न करणां अछा है, ऐसें जो कहते है, सो असूया वचन है, यह कहने वाला जैन सिद्धांतकों जानता नहीं, क्योंकि जैनशास्त्रके ज्ञाता तो ऐसें कहते हैं, किः– जो न करे, उसकों गुरु प्रायश्चित्त आता है, अरु जो अविधिसें करे, उसकों लघु प्रायश्चित्त आता है, इस वास्ते धर्म जरूर करनां चाहियें. अरु विधिमार्गकी अन्वेषणा करणी, यही तत्त्व है, यही श्रद्धावंतका लक्षण है, सर्व कृत्य करकें अविधि आशातना निमित्त मिथ्यादुष्कृतं दातव्यं ॥

अंग अग्रादि तीनो पूजाके फल, शास्त्रमें ऐसें लिखे हैं, किः– विघ्न उपशांत करणेवाली अंग पूजा है, तथा मोटा अभ्युदय पुण्यकी साधने वाली अग्रपूजा है, तथा मोक्षकी दाता भावपूजा है, पूजा करने वाला संसार प्रधान भोग भोगकें पीछें सिद्धपद पाता है, क्योंकि पूजा करणेसें

मन शांत होता है, अरु मन शांतसें उत्तम शुभ ध्यान होता है, अरु शुभध्यानसें मोक्ष होता है, मोक्ष हूए अबाध सुख है.

तथा श्रीजिनराजकी भक्ति पांच प्रकारें है ॥ श्लोक ॥ पुष्पाद्यर्चा तदाज्ञा च, तद्द्रव्यपरिरक्षण ॥ उत्सवास्तीर्थयात्रा च, भक्ति पंचविधा जिने ॥ १ ॥ द्रव्यपूजा आभोग अरु अनाभोगसे दो प्रकारे है तिसमे श्रीवीतराग देवके गुण जानकें वीतरागकी भावना करकें आदर संयुक्त जिनप्रतिमाकी जो पूजा, सो प्रथम आभोगद्रव्यपूजा है, इस्से चारित्रका लाभ होता है, कर्मका नाश होता है, इस वास्ते बुद्धिमान् ऐसी पूजा अवश्य करे तथा जो पूजाकी विधि जानता नही तथा श्रीजिनराजके गुणभी नहीं जानता सो दूसरी अनाभोग पूजा है यह शुभपरिणाम पुण्यका कारण है, अरु बोधिलाभका हेतु है, पापक्षय करणेका कारण है, उस पुरुषका जन्म धन्य है, आगमे कालमें उसका कल्याण है, क्योंकि यद्यपि वो वीतरागके गुण नहीभी जानता, तोभी भक्ति प्रीतिका उल्लास उसके अंदर उपजता है, अरु जिस पुरुषको अरिहंतबिंबमे द्वेष है, वो पुरुष भारीकर्मी तथा भवाभिनंदी है, जैसे रोगीकों अपथ्यमें रुचि अरु पथ्यमे द्वेष होवे, तदा मरणका समय होता है, ऐसेंही जिनबिंबमे जिसकों द्वेष है, तिसकाभी दीर्घ संसार जानना.

इहां सर्व जो भावपूजा है, सो श्रीजिनाज्ञाका पालना है, सो जिनाज्ञा दो प्रकारकी है, एक अंगीकार करणां, एक त्यागना, तहां सुकृतका अंगीकार करणां, अरु निषेधका त्याग करना, परंतु स्वीकार पक्षसें परिहार पक्ष बहुत श्रेष्ठ है, क्योंकि जो निषिद्ध आचरण करता है, उसका सुकृत भी बहुत गुणदायक नहीं होता है, जेकर दोनों बाता होवे, तदा पूर्ण फल है, द्रव्यपूजाका फल अच्युत देवलोक है, अरु भाव पूजाका फल अंतर्मुहूर्तमें मोक्ष है

द्रव्यपूजामें यद्यपि षट्कायकी किंचित् विराधना होती है, तोभी कूपके दृष्टांत करकें गृहस्थकों करणे योग्य है, क्योंकि करनेवाले अरु देखनेवालोकों गिणती रहित पुण्यबंधनेका कारण होनेसे करने योग्य है, जैसे नवे गाममें स्नान पानादिक वास्ते लोक कूवा खोदते है, तिनकों प्यास, श्रम, अरु कीचडसे मलिनादि होते है, परंतु कूवेके जल निकलनेसे तिनको तथा

औरोंकी तृषादि, पूराणा मैल, सर्व अगला पिछला दूर हो जाता है, अरु सर्वांगीण सुख हो जाता है, ऐसेंही द्रव्य पूजामें जान लेनां, यह कथन आवश्यक निर्युक्तिमें है, तथा और जगेभी लिखा है॥ गाथा॥ आरंभ पस त्ताणं, गिहीणछ जीव वह अविरयाणं॥ भवअडवि निवडियाणं, दवत्थउ चेव आलंबो ॥ १ ॥ श्लोक ॥ वृत्तं शार्दूलविक्रीडितं ॥ स्थेयोवायुबलेन निर्वृति करं निर्वाणनिर्घातिना, स्वायत्तं बहुनायकेन सुबहुस्वल्पेन सारं परं ॥ निःसा रेण घनेन पुण्यममलंकृत्वा जिनाभ्यर्चनं, योगृह्णाति वणिक् स एव निपुणो वाणिज्यकर्मण्यलम् ॥ १ ॥ यास्याम्यायतनं जिनस्य लभते, ध्यायंश्चतुर्थं फलं, षष्ठं चोत्थितउद्यतोऽष्टममथो गंतुं प्रवृत्तोऽध्वनि ॥ श्रद्धालुर्दशमं ब हिर्जिनगृहात्प्राप्तस्ततो द्वादशं, मध्ये पाक्षिकमीक्षते जिनपतौ, मासोपवासं फलम् ॥ २ ॥ पद्मचरित्रमें तो ऐसें लिखा है, कि १ जब जिनमंदिरमें जा नेका मन करे, तब एक उपवासका फल होता है, २ यदि उठे, तो बे लाका फल होता है, ३ चल पडनेका उद्यमीकों तेलेका फल होता है, ४ चल पडे, इनकूं चौलेका फल, ५ किंचित् गयेकूं पंचौलेका फल, ६ अर्द्ध मार्गमें गये एक पक्षके उपवासका फल होता है, ७ जिनराजके देखेसें एक मासके तपका फल होता है, ८ जिनभुवनमें संप्राप्त हूए छमासी त पका फल होता है, ९ जिनमंदिरके दरवाजे पर स्थित हूआं एक वर्षके त पका फल होता है, १० जिनराजकों प्रदक्षिणा दीयां सौ वर्षके तपका फल होता है, ११ पूजा करे हजार वर्षके तपका फल होता है, १२ स्तुति करे, अनंतगुणा फल होता है, १३ जिनमंदिर पूंजे, सौ गुणा पुण्य होता है, १ लींपे, तो हजार गुणा पुण्य होता है, १५ फूलमाला चढाये, लाख गुणा पुण्य होता है, १६ गीत वाजिंत्र पूजा करे, अनंतगुणा पुण्य होता है.

पूजा दिनप्रत्यें तीन संध्यामें करणी चाहियें॥ यतः ॥ जिनस्य पूजनं हंति, प्रातः पापं निशाभवं ॥ आजन्मविहितं मध्ये, सप्तजन्मकृतं निशि ॥१॥ जलाहारोषधस्वाप, विद्योत्सर्गकृषिक्रियाः ॥ सत्फलाः स्वस्वकालेस्यु, रेवं पूजा जिनेश्वरे ॥ २ ॥ गाथा ॥ जिण पूआए तिसंजं, कुणमाणो सोहएय सम्मत्तं ॥ तिब्बयरनाम गोत्तं, पावई सेणीअ नरिंदुव ॥ १॥ जो पूएइ तिसंजं, जिणंदरायं सया विगय दोसं ॥ सो तईय भवे सिज्झई, अहवा सत्तट्ठमे ज

म्मे ॥ २ ॥ सव्वायरेण नयवं, पूईक्कंतोवि देवनाहेहिं ॥ नो होइ पूइउ खलु, जम्हाए त गुणो नयव ॥ ३ ॥ यह गाथा सुगम है.

तथा देव पूजादिकमे हृदयमें बहुमान अछी विधिसें नक्ति करे, तथा जिनमतमे चार प्रकारका अनुष्ठान कहा है, एक प्रीतिसहित, दूसरा नक्ति सहित, तीसरा वचन प्रधान, अरु चौथा असग अनुष्ठान, तिनमे जिसके प्रीतिका रस वढे, अरु ऋजु नद्रक स्वनाव वाला होवे, जैसे बालकोंको रतनमे देखके प्रीति होती है, ऐसी जिसको प्रीति होवे, सो प्रीति अनुष्ठान है, तथा बहुमान सयुक्त शुद्ध विवेकवाला होवे, अरु बाकी शेष पहिले अनुष्ठानकी तरे करें, सो नक्ति अनुष्ठान है, यद्यपि स्त्रीका अरु माताका पालणां, पोषणा, सरीखा है, तोनी स्त्री उपर प्रीति राग है, अरु माता उपर नक्तिराग है, यह प्रीति अरु नक्तिका स्वरूप कह्या, तथा जो जिनगुणका जानकार, सूत्रोक्तविधि करकें जिनप्रतिमाको वंदना करे, सो वचनानुष्ठान है, यह अनुष्ठान चारित्रवतको निश्चय करकें होता है, तथा जो अन्यासके रससे सूत्रालोचना विनाही फलमे निस्पृह हो कर करे, सो असगानुष्ठान है जैसे कुनार चक्रको पहिला तो दंमसे फिराता है, पीछेसे दम दूर करे, तोनी चाक फिरता है, यह दृष्टात, वचनानुष्ठान अरु असगानुष्ठानमे है

इन चारोंमे प्रथम तो नावनाके लेशसे प्राय बालक प्रमुखोंको होता है, आगे अधिक अधिक जान लेना यह चारों प्रकारका अनुष्ठान बहुमान विधिसयुक्त करे, तो रुपइयानी खरा अरु खरे सन समान, प्रथम नेद है दूसरा जो पुरुप, नक्तिराग बहुमान सयुक्त होवे, अरु विधि जानता न होवे, तिसका कृत्य एकात दुष्ट नहीं, अगर पुरुपका अनुष्ठान अतिचार सहितनी शुद्धिका कारण है, क्योंकि जो रतन अंदरसे निर्मल है, उसका बाह्यमल सुखे दूर हो सकता है, यह रुपइया खरा, अरु सिक्का खोटा समान, दूसरा नेद है, तथा जो पुरुष, कपट जुगादि दोष सयुक्त है, अरु अपणी महिमा पूजाके वास्ते तथा लोकोंके ठगने वास्ते विधिपूर्वक सर्वानुष्ठान करता है, उसको बडा अनर्थ फल होता है, यह रुपइया खोटा, अरु सन खरा समान, तीसरा नेद जानना. तथा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवका जो कृत्य है, सो तो रुपइयानी खोटा, अरु सननी खोटा समान, चौ

याज्नेद है. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुमान अरु विधिपूर्वक करे, उसकों संपूर्ण फल होता है.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसें मंदिर गिर कर बिगड गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके परिवारकों निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोन्ना करणां, तथा आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नैवेद्यादि चिंता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका संग्रह करे, विनाश न होवे, ऐसी रीतिसें चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने देवद्रव्यकी उघराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसें अछी जगे स्थापन करे, देवद्रव्यके लान्न अरु खरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा औरोंसें देवद्रव्य देवे, देवावे, देव द्रव्य किसी पासों लेहणां होवे, तहां देवके नौकरकों न्नेज कर जिसी रीतिसें देवद्रव्य जाय नहीं, तैसें करे,उघराणी वास्ते नौकर रखे, इसी तरें द्रव्यकी चिंता सार संन्नाल करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेंकी है, तिनमें धनाढ्यकों धनसें, तथा स्वजनके बलसें, चिंता सुकर है. अरु धन रहितकों अपणे शरीर तथा स्वजनके बलसें साध्य है, जिसका जहां जैसा बल होवे, वो विशेष तैसा यत्न करे, जो चिंता थोडे कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्सहीसें पहिलां करे, शेषकों यथायोग्य पीछें करे. ऐसेंही धर्मशाला, गुरुज्ञानादिककीन्नी यथोचित सर्व शक्तिसें चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदिककी सार संन्नाल श्रावक विना और कोइ करनें वाला नहीं, इस वास्ते श्रावककों देवादि न्नक्ति सार संन्नालमें शिथिल नहोनां चाहियें, देव गुरु प्रमुखकी न्नक्ति, सेवा, सार संन्नाल, जेकर श्रावक न करे, तो उसकी सम्यक्त्व कलंकित हो जाती है. अरु जो श्रावक देव गुरुका न्नक्त है, उससें कदाचित् कोइ आशातनान्नी हो जावे,तो न्नी अत्यंत दुःखदायी नहीं, इस वास्ते चैत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अवोचाम च ॥ देहे द्रव्ये कुटुंबे च,सर्व संसारिणां रतिः ॥ जिने जिनमते संघे, पुनर्मोक्षानिलाषिणां ॥

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि न्नेद करकें तीन प्रकारें है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते है. पुस्तक, पट्टी, टीपणी, जपमालादिककों मुखको थूंक लेशमात्र लग जावे, हीनाधिक अक्षर

उच्चारे, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हूए, अधो वात निसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है तथा अकालमें पढनादि, उपधान बिना सूत्र पढना, भ्रांति करके अर्थ अन्यथा कल्पना करणा, पुस्तकादिककों प्रमादसे पगादिकका स्पर्श करणां, भूमिमें गेरना, ज्ञानोपकरणके पास हूए आहार मूत्रादि करना, सो मध्यम आशातना है. तथा थूक करकें अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणकें उपर बैठनादि करे, ज्ञानोपकरण पासें हूए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी निंदा प्रत्यनीक पणा उपघात करे, उत्सूत्र भाषणादि करे, सो उत्कृष्ट आशातना है

अब देवकी आशातना कहते है तहा जघन्य देवाशातना सो वास, बरास, केसर प्रमुखके मब्बेको बजावे, श्वास तथा वस्त्रके छेहडे करकें देवका स्पर्श करणा, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख करे विना पूजा करे पूजाके वस्त्र भूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशा तना है, तथा प्रतिमाको पगसे सघट्टना, श्लेष्म अरु थूकका लगाना, प्रतिमाकों भग करणा जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणा, सो उत्कृष्ट आशातना है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चालीश आशातना तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करके कहते है

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते है जिनमदिरमें १ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे ३ भोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५ स्त्रीसे भोग करे, ६ सोवें, ७ थूके, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूआ खेले. जघन्यसे यह दश जिनमदिरमें वर्जे, तो आशातना न होवे

दूसरी मध्यम चालीश आशातना वर्जे, तिसका नाम कहते है १ मूतना, २ दिशा जाना, ३ जूता पहरना, ४ पानी पीना, ५ खाना, ६ सोना, ७ मैथुन, सेवना ८ तबोल खाना, ९ थूकना, १० जूआखेलना, ११ जूआ देखे, १२ विकथा करे, १३ पालठी करी बैठे, १४ पग जूजूआ पसारे, १५ झगडा करे, १६ हासी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे. १८ उच्चे आसने बैठे. १९ केश शरीरकी विभूषा करे, २० शिर पर छत्र लगाना, २१ खड्ग रखे, २२ मुकुट धरना, २३ चामर कराने, २४ स्त्रीसे कामविलास सहित हांसी करणी, २५ धरणां लगाना, २६ क्रीडा (खेल) करणा, २७

मुखकोश विना पूजा करणी, २७ मैले शरीरसें मैले वस्त्रोंसें पूजा करणी, २९ पूजा करतां मन चपल करणां, ३० शरीरके भोगके सचित्त द्रव्यकों विना उतारे मंदिरमें जानां, ३१ अचित्तद्रव्य आभूषणादि उतारकें जावे, ३२ एकसाडीका उत्तरासंग न करे, ३३ भगवान्कों देखकें हाथ न जोडे, ३४ शक्तिके हूये पूजा न करे, ३५ अनिष्ट फूलोंसें पूजा करे, ३६ पूजा प्रमुख आदर रहित करे, ३७ जिनप्रतिमाके निंदककों हटावे नहीं, ३८ मंदिरके द्रव्यकी सार संभाल न करे, ३९ शक्तिके हूयेभी असवारी उपर चढ के मंदिरमें जावे, ४० देहरेमें वडासें पहिलां चैत्यवंदन करे, जिनेंद्रभवनमें तथा जहां प्रतिमा होवे, तिहां यह चालीश मध्यमसें आशातना टाले.

अब उत्कृष्ट चौरासी आशातनाका नाम कहते है. १ जिनमंदिरमें खेल खंखार गेरे, २ जूए आदिककी क्रीडा करे,३ कलह करे,४ धनुष्यादि कला शिखे, ५ कुरला करे, ६ तंबोल खावे, ७ तंबोलका उगाल गेरे, ८ गाली देवे, ९ दिसा मात्रा करे,१० हस्तादि अंग धोवे,११ केश समारे, १२नख समारे, १३ रुधिर गेरे, १४ सुखडी प्रमुख देहरेमें खावे, १५ गुंमडे आदिककी त्वचा गेरे, १६ औषधि खाकें पित्त गेरे, १७ वमन करे, १८ दांत गेरे, १९ हाथ, पग, मसलावे, २० घोडादि बांधे, २१ दांतका मैल गेरे, २२ आंखका मैल गेरे, २३ नखका मैल गेरे, २४ गालका मैल गेरे, २५ नाकका मैल गेरे, २६ माथाका मैल गेरे, २७ शरीरका मैल गेरे, २८ कानका मैल गेरे, २९ भूतादिके खीलने वास्ते मंत्र साधे, अथवा राजा प्रमुखका काम होवे, तिसका विचार करे, ३० मंदिरमें विवाहादिक की पंचायत करे, ३१ व्यापारका लेखा करे, ३२ राजका काम वांटके देवे, अथवा भाइ प्रमुखकों धनका हिस्सा वांटके देवे, ३३ घरका भंडार मंदिरमें रखे, ३४ पगोपरि पग रखकें दुष्टासन करकें बैठे, ३५ मंदिरकी भीतसें गाणा लगावे, गोबरका ढेर लगावे, ३६ वस्त्र सुकावे, ३७ दाल दले, ३८ पापडवेली सुकावे, ३९ वडां बनावे, उपलक्षणसें कयर, चीभडा, शाक प्रमुख सुकाने वास्ते गेरे, ४० राजा, भाइ, लहणे वालेके भयसें नाठकें भूलगंभारेमें लुक जावे, ४१ पुत्रकलत्रादिके मरणेसें मंदिरमें रोवे, ४२ स्त्रीकथा, भक्तकथा, राजकथा, देशकथा, यह चार विकथा करे, ४३ वाण ईक्षुका गन्ना घडे, तथा धनुष्यादि शस्त्र घडे, ४४ गाय वैलादि मंदिरमें

रक्खे, ४५ शीत दूर करणेकों अग्नि तापे, ४६ धान्यादि रांधे, ४७ रूपइये परखे, ४८ विधिसें नैषेधिकी न करे, ४९ छत्र, ५० पगरखी, ५१ शस्त्र, ५२ चामर, यह चार, मंदिरके बाहिर न छोडे, ५३ मन एकाग्र न करे, ५४ तैलादिकका मर्दन करे, ५५ शरीरके भोगके सचित्त फूलादिकका त्याग न करे, ५६ हार, मुद्रा, कुंडलादि, तिनकों बाहिर छोड आवे, तो आशातना लगे, क्योंकि लोकोंमे ऐसा कहना हो जावे, कि अर्हतके भक्त सर्व कंगाल भिक्षाचर है, ऐसी तरें जिनमतकी लघुता होती है, ५७ भग वान्को देखकें हाथ न जोडे, ५८ एक साडीका उत्तरासग न करे, ५९ मुकुट मस्तकमें राखे, ६० मौलि शिरका लपेटना रक्खे, ६१ फूलका सेह रा रक्खे, ६२ नालियर आदिकका छोत गेरे, ६३ गेंदसे खेले, ६४ पिता प्रमुखको जुहार करे, ६५ भाण्ड चेष्टा करे, ६६ तिरस्कारके वास्ते रेका रा तुकारा देवें, ६७ लेहणे वास्ते धरणा देवे, ६८ सग्राम करे, ६९ म स्तकके केश सुकावे, ७० पालठी मारी बैठे, ७१ काष्ठ पाडुकादि पगमे रक्खे, ७२ पग पसारे, ७३ सुखके वास्ते पुड पुडी देवावे, ७४ देहरमें शरी रका अवयव धोकें कीचड कूडा करे, ७५ पगादिकके लगी हूइ धूल झाडे, ७६ मैथुन, (कामक्रीडा) करे, ७७ जूआ गेरे, ७८ भोजन जीमे, ७९ गुह्य चिन्ह ढकके न बैठे, ८० वैदकका काम करे, ८१ क्रय विक्रय रूप वाणिज्य करे, ८२ शय्या बनाकें सोवे, ८३ पानी पीनेके वास्ते जल का मटका रक्खे, तथा मंदिरके पतनालेका पाणी लेवे, ८४ स्नान करने की जगा बनावे, यह उत्कृष्ट चौरासी आशातना जिनमंदिरमे वर्जे

अब गुरुकी तेत्तीस आशातना वर्जे, सो लिखते है १ गुरुके आगे चले, तो आशातना है. जेकर रस्ता बतावनेके वास्ते चले, तो आशा तना नही होती है, २ गुरुके बराबर चले, ३ गुरुके पीछें अडके चले, यह जैसे चलनेकी तीन आशातना कही है, ऐसेही बैठनेकीभी तीन आशातना जान लेनी, तथा खडा होनेकीभी तीन आशातना जान लेनी, यह सर्व नव आशातना हूइ १० भोजन करता गुरुसे पहिला शिष्य चलु करे, ११ गमनागमन गुरुसे पहिलां आलोचे, १२ रात्रिमे कौन जागता है. ऐसे गुरुके कहेकों सुन कर जागता हूआभी शिष्य उत्तर न देवे, तो आशातना लगे, १३ जब किसीको कुछ कहना होवे, सो गुरुसे

पहिलांही शिष्य कह देवे, १४ दूसरे साधुवोंके आगें पहिलां अशनादि आलोवे पीछें गुरु आगें आलोवे, १५ ऐसेही अशनादिक पहिलां दूसरे साधुवोंकों दिखाकें पीछें गुरुकों दिखावे, १६ अन्नादिककी पहिलां औरोंकों निमंत्रणा करकें पीछें गुरुकों निमंत्रणा करे. १७ गुरुके बिना पूछे स्वेछासें औरोंकों स्निग्ध मधुरादि आहार दे देवे, १८ गुरुकों य त्किंचित् अन्नादि दे कर पीछें यथेछासें स्निग्धादि आहार आप खावे, १९ गुरु बोलावें, तब बोले नहीं, २० गुरुकों बहुत कर्कश (कठोर)वचन बोले, २१ जब गुरु बोलावे, तब आसन उपर बैठाही उत्तर देवे, २२ गुरु बो लावे तब कहे, क्या कहते हो? २३ गुरुकों तूंकारा देवे, २४ गुरुने प्रेर णा करी तब गुरुकी प्रेरणाकों उत्तर करकें हणे, जैसें गुरु कहे कि:– हे शिष्य! तुमने ग्लानकी वैयावृत्य क्यों नहीं करी? तब शिष्य कहे कि तुम क्यों नही करते? २५ गुरुकथा कहते हूए मनमें प्रसन्न न होवे, किंतु निमन होवे, २६ सूत्रादि कहते गुरुकों कहे तुमकों अर्थ याद नहीं है? यह अर्थ ऐसें नहीं होवे है? २७ गुरु कथा कहता है, तिस कथाकों बीचमें छेद करे, अरु कहे, में कथा करुंगा? ऐसें कहे, २८ पर्षदाकों जांगे जैसें कहेकी अब तो भिक्षाका अवसर है, इत्यादि कहे, २९ पर्षदाके बिना उठ्यां गुरुकी कही कथाकों अपणी चतुराइ दिखलाने वास्ते विशे ष करकें कहे, ३० गुरुकी शय्या संथारकादिकों पगोंसें संघट्टा करे, ३१ गुरुकी शय्यादि उपर बैठनादि करे, ३२ गुरुसें उंचे आसन उपरि बैठे, ३३ गुरुके बराबर आसन करे, यह तेत्तीस गुरुकी आशातना है.

ये गुरुकी आशातनाभी तीन प्रकारकी है,एक पगादिसें संघट्टा करे, सो जघन्य आशातना,दूसरी श्लेष्म थूकादि गुरुकें लवमात्र लगावे, तो मध्यम आशातना है, तीसरी गुरुका आदेश न करे, जेकर करे, तोभी उलटा करे, कठोर वचन बोले, गुरुका कह्या न सुणे, इत्यादि उत्कृष्ट आशातना है.

स्थापनाचार्यकी आशातनाभी तीन प्रकारकी है, एक तो इधर उधर ह लावे पगोंका स्पर्श करे, तो जघन्य आशातना,दूसरी भूमिमें गेरे,अवज्ञासें धरे, सो मध्यम आशातना, तीसरी स्थापनाचार्यकों खोवे, तथा तोडे तो उत्कृष्ट आशातना है. ऐसेंही ज्ञानोपकरण, दर्शनोपकरण, तथा चारित्रोप करण,रजोहरणादि,मुखवस्त्रिका, दंडक,दंडिका प्रमुखकीभी आशातना टाले.

श्रावककों सर्वधर्मोपकरण चरवला मुखवस्त्रिकादि विधि पूर्वक स्वस्था नमें स्थापना प्रमुख करणी चाहियें, अन्यथा धर्मकी अवज्ञादि प्रमुख दूषणोंकी आपत्ति होवे, शास्त्रमें लिखा हैकि जो उत्सूत्र नांखे, तथा अ र्हंतकी अरु गुरुकी अवज्ञादि महा आशातना करे, तो सावद्याचार्य, मरी चि, जमाली, कुलवालिकादिककी तरे अनत जन्म मरणकी वृद्धि होवे ॥ यत ॥ उस्सुत्त भासगाण, बोहीनासो अणत ससारो ॥ पाणच्चएवि धीरा, उस्सुत्त ता न भासति ॥ १ ॥ तित्थयर पवयण सुयं, आयरिय गणहर म हिड्डिय ॥ आसायतो बहुसो,अणत ससारिउ होइ ॥ २ ॥ अस्यार्थ सुगम ॥

ऐसेही देव, ज्ञान, साधारण द्रव्यका तथा गुरुका द्रव्य, वस्त्र, पात्रादि कका विनाश तिनकी उपेक्षादिक जो करनी है, सोभी महा आशातना है, यदूचे ॥ गाथा ॥ चेइअ दव्व विणासे,इ सिघाए पवयणस्स उड्डाहे ॥ सजई चउत्थभंगे, मूलग्गी बोहिलाभस्स ॥ १ ॥ तथा श्रावकदिनकृत्य दर्शनशु द्धि आदि शास्त्रोमेंभी लिखा है ॥ गाथा ॥ चेइअ दव्व साहा,रण च जो दुहइ मोहिअमईउ ॥ धम्म च सो न याणाइ, अहवा बध्दाउ उ नरए ॥ १ ॥ अर्थ – चैत्यद्रव्य तथा साधारण द्रव्य जो नाश करे, मोहितमति जातो वो धर्म नहीं जानता है, अथवा उसने नरकका आयु बांधा है, उसिके वास्तेही ऐसा अयोग्य काम करता है, तथा चैत्यद्रव्यका नाश, भक्षण, उपेक्षण कोइ करे, तिसकों जेकर साधु न हटावे, तो वो साधुभी अनंत संसारी हो जावे

प्रश्न – मन, वचन अरु काया करकें जिसने सावद्य त्यागा है, ऐसे यतिकों चैत्यद्रव्यकी रक्षामे क्या अधिकार है?

उत्तर – जे कर राजा तथा वजीरकों याचना करकें तिनोके पाससे घर, हाट, गामादि लेकर विधिसे नवा पेदास उत्पन्न करे, तब तेरा विवक्षित दूषण होवेगा, परतु यथा भद्रकादि करकें जो किसीने पहिला दीया होवे, उसका नाश देखकें रक्षा करे, तब कोइ दूषण नहीं होता है, बलिके जि नाज्ञाकी आराधना होनेसे धर्मकी पुष्टि होती है

नवे जिनमदिरके बनानेसे जो पूर्वे बना हूआ है उसके प्रतिपथि अ र्थात् शत्रुको जो साधु हटावे, तो वो साधुको न प्रायश्चित्त है, तथा न वो साधुकी प्रतिज्ञा भग होती है, आगमभी ऐसाही कहता है इस वास्ते

जिनद्रव्य जो खावे, उपेक्षा करे, वो श्रावक, आगले जन्ममें बुद्धिहीन होवे, अरु पापकर्मसें लेपायमान होता है.

॥ तथा ॥ आयणं जो भंजइ, पडिवन्नं धणं न देइ देवस्स ॥ नस्सं तं स मुविरकइ, सोवि हु परिभमइ संसारे ॥ १ ॥ अस्यार्थः— जो पुरुष मंदिरकी आमदनी भांगे, अरु जो मुखसें कह कर जिनद्रव्य न देवे,सोभी संसारमें भ्र मण करे ॥ तथा ॥ जिणवयण वुड्ढिकरं,पभावगं नाणदंसण गुणाणं ॥ भरकं तोजिणदवं, अणंत संसारीउ होइ ॥ १ ॥ अर्थः— जो जिनमतकी वृद्धि करे, चैत्यपूजा, चैत्यसमारणां, महापूजा सत्कारादि करकें ज्ञान दर्शनकी प्रभावना करे, परंतु जिनद्रव्यका नाश करे, तो अनंत संसारी होवे, अरु जे कर जिनद्रव्यकी रक्षा करे, तो अल्प संसार हो जावे, देवद्रव्यकी वृद्धि करे, तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे, परंतु पंदरा कर्मादान, खोटा वणिज्य व र्जकें सद् व्यवहार करकें जिनद्रव्यकी वृद्धि करे ॥ यतः ॥ जिणवर आणा रहियं, वद्धारंताबि केवि जिणदवं ॥ वुड्डंति भवसमुद्दे, मूढा मोहेण अन्ना णी ॥ १ ॥ इसका अर्थ सुगम है.

कोइ कहते हैं किश्रावक बिना औरोंकों अधिक गहनां रखकें कालांतरमें व्याजकी वृद्धि करे,सो उचित है, ऐसा कहनांभी ठीक है, क्योंकि सम्यक्त्व पच्चीसी आदिक ग्रंथोंमें संकाशकी कथामें तैसेंही लिखा है. चैत्यद्रव्यके खानेसें बहुत कष्ट होते है, सागर श्रेष्ठीवत्. यह कथा श्राद्धविधि ग्रंथसें जान लेनी. ज्ञान द्रव्यभी देव द्रव्यकी तरें अकल्पनीय है, अर्थात् नाश करनां, भक्षण करनां, बिगडतेकी सार संभाल न करणी. ऐसेही सा धारण द्रव्यभी संघका दीया हूआही कल्पता है, विना दीया काममें लानां न कल्पे, संघकोंभी सात क्षेत्रमेंही साधारण द्रव्य लगानां चाहियें, मं गने वालोंकों उसमेंसें देनां न चाहियें, ऐसीही ज्ञान संबंधी कागज पत्रादि साधुका दीया हूआ श्रावकनें अपणे कार्यमें नहीं लगानां, अपणी पोथीमेंभी न रखना, स्थापनाचार्य अरु जपमालादि जे लेनेका व्यवहार तो दीखता है, तथा गुरुकी आज्ञा विना साधु साध्वीकों लिखारी पासें लि खानां अरु वस्त्र सूत्रादिकका लेनांभी नहीं कल्पता. इत्यादि विचार लेनां, तिस वास्ते थोडासाभी ज्ञान अरु साधारण द्रव्यका भोग न करनां चाहियें.

जो देवके नामका बोले, सो द्रव्य तत्काल देवे, क्योंकि देवद्रव्य जितना शीघ्र देवे, उतना अच्छा है, कदापि विलंब करे, तो पीछे क्या जाने धनहानि मरणादि होवे? तदा देवद्रव्यका ऋण रहजाये, और ससारीका देनाभी श्रावकको शीघ्र दे देना चाहिये, तो फेर देवद्रव्यका क्या कहना है? जिस वखत माला पहराइ तथा और कुछ द्रव्य देवके भंडारेमे देना करा, उसी वखतसें वो देव द्रव्य हो चूका, उस द्रव्यसे जो लाभ होवे, सोभी देवद्रव्य है, उस द्रव्यको श्रावकने भोगना नही, इस वास्ते शीघ्र दे देना चाहिये, जे कर मासादिक पीछे देनेका कौल करे, तदा करार उपर विना माग्या जरूर दे देवे, जे कर करार उल्लंघके देवे, तो देवद्रव्य खायेका दूषण है देवद्रव्यकी उगराहीभी श्रावक अपणी उगराहीकी तरे यत्नसें करे, जेकर देवद्रव्य लेनेमें ढील करे, अरु कदाचित् दुर्भिक्ष दरिद्रादि अवस्था आ जावे, तो फेर मिलना दुष्कर हो जावे, तथा देनेवालाभी उत्साह पूर्वक कपट रहित हो कर शीघ्र दे देवे, नहीं तो देवद्रव्यभक्षणका दोष है

तथा देव ज्ञान साधारण संबंधी हाट, खेत, वाडी, पाषाण, ईट, काष्ठ, वास, मिट्टी, खडीया, चंदन, केसर, बरास, फूल, फूलचंगेरी, धूपपात्र, कलश, वासकूपी, छत्रसहित सिंहासन, चमर, चंद्रोदय, झालर, भेरी, चानणी, तंबू, कनात, पडदे, कंबल, चौकी, तखत, पाटा, पाटी, घडा, वडा उरसा, कज्जल, जल, दीवा प्रमुख चैत्यशाला, प्रनालादिकका पाणी, ये सर्व पूर्वोक्त वस्तु देवकी अपने काममे न वर्त्तनी चाहियें, टूट फूट मलीनादि हो जावे, तो महापाप होवे, देव आगे दीवा बालकें उस दीवेके चानणेमे कोइ सांसारिक काम करे, तो मरके तिर्यंच होवे, इस वास्ते देवके दीवेसे खतपत्र भी न वाचना चाहिये, रूपकभी न परखणा, घरका कामभी देवके दीवेसे न करणा, तथा देवके चंदन. केसरसें तिलक न करे. देवके जलसे हाथ न धोवे, स्नात्रजलभी थोडासा लेना चाहिये, तथा देवसबंधी झल्लरी, मृदंग, भेरी प्रमुख गुरुके तथा संघके न वजावे, जे कर कोइ देवके उपकरण झल्लरी आदिकसे कोइ कार्य करना होवे तो बहुत निकराणा देव आगे रखकें लेने, कदाचित् कोइ उपकरण टूट जावे, तब अपणा धन खरचके नवा बनवावे, देवका दीवा लालटैन (फानूस) प्रमुखमे जूदाही राखे,

तथा साधारण द्रव्यसें जो ऊपरी प्रमुख बनावे, तब तो सर्वधर्म कार्यमें वर्त्ते, तो दोष नहीं जैसें श्रावोंसें करे, सोई प्रमाण है.

देवका तथा ज्ञानका घरादिकभी श्रावककों निःशूकतादि दोष होनेसें भाडे लेनां न चाहियें. साधारण संबंधि घरादिक संघकी अनुमतिसें लोक व्यवहार का भाडा दे कर वरते, तो दोष नहीं, परंतु भाडा करारके दिनमें स्वयमेव दे देवे. उस मकानके समरानेमें जो धन लगे. तिसकों भाडेमें गिन लेवे, तो दोष नहीं. अरु जो साधर्मी संकट (निर्धनपणेसें दुःखी) होवे, वो संघकी आज्ञासें विना भाडे दीयांभी रहे, तो दोष नहीं तथा तीर्थादिकमें अरु देहरेमें जो बहुत काल रहनां पडे, उहां सोवे, तो तहांभी लेखे अनुसार अधिक भाडा दे देवे, थोडा देवे, तो दोष है. भाडा विना दीयां देव, ज्ञान, साधारण संबंधी वस्त्र नालियर सोने रूपेकी पाटी, कलश, फूल, पक्वान्न, सूखडी प्रमुख उजमणेमें, पुस्तक पूजामें, नंदी मांडनेमें, न मेलनी चाहियें, क्योंकि उजमणादि तो उसनें अपणे नामका करा है फेर देव, ज्ञान, अरु साधारण संबंधी पूर्वोक्त वस्तु भाडे विना वर्त्ते, तो स्पष्ट दोष है.

तथा घर देहरेमें अक्षत, सोपारी, फल, नैवेद्यादिकके वेचनेसें जो धन होवे, तिसके लीये फूलादिककों घर देहरेमें न चढावे, तथा पंचायती बडे मंदिरमेंभी आप न चढावे, पूजारी आगें सर्व स्वरूप कहे कि यह मंदिरही का द्रव्य है, परंतु मेरा नहीं, पूजारी न होवे, तो संघ समक्ष कह देवे, ऐसें न कहे, तो दूषण है. घर देहरेका नैवेद्यादि मालीकों देवे, परंतु वो मालीकी नौकरीमें न गिन लेवे, जे कर पहिलांही सामग्री नौकरीमें देणी कर लेवे, तो दोष नहीं. मुख्यवृत्तिमें तो नौकरी चढावेसें अलग देनी चाहियें.

घर देहरेके चढे हूए चावलादि वडे मंदिरमें भेज देवे, अन्यथा घर देहरेके द्रव्यसें घर देहरेकी पूजा होवेगी, नतु स्वद्रव्य करकें होवेगी, तब अनादर अवज्ञादि दोष है, ऐसा करणां युक्त नहीं, क्योंकि स्वद्रव्यसेंही पूजा करणी उचित है, तथा देहरेका नैवेद्य अक्षतादि अपणे धनकी तरें रखने चाहियें, पूरे मूलासें वेचकें देव द्रव्यकों वधारनां चाहियें, परंतु जैसें तैसें मोलसें न जाने देवे, नहीं तो देवद्रव्यके नाश करेका दूषण लग जावेगा.

तथा सर्व तरें रक्षा करतांभी चौर, अग्नि, आदिकके उपद्रवसें देवद्रव्य नष्ट हो जावे, तो चिंता कारककों दोष नहीं.

तथा देव, गुरु, यात्रा, तीर्थ अरु संघकी पूजा, साधर्मिवात्सल्य, स्नात्र, प्रनावना, ज्ञान लिखाना इत्यादिक कारणो वास्ते दूसरोंके पाससें जब धन लेवे, तब चार पाच पुरुषोकी साक्षीसें लेवे, फेर खरचनेके अवसरमे नी गुरु संघादिकके आगे प्रगट कह देवे, कि यह धन मैने अमुकका दीया खरचा है, परंतु मेरा नही है

तथा तीर्थादिमे अरु पूजा स्नात्र ध्वजा चढाने आदि आवश्यक कर्त्तव्यमे दूसरोका सीर न करे, किंतु स्वयमेवही यथाशक्ति करे, जेकर किसीने धर्म खरचमे धन दीया होवे, तब तिसका प्रगट नाम ले कर सर्व समक्ष न्याराही खरच करना चाहियें, यदा बहुतें मिल कर यात्रा साधर्मिवात्सल्य संघपूजादि करे, तब जितना जितना जिसका हिस्सा होवे, उतना उतना प्रगट कह देवे, नही तो पुण्यफलकी चोरी लगे

तथा मरणांत समयमे माता, पितादिक जो धर्मका खरच करनां कहे, तथा पुत्रादि जो खरच करनां माने, सो बहुत श्रावकादिकोंके आगे कहना चाहिये, जैसे मे तुमारे नामसे इतने दिनोके बीचमे इतना धन खरचुगा, तुम उसकी अनुमोदना करो. पीछें, सो धन सर्व समक्ष अपणे नामसे नहीं, किंतु माता पितादिके नामसे तत्काल खरच कर देना चाहिये, धर्मका खरच मुख्यवृत्ति करकें तो साधारण द्रव्यहीका करना चाहियें, क्योंकि जहा जहा काम पडे, तहा तहा खरचमें लावे, सात क्षेत्रोंमे जौनसा क्षेत्र सीदाता देखे, तिसमे धन खरचकें तिसकों उपष्टंन देवे, कोइ श्रावक निर्धन हो जावे, तोनी उसकों उसी धनसे उपष्टंन देवें, लोकेप्युक्त ॥श्लोक॥ दरिद्रं नर राजेंद्र,मा समृद्धं कदाचन ॥ व्याधितस्यौषधं पथ्यं,नीरोगस्य किमौषध ॥ १ ॥ इसी वास्ते प्रनावना संघ पहिरावणी, सम्यक्त्वका लमुंलन नादिकमें जो निर्धन साधर्मी हूवे, तिनको विशेष वस्तु देनी चाहिये, अन्यथा धर्मावज्ञादि दोष होवे. यह वात युक्त हे, जो धनवानसे निर्धनकों अधिक वस्तु देनी चाहिये,यदा शक्ति न होवे, तदा दोनोको वरावर देवे

अपणा खरच धर्मद्रव्यसे न करणा, यात्रादिकके निमित्त जो धन काढे, सो सर्व देवादि निमित्त हो गया, जे कर वो द्रव्य अपणे नोजनमें अथवा गाडी आदिकके नाडेमे लगावेगा, तव जरुर उसकों देवद्रव्य खा

नेका पाप लगेगा, कदाचित् अज्ञान करकें चूकिकें वे समझीसें इत्यादि का रणोसें कोइ श्रावकादि देवादि इव्यका उपन्नोग कर लेवे, तो तिसकें प्राय श्चित्तमें जितना इव्य खाया होवे, उतना इव्य देव साधारण संबंधि करे, मरण अवस्थामें शक्तिके अन्नावसें धर्मस्थानमें थोडाही खरचे, परंतु देणा किसीका न रखे, देवादि इव्य तो विशेष करकें न रखे, इसी रीतिसें श्री जिनराजजीकी पूजा दृढन्नावोंसें करनी चाहियें॥ इति संक्षेपतो जिनेश्वर पर मेश्वर पूजनविधिः संपूर्णः॥

अब गुरु वंदनाकी विधि लिखते हैं,जो ज्ञानादि पांच आचार करकें सं युक्त होवे, और शुद्ध प्ररूपक होवे, सो गुरु है, पांच आचारका स्वरूप दे खनां होवे, तदा श्री रत्नशेखरसूरिकृत आचारप्रदीप ग्रंथ देख लेनां.

यह पूर्वोक्त गुरु आचार्यादिकके पास जो प्रत्याख्यान पूर्वें अपणे आप करा था, सो विशेष करकें विधि पूर्वक गुरु मुखसें उच्चरावे, क्योंकि प्रत्याख्यान तीन तरेंसें करा जाता है, एक आत्मसाक्षिक, दूसरा देवसा क्षिक, तीसरा गुरुसाक्षिक, तिसकी विधि यह है, किः—

मंदिरमें देववंदनार्थे, स्नात्रादि देखनेके अर्थें, धर्मोपदेश देनेके अर्थें, गुरु जिनमंदिरमें आया होवे, तथा वस्तिमें होवे, तहां मंदिरकी तरें तीन निस्सही पंचान्निगमनादि यथायोग्य विधिसें जा करकें गुरुके धर्मोपदेशसें पहिलां तथा पीछें, यथाविधिसें पंचवीश आवश्यक शुद्ध द्वादशावर्त्त वं दना देवे, वंदनाका बडा फल कहा है, कृष्णवासुदेववत्. तथा न्नाष्यमें वंदना तीन तरेंकी कही हैं, एक तो मस्तक नमावणादि सो फेटा वंदना, दूसरी संपूर्ण दो खमासमण पढनेसें स्तोन्नवंदना होती है, तीसरी द्वाद शावर्त्त करनेसें द्वादशावर्त्त वंदना होती है, तिसमें प्रथम वंदना तो सर्व संघकों करणी, दूसरी वंदना सर्व स्वदर्शनी साधुउंकों करणी, अरु ती सरी वंदना जो है, सो पदवीधर आचार्यादिककों करनी.

जिसने सवेरेका पडिक्कमणां न करा होवे, तिसने विधि पूर्वक वंदना क रणी, क्योंकि न्नाष्यमें ऐसेंही लिखा है. १ न्नाष्योक्तविधि ईर्यापथप्रतिक्रमे २ पीछें कुस्वप्नका कायोत्सर्ग करे, सौ उच्छ्वास प्रमाण करे, जेकर स्वप्नमें स्त्रीसें संगम करा होवे, तदा अशुचिकी सर्व जगा धोकें पीछें एक सौ आठ श्वासोच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे, ३ पीछें चैत्यवंदन करे, ४ पीछें इ

माश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिका प्रतिलेखे, ५ पीछें दो वंदना देवे, ६ पीछें दे वसिआदिक आलोवे, ७ फेर वदना दो देवे, ८ पीछें अप्रुट्ठिउंमि कहे, ए पीछें दो वदना करे. १० पीछें प्रत्याख्यान करे, ११ पीछें नगवन् अह इत्यादि चार क्षमाश्रमण देवे, १२ पीछें स्वाध्याय संदिसावउं कहे, फेर क्ष माश्रमण पूर्वक सबाय करू, ऐसे कहे, पीछें स्वाध्याय करें, यह स वेरकी वदनाविधि है.

तथा प्रथम १ ईर्यापथ पडिक्कमे, २ पीछें चैत्यवदना करे, ३ पीछें क्षमाश्र मण पूर्वक मुखवस्त्रिकाका प्रतिलेखन करे, ४ पीछें दो वंदना करे, ५ पी छें दिवसचरिमका प्रत्याख्यान करे, ६ पीछें दो वदना करे, ७ पीछें देव सि आलोउ कहे, ८ पीछें दो वदना करे, ए पीछें अप्रुट्ठिउं कहे, १० पीछें नगवन् इत्यादि चार स्तोनवदना करे, ११ पीछें दैवसिक प्रायश्चित्त का कायोत्सर्ग करे, १२ पीछें पूर्ववत् दो क्षमाश्रमण देकर स्वाध्याय करे, यह संध्याकी वंदन विधि है.

जे कर किसी कार्य करणादिसे गुरुका चित्त और तर्फ होवे, तदा सक्षेप मात्र वदना करे, ऐसे वदना पूर्वक गुरु पासों प्रत्याख्यान करावे, क्योंकि श्रावकप्रज्ञप्तिसूत्रमे लिखा है, कि प्रत्याख्यान करणेके परिणाम दृढनी होवे, तोजी गुरुके पासों करावें, गुरु पासो प्रत्याख्यान करानेमे यह गुण है, सो लिखते हैं. १ दृढता होती है, २ आज्ञाका करणा होता है, ३ कर्म का क्षय होता है, ४ उपशमकी वृद्धि होती है

ऐसेही दैवसिक चातुर्मासिक नियमादिनी गुरुका सनव होवे, गुरु सा क्षिकही करना चाहिये, योगशास्त्रमे गुरुकी नक्ति ऐसे लिखी है ॥ श्लोक ॥ अन्युत्थानं तदालोके ऽनियान च तदागमे ॥ शिरस्यजलिसश्लेष, स्वयमा सनढोकन ॥१॥ आसनानिग्रहो नक्त्या, वदना पर्युपासन ॥ तद्यानेऽनुगम श्चेति, प्रतिपत्तिरिय गुरौ ॥ २ ॥ अस्यार्थः– १ गुरुको आता देखके खडा हो जाना, २ सन्मुख लेने जाना, ३ मस्तक उपर अजलि बाध कर प्रणाम करणा, ४ गुरुको आसन देना, ५ जब गुरु आसन उपर बैठ जावेगा, तद मै आसन उपर बैठुगा, ऐसा अनिग्रह लेवे, ६ नक्तिसे व दना पर्युपासना करे, ७ जब गुरु जावे, तब पौहुचाने जावे, ८ यह गुरुकी नक्ति है तथा १ अडके गुरुके बराबर न बैठे, २ आगे न बैठे, ३ गुरुकी

तर्फ पीठ दे कर न बैठे, ४ पग उपर पग चढा करकें गुरुके पास न बैठे, ५ पाजठी मारकें न बैठे, ६ हाथोंसें जंघाकों लपेटके न बैठे, ७ पग पसा रकें न बैठे, ८ विकथा न करे, ए बहुत हसे नहीं, १० नींद न लेवे, ११ मन, वचन, काया गोप करकें हाथ जोडी भक्ति बहुमान पूर्वक उपयोग सहित सुणे, क्योंकि गुरु पासों धर्म सुननेसें इस लोक परलोकमें बहुत गुण होता है.

तथा गुरुकों पूछे, किसी साधुकों रोगादि होवे, तदा वैद्यकों बोलावं? औष धिका योग मिलावुं? इत्यादि गुरु गछकी सर्व तरेसें खबर सार लेवे, भोजनके अ वसरमें उपाश्रयमें जा करकें साधुओंकों निमंत्रणा करे, तथा औषधि पथ्या दि जो जिसकों योग्य होवे, सो देवे, जब साधु, श्रावकके घरमें आवे, तब जो जो वस्तु साधुके योग्य होवे, सो सो सर्व वस्तुकों देने वास्ते निमंत्रणा करे, सर्व वस्तुओंका नाम लेवे, जेकर साधु नहींभी लेवे, तोभी दाताकों जीर्णशेठवत् पुण्य फल है. रोगी साधुकी प्रतिचर्या करणेंसें जीवानंद वैद्यवत् महापुण्य फल होता है. साधुओंके रहनेकों स्थान देवे, तथा जिनशासनके प्रत्यनीककों सर्वशक्तिसें निवारण करे, तथा साधवीयोंकों दुष्ट, नास्तिक, दुःशील ज नोंसें रक्षा करे, अपने घरके पास बंदोबस्त वाला गुप्त उपाश्रय रहनेकों देवे, उनोंकी अपणी स्त्री, वहू, बहिन, बेटी प्रमुखसें सेवा भक्ति करावे, अपणी बेटीयोंकों साधवीयोंसें विद्या शिखलावे, जेकर किसी बेटीकों वैरा ग्य चढे, तब साधवीयोंकों दे देवे, जे कर कोइ साधवी धर्मकृत्य भूल जावे, तदा स्मरण करा देवे, जेकर कोइ साधवी अन्यायमें प्रवृत्त होवे, तो निवार ण करे, तथा आप रोज गुरुपासों नवीन नवीन शास्त्र पढे, जेकर बुद्धि थोडी होवे, तदा ऐसा विचारे कि सुरमेंदानीमेंसें थोडा थोडा अंजन नि कलनेसें अंजन क्षय हो जाता है, तथा वर्मीका बंधणा, ऐसें परिश्रम अभ्या स करणेसें निःफल दिन न जाने देवे, थोडी बुद्धिभी होवे तोभी पढनेका अभ्यास न छोडे, इत्यादि धर्मकृत्य करकें पीछें जेकर राजा श्रावक होवे, तदा राजसभामें जावे, प्रधान होवे, तो न्याय सभामें जावे, वणिया होवे, तदा हट्टीबजारमें जावे, इत्यादि उचित स्थानमें जा करकें धर्मसें विरुद्ध न होवे, उसी रीतिसें धन उपार्जनेकी चिंता करे.

प्रथम राजा किस रीतिसें प्रवर्त्ते, सो लिखते हैं. १ जो राजा होवे, सो दरिद्री, मान्य, अमान्य, उत्तम, अधमादि सर्वलोकोंका पक्षपात रहित मध्य

स्थ हो कर न्याय करे, २ राजाके कारजारी (मंत्री) आदिक तिनका धर्माविरोध यह है, कि राजाका अरु प्रजाका नुकशान न होवे, तैसे प्रवर्त्ते, क्योंकि जो मन्त्री राजाका हित वाछता है, उस उपर प्रजा द्वेष करती है, अरु जो प्रजाका हितकारी है, उसको राजा छोड देता है, इसी वास्ते राजमन्त्री आदिकोंको दोनोका हितकारी होना चाहिये

वणिक् व्यापारी लोकोका धर्माविरोध यह है जो व्यापारकी शुद्धि करे ॥ तथैव चाह ॥ विवहारसुद्धि देसा,इ विरुद्ध चाय उचिय चरणेहि ॥ तो कुणइ अछचितं, निव्वाहितो निय धम्म ॥ १ ॥ अस्यार्थ – व्यापारकी शुद्धि, देशादि विरुद्धका त्याग, उचित आचरण, इन तीनो प्रकारे करके धन उपार्जनेकी चिंता करे, अरु अपणे धर्मकाभी निर्वाह करे, क्योंकि ऐसा कोइ कार्य नहीं है, कि – जो धनसे सिद्ध न होवे ? तिस वास्ते बुद्धिमान् धन उपार्जनेंमे यत्न करे ॥ यदाह ॥ नहि तद्विद्यते किंचि, यदर्थेन न सिद्ध्यति ॥ यत्नेन मतिमांस्तस्मा, दर्थमेक प्रसाधयेत् ॥ १ ॥ इहा जो अर्थ चिंता है सो अनुवादरूप है, क्योंकि धन उपार्जनेकी चिंता लोकमे स्वत ही सिद्ध है कुछ शास्त्रकारके उपदेशसे नहीं, 'अरु धर्म निर्वाहयन्' यह जो कहनां है, सो विधेय करने योग्य है, क्योंकि इसकी आगे प्राप्ति नहीं है, शास्त्रका जो उपदेश है, सो अप्राप्त अर्थकी प्राप्ति वास्ते है, शेष सर्व अनुवादादि रूप है अब आजीविका चलानेके प्रकार कहते है.

आजीविका जो है, सो सात प्रकारसे है १ व्यापार करनेसे, २ विद्यासे, ३ खेती करनेसे, ४ पशुओके पालनेसे, ५ कारीगरी करनेसे, ६ नौकरी करनेसे, ७ भीख मागनेसे, तिनमे वणिज्य करनेसे वणिक लोकोंकी आजीविका है, २ विद्यासे वैद्यादिकोंकी आजीविका है, ३ खेती करनेसे कणबादिकोकी है, ४ पशुपालनेसें गोपाल अजापालादिकोकी है, ५ शिल्प करके चितारादिकोकी है, ६ नौकरी करनेसे सिपाही लोकोका है, ७ भिक्षा करके माग खानेवालोंकी आजीविका है तिनमे १ वणिज्य सो धान्य, घृत, तैल, कार्पास, सूत्र, वस्त्र, धातु, मणि. मोती, रूपइया, सोनइया प्रमुख जितनी जातका किरियाणा है, सो सर्व व्यापार है अरु जो व्याज देनां है, सोभी व्यापार है

२ विद्याभी औषधि, रस, रसायन, चूर्ण, अंजनादि, वास्तुक शास्त्र, पंखी

का शकुन, भूत भविष्यतादि निमित्त, सामुद्रिक, चूडामणि, जवाहिर परख नेका शास्त्र, धर्म, अर्थ, काम, ज्योतिष तर्कादि भेदसें अनेक प्रकारकी है, इस वैद्यविद्यामें अतारपणां, पंसारीपणां करनां ठीक नहीं, क्योंकि इसमें प्रायः दुर्ध्यान होनेसें बहुत गुण नहिं दिखता है, क्योंकि जिसकों जिस्सें लाभ होता है, वो उसी बातकों चाहता है ॥ तदुक्तं ॥ आर्या ॥ विग्रहमि छंति भटा, वैद्याश्च व्याधिपीडितं लोकं । मृतकं बहुलं विप्राः, क्षेम सुभिक्षं च निर्ग्रंथाः ॥ १ ॥ अर्थः— सुभट संग्राम चाहते है. वैद्य रोगपीडित लोकों कों चाहते हैं, अरु ब्राह्मण बहुत लोकोंकों मरणां चाहते हैं, तथा निरुप द्रव, सुकालकों साधु निर्ग्रंथ चाहते हैं. परंतु जो वैद्य अत्यंत लोभी होवे, धन लेने वास्ते उलटा औषधि जानके देवे, जिसके मनमें दया न होवे, जो त्यागी साधुओंकी औषधि न करे, जो दरिद्री, अनाथादि लोकोंकों म रते जानकेभी धन खोस लेवे, मांस मद्यादि अभक्ष्य वस्तुका भक्षण क रनां बतावे, जूठी औषधि बनाके लोकोंकों ठगे, वो वैद्यविद्या नरककी देने वाली है, सो न करनी चाहियें. अरु जो वैद्य सत् प्रकृति वाला होवे, लोभी न होवे, पूर्वोक्त दूषण रहित होवे, परोपकारी होवे; ऐसेकी वैद्य विद्या श्रीऋषभदेवजीके जीव जीवानंद वैद्यकी तरें दोनों भवोंमें गुण देने वाली है, ऐसी वैद्यविद्यासें आजीविका करे, तो अछी है.

३—४ तीसरी खेती, चौथा पशुपालक, उसमें खेतीभी तीन तरेंसें होती है, एक मेघसें, दूसरी कूप नहरादिसें, तीसरी दोनोंसें. चौथा पशु पालक पणां, सो गौ, महिष, बकरी, ऊंट, बैल, घोडा, हाथी, इनकों बेच बेचकें आ जीविका करणी, ये खेती अरु पशुपाल्य, यह दोनों काम विवेकीकों क रने उचित नहीं. जे कर इनके करे विना निर्वाह न होवे, तदा बीज बो नेका काल जाणे, भूमि सरस नीरस जाणे, अरु जो खेत पहिलां वाह्यां विना बोया न जावे, दूसरा रस्तेका क्षेत्र, यह दोनो, क्षेत्रकों वर्जे, तो धन की वृद्धि होवे, अरु जो पशुपाल्य पणां करे, तो पशुओं ऊपर निर्दय न होवे, पशुका कोइ अवयव न छेदे. इसी तरें पशुपालपणा करे.

५ पांचमी शिल्प आजीविका है, सो शिल्प सौ तरेंका है, मूल शिल्प तो पांच हैं, १ कुंभार, २ लोहार, ३ चितारा, ४ वणकर, अर्थात् बुनने वाला, ५ नाइ, इन पांचोंके वीश वीश भेद है, यद्यपि इस कालमें न्यूनाधि

ज्ञी होवेंगें, परतु श्रीऋषनदेवजीने प्रथम सौ तरेहीका शिल्प पर्याको शिखलाया था, इस वास्ते सोही लिखा है जो सासारिक विद्या है, सो सर्वकोइ शिल्पमे है, कोइ कर्ममें है, शिल्प, गुरु उपदेशसे आता है, सोही है, अरु कर्म स्वयमेवही आ जाता है, यह कर्मज्ञी सामान्यसे चार प्रकारे है, १ उत्तम बुद्धिसे धन कमाता है, २ मध्यम हाथोसे कमावे, ३ अधम पगोसे कमावे, ४ अधमाधम मस्तकसे बोजा ढो कर कमावे

६ सेवा करकें आजीविका करे, सो सेवा राजाकी, मत्रीकी, शेठकी, सामान्य लोकोंकी, नोकरी यह चार प्रकारे है प्रथम तो नौकरी किसी कीज्ञी न करनी चाहिये, क्योकि नोकर परवश हो जाता है, जे कर निर्वाह न होवे, तदा नौकरीज्ञी करे, परतु जिसकी नौकरी करे, उसमे यह कहे हूए गुण होवे, तो उसके उहा नौकर रहे, जो १ कानोका दुर्बल न होवे, २ सूरमा होवे, ३ कृतज्ञ होवे, ४ सात्विक, गजीर, धीर, उदार, शीलवान्, गुणोंका रागी होवे, उसकी नौकरी करे, अरु जो क्रूर प्रकृति वाला होवे, कुव्यसनी होवे, लोजी होवे, चतुर न होवे, सदा रोगी रहे, मूर्ख होवे, अन्यायी होवे, ऐसोंकी नौकरी न करे, क्योकि कामदकीय नामक नीति शास्त्रमे लिखा है, कि जिस राजाको वृद्ध पुरुषोने सेवा करी होवे, सो राजा अछा है, स्वामीकोज्ञी चाहिये कि जैसा सेवक होवे, तैसा उसका सन्मान करे, सेवकज्ञी थके हूए, जूखे हूये, क्रोधमे हूये, व्याकुल होये, तृषावत होये, शयन करने लगे, दूसरेके अर्ज करते हूये, इन अवस्थायोमे स्वामीको विनति न करें, तथा राजाकी माता, राजाकी राणी, राजकुमार, मुख्यमत्री, अदालती, राजेका दरवाजेवान, इनके साथ राजाकी तरें वर्त्तना चाहियें इस रीतीसे प्रवर्त्ते, तो धनकी प्राप्ति दुर्लज नहीं ॥ यदूचे ॥ श्लोक ॥ इक्षुक्षेत्र समुद्रश्च, योनिपोषणमेव च ॥ प्रसादो नूजुजा चैव, सद्योघ्नति दरिद्रता ॥ १ ॥ निदतु मानिना सेवा, राजादीना सुखैषिण ॥ स्वजना- स्वजनोद्धार, सहारो नतिनातया ॥ २ ॥ मत्री, श्रेष्ठी, सेनानी इत्यादि व्यापारज्ञी सर्व नृपसेवाके अंतर्नावही है परतु जेहलखानेका दरोगादि, नगरका कोटवाल पणा, सीमापाल, इत्यादि नौकरी न करणी चाहियें, क्योकि यह नौकरीयो निर्दयी लोकोके करनेकी है, तिस वास्ते श्रावकको नहीं करनी जे कर कोइ श्रावक राजाधिकारी हो जावे,

तब वस्तु पालादिक मंत्रीयोंकी तरें महाधर्म कीर्त्तिका करनेवाला होवे, श्रावक मुख्यवृत्ति करकें तो सम्यग्दृष्टिकीही नोकरी करे.

७ सातमी भीख मांगनेसें आजीविका है, सो भीख मांगनेकेभी अनेक भेद हैं, तिनमें धर्मोपष्टंभ मात्र आहार, वस्त्र, पात्रादिककी भिक्षा लेवे, सो भी जिस साधुने सर्वसंसार और परिग्रहका संग त्यागा है. तिसकों मांगनी उचित है, क्योंकि उसकी भीख मांगनेसें और गति नहीं है, श्रीहरिभद्रसूरिजीने पांचमे अष्टकमें भिक्षा तीन प्रकारकी लिखी है, प्रथम भिक्षा सर्वसंपत्करी, दूसरी पौरुषघ्नी, तीसरी वृत्तिभिक्षा है, जो साधु परिग्रहका त्यागी, धर्मध्यान संयुक्त, जिनाज्ञासहित होनेसें षट्कायके आरंभसें रहित, तिसकी भिक्षा सर्व संपत्करी है, तथा जो साधु तो बन गया है,परंतु साधुके गुण उसमें नहि हैं, तथा जो गृहस्थावासमें लष्ट पुष्ट षट्कायका आरंभी पडिमावहे विनाका श्रावक, तथा और गृहस्थ जो मांगकें खावे,तिसकी पौरुषघ्नी भिक्षा है,वो पुरुष धर्मकी लाघवताका करने वाला है, पूर्वजन्ममें जिनाज्ञा खंमने वाला है, आगें अनंत जन्म लग दुःखी रहेगा, तथा जो निर्धन, अंधा, पांगला, असमर्थ, और कोइ काम करने समर्थ नहीं, वो भीख मांगकें खावे, तो तीसरी वृत्तिभिक्षा है, यह भिक्षा दुष्ट नहीं. इस भीखके मांगनेसें लघुतादि धर्मके दूषण नहीं होते हैं, क्योंकी जो इनकों देता है, वो अनुंकपा (दया) करकें देता है, देनेवाला पुण्य उपार्जन करता है, इस वास्ते गृहस्थकों भीख न मांगनी चाहियें. धर्मी श्रावककों तो विशेष करकें भीख न मांगनी चाहियें, भिक्षा मांगनेसें धर्मकी निंदा, अरु धर्मकी निंदासें दुर्लभबोधी होता है, भीख मांगनेसें उदर पूर्ण तो हो जाता है, परंतु लक्ष्मी नहीं होती है ॥ यतः ॥ लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये, किंचिदस्ति च कर्षणे ॥ अस्ति नास्ति च सेवायां, भिक्षायां न कदाचन ॥ १ ॥

मनुस्मृतिके चौथे अध्यायमेंभी लिखा है, कि जब वाणिज्य करे, तब कष्टमें सहायक, पूंजीका बल,स्वभाग्योदय, देश, काल, देखकें करे, वाणिज्य करणे लगे, तब पहिला थोडा करे, पीछें लाभ जाणे, तो यथायोग्य करें, कदाचित् निर्वाहके न हूये खरकर्मभी करे, तोभी अपणे आपकों निंदता हूआ करे, बिना देखा बिना परीक्षाके सौदा न लेवे, जो सौदा संदेह वाला

होवे, वो बहुतोंके साथ मिल कर लेवे, जहां स्वचक्र परचक्रादिका उपद्रव न होवे, अरु धर्म सामग्री होवे, तिस क्षेत्रमे व्यापार करे

कालसे अठाही तीन, पर्वतिथिके दिन व्यापार न करे, जो वस्तु वर्षा कालके साथ विरोधि होवे, सो त्यागे, नावसेती जो क्षत्रिय जातिका व्यापारी राजा प्रमुख होवे, तिसके साथ व्यापार न करे, अपणे विरोधीकों उधारा न देवे, तथा नट विट वेश्या, जुआरी प्रमुखको तो विशेष करके उधारा नहींही देवे, हथीयारबंधके साथ तथा व्यापारी ब्राह्मणके साथ लेन देन न करे, मुख्य तो अधिक मोलका गहना रखकें व्याजु देवे, क्योंकि उस्सें मांगनेका क्लेश, विरोध, धर्महानी, धरणादिक कष्ट नही होते है, जे कर अैसे निर्वाह न होवे, तदा सत्यवादीको व्याजु उधार देवे, व्याज नी एक, दो, तीन, चार, पांच प्रमुख सैकडे पीछें महीनेमे नले लोक जिसको निंदे नही, अैसा लेवे,

जेकर देना होवे, तदा करार उपर बिन माग्याही देना चाहियें, कदाचित् निर्धनपणेसे एकवारमें दे न सके, तो किशत प्रमाणें जरुर दे देवे, क्योंकि देना किसीका न रखना चाहिये ॥ यडुक्त ॥ धर्मारंने रुणछेदे, कन्यादाने धनागमे ॥ शत्रुघातेऽग्निरोगे च, कालक्षेप न कारयेत् ॥१॥ जे कर देना न उतरे, तब उसका नौकर रहकर नी देना उतार देवे, नही तो नवांतरोमे उसका कर्मकर (चाकर) महिष, बैल, उंट, खर, खच्चर, घोडा प्रमुख बन कर देना पडेगा, लेने वालानी जब जान लेवे, कि यह देने समर्थ नहि तब बिलकुल मागना छोड देवे, अैसें कहे कि जब तू देने समर्थ होवेगा, तब दे देनां, नही तो यह धन मै अपणे धर्ममे लगाया, वहीमे लिख लेता हूं, तेरेसे मै कुछ नही लेवुगा?

श्रावककों मुख्यवृत्ति तो धर्मीजनोसेही व्यवहार करनां चाहिये, क्योकि दोनों पासे धन रहेगा तो धर्ममे लगेगा, अरु किसी म्लेछ पास धन रहि जावे, तदा व्युत्सर्जन कर देवे, व्युत्सर्जन करा पीछें जेकर वो म्लेछ फेर धन दे देवे, तदा वो धन धर्ममे खरचणे वास्ते सघको सौप देवे, अरु व्युत्सर्जन करा है, अैसानी कह देवे, अैसेही जो कोइ वस्तु खोइ जावे, अरु ढुंढनेसे न मिले, तो तिस वस्तुकानी व्युत्सर्जन कर देवे, पीछें कदाचित् अपने पास

धनहानी हो जावे,धनकी अप्राप्ति हो जावे,तोजी खेद न करे, क्योंकी खेदका न करणां, यही लक्ष्मीका मूल कारण है,

बहुत धन जाता रहे, तोजी धर्म करणेमें आलस न करे, क्योंकि संपदा अरु आपत् बडे आदमीकोंही होती है, सदा एक सरिखे दिन किसीके नहीं जाते हैं, पूर्व जन्म जन्मांतरके पुण्यपापोदयसें संपदा, विपदा होती है, इस वास्ते धैर्यका अवलंबनां श्रेष्ठ है, यदा अनेक उपाय करनेसेंजी दरिद्र दूर न होवे, तदा किसी जाग्यवानका आधार लेवे, अर्थात् सांजी बनके व्यवहार करे, क्योंकि काष्ठके संग लोहाजी तर जाता है.

जे कर बहुता धन हो जावे,तदा अजिमान न करे,क्योंकि लक्ष्मीके साथ पांच वस्तु होती हैं, १ निर्दयत्व, २ अहंकार, ३ तृष्णा, ४ कठिन वचन बोलनां, ५ वेश्या, नट, विट, नीच पात्र, वल्लन होते है, इस वास्ते बहुत धन हो जावे, तो इन पांचोंकों अवकाश न देवे, किसीके साथ लडाइ न करे,जबरदस्तके साथ तो विशेष करकें लडाइ नहिं करे, तथा १ धनवंत, २ राजा, ३ पक्षवाला, ४ बलवान्, ५ दीर्घरोषी, ६ गुरु, ७ नीच, ८ तपस्वी, इन आठोंके साथ वाद न करे, जहां तक नरमाइसें काम बने, तहां तक कठिनाइ न करे, लेने देनेमें ज्रांति जूलादिकसें अन्यथा हो जावे, तो विवाद न करे, किंतु न्यायसें झगडा मिटावे, न्याय करनेवालेकोंजी निर्लोजी पक्षपात रहित होनां चाहियें, तथा जिस वस्तुके महंगे होनेंसें पर्यायकों पीडा होवे, ऐसी वस्तुके महिंगे होनेकी चिंता न करे, परंतु कर्मयोगसें डुर्जिक्षादिक हो जावे, तबजी सौदेमें डुणे तिणे लाज हो जावे, तदा अन्नमें अधिक न लेवे, तथा एक, दो, तीन, चार, पांच रूपइये सैंकडेसें अधिक व्याज न लेवे, किसीका गिर पडा धन न लेवे, तथा कालांतरमें क्रयविक्रयादिमें देशकालादि अपेक्षा उचित शिष्टजन अनिंदित लाज होवे, सो लेवे, यह कथन प्रथम पंचाशकसूत्रमें लिखा है. तथा खोटा तोल, खोटा मापा, न्यूनाधिक वाणिज्य रसमें जेल संजेल न करे, वस्तुका अनुचित मौल, अनुचित व्याज, लंचा अर्थात् घूस, कोडवट्टी न लेवे, घसा हूआ तथा खोटा रूपकादि किसीकों खरेमें न देवे, दूसरोंके व्यापारमें जंग न करे, ग्राहक न बकावे, वानकी और न दिखावे, अंधेरा करकें वस्तु न वेचे, जाली खत पत्रादि न बनावे, इत्यादि परवंचन प

णाकों वर्जे, सर्वथा प्रकारें व्यवहार शुद्धि करे, क्योंकि व्यवहार शुद्धिही गृहस्थ धर्मका मूल है

तथा स्वामिद्रोह, मित्रद्रोह, विश्वासघात, बालद्रोह, वृद्धद्रोह, देवगुरुद्रोह न करे, थापणमोसा न करे, ये सर्व महापापके काम वर्जे, तथा कूडी साक्षी, रोष, विश्वासघात, कृतघ्नपणा, ये चारो, कर्मचमालपणा है, तिसकों वर्जे झूठ जो है, सो सर्व पापोंसे बडा पाप है, इस वास्ते झूठ सर्वथा न बोले, न्यायसे धन उपार्जन करे, अरु जो अन्यायी लोक सुखी दिखते है, वो अन्यायसे सुखी नही है, किंतु उनके पूर्व जन्मके पुण्यके फलसें सुखी हे, क्योंकि कर्मफल चार तरेका है ॥ यदाहुर्धर्मघोषसूरिपादा ॥ एक पुण्यानुबंधी पुण्य है, दूसरा पापानुबंधी पुण्य है, तीसरा पुण्यानुबंधी पाप है, चौथा पापानुबंधी पाप है यह चार प्रकार जो है, तिनकू किंचित् विस्तार पूर्वक कहते है

१ जिसने जिनधर्म नहीं विराध्या है, किंतु संपूर्ण आराधके जो संसारमें भवांतरमे माहा सुखी धनाढ्य उत्पन्न होवे, भरत बाहुबलकी तरे, सो पुण्यानुबंधी पुण्य है

२ जो पुरुष नीरोगादि गुणयुक्त होवे, अरु धनाढ्यभी होवें, परंतु कोणिकराजाकी तरे पाप करणेमें तत्पर होवे, यह पुण्य पूर्व भवमें अज्ञान कष्ट करणेसे होता है, सो पापानुबंधी पुण्य है.

३ जो पुरुष पापके उदयसे दरिद्री अरु दुःखी होवे, परंतु श्रीजिनधर्ममें बडा अनुरक्त होवे, धर्म करणेमे तत्पर होवे, सो पुण्यानुबंधी पाप है, यह द्रुमकमहर्षिवत् पूर्व भवमे लेश मात्र दयादि सुकृत करणेसें होता है

४ पापी चंम कर्मका करनेवाला निर्धर्मी, निर्दय, पाप करके पश्चात्ताप रहित यह पुरुष दुःखीया है. तोभी पाप करणेमे तत्पर है, सो पापानुबंधी पाप है, काल सौकरिकादिवत्

बाह्य जो नव प्रकारका परिग्रह रूप ऋद्धि है, अरु अंतरंग जो आत्माकी अनंत गुण रूप ऋद्धि है, सो पुण्यानुबंधी पुण्यसे होती है, ऐसे जे कर कोइ जीव पापानुबंधी पुण्यके प्रभावसे इस लोकमे सुखी दीखता है, तोभी आगले भवमे महा आपदा पावेगा, अरु जो महसूलकी चोरी है, सो स्वामिद्रोहमे है, यह चोरी इस लोक अरु परलोकमे अनर्थकी दाता

है: जिसमें दूसरोंकों पीडा होवे, ऐसे व्यवहार न करे ॥ यतः ॥ इंद्रवज्रा वृत्तं । शाठ्येन मित्रं कपटेन धर्मं, परोपतापेन समृद्धिभावं ॥ सुखेन विद्या परुषे ण नारी, वांछंति ये व्यक्तमपंडितास्ते ॥ १ ॥ तथा जिसतरें लोकोंको राग भाव होवे तैसें यत्न करे ॥ यतः ॥ वंशस्थ वृत्तं ॥ जितेंद्रियत्वं विनयस्य का रणं, गुणप्रकर्षोविनयादवाप्यते ॥ गुणप्रकर्षेण जनोनुरंज्यते, जनानुरागप्र भवाहि संपदः ॥ १ ॥ तथा धनहानिवृद्धि, संग्रहादि, गुह्य, दूसरोंके आगें प्रकाश न करे ॥ यतः ॥ अनुष्टुप्वृत्तं ॥ स्वकीयं दारमाहारं, सुकृतं द्रविणं गुणं ॥ दुष्कर्म मर्म मंत्रं च, परेषां न प्रकाशयेत् ॥ १ ॥ तथा कूठभी न बोले, जेकर राजा गुरु आदिक पूछे, तो सत्य कह देवे सत्य बोलनां सोही पुरुषकी परमदशा है.

तथा यथार्थ कहनेसें मित्रका मन हरे, तथा बांधव जनोंको सन्मानसें वश करे, तथा स्त्रीकों प्रेमसें वश करे, तथा चाकरोंकों दान देनेसें वश करे, तथा दाक्षिण्यता करकें इतर लोकोंका मन हरे, तथा किसी जगे अ पणे कार्यकी सिद्धि करने वास्ते पुष्ट जनोंकोंभी अगुवे, (आगडी) करे, तथा जिस जगे प्रीति होवे, तहां लेने देनेका व्यापार न करे, यह क थन सोमनीतिमेंभी है.

तथा साक्षी विना मित्रके घरमेंभी धनादिक रखनां न चाहियें, क्योंकि लोभ बडा दुर्दांत है, तथा जो धन रखनेवाला मर जावे तो वो धन उसके पुत्रादिककों दे देनां चाहियें, जे कर धन रखने वालेका कोइभी संबंधी न होवे, तब वो धन सर्वलोकोंके समक्ष धर्मस्थानमें लगा देवे, तथा श्रा वक, देवगुरु, चैत्य, जिनमंदिरकी चाहे सच्ची, चाहे कुठीभी शपथ अर्थात् सौगंद न खावे, तथा दूसरोंका साक्षीभी न बने, यत् कर्पासिक ऋषि क हता है ॥ श्लोक ॥ अनीश्वरस्य द्वे भार्ये, पथि क्षेत्रं द्विधा कृषिः ॥ प्रातिभा व्यं च साक्ष्यं च, पंचानर्थाः स्वयं कृताः ॥ १ ॥

तथा श्रावक मुख्यवृत्तिसें तो जिस गाममें रहे, तहांही व्यापार करे, क्यों कि ऐसे करनेसें कुटुंबका अवियोग तथा घरका कार्य अरु धर्मकार्यादिक सर्व बने रहते हैं, कदापि अपने गाममें निर्वाह न होवे, तदा निकट देशांतरमें व्यवहार करे, जहांसें कोइ योग्य काम पडे, तो शीघ्र घरमें आ जावे, ऐ सा कौन पामर है! कि:- जिसका स्वदेशमें निर्वाह होवे, तोभी परदे

शमें जावे, उक्तमपि ॥ जीवतोपि मृता पच, श्रूयंते किल नारते ॥ दरिद्री व्याधितो मूर्ख , प्रवासी नित्यसेवक ॥ जे कर निर्वाह न होवे, तदा आप तथा पुत्रादिकोंकों परदेशमें न भेजे, किंतु सुपरीक्षित गुमास्तेकों भेजे, जे कर स्वयमेव देशांतरमें जावे, तदा भला मुहूर्त्त शकुन निमित्त देखकें अरु देव गुरुकों वंदना करके मंगलपूर्वक भाग्यवान् साथके बीचमे निद्रादि प्रमाद वर्जके कितनेक अपने ज्ञातियोंको साथ ले कर जावे, क्योंकि भाग्यवानके साथ जाता विघ्न टल जाता है, तथा लेना, देना, गडा हूवा धन, सर्व, पिता, भाइ, पुत्रादिकोंको कह जावे, अपणे संबंधीयोंको भली शिक्षा दे जावे, बहुमान पूर्वक सर्वकों बोलाके जावे, परंतु जो जीवनेकी इछा होवे, तो देव गुरुका अपमान करके, किसीको निर्भछिके, स्त्रीयादिकको ताडना कूटना करकें, बालकको रुदन करवा करकें न जावे कदापि कोइ पर्व महोत्सवादिकका दिन निकट होवे. तदा उत्सव करके जावे ॥ यत ॥ उत्सवमशन सर्व, प्रगुण चोपेक्ष्य मंगलमशेष ॥ असमापिते च सूतक,युगेऽग नर्त्तौ च नो यायात् ॥ १ ॥ तथा दूध पीकें, मैथुन करकें, स्नान करके, अपणी स्त्रीको हणके, वमन करकें, थूंककें, रुदन करके, कठिन शब्द सुणके, गालीया सुणके, प्रदेशको न जावे, तथा शिर मुंडन करवाकें, आसु गिराकें, खोटे शुकनके हूये ग्रामांतर न जावे

तथा कार्यके वास्ते जब चले, तब जौनसा स्वर वहता होवे, उस पासेका पग पहिला उगाकें धरे, जिस्से कार्यसिद्धि होवे, तथा रोगी, बूढा, ब्राह्मण, अंधा, गौ, पूजनिक, राजा, गर्भवती स्त्री,भार उगानेवाला, इनको छुट दे कर ग्रामांतरमे जावे, तथा धान्य पक्का वा कच्चा पूजा योग्य मंत्र मंडल, इनको त्यागे नहीं,तथा स्नानका जल,रुधिर, मुरदा, थूंक, श्लेष्म, विष्टा, मूत्र, बलती अग्नि, साप, मनुष्य, शस्त्र, इनको उल्लंघे नही, तथा नदीके कांठे, गौओंके गोकुलमे, वड वृक्षके हेठ,जलाश्रयमे, अरु कूपकांठे, इतने जगो पर विष्टा न करे, तथा रात्रिको वृक्ष हेठ न रहे, उत्सव, सूतक, पूरा हूये परदेशको जावे, विना साथके न जावे, दासके साथ न जावे, मध्यान्हमें तथा अर्द्धरात्रिमे मार्गमे न चले, तथा क्रूर प्रकृतिवाला मनुष्य, कोटवाल, चुगल, दरजी, धोबी प्रमुख अरु कुमित्र, इतनोंके साथ गोष्टि न करे, इनोंके साथ अकालमे चले नहीं, तथा महिष, गर्दभ, अरु

गौ, इनकी असवारी न करे, तथा हाथीसें हजार हाथ, गाडेसें पांच हाथ अरु घोडे तथा सिंग वाले जनावरोंसेंभी पांच हाथ दूर रहे, तथा खरची विना रस्तेमें न चले, बहुत सोवे नहिं, रस्तेमें किसीका विश्वास न करे, एकीला किसीके घरमें न जावे, जीर्ण नावां ऊपर चढे नहीं, एकला नदीमें न पैसे, कठिन जगामें उपाय बिना न जावे, अगाध पाणीमें प्रवेश न करें, जहां बहुते क्रोधी होवे, अरु बहुते सुखोंके इच्छक होवे, तथा जहां घणे सूम होवे ऐसे सथवाराके साथ कदापि परदेश न जावे, तथा बांधनेके, मारणेके, जूआ खेलनेके, पीडाके, खजानेके, अंतेउरके, स्थान में न जावे, तथा बूरे स्थानमें, श्मशानमें, शून्यस्थानमें, चौकमें, शूके घासमें कूडेमें, ऊंची नीची जगामें, उकरूडीमें, वृक्षाग्रमें, पर्वताग्रमें, नदीके कांठेमें, कूपके कांठेमें, इतने स्थानोमें बैठे नहीं, तथा जो जो कृत्य जिस जिस कालमें करनां है, सो करे, परंतु छोडे नहिं.

तथा पुरुषकों जो भला वस्त्रादि पहरनेका आडंबर चाहियें सो न छोडे, परदेशमें तो विशेष करकें आडंबर, नहीं छोडनां, क्योंकि आडंबरसें अनेक कार्य सिद्ध हो जाते हैं, तथा जो कार्य करणां सो पंच परमेष्ठिस्मरण पूर्वक तथा गौतमादि गणधरोंका नामग्रहण पूर्वक करे, तथा देव गुरु की भक्ति वास्ते धनकी कल्पना करे, क्योंकि जब धन कमावनेका प्रारंभ करनां, तबही नफेमेंसूं इतना हिस्सा सात क्षेत्रमें लगावुंगा? ऐसी भावना जरुर करनी चाहियें.

जदा लाभ हो जावे, तदा चिंता अनुसारें मनोरथ सफल करे, क्योंकि व्यापारका फल यह है, किः—धन होनां, अरु धन होनेका फल यह है, कि धर्ममें धन लगानां, नहीं तो व्यापार करनां सो नरक तिर्यंचगति होनेंका कारण है. जे कर धर्ममें खरचे, तो धर्मधन कह्या जावे, जेकर नहीं खरचे तो पापधन कह्या जावे क्योंकि ऋद्धि तीन प्रकारकी है, एक धर्मऋद्धि, दूसरी भोग ऋद्धि, तीसरी पापऋद्धि. उसमें जो धर्मकार्यमें लगावे, सो धर्म ऋद्धि तथा जो शरीरके भोगमें आवे सो भोगऋद्धि अरु धर्म तथा भोगसें जो रहित, सो पाप ऋद्धि जाननी, इस वास्ते नित्य प्रत्यें स्वधनकों दानादि धर्ममें लगानां चाहियें, जेकर थोडा धन होय तो थोडा लगाने, क्योंकि किसीकों इच्छानुसारिणी शक्ति होती है. तथा धन उत्पन्न करनेका उपाय

नित्य करना चाहियें,परंतु अत्यंत लोन न करनां चाहियें, तथा धर्म, अर्थ, अरु काम यथा अवसरमे सेवनां,परतु अत्यंत कामासक्त न होनां चाहिये, अरु जो धन उत्पन्न करनां सोजी न्यायसे उत्पन्न करनां चाहियें, यहां न्यायार्जित धन सत्पात्रमें देना, लगाना, तिसके चार जंग है, सो लिखते है

१ न्यायोपार्जित सत्पात्रविनियोग रूप प्रथम जंग. पुण्यानुबंधी पुण्यका हेतु होनेंसें वैमानिक देवतापणा जोगजूमि मनुष्यपणा सम्यक्त्वादिककी प्राप्ति निकट मोक्ष फल है, धनसार्थवाह तथा शालिनद्रादिवत्

२ न्यायोपार्जित असत्पात्रविनियोगरूप दूसरा जंग पापानुबंधी पुण्यका हेतु होनेसे जोग मात्र फलजी है, तोजी छेकड विरस फल है,जैसे लक्ष्य जोज्यकरणे वाला ब्राह्मण बहुत नवोमे किंचित्सुख जोगके सेचनक नामा सर्वांग सुलक्षणो नद्र हस्ती हूआ.

३ अन्यायसे आया सत्पात्रपरिपोषरूप तीसरा जंग है, तिसका अछे खेतमे जैसे सामक बो देने वत् फल है, यह सुखानुबंधी होने करकें राजके कारजारीयोंके बहुत आरंजोपार्जित धनवत् है परंतु ऐसा धनजी धर्ममे लगावे, तो अछा है, जैसे आबूके पर्वतोपरि जिनमंदिर बनाने वाले विमलचंद्र अरु तेजपाल मंत्रीकी तरे अछा है, जेकर ऐसा धनजी धर्मंमे न लगावे, तो कुर्गति अरु अपकीर्त्तिका फल है, मम्मन शेठवत्

४ अन्यायार्जित कुपात्रपोष रूप चौथा जंग है, यह जंग सर्वथा प्रकारे त्यागने योग्य है, क्योंकि अन्यायार्जित जो धन कुपात्रको देना, सो ऐसा है, कि.– जैसा गौकों मारकें उसके मांससे कागोका पोषण करना, इस वास्ते गृहस्थको न्यायसे धनार्जन करना चाहिये

श्राद्धदिनकृत्य सूत्रमे लिखा है, कि – व्यवहारशुद्धि जो है, सोही धर्मका मूल है, जिसका व्यापार शुद्ध है, उसका धनजी शुद्ध है, जिसका धन शुद्ध है, उसका आहार शुद्ध है, जिसका आहार शुद्ध है, उसकी देह शुद्ध है, जिसकी देहशुद्ध है, वो धर्मके योग्य है, ऐसा पुरुष जो जो कृत्य करे, सो सर्व सफल होवे, अरु जो व्यवहार शुद्ध न करे, वो धर्मकी निंदा करानेसें स्वपरको कुर्लजबोधी करे, इस वास्ते व्यवहार शुद्धि जरुर करनी चाहियें ॥ इति व्यवहारशुद्धिस्वरूप समाप्त ॥

तथा देशादि विरुद्ध त्यागे, सो देश, काल, राजविरुद्धादि परिहरे,

यह कथन हितोपदेशमालामें लिखा है, कि देश, काल, राज, अरु धर्म विरुद्ध जो त्यागे, सो पुरुष सम्यग्धर्मकों प्राप्त होता है.

तिनमें देशविरुद्ध तो जैसें कि:—सौवीरदेशमें खेती करणी, लाट देशमें मदिरा बनानी, यह देश विरुद्ध है, तथा औरजी जो जिस देशमें शिष्टजनोंके अनाचीर्ण है, सो तिस देशमें विरुद्ध जाननां. जाति कुलादि अपेक्षा जो अनुचित होवे, सो देशविरुद्ध है, जैसें ब्राह्मण जातिकों सुरापान करनां, तिल लूणादि वेचनां, सो कुलापेक्षा विरुद्ध है, तथा जैसें चोहाणाकों मद्यपान करनां, तथा और देशवालोंके आगें और देशवालोंकी निंदा करणी, यहजी देशविरुद्ध है.

तथा कालविरुद्ध, सो जैसें हिमालयके पास अत्यंत शीतगर्मी जंगल तथा मरुदेशमें वर्षातमें अत्यंत पिच्छिल (पंक) संयुक्त दक्षिण समुद्रके पर्यंत जागोमें, तथा अति दुर्जिक्षमें, दो राजाओंका परस्पर विरोध होनेसें, धाडने रस्ता रोका होवे, दुरुत्तार महाअटवीमें, सांझकी वेला नयमें, इतने स्थानकोंमें तैसा सामर्थ्य सहायादि दृढ बल विना जावे, तो प्राण धन नाशादि अनर्थकारि है, तथा फागुण मास पीछें तिलोंका व्यापार, तिल पीलाने, तिल जक्षण करने. वर्षाऋतु चउमासेमें पत्र शाकका ग्रहण करणां, तथा बहुजीवाकुल जूमिमें हल फेरानां, यह महा दोषका कारण है, यह सर्व कालविरुद्ध जान लेनां.

तथा राजविरुद्ध यह है कि:—राजाके दोष बोलनां, जिसकों राजा माने तिसकों न माननां, तथा राजाके वैरीयोंसें मेल करनां, राजाके शत्रुके स्थानमें लोजसें जानां, राजाके शत्रुके पासों आयेके साथ व्यापार करनां, राजाके काममें अपणी इछासें विधि निषेध करणां,

तथा लोकविरुद्ध यह है कि:— नगरनिवासियोंके साथ प्रतिकूल पणा करणां, तथा स्वामिद्रोह करणां, लोकोंकी निंदा करणी, गुणवान् अरु धनवान्की निंदा करणी, अपणी बडाइ करणी, सरलकी हांसी करणी, गुणवान्में मत्सर रखनां, कृतघ्नत्व करणां, बहुत लोकोंके जो विरोधी होवे, उसकी संगति करणी, लोकमान्यकी अवज्ञा करणी, जले आचार वालेकों कष्ट पडे, तब राजी होनां, अपनी शक्तिके हुये साधर्मीके कष्टकों दूर न करनां, देशादि उचिताचार लंघन करनां, थोडे धनके हूए गुं

र्मोंका वेप रखना, मैले वस्त्र पहिरने, इत्यादि लोकविरुद्ध है. यह सर्व इस लोकमें अपयशका कारण है ॥ यडुवाच वाचकमुख्य ॥ लोक' खल्वाधार, सर्वेषा धर्मचारिणा यस्मात् ॥ तस्माल्लोकविरुद्ध, धर्मविरुद्ध च सत्याज्य ॥ १ ॥ अर्थ —उमास्वाति पूर्वधारी आचार्य कहते है, कि —सर्वधर्म करने वालोके लोकजन समुदाय आधार है, तिस वास्ते लोकविरुद्ध अरु धर्म विरुद्ध यह दोनो, त्यागने योग्य है,क्योंकि ऐसे करनेसे धर्मका सुखें निर्वाह होता है, लोक विरुद्धके त्यागनेसे सर्व लोकोको वल्लभ होता है, अरु जो लोकोको वल्लभ होना है, सोइ सम्यक्त्व तरुका बीज है

अथ धर्म विरुद्ध लिखते है मिथ्यात्वकी करणी, सर्व गौ आदिकको निर्दय होके ताडना, वाधना, जू, माकडादिको निराधार गेरणे, धूपमें गेरणे, शिरमें कंघीसे लीख फोडनी, उष्ण कालमे तथा शेप कालमे चौडा, लबा, गाढा गलनां पाणी गलनेके वास्ते न रखना, पाणी छानके पीछे जीवोको युक्तिसे पाणीमे न गेरनां, तथा अन्न, इधन, शाक, दाल, ताबूल, अरु फलादिकोको विना शोधे खाना, तथा अक्षत, सोपा री, खारीक, वालह, उलि,फली प्रमुख सपूर्ण मुखमें गेरे, टूटीके रस्ते, तथा पाणी आदिकको धारा वाध कर पीवे, तथा चलतेमे, बैठनेमें, स्ना न करता, हरेक वस्तु रखता, लेता, राधता, धान छडता, पीसता, औपधि घसतां, तथा मूत्र, श्लेष्म, कुरलादि, काजल, तंबोलका उगाल गेरता, उपयोगसे न करे, तथा धर्ममे अनादर करे, देव, गुरु, अरु साधर्मीमे द्वेप धरे, जिनमदिरका धन खावे, अधर्मीकी सगति करे, धर्मीयोका उपहा स करे, कपाय बहुलता होवे, तथा बहुत पापकारी क्रय विक्रय खरकर्म करना, पापकी नौकरी करनी, इत्यादि सर्व धर्मविरुद्ध है, यह पाच प्रका रका विरुद्ध श्रावककों त्यागना चाहियें

अथ उचित आचरण कहते है उचित आचरण सो, पितादि नव प्रकारकी है स्नेहवृद्धि कीर्त्यादि हेतु, सो हितोपदेशमाला ग्रथसे लि खते है. एक पिताके साथ उचित, दूसरा माताके साथ उचित, तीसरा भाइयोंके साथ, चौथा स्त्रीके साथ, पांचमा पुत्रके साथ, छठा स्वजनके साथ. सातमा गुरुके साथ, आठमा नगरवासीओंके साथ, नवमा परतीर्थी अर्थात दूसरे मतवालोंके साथ, यह नवके साथ उचित आचरण करणा.

१ तिनमें प्रथम पिताके साथ उचित आचरणः सो मन, वचन, अरु काया करकें तीन प्रकारें है, तिसमें काया करकें तो पिताके शरीरकी शुश्रूषा करे, किंकर दासकी तरें विनय करे, विना मुखसें निकलाही पिताका वचन प्रमाण करे, पिताके शरीरकी शुश्रूषा करे, पिताके चरण धोवे, मुष्टि चांपी करे, उगवे, बैगवे, देश काल उचित जोजन, शय्या, वस्त्र, शरीरविलेपनादिका योग मिलावे, विनयसें करे, परंतु आग्रहसें न करे, आप करे, परंतु नौकरोंसें न करावे, पिताके वचन प्रमाण करणे वास्ते श्रीरामचंद्रजी राज्याजिषेक गेडकें बनवासमें गये, तथा पिताका वचन सुण्या अणसुण्या न करे, मस्तक धुननां, कालक्षेप करे नहीं, पिताके मनके अनुसारें प्रवर्त्ते, तथा सर्व कृत्योंमें यत्नपूर्वक जो अपने मनमें कार्य करणां उत्पन्न हूआ है, सो पिता आगें कह देवे, पिताके मनकों जो कार्य गमे, सो करे, क्योंकि माता, पिता, गुरु, वहुश्रुत, ये आराधे हूये सर्व कार्यका रहस्य प्रकाश देते हैं, माता, पिता, कदाचित् कठिन बचनजी बोले, तोजी क्रोध न करे, जो जो धर्मका मनोरथ माता पिताके होवे, सो सो पूरे करे, इत्यादि माता पिताके साथ उचित आचरण करे.

माताके साथ उचित आचरण, सोजी पितावत् करे, परंतु माताके मनोरथ पितासेंजी अधिक पूरे, देवपूजा, गुरुसेवा, धर्म सुननां, देशविरति अंगीकार करणी, आवश्यक करणां, सात क्षेत्रोंमें धन लगानां, तीर्थयात्रा, अनाथ दीनका उद्धार करणां, इत्यादि माताके मनोरथ विशेष करकें पूर्ण करे, क्योंकि यह करणे योग्यही है, ये पूर्वोक्त कृत्य जले सपूत पुत्रोंकों इस लोकमें गुरु, माता, पिता है, सो माता पिताकों जो पुत्र श्रीअर्हंतके धर्ममें जोडे, तो अैसा और कोइ उपकार जगत्में नहीं है, उस पुत्रने माता पिताका सर्व ऋण दे दीया, और किसी प्रकारसेंजी माता पिताका देणां पुत्र नहिं दे सक्ता है, यह कथन श्रीस्थानांग सूत्रमें है.

अब यह मातपिताके उचिताचरणमें जो विशेष है, सो लिखते हैं. माताके चित्तके अनुसार प्रवर्त्ते, क्योंकि स्त्रीका स्वजावही अैसा होता है, कि जलदी पीडाकों प्राप्त हो जानां, इस वास्ते जिस कामसें माताकों पीडा होवे, सो काम न करे, क्योंकि पितासेंजी माता विशेष पूज्य है ॥ यन्मनुः ॥ श्लोक ॥ उपाध्यायाद्दशाचार्यः, आचार्येभ्यः शतं

पिता ॥ सहस्रं तु पितुर्माता, गौरवेणातिरिच्यते ॥ १ ॥ तथा औरोनेजी कहा है कि जहा तक दूध पीवे,तहा तक अपनी माता असे पशु जानते है, तथा आहार न खावे तहां तक अधम पुरुष,माता जानते है,तथा जहा तक घरका काम करे, तहा तक मध्यम पुरुष, माता जानता है, अरु जहा तक जीवे, तहा तक तीर्थकी तरे माताको उत्तम पुरुष, मानते है पशुओकी माता पुत्रसे सुख मानती है, धन उपार्जे तो मध्यम पुरुषकी माता सुख मानती है,तथा पुत्र वीर होवे, संपूर्ण धर्माचरण करके सयुक्त होवे, निर्मलचरितवाला होवे, तब उत्तम पुरुषकी माता संतोष पावे है

३ अथ सहोदरके साथ उचित आचरण लिखते है बडे जाईको तो पिता समान जाने, अरु छोटे जाइको सर्वकार्योंमें माने, तथा जे कर दूसरी माताका बेटा होवे, तो जैसे श्रीरामचद्र और लक्ष्मणकी परस्पर प्रीति थी, तैसी प्रीति करणी चाहिये, असेही बडे जाइ अरु छोटे जाइकी स्त्रीयोके साथ तथा पुत्र पुत्रीयोके साथजी उचिताचरण यथायोग्य करे, परतु पृथग्जाव न करे, जाइकों व्यापारमे पूछे, छानी वात न रक्खे, तथा धनजी जाइसे गुप्त (छाना) न रक्खे, अपणे जाइको असी शिक्षा देवे, जिस्सें उसकों कोइ धूर्त्त न छल सके, जे कर जाइको खोटी सगति लग जावे, तथा अविनीत होवे, तदा क्या करे? सो कहते है जेकर अविनीत होवे, तदा आप शिक्षा देवे, तथा जाइके मित्र पासों उलाजा देवावे, तथा सगा सबधीयोसें शिक्षा देवावे, काकासे, मामासे, सुसरासे, इनके पुत्रोसें अविनीत जाइकों शिक्षा देवावे, अन्योक्ति करकें शिक्षा देवावे, परतु आप तर्जना न करे, अरु जे कर आप तर्जना करे, तब क्या जाने निर्लज्ज होकर निर्मर्याद हो जावे? सन्मुख बोल उठे? तिस वास्ते हृदयमे स्नेह सहित उपरसे जब जाइकों देखे, तब असे जान पडे जो जाइ मेरे उपर बहुत वे राजी है, जब जाइ विनयमार्गमे आ जावे, तदा निकपट मीठे वचन बोलकें प्रेम धरे, कदाचित् जाइ अविनीतपणा न छोडे, तब चित्तमें ऐसा विचारे की.– इसकी प्रकृतिही असी है, तब उदासीनपणेसे प्रवर्त्ते, तथा जाइकी स्त्री अरु पुत्रोके साथ दान सन्मान देनेमे समदृष्टि होवे, तथा दो मातके पुत्रके साथ विशेष करके दान सन्मान प्रेमादि करे, क्योकि उसके साथ थोडाजी अतर करें,तो उसको वे प्रतीति

हो जावे, अरु लोकोंमें निंदा होवे. असेंही माता, पिता अरु नाइके स मान जो और जन हैं, तिनोंके साथनी यथोचित उचिताचरण विचार ले नां ॥ यतः ॥ जनकश्चोपकर्त्ता च, यस्तु विद्यां प्रयच्छति ॥ अन्नदः प्राणद श्चैव, पंचैते पितरः स्मृताः ॥ १ ॥ राजपत्नी गुरोः पत्नी, पत्नीमाता तथैव च ॥ स्वमाता चोपमाता च, पंचैता मातरः स्मृताः ॥ २ ॥ सहोदरः सहा ध्यायी, मित्रं वा रोगपालकः ॥ मार्गे वाक्यसखा यश्च, पंचैते भ्रातरः स्मृताः ॥ ३ ॥ अस्यार्थः सुगमः ॥ तथा अपणे नाइकों धर्मकार्यमें अवश्य प्रेरणा करे, नाइकी तरें मित्रके साथनी उचिताचरण करे.

४ अथ स्त्रीके साथ उचित कहते हैं. स्त्री विवाहिताके साथ स्नेह सं युक्त वचन बोलकें स्त्रीकों अनिमुख करे, वल्लन्न, और स्नेह संयुक्त बचन, निश्चय प्रेमका जीवन है, तथा स्त्री पासों स्नान करावे, अपणा स्नान प गचंपी प्रमुखमें स्त्री प्रत्यें प्रवर्त्तावे, जब स्त्री विश्वास पा करकें सच्चा स्नेह धरेगी, तब कदापि बुरा आचरण न करेगी, तथा देश काल कुटुंब धना दि उचित वस्त्रानरण देवे, क्योंकि अलंकार संयुक्त स्त्री लक्ष्मीकी वृद्धि करती है, तथा स्त्रीकों रात्रिमें कहीं जाने न देवे, तथा कुशील पुरुषकी अरु पाखंमी नगत योगी योगीकोंकी संगति न करणे देवे, स्त्रीकों घरके काममें जोड देवे, तथा राजमार्गमें वेश्याके पाडेमें न जाने देवे, धर्मकृत्य पडिक्कमणा सामायिकादिक जे कर करणे वास्ते धर्मशाला उपाश्रयमें जावे, तदा माता बहिनादि सुशील धर्मिणी स्त्रीयोंकी टोलीमें जावे, आवे. घरका काम, दान देनां, सगे संबंधीका सन्मान करणां, रसोइका कारण करणां, यह सब करे, तथा प्रनात समयें शय्या उगवे, घर प्रमार्जन करे, दूधके बर्त्तन धोवे, चौकादि चुल्लेकी क्रिया करे, तथा नांमे धोने, अन्न पीसणां, गौ, नैंस दोहनी, दहिं विलोनां, रसोइ करणी, खाने वालोंकों पुरोसनां, जूठे बर्त्तन शुचि करने, सासु, नरतार, नणंद, देवर, इतनोका विनय करनां, इत्यादि पूर्वोक्त कामोंमें स्त्रीकों जोडे, अर्थात् काम करणेमें तत्पर करे, जे कर स्त्रीकों पूर्वोक्त कामोंमें न जोडे, तब स्त्री, चपलतासें विकारकों प्राप्त हो जाती है, काममें लगे रहनेंसें स्त्रीकी रक्षा, गोपना होती है, तथा नरतार स्त्रीके सन्मुख देखे, बोलावे, गुणकीर्त्तन करे, धन, वस्त्र, आ नूषण देवे, जिस तरें स्त्री कहे, उस तरें करे, स्त्रीकों दूर न छोडे, तब

वो स्त्रीका-नरतार उपर अत्यंत प्रेम हो जाता है. तथा स्त्रीकों न देखनेंसें, अतिदेखनेंसे, देख कर न बुलानेसे, अपमान देनेसें, अहंकार करनेसें, इन पूर्वोक्त वातोसें प्रेम टूट जाता है.

तथा नरतार बहुत परदेशमे रहे,तब स्त्री कदाचित् अनुचित काम कर लेवे, इस वास्ते बहुत काल परदेशमेंनी न रहनां चाहिये, तथा स्त्रीका अपमान न करे, स्त्री नूल जावे, तो शिक्षा देवे, रूस जावे, तो मना लेवे, तथा धनकी हानी वृद्धि, घरका गुह्य, स्त्रीके आगें प्रगट न करे,तथा क्रोधमें आ करकें दूसरी स्त्री न विवाहे, क्योकि दो स्त्री करनी महा दुःखों का कारण है, कदाचित् संतानादिकके वास्ते दो स्त्रीनी कर लेवे, तदा दोनों उपर समनावसें प्रवर्त्ते, तथा स्त्री किसी काममें नूल जावे, तदा ऐसी शिक्षा देवे, कि जे कर फेर वो स्त्री, उस कामको न करे, तथा रूसी स्त्रीकों जे कर नहि मनावे, तो सोमनट्ट नार्या अवावत् कूवेमें गिर पडे, इत्यादि अनर्थ करे इस वास्ते स्त्रीसे सर्वकाम, स्नेहकारी वचनोसे करावे, नतु कठिनतासें

जेकर निर्गुण स्त्री मिले, तब विशेष करकें नरमाइसे प्रवर्त्ते, परंतु स्त्रीकों घरमे प्रधान न करें, जिस घरमे पुरुषकी तरे स्त्री सामर्थ्य प्रधान पणा करे, वो घर नष्ट हो जाते है, यह कहना, बाहुल्यतासे है, क्योकि कोइक स्त्री तो ऐसी बुद्धिमान् होती है, कि – जेकर उसको पूछके कार्य करे, तो बहुत गुणके ताइ होता है, जैसे तेजपालकी नार्या, अनुपदेवीकों तेजपाल अरु वस्तुपाल पूछके काम करते थे, तथा स्त्री जब धर्म कार्योंमे तप करे, चारित्र लेवे, उद्यापन करे, दान देवे, देवपूजा, तीर्थयात्रादि करे, तथा यह वातोको करनेका मनमे उत्साह धरे, तब धन देवे, सुशील सहायक दे के उसका मनोरथ पूर्ण करे, परतु अंतराय न करे, क्योंकि स्त्री जो धर्मकृत्य करेगी उसमेंसे पतिकोनी पुण्य होगा, क्योंकि पति उस कृत्य करणेमे बहुत राजी रहे है ॥ इति ॥ ५ ॥

५ अथ पुत्रके साथ उचिताचरण लिखते हैं पिता अपने पुत्रकों बाल अवस्थामे बहुत मनोज्ञ पुष्टाहारसे पोपे, स्वेछा नाना प्रकारकी क्रीडा करावे, क्योंकि मनोज्ञ पुष्ट आहार देनेसे बालककों बुद्धि, बल, अरु कांतिकी वृद्धि होती है, स्वेछा क्रीडा करानेसे शरीर पुष्ट होता है, अरु अं

गोपांग संकुचित नहीं होते हैं ॥ पठंति ॥ श्लोक ॥ लालयेत् पंच वर्षाणि, दश वर्षाणि ताडयेत् ॥ प्राप्ते षोडशमे वर्षे, पुत्रोमित्रवदाचरेत् ॥ १ ॥ तथा गुरु, देव, धर्म अरु सुखी स्वजन, इनकी संगति करावे, नली जाति, कुलआचार, शीलवान् ऐसा पुरुषके साथ मित्राचार करावे, क्योंकि गुरु आदिकका परिचय होनेसें बाल्यावस्थामें नली वासनावाला हो जाता है, वल्कलचीरीवत् जाति, कुल, आचारशील संयुक्तकी मित्रतासें, दैवयोगसें कदापि अनर्थनी आ पडे, तोनी नले मित्रकी सहायसें कष्ट दूर हो जाता है, जैसें अनयकुमारके साथ मित्रता करनेसें आर्डकुमारकों नली वासना, हो गइ. तथा जब अढार वर्षका पुत्र हो जावे, तब उसका विवाह करे, क्योंकि बाल्यावस्थासें वीर्यक्षय हो जानेसें बुद्धि, पराक्रम अरु आयु, अधिक नहीं होता है, सर्व जैनमतके शास्त्रोंमें ऐसेंही लिखा है, कि जब पुत्रकों नोगसमर्थ जाने, तब पुत्रका विवाह करे, तथा जिस कन्यासें विवाह करावे, उस कन्याका कुल, जन्म, रूप, सरिखा होवे, तब विवाह करावे, तथा पुत्रके उपर घरका नार सर्व गेरे, घरका स्वामी बना देवे, तथा जिस कन्यासें सरिखे गुण न होवे, उसके साथ विवाह करानां महा विडंबना है, विवाहनेद आगें लिखेंगे, जब पुत्रके उपर घरका नार होवेगा, तब चिंताक्रांत होनेसें कोइनी स्वछंद उन्मादादि न करेगा, क्योंकि वो जान जावेगा कि धन, बडे क्लेशोंसें प्राप्त होता है, इस वास्ते अनुचित व्यय न करनां चाहियें, ऐसा वो आपसें जान जावेगा, परंतु पुत्रकी परीक्षा करकें पीछें उसके घरका नार माल देवे, जैसें प्रसेनजित राजानें श्रेणिकपुत्रकों दीया, तथा पुत्रकी तरें पुत्रीके साथ अरु नत्तीजादिकके साथ नी यथायोग्य उचित जान लेनां, ऐसेंही बेटेकी बहूके साथनी धनश्रेष्ठीकी तरें उचिताचरण करे, तथा प्रत्यक्ष पणे पुत्रकी प्रशंसा न करे, तथा जब कष्ट पडे, तब दुःख सुखकी बात कहे, तथा आय व्ययका स्वरूप कहे, तथा पुत्रकों राजसना देखावे, क्योंकि क्या जाने बिना विचार्यां कोइ कष्ट आ पडे, तब क्या करे? तथा कोइ दुष्टजन उपद्रव कर देवे, तब राजसना बिना बूटकारा नहीं होता है॥ श्लोक ॥ तत्पठंति ॥ आर्या ॥ गंतव्यं राजकुले, दृष्टव्याराजपूजितालोकाः॥ यद्यपि न नवंत्यर्था, स्तथाप्यनर्था विलीयंते ॥ १ ॥ तथा पुत्रकों परदेशका आचार, व्यवहारादिकसें जानकार

करे, क्योंकि प्रयोजनके वशसें कदा काल देशांतरमेंनी जानां पडे, तो कोइ कष्ट न होवे तथा दो मातके पुत्रके साथ विशेष उचित करे

६ अब सगोंके साथ उचित करणां लिखते है, पिता, माता, स्त्रीके पक्षके जो लोक है, तिनकों स्वजन कहते है, यह स्वजनोका कोइ घरके वडे काममे तथा सदा काल सन्मान करे, तथा आपनी स्वजनोंके काममें अग्रेश्वरी बने, जो स्वजन धनहीन होवे, रोगातुर होवे, तिसका उद्धार करे, क्योंकि स्वजनका जो उद्धार करणा है, सो तत्त्वसे अपणाही उद्धार करणां है तथा स्वजनके परोक्ष उनकी निंदा न करे, तथा स्वजनके वैरीयोसे मित्राचारी न करे, स्वजनादिकसें प्रीति करणी होवे, तदा शुष्क कलह, हास्यादि, वचनकी लडाइ न करे, स्वजन घरमें न होवे, तो उसके घरमे एकिला न जावे, देव, गुरु, धर्म अरु धनके कार्यमें स्वजनोंके साथ सामिल रहे, जिस स्त्रीका पति परदेशमें गया होवे, ऐसे स्वजनके घरमे एकिला न जावे. तथा स्वजनोके साथ लेने देनेका व्यापार न करे॥ तथाह ॥ यदीछेद्विपुला प्रीतिं, त्रीणि तत्र न कारयेत् ॥ वाग्वादमर्थसंबध, परोक्षे दारदर्शनम् ॥ १ ॥ तथा इस लोकके कार्यमे स्वजनोके साथ एक चित्त रहे, अरु जिनमदिरादि कार्यमे तो विशेष करकें स्वजनसेंही मिलके करे, क्योकि ऐसे कार्य जे कर बहुतोसे मिलकें करे, तोही शोभा है इत्यादि स्वजनोचित जानना

७ अब गुरुउचित कहते हैं धर्माचार्यके साथ उचित नक्ति आंतरगकी बहुमान, वचन, कायाका आवश्यक प्रमुख कृत्य करणां, गुरु पासो शुद्ध श्रद्धा करकें धर्मोपदेश श्रवण करणां, गुरुकी आज्ञा माने मनसेंनी गुरुका अपमान न करे, गुरुके अवर्णवाद किसीको बोलने न देवे, गुरुकी प्रशसा सदा प्रगट करे, गुरुके प्रत्यक्ष वा परोक्ष स्तुति करे, गुरुस्तुति जो है, सो अगणित पुण्यबधनेका कारण है, गुरुके छिद्र कदापि न देखे, गुरुमे मित्रकी तरे अनुवर्त्तन करे, गुरुके प्रत्यनीक निंदककों सर्वशक्तिसे निवारण करे, कदाचित् गुरु, प्रमादके वशसे कहीं चूक जावे, तब एकात हितशिक्षा देवे, अरु कहे कि हे नगवन्! तुम सरीखोंकों यह काम करणा उचित नहि, गुरुका विनय करे, गुरुके सन्मुख जावे, गुरु निकट आवे, तो आसन छोडकें खडा हो जावे, गुरुको आसन देवे, गुरुकी पग

चंपी करे, गुरुकों शुद्ध, निर्दोष, वस्त्र, पात्राहारादि देवे, यह द्रव्योपचार करे, अरु नावोपचार सो गुरुका परदेशमें सदा स्मरण करे, इत्यादि.

८ अब नगर निवासी जनोंका उचित कहते हैं. जिस नगरमें रहे, उस नगरके निवासी जनोके साथ उचित इसी प्रकारसें करनां किः— अपणे सरीखी जीन व्यापारीयोंकी वृत्ति होवे, उनके साथ जो एकचित्तसें सुख, दुःख, व्यसन, कष्ट, राजउपद्रवादिमें बराबर रहे, उनके उत्साहमें उत्साहवान् होवे, राजदरबारमें किसीकी चुगली न करे, तथा नगरनिवासीयोंसें फटे नहीं, सर्वसें मिल कर राजका हुकुम करे, क्योंकि जब निर्बल पुरुष बहुते एकिठे होकें कार्य करे, तब तृणरज्जुवत् बलवान् हो जाते हैं, जब विवाद हो जावे, तब निःपक्ष होकें कार्य करे, किसीसें लंचा ले कें झूग काम न करे, तथा किसीसें थोडीसी लडाइ हो जावे, तो उसका राजमें पुकार न करे, तथा राजाके कारजारीयोंसें लेने देनेका व्यापार न करे, क्योंकि उनलोकोंकों नाणां देनेके अवसरमें क्रोध आ जाता है, तब वो कोइ और अनर्थ कर देते हैं, तथा समानवृत्ति नागरोंकी तरें असमान वृत्ति वाले नगरनिवासीयोंके साथनी यथायोग्य उचिताचरण करे ॥ ८ ॥

९ अथ परतीर्थी परमत वालोके साथ उचिताचरण लिखते हैं. जो परमतवाला निक्षाके वास्ते उसके घरमें आवे, वो सर्वका उचित करे, तथा राजाका माननीयका विशेष उचित करे, उचित कृत्य सो यथायोग्य दान देनां चाहे, जे कर उन साधुओंकी मनमें नक्ति नहींनी होवे, तोनी घरमें मांगने आयेकों देनां चाहियें, क्योंकिः—दान देनां यह गृहस्थका धर्मही है, तथा महंत कोइ घरमें आ जावे, तो आसन, दान, सन्मुख जानां, उठके खडा होनां प्रमुख करे, तथा परमतवाला किसी कष्टमें पडा होवे, तदा उसका उद्धार करे, दुःखी जीवोंकी दया करे, पुरुषापेक्षा मधुर आलापादि करे, तथा अन्यमतवालेकों कामका पूछनादि करे, जैसें कि आपका आनां किस प्रयोजनके वास्ते हूआ है? पीछें जो कार्य वो कहे, सो कार्य जे कर उचित होवे, तो पूरा कर देवे, तथा दुःखी, अनाथ, अंधा, बधीर, रोगी प्रमुख दीन लोकोंकी दीनताकों यथाशक्तिसें प्रतिकार करे, जो श्रावकादि पूर्वोक्त लौकिक उचिताचरणमें कुशल नहीं होवे, तो वो जिनमतमेंनी क्यों

कर कुशल होवेगे? तिस वास्ते अवश्य धर्मार्थीयोने उचिताचरणमे निपुण होना चाहिये ॥ इति नवविध उचिताचरण समाप्त ॥

अब अवसरमे उचित बोलनां, यही बडा गुणकारी है, तथा औरजी जो कुशोनाकारी होवे, सो त्यागे ॥ उक्तं च विवेकविलासादौ ॥ जनाइ, छीक, मकार, तथा हसना, यह सब मुख ढाकके करे, तथा सनाके बीच नाकमें अंगुली मालके मैल न काढे, हाथ मोडे नहीं, पर्यस्तिका न करे, पग न पसारे, निज्ञा विकथा न करे, सनामे कोइ बुरी चेष्टा न करे, जो कुलीन पुरुष है, सो अवसरमें हसे तो होव फरकने मात्र हसे, परतु मुख फाडके न हसे, अपणा अंग बजावे नहिं, तृण तोडे नहि, व्यर्थ नूमिमे लिखे नहि, नखो करकें दात घसे नहि, दांतो करी नख न तोडे, अनिमान न करे, नाट चारणकी करी हुइ प्रशंसा सुनके गर्व न करे, अपणे गुणोंका निश्चय करे, वातको समझके बोले, नीच जन जो अपनेको हीन वचन कहे, तो उसकों वदलेका हीन वचन न बोले, जिस वस्तुका निश्चय न होवे, सो बात प्रगट न कहे, जो कोइ पुरुष कार्य करे, अरु उस कार्य करणेमे वो समर्थ न होवे, तिसकों पहिला वर्ज देवे, कहे कि यह काम तुम न करो, तथा किसीका बूरा न बोले,जेकर वैरीका बूरा बोले, तो उसका अटकाव नहि, परतु सोजी अन्योक्ति करकें बोले, तथा माता, पिता, रोगी, आचार्य, पराहुणा, अन्यागत, नाइ, तपस्वी, वृद्ध, बाल, स्त्री, वैद्य, पुत्र, गोत्री, पामर, बहिन, बहिनोइ, मित्र, इन सर्वके साथ वचनकी लडाइ न करे, सदा सूर्यकों न देखे, तथा चंद्र सूर्यके ग्रहणकों न देखे, कमे (गहिरे) कूवेकों झूककें न देखे, सध्या समय आकाश न देखे, तथा मैथुन करतेको, शिकार मारतेको, नगी स्त्रीकों, यौवनवती स्त्रीको, पशुक्रीडाको, कन्याकी योनिको, इतनेकों देखे नही तथा तेलमे, जलमें, शस्त्रमें, मूतमें, रुधिरमे, इतनी वस्तुओमें अपणा मुख न देखे, क्योंकि इस कामसे आयु टूट जाती है, तथा अंगीकार करेको त्यागे नहि, नष्ट हो गइ वस्तुका शोक न करे, किसीका निज्ञाछेद न करे, बहुतोसें वैर न करे, जो बहुतोको सम्मत होवे, सो बोले, जिस काममे रस न होवे,सो न करे, कदापि करनां पडे, तोजी बहुतोसें मिलकें करे, तथा धर्म, पुण्य, दया, दानादि शुन काममें बुद्धिमान् मुख्य होवे, अंग्रेश्वरी

बने, तथा किसीके बूरे करनेमें जलदी अग्रेश्वरी न बने, तथा सुपात्र साधुमें कदापि मत्सर ईर्ष्या न करे, तथा अपणे जातिवालेके कष्टकी उपेक्षा न करे, पंच एकिठे मिल कर आदरसें उनकी कष्ट दूर करे, तथा माननीयका मानभ्रंश न करे, तथा दरिद्रपीडित, मित्र, साधर्मिक, न्यातिमें बुद्धिवाला होवे, तथा गुणों करकें बडा होवे, बहिन संतान रहित होवे, इन सर्वकी पालना करे, अपने कुलमें जो काम करने योग्य न होवे, सो न करें, इत्यादि. तथा नीतिशास्त्रोक्त तथा और शास्त्रोंमें जो उचिताचरण होवे, सो करे, अरु अनुचित होवे,सो वर्जे, मध्यान्हमें पूर्वोक्त विधिसें विशेष करकें प्रधान शाल्योदनादि निष्पन्न निःशेष रसवती होवे, दूसरी वार जिनपूजा, जो मध्यान्हकी पूजा, अरु भोजन, इन दोनोका कालनियम नहीं, क्योंकि जब भूख लगे, सोइ भोजनकाल है, इस वास्ते मध्यान्हसें पहिलांभी प्रत्याख्यान पारकें देव पूजापूर्वक भोजन करे, तो दोष नहीं, वैदकग्रंथोंमेंभी लिखा है. कि:– एक प्रहरमें दो वार भोजन न करे, तथा दो प्रहर उल्लंघे नहीं, क्योंकि एक प्रहरमें दो वार खानेसें रसोत्पत्ति होती है, अरु जेकर दो प्रहर पीछें न खावे, तो बलक्षय होता है.

अब सुपात्रदानादिककी युक्ति लिखते हैं. सो ऐसें है कि:– भोजन वेलामें भक्ति सहित साधुओंकों निमंत्रणा करकें, साधुके साथ घरमें आवे, अथवा साधु स्वयमेव आता होवे तब सन्मुख जाकें आदर करे, विनयसहित संविज्ञ भावित अभावित क्षेत्र देखे, तथा सुभिक्ष दुर्भिक्षादिक काल देखे, तथा सुलभ दुर्लभादि देने योग्य वस्तु देखे, तथा आचार्य, उपाध्याय, गीतार्थ, तपस्वी, बाल, वृद्ध, ग्लान, सह असहादि अपेक्षा करकें महत्त्व, स्पर्द्धा,मत्सर, स्नेह, लज्जा, भय, दाक्षिण्य, परानुयायिपणा, प्रत्युपकार, इछा, माया, विलंब, अनादर, बूरा बोलनां, पश्चात्तापादि. ये सर्व दानके दूषण वर्जकें आत्माकों संसारसें तारनेके वास्ते ऐसी बुद्धिसें बेंतालीश दूषण रहित जो कुछ घरमें अन्न, पक्वान्न, पाणी, वस्त्रादि होवे, तिसकी अनुक्रमसें सर्व निमंत्रणा करे, अपणे हाथमें पात्र लेकें पास रही भार्यादिकसें दान दिलावे, पीछें वंदना करकें अपने घरके दरवाजे तक साथ जावे, फेर पीछा आवे, जे कर साधु न होवे, तदा बिना बादलों मेघकी तरें साधुका आनां देखे, जे साधु आ जावे, तो मेरा जन्म स

फल हो जावे, इस वास्ते दिशावलोकन करे, जो भोजन साधुकों न दीया होवे, सो भोजन श्रावक न खावे, तथा जो श्रावक लष्ट पुष्ट साधुकों बिना कारण अशुद्ध आहार देवे, तो लेने देने वाले दोनोकों रोगीके दृष्टात करिकें हितकारी नहिं है तथा जिस साधुका निर्वाह न होवे. दुर्भिक्ष होवे, साधु रोगी होवे तथा और कोइ कारण होवे, तो उस साधुकों अशुद्ध अप्रासुक आहार देवे, तो लेने देने वाले दोनोकों हितकारी होवे, तथा रस्तेके थकेकों, रोगीको, शास्त्र पढने वालेकों, लोच करेकों, पारणेके दिनकों, दान देवे, तो बहुत फल होता है, इस सुपात्रदानका नाम अतिथिसविभाग कहते है ॥ यदागम ॥ अतिहि सविभागो नाम नायगयाए ॥ इत्यादि पाठका अर्थ कहते है, अतिथि सविभाग उसकों कहते है, कि जो न्यायसें आया कल्पनीय अन्न, पाणी प्रमुख, देश, काल, श्रद्धा सत्कार क्रमयुक्त उत्कृष्ट भक्तिसे आत्माको अनुग्रह बुद्धिसे, सयत साधुकों दान देवे, सुपात्र दानसें देवता सबंधी तथा औदारिकादि सबधी अद्भुत भोग इष्ट सर्व सुखसमृद्धि राज्य प्रमुख मनगमतासयोगादि प्राप्ति, और निर्विलंब, निर्विघ्न, मोक्षफलप्राप्ति है, क्योकि अभयदान, अरु सुपात्र दान, तो मोक्ष देते है, और अनुकपादान, उचितदान, अरु कीर्त्ति दान, यह तीनो सासारिक सुखभोगोंके देने वाले है

पात्रभी तीन तरेका कहा है एक उत्तम पात्र साधु है, दूसरा मध्यमपात्र श्रावक है, तीसरा अविरतिसम्यग्दृष्टि, सो जघन्यपात्र है तथा अनादर, कालविलंब, विमुख, खोटा वचन बोलना, अरु दान देके पश्चात्ताप करणा, ये पाच सतुदानके कलक है तथा आनदके आंसु आवे, रोमांच होवे, बहुमान देवे, मीठा बोले, दान दीये पीछें अनुमोदना करे, यह पाच सुपात्र दानके भूपण है, सुपात्रदानका परिग्रह परिमाण करनेका फल, रत्नसार कुमारकी तरे होता है, यह कथा श्राद्धविधि ग्रथसें जान लेनी. इस वास्ते ऐसे साधु आदि सयोगके मिलेसे सुपात्रदान, दिन प्रतिदिन विवेकवान् अवश्य करे

तथा यथाशक्ति भोजनावसरमे आये साधर्मीयोकों अपने साथ भोजन करावे, क्योंकि वोभी पात्र है, तथा अधे आदि मागनेवालोंकोभी यथा योग्य देवे, परतु किसी मागनेवालेको निराश न जाने देवे, धर्मकी निंदा

न करावे, कठिन हृदयवाला न होवे, भोजनके अवसरमें दयावंतकों क पाट लगाने न चाहियें, उसमेंभी धनवान् तो विशेष करकें कपाट ल गावेही नहिं ॥ आगमेऽप्युक्तं ॥ नेव दारं पिहावेई, भुंजमाणो सुसावउ ॥ अ णुकंपा जिणंदेहिं, सड्ढाणं न निवारिया ॥ १ ॥ दिठ्ठूण पाणिनिवहं, भीमे भव सायरंमि दुरकत्तं ॥ अविसेस अणुकंपं, दुहावि सामठ्ठउ कुणई ॥२॥ अ स्यार्थः- भोजन करतां हूआ दरवाजा जडे नहिं, क्योंकि अनुकंपादान श्रावककों जिनेश्वर भगवानूने मने नहीं करा है, जीवोंका समूहकों भया नक संसारमें दुःखपीडित देखकें विशेष रहित द्रव्य अरु भाव दोनों तरेंसें अनुकंपा करे, उसमें द्रव्यसें तो यथायोग्य अन्नादि देवे, अरु भावसें उ नकों सन्मार्गमें प्रवर्त्तावे, श्रीपंचमांगादिकमें जहां श्रावकोंका वर्णन करा है, तहां ऐसा पाठ है, "अवगुंविअ दुवारा" इस विशेषण करकें भिक्षुका दिकोंके प्रवेश वास्ते सदा किंवाड उघाडे रखे, दीनोद्धार तो संवत्सरी दान देनेंसें तीर्थंकरोनेभी करा है, कदापि काल दुकाल पड जावे, तब तो श्रा वक जो होवे, सो विशेष करकें दीनोद्धार, दानादिसें करे, क्योंकि आगेंभी विक्रमादित्यके संवत् १३१५ में भद्रेसर गामके वसनें वाला श्रीमाल जाति शाह जगडु श्रावकने (११२) एक सौ बारह दानशाला करकें दान दीया है, तथा विक्रमादित्यके संवत् १४२ए में सोनी सिंहा श्रावकने २४००० मण अन्न, दीन जीवोंकों दुकालमें दीया है, तथा निर्दूषण आ हार देवे, तो सुपात्र दान शुद्ध है.

तथा माता, पिता, भाइ, बहिन, पुत्र, बहू, सेवक, ग्लान, अरु बांधे हूये गौ प्रमुख इन सर्वकी चिंता करकें अर्थात् इन सर्वकों भोजन कराकें पीछें पंच परमेष्ठि स्मरण करकें, प्रत्याख्यान पारकें, सर्व नियम स्मरण क रकें, साम्यतासें भोजन करे. साम्यता ऐसें जाननी कि जो अन्न, पाणी, आपसमें विरुद्ध न होवे, तथा उलटा न परिणमे, आपणे स्वभावके मा फक होवे, तिसकों साम्य कहते हैं. जो पुरुष संपूर्ण जन्म तक साम्य तासें भोजन करे, वो कदी विषभी खावे, तोभी अमृत हो जावे, अरु अ साम्यतासें अमृत खायाभी विष हो जाता है, परंतु इतना विशेष है, किः- साम्यतासेंभी पथ्यही खानां चाहियें, नतु अपथ्यं. तथा खानेका अत्यंत गृद्ध न होनां चाहियें, कंठ नाडिसें जब हेठ उतर जाता है, तब

सर्व नोजन बरावर हो जाता है, इस वास्ते एक क्षणमात्रका स्वादके वास्ते अति लोल्यता न करनी चाहिये, तथा अनक्ष्य अनतकाय, बहु सावद्य वस्तु, अर्थात् बहुत पापवाली वस्तु न खावे,तथा जो थोडा खाता है, सो बहुत बलादिवान् होता है, तथा जो बहुत खाता है, सो अल्प खानेके फलवाला होता है, तथा अधिक खानेसे अजीर्ण वमन विरेचनादि मरणांत कष्टनी हो जाता है ॥ श्लोक ॥ हितमितविपकनोजी, वामशयी नित्यचक्रमणशील ॥ उज्झितमूत्रपुरीष, स्त्रीषु जितात्मा जयति रोगान् ॥ १ ॥ अर्थ—जो नूख लगे तो हितकारी ऐसा अन्न थोडा जीमे, वामा पासा हेठ करकें सोवे, नित्य चलनेका स्वनावशील होवे, जब बाधा होवे, तबही दिसामात्रा करे, स्त्रीसे नोग न करे, वो पुरुष रोगोंको जीत लेता है

अथ नोजनविधि, व्यवहार शास्त्रादिकोंके अनुसार लिखते है. अतिप्रनातमे, अतिसंध्यामें, तथा रात्रिमे नोजन न करना चाहिये, तथा सडा, वास्या, अन्न न खावे, चलता हूआ न खावे, तथा जीमणा (दाहिणा) पग ऊपर हाथ रखके न खावे,हाथ उपर रखके न खावे,खुल्ले आकाशमे न खावे, धूपमे बैठकें न खावे, अंधारेमे वृक्षके तले न खावे, तर्जनी अंगुली उंची करके कदापि न खावे, मुख, हाथ, पग, अरु वस्त्र, विना धोया न खावे,नगा हो कर मैले वस्त्रोंसे, दाहिणे हाथसे, थालको विना पकडे, न खावे, धोती आदिक एक वस्त्र पहिरकें न खावे, नीजे वस्त्र पहिरकें न खावे, नींजे वस्त्रसे मस्तक लपेटकें न खावे, यदा अपवित्र होवे, तदा न खावे, अति गृद्ध रस लंपट हो कर न खावे, तथा जूते सहित, व्यग्रचित्त, नि केवल नूमि उपर बैठकें, अरु मंजे उपर बैठके न खावे, विदिशिकी तर्फ तथा दक्षिणकी तर्फ मुख करकें न खावे, पतले आसनपै बैठकें नोजन न करे, तथा आसन उपर पग रखकें नोजन न करे, चमालके देखते न खावे, जो धर्मसे पतित होवे, उसके देखते न खावे, तथा फूटे पात्रमें अरु मलीन पात्रमे न खावे, जो शाकादिक वस्तु विष्टासे उत्पन्न होवे, सो न खावे, बालहत्यादि जिसने करी होवे, इनने तथा रजस्वला स्त्रीने जो वस्तु स्पर्शी होवे, तथा जो वस्तुको गाय, श्वान, पखीने सूघी होवे, तथा जो वस्तु अजाणी होवे, तथा जो वस्तु फेरकें उष्ण करी होवे, सो न खावे,

तथा बचबचाट शब्द करकें न खावें, तथा मुख फाटे तो बुरा लगे ऐसें मुख करकें न खावे, तथा भोजनके अवसरमें दूसरोंकों बुलाकें प्रीति उप जावे, अपणे देवगुरुका नामस्मरण करकें समासन उपर बैठकें, जो अन्न अपनी माता, बहिन, ताइ, (पितासें बडे भाइकी औरत) भाणजी, स्त्री प्रमु खनें रांध्या होवे, सो पवित्र पणे भोजन परोसा हूआ उसकों, मौन करकें दाहिना स्वर चलते खावे, जो जो वस्तु खावें, सो नासिकासें सूंघके खावे, इसमें दृष्टिदोष नष्ट हो जाता है, तथा अति खारा, अति खट्टा, अति उष्ण, अति शीतल, अति शाक, अति मीठा, ये सर्व न खावे, मुखके स्वाद मात्र खावे, क्योंकि अति उष्ण खावे, तो रस हण्या जाता है, अति खट्टा खावे, तो इंद्रियोंकी शक्ति कम हो जाती है, अति लवण खावे, तो नेत्र बिगड जाते हैं, अति स्निग्ध खावें, तो नासिका विषय रहित हो जाती है, तथा तीक्ष्णद्रव्य अरु कौडा द्रव्य खावे, तो कफ दूर हो जाता है, तथा कषायेला अरु मीठा खावे, तो पित्त नष्ट हो जाता है, स्निग्ध घृतादिक खानेसें वायु दूर हो जाता है, बाकी शेष रोग जो हैं, सो न खानेसें दूर हो जाते हैं.

जो पुरुष शाक न खावे, अरु घृतसें रोटी खावे, तथा जो दूधसें चावल खावे, तथा बहुत पाणी न पीवे, अजीर्ण होवे, तदा खावे नहिं, सो पुरुष, रोगोकों जींत लेता है, भोजन करती वखत पहिलां मीठा अरु स्निग्ध भो जन करे, बीचमें तीक्ष्ण भोजन करे, पीछें कौडी वस्तु खावे ॥ उक्तं च ॥ सुस्नि ग्धमधुरैः पूर्वं, मश्नीयादन्वितं रसैः ॥ द्रव्याम्ललवणैर्मध्ये, पर्यंते कटुतिक्तकैः॥

तथा जो पहिलां द्रव अर्थात् नरम वस्तु खावे, मध्यमें कडुआ रस खावे, अंतमें फेर नरम रस खावें, सो बलवंत अरु नीरोगी रहे, तथा पाणीकों भोजनसें पहिलां पीवे, तो मंदाग्निका जनक है, तथा भोजनके बिचमें पीवे, तो रसायन समान गुणकारी है, तथा भोजनके अंतमें पीवे, तो विष समान हैं, भोजनके अनंतर सर्वरससें लिप्त हूये हाथसें एक चलु रोज पीवे; पशुकी तरे पाणी न पीवे, पीया पीछें जो पाणी रहे सो गेर देवे, अंजलिसें पाणी न पीवे, पाणी थोडा पीणां पथ्य है, पाणीसें भींजे हूये हाथोंकों गला, तथा कपोल, हाथ, नेत्र, इतने स्थानोंमें न लगावे, न पूंजे, गोडे (जानु) का स्पर्श करे, तथा अंगमर्दन, दिसा जानां, भार उठानां, बैठनां, स्नान

करना, ये सर्व नोजन कीया पीछें न करे, तथा कितनेक काल तांइ बुद्धिमान पुरुष नोजन करकें बैठ जावें, तो पेट बडा हो जाता है, तथा उपरिको मुख करकें चित्त हो कर सोवे, तो बल वधे, वामे पासे सोवे, तो आयु वधे, नोजन करके दौडे, तो मरण होवे, नोजन कीया पीछें वामे पासे दो घडी ताई सोवे, परतु निद्रा न लेवे, अथवा सोवे नही तो सौ पग (सौ भिग) चले, (फिरे) अन्यत्रनी कहा है कि देवको, साधुकों, नगरका स्वामी राजाको तथा स्वजनोको, जब कष्ट होवे, तब तथा चंद्रसूर्यके ग्रहणमे जे कर शक्ति होवे, तो विवेकवान् पुरुष नोजन न करे. ऐसेंही "अजीर्ण प्रनवारोगा" इस वास्ते अजीर्णमेंनी नोजन न करे

ज्वरकी आदिमें लघन करना श्रेष्ठ है, परतु वातुज्वर, श्रमज्वर, क्रोधज्वर, शोकज्वर, कामज्वर, घावकीज्वर, इतने ज्वरको वर्जकें शेष ज्वर तथा नेत्ररोगके हूये लघन करे

तथा देव गुरुके वदनादिके अयोगसे, तथा तीर्थ अरु गुरुकों नमस्कार करण जाते वखत, तथा विशेष धर्मांगीकार करतां, बडा पुण्य कार्य प्रारन करता, अरु अष्टमी, चतुर्दशी आदि विशेष पर्वके दिन, नोजन न करनां चाहियें तपका जो करणां है, सो इस लोक अरु परलोकमे बहुत गुणकारी है तथा नोजन करा पीछें नमस्कार स्मरण करके उठे, चैत्यवंदना करकें देव गुरुको यथायोग्य वदना करे, तथा नोजनके पीछें गठिसहित दिवसचरिम प्रत्याख्यान विधिसे करे. पीछें गीतार्थ साधु, गीतार्थ श्रावक, तथा सिद्धपुत्रादिकोके समीपे स्वाध्याय (पठन पाठन) यथायोग्य करे, योगशास्त्रमे लिखा है, कि जो गुरुमुखसें पढा होवे, सो औरोंकों पढावे, स्वाध्याय करे, पीछें सध्यामें जिनपूजा करे, पीछें पडिक्कमणा करे, पीछें स्वाध्याय करे, पीछें वैयावृत्य अर्थात् मुनिकी पगचपी करे, पीछें घर जा कर सकल परिवारको जोडके धर्मका स्वरूप कथन करे, उत्सर्गमार्गें तो श्रावकको एक वारही नोजन करना चाहियें ॥ यदुक्तं ॥ उस्सग्गेण तु सड्ढोय, सचित्ताहार वज्जउ ॥ इक्कासणग नोइअ, बनयारि तहेव य ॥ १ ॥ जेकर एक नुक्त न करने सामर्थ्य होवे, तदा दिनका अष्टमा नाग अर्थात् चार घडी दिन जब रहे, तब नोजन कर लेवे, (जीम लेवे) दो घडी दिन रहनेसे पहिलाही नोजन कर लेवे, पीछें यथाशक्ति चार आहार, तीन

आहार, दो आहारका त्यागरूप दिवसचरिम सूर्य उगते तांइ करे, सो मुख्य वृत्तिसें तो दिन होतेही करनां चाहियें, परंतु अपवादमें रातकोंन्नी करे.

इतिश्री तपगछीय गणिश्रीमणिविजय तच्छिष्य मुनिश्रीबुद्धिविजय तच्छिष्य मुनि आत्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे श्राद्धविधिशास्त्रानुसारेण श्रावक दिनकृत्यप्रकाशक नामा नवम परिछेदः संपूर्णः ॥ ए ॥

॥ अथ दशम परिछेद प्रारंन्नः ॥

इस परिछेदमें श्रावकोंका एक रात्रिकृत्य, दूसरा पर्वकृत्य, तीसरा चौमासिककृत्य, चौथा संवत्सरीकृत्य, अरु पांचमा जन्मकृत्य, यह पांच कृत्य अनुक्रमसें लिखेंगे. तिसमें प्रथम रात्रिकृत्य लिखते हैं.

साधुके पास तथा पौपधशालादिमें यत्नपूर्वक प्रमार्जना पूर्वक सामायिक करकें प्रतिक्रमण करे, पीछें साधुओंकी पगचंपी करे. यद्यपि साधुने श्रावकके पासों उत्सर्गमार्गमें विश्रामणादि नहीं करावणी, तोन्नी श्रावक विश्रामणा करणेके न्नाव करे, तो महाफल है. पीछें श्राद्धदिनकृत्य, श्रावकविधि, उपदेशमाला अरु कर्मग्रंथादि शास्त्रोंकी स्वाध्याय करे, पीछें सामायिक पारके घरमें जावे.

पीछें सम्यक्त्वमूल बारह व्रतमें, सर्वशक्तिसें यत्न करणादिरूप तथा सर्वथा अर्हत् चैत्य, अरु साधर्मिक वर्जित वासस्थानमें अनिवासरूप तथा पूजा प्रत्याख्यानादि अभिग्रहरूप, यथाशक्ति सप्त क्षेत्रमें धन खरचनरूप ऐसा यथायोग्य सकल परिवारकों धर्मोपदेश कथन करे, जेकर श्रावक अपणे परिवारकों धर्म न कहे, तब उन परिवारकों धर्मकी प्राप्ति न होवेगी, तो इस लोक परलोकमें जो वे पापकर्म करेंगे. सो सर्व उस श्रावककों लगेंगे, क्योंकि लोकमें यह व्यवहार है कि:— जो चोरकों खाने पीनेकों देवे, सोन्नी चोर गिना जाता है. ऐसें धर्ममेंन्नी जान लेनां, इस वास्ते श्रावकने द्रव्य तथा न्नावसें अपने कुटुंबकों शिक्षा देनी चाहियें, उसमें द्रव्यसें तो पुत्र, कलत्र, बेटी प्रमुखकों यथायोग्य वस्त्रादि देवे, अरु न्नावसें तिनकों धर्मका उपदेश करे, तथा दुःखीये सुखीयेकी चिंता करे ॥अन्यत्राप्युक्तं॥ राज्ञि राष्ट्रकृतं पापं, राज्ञः पापं पुरोहिते ॥ न्नर्त्तरि स्त्रीकृतं पापं, शिष्यपापं गुरावपि ॥ १ ॥ धर्मदेशना दीये पीछें, रात्रिका प्रथम प्रहर वीत्या पीछें, शरीरकों हितकारी श

च्यामें निगिसें निद्रा अल्पमात्र करे, गृहस्थ वाहुल्यता करकें मैथुनसे व र्जित होवे,जे कर गृहस्थ जावजीव तक ब्रह्मव्रत पालने समर्थ न होवे,तदा पर्व तिथिके दिन तो अवश्य ब्रह्मचर्यव्रत पालना चाहिये

नींद लेनेकी विधि नीतिशास्त्रके अनुसारें यह है – जिस मांचेमें जीव पडे होवे, जो खाट छोटी होवे, नागी हुइ होवे, मैली होवे, दूसरे पाये सयु क्त होवे, तथा अग्निके बले काष्ठकी खाट होवे, सो त्यागे, खाटमे तथा आसनमें चार जातकी लकडी लगे,तब ताइ तो शुभ है,परतु पाचादि काष्ठ लगे, तो अशुभ है, तथा पूजनिक वस्तुके उपर न सोवे, तथा पाणीले पग नीजे न सोवे, तथा उत्तर दिशि अरु पश्चिमदिशि तर्फ शिर करके न सोवे, वासकी तरे न सोवे, पगोके ठिकाणे न सोवे, हाथीके दातकी तरें न सोवे, देवताके मदिरके मूलगंनारेमें, सर्पकी ववी उपर, वृक्षके हेठ, तथा श्मशानमें सोवे नही, किसीके साथ लडाइ हुइ होवे, तदा मिटाकें सोवे, सोने वखत पाणी पास रखे, तथा दरवाजा जडकें, इष्टदेवको नम स्कार करके वडी शय्यामे अछीतरे उढनेके वस्त्र समारकें, सर्वाहार त्या गके, वामा पासा नीचे करके सोवे

दिनको सोवे नहीं. परतु क्रोध, शोक, अरु मद्यके मिटाने वास्ते तथा स्त्रीकर्म, अरु नारके थकेवेके मिटाने वास्ते तथा रस्तेके खेदके मि टाने वास्ते तथा अतिसार, श्वास, हिजकी प्रमुख रोग दूर करने वास्ते सोवे, तथा जो वाल होवे, वृद्ध होवे, वलक्षीण होवे, सो सोवे, तथा तृषा, शूल, गड, गूंमडकी वेदना करकें विव्हल होवे, सो सोवे, तथा जि सको अजीर्ण हुवा होवे, वाय हुवा होवे, जिसको खुसकी हुइ होवे, तथा जिसको रात्रिमें निद्रा थोडी आती होवे, वो दिनमेनी सो जावे तथा ज्येष्ठ अरु आषाढ महीनेमे दिनमेनी सोना अछा है, और म हीनोमें सोवे, तो कफ अरु पित्त करता है, तथा वहूत नीद लेनी वहुत काल लग सूता रहना, अछा नहीं, तथा रातकों सोवे तदा दिशावकाशिक व्रत उच्चारकें सोवे, तथा चार सरणा लेवे, सर्व जीवराशिसे खामणा करे, अठारह पाप स्थानक व्युत्सर्जन करे, डुष्कृतकी निंदा करे, सुकृतानुमोदन करे, तथा ॥ जइ मे हुक्क पमाउ, इमस्स देहस्स इमाइ रयणीये ॥ आहा रमुवहि देह, सवं तिविहेण वोसरियं ॥ १ ॥ नमस्कार पूर्वक इस गा

थाकों तीन वार पढे. साकार अनसन करे, पंच नमस्कार स्मरण सोनेके अवसरमें पढे, स्त्रीसें दूर अलग शय्यामें सोवे. जेकर निकट सोवे. तब एक तो विकार अधिक जागता है, तथा दूसरा जिस वासना युक्त पुरुष सोवे, सो जितना चिर जागे नहीं, उतना चिर उही वासना उस पुरुषकों रहती है. इस वास्ते स्त्रीसें अलग दूसरी शय्यामें सोवे, तथा पागल (दीवाना) हो जावे, तथा मरणावसरमें गफलत हो जावे, तोजी तिसके जो सचित्त अवस्थामें वासनाथी, उही वासना है, असें जाननां ॥ इत्याप्तोपदेशः ॥ इस वास्ते सर्वथा उपशांतमोह हो करकें, धर्म वैराग्यादि जावना करकें, वासित हो करकें निद्रा करे, तो खोटा स्वप्न न होवे, जिस रीतिसें अछा धर्ममय स्वप्न देखे, इसी रीतिसें सोवे, जे कर कदाचित् उसका आयु समाप्तिजी हो जावे, तोजी वो अछी गतिमें जावे.

तथा सूतां पीछें रात्रिमें जब जाग जावे, तदा अनादि कालका अन्यास रससें कदाचित् काम पीडा करे, तब स्त्रीके शरीरका अशुचिपणा विचारे, अरु श्रीजंबूस्वामी तथा थूलिनद्रादि महा रुषियोंका तथा सुदर्शनादि महा श्रावकोंकी डुष्कत शील पालनेमें दृढता विचारे, तथा कषायादि दोषके जीतनेका उपाय जो नवस्थिति अत्यंत डुःखदाता है, धर्म मनोरथ इनकी चिंतवणा करे, तिनमें स्त्रीके शरीरकों अपवित्रता, जुगुप्सनीयादि सर्व विचारे, जैसें श्रीहेमचंद्रसूरिजीनें योगशास्त्रमें लिखा है. तथा पूज्यश्री मुनिसुंदर सूरिजीनें अध्यात्मकल्पडुममें लिखा है, तैसें विचारे, सो लेशमात्र इहां लिखते हैं.

चाम, हाड, मज्जा, आंदरा, चरबी, नसा, रुधिर, मांस, विष्ठा, मूत्र, खेल, खंकारादि अशुचि पुजलका, पिंम स्त्रीका शरीर है, इस पिंममें तुं क्या रमणिक वस्तु देखता है? जो विष्ठेकों दूरसें देख कर लोक थूथूकार करते हैं, वेही मूढ लोक विष्टे अरु मूत्रसें पूर्ण, असें स्त्रीके शरीरकी अनिलाषा करते हैं? विष्ठेकी कोथली बहुत छिद्रोंवाली जिसके छिद्र द्वारा कृमीजाल निकलते हैं, अरु कृमीजालसें जरी है, असी स्त्री है, तथा चपलता, माया, कूड, ठगी, इनों करकें संस्कारी हुइ है, तातें जो पुरुष मोहसें इसका संग करे, जोगविलास करे, तिसकों नरकके तांइ है, असी स्त्री विष्ठेकी कोथली जिसकें इग्यारों द्वारोंसें अशुचि जरती है, जिस द्वारकों सूंघो,

उसीमें मद्दा सडे हूये कुत्तेके कलेवर समान दुर्गंध आती है, तो फेर कामीजन क्यों कर उन स्त्रीके शरीरमे रागाध होते है? इत्यादि स्त्रीके शरीरकी अशुचि विचारे, वो पुरुषकों धन्य है, वो पुरुष जबुकुमार, जिसने नवपरिणीत आठ पद्मिनी स्त्री, अरु निनानवे क्रोड सौनइये जिनकमे त्याग दीया, तिसका माहात्म्य विचारे, तथा श्रीथूलिनद्र अरु सुदर्शन शेठके शीलका माहात्म्य बिचारे

कषाय जीतनेका उपाय इस तरें करे—क्रोधकों क्षमा करके जीते, मानकों नरमाइसे जीते, मायाको सरलताइसे जींते, लोनकों सतोषसे जीते, रागको वैराग्यसे जीते, द्वेषकों मित्रतासे जीते, मोहकों विवेकसे जीते, कामको स्त्रीके शरीरकी अशुचि नावनासे जींते, मत्सरको परकी सपदा देखके पीडा न करनेसे जीते, विषयकों सयमसे जीते, अशुन मन, वचन, अरु काया इन तीनोंकों तीन गुप्तिसे जीते, आलसको उद्यमसें जींते, अविरतिपणाकों विरतिपणासे जींते, इस प्रकार करकें यह सब, सुखसे जीते जाते है, आगेंनी बहुत महात्माउने इनकों इसी तरे जीता है

नवस्थिति महादुःखरूप है, क्योंकि चारों गतिमे जीव नाना प्रकारके दुःख पा रहे है, तिनमे नरकगतिमे तो सातों नरकोमे क्षेत्रवेदना है, तथा पांच नरकोंमे परस्पर शस्त्रों करकें उदीरी वेदना है, तथा तीन नरकमे परमाधार्मिक देवताकृत वेदना है आख मीचके उघाडे, इतना कालनी नरकवासी जीवोको सुख नहीं है निःकेवल दुःखही पूर्व जन्मका करा हूआ पापोसे उदय हूआ है. रात, अरु दिन, एक सरीखे दुःखसें जाते है, जितना नरकगतिमें जीव दुःखको पावे है, उससे अनतगुणा दुःख निगोदमे जीव पावे है, तथा तिर्यचगतिमें अकुश, पराणा, लाठी, सोटा, शृंगमोडन, गलमोडन, तोडन, छेदन, नेदन, दहन, अकन, परवशादि, अनेक दुःख पावे है. तथा मनुष्य गतिमें गर्न, जन्म, जरा, मरण, नानाप्रकारकी पीडा, रोग, व्याधि, दरिद्रता, माता, पिता, स्त्री, पुत्रका मरणादि अनेक दुःख पावता है, तथा देवगतिमे चवनका दुःख, दासपणेका दुःख, परानव, ईर्ष्यादि अनेक दुःख है, इत्यादि नवस्थिति विचारे

तथा धर्ममनोरथ नावना सो श्रावकके घरमे जो ज्ञान, दर्शन, व्रत सहित मे दासनी हो जाऊं, तोनी अच्छा है, परतु मिथ्यादृष्टिमे चक्रवर्ती राजानी

न होउं? तथा कब मैं संविज्ञ सो संवेगी वैराग्यवंत गीतार्थी गुरुके चरणोमें स्वजनादि संग रहित प्रव्रज्या ग्रहण करुंगा? तथा कब मैं तिर्यंचके पिशाचके नयसें निःप्रकंप हो कर श्मशानादिमें विधिपूर्वक कायोत्सर्ग करुंगा? तथा कब मैं तपसें कृश शरीर हो कें उत्तम पुरुषोंके मार्गमें चलुंगा? इत्यादिक नावनासें कामके कटककों जींते॥ इति श्राद्धविधि ग्रंथानुसार रात्रिकृत्यं॥

अथ श्रावकका पर्वकृत्य लिखते हैं. पर्व जो अष्टमी, चतुर्दशी आदिक दिवस, तिसमें धर्मकी पुष्टि करे तिसका नाम पौषध है, सो पौषधक नजे व्रतवाले श्रावककों पर्वके दिनमें अवश्य करनां चाहियें, जे कर पर्वके दिन शरीरमें शाता न होवे तदा पौषध न कर सके, तो दो वार प्रतिक्रमणां करे, तथा बहुत वार सामायिक अरु दिशावकाशिक व्रत अंगीकार करे, तथा पर्वदिनोमें ब्रह्मचर्य पाले, आरंन वर्जे, विशेष तप करे, चैत्यपरिवाडी करे, सर्वसाधुउकों नमस्कार करे, तथा सुपात्रदान, देवपूजा अरु गुरुनक्ति, यह सर्व, और दिनोंसें विशेष करे, धर्मकरणी तो सर्वदिनोमें करणी अछी है, जे कर सदा न करी जावे, तो पर्वके दिन तो अवश्यमेव करणी चाहियें सो, पर्व ये हैं. अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी, अमावास्या, यह एक मासमें छै पर्व, अरु पक्षमें तीन पर्व, तथा दूज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, यह पांच तिथि, तीर्थंकरोनें कही है. उसमें दूजके दिन दो प्रकारका धर्म आराधना करनां. पंचमीके दिन ज्ञानकों आराधनां, अष्टमीकों अष्टकर्मका नाश करणां, एकादशीमें इग्यारह अंगकों आराधनां, चतुर्दशीकों चौदह पूर्वकों आराधनां, यह पांच तथा पूर्वोक्त अमावास्या अरु पूर्णमासी एवं षट् पर्व हूये. अरु वर्षमें छै अठाइ पर्व है चौमासी पर्वादि पर्वोमें जेकर सर्वथा आरंन न त्याग सके, तो स्वल्प स्वल्पतर आरंन करे. तथा पर्वके दिन सर्व सचित्ताहार वर्जे, श्रावककों तो नित्यही सचित्ताहार वर्जनां चाहियें, जेकर शक्ति न होवे, तदा पर्वके दिन तो अवश्य वर्जे, तथा ऐसें पर्वके दिनोंमें स्नान, शिर दिखाने, गूंथन करानां, वस्त्र धोनां, वस्त्र रंगनां, गाडा हलादि चलानां, धान्यका मूढक बंधनां, कोल्हु, अरहट्ट चलानां, दलनां, कंडनां, पीषणां, पत्र, पुष्प, फल तोडनां, सचित्त खडी हरमजीका मर्दन करनां, धान्य काढनां, लींपनां, माटी खोदनी तथा घर बनानां, इत्यादि आरंन सर्व यथाशक्तिसें त्यागनां चाहियें,

तथा सर्व सचित्ताहार न त्याग सके, तो नाम लेकें कितनीक वस्तु खानेकी छूट रखे, उपरांत त्याग देवे तथा छेहो अठाइयोमे जिनवर पूजा करना, तप करना. ब्रह्मचर्य पालना, छेहों अठाइयोमे चैत्र तथा आसोजकी यह जो दो अठाइ है, सो शाश्वती है, इन दोनोमे वैमानिक देवताजी नंदी श्वरादिमे यात्रोत्सव करते है, तथा तीन चौमासेकी तीन अठाइ अरु चौथी पर्यूषणकी तथा दो चैत्र अरु आसोजकी, यह सब मिल कर छे अठाइ है.

तथा तिथि जो प्रजातसमय प्रत्याख्यानकी वेलामे होवे, सो जैनमतमे माननी प्रमाण है, सूर्योदय अनुसारे लोकमेजी दिनका व्यवहार होनेसे माननी प्रमाण है, तथा च निशीथजाष्ये ॥ चउमासी अ वरीसे, पख्खिय पंच ठमीसु नायवा ॥ ताउ तिहिउ जासि, उदेइ सूरो न अन्नाउ ॥ १ ॥ पूआ पच्चख्खाण, पडिक्कमणं तहय नियम गहण च ॥ जीए उदेइ सूरो, तीए तिहिए उ कायव ॥ २ ॥ उदयम्मि जा तिहि सा, पमाणमिअरी कीरमाणी ए ॥ आणाजंगणवडा, मिछत्त विराहण पावे ॥ ३ ॥ अस्यार्थ – चौमासी, संवत्सरी, पख्खी, पचमी, अष्टमी, ये तिथिया सूर्योदयमे होवे, तब प्रमाण है, नान्यथा पूजा, पडिक्कमणा, प्रत्याख्यान, तैसेंही नियम ग्रहण करना सो जिस तिथिमे सूर्योदय होवे, तिसमे करना चाहियें, जो तिथि सूर्योदयमे होवे, सो प्रमाण है, तथा उदय तिथि विना जो कोइ और तिथि करे, माने, सो आज्ञाका विराधक, अनवस्था कारक, मिथ्या दृष्टि है पाराशरस्मृत्यादिमेजी लिखा है ॥ श्लोक ॥ आदित्योदयवेलाया, या स्तोकापि तिथिर्जवेत् ॥ सा संपूर्णेति मतव्या, प्रजुता नोदयं विना ॥१॥ उमास्वातिवाचकप्रघोषश्चैव श्रूयते ॥ क्षये पूर्वा तिथि कार्या, वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ॥ श्रीवीरज्ञाननिर्वाण, कार्यं लोकानुगैरिह ॥ २ ॥

तथा श्रीअर्हंतोंके जन्मादि पचकल्याणकके दिनजी पर्व है, जब दो, तीन, कल्याणक होवे, तब तो विशेष करके पर्व मानना चाहियें, शास्त्रो में सुनते है, कि श्रीकृष्ण वासुदेव सर्व पर्व आराधनेमे अपणेको असमर्थ जान कर श्रीनेमिनाथ अरिहतकों पूछता हूआ कि, उत्कृष्ट पर्व कौनसा है? तब जगवान् कहते जये कि हे कृष्ण वासुदेव! मगसिर शुक्ल एकादशी, यह पर्व सर्वोत्तम है, क्योंकि इस दिन श्रीजिनेंद्रोंके पाच कल्याणिक जये है, सर्व क्षेत्रोंके मेढ सौ कल्याणिक हूये है, तब श्रीकृष्ण वासुदेवने

मौन पौषधोपवास करकें तिस दिनकों माना, तबसेंही "यथा राजा तथा प्रजा." यह रीतिसें सब लोक एकादशी माननें लगे, सो आज तांइ प्रसिद्ध हैं.

तथा दूज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, इन तिथियोंमें प्रायः जीवोंका परनवायु बंधता है, इस वास्ते इन तिथियोंमें विशेष धर्मकरणी करे, तथा पर्वके महिमाके प्रनावसें अधर्मी निर्दयादिन्नी धर्मी अरु दयावान् हो जाता है, कृपणन्नी धन खरच देते हैं, कुशीलन्नी सुशील हो जाते हैं. वो जयवंत रहो, कि जिसने संवत्सरी, चातुर्मासी आदि अहे पर्व कथन करे हैं, क्योंकि जो अनार्योंके चलाये पर्व हैं, तिनमें आग जलानां, जीव मारने, रोनां, पीटनां, धूल उमानी, वृक्षोंके पत्रादि तोडने, इत्यादि नाना प्रकारके पाप होते हैं, अरु जो पर्व, परमेश्वर अरिहंतने कहे हैं, उनमें तो निःकेवल धर्मकृत्यही करनां कहा है, इस वास्ते पर्वदिनमें पौपधादि करे, पौषधके नेद, अरु विधि, यह सब श्राद्धविध्यादि शास्त्रोंसें जान लेनां ॥ इति

अथ चौमासिककृत्य विधि लिखते हैं, चौमासेमें विशेष करकें नियम व्रत परिग्रह परिमाण करनां चाहियें, वर्षा (चौमासेमें) बहुत जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते विशेष नियमादि करनां चाहियें, वर्षादमें गाडा चलानां, तथा हल फेरनां न करे, तथा राजादन, अर्थात् क्षिरनी आंबादिमें कीडे पड जाते हैं, सो न खाने चाहियें, देशोंका विशेष अपनी बुद्धिसें समऊ लेनां, तथा नियमन्नी दो तरेंके है, एक सुनिर्वाह, दूसरा डुर्निर्वाह, तिनमें धनवंतोंकों व्यापार, अरु अविरतियोंकों सचित्तका त्याग, रसका त्याग, तथा शाकका त्याग करनां, अरु सामायिकादि ये अंगीकार करनां, यह डुर्निवाह है. अरु पूजा, दान, महोत्सवादि सुनिर्वाह है, अरु निर्धनोंकों इस्सें विपरीत जान लेनां, तथा चित्त एकाग्र करनां. यह तो सर्वहीकों डुःष्कर है, इनमें डुर्निर्वाह नियम न हो सके तो सुनिर्वाह नियम अंगीकार करे, तथा चौमासेमें ग्रामांतर न जावे, जे कर निर्वाह न होवे तो जिस गाममें अवश्य जानां है, तिसकों वर्जके और जगें न जावे, सर्व सचित्तका त्याग करे, निर्वाह न होवे, तो परिमाण करे, तथा दो, तीन वार जिनराजकी अष्टप्रकारी पूजा करे, संपूर्ण देववंदन सर्व जिन मंदिरोंमें जिनबिंबोंकी पूजा वंदना करनी, स्नात्रपूजा महामहोत्सव, प्रजावनादि करे, गुरुकों बृहत्‌वंदना तथा और साधुओंकों प्रत्येक वंदनाकरे, च

तुर्विंशतिस्तवका कायोत्सर्ग करे, अपूर्वज्ञान पढे, गुरुकी वैय्यावृत्य करे, ब्र
ह्मचर्य पाले,अचित्त पाणी पीवे,सचित्तका त्याग करे, बासी, विदल, रोटी,
पूरी, पापड, वडी, सूका साग, पत्ररूप हरिया साग, खारक, खजूर, द्राक्ष,
खाम, छुंहयादि यह सर्व, नीली फूलण, कुंथुआदि लट कीडे पडनेसे खाने
योग्य नहि रहते है, इस वास्ते इनका त्याग करे, कदाचित् औषधादि
विशेष कार्यमे लेनी पडे, तो सम्यग्रीतिसे शोधकें लेवे, तथा खाट,
स्नान, शिरगुंदाना, दातण, पगरखा, इनका त्याग करे, तथा भूषण, वस्त्र
रगनेका निषेध करे, तथा घर, हाट, भीत, स्तंन, खाट, पाट,पट्टक,पट्टिका,
छींका, अरु घृत तैलादिकका वासण, इंधन धान्यादि सर्व वस्तुमें नीली
फूली हो जाती है, तो इसकी रक्षा वास्ते पहिलांही चूना आदि खार
लगा देवे, मैल दूर करे, धूपमे न गेरे, शीतल स्थानमे रख देवे, तथा दि
नमें दो तीन वार जल छाणे, स्नेह, गुड, छाछ प्रमुखके वासणका मुख
यत्नसें ढककें रक्खे, तथा उसामणका अरु स्नानका पाणी, जहा जीव न
होवे, तहा पृथक् पृथक् भूमिमे थोडा थोडा गेरे, तथा चूला अरु
दीपक प्रमुख उघाडा न छोडे, तथा खमनां, पीसना, राधनां, वस्त्र भा
जन धोने, इत्यादि कामो देख कें यत्नसे करे, तथा जिनमंदिर अरु धर्म शा
लाको समरार्कें रक्खे,तथा यथाशक्ति उपधान तप प्रतिमा मासादि वहै,तथा
कषाय अरु इंद्रियको जीते, तथा योगशुद्धि तप, वीशस्थानक तप, अमृत
अष्टमी तप, एकादशांग तप, चौदह पूर्वतप, नमस्कार तप, चौवीश तीर्थंक
रके कल्याणिक तप, अक्षयनिधि तप, दमयंती तप, भद्रमहाभद्रादि तप,
संसारतारण अठाइ तप, पक्ष मासादि विशेष तप करे, तथा रात्रिकों
चतुर्विध आहार, त्रिविध आहार त्याग करे, पर्वदिनमें विकृति त्यागे, पर्व
दिनमें पौषधोपवासादि करे, तथा निरतर पारणेमे अतिथिसंविभाग करे,
चातुर्मासिक अभिग्रह पूर्वाचार्योनें इस तरेसे लिखा है, ज्ञानाचारमे, दर्श
नाचारमें, चारित्राचारमे, तपआचारमे, तथा वीर्याचारमें इत्यादि अनेक प्र
कारका अभिग्रह करे, सो इस रीतिसे है —ज्ञानाचारमे शक्ति अनुसारें सूत्र
पढे, सुने, चिंते, तथा शुक्ल पचमीको ज्ञानकी पूजा करे, तथा दर्शनाचारमें
काजा काढे अर्थात समार्जना करे, देहरेमें लीपे, गुहली करे मांडली करे,
चैत्यजिनप्रतिमाकी पूजा करे, देववदना करे, जिनबिंबोंकों निर्मल करे,

तथा चारित्रमें जूयांकी यत्ना करें, बनस्पतिमें कीडे पडे खार न देवे, इंध नमें, जलमें, अग्निमें, धान्यमें जीव होवे, तिनकी रक्षा करे, किसीकों क लंक न देवे, कठिन बचन न बोले, रूखा वचन न बोले, तथा देवकी अरु गुरुकी सोगंद न खावें, किसकी चुगली न करे, किसीके अवर्णवाद न बोले, माता पितासें छाना काम न करे, निधान तथा पडा हूआ धन देख कें जैसें शरीर और धर्म न बिगडे, तैसें करे, दिनमें ब्रह्मचर्य पाले, रात्रिकों स्वदारासें संतोष करे, तथा धनधान्यादि नव प्रकारके परिग्रहका इच्छा प रिमाण व्रत करे, दिशावकाशिक व्रत करे, तथा स्नानका, उवटनेका, वि लेपनका, आभरणका, फूलका, तंबोलका, बरासका, अगरका, केशरका, क स्तूरिका, इतनी भोगनेकी वस्तुओंका परिमाण करे. तथा मंजीठ, लाख, कुसुंभा, नील, इनसें रंगे वस्त्रोंका परिमाण करे, तथा रत्न, वज्र, नील मणि, सुवर्ण, रूपा, मोती प्रमुखका परिमाण करे, तथा जंबीर, जंबरूद, जंबू, राजदन, नारंगी, शंतरा, बीजोरां, काकडी, अखोड, बदाम, कोठफल, टींबरू, बिल, खजूर, द्राक्ष, दाडिम, उत्तिजका फल, नालिअर, अंबली, बोर, बीलूक फल, चीभडा, चीभडी, कयर, कर्मदां, भोरड, निंबू, आंबली अथाणा (आचार) तथा अंकूरिया हूआ नाना प्रकारके फूल, पत्र, सचित्त, बहुबीजा, अनंतकाय, इतनी वस्तु वर्जे, तथा विगय अरु विगयगतका परिमाण करे, तथा वस्त्र धोनेका, लीपणेका, हल वाहनेका, स्नानकी व स्तुका परिमाण करे, तथा खंडनां, पीसनां, इत्यादिकका परिमाण करे, कूवी साख न देवे, तथा पाणीमें कूदनां अरु अन्न रांधनेका परिमाण करे, व्या पारका परिमाण करे, चोरीका त्याग करे, तथा स्त्रीके साथ संभाषण क रनां, स्त्रीकों देखनां त्यागे, तथा अनर्थदंड त्यागे, सामायिक, पौषध करे, अतिथिसंविभाग करे, इन सर्व वस्तुओंका प्रतिदिन परिमाण करे, तथा जि नमंदिरकों देखे, तथा जिन मंदिरकी वस्तुकी सार संभाल करे, पर्वमें तप करे, उजमणे करे, धर्मके वास्ते मुखवस्त्रिका अरु पाणीका छलनां देवे, तथा औषधी देवे, साधर्मीवत्सल यथाशक्तिसें करे, गुरुकी विनय करे, मास मा समें सामायिक करे, वर्षमें पौषध करे ॥ इत्यादि ॥ इति श्राद्धश्राविका चातु र्मासिक नियमस्वरूप कथनं समाप्तं ॥

अथ श्रावकोंका वर्षकृत्य द्वादश द्वारों करी लिखने हे

१ प्रथम संघपूजा करे, सो स्वद्रव्यकुलादि अनुसारें बहुत आदर मानसे साधु साध्वी योग्य निर्दोष वस्त्र, कंबल, पूंछणा सूत, ऊन, पाणीका पात्र, तुंबकादि, दंम, दंमिका, सूइ, कागद, दवात, लेखिनी, पुस्तकादिक, श्रीगुरुको देवे, औरनी जो संयमका उपकारी उपकरण होवे, सोनी देवे, ऐसेही प्रातिहारक, पीठ, फलक, पट्टिकादि सर्व साधुओंको देवे, ऐसेंही श्रावक, श्राविकारूप संघको नक्ति यथाशक्तिसे पहरावणादि करके सत्कार करे, देवगुरुके गुण गाने वाले गंधर्वादिक याचकोकोनी यथोचित दान देवे, संघकी पूजा तीन प्रकारकी हे, एक जघन्य, दूसरी मध्यम, तीसरी उत्कृष्ट, तिसमे सर्वदर्शन सर्व संघको करे,सो उत्कृष्टी पूजा, तथा सूत मात्रादि देवे, तो जघन्य पूजा, तथा शेष सर्व मध्यम पूजा है, तहा अधिक खरच करनेकी शक्ति न होवे, तो गुरुको सूत, मुखवस्त्रिका देवे, तथा एक दो तीन श्रावक श्राविकाकों सोपारी प्रमुख वर्ष वर्ष प्रत्ये देवे, इस रीतिसे संघ पूजा करे, तो निर्धनकोनी महा फल है ॥ यत ॥ संपत्तौ नियमाशक्तौ,सहन यौवने व्रत ॥ दारिद्र्ये दानमप्यल्प,महालाभाय जायते॥१॥

२ दूसरी साधर्मिक वात्सल्य करे,सो सर्व साधर्मीयोंकी अथवा कितनेककोंकी यथाशक्ति यथायोग्य नक्ति करे,तथा पुत्रके जन्मोत्सवमे, विवाहमे, तथा और किसी कार्यमे पहिलें तो साधर्मियोंको निमंत्रणा करकें विशिष्ट नोजन, तांबूल, वस्त्रानरणादि देवे, तथा किसी साधर्मीको कोइ कष्ट पडे, तब अपणा धन खरचके उसका कष्ट दूर करे,जे कर कोइ साधर्मी निर्धन होवे, तो धनसे सहाय करे, परदेशसे देशमे पहुचावे, तथा धर्मसें सीदताको जैसें बने तैसे स्थिर करे, जे कर कोइ साधर्मी प्रमादी होवे, तो तिसकों प्रेरणादि करे, साधर्मीयोंको विद्या पढावे, पूछना, परिवर्त्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथामें यथायोग्य जोडे, तथा धर्मकरणे वास्ते साधारण पौषधशालादि करावे, तथा श्राविकाके साथनी श्रावकोंवत् वात्सल्य करे, क्योंकि श्राविकानी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शील संतोष वाली होती हे तथा सधवा विधवा जो जिनशासनमे अनुरक्त होवे, वो सर्वको साधर्मिकपणे माननां चाहियें, तिसकानी माताकी तरे बहिनकी तरे बेटीकी तरे हितकरनां चाहियें, बहुत करके राजाका तो अतिथि संविनाग व्रत साधर्मींवा

त्सल करनेसेंही हो सका है, क्योंकि मुनिकों तो राजपिंम लेनाही नहीं है. तिस वास्ते श्रीनरतचक्री, तथा दंमवीर्य राजादिकोंनें असेही करा है, तथा श्रीसंनवनाथ अर्हतके जीवनें तीसरे नवमें धातकीखंम ऐरावतक्षेत्रमें क्षेमापुरी नगरीमें विमलवाहनराजाने महा डुर्भिक्षमें सकल साधर्मिकादिकोंकों नोजनादिक देनेसें तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन करा है, तथा देवगिरि मांमव गढमें शाह जगतुसिंहने तथा थिरापड़ नगरमें श्रीमाल आनूने तीन सौ साठ साधर्मियोंकों धन देकें अपणे तुल्य करा, तथा शाह सारंगादि अनेक पुरुषोने वडा वडा साधर्मिवात्सल्य करा है ॥ इति ॥ २ ॥

३ तीसरी यात्राविधि कहते हैं, वर्ष वर्षमें जघन्यसें एक यात्रा तो अवश्य करनी चाहियें, यात्राजी तीन तरेंकी है, एक अठाइयात्रा, दूसरी रथयात्रा, तीसरी तीर्थयात्रा, तिसमें अठाइमें विस्तार सहित सर्व चैत्यपरिवाडी करे, इसका नाम चैत्ययात्राजी कहते हैं, तथा रथयात्रा श्रीहेमचंद्रसूरिकृत परिशिष्ट पर्वमें जैसी सांप्रतिराजाने करी है, तैसें करे, तथा महापद्मचक्रवर्त्तीने जैसें माताके मनोरथ पूरणे वास्ते करी है, तैसें करे,तथा जैसी कुमारपाल राजाने रथयात्रा करी तैसें करे ॥ इति ॥ ३ ॥

तीसरी तीर्थयात्राका स्वरूप लिखते हैं, तहां श्रीशत्रुंजय रैवतादि तीर्थ तथा तीर्थकरोंके जन्म, दीक्षा, ज्ञान, निर्वाण, अरु विहारजूमि, यह सर्व अनूत नव्यजीवोंकों शुननावका संपादक है, इस वास्ते संसारसें तारणेंका कारण होनेसें इसकों तीर्थ कहना चाहियें. तिन तीर्थोंमें जानेसें सम्यक्त्व निर्मल होता है, अब जिनशासनकी उन्नति करनेके वास्ते जिस विधिसें यात्रा करे, सो विधि यह है,किः—चलनेके स्थानसें ले कर यात्रा करे, तहां तक, एक वार नोजन करे, दूसरा सचित्त परिहार, तीसरा नूमिशयन, चौथा ब्रह्मचारी, पांचमा सर्व सामग्रीके हूयेनी पगें चलनां, उठा सम्यक्त्वधारी पणां. तथा यात्रा वास्ते राजासें आज्ञा लेवे, विशिष्ट मंदिरोकों सजावे, विनय बहुमान सहित स्वजन और साधर्मियोंकों बुलावे,तथा गुरुकों साथ ले जाने वास्ते निमंत्रणा करे, अमारी ढंढेरा फिरावे, मंदिरमें महापूजा महोत्सव करावे, खरची रहितोंकों खरची देवे, वाहन विनाकों वाहन देवे, निराधारोंकों यथायोग्य आधार देवे, सार्थवाहकी तरें डौंमी फिराकें लोकोंकों उत्साहवंत करे, तथा आमंबर सहित बडा चरु, घडा,

थाल,डेरा,तंबू,कडाहिया साथ लेवे,चलता कूपादिककों सज करे, तथा गाडा, सेजवाला रथ, पर्यंक, पालखी,ऊंट,घोडा प्रमुख साथ लेवे, तथा श्रीसंघकी रक्षा वास्ते बडे योधोंको नौकर रखे, योधोकों कवच अंगकादि उपस्कर देवे, तथा गीत, नाटक वाजित्रादि सामग्री मेलवे, तथा अछे मुहूर्त्तमे, शुभ शकुनमे प्रस्थान (चलना) करे, भोजनादिसे श्रीसंघका सत्कार करके संघप तिका तिलक देवे,आगे पीछें रखवाला रखे, संघके चलने उतरणेका संकेत करे, तथा संघवालोंकी गाडी आदिक टूट जावे, तो समरा देवे, अपणी शक्तिअनुसार सर्वसंघकों सहाय देवे, तथा गाम नगरमें जहां जिनमंदिर आवे, तहां महाध्वज देवे, चैत्यपरिवाडी आदि बडा महोत्सव करे, जी र्णचैत्यका उद्धार करे, तथा जब तीर्थको देखे, तब सुवर्ण, रत्न, मोती आदिकसे वर्द्धापना करे, लापसी, लड्डु प्रमुखका लाहणा करे, तथा साध र्मिवात्सल्य, यथोचित दान देवे, बडे उत्सवसे जब तीर्थको प्राप्त होवे, तब प्रथम हर्षपूजा धन चढावे, तथा अष्टोपचारविधि, स्नात्रमालोद्घट्टन, घीकी धारा देवे, पहरावणी मोचन करे, तथा नवांगजिनपूजन, फूलघर कदलीघरादि महापूजा करे, डुकूलादिमय महाध्वज देवे, मागनेवालोंकों नाही न करे, तथा रात्रिजागरण नाना प्रकारके गीतनृत्यादि उत्सव करे, तथा तीर्थोपवास छठ प्रमुख तप कोडि लाख अक्षतादि विविध प्रकारका उजमणा ढोवे, तथा नाना प्रकारकी वस्तु फल एक सौ आठ चौवीश, बयासी, बावन, बहत्तरादि ढोवे सर्व भक्ष्य भोजनके थाल ढोवे, डुकूलादि मय चंडुवा पहरावणी करे, तथा अंगलूहणा दीपक, तेल, धोती, चंदन, केसर, कस्तूरी, चंगेरी (छावडी) कलश, धूपधाणा, आरति, आभरण, प्रदीप, चामर, भृंगार, स्थाल, कचोलक, घंटा, झालरी, पडहादि विविध प्रकारके वाजित्र देवे, देहरी करावे, कारीगरोंको सत्कार देवे, तीर्थके वि गडे कामको समरावे, सार संभाल करे, तीर्थके रक्षकोंको बहु सन्मान देवे, जैनके भगतोंको, दीनोंको, उचित दान देवे, तथा सार्धर्मिवात्सल्य गुरुभक्ति करे, इस रीतिसे यात्रा करके तैसेही पीछा फिरे,वर्षादि तक तीर्थ व्रत करे ॥ इति यात्राविधि ॥ इति यात्रात्रयस्वरूप समाप्तम् ॥३॥

॥ अथ स्नात्रविधिर्लिख्यते ॥ मंदिरमें स्नात्र महोत्सवमें घृतका मेरु

करे, अष्ट मांगलिक नैवेद्यादि ढोवें, बहुत बहुत जातिवंत चंदन, केसर, पुष्प, अंबरादि ल्यावे, सकल श्रावकसमुदाय मेले, गीत नृत्यादि आडंबर रचावे, डुकूलादि महाध्वज देवे, प्रौढाडंबरसें प्रभावनादि. निरंतर तथा पर्वदिनमें करे, जेकर निरंतर अथवा पर्वदिनमेंभी न कर सके, तोभी वर्षमें एक वार तो अवश्य करे. स्नात्र महोत्सवमें स्वधनकुलप्रतिष्ठादि अनुसारें सर्वशक्तिसें करे, जिनमतका महा उद्योत करे ॥इति स्नात्रविधिः॥४॥

तथा देवद्रव्यकी वृद्धि वास्ते प्रतिवर्ष मालोद्घट्टन करे, इंद्रमाला तथा और मालाभी यथाशक्ति करे, ऐसेंही पहरावणी, नवीन धोती, विचित्र प्रकारका चंडुआ, अंगलूहणां, दीपक, तेल, जातिवंत केसर, चंदन, बरास, कस्तूरी प्रमुख चैत्योपयोगी वस्तु, प्रतिवर्ष यथाशक्तिसें देवे ॥५॥

तथा सुंदर अंगी, पत्रभंगी, सर्वांगाभरण, पुष्पगृह, कदलीगृह, पूतली, पाणीके यंत्रादिककी रचना करे, तथा नाना गीत नृत्यादि उत्सवसें महापूजा रात्रि जागरण करे ॥ ६ ॥ ७ ॥

तथा श्रुतज्ञानकी पुस्तकादिककी पूजा कर्पूरादिसें सदा सुकर है, अरु प्रशस्त वस्त्रादिकसें विशेषपूजा तो प्रतिमास शुक्लपंचमीके दिन श्रावककों करनी योग्य है, जे कर शक्ति न होवे, तोभी वर्षमें एक वार तो अवश्य करे, इसका विस्तार, जन्मकृत्यमें ज्ञानभक्ति द्वारमें लिखेंगे॥८॥

तथा पंचपरमेष्ठि नमस्कार, आवश्यकसूत्र, उपदेशमाला, उत्तराध्ययनादि ज्ञान दर्शनका तप, इत्यादिमें जघन्य एक वार उद्यापन करे, जिस्सें लक्ष्मी सफल होवे,जब जप तपका उद्यापन करे,तब चैत्य उपर कलशारोपण करे, फल चढावे, अक्षत पात्रके मस्तक उपर अक्षत देवे, जैसें भोजन उपर तांबूल देते हैं, तैसी तरें यहभी जान लेनां. यह उपधान, उद्यापनविधि, शास्त्रांतरसें जान लेनी ॥ इति उद्यापनविधिः ॥ ९ ॥

तथा तीर्थकी प्रभावना वास्ते वाजे गाजे प्रौढाडंबरसें गुरुका प्रवेश करावे, यह व्यवहारभाष्यमें कहा है, क्योंकि इस्सें जिनमतकी प्रभावना होती है, तथा यथाशक्ति श्रीसंघका बहुमान करणां, तिलक करणां, चंदन, बरास, कस्तूरी प्रमुखसें विलेपन करे, तथा सुगंधि फूल, भक्तिसें नालियरादि विविध तांबूलप्रदानरूप भक्ति करे, क्योंकि शासनकी उन्नति करनेसें तीर्थंकर गोत्र उपार्जन करता है, यह कथन ज्ञातासूत्रमें है ॥ १० ॥

तथा गुरुके योग मिले हूए जघन्यसेंजी एक वर्षमें एक वार आलोचना लेवे, अपणे करे हूए सर्व पापकों गुरुके आगे कह देवे, पीछें गुरु जो प्रायश्चित्त देवे, सो लेवे, फेर उस पापकों न करे, तिसका नाम आलोचना लेनी है, ऐसी श्राद्धजितकल्पादिमे विधि लिखी है पक्ष पीछें, चार मास पीछें, एक वर्ष पीछें, उत्कृष्ट बारा वर्ष पीछें, निश्चेही आलोचना करे, अपणा शल्य काढनेंको क्षेत्रसे सात सौ योजन, अरु कालसें बारा वर्ष तक गीतार्थ गुरुका अन्वेषण करे, तथा जिस गुरुके आगे आलोचना करे, सो गुरु कैसा होवे ? सो लिखते है गीतार्थ होवे, मन, वचन, काया स्थिर होवे, चारित्रवत होवे, आलोचना ग्रहणमें कुशल होवे, प्रायश्चित्तका जाणकार होवे, विषाद रहित होवे, ऐसा गुरु होवे, सो आलोचना प्रायश्चित्त देनें योग्य होता है

तिनमें गीतार्थ उसकों कहते है, कि जो १ निशीथादि छेद शास्त्रोंका मूलपाठ, निर्युक्ति, जाष्य, चूर्णी, इनका जानकार होवे, तथा ज्ञानादि पंचाचार युक्त होवे, तथा २ आधारवत आलोचितपापका धारणे वाला होवे, ३ आगमादि पांच व्यवहारका जानने वाला होवे, तिसमेंजी इस कालमे तो जितव्यवहार मुख्य है, तिसका जानने वाला होवे, ४ प्रायश्चित्त आलोचककी लज्जा दूर करानेवाला होवे, ५ आलोचककी शुद्धि करने वाला होवे, ६ आलोचकके पापकर्म, औरके आगे न कहे, ७ जैसे वो आलोचक निर्वाह कर सके, तैसे प्रायश्चित्त देवे, ८ जो प्रायश्चित्त न करे, तिसको इस लोक अरु परलोकका जय दिखावे, यह आठ गुण युक्त गुरु होता है

साधुने तथा श्रावकने १ प्रथम तो अपणे गछमे गछके आचार्य आगे, २ तदयोगे (तदजावे) उपाध्यायके पास, ३ तदजावे प्रवर्त्तकके पास, ४ तदजावे स्थविरके पास, ५ तदजावे गणावछेदकके पास, स्वगछमे इन पाचोंके अजावसे सजोगी एकसमाचारी वाले गछांतरमे पूर्वोक्त आचार्यादि पाचोंके पास क्रमसे आलोचे, तिनकेजी अजावसे असजोगी संवेगी गछमें पूर्वोक्त क्रमसे आलोचे, तिनकेजी अजाव हूआ गीतार्थ पार्श्वस्थके पास आलोचे, तिसके अजावसे गीतार्थ सारूपीके पास आलोचे, तिसके अजावे पश्चात्कृतके पास आलोचे, सारूपी उसको कहते है, कि

जो शुक्लवस्त्रधारी होवे, शिरमुंडित, अबद्धकच्छ, रजोहरण रहित, ब्रह्मचारी, स्त्रीरहित भिक्षावृत्ति होवे, अरु जो सिद्धपुत्र होता है, सो शिखा सहित. अर्थात् चोटी सहित, स्त्री सहित होता है. तथा जो पश्चात्कृत होता है, सो चारित्र छोडकें गृहस्थके वेषवाला होता है. आलोचनाके अवसरमें पार्श्वस्थादिककोंभी गुरुकी तरें वंदना करे. क्योंकि विनयमूल धर्म है, इस वास्ते वंदना करे, जे कर वो पार्श्वस्थादिक अपणे आपकों गुणहीन जान कर वंदना न करावे, तब तिसकों आसन उपर बेठा कर प्रणाम मात्र करकें आलोचना लेवे. तथा पश्चात्कृतकों इत्वर सामायिक आरोपण लिंग दे कर पीछेसें उसके पास यथाविधिसें आलोचना लेवे, तथा पार्श्वस्थादिकके अभावें जहां राजगृहादि गुणशील चैत्यादिकमें जहां श्री अर्हंत गणधरादिकोंने बहुत वार प्रायश्चित्त लोकोंकों दीया है, सो तहां रहनेवाले देवतानें देखा है, वास्ते तिस देवताकों अष्टमादि तपसें आराधकें तिसके आगें आलोचे, कदाचित् वो देवता चव गया होवे. अरु उसकी जगे और उत्पन्न हूआ होवे, तदा वो देवता महाविदेहके अर्हंतकों पूछकें प्रायश्चित्त देवे, तिसके अभावें अर्हंत प्रतिमाके आगें आलोचे, आप प्रायश्चित्त लेवे. तिसके अभावें पूर्वोत्तर मुख करकें अर्हंतसिद्धोंके समक्ष आलोवे, परंतु शल्य न रखे. आलोचना करनेवाला पुरुष, मायारहित बालककी तरें सरल हो कर आलोवे. जो कोइ किसी कारणसें आलोचना न करे, वो आराधक नहीं है.

आलोचना करनेवाला दश दोष वर्जके आलोचना करे, सो दश दोषका नाम लिखते हैं. १ गुरुकों वैयावृत्तादिकसें खुशी करकें पीछें आलोवे, जिस्सें वो गुरु थोडा प्रायश्चित्त देवे, २ यह गुरु थोडा दंड देता है. ऐसें अनुमान करकें आलोवे, ३ जे दूसरोंने देखा होवे, सो आलोवे, परंतु जो अपणा कीया अपराध दूसरा कोइने न देखा होवे, उसकों न आलोवे, ४ बादर दोषकों आलोवे, परंतु सूक्ष्म दोषकों न आलोवे, ५ सूक्ष्मदोष आलोवे, परंतु बादर दोष न आलोवे, ६ अव्यक्त स्वरसें आलोवे, ७ जैसें गुरु समझे नहीं, ऐसें रौला करकें आलोवे, ८ आलोचा हूआ बहुतोंकों सुणावे, ९ अव्यक्त अगीतार्थके पास आलोवे, १० अपराध जो गुरुने कहा होवे, तिसही अपणे अपराधकों आलोवे, यह दश दोष हैं.

आलोचना करनेमें जो गुण होता है, सो कहते है. जैसें बोजा उ
गने वाला नारके दूर हूए हलका होता है, तैसा पापसे वो हलका हो
जाता है. तथा पापरूप शल्य दूर हो जाता है, प्रमोद उत्पन्न होता है,
आत्मपरके दोषोसे निवृत्ति तिसकों देखकें औरनी आलोचना करेंगे, सर
लता होती है, शुद्ध हो जाता है, वो दुष्कर कामके करने वाला है,
क्योंकि दोषको सेवना तो दुष्कर नहीं है, किंतु आलोचना प्रकाश क
रना, यह दुष्कर है, तथा श्री तीर्थंकरकी आज्ञाका आराधक होता है,
निःशल्य होता है, आलोचनावालेको ये गुण होते हैं यह आलोचना
विधि श्राद्धजितकल्पसूत्रवृत्तिके अनुसारे लीखा है, आलोचना करनेसें
बाल, स्त्री, यति हत्यादि पाप तथा देवादिद्रव्यनक्षण पाप, तथा राज
पत्नी गमनादि महापापनी सम्यक्रीतिसे आलोवे, गुरुदत्त प्रायश्चित्त करे,
तो दूर हो जाते है, नहीं तो दृढपरिहारि प्रमुख उसी नवमें मोक्ष कैसें
जाते ? इसी वास्ते वर्ष वर्ष प्रति चौमासे चौमासे आलोचना लेवे ॥ इति
श्राद्धविध्यनुसारे वर्षकृत्य सपूर्णम् ॥

अथ जन्मकृत्य, अठारह द्वारो करके लिखते है १ तिसमें प्रथम
उचित द्वार है, सो पहिला तो उचित योग्य वसनेका स्थान करे, जहां
रहनेसे धर्म, अर्थ अरु काम, तीनोंकी सिद्धि होवे, तहा श्रावकको वास
करना चाहिये क्योंकि और जगे वसनेमे दोनो नव विगड जाते है, नी
लपल्लीमे, चारोके गाममे, पर्वतके किनारे, हिंसक लोकोमें, दुष्ट लोकोंमे,
धर्मीलोकोके निंदकोमे, इत्यादि स्थानमे वास न करे, परंतु जहा जिन
चैत्य होवे, जहा मुनि आते होवे, जहा श्रावक वसते होवे, जहां बुद्धि
मान् लोक स्वनावसेंही शीलवान् होवे, जहा प्रजा धर्मशील होवे, बहुत
जल, इंधन, होवे, तहा वास करे जेसा अजमेरके पास दर्पपुर नगर था,
ऐसे नगरमे रहनेसे धनवंत, गुणवंत अरु धर्मवंतकी सगतिमें विनय, वि
चार, आचार, उदारता, गंभीरता, धैर्य, प्रतिष्ठा आदि गुणकी प्राप्ति होती
है, धर्मकृत्यमें कुशलता प्रगट होती है, इस वास्ते वुरे गामोमें चाहो धन
प्राप्ति होवे, तोनी वास न करे ॥ उक्तं च ॥ यदि वाञ्छसि मूर्खत्व, ग्रामे वस
दिनत्रय ॥ अपूर्वस्यागमोनास्ति, पूर्वाधीतं [illegible] ॥१॥

उचितस्थानभी स्वचक्र, परचक्र, [illegible] दुर्भिक्ष, मारी,(हैजा)

प्रजाविरोध, अन्नादि वस्तुक्षय, इत्यादि कारण हो जावे, तो तत्काल छोड जानां चाहियें, नहीं तो त्रिवर्गकी हानी हो जावेगी, जैसें आगें तुरकोंके भयसें लोक दिल्लिकों छोडकें गुजरातादि देशोमें जानेसें सुखी औ धनी हूए हैं, तथा क्षितिप्रतिष्ठित, चनकपुर, रूषभपुर, प्रमुखके उजडनेकी व्यवस्था जान लेनी, सो इस रीतिसें है किः– क्षितिप्रतिष्ठित उजडकें चनकपुर वसा, अरु चनकपुर उजडके रूषभपुर वसा, अरु रूषभपुर उजडके राजगृह वसा, तथा राजगृह उजडके चंपा वसी. अरु चंपा उजडकें पाडलीपुत्र अर्थात् पटना वसा. ऐसें श्रावकभी पूर्वोक्त हानी जाने तो नगरकों छोडकें और जगें जा कर वसे.

तथा रहनेका घरभी अछे पडोसीयोंके पास करे, परंतु वेश्या, तिर्यंच, भिक्षाचर, श्रमण, बौद्ध, तापसादि ब्राह्मण, मशाण, कोटवाल, माछी, जूआरी, चोर, नट, नचानेवाला, भाट, कुकर्मी, इत्यादिकोंके पडोसमें घर हाट न लेवे, न वसे, जे कर देहरेके पास रहे, तो हानी होवे, तथा चौंकमें, धूर्त्तकें अरु प्रधानके पास रहे, तो धन अरु पुत्र दोनोंका क्षय होवे. तथा मूर्ख, अधर्मी, पाखंडी, पतित, चोर, रोगी, क्रोधी, चंमाल, मदोन्मत्त, गुरुतल्पग, वैरी, स्वामीवंचन, लोभी, तथा रूषि, स्त्री, अरु बालहत्या करनेवाला. इतने लोक जे कर अपणां भला चाहे, तोभी इनकें पडोसमें न रहे, क्योंकि इनकी संगतिसें गुणहानी प्रमुख अनेक उपद्रव होते हैं, इस वास्ते इनके पडोसमें न रहे.

तथा भला स्थान वो होता है, कि जहां हड्डीका शल्य न होवे, राख न होवे, जहां घास उगती होवे, भला वर्ण, गंधवाली मिट्टी होवे, मीठा जल होवे, खोदतां धन निकले, वो जगा शुभ है. तथा जो भूमि, शीत कालमें उष्ण स्पर्शवाली होवे, अरु उष्ण कालमें शीतस्पर्शवाली होवे. वो जगा बहुत शुभ है. एक हाथमात्र भूमि पहिलां खोदकें फेर तिस मट्टी करकें पीछें वो खाड भरे, जे कर मट्टी अधिक रहे, तो श्रेष्ठभूमि जाननी, अरु जो मट्टी बराबर रहे, तो समानभूमि जाननी, अरु मट्टी उंणी हो जावे तो नेष्टभूमि जाननी,तथा सौ पग चाले इतने कालमें जिस भूमिकामें पाणी न सूके, सो उत्तम भूमि जाननी, अरु जे कर सौ पग चाले, इतने कालमें एक अंगुली भर पाणी शोष होवे, तो मध्यम भूमि जाननी,

अरु एक अंगुलीकेभी उपरांत पाणी शूके, तो अधमभूमि जाननी, तथा पक्षांतरमे जिस भूमिके खातमे फूल गेरे, वो फूल जे कर शूके नही, तो उत्तम भूमि जाननी, अर्द्ध शूके, तो मध्यमभूमि जाननी, अरु सर्व शूक जावे, तो अधम भूमि जाननी, तथा जिस भूमिमें व्रीहि बोइ हुई तीन दिन पीछें उगे, तो उत्तम, पांच दिन पीछें उगे तो मध्यम, अरु सातदिन पीछें उगे, तो हीन भूमि जाननी

सर्पकी वंबी उपर घर बनावे, तो रोग होवे, पोली भूमि उपर घर बनावे, तो निर्धन होवे. शल्ययुक्त भूमि उपर घर बनावे, तो मरण पावे, मनुष्यका हाड अरु केशका शल्य होवे, तो मनुष्योंकी हानी करे खरका शल्य होवे, तो राजा प्रमुखका भय होवे, श्वानका हाड होवे, तो बालक मरण पावे, बालकका हाड होवे, तो गृहस्वामी परदेशमे उजड जावे, गौका शल्य होवे, तो गौरूप धनकी हानी होवे, मनुष्यके केश तथा कपाल अरु भस्म होवे, तो मरण देवे

तथा प्रथमप्रहर अरु पश्चिम प्रहर वर्जके शेष प्रहरमें वृक्षकी अरु ध्वजाकी छाया घर ऊपर पडे, तो दुखदायी है, अर्हतके मंदिरके पीछें न वसे, ब्रह्मा और कृष्णके पास न रहे, चंडिका और सूर्यके सन्मुख रहे नही, महादेवके तो किसी पासेंभी न रहे, कृष्णके वामे पासे अरु ब्रह्माके दाहिणे पासे न रहे, निर्माल्य (स्नानका पाणी) ध्वजकी छाया, विलेपन वर्जे, जिनमंदिरके शिखरकी छाया अरु अर्हतकी दृष्टि होवे, तहा न वसे तथा नगर अथवा गामके ईशान कोणमे घर न बनावे, बनावे, तो ऊंच जातिवालेकों दुखदायी है

घर बनावे, तो पूरा मोल देवे, पडोसीको दुख न देवे, घर लेती वखत किसीकों दुख न देवे, ऐसेही ईट, काष्ठ, पाषाण प्रमुख वस्तु निर्दोष, दृढ, बलवान्, अरु जो नवीन होवे, सो योग्य मोल दे कर लेवे, सो विक्रय होती होवे, तिसका योग्य मोल दे कर लेवे, परंतु आप ईट पचावा न लगावे, तथा जिनप्रासादादिककी ईटादि न ग्रहण करे, क्योंकि शास्त्रमेभी कहा है, जो देहरा, कूवा, वावडी, मसाण, मठ, अरु राजाके मंदिर, इनके पाषाण, ईट, काष्ठकों, सरसों मात्रभी वर्जे, क्योंकि इनका

पाषाणके, स्तंभ, पीढ, पट्टा, द्वार, शाखा, ये सर्व गृहस्थके घरमें, विरोध कारी हैं, अरु धर्मके स्थानमें सुखदायी हैं.

तथा पाषाणमय घरमें काष्ठके स्तंभ, अरु काष्ठमय घरमें, पाषाणके स्तंभ, मंदिरमें तथा घरमें बनानां वर्जे, तथा हलका काष्ठ, कोल्हुका काष्ठ, गाडेका .काष्ठ, अरहटका काष्ठ, चरखेका काष्ठ, कांटेवाले वृक्षका काष्ठ, पंच उंबरका काष्ठ, थोहरका काष्ठ, ये काष्ठ घरमें न लगावे, तथा बीजोरा, केला, दाडिम, वेरी, जंबीरी, हलद, आंबलीकी कर अरु धतूरा, इतनेका काष्ठ वर्जे, तथा इन वृक्षोंकी जड पडोसमें घरमें प्रवेश करे, अ थवा इनकी छाया घरमें पडे, तो कुलका नाश करे, तथा पूर्वदिशिकी तरफ घर उंचा होवे,तो धनका नाश करे,तथा दक्षिणदिशें उंचा होवे,तो धनकी वृद्धि करे, पश्चिमदिशें उंचा होवे, तो धनादिकी वृद्धि करे, उत्तर दिशिमें होवे, तो उजड जावे, तथा जो गोल घर होवे, बहुत कूणे वाला होवे. अ थवा एक कूणा दो कूणा तीन कूणा होवे. अरु दक्षिण वामी तरफ लंबा होवे, ऐसे घरमें न वसे. तथा जिस घरके कवाड स्वयमेव उघडे अरु भिडे वो घर सुखकारी नहीं.

तथा घरके द्वार आगें कलशादि चित्राम होवे, तो शुभ है, तथा रं गली, नाटारंभ, भारत रामायणका युद्ध, राजाओंका युद्ध, ऋषियोंका च रित्र, देवचरित्र, ये चित्राम करानां, घरमें शुभ नहीं, तथा फलवृक्ष, फूली वेल, सरस्वती, नवनिधान, यक्षस्तंभ, लक्ष्मीदेवी, कलश, वर्द्धमान, चौ दह स्वप्नावलि, ये चित्राम करानां शुभ है.

तथा खजूर, दाडिम, केलां, कोहला, बीजोरां, ये जिसघरमें उगे, उस घरका नाश करते हैं, वटवृक्ष उगे तो लक्ष्मीका नाश करे, कांटावाला वृक्ष उगे, तो शत्रुका भय करे, वडे फल वाला वृक्ष उगे, तो संतानका नाश करे, इन वृक्षका काष्ठभी वर्जे, तथा कोइ शास्त्र ऐसा कहता है किः— घरके पूर्व वडवृक्ष होवे, तो अछा है, दक्षिणपासें उदुंबरवृक्ष शुभ है, प श्चिमभागें पीपल, उत्तरपासें प्लीक्षणवृक्ष अछा है.

तथा घरमें पूर्वदिशिमें लक्ष्मीका घर करे, अग्निकोणमें रसोइ करे, द क्षिणदिशिमें शयनको जगा करे, नैऋतकोणमें शस्त्रशाला करे, पश्चिम दिशें भोजनक्रिया करे, वायुकोणमें अन्न संग्रह करे, उत्तर पासें जल र

खनेका स्थान करे, ईशानकोणमे देवगृह करें, तथा दक्षिणपासें अग्नि, पाणी, गाय, वायु, दीवेकी भूमि बनावे, तथा वामे पासें भोजन, धान्य, द्रव्य, वाहन, देवताकी भूमि करे, यह पूर्वादि दिशा सो घरके दरवाजेकी अपेक्षासे जाननी ठीकवत् नतु सूर्यापेक्षा

तथा घर बनानेवाले सूत्रधार मजूर प्रमुखकों बोले प्रमाणसें कछुक अधिक मजूरी देवे, इसमें शोभा है, गृहस्थकों चाहिये वैसा घर बनावे. परतु व्यर्थ बडा घर न बनावे, क्योंकि उसमे व्यर्थ धन खरचना है, घरका द्वार, मर्यादासे योग्य जाणकें रखे क्योंकि बहुत दरवाजे बनानेसे दुष्ट जनोके आने जानेसें स्त्री अरु धनका नाश हो जाता है, तथा दरवाजेका किवाड दृढ बनावे, साकल अर्गलादिसे सुरक्षित करे, किवाडभी सुखें खुल जावे, ऐसे बनावे, भीतमे भोगल रखनेसे पचेंद्रिय जीवकी विराधना होती है, किंवाड भेडे, तब यत्नसे भेडे ऐसे प्रणाला खालादिकाभी यथाशक्तिसे उद्यम करे,इसी तरे देश, काल, स्वविभव उचित स्वजाति उचित घर बनाकें विधि सहित स्नात्रपूजा, साधार्मिकवात्सल्य, सघपूजा करकें भले मुहूर्तमे भले शकुनमें प्रवेश करे, तो बहुत सुखदायी होवे, त्रिवर्गकी सिद्धिका हेतु होवे ॥ इति प्रथम उचितद्वार ॥ १ ॥

२ दूसरा विद्याद्वार कहते है विद्या सो लिखित, पठित, वाणिज्यादि कलाका ग्रहण करे, अर्थात् अध्ययन करे, क्योंकि जो विद्या नही शीखता है, सो मूर्ख रहता है, पग पगमे पराभव पाता है, अरु विद्यावान् परदेशमेंभी माननीय होता है, इस वास्ते सर्व प्रकारकी कला शीखनी चाहिये. क्या जाने क्षेत्र कालके विशेषसे किस कलासे आजीविका करणी पडे ? जिसने सर्वकला शीखी होवे, उसनेभी पूर्वोक्त सात प्रकारकी आजीविकामेसे जिस करके सुखें निर्वाह होवे, सो आजीविका करणी जेकर सर्वकला शीखने समर्थ न होवे, तब जिस कलासे अपना सुखें निर्वाह होवे, अरु परलोकमे अच्छी गति होवे, सो कला शीखे, पुरुषको दो वातें अवश्य शीखनी चाहिये, उसमें एक तो जिस्से सुखे निर्वाह होवे सो, अरु दूसरी जिस्से मरके अच्छी गतिमे जावे,यह दो वातें अवश्य शीखनी २

३ तीसरा विवाहद्वार. सो विवाहभी त्रिवर्गशुद्धिका हेतु होनेसे उचित ही करणा चाहिये, विवाह अन्यगोत्रवालेसे करना चाहिये, तथा समान

कुल,सदाचारादि,शील, रूप, वय, विद्या, धन, वेष, भाषा, प्रतिष्ठादि गुणों करकें जो आप समान होवे, तिसके साथ विवाह करे, अन्यथा अवहेलना, कुटुंब, कलहादि अनेक कलंक उत्पन्न होते हैं, श्रीमतीवत् सामुद्रिक शास्त्रोक्त शरीरके लक्षण अरु जन्मपत्रिका देखकें वर कन्याकी परीक्षा करकें विवाह करे, तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ इंद्रवज्रावृत्तं ॥ कुलं च शीलं च सनाथता च, विद्या च वित्तं च वपुर्वयश्च ॥ वरे गुणाः सप्त विलोकनीया, स्ततः परं भाग्यवशा हि कन्या ॥ १ ॥ तथा जो मूर्ख होवे, निर्धन होवे, दूर होवे, शूरमा होवे, मोक्षाभिलाषी वैरागवंत होवे, वयमें कन्यासें त्रिगुणा अधिक होवे, इनकों कन्या न देनी, तथा अतिधनवान्, अतिशीतल, अतिक्रोधी, विकलांग, अरु रोगी, इनकोंभी कन्या न देनी, तथा जो कुल जातिसें हीन होवे, माता पिता रहित होवे, स्त्री पुत्रसहित जिसके होवे, इनकोंभी कन्या न देनी, तथा जिसका बहुतोंसें वैर होवे, जो नित्य कमाकें खावे, अरु जो आलसी होवे, इनकोंभी कन्या न देनी, तथा गोत्रीयकों, जूआरीकों, कुव्यसनीकों, विदेशीकों, इनकोंभी कन्या न देनी, जो स्त्री,कपट रहित भर्त्तारके साथ वर्त्ते,देवरके साथभी कपट रहित वर्त्ते,सासुकी भक्ता होवे, स्वजनकी वत्सल होवे, भाइयोमें स्नेहवाली होवे, कमलकी तरें विकसित वदन वाली होवे,सो कुलवहू, सुलक्षणी है.

अग्नि देवताकी साखसें पाणीग्रहण करनां, तिसका नाम विवाह कहते हैं, सो विवाह लोकमें आठ प्रकारका है, एक अलंकार करकें कन्या देवे, तिसका नाम ब्राह्मविवाह है, दूसरा कन्याके पिताकों धन देकें जो कन्या विवाहे, तिसका नाम प्राजापत्य विवाह है, इन दोनो विवाहकी विधि आचारदिनकर शास्त्रसें जान लेनी, तीसरा बछडे सहित गोदान पूर्वक, सो ऋषिविवाह, चौथा जो यज्ञके वास्ते दीक्षा लेवे, उसकों जो कन्या देवे, सोइ दक्षिणा है, सो देवविवाह है, ये दोनो विवाह, लौकिकवेद सम्मत है, परंतु जैनवेदमें सम्मत नहीं हैं. क्योंकि इन दोनो विवाहोंके मंत्र, जैनवेदमें नहीं हैं, अरु ये दोनो विवाह जैनमतवालोंके मतमें करने योग्य नहीं हैं, इन पूर्वोक्त चारों विवाहोंकों लोक नीतिमें धर्मविवाह कहते हैं, पांचमा मातापिताकी आज्ञा विना परस्पर स्त्री पुरुषके रागसें जो विवाह होवे, तिसकों गांधर्व विवाह कहते हैं, छट्ठा किसी कामकी प्रतिज्ञा कराकें कन्या

देवे, सो आसुरविवाह है, सातमा जो जोरावरीसे कन्याकों ग्रहण करे, सो राक्षस विवाह है, आठमा सूती, मदोन्मत्त, बावरी, प्रमादवत, कन्याको ग्रहण करें, सो पिशाच विवाह है, इन चारोको अधर्म विवाह कहते है, जे कर वधूवरकी परस्पर रुचि होवे तदा अधर्मविवाहकोनी धर्मविवाह जानने अछी स्त्रीका लाभ होना, यह विवाहका फल है, अरु स्त्री मिल नेका फल यह है कि –अछा पुत्र उत्पन्न होवे, चित्तकी वृत्ति अनुपहत रहे, शुद्धाचार, देवगुरु, अतिथि, बधवादिका सत्कार होवे

तथा विवाहमे जो धन खरचे, सो अपणे कुल वैभवकी अपेक्षा जो कमे जैसें अछा लगे, तितना खरच करै, परतु अधिक अधिक खरचनेकी चाल न वढावे, क्योकि अधिक अधिक खरच तो धर्मपुण्यकी जगेही क रना ठीक है, विवाहादिके अनुसारे स्नात्रमहोत्सव, बडी पूजा, आदर स हित करे, रसवती ढोकन अरु चतुर्विधसघका सत्कारादि करे, क्योकि विवाहादि जो है, सो सब ससारके कारण है, इसमेसे जितना धर्ममें लग जावे, सो सफल है ॥ इति तृतीयद्वार ॥ ३ ॥

४अथ चौथा मित्र द्वार कहते है मित्र बनावे उसको गुमास्ता रखे,उसको जो सहायक होवे, उत्तमप्रकृतिवाला, साधर्मी, धैर्यवत, गंभीर, चतुर, बुद्धि मान, प्रतीतकारी, सत्यवादी,इत्यादि शुभगुण युक्त होवे,उसको मित्र बनावे॥

५ पाचमा द्वार भगवान्का मदिर बनावे सो बडा ऊचा, तोरण शिखर मडपादि मडित, भरतचक्रवर्त्यादिवत् बनावे सुवर्ण, मणि, रत्नमय तथा विशिष्टपाषाणमय, अथवा विशिष्ट काष्ठ इटमय मदिर बनावे, जेकर शक्ति न होवे, तो तृणकी कुटीभी न्यायार्जित धनसे बना कर उसमे मट्टीकी प्र तिमा बना करके पूजे, न्यायोपार्जित धनसेही जिनमदिर बनाना चा हिये, जिसने जिनभवन नहीं कराया, जिनप्रतिमा नही बनवाइ, जिनप्र तिमाकी पूजा नही करी, अरु साधुपणा नही लीया, उस पुरुषने अपणा जन्म हार दीया है जो पुरुष, शक्तिके अभावमे एक फूलसेंभी पूजा करे, तोभी वो परमपुण्य उपार्जन करता है, तो फेर जिसने दृढ, निबिड, सु दर शिलासे श्रीजिनभवन मानरहित हो करकें बनवाया है, तिसके पु ण्यका क्या कहना है? उसका तो जन्मही सफल है

जिनमदिर बनानेकी जो विधि है, सो लिखते है –भूमि अरु काष्ठादि

शुद्ध होवे, मजूरोंसें छल न करे, सूत्रधार कारीगरोंकों सन्मान देवे, तथा पूर्वें जो घर बनानेकी विधि कही, वो सर्व इहां विशेष करकें जाननी. काष्ठादि जो ल्यावे, सोजी देवाधिष्ठातावनादिसें सूका ल्यावे, परंतु अविधिसें न ल्यावे, तथा आप, ईंट पकावे, तो अच्छा नहीं, नौकरोंकों काम करने वालोंकों ठहरावसेंजी कछुक महीना अधिक देवे, क्योंकि वे लोक तुष्ट मान होकें अच्छा पक्का काम करे, अरु मंदिरादि करानेमें शुन्न परिणामके वास्ते गुरु संघ समक्ष ऐसें कहे, कि जो इहां अविधिसें पारका धन मेरे पास आया होवे, तिसका पुण्य तिसकों होवे, इसी तरें जिनमंदिर बनावे, परंतु जूमि खोदनी, पूरणी, पाषाणदलसें कपाट लाने, शिला फोडनी, चिनने प्रमुखमें महा आरंन होता है, इस वास्ते जिनमंदिर न बनानां चाहियें ? ऐसी आशंका न करनी, क्योंकि यत्नसें करकें प्रवृत्त होनेसें निर्दोष है, अरु नाना प्रतिमास्थापन, पूजन, संघसमागम,धर्मदेशना करणी, दर्शन व्रतादिककी प्रतिपत्ति, शासनप्रजावना, अनुमोदनादि, अनंत पुण्यका हेतु होनेसें तथा शुन्नोदयका हेतु होनेसें कूपके दृष्टांतसें महालाजका कारन है.

अरु जीर्णोद्धारमें ऐसी रीति है. यतः ॥ नवीनजिनगेहस्य, विधाने यत्फलं जवेत् ॥ तस्मादष्टगुणं पुण्यं, जीर्णोद्धारेण जायते ॥ १ ॥ जीर्णे समुद्धृते याव, त्तावत्पुण्यं न नूतने ॥ उपमर्दोमहांस्तत्र, स्वचैत्यख्यातिधीरपि ॥ २ ॥ तथा ॥ राय अमच्च सेट्ठी, कोडंबीएवि देसेणं काउं ॥ जिण्णे पुव्वायणे, जिणकप्पीवावि कारवई ॥ १ ॥ अर्थः— राजा, मंत्री, श्रेष्ठी, कौटंबीकोंकों उपदेश दे कर जीर्ण जिनमंदिरका उद्धार जिनकल्पी साधुजी करावे, जो जिनजवनका उद्धार करे, तिसनें जयंकर संसारसें अपणी आत्माका उद्धार करा है, ऐसा जान लेनां. जीर्णचैत्योद्धारकरणपूर्वकही नवीन चैत्य करानां योग्य है, इसी वास्ते संप्रति राजाने नवासी हजार जीर्णोद्धार कराये हैं, अरु नवीन जिनमंदिर तो छत्तीश हजारही बनवाये हैं, ऐसेही कुमारपाल राजा तथा वस्तुपालादिकोंनेजी नवीन जिनमंदिरों बनानेसें जीर्णोद्धार बहुत कराये हैं.

तथा जब चैत्य बन जावे, तब शीघ्रही प्रतिमा विराजमान करनी चाहियें ॥ यदाह श्रीहरिजद्रसूरिः ॥ जिनजवने जिनबिंबं, कारयितव्यं द्रुतं तु बुद्धिमता ॥ साधिष्ठानं ह्येवं, तद्भवनं वृद्धिमद्भवति ॥ १ ॥ देहरेमें कुंभी,

कलश, उरसा, प्रदीप, नंमार, बाग, वाडी, गाम, नगर प्रमुख राजा देवे, जैसें सिद्धराजराजाने, श्रीरैवताचल उपर श्रीनेमिनाथके चैत्य वास्ते बारा गाम दीये थे, तथा जैसें कुमारपालराजाने वीतनय पाटनके खुदानेसें त्रावापत्रमे श्रीउदयन राजाके दीये गाम निकले, सो कबूल करके दीये, तैसें देवे, श्रीजिनमंदिरके बनानेका फल यह है कि – जो यथाशक्तिसे अपणे धनके अनुसार श्रीजिनवरका नवन करावे, सो देवता जिसकी स्तुति करे, बहुत काल लग आनंद रूप, ऐसा देवविमानादिका परम सुख पावे॥५॥

६ अथ षष्ठ प्रतिमा द्वार. सो श्रीअर्हंतका बिंब, मणि, सुवर्ण, धातु, चंदनादि काष्ठ अरु पाषाण, माटी प्रमुखका पांच सौ धनुष प्रमाण यावत् अंगुष्ट प्रमाण यथाशक्तिसे बनावे, श्रीजिनप्रतिमा बनानेवालेकों फल होता है, सो कहते है ॥ श्लोक ॥ वसंततिलकावृत्त ॥ सन्मृत्तिकामलशिलातलदंतरौप्य, सौवर्णरत्नमणिचंदनचारुबिंबम् ॥ कुर्वंति जैनमिह्ये स्वधनानुरूप, ते प्राप्नुवंति नृसुरेषु महासुखानि ॥ १ ॥ आर्या ॥ दारिद्द दोहग्ग, कुजाइ कुसरीर कुगइ कुमईउं ॥ अवमाण रोग सोगा, न हुंति जिणबिंब कारीण ॥ १ ॥ अर्थ – जो जिनबिंबका कराने वाला है, सो दारिद्र, दौर्भाग्य, कुजाति, विरूप शरीर, नरक तिर्यंचकी गति बूरी बुद्धि, परवशपणा, रोगी, अरु शोकी पणाकों न पावे

तथा प्रतिमानी वास्तु शास्त्रमें कही विधिपूर्वक बनावे, सुलक्षणा संततिकी वृद्धि करनेवाली बनावे, तथा जो प्रतिमा अन्यायोपार्जित द्रव्यसे बने, दोरगादि रंगवाले पाषाणकी बने, जिसका अंग हीनाधिक होवे, सो प्रतिमा स्वपरकी उन्नतिकी नाश करने वाली है, तथा जिस प्रतिमाका मुख, नाक, नेत्र, नाभि, कटि, इतने अंग, नग होवे, तो वो प्रतिमाको मूल नायक न करना चाहियें, अरु आभरण सहित, वस्त्रसहित, परिकर सहित, लंछन सहित पूजे, तथा जिस प्रतिमाकों सौ वर्षसे अधिक वर्ष हो गया होवे, अरु आगें जो प्रभाविक पुरुषकी प्रतिष्ठी हुइ होवे, वो प्रतिमा जे कर खंडित होवे, तोभी पूजने योग्य है तथा बिंबके परिवारमे पाषाणमयमे, जेकर दूसरा रंग होवे, तो वो बिंब, सुखकारी नहीं, जो बिंब, सम अंगुल प्रमाण होवे, सो शुभ नहीं, तथा एक अंगुलसे ले कर इग्यारह अंगुल प्रमाण निंब घरमें पूजना चाहिये इस्से उपरांत प्रमा

णवाला बिंब होवे,तो प्रासादमें पूजना चाहियें. यह कथन पूर्वाचार्योंका है, तथा निरयावलिसूत्रमें कहा है,कि लेपकी,पाषाणकी, काष्ठकी, दांतकी, लोहकी प्रतिमा, परिवार अरु प्रमाण रहित होवे, तो घरमें न पूजे, तथा घरप्रतिमाके आगें नैवेद्यका विस्तार न करे, तीन कालमें निश्चयें अभिषेक करे, पूजा, भावसें करे, प्रतिमा मुख्यवृत्तिसें परिकर सहित तिलक सहित आभरण सहित करावे, उसमें मूल नायक तो विशेष करकें शोभनीक बनाना चाहियें. क्योंकि जिनप्रतिमाकी अधिक शोभा देखनेनें परिणाम अधिक उल्लासमान होनेसें अधिक निर्जरा होती है, जिनमंदिर अरु जिन प्रतिमा बनानेवालेकों अतुल्य पुण्य फल होता है,जहां तक वो मंदिर अरु प्रतिमा रहेंगे, तहां तक पुण्य फल होवे, जैसें अष्टापद उपर भरत राजाका कराया चैत्य तथा रेवतगिरि उपर ब्रह्मेंद्रका कराया कांचन बलानकादि चैत्यप्रतिमा, अरु भरतचक्रीकी अगूठीमें माणककी प्रतिमा, तथा कुल्पाक तीर्थमें माणिक्यस्वामीकी प्रतिमा कहलाती है, तथा श्री स्तंभनक पार्श्वनाथकी प्रतिमा आज लग पूजते हैं, इसी वास्ते इस चौवीसीमें पहिलां भरतचक्रीनें श्रीशत्रुंजय तीर्थमें रत्नमय चौमुख चौरासी मंरूप संयुक्त श्रीऋषभदेवका मंदिर बनवाया, पांच कोडी मुनियोंसें पुंडरीक गणधर मोक्ष पाये, ज्ञाननिर्वाणके ठिकाणेभी बनवाये, ऐसेंही बाहुबली, मरुदेवी शृंगमें तथा रेवतगिरि, अर्बुदगिरि,वैभारगिरि अरु समेतशिखरमेंभी जिनमंदिर बनवाये, प्रतिमाभी सुवर्णादिककी बनवाइ, तथा भरतराजाकी आठमी पीढीमें (पुस्तमें) दंडवीर्य राजानें तथा दूसरा सगरचक्रवर्त्यादिकोंनें तिनका उद्धार कराया, तथा हरिषेण नामक दशमे चक्रीनें श्रीजिनमंदिरमंडित पृथ्वी करी, तथा संप्रतिराजाने सवा लाख जिनमंदिर तथा सवा क्रोड जिनप्रतिमा बनवाइ, तथा आमराजा श्रावकने गोपालगिरि अर्थात् गवालियरके राजानें श्रीमहावीर अर्हंतका मंदिर एक सौ एक हाथ ऊंचा बनवाया, तिसमें साढे तीन क्रोड सोना मोहोर खरचकें सात हाथ प्रमाण ऊंची श्रीमहावीर अर्हंतकी प्रतिमा बिराजमान करी, तहां मूलमंरूपमें सवा लाख सोनइया लगाया, अरु प्रेक्षामंडपमें एकवीश लाख सोनइया खरच कर्या, तथा कुमारपाल राजानें चौदह सौ चौंतालीस (१४४४) नवीन जिनमंदिर कराये, अरु सोलां सौ मंदिर, जीर्णोद्धार क

राये, ग्रानवे क्रोड रूपइये खरचकें त्रिभुवनविहार नामा जिनमंदिर बन वाया, उसमे एक सौ पचवीश अंगुल प्रमाण अरिष्टरत्नमयी प्रतिमा बह त्तर देहरी संयुक्त अरु चौवीस प्रतिमा रत्नकी, चौवीस सोनेकी, चौवीस रूपेकी स्थापन करी, अरु चौदह नार प्रमाण एकेक चौवीसी बनवाई, तथा मंत्री वस्तुपालने तेरा सौ तेरा नवीन जिनमदिर बनवाये, औ बाइ सौ जीर्णोध्दार कराये,सवा लाख प्रतिमा, अरु सवा लाख रत्नसुवर्ण जडे ऐसे आनूषण, प्रतिमाजीके बनवाये तथा साहू पेथडने चौरासी जिनम दिर बनवाये,माधाता अरु ॐकार नगरमें तथा देवगिरिमे क्रोडों रूपक ख रचके वीरमदे राजाके राज्यमे चौरासी जिनमदिर बनवाये, तीन लाख रूप इया दानमे दीना, तथा तिसही पेथडशाहने श्रीशत्रुंजय तीर्थमे श्रीऋषन देवजीके मदिरको सुवर्णपत्रसे मढाके मेरुके शृगवत् कर दीया था, ये सर्व पूर्वोक्त मदिर, राजा अजयपालनें अरु मुसलमानोनें गारत कर दीये, शेष जो बचे बचाये रहे है,वे आजनी आबु तारगादि पर्वतों उपर विद्यमान है.

७ सातमा प्रतिमाकी प्रतिष्ठाका द्वार सो प्रतिमाकी प्रतिष्ठा शीघ्र करनी चाहियें, षोडशकग्रथमे लिखा है, कि मदिर त्यार हूआ पीछें दश दिनके अन्यतरही प्रतिष्ठा करानी चाहिये, यह प्रतिष्ठाकी विधि प्रतिष्ठाकल्प प्र मुख ग्रंथोंसें जान लेनी ॥ इति सप्तमद्वार ॥ ७ ॥

८ आठमा दीक्षा द्वार सो बडे महोत्सवसे पुत्र, पुत्री, नाइ, नत्रीजा, स्वजन, मित्र, परिजन प्रमुखको दीक्षा दिलावे, उपस्थापना करावे, तथा और दीक्षा लेनेवालोंका महोत्सव करे, ये महापुण्यका कारण है, जि सके कुलमे चारित्र धारक पुरुष होवे, सौ बडा पुण्यवान् कुल है, लौकिक शास्त्रमेंनी लिखा है कि ॥ श्लोक ॥ तावद्भ्रमति ससारे, पितर पिण्डकां क्षिण ॥ यावत्कुले विशुध्दात्मा, यतिपुत्रोन जायते ॥१॥ इति अष्टमद्वार ॥

९ नवमा तत्पदस्थापनाद्वार सो गणि,वाचनाचार्य, वाचक, आचार्यादि पदप्रतिष्ठाको शासनकी उन्नति वास्ते-बडे महोत्सवसे करे, जैसे पहिला गणधरोको शक्र (इंद्र) ने करी है, तथा मत्री वस्तुपालने एकवीश आचा र्योको पदस्थापना करी ॥ इति नवमद्वार ॥ ९ ॥

१० दशमा पुस्तक लिखावनेका द्वार सो पुस्तक जो आचारागादि कल्प सूत्र,अरु जिनचरित्रादिकोको न्यायार्जित धनसे लिखावे,अछे पत्र (कागज)

ऊपर बहुत शुद्ध सुंदर अक्षरोंसें लिखावे,तथा आप वांचे, संवेगी गीतार्थ पासों वंचावे,तथा प्रौढ प्रारंभादि महोत्सवसें दिनप्रत्यें पुस्तककी पूजा व हुमान पूर्वक व्याख्यान करावे, तिनके पढने वालोकों वस्त्र अन्नादिसें उपष्टंन करे, शास्त्र जो होते, सो दुःखम कालके प्रभावसें बारां वर्षके दु र्भिक्ष कालमें बहुत विछेद गये, अरु जो शेष रहे, सो भगवान् नागार्जुन स्कंदिलाचार्य प्रमुखोनें पुस्तकोंमें लिखे, तबसें लिखे हूए शास्त्रोंका बहुमान करने लगे, तिस वास्ते पुस्तक जरुर लिखाने चाहियें. क्योंकि जो यह विछेद हो जायंगे, तो फेर इस क्षेत्रके अनाथ जीवोंकों कोन ज्ञान देवेगा? इस वास्ते पुस्तकोंके उपर दुकूलादि वस्त्र बांधकें यत्नासें पूजने रखने चाहियें, शाह पेथडनें सात क्रोड, अरु मंत्री वस्तुपालनें अ ढारह क्रोड रूपइये खरचकें तीन ज्ञानके भंमार बनाये, तथा थिरापद्रीय संघपति आभूने अपणी माताके नामके रूपइये तीन क्रोडसें सर्वागमांकी प्रति सोनेके अक्षरोंसें लिखवाइ,शेषग्रंथ स्याहीके अक्षरोंसें लिखाये॥१०॥

११ इग्यारहवा पौषधशाला बनानेका द्वार. सो श्रावक प्रमुखोंकें पोषध करने वास्ते साधारण स्थानमें पूर्वोक्त घर बनानेकी विधिके अनुसारें ब नानी चाहियें. वो शाला समराकें अवसरमें सुसाधुके रहनेकोंभी देवे, ति सका महाफल है, श्रीवस्तुपालने नौ सौ चौरासी (९८४) पौषधशाला कराइ, सिद्धराज जयसिंह राजाके प्रधान, सांतूने अपणे रहने वास्ते बहुत सुंदर आवास कराकें श्रीवादिदेवसूरिजीकों दिखलाया, अरु मंत्रीजीने पूछा किः—कैसा आवास है? तब चेले माणिक्यने कहा कि पौषधशाला होवे तो वर्णन करियें, तब मंत्रीने कहा किः— यह पौषधशालाही होवे ॥

१२-१३ तथा बारहवां अरु तेरहवा द्वारमें आजन्म बाल्य अवस्थासें ले करजावजीव लगें सम्यक्त्वदर्शन यथाशक्तिसें पाले,यह बारहमा द्वार॥१२॥ १३ अरु यथाशक्तिसें व्रतादि पाले, यह तेरहवा द्वार ॥ १३ ॥

१४ चौदहवा दीक्षा ग्रहणका द्वार. सो श्रावक अवसर जानकें दीक्षा ग्रहण करे, तात्पर्य यह है किः—श्रावक जो है, सो निश्चय बालावस्थामें दीक्षा न लेवे, तो अपणे मनमें ठगाया हूआ माने,जैसें जगत्में अति वल्ल भ वस्तुकों लोक स्मरण करते हैं, तैसें श्रावकभी नित्य सर्वविरति लेनेकी चिंता करे, जे कर गृहवासभी पाले, तोभी औदासीन्य अलिप्तपणे अपणे

कों प्राहुणे समान समुझे, क्योंकि नावश्रावकके लक्षण सत्तरे प्रकारें कहे है, तिनका नाम कहते है.

१ स्त्रीसें वैराग्य, २ इंड्रियवैराग्य, ३ धनसे वैराग्य, ४ संसारसें वैराग्य, ५ विषयसे वैराग्य, ६ आरंन स्वरूप जाणे, ७ घरकों डुःखरूप जाणे, ८ दर्शनधारी, ९ गड्डरीप्रवाह गेडे, १० धर्ममें आगें हो कर प्रवर्त्ते, आगमानुसारे धर्ममें प्रवर्त्ते, ११ दानादिकमे यथाशक्ति प्रवर्त्ते, १२ विधिमार्गमें प्रवर्त्ते, १३ मध्यस्थ रहे, १४ अरक्तद्विष्ट, १५ असंबद्ध, १६ परहित वास्ते अर्थ कामका नोगी न होवे, १७ वेश्याकी तरे घरवास पाले, ए सत्तरे पद संयुक्त नावश्रावक होता है तिनमे १ प्रथम स्त्री जो है, सो अनर्थका नवन है, चपलचित्तवाली है, नरककी वाट सरीखी है, जाणता हूआ कामी, इसके वशवर्त्ती न होवे, २ दूसरी इंड्रियो जो है,सो चपल घोडे समान है, खोटी गतिकी तरफ नित्य दौडती है,उसकों नव्य जीव, संसारका स्वरूप जानकें सत्ज्ञानरूप रज्जु (दोरडी) से रोके, ३ तीसरा धन जो है, सो सर्व अनर्थका औ क्लेशका कारण है, इस वास्ते धनमे लुब्ध न होवे,४ चौथा संसारकों डुःखरूप डुःखफल डुःखानुबंधी विडंबनारूप जानकें प्रीति न करे, ५ पांचमा विषयका क्षणमात्र सुख है, विषय विषफल समान है, ऐसे जानकें कदापि विषयमे गृद्धित्व न करे, ६ बहा तीव्रारंन सदा वर्जे, जे कर निर्वाह न होवे, तोनी स्वल्पारंन करे, अरु आरंन रहितोंकी स्तुति करे, सर्व जीवो उपर दयावंत होवे, ७ सातवा गृहवासकों डुःख रूप, फांसी मानके गृहवासमें वसे, अरु चारित्रमोहनीय कर्मके जींतनेमे उद्यम करे, ८ आठमा आस्तिक्य नाव संयुक्त जिनशासनकी प्रनावना गुरुनक्ति करे, ऐसे सम्यग्दर्शन निर्मल धरे,९ नवमा जिस तरे बहुत मूर्ख लोक नेड (गड्डरी) प्रवाहवत् चलते होवे, तैसे न चले, परंतु जो काम करे,सो विचारके करे, १० दशमा श्रीजिनागम विना और कोइ परलोकका यथार्थ मार्ग कहनेवाला शास्त्र नही, इस वास्ते जो काम करे, सो जिनागमानुसारे करे, ११ इग्यारहवा आपणी शक्तिके बिना गोप्या चार प्रकारका दानादि धर्म करे, १२ बारहवा हितकारी, अनवद्य, धर्मक्रियाको चिंतामणि रत्नकी तरे डुर्लन जानके करता हूआ किसी मूर्खके हसनेसे लज्जा न करे, १३ तेरहवा शरीरके रखने वास्ते धन, स्वजन, आहार, घरप्रमुखमे वसे,

नोग रहे, परंतु राग, द्वेष,किसी वस्तुमें न करे, १४ चौदहवा उपशांतवृत्ति सार है, ऐसें विचारसें जो राग द्वेषमें लेपायमान न होवे, खोटा आग्रह न करे, हितका अनिलाषी मध्यस्थ रहे, १५ पंदरहवा सर्ववस्तुकों क्षणनंगुर पणा निरंतर विचारे, धनादिके साथ प्रतिबंध तजे, १६ शोलहवा संसारसें विरक्त मन होवे, क्योंकि नोग नोगनेसें आज तक कोइ तृप्त नहीं हूआ है, परंतु स्त्रीआदिके आग्रहसें जे कर नोगोमें प्रवर्त्ते, तोनी विरक्तमन रहे, १७ सत्तरहवा वेश्याकी तरें अनिलाषा रहित वर्त्ते, ऐसा विचारे की आज काल ये अनित्यसुख मुऊकों बोडने पडेंगे,इस वास्ते घरवासमें स्थिर नाव न रखे, यह सत्तरे गुण संयुक्त श्रीजिनागममें नाव श्रावक कह्या है ॥ इति धर्मरत्नशास्त्रे कथितं ॥

ऐसें शुननावना वासित प्रागुक्त दिनकृत्यादिमें रक्त "इणमेव निग्गंथे पवयणे अठे परमठे सेसे अणठे" ऐसी सिद्धांतोक्त रीतिसें वर्त्तमान सर्व व्यापारोंमें सर्वप्रयत्नसें वर्त्तता हूआ. सर्वत्राऽप्रतिबद्ध चित्त करकें क्रमसें मोह जीतने समर्थ होकें पुत्र, नाइ, नत्रीजादिककों गृहनार सौंपकें अपणी शक्तिकों देखकें अर्हत चैत्यमें अठाइ महोत्सव करकें संघकी पूजा करकें दीन अनाथोंकों यथाशक्ति दान देकें परिचित जनोंसें खामणां करकें सुदर्शन श्रेष्ठीवत् विधिसें सर्वविरति अंगीकार करे ॥ १४ ॥

१५ पंदरहवा द्वारमें जे कर दीक्षा लेनेकी शक्ति न होवे,तदा आरंनका त्याग करे, जे कर निर्वाह न होवे, तोनी सर्व सचित्ताहारादिक कितनाक आरंन वर्जे ॥ इति पंचदशं द्वारं ॥ १५ ॥

१६ शोलमे द्वारमें ब्रह्मचर्य, जावज्जीव तक अंगीकार करे, यथा शादपेथडनें बत्तीस वर्षकी अवस्थामें ब्रह्मचर्य धारण कीया ॥इति षोडश द्वारं॥

१७ सत्तरहवे द्वारमें प्रतिमादि तप विशेष करे,आदि शब्दसें संसार तारणादि तप करे, तहां इग्यारह प्रतिमाका स्वरूप इस तरें है, प्रथम रायानिओगेणादि बै आगार रहित, तथा सतशठ बोल श्रद्धादि सहित सम्यक् दर्शन नय लज्जादिसें अतिचार रहित त्रिकाल देवपूजादिमें तत्पर एक मास तक सम्यक्त्व पाले, यह प्रथम प्रतिमा, दूसरी दो मास तक अखंमित पांच अणुव्रत पाले, सोनी पीबली प्रतिमा सहित वर्त्ते, तीसरी तीन मास तक उनय काल अप्रमत्त पूर्वोक्त दो प्रतिमा सहित सामायिक करे, चौथी

चार मास तक चार पर्वोंमें पूर्वेली तीन प्रतिमा सहित अखंडित परिपूर्ण पौषध करे, पांचमी पांच मास तक स्नान न करे, रात्रिकों चार आहार वर्जे, दिनमे ब्रह्मचर्य धरे, कछ बांधे नहीं, चार पर्वोंमें घरमें तथा चौकमें नि प्रकंप होकें सकलरात्रि कायोत्सर्ग करे, यह सर्व पूर्वेली प्रतिमा सहित करें. यह बात, आगेंजी सर्व प्रतिमामे जान लेनी. उठी छे मास तक ब्रह्मचारी होवे, सातमी सात मास तक सचित्त आहार वर्जे, आठमी आठ मास तक आप आरंभ न करे, नवमी नव मास तक आरंभ करावे नही, दशमी दश मास तक क्षुरमुंडित रहे अथवा अल्प चोटी राखे, घरमे गडा हूआ धन होवे, जब घरके पूछे तब कहे जानता हूं, औ जो न गडा होवे, तो कहे मै नही जानता, शेष घरका कृत्य सर्व वर्जे, तिसके निमित्त जो घरमें आ हार कखा होय, तोजी न खावे इग्यारहवी इग्यारां मास तक घरका संग त्यागे, लोच करे, वा क्षुरमुंडित होवे, रजोहरण पात्रे प्रमुख लेके मुनिका वेष धारी हो कर स्वकुलमे निक्षा लेवे, मुखसे ऐसा कहे कि “ प्रतिमाप्रतिप न्नाय श्रमणोपासकाय निक्षा देहीति वचन कहे, ” धर्मलाज शब्द न कहे, सर्वरीतिसे साधुकी तरें प्रवर्त्ते ॥ इति श्राद्धप्रतिमा सप्तदश द्वारम् ॥ १७ ॥

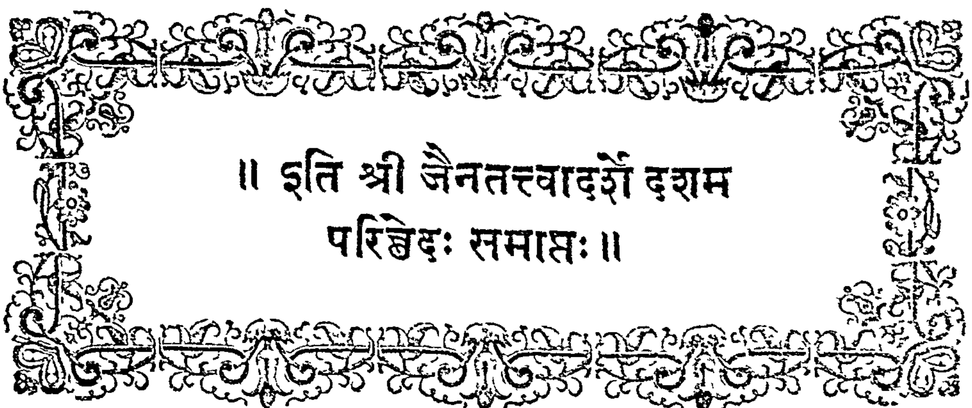
१८ अठारहवा द्वार, आराधनाका कहते है, श्रावक अंतकालमें आराधना जो आगें कहेंगे सो अरु सलेपनादिकों विधिसें करें श्रावक जब सर्वधर्म कृत्यमें अशक्त हो जावे, तब मरण निकट जानके द्रव्य अरु जावे दो प्र कारे सलेपना करे, तहा द्रव्यसलेपना तो अनुक्रमसे आहार त्यागे, अरु जावसलेपना सो क्रोधादि कषाय त्यागे, मरण निकट, इन लक्ष णोसे जान लेवे, सो लक्षण कहते है १ बूरे स्वप्न आवे, २ प्रकृति स्व जाव और तरेंका होवे, ३ डुर्निमित्त मले, ४ खोटे ग्रह आवे, ५ आ त्माका आचरण फिर जावे, अथवा कोइ देवता कह जावे तो मरण नि कट जान जावे, जो द्रव्ये जावे सलेपणा न करे, अरु अनशन कर देवे, उसको प्राये डुर्ध्यान होनेसे कुगति होती है, इस वास्ते सलेपना अ वश्य करे, पीछें श्रावकोके धर्मके उद्यापन करने वास्ते सयम अगीकार करे, क्योंकि एक दिनकीजी दीक्षा स्वर्गलोककी दाता है, जैसे नलराजाके जाई कुवेरके पुत्र सिंहकेसरी, पाच दिनकी दीक्षासे केवलज्ञान पाकें मोक्ष गया, तथा हरिवाहन राजाने नव प्रहरका शेप आयु सुनके दीक्षा लीनी.

सर्वार्थसिद्ध विमानमें गया, संथारा और दीक्षाके अवसरमें प्रनावना वास्ते यथाशक्ति धन खरचे, जैसें सात क्षेत्रोंमें ते अवसरमें थिरापद्रीय संघपति आनूने सात क्रोड धन खरच्या तथा जिसकों संयमका योग न होवे, सो संलेषना करकें शत्रुंजयादि तीर्थ सुस्थानमें जा कर निर्दोष स्थंमिलमें विधि सें चार आहार त्यागरूप अनशनकों आणंद कामदेवादि श्रावकोंवत् करे, तिस पीछे सर्वातिचारका परिहार चार सरणादि रूप आराधना करे.

आराधना दश प्रकारसें होती है, सो कहते हैं. १ पहिलां सर्वातिचार आलोवे, २ व्रत उच्चारण करे, ३ सर्व जीवोंसें क्षमावे, ४ अपणी आत्मा कों अठारह पापस्थानक करनेसें व्युत्सर्जन करे, ५ चार सरणां लेवे, ६ गमनागमन दुःकृतकी गर्हणा करे, ७ जो किसीने जिनमंदिरादि सुकृत करा होवें, तिसकी अनुमोदना करे, ८ शुनजावना जावे, ए अनशन करे, अर्थात् चार आहार तीन आहारका त्याग करे, १० पंच नमस्कारका स्मरण करे, ऐसी आराधना करणेसें जे कर तिस नवसें मुक्ति न होवें, तोजी सुदेव अथवा सुमनुष्यके आठ जव करकें तो अवश्यमेव मोक्षरूप हो जावेगा ॥ १८ ॥ इति अष्टादश द्वारं समाप्तम् ॥

इस गृहस्थके धर्म करनेसें निरंतर गृहस्थ लोक इस लोक, परलोकमें सुखकों प्राप्त होवे हैं, अरु परंपरासें मोक्षकों प्राप्त होते हैं ॥ इति श्रीश्राद्ध विधि ग्रंथानुसार श्रावकस्य जन्मकृत्यं संपूर्णम् ॥

इति श्री तपगच्छीयमुनि श्रीमणिविजयगणि तच्छिष्य मुनिश्रीबुद्धिविजय तच्छिष्य मुनिश्री मुक्तिविजयगणि तस्य लघुगुरुजातृ मुनि आत्माराम आनंद विजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे गृहस्थधर्मनिरूपणनामा दशमः परिच्छेदः॥१०॥



॥ इति श्री जैनतत्त्वादर्शे दशम परिच्छेदः समाप्तः ॥

॥ अथ एकादश परिछेद प्रारंभ ॥

इस परिछेदमें ऋषभादि महावीर पर्यंत जैनमतादि शास्त्रोके अनुसार पूर्व वृत्तांत इतिहास रूप लिखते है, क्योंकि इस ग्रथके पढने वाले यह तो जान जायंगे कि जैनी इस तरे मानते है, परतु वर्त्तमान समयमें कित नेक नव्य जीवोंकी जिज्ञासा है, कि —जैनमत कबसें यहा प्रचलित हूआ है? फिर कितनेक जीवोंकों अैसी भ्राति है कि —जैनमत बौध्मतकी शाखा है, और कितनेक कहते है कि बौध्मत जैनमतकी शाखा है, क्योंकि यह दोनो मत किसी कालमे एक थे, परतु आचार्योंके मत भेद होनेसे एक मतके जैन औ बौध यह दो मत हो गये है, तथा कोइक कहते है कि —सवत् बे सौके ६०० लग भग जैनमत हूआ है, तथा कोइ कहते है कि विष्णु भगवान्ने दैत्यके धर्मभ्रष्ट करनेको अर्हतका अवतार लीया, तथा कोइ कहते है कि मछंदर नायके बेटोनें जैनमत चलाया है, इत्यादि अनेक विकल्प करते है, परतु ये सर्व कहने दतकथा, अरु जैनमतके न जाननेका सूचक है, जैसे चर्मकार अर्थात् चमार कहते है, कि बानो और चामो दो बहिना थी, तिनमे बानीकी औ लाद, अग्रवालादि सर्व बनिये है, और चामोकी औलाद, हम चमार है इस वास्ते बनीयें और चमार एक वशके है, अब शोचना चाहियें कि चमारोकी यह कही हूइ कथा सुनकें बुध्मिान् सांच मान लेवेगे? इसी तरे जो कोइ अपणी दलीलसे वा दतकथा सुनकें जैनमतकी उत्पत्ति मानेगा, वोभी जैनीयोके आगे हसनेका स्थान बनेगा, क्योंकि प्रथम तो कोइभी मतवाला जैनमतके असली तत्त्वको नही जानता है, जैसे शकर दिग्विजयमे शकर स्वामीनें जो जैनमतका खमन लिखा है, उसको देखके हमको हासी आती है, जब शकर स्वामीने जैनमतकोही नही जाना, तो फेर जो उनका जैनमतका खमन है, सोभी अैसा जानना कि जैसे पुरु षकी छायाको पुरुष जानके तिसकों लाठीसें पीटना, जब शकरस्वामी कोही जैनमतकी खबर नही थी, तो अबके वर्त्तमान कालके गाल व जाने वालोका क्या कहना है? इस वास्ते हम बहुत नम्र हो कर ग्रथ पढने वालोसे विनति करते है कि अछी तरेंसे जैनमतको जान कर फिर

तुमनें जैनमतका खंमन मंमन करनां, नहीं तो शंकरस्वामी अरु रामानुजाचार्यादिककी तरें तुमभी हसने योग्य हो जावेंगे ?

अब सज्जनोके जानने वास्ते प्रथम इस जगत्का थोडासा स्वरूप लिखते हैं. यह जगत्कों जैनी, द्रव्यार्थिक नयके मतसें शाश्वत अर्थात् हमेशां प्रवाहसें ऐसाही मानते हैं, और इस जगत्में छ तरेका काल वर्त्तता है, तिनहीकों जैनी लोक, छै आरे कहते हैं. एक अवसर्प्पिणी काल, अर्थात् सर्व अछी वस्तुका क्रमसें नाश करता चला जाता है, तिसके छ हिस्से हैं. तथा दूसरा उत्सर्प्पिणी काल, अर्थात् सर्व अछी वस्तुकों क्रमसें वृद्धिमान् करता चला जाता है, दश कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण एक अवसर्प्पिणी काल, और इतनेही सागरोपम प्रमाण एक उत्सर्प्पिणी काल है, एक सागरोपम असंख्याता वर्षका होता है, इसका स्वरूप जैनशास्त्रसें जान लेनां. यह एक अवसर्प्पिणी अरु एक उत्सर्प्पिणी मिल कर दोनोंका एक कालचक्र, वीश कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण होता है, ऐसें कालचक्र अनंत पीछें व्यतीत हो गये हैं, और आगेंकों व्यतीत होवेंगे, अवसर्प्पिणीके पूरे हूये उत्सर्प्पिणी कालका प्रारंभ होता है, और उत्सर्प्पिणीके पूरे हूये अवसर्प्पिणी कालका प्रारंभ होता है. इसी तरें अनादि अनंत काल तक यही व्यवस्था रहेगी. अब छैहों आरोंके स्वरूप लिखते हैं.

अवसर्प्पिणीका प्रथम आरा जिसका नाम सूखमसूखम कहते हैं. सो चार कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण है. तिस कालमें भरतक्षेत्रकी भूमिका बहुत सुंदर रमणीय मार्दलके तले समान सम (बराबर) थी, उस कालके मनुष्य, भद्रक, सरलस्वभाव, अल्प राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोधादि वाले थे, सुंदर रूपवान्, नीरोग शरीर वाले थे, दश जातिके कल्पवृक्षोसें अपनें खाने पीने पहनने सोने आदिकका सर्व व्यवहार कर लेते थे, एक लडका एक लडकी दोनोका युगल जन्मते थे, जब यौवनवंत होते थे, तब दोनों बहिन और भाइ, स्त्री भरतारका संबंध कर लेते थे, उनोंके आगें ऐसेही फेर युगल होते रहे, सो पूर्वोक्त सर्व व्यवहार करते थे, जैन मतके मापेसें तीन गाऊ (कोश) प्रमाण उनका शरीर ऊंचा था, और तीन पल्योपम प्रमाण आयु था, तथा दो सौ छप्पन पृष्ठ करंमके हाड थे, धर्म करनां, और जीवहिंसा, जूठ, चोरी प्रमुख पापभी विशेष नहीं था, वृक्षोंहीमें सो रह

ते थे, जुगल जोडेनी गिणतीमें थोडे थे,बाकी (शेष) चउपाय, पक्षी, पंचे ड्रिय सर्व जातिके जीव थे, परतु वो नद्रक थे, क्षुद्रक नही थे, शालिप्रमुख सर्व अन्न तथा इक्षु प्रमुख चीजे सब जगलोंमें स्वयमेवही उत्पन्न हो जाते थे, परंतु वो कुछ मनुष्योंके खानेमे नहीं आते थे, क्योंकि मनुष्य तो नि केवल फल फूलोंकाही आहार करते थे, वस्त्रकी जगें वृक्षोंके पत्ते वा छि ल्यक उढते थे, इत्यादि प्रथम आरेका स्वरूप. जबू द्वीपप्रज्ञप्ति प्रमुख शास्त्रो सें जान लेना ॥ इति प्रथम आराका किंचित्स्वरूप कह्या ॥ १ ॥

दूसरा आरा, तीन कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण,तिसमे दो गाऊ (कोश) देहमान, दो पल्योपमायु, एक सौ अठाइ पृष्ठ करमक हाड थे, शेष व्यव हार प्रथम आरावत् जानना ॥ इति दूसरा आरक ॥ २ ॥

तीसरा आरा, दो कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण, एक गाऊ (कोश) देहमान एक पल्योपमायु, चौसठ पृष्ठ करमकी पसलीया,शेष व्यवहार प्र थम आरेवत् जाननां, इन सर्व आरोमे सर्ववस्तु क्रमसे घटती घटती छेहडे अगले आरे तुल्य रह जाती है परतु एक बारगी सर्व स्तु नही घटती है

इस तीसरे आरेके छेहडे एक वशमें सात कुलकर उत्पन्न हूए, कुल कर उसकों कहते है कि जिनोंने तिस तिस कालके मनुष्योके वास्ते कछु क मर्यादा बांधी है,इनही सात कुलकरोकों लौकिकमे सप्त मनु कहते हैं, दूसरे वंशोंके कुलकर गिनीयें, तब श्रीऋषभदेवकों वर्जके चौदह कुलकर होता है अरु ऋषभनाथ पदरहवा कुलकर होता है

पूर्वोक्त सात कुलकरोंके नाम लिखते है. प्रथम विमलवाहन, दूसरा चक्षुष्मान्, तीसरा यशस्वान्, चौथा अभिचद्र, पांचमा प्रश्रेणि, छठा मरु देव, सातमा नाभि इन सातोंकी भार्याका नाम क्रमसें कहते है, १ चद्रय शा, २ चद्रकाता, ३ सुरूपा, ४ प्रतिरूपा,५ चक्षु काता, ६ श्रीकांता, ७ मरु देवी, ये सर्व कुलकर,गगा अरु सिधु नदीके मध्यके खंडमें हुये है

यह कुल कर होनेका कारण कहते है तीसरे आरेके उतरता दश जातिके कल्पवृक्ष, कालके दोषसे थोडे हो गये, तब युगलक लोकोंनें अ पने अपने वृक्षोका ममत्व कर लीया, पीछे जब दूसरे युगलोंके रखे हूए वृक्षोंसे फल लेने लगे, तब ममत्व वाले युगल उनसे क्लेश करनें लगे, तब युगलक पुरुषोंकों ऐसा विचार आया कि कोइ ऐसा होवे, जो ह

मारे क्लेशका निवेडा करे, तब तिन युगलियोंमेंसें एक युगलकों एक वनके श्वेत हाथीनें देख कर प्रेमसें अपने स्कंध पर चढा लीया, जब वो युगल पुरुष एकला हाथी ऊपर चढकें फिरने लगा, तब और युगलोंनें विचार किया कि यह युगल, हमसें बडा है, क्योंकि यह, हाथी ऊपर चढा फिरता है, और हम तो पगोंसें चलते हैं, इस वास्ते इसकों न्यायाधीश बनाउ. अर्थात् जो यह कहे, सो मानो, तब तिनोंनें उसकों न्यायाधीश बनाया. जिस कारनसें हाथीनें युगलकों अपणे उपर चढाया है, सो कारण, और इनोंकें पूर्वजनवकी कथा आवश्यक सूत्र तथा प्रथमानुयोगसें जान लेनी.

तब तिस विमलवाहननें सर्व युगलियोंकों कल्पवृक्ष बांटके दे दीये, कितनेक युगलीये अपने कल्पवृक्षोंसें संतोष न करकें औरोंके कल्पवृक्षोंसें फल लेने लगे, तब उस वृक्षके मालक क्लेश करने लगे. पीछें तिस निःसंतोषी युगलीयेकों पकडकें विमलवाहनके पास जाते हूए, तब विमलवाहननें उनकों कहा कि हा तुमने यह क्या करा ? तबसें विमलवाहननें ऐसी दंमनीति प्रवर्त्ताइ, तिस हकार दंमनीतिसें फेर वे ऐसा काम नहीं करते थे. पीछें तिस विमलवाहनका पुत्र चक्षुष्मान् हूआ, अपने बापके पीछें वो राजा अर्थात् कुलकर बना, तिसके वखतमेंजी हाकारही दंम रहा, तिसके यशस्वान् नामा पुत्र हूआ, तिसके अजिचंद पुत्र हूआ, इन दोनोंके समयमें थोडे अपराध वालेकों हाकार दंम और बहुत टीठकों मकार दंम जो यह काम मत करनां, ये दो दंमनीति हूइ, तिसके पुत्र प्रश्रेणि हूआ, प्रश्रेणिके पुत्र मरुदेव हूआ, मरुदेवका पुत्र नाजि हूआ, ये तीनों कुलकरोंके समयमें हाकार, मकार अरु धिक्कार, ये तीन दंमनीति हो गइ. तिसमें थोडे अपराधीकों हाकार, अरु मध्यम अपराधीकों मकार, तथा उत्कृष्ट अपराधीकों धिक्कार दंम करते हूए, तिस नाजिकुलकरकें मरुदेवी नामा जार्या थी, यह नाजिकुलकर बहुजतासें इक्ष्वाकु जूमि अर्थात् विनता नगरीकी जूमिमें निवास करता था, यह जूमि, कश्मीर देशके परे थी, क्योंकि विनता नगरीके चारों दिशामें चार पर्वत थे, तिसमें पूर्वदिशिमें अष्टापद अर्थात् कैलासगिरि थे, दक्षिणदिशिमें महाशैल्य थे, पश्चिमदिशिमें सुर शैल्य, तथा उत्तरदिशिमें उदयाचल पर्वत होते.

तिस नाभिकुलकरकी मरुदेवी नामक भार्याकी कूखमें आषाढवदि चौथकी रात्रिको सर्वार्थसिद्ध देवलोकसे च्यवके ऋषभदेवका जीव, गर्भमे पुत्रपणे उत्पन्न हूआ, मरुदेवीने चौदह स्वप्न देखे, इंद्रमहाराजने स्वप्न फल कह्या, चैत्रवदि अष्टमीकों ऋषभदेवजीका जन्म हूआ,छप्पनदिग्कुमारी और चौसठ इंद्रने मिलके जन्ममहोत्सव करा, मरुदेवीने चौदह स्वप्नकी आदिमे बैलका स्वप्न देखा था, तथा पुत्रके दोनो साथलोंमे बैलका चिन्ह था, इस वास्ते पुत्रका नाम ऋषभ दीया

बाल अवस्थामे श्रीऋषभदेवकों जब भूख लगती थी, तब अपने हाथका अगूठा मुखमे लेकें चूस लेते थे उस अंगूठेमें इंद्रने अमृत संचार कर दीया था, जब ऋषभदेवजी बडे हूए, तब देवता उनको कल्पवृक्षोके फल ल्या कर देते थे, वे फल खा लेते थे,जब ऋषभदेव कूछ न्यून एकवर्षके हूए,तब इंद्र आया,हाथमे इक्षुदंड ल्याया,क्योंकि रीते हाथसे स्वामीके समीप न जाना चाहिये, इस वास्ते इक्षुदंड ल्याया, उस वखतमे श्रीऋषभदेवजी नाभिकुलकरकी गोदीमे बैठे थे, तब ऋषभदेवकी दृष्टि, इक्षुदंड उपर पडी, तब इंद्रनें कह्या के हे भगवन्! इक्षु अकु अर्थात् इक्षु भक्षण करोगे? तब ऋषभदेवजीने हाथ पसाख्या, तब इंद्रने ऋषभदेवजीका इक्ष्वाकुवंश स्थापन करा, तथा श्रीऋषभदेवजीके वंशवालोने काशकार पीया, इस वास्ते गोत्रका नाम काश्यप हूआ, श्रीऋषभदेवजीके जिस जिस वयमें जो जो काम उचित था, सो सो शक्र (इंद्र)ने करा, यह अनादिसे जो जो शक्र (इंद्र) होते है, तिनका जीतकल्प है, जो प्रथम भगवान्के वयोचित सर्वकाम करने

इस अवसरमे एक लडकी लडका बहिन और भाइ बालावस्थामे ताडवृक्षके हेठ खेलते थे, उहा ताडके फल गिरनेसे लडका मर गया, तब लडकीको नाभिकुलकरने यह ऋषभदेवजीकी भार्या होवेगी? ऐसा विचार करकें अपने पास रख लोनी, तिसका नाम सुनंदा था, और दूसरी जो ऋषभदेवजीके साथ जन्मी थी, तिसका नाम सुमंगला था, इन दोनोके साथ ऋषभदेव बालावस्थामे खेलते हूए यौवनके प्राप्त हूए, तब इंद्रने विवाहका प्रारंभ करा, आगे युगलके समयमे विवाहविधि नहीं थी, इस वास्ते यह विवाहमें पुरुषके कृत्य तो सर्व इंद्रने करे, और स्त्री

योंकी तर्फसें सर्वकृत्य इंद्राणीयोनें करे, तहांसें विवाहविधि जगत्में प्रच लित हूई, तब श्रीऋषभदेव दोनों भार्यांके साथ सांसारिक विषयसुख भोगता, जब छै लाख पूर्व, वर्ष व्यतीत हूए, तब सुमंगला राणीके भरत और ब्राह्मी यह युगल जन्मे, तथा सुनंदाके बाहुबली और सुंदरी यह युगल जन्मे, पीछेसें सुनंदाके तो और कोइ पुत्र पुत्री नहीं जन्मे, परंतु सुमंगला देवीके उणपंचास (४ए) अर्थात् एक कम पंचास जोडे पुत्रों हीके जन्मे. यह सब मिल कर सौ पुत्र और दो पुत्रीयों,श्रीऋषभदेवके अपत्य अर्थात् पुत्र पुत्री हूए हैं.

तिन सौ पुत्रके नाम लिखते हैं. १ भरत, २ बाहुबली, ३ श्रीमस्तक, ४ श्रीपुत्रांगारक, ५ श्रीमल्लिदेव, ६ अंगज्योति, ७ मलयदेव, ८ भार्गव तार्थ, ए बंगदेव, १० वसुदेव, ११ मगधनाथ, १२ मानवार्त्तिक, १३ मानयुक्ति, १४ वैदर्भदेव, १५ बनवासनाथ, १६ महीपक, १७ धर्मराष्ट्र, १८ सायकदेव, १ए आस्मक, २० दंमक, २१ कालिंग, २२ ईषकदेव, २३ पुरुषदेव, २४ अकल, २५ भोगदेव, २६ वीर्यभोग, २७ गणनाथ, २८ तीर्णनाथ, २ए अंबुदपति, ३० आयुवीर्य, ३१ नायक, ३२ काक्षिक, ३३ आनर्त्तक, ३४ सारिक, ३५ ग्रहपति, ३६ करदेव, ३७ कच्छनाथ, ३८ सुराष्ट्र, ३ए नर्मद,४० सारस्वत, ४१ तापसदेव, ४२ कुरु, ४३ जंगल, ४४ पंचाल, ४५ शूरसेन, ४६ पुट, ४७ कालंगदेव, ४८ काशीकुमार, ४ए कौशल्य, ५० भद्रकाश, ५१ विकाशक, ५२ त्रिगर्त्त, ५३ आवर्ष, ५४ सालु, ५५ मत्स्यदेव, ५६ कुलियक, ५७ मुषकदेव, ५८ वाल्हीक, ५ए कांबोज, ६० मधुनाथ, ६१ सांद्रक, ६२ आत्रेय, ६३ यवन, ६४ आभीर, ६५ वानदेव, ६६ बानस, ६७ कैकेय, ६८ सिंधु, ६ए सौवीर, ७० गंधार, ७१ काष्ठदेव, ७२ तोषक,७३ शौरक, ७४ भारद्वाज, ७५ शूरदेव, ७६ प्रस्थान, ७७ कर्णक, ७८ त्रिपुरनाथ, ७ए अवंतिनाथ, ८० चेदिपति, ८१ विष्कंभ, ८२ नैषध, ८३ दशार्णनाथ, ८४ कुसुमवर्ण, ८५ भूपालदेव, ८६ पालप्रभु, ८७ कुशल, ८८ पद्म,८ए महापद्म,ए० विनिद्र, ए१ विकेश, ए२ वैदेह,ए३ कच्छपति, ए४ भद्रदेव, ए५ वज्रदेव, ए६ सांद्रभद्र, ए७ सेतज, ए८ वत्सनाथ,एए अंगदेव, १०० नरोत्तम,यह ऋषभ देवके सौ पुत्रोंका नाम जानना.

इस अवसरमें जीवोंके कषायों प्रबल हो जानेसें पूर्वोक्त हकारादि तीनो

दमका लोक नय नही करने लगे, इस अवसरमें लोकोने सर्वसें अधिक ज्ञानवानादि गुणों करके सयुक्त श्रीरूषजदेवको जानके युगलक लोक, श्रीरूषजदेवको कहते हूए कि अबके सब लोक दंमका नय नही करते है? श्री रूषजदेवजी गर्नमेंनी मति, श्रुत, अरु अवधि, यह तीन ज्ञानों करकें सयुक्त थे, यह श्रीरूषजदेवजीके पूर्वनवोंका वृत्तात आवश्यक तथा प्रथमानुयोगसें जान लेना, तब श्रीरूषजदेव वो युगलक पुरुषोकों कहते नये कि जो राजा होता है, सो दंम करता है, और राजा जो होता है, सो मत्री कोटवालादि सेना सयुक्त होता है, अरु कृताजिषेक होता है, फेर उसकी आज्ञा अनतिक्रमणीय होती है, ऐसा वचन सुन कर, वे मिथुनक बोले कि ऐसा राजा हमारानी हो जावे? तब रूषजदेवजी बोले जो तुमारी मनसा ऐसी है, तो नाजिकुलकरसें याचना करो, पीछें तिनोनें नाजिकुलकरसे विनति करी, तब नाजिकुलकरने कहा, जाउ रूषजदेवजी तुमारा राजा हूआ, तब वे मिथुनक, रूषजदेवको राज्याजिषेक करने वास्ते पद्मिनी सरोवरमे गये, इस अवसरमे इंद्रका आसन कपमान हूआ, तब अवधिज्ञानसे राज्याजिषेकका अवसर जानके यहा आ कर श्रीरूषजदेवको राज्याजिषेक करा, मुकुटादि सर्व अलंकार जो कुछ राजाके योग्य थे, सो पहिराये, इस अवसरमे मिथुनक लोक पद्मसरोवरसे नलिनीकमलोमें पाणी ल्याये, उनोने आ कर जब श्रीरूषजदेवजीको अलंकृत देखा, तब सननोने चरणो उपर जल गेर दीया, तब इंद्रने मनमे चिंता करी कि ये बडे विनीत पुरुष है, ऐसा जान कर वैश्रमणको आज्ञा दीनी कि इन विनीतोके रहने वास्ते विनीता नामा नगरी वसाउ, तब विनीता नगरी वैश्रमणने वसाइ, इसका स्वरूप, शत्रुंजयमहात्म्यसे जान लेना

अथ सग्रहके वास्ते हाथी, घोडे, गौ प्रमुख श्रीरूषजदेवके राज्यमें वनोसे पकडे गये, तब श्रीरूषजदेवने चार प्रकारका संग्रह करा १ उग्रा, २ जोगा, ३ राजन्या, ४ क्षत्रिया, उसमे जिनको कोटवालकी पदवी दीनी, सो दमके करनेसे उग्रवश कहलाया, तथा जिनको श्रीरूषजदेवजीने गुरु अर्थात् उचे बडे करकें माने, तिनोका जोगवंश कहलाया, तथा जो श्रीरूषजदेवजीके मित्र थे उनोका राजन्यवश नाम रखा गया, तथा शेष जो रहे, तिनका क्षत्रियवंश हूआ

अथ आहारकी विधि कहते हैं, जब कल्पवृक्षोंके फलोंका अभाव हूआ,तब पक्काहारका खाना किस तरेंसें हूआ ? सो लिखते हैं. कालके प्रभावसें कल्पवृक्ष फल देनेंसें रह गये, तब लोक,और वृक्षोंके कंद, मूल,पत्र, फूल, फल, खाने लगे, केइक इक्षुका रस पीने लगे, तथा सत्तरे जातका कच्चा अन्न खाने लगे, परंतु कितनेक दिनो पीछें कच्चा अन्न उनकों जीर्ण न होनेसें रूषभदेवजीने उनकों कहा कि तुम हाथोंसें मसलकें तूतडा दूर करकें खाउ. फेर कितनेक दिनो पीछें वैसेभी पाचन न होने लगा, तो फेर दूसरी तरें कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, ऐसें बहुत तरेसें कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, तोभी कालदोषसें अन्न पाचन न होने लगा, इस अवसरमें जंगलोंमें वांसादिके घसनेसें अग्नि उत्पन्न हूआ.

प्रश्नः— तुम कहते हो कि रूषभदेवजीकों जातिस्मरण और अवधि ज्ञान था, तो फेर रूषभदेवजीने प्रथमसेंही अग्नि बनाना उस अग्निसें अन्न रांधके खानां क्युं न बतलाया ?

उत्तरः— हे भव्य ! एकांत स्निग्ध कालमें और एकांत रुक्षकालमें अग्नि किसी वस्तुसेंभी उत्पन्न नहीं हो सक्ति, कदाचित् कोइ देवता विदेहक्षेत्रसें अग्निकों लेभी आवे, तोभी यहां तत्काल बूज जाती थी, इस वास्ते अग्निसें पकाकें खानेका उपदेश नहीं दीया, पीछें तिस अग्निकों तृणादि दाह करता देखकें अपूर्व रत्न जानकें पकडनें लगे, जब हाथ जले, तब डर खा कर दौडकें श्रीरूषभदेवजीसें सर्व वृत्तांत कहा, तब श्रीरूषभदेवने अग्नि ले आनेकी विधि बताइ,तिस विधिसें अग्नि घरमें ले आये,तब हस्ती उपर बैठे हूये रूषभदेवने हाथीके शिर उपरही मिट्टिका एक कूंभासा बना कर उनोंके पास अग्निमें पका कर उसमें अन्न रांध कर खानां बताया, पीछें जिसके हाथसें वो कुंभ पकडाया वो कुंभार नामसें प्रसिद्ध हूआ,इसी वास्ते कुंभारकों प्रजापति पर्यापति कहते हैं, फेर तो शनैःशनैः सर्वतरेंका आहार पकाकें खानेकी विधि प्रवृत्त हो गइ,सर्वविधि श्रीरूषभदेवजीनेही बताइ है.

अथ शिल्पद्वार कहते हैं. श्रीरूषभदेवजीके उपदेशसें पांच मूल शिल्प अर्थात् कारीगर बने, तिसका नाम लिखते हैं. १ कुंभकार, २ लोहकार, ३ चित्रकार, ४ वस्त्र बुनने वाले, ५ नापित अर्थात् नाइ, ये पांच शिल्प

बने. यह एकेक शिल्पके अवातर भेद वीश वीश है, इस वास्ते सर्व मिल कर एक सौ शिल्प उत्पन्न हूए.

अथ कर्मद्वार लिखते है कर्मद्वारमे १ खेती करणी, वाणिज्य करणा, धनका ममत्व करणां, इत्यादि कर्म बताये प्रथम मट्टीके सचयोंमे भरके, अहरण, हथोडी प्रमुख बनाये, पीछे उनसें सर्व वस्तु काम लायक बनाइ गइ.

तथा भरतादि पर्यालोकोंको वहत्तर कला सिखलाइ, तथा स्त्रीयोंकों चौशठ कला सिखलाइ इन, सभोका नाम मात्र ऐसे है – १ लिखनेकी कला, २ पढनेकी कला, ३ गणितकला, ४ गीतकला, ५ नृत्यकला, ६ ताल बजाना, ७ पटह बजानां, ८ मृदंग बजाना, ९ वीणा बजाना, १० वशपरीक्षा, ११ भेरीपरीक्षा, १२ गजशिक्षा, १३ तुरगशिक्षा, १४ धातु वाद, १५ दृष्टिवाद, १६ मत्रवाद, १७ वलिपलितविनाश, १८ रत्नपरीक्षा, १९ नारीपरीक्षा, २० नरपरीक्षा, २१ छंदबधन, २२ तर्कजल्पन, २३ नीतिविचार, २४ तत्त्वविचार, २५ कविशक्ति, २६ ज्योतिषशास्त्रका ज्ञान, २७ वैद्यक, २८ षड्भाषा, २९ योगाभ्यास, ३० रसायणविधि, ३१ अजनविधि, ३२ अठारह प्रकारकी लिपि, ३३ स्वप्नलक्षण, ३४ इइ जालदर्शन, ३५ खेती करणी, ३६ वाणिज्य करणा, ३७ राजाकी सेवा, ३८ शकुनविचार, ३९ वायुस्तंभन, ४० अग्निस्तभन, ४१ मेघवृष्टि, ४२ विलेपनविधि, ४३ मर्दनविधि, ४४ ऊर्ध्वगमन, ४५ घटबधन, ४६ घट भ्रमन. ४७ पत्रछेदन, ४८ मर्मभेदन, ४९ फलाकर्षण, ५० जलाकर्षण, ५१ लोकाचार, ५२ लोकरजन, ५३ अफलवृक्षोको सफल करणा, ५४ खड्गबंधन, ५५ छुरी बधन, ५६ मुद्राविधि, ५७ लोहज्ञान, ५८ दात समारणे, ५९ काललक्षण, ६० चित्रकरण, ६१ बाहुयुद्ध, ६२ मुष्टियुद्ध, ६३ दंडयुद्ध, ६४ दृष्टियुद्ध, ६५ खड्गयुद्ध, ६६ वाग्युद्ध, ६७ गारुड विद्या, ६८ सर्पदमन, ६९ भूतमर्दन, ७० योग सो द्रव्यानुयोग, अक्षरानुयोग, व्याकरण, औषधानुयोग, ७१ वर्षज्ञान, ७२ नाममाला यह पुरुषोकों वहत्तर कला सिखलाइ, तिसका नाम कह्या

अब स्त्रीयोको चौशठ कला सिखलाइ, तिसका नाम कहते है, १ नृत्य कला, २ औचित्यकला, ३ चित्रकला, ४ वादित्र, ५ मत्र, ६ तंत्र, ७ ज्ञान,

८ विज्ञान, ९ दंन, १० जलस्तंन, ११ गीतगान, १२ तालमान, १३ मेघ वृष्टि, १४ फलवृष्टि, १५ आरामारोपण, १६ आकार गोपन, १७ धर्मविचार, १८ शकुनविचार, १९ क्रियाकल्पन, २० संस्कृतजल्पन, २१ प्रसादनीति, २२ धर्मनीति, २३ वर्णिकावृद्धि, २४ स्वर्णसिद्धि, २५ तैलसुरन्नीकरण, २६ लीलासंचरण, २७ गजतुरंगपरीक्षा, २८ स्त्री पुरुषके लक्षण, २९ कामक्रिया, ३० अष्टादश लिपि परिछेद, ३१ तत्कालबुद्धि, ३२ वस्तुशुद्धि, ३३ वैद्यकक्रिया, ३४ सुवर्ण रत्नन्नेद, ३५ घटन्रम, ३६ सारपरिश्रम, ३७ अंजनयोग, ३८ चूर्णयोग, ३९ हस्तलाघव, ४० वचनपाटव, ४१ नोज्य विधि, ४२ बाणिज्यविधि, ४३ काव्यशक्ति, ४४ व्याकरण, ४५ शालिखंमन, ४६ मुखमंमन, ४७ कथाकथन, ४८ कुसुमगुंथन, ४९ वरवेष, ५० सकलना षाविशेष, ५१ अनिधानपरिज्ञान, ५२ आन्नरण पहनने, ५३ नृत्योपचार, ५४ गृहाचार, ५५ शाठ्यकरण, ५६ परनिराकरण, ५७ धान्यरंधन, ५८ केशबंधन, ५९ वीणादि नाद, ६० वितंमावाद, ६१ अंकविचार, ६२ लोक व्यवहार, ६३ अंत्याक्षरिका, ६४ प्रश्नप्रहेलिका. यह स्त्रीकी चौशठ कला कही.

अबकी सर्व सांसारिक कला पूर्वोक्त कलायोंका प्रकरन्नूत है, इस वास्ते सर्व कला इनहीके अंतर्न्नाव हैं, जैसें प्रथम लिपि कलाके अठारह न्नेद दक्षिण हाथसें ब्राह्मीपुत्रीकों सिखाइ, तिसके नाम कहते हैं १ हंसलिपि, २ न्नूतलिपि, ३ यक्षलिपि, ४ राक्षसलिपि, ५ यावनी लिपि, ६ तुरकीलिपि, ७ कीरीलिपि, ८ द्राविडीलिपि, ९ सैंधवीलिपि, १० मालवीलिपि, ११ नडी लिपि, १२ नागरीलिपि, १३ लाटीलिपि, १४ पारसीलिपि, १५ अनिमित्ती लिपि, १६ चाणक्कीलिपि, १७ मूलदेवी, १८ उड्डीलिपि, यह अठारह प्रकार की ब्राह्मीलिपि, देशविशेषके न्नेदसें अनेक तरेंकी हो गइ, जैसेंकी १ ला टी, २ चौडी, ३ माहली, ४ कानडी, ५ गौर्जरी, ६ सोरठी, ७ मरहठी, ८ कोंक णी, ९ खुरासाणी, १० मागधी, ११ सिंहली, १२ हाडी, १३ कीरी, १४ हम्मीरी, १५ परतीरी, १६ मसी, १७ मालवी. १८ महायोधी, इत्यादि लिपि सिखाइ, तथा सुंदरी पुत्रिकों वाम हाथसें अंकविद्या सिखाइ, जो जगत्में प्रचलित कला है, जिनोसें अनेक कार्य सिद्ध होते हैं, वे सर्व श्रीऋषन्नदेवने प्रवर्त्ताइ हैं. तिसमें कितनीक कला कइ वार लुप्त होजाती हैं, फिर सामग्री पा कर प्रगटन्नी हो जाती हैं, परंतु नवीन विद्या वा कला कोइन्नी नहीं उ

त्पन्न होती है, जो कलाव्यवहार, श्रीऋषभदेवजीनें चलाया है, वो सर्व आवश्यक सूत्रमे देख लेनां

ब्राह्मी जो भरतके साथ जन्मी थी, तिसका विवाह बाहुबलीके साथ कर दीया, और बाहुबलीके साथ जो सुंदरी पुत्री जन्मी थी तिसका विवाह भरतके साथ कर दीया, तबसें माता पिताकी दीनी कन्याका व्यवहार प्रचलित हूआ

श्रीऋषभदेवजीने युगल अर्थात् एक उदरके उत्पन्न हूए बहिन भाइका विवाह दूर कीया, श्रीऋषभदेवकों देखकें लोकभी इसी तरें विवाह करने लगे, श्रीऋषभदेवने बहुत काल ताइ राज्य करा, प्रजाके वास्ते सर्वतरेके सुख उत्पन्न हूए, इस हेतुसे श्रीऋषभदेवको जैनीलोक, जगत्का कर्त्ता मानते है, दूसरे मतवाले जो ईश्वरकी करी सृष्टि कहते है, वेभी ईश्वर, आदीश्वर, जगदीश्वर, योगीश्वर, जगतका कर्त्ता ब्रह्मा आदि विष्णु आदि योगी आदि भगवान् आदि, अर्हतआदि, तीर्थकर, प्रथम बुद्ध, सर्वसे बडा, इत्यादि जो नाम, और महिमा गाते है, वे सर्व श्रीऋषभदेवजीकेही गुणानुवाद है, और कोइ सृष्टिका कर्त्ता नही है

मूर्ख और अज्ञानीयोंने स्वकपोलकल्पित शास्त्रोंमें ईश्वरविषयमे मनमानी कल्पना कर लीनी है, उस कल्पनाको बहुत जीव आज ताइ सच्ची मानते चले आये है, क्योकि सर्वमत जैनके विना ब्राह्मणोनेही प्राय चलाये है, इस वास्ते ब्राह्मणोही मतोंके विश्वकर्मा है, अरु लौकिक शास्त्रोमे जो कुछ है, सो ब्राह्मणोहीके वास्ते है. ब्राह्मणभी लौकिक शास्त्रोनें तार दीये, क्योकि शास्त्र बनाने वालोंके सतानादि, खूब खाते,पीते,और आनद करते है, इन ब्राह्मणोकी तथा वेदोंकी उत्पत्ति जैसे आवश्यक आदिक शास्त्रोमे लिखी है, तैसे भव्य जीवोंके जानने वास्ते यहां मैभी लीखुगा

निदान सर्व जगत्का व्यवहार चला कर, भरत पुत्रको विनीता नगरीका राज्य दीया, अरु बाहुबली पुत्रको तक्षिलाका राज्य दीया, शेप पुत्रोको और और देशोंका राज्य दीया, उनही पुत्रोके नामसे बहुत देशोका नामभी तैसाही पड गया, जैसे अगदेश, वगदेश, मगधदेश, इत्यादि नाम देशोकाभी पुत्रोके नामसे पड गया.

पीछें श्रीऋषभदेवनें स्वयमेव दीक्षा लीनी, उनके साथ कछ, महाकछ, सांमतादिक चार हजार पुरुषोंनें दीक्षा लीनी.

श्रीऋषभदेवजीकों एक वर्ष तक भिक्षा न मिली,तब चार हजार पुरुष तो भूखें मरते जटाधारी, कंद, मूल, फल, फूल, पत्रादि आहारी हो करकें गंगाके दोनो किनारों उपर तापस बनकें रहने लगे, अरु श्रीऋषभदेवजीका ध्यान, जप आदि ब्रह्मादि शब्दोसें करने लगे.

तब एक वर्ष पीछें वैशाख शुदी तीजकों हस्तिनापुरमें आये, तहां श्रीऋषभदेवका पडपोता श्रेयांस कुमारने जातिस्मरण ज्ञानकें बलसें श्रीऋषभदेवकों भिक्षा वास्ते फिरते देखकें इक्षुरससें पारणां कराया, क्योंकि उस समयमें लोकोंने कोइ भिक्षाचर देखा नहीं था. अरु न वो भिक्षाभी देजानते थे, तिस कारणसें श्रीऋषभदेवजीकों हाथी, घोडे, आभूषण, कन्यादि तो बहुत भेट करे, परंतु वे तो उस समयमें त्यागी थे, इस वास्ते लीने नहीं. तब लोकोंने श्रेयांसकुमारकों पूछा कि तुमने श्रीऋषभदेवजीकों भिक्षार्थी कैसें जाने? तब श्रेयांसकुमारने अपणे और श्रीऋषभदेवजीके आठ भवोंका संबंध कह्या, सो सर्व अधिकार, आवश्यक शास्त्रमें लिखा है. तद् पीछें सर्व लोक भिक्षा देनेकी रीति जान गये.

श्रीऋषभदेवजी एक हजार वर्ष तक देशोमें छद्मस्थ पणे विचरते रहे, तिस अवस्थामें कछ अरु महाकछके बेटे नमि और विनमीने आ कर प्रभुकी बहुत सेवा भक्ति करी, तब धरणेंद्रने प्रज्ञप्त्यादि अडतालीस हजार विद्या (४८०००) उनकों दे कर वैताढ्यगिरिकी दक्षिण, अरु उत्तर, यह दोनों श्रेणिका राज्य दीया, वे सर्व विद्याधर कहलाये, इनही विद्याधरोंके संतानोंमें रावण, कुंभकर्णादि तथा वाली सुग्रीवादि और पवन हनुमानादि सर्व विद्याधर हूए हैं.

एकदा छद्मस्थ अवस्थामें श्रीऋषभदेवजी विहार करते हूए, बाहुबलीकी तक्षिला नगरीमें गये, वहां बाहिर बागमें कायोत्सर्ग करकें खडे रहे. यह खबर जब बाहुबलीकों पहुंची तब बाहुबलीने मनमें विचार करा कि कलकों बडे आडंबरसें पिताकों बंदना करनेकों जाऊंगा, प्रभात हूये जब आडंबरसें गया, तब श्रीऋषभदेवजी तो तहांसें और कहीं चले गये, तब बाहुबल बहु उदास हूआ, तब श्रीऋषभदेवजीके चरणोंकी ज

गोंके ऊपर धर्मचक्रतीर्थ स्थापन कराये, वो धर्मचक्र तीर्थ, विक्रमराजा तक तो रहा, पीछें जब पश्चिमदेशमें, नवे मतमतांतर खडे हूए, तबसें वो तीर्थ नष्ट हो गया

तद्पीछें श्रीऋषभदेवजी बाल्हीक, जोनक, अमंब, इल्लाक, सुवर्णभूमि, पल्लवकादि देशोमे विचरने लगे तहा जिनोनें श्रीऋषभदेवजीका दर्शन करा, वो तो सब भद्रक स्वभाव वाले हो गये,अरु शेष जो रहा, वो सब म्लेछ, निर्दयी अनार्य हो गये, अनेक कल्पनाके मत मानने लगे, उनका व्यव हार और तरेंका बन गया.

जब श्रीऋषभदेवकों एक हजार वर्ष व्यतीत हूए तब विहार करकें विनीता नगरीके पुरिमताल नामा बागमे आये, तब बड वृक्षके हेठ, फागुन वदि एकादशीके दिन, तीन दिनके उपवासी थे, तहां पहिले प्रहरमें केवलज्ञान अर्थात् भूत, भविष्यत् वर्त्तमानमें सर्व पदार्थोंके जानने देखने वाला आत्म स्वरूप रुप केवलज्ञान प्रगट हूआ,तब चौशठ इंद्र आए,देवताओनें समव सरण बनाया, तीन गढ चारो दरवाजे इत्यादि समवसरणकी रचना करी, एकेक दिशामे तीन तीन दरवाजे बनाये, मध्यभागमे मणिपीठिका अर्थात् चौतरा बनाया, तिसके मध्यभागमे अशोकवृक्ष रचा, तिसके हेठ दरवाजोंके सन्मुख चारों दिशोंमे चार सिंहासन रचे, तिसमें पूर्वके सिंहासन ऊपर श्रीऋषभदेव अर्हत बिराजमान हुए, अरु शेष तीनो सिंहासनो ऊपर श्रीऋषभदेव सरीखे तीन बींब स्थापन करे, तब जिस दरवाजेसे कोइ आवे, वो तिस पासेही श्रीऋषभदेवजीकों दीखते थे, इसी वास्ते जगत्में चार मुख वाला श्रीभगवान् ऋषभदेवजी ब्रह्माके नामसे प्रसिद्ध हूआ, ध नंजयकोशमें श्रीऋषभदेवजीका नाम ब्रह्मा लिखा है

जब श्रीऋषभ देवजीको केवलज्ञान उत्पन्न हूआ, तब भरत राजा श्रीऋषभदेवजीकों केवली सुन कर सकल परिवार संयुक्त समवसरणमे वं दना करनेंकों अरु उपदेश सुननेको आया, उहां श्रीऋषभदेवजीका उप देश सुन कर भरत राजाके पांच सौ पुत्र अरु सात सौ पोते तथा ब्राह्मी ऋषभदेवजीकी बेटी औरभी अनेक स्त्रीयोने दीक्षा लीनी, मरुदेवीजी तो भगवान्के छत्रादि देखके तथा बानी सुनकें केवली हो कर मोक्ष हो गइ, तथा भरतके बडे पुत्रका नाम ऋषभसेन पुण्डरीक था, वो सोरठदेशमें

शत्रुंजय तीर्थ ऊपर देह त्यागकर, मोक्ष गया, इस वास्ते शत्रुंजयका नाम पुंमरीकगिरि रक्का गया.

भरतके पांच सौ पुत्रोने जो दीक्षा लीनी थी, तिनमें एकका, नाम मरीची था, वो मरीचीने जैन दीक्षाका पालनां कठिन जान कर अपणी आजीविकाके चलाने वास्ते नवीन मनःकल्पित उपाय खडा कीया, क्योंकि उसने गृहवास करनेमें तो बडी हीनता जाणी, तब एक कुलिंग बनानां चाहा, सो इसी रीतिसें बनाया कि साधु तो मनदंम, वचनदंम, अरु काय दंम, इन तीनो दंमोंसें रहित है, और मैं तो इन तीनो दंमों करकें संयुक्त हुं, इस वास्ते मुझकों त्रिदंम रखनां चाहियें, दूसरा साधु तो द्रव्य अरु भाव करकें मुंमित है. सो लोच करते हैं, अरु मैं तो द्रव्य मुंमित हुं, इस वास्ते मुझे उस्तरे पाछनेंसें मस्तक मुंमवानां चाहियें, शिखाभी रखनी चाहियें, तीसरा साधु तो पांच महाव्रत पालते हैं, अरु मेरे तो सदा स्थूल जीवकी हिंसाका त्याग रहो चौथा साधु तो निःकचन है, अर्थात् परिग्रह रहित है, अरु मुझकों एक पवित्रकादि रखनी चाहियें, पांचमा साधु तो शीलसें सुगंधित है, अरु मैं ऐसा नहीं हूं इस वास्ते मुझे चंदनादि सुगंधी लेनी ठीक है, छठा साधु तो मोह रहित है, अरु मैंतो मोह संयुक्त हूं, इस वास्ते मुझे मोहाच्छादितकों छत्री रखनी चाहियें. सातमा साधु जूते रहित है, मुझकों पगोंमें कुछ उपानह (जुती) प्रमुख चाहियें. आठमा साधु तो निर्मल है, इस वास्ते उनके शुक्लांवर वस्त्र है, अरु मैं तो क्रोध, मान, माया, अरु लोभ, इन चारों कषायों करकें मैला हूं इस वास्ते मुझे कषाय वस्त्र अर्थात् गेरुके रंगे (भगवे) वस्त्र रखने चाहियें, नवमा साधु तो सचित्त जलके त्यागी हैं, इस वास्ते मैं छांनके सचित्त पाणी पीउंगा, स्नानभी करुंगा, इस तरें स्थूलमृषावादादिसेंभी निवृत्त हूआ, इस प्रकारकें मरीचीने स्वमतिसें अपणी आजीविकाके वास्तें लिंग बनाया, यही लिंग, परिव्राजकोंका उत्पन्न हूआ.

मरीची भगवान्के साथही विचरता रहा, तब साधुओंसें विसदृश लिंग देखकें लोक पूछते हूए, तब मरीची साधुका यथार्थ धर्म कहता था, अरु अपणा पांखंमवेष पूर्वोक्त रीतिसें प्रगट कह देता था, जो पुरुष, इसके पास धर्म सुन कर दीक्षा लेनी चाहता था, तिसकों भगवान्के सा

धुओंकों दे देता था, एकदा समय मरीची मांदा (रोग ग्रस्त) हूआ, तब विचार किया कि मै तो असयती हू, इस वास्ते साधु मेरी वैयावृत्त नहीं करते है, अरु मुझे करानीजी युक्त नही है, तो कोइ चेलाजी मुझे वैयावृत्त वास्ते करना चाहियें, तिस कालमे श्रीरूपनदेवजी निर्वाण हो गये थे, पीछे एक कपिलनामक राजाका पुत्र था, सो मरीचीके पास धर्म सुननेको आया, तब मरीचीनें उसकों यथार्थ साधुका लिंग आचार कहा, तब कपिलने कहा तो तेरा लिंग विलक्षण क्यो कर है? तब मरीचीने कहाकि मै साधुपणा पालने समर्थ नही हू, इस वास्ते मे यह लिंग निर्वाहके वास्ते स्वकपोलकल्पित बनाया है, तब कपिलने कहा कि मुझे श्रीरूपनदेवके साधुओका धर्म रुचता नही है, तुम कहो तेरे पासजी कुछ धर्म है, या नहीं है,? तब मरीचीने जाना, यह जारीकर्मी जीव है, मेरा ही शिष्य होने योग्य है, इस लोजसें मरीचीने कह दीया कि वहाजी धर्म है, अरु मेरे पासजी कछुक धर्म है, यह सुन कर कपिल मरीचिका शिष्य हो गया, यह कपिल मुनिकी उत्पत्ति है उस बखत मरीचीके पास तथा कपिलके पास कोइजी पुस्तक नहीं था, नि केवल जो कुछ आचार मरीचीने कपिलको बता दीया सोइ आचार कपिल करता रहा, मरीचीने उत्सूत्र जापण करनेसे एक कोटाकोटी सागरोपम लग ससारमें जन्म मरणकी वृद्धि करी, मरीचि तो काल कर गया अरु पीछेसे कपिल ग्रंथार्थ ज्ञान शून्य मरीचीकी बताइ हूइ रीति ऊपर चलता रहा, उस कपिलका आसुरीनामा शिष्य हूआ, कपिलने आसुरीकोंजी आचार मात्रही मार्ग बतलाया, कपिलने औरजी बहुत शिष्य बनायें, उनके प्रेममे तत्पर थका, मरके ब्रह्मनामक पाचमे देवलोकमे देवता हूआ, तब उत्पत्तिके अनंतर अवधिज्ञानसे देखा, कि मैनें क्या दानादि अनुष्ठान करा है? जिस्सें मैं देवता हूआ, हू, तब अवधिज्ञानसें ग्रथज्ञानशून्य अपणे आसुरीनामा शिष्यको देखा, तब विचार करा कि मेरा शिष्य कुछ नहीं जानता? इसको कुछ तत्त्व उपदेश करु? अैसा विचार कर, कपिल देवता आकाशमें पचवर्णके मंमलमें रह कर तत्त्वज्ञानका उपदेश करता जया, कि अव्यक्तसे व्यक्त प्रगट होता है, तिस अवसरमे षष्ठितंत्र शास्त्र, आसुरीने बनाया, तिसमें अैसा कथन करा कि प्रकृतिसे महान् होता है, अरु महा

नसें अहंकार होता है, अहंकारसें गण षोडश होता है, तिस गणषो डशमेंसूं पंचतन्मात्रोंसें पांच भूत इत्यादि स्वरूप पूर्वे यही ग्रंथमें सांख्य मतविषे लिख आये हैं, उहांसें जान लेनां. पीछें इनकी संप्रदायमें नामी संख नामा आचार्य हूआ, तबसें इस मतका नाम सांख्यमत प्र सिद्ध हूआ, वास्तवमें सर्वपारिव्राजक संन्यासीयोंके लिंग आचारादि धर्मका मूल मरीचि हूआ, इन सांख्यमतका तत्त्व अबभी भगव गीता तथा भागवतादि ग्रंथोंमें तथा सांख्यमतके शास्त्रोंमें प्रचलित है, एक जैनमतके बिनां सर्वमतोंकी जड, इससें समझनी चाहियें.

जब श्रीऋषभदेवजीकों केवलज्ञान उत्पन्न हूआ था, उसीदिन भरत राजाकी आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हूआ, तब भरतने भरत क्षेत्रके छहों खंडोमें राज बनाया, अपनी आज्ञा मनाइ, इसी वास्ते इसका नाम भरत खंड प्रसिद्ध हूआ.

जब भरतने अपने छोटे भाइयोंकों आज्ञा मनाने वास्ते दूत भेजा, तब तिनोंनें विचार करा कि राज तो हमकों हमारा पिता दे गया है, तो फेर हम भरतकी आज्ञा क्यों कर माने? चलो पितासें कहे,जे कर अपना पिता श्री ऋषभदेवजी कहेंगे, कि तुम भरतकी आज्ञा मानो,तब तो हम आज्ञा मान लेवेंगे,जे कर हमारा पिता कहेगा लडो,तो हम लडेंगे, ऐसा बिचार करकें कैलास पर्वतके ऊपर श्री ऋषभदेवजीके पास गये, तब ऋष भदेवजीनें उनके मनका अभिप्राय जान कर उनकों उपदेश करा जो उप देश करा था,सो श्रीसूत्रकृतांग सूत्रके दूसरे वैतालीय अध्ययनमें लिखा है, तब तो उपदेश सुन कर अठानवे (९८) पुत्रोनें दीक्षा ले लीनी,सर्व झगडे छोड दीये, इस वार्त्तासें भरतकी अपकीर्त्ति हूइ, तब भरत चक्रवर्त्ती पांच सौ गाडे पक्वान्नके ले कर समवसरणमें आया, और कहने लगा कि मैं अ पनें भाइयोंकों भोजन कराउंगा, और मैरा अपराध क्षमा कराउंगा, तब श्री ऋषभदेवजीने कहा कि ऐसा आहार साधुओंकों लेनां योग्य नहीं, तब भरत मनमें बडा उदास हूआ,भरतने कहा अब मैं यह आहार, कि सकों देउं? तब शक्र (इंद्रने) कहा कि जो तेरेसें गुणोमें अधिक होवे, तिनकों यह भोजन देवो, तब भरतने मनमें बिचार करा कि मेरेसें गुणा धिक तो श्रावक हैं, तब भरतने बहुत गुणवान् श्रावकोंकों वो भोजन

जिमाया, और उन श्रावकोंको भरतजीनें कह दीया कि तुम सर्व मिल कर प्रतिदिन अर्थात् रोजकी रोज मेराही भोजन करा करो खेति वाणि ज्यादि कुछ काम मत करा करो, निकेवल स्वाध्याय करनेमें त त्पर रहो, भोजन करकें मेरें महिलोके दरवाजे आगें निकट बेठकें तुमने ऐसे कहना कि "जितो भवान् वर्द्धते भयं तस्मान्माहन माहने ति" तब वे श्रावक ऐसेही करते हूये, अरु भरत राजा तो भोगविलासो में मग्न रहता था, परतु जब तिनका शब्द सुनता था, तब मनमे विचार ता था, कि किसने मुझे जीता है? तब विचार करा कि क्रोध,मान, माया अरु लोभ, इन चार कषायोंने मुझे जींता है तिनोसेही भयकी वृद्धि हो ती है, ऐसा विचार करनेसें भरतको बडा भारी वैराग्य उत्पन्न होता था, इस अवसरमें रसोइ जीमणे वाले श्रावक बहुत हो गये, जब रसोइदार र सोइ करने समर्थ न रहा, तब भरत महाराजकों निवेदन करा कि मैं नहीं जान सक्ता, जो इनमें श्रावक कौन है, और कौन नहीं है? तब भरतने कहा तुम पूछके उनको भोजन दिया करो, तब रसोइ करनेवाले उनको पूछने लगे कि तुम कौन हो? वे केहने लगे, हम श्रावक है फेर तिनोकों पूछा कि श्रावकोके कितने व्रत है? तब तिनोनें कहा हमारे पाच अणुव्रत है, अरु सात शिक्षा व्रत है, इस तरेसे जब जाना कि यह श्रा वक ठीक है तब उनकों भरत महाराजके पास ल्याये, भरतने उनके श रीरमे काकणी रत्नसे तीन तीन रेखाका चिन्ह कर दीया, अरु छठे महि ने अनुयोग परीक्षा करते रहे, वे सर्व श्रावक ब्राह्मणके नामसे प्रसिद्ध हूये, क्योंकि जब भरत महाराजके दरवाजे आगे वे माहन माहन शब्द वार वार उच्चारन करते थे, तब लोक उनको माहन कहने लग गया, जैनमतके शास्त्रोमें प्राकृत भाषामें अबभी ब्राह्मणोंको माहन करकें लिखा है अरु जो सस्कृती ब्राह्मण शब्द है, यो प्राकृत व्याकरणमें बंभ ण और माहणके स्वरूपसें सिद्ध होता है, श्री अनुयोगद्वार सूत्रमें ब्रा ह्मणोंका नाम "वुड्ढसावया" अर्थात् वडे श्रावक ऐसा लिखा है यह सर्व ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति है, अरु सो ब्राह्मण अपणे बेटोंकों साधुओंकों देते हूये, जिनोने प्रव्रजा न लीनी वे श्रावक व्रतधारी हूए यह रीति तो भरतके राज्यमें रही

पीछें भरतका बेटा आदित्ययश हूआ, अर्थात् सूर्ययश जिसके संतान वाले भरत क्षेत्रमें सूर्यवंशी कहे जाते हैं,अरु बाहुबलीका बडा पुत्र चंद्रयश था तिसके संतानवाले चंद्रवंसी कहे जाते हैं. श्री ऋषभदेवजीके कुरु नामा पुत्रके संतान सब कुरुवंशी कहे जाते हैं. जिनमें कौरव पांडव हूये हैं.

जब भरतका बडा बेटा सूर्ययश सिंहासन पर बैठा, तब तिसके पास काकणी रत्न नहीं था, क्योंकि काकणी रत्न, चक्रवर्त्तीके शिवाय और किसी पास नहीं होता है, इस वास्ते सूर्ययश राजानें ब्राह्मण श्रावकोंके गलेमें सुवर्णमय यज्ञोपवीत करवा दीयें जन्नेउ इतिभाषा तथा भोजन प्रमुख सर्व भरत महाराजकी तरें देता रहा, जब सूर्ययशका बेटा महायश गद्दी पर बैठा, तब तिसने रूपेके यज्ञोपवीत बनवा दीये, आगें तिनोंकी संतानोंनें पंचरंगे रेश्मी पटसूत्र मय यज्ञोपवीत बनाते रहे, आगें सादे सूतके बनाये गये, यह यज्ञोपवीतकी उत्पत्ति है.

भरतके आठ पाट तक तो ब्राह्मणोंकी भक्ति भरतकी तरें करते रहे पीछें प्रजाभी ब्राह्मणोंकों भोजन कराने लगे, तब सर्व लगे ब्राह्मणपूजनीक समझे गये, आठमां तीर्थंकर श्रीचंद्रप्रभ स्वामीके वखत तक सर्व ब्राह्मणव्रतधारी, जैनधर्मी श्रावक रहे, अरु श्रीचंद्रप्रभ भगवान्के पीछें कितनाकि काल व्यतीत भये, इस भरत खंडमें जैनमत अर्थात् चतुर्विधसंघ और सर्व शास्त्र विछेद हो गये, तब तिन ब्राह्मणाभासोंकों लोक पूछने लगे कि धर्मका स्वरूप हमकों बतलाउ, तब तिनोने जो मनमें माना, और अपणा जिसमें लाभ देखा सो धर्म बतलाया, अनेक तरेंके ग्रंथ बनाते रहे.

जब नवमे श्रीसुविधिनाथ पुष्पदंत अरिहंत हूए, तिनोने जब फेर जैन धर्म प्रगट करा, तब कितनेंक ब्राह्मणाभासोंने न माना, स्वकपोलकल्पित मतहीका कदाग्रह रक्खा, साधुओंके द्वेषी बन गये, चारों वेदोंका नामभी बदल दीया, अरु उन वेदोंमें मतलबभी औरका और लिख दीया.

अब चारोंवेदोंकी उत्पत्ति लिखते हैं. जब भरतराजाने ब्राह्मणोकों पूजा, तब दूसरा लोकभी ब्राह्मणोकों बहुत तरेका दान देने लग गये, तब भरत चक्रवर्त्तीने श्रीऋषभदेवजीके उपदेशानुसार तिन ब्राह्मणोके स्वाध्याय करने वास्ते श्रीआदीश्वर ऋषभदेवजीकी स्तुति और श्रावकके धर्मका स्वरूपगर्भित ऐसे चार आर्यवेद रचे, तिनके यह नाम रक्खे १

संसारदर्शन वेद, २ सस्थापनपरामर्शन वेद, ३ तत्त्वाववोध वेद, ४ विद्या प्रवोध वेद, इन चारोमें सर्वनय, वस्तुके कथन सयुक्त तिन ब्राह्मणोकों पढाये, तब वे ब्राह्मण, अरु पूर्वोक्त चार वेद, आठमे तीर्थंकर तक य थार्थ चले आये, परतु जब आठमे तीर्थंकरका तीर्थ विछेद हूआ, तद् पीछें, तिन ब्राह्मणाजासोनें धनके लोनसे तिन वेदोमे जीवहिंसा आ दिकी प्ररूपणा करके उलट पुलट कर माले, जैनधर्मका नामजी वेदो मेसें निकाल दीया, वलकि अन्योक्ति करके "दैत्यदस्युवेदवाह्य" इत्यादि नामोसे साधुओंकी निंदा गर्जित १ ऋग्, २ यजु, ३ साम, ४ अथर्व, ये चार नाम कल्पन कर दीये तिन ब्राह्मणोमेंसूं जिनोनें तीर्थंकरोंका उप देश मान्या, उनोनें पूर्ववेदोके मत्र न त्यागे, सो आज तक दक्षिण कर णाटक देशमे जैन ब्राह्मणोंके कंठ है. ऐसा सुना और देखानी है, तथा उन प्राचीन वेदोके कितनेक मत्र मेरे पासजी है यत उक्तं आगमे ॥ सिरि नरह चक्कवट्टी,आयरिय वेयाणविस्सु उप्पत्ती ॥ माहण पढणछमिण, कहि यं सुहझाण विवहार ॥ १ ॥ जिणतित्थे वुच्छिन्ने, मिछत्ते माहणेहिं तेठ विया ॥ अस्सजयाण पूआ, अप्पाणं काहिया तेहिं ॥ २ ॥ इत्यादि य हासें आगे तिनवेदोकी रचना हिंसा सयुक्त याज्ञवल्क्य, सुलसा, पीपलाद, अरु पर्वत प्रमुखोने विशेष कर रचना रच दइ, तिसकाजी स्वरूप किंचित् मात्र यहा लिख देते है

वृहदारण्यक उपनिषद्की जाष्यमें लिखा है, कि जो यज्ञोका कहने वाला सो यज्ञवल्क्य तिसका पुत्र याज्ञवल्क्य इस कहनेसेजी यही प्रतीत होता है, जो यज्ञोकी रीति प्राय याज्ञवल्क्यसेही चली है, तथा ब्राह्मण लोकोंके शास्त्रोमे लिखा है, कि याज्ञवल्क्यने पूर्वली ब्रह्मविद्या वमके सूर्य पासों नवीन ब्रह्मविद्या सीखके प्रचलित करी, इस्सेजी यही अनुमान नि कलता है, जो याज्ञवल्क्यने प्राचीन वेद छोड दीये, और नवीन वनाये

तथा श्रीत्रिशठ सलाका पुरुष चरित्र ग्रंथमे आठमे पर्वके दूसरे सर्गमे ऐसा लिखा है, कि काशपुरीमे दो सन्यासिणीया रहती थी, तिसमे ए कका नाम सुलसा था, अरु दुसरीका नाम सुनंदा था, यह दोनोही वेद अरु वेदांगोकी जानकारथी तिन दोनो वहिनोने वहुवादीयोको वादमें जीता, इस अवसरमे याज्ञवल्क्य परिव्राजक तिनके साथ वाद करनेकों

आया, आपसमें अैसी प्रतिज्ञा करी कि जो हार जावे, वो जींतने वालेकी सेवा करे, तब याज्ञवल्क्यने सुलसाकों वादमें जींतके अपणी सेवा करने वाली बनाइ,सुलासांजी रात दिन याज्ञवल्क्यकी सेवा करने लगी,याज्ञवल्क्य अरु सुलसां यह दोनों यौवनवंत (तरुण) थे, इस वास्ते दोनो कामातुर हो कें जोगविलास करने लग गये, सचतो है कि अग्नि और फूस मिलकें अग्नि क्यों कर प्रज्ज्वलित न होवे? निदान दोनो काम क्रीडामें मग्न होकर काशपुरीके निकट कुटीमें वास करते थे, तव याज्ञवल्क्य सुलसासें पुत्र उत्पन्न हूआ पीछें लोकोंके उपहासके जयसें उस लडकेकों पीपलके वृक्षके हेठ छोड कर दोनों नछके कहींकों चले गये, यह वृत्तांत सुजद्रा जो सुलसांकी बहिनथी उसने सुना, तब तिस बालकके पास आइ, जब बालककों देखा, तो पीपलका फल स्वयमेव मुखमें पडेकों चबोल रहा है, तब तिसका नामजी पिप्पलाद रखा, और तिसकों अपणे स्थानमें ले जाकें यत्नसें पाला, अरु वेंदादि शास्त्र पढाये, तब पिप्पलाद बडा बुद्धिमान् हूआ, बहुत वादीयोंका अभिमान दूर करा, पीछें, तिस पिप्पलादके साथ सुलसां और याज्ञवल्क्य यह दोनो वाद करनेकों आए, तिस पिप्पलादनें दोनोकों वादमें जींत लीया, और सुजद्रा मासीके कहनेसें जान गया कि, यह दोनो मेरे माता पिता है. और मुझे जन्मतेकों निर्दय हो कर छोड गये थे, जब बहुत क्रोधमें आया तब याज्ञवल्क्य अरु सुलसाके आगें मातृमेध पितृमेध यज्ञोंकों युक्तिसें सम्यक् रीतिसें स्थापन करकें पितृमेधमें याज्ञवल्क्यकों और मातृमेधमें सुलसांकों मारके होम करा, मीमांसक मतका यह पिप्पलाद मुख्य आचार्य हूआ, इसका बातली नामा शिष्य हूआ, तबसें जीवहिंसा संयुक्त यज्ञ प्रचलित हूए.

याज्ञवल्क्यके वेद बनानेमें कुछजी शंका नहीं, क्योंकि वेदमें लिखा है. "याज्ञवल्केति होवाच" अर्थात् याज्ञवल्क्य अैसे कहता हूआ, तथा वेदमें जो शाखा है, वे वेदकर्त्ता मुनियोंकेही सबबंसें है, इस वास्ते जो आवश्यक शास्त्रमें लिखा है, कि जीवहिंसा संयुक्त जो वेद हैं, वे सुलसा अरु याज्ञवल्कादिकोंने बनाये है, सो सत्य है. क्योंकि कितनीक उपनिषदोमे पिप्पलादकाजी नाम है, तथा और मुनियोंकाजी कितनेक जगेमें नाम है.

जमदग्नि कश्यप तो वेदोमें खुद नामसें लिखे है, तो फेर वेदोंके नवीन हो नेमें क्या शका रहती है ?

तथा लंकाका राजा रावण जब दिग्विजय करनेके वास्ते देशोमें चतुरंग दल ले कर राजायोंकों अपणी आज्ञा मना रहा था, इस अवसरमे नारद मुनि, लाठी, सोटे, और, लात, घूसयोंका पीटा हूआ पुकार करता हूआ रावणके पास आया, तब रावणने नारदको पूछा कि तुजकों किसने पीटा है ? तब नारदने कहा कि राजपुर नगरमे मरुत नामा राजा है, सो मिथ्यादृष्टि है, वो ब्राह्मणाभासोंके उपदेशसें यज्ञ करने लगा, होमके वास्ते सौनिकोंकी तरे वे ब्राह्मणाभास अरराट शब्द करते हूए, ऐसे बिचारे पशुओंको यज्ञमें मारते हूए मैनें देखा, तब मै आकाशसें उतरके जहां मरुतराजा ब्राह्मणोके साथमे बैठा था, तहां आ कर मरुत राजाकों कहा कि यह तुम क्या करने लग रहे हो ? तब मरुतराजाने कहा ब्राह्मणोके उपदेशसे देवताओंकी तृप्ति वास्ते और स्वर्ग वास्ते यह यज्ञमे पशुओकी बलिदानसे करता हूं यह महाधर्म है, तब नारद कहता है, कि मे वो मरुतराजाको कहा कि हे राजा जो चारोंवेदोमे यज्ञ करना कहा है, वो यज्ञ मे तुमकुं सुनाता हूं, आत्मा तो यज्ञका यष्टा अर्थात् करनेवाला है, तथा तपरूप अग्नि है, ज्ञानरूप घृत है, कर्मरूपी इंधन है, क्रोध, मान, माया, अरु लोभादि पशु है, सत्य बोलनेरूप यूप अर्थात् यज्ञस्तंभ है, तथा सर्व जीवोंकी रक्षा करणी यह दक्षिणा है. तथा ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, यह रत्नत्रयी रूप त्रिवेदी है यह यज्ञ वेदका कहा हूआ है. ऐसा यज्ञ जो योगाभ्यास सयुक्त करे, तो करनेवाला मुक्त रूप हो जाता है, और जो राक्षस तुल्य होकें छागादि मारकें यज्ञ करता है, सो मरके घोर नरकमे चिरकाल तक महादुःख भोगता है, हे राजा ! तू उत्तमवशमे उत्पन्न हूआ है, बुद्धिमान् और धनवान् है, इस वास्ते हे राजन् तू इस व्याधोचित पापसे निवर्त्तन हो जा, जेकर प्राणीवधसेंही जीवोंकों स्वर्ग मिलता होवे तब तो थोडेही दिनोंमें यह जीवलोक खाली हो जावेगा, यह मेरा वचन सुनकें यज्ञकी अग्निकी तरे प्रचण्ड हूए होये ब्राह्मण हाथमें लाठी, सोटे, ले कर सर्व मेरेको पीटने लगे, तब जैसें कोइ पुरुष नदीके पूरसे मरकर दीपेमें चला आता है तैसें मे दौडता हूआ

तेरे पास पहुंचा हूं. हे रावण राजा! बिचारे निरपराधि पशु मारे जाते हैं, तूं तिनकी रक्षा करणेमें तत्पर हो, जैसें मैं तेरे शरणसें बचा हूं ऐसें तूं पशुओंकोंभी बचा तब रावण विमानसें उतरकें मरुत राजाके पास गया मरुत राजाने रावणकी बहुत पूजा, भक्ति आदर, सन्मान करा. तब रावण कोपमें हो कर, मरुत राजाकों ऐसें कहता हूआः—अरे! तूं नरक का देने वाला यह यज्ञ क्या कर रहा है? क्योंकि धर्म तो अहिंसारूपसर्वज्ञ तीर्थंकरोने कहा है, सोइ जगत्के हितका करनेवाला है, जब तुमने पशु ओंकों मारके धर्म समझा, तब तुमकों हितकारक क्योंकर होवेगा? इस वास्ते यह यज्ञ तुमकों दोनो लोकमें अहितकारक है, इसें छोड द्यो, नहीं तो इस यज्ञका फल तेरेकों इस लोकमें तो मैं देता हूं, और परलोकमें तु मारा नरकमें वास होवेगा, यह सुन कर मरुत राजाने यज्ञ करनां छोड दीया, क्योंकि रावणकी आज्ञा उस वखत ऐसी भयंकरथी, कि कोइ उसकों उल्लंघन नहीं कर सक्ता था, इस कथानकसें यहभी मालुम हो जाता है, कि जो ब्राह्मण लोक कहते हैं कि आगें राक्षस यज्ञ विध्वंस कर देते थे, सो क्या जाने रावणादि जबरदस्त जैनधर्मी राजाओं पशुवध रूप यज्ञका करणां बुडा देते थे, तबसेंही ब्राह्मणोने पुराणादि शास्त्रोमें उन जबरदस्त जैनराजाओंकों राक्षसोंके नामसें लिखा हैं? तथा यहभी सुननेमें आया हैं, कि नारदजीनेभी मायाके वशसें जैनमत धारकें वेदोंकी निंदा करी थी तो क्या जाने? इस कथानकका यही तात्पर्य लोकोने लिख लीया हो?

पीछें रावणने नारदकों पूछा कि ऐसा पापकारी पशुवधात्मक यह यज्ञ कहांसें चला है तब नारदजीनें कहा किः—शुक्तिमती नदीके किनारे उपर एक शुक्तिमती नगरी है सो वीशमें श्रीमुनिसुव्रत स्वामी हरिवंश तीर्थंकरकी औलादमें जब कितनेक राजा व्यतीत होगये, तब अभिचंद्रनामा राजा हूआ, तिस अभिचंद्रराजाका वसुनामा बेटा हूआ, वो वसु महाबुद्धि मान, सत्यवादी, लोकोमें प्रसिद्ध हूआ, तिस नगरीमें खीरकदंबक उपाध्याय रहता था तिसके पर्वत नाम पुत्र था, उहां एक तो राजाका बेटा वसु दूसरा पर्वत और तीसरा में (नारद) हम तीनो खीरकदंबक उपा ध्यायके पास पढते थे, एकदा समय हमतो तीनो जन पाठ करनेके श्र मसें रात्रिकों सो गये थे और उपाध्याय जागता था हम छत ऊपर सूते

थे तब दो चारण साधु ज्ञानवान्, आकाशमें परस्पर वार्तां करते चले जाते थे, कि यह खीर कदंबक उपाध्यायके तीन छात्रोमेंसुं दो नरकमें जायेंगे अरु एक स्वर्गमे जायेगा, यह मुनियोंका कहना सुन करके उपाध्यायजी चिंता करने लगा कि जब मेरे पढाये हूये नरकमे जायगे, तब यह मुजको बहुत दुःख है,परंतु इन तीनोंमेंसू नरक कौन जायगे? और स्वर्ग कौन जायगा? इस बातके जानने वास्ते तीनोकों एक साथ बुलाया, पीछें वो गुरुने हम तीनोंकों एकेक पीठका कुक्कड दीया और कह दीयाकि इनको औसी जगेमे मारो जहा कोइन्नी न देखता होवे। पीछें वसु अरु पर्वत यह दोनो तो शून्य जगाओमे जाकर दोनो पीठके बनाये कुक्कडोंको मार ल्याये और मे उस पीठके कुक्कडको ले कर बहूत दूर नगरसे बाहिर चला गया, जहा कोइन्नी नही था, तहां जा कर खडा हूआ, चारों उर देखने लगा और मनमें यह तर्क उत्पन्न हूआ, कि गुरु महाराजने तो यह आज्ञा दीनी है, कि हे वत्स यह कुक्कड तू तहा मारी, जहा कोइ देखता न होवे,तो यह कुक्कड देखता है, अरु मेंन्नी देखता हु, खेचर देखते हैं. लोकपाल देखते है, ज्ञानी देखते है, औसा तो जगत्मे कोइन्नी स्थान नही जहां कोइन्नी न देखता होवे, इस वास्ते गुरुके कहनेका यही तात्पर्य है, कि इस कुक्कडका वध न करना क्योकि गुरुपूज्य तो सदा दयावत और हिंसासे पराङमुख हैं, नि केवल हमारी परीक्षा लेने वास्ते यह आदेश दीया है, तब मैनें औसा विचार करके विनाही मारे कुक्कडेको लेके गुरुके पास चला आया, और कुक्कडेके न मारनेका सबब सर्व गुरुकों कह दीया, तब गुरुने मनमे निश्चय कर लीया कि यह नारद औसे विवेकवाला है, सो स्वर्ग जायगा तब गुरुजीने मुजको छातीसे लगाया, और बहुत साधुकार कहा, तथा वसु और पर्वतन्नी मेरेसें पीछे गुरुके पास आयें, और गुरुकों कहते हूये कि हम कुक्कडाको औसी जगे मारके आये है,कि जहा कोइन्नी देखता नही था तब गुरुने कहा तुम तो देखते थे, तथा खेचर देखते थे, तव हे पापिष्ठो। तुमने कुक्कड क्यो मारे? औसे कह कर गुरुने शोचा कि पर्वत, और वसुके पढानेकी मेहनत मैने व्यर्थही करी, मै क्या करुं? पानी, जैसे पात्रमे जाता है, वैसाही वन जाता है विद्याकान्नी यही स्वन्नाव है जब प्राणोसे प्यारा पर्वतपुत्र और पुत्रसे प्यारा वसु

यह दोनो नरकमें जायगे तो मुझे फेर घरमें रह कर क्या करणा है? ऐसे निर्वेदसें क्षीरकदंबक उपाध्यायने दीक्षा ग्रहण करी, साधु हो गया. तिसके पद उपर पर्वत बैठा क्योंकि व्याख्या करणेमें पर्वत बडा विचक्षण था और मैं (नारद) गुरुके प्रसादसें सर्वशास्त्रोंमें पंडित हो कर अपणे स्थानमें चला आया, तथा अभिचंद्रराजाने तो संयम लीया, और वसु राजा राजसिंहासन ऊपर बैठा, वसुराजा जगत्में सत्यवादी प्रसिद्ध हो गया अर्थात् वसुराजा झूठ नहीं बोलता है, ऐसा प्रसिद्ध हो गया, वसु राजानेभी अपणी प्रसिद्धिकों कायम रखने वास्ते सत्य बोलनांही अंगी कार कीया, वसुराजाकों एक स्फटिकका सिंहासन गुप्त पणे ऐसा मिला कि:— सूर्यके चांदणेमें जब वसुराजा उसके ऊपर बैठताथा, तब सिंहासन लोकोंकों बिलकुल नहीं दीख पडताथा, इसी तरें वसुराजा आकाशमें अ धर बैठा दीख पडताथा, तब लोकोंमें यह प्रसिद्धी होगइ, कि सत्यके प्रभावसें वसुराजाका सिंहासन देवता आकाशमें थांभे रखते हैं, तब सब राजा म रकें वसुराजाकी आज्ञा मानने लग गये, क्योंकि चाहो सच्ची हो चाहो झूठी हो तोभी प्रसिद्धि जो है सो पुरुषके जयकारी होती है.

तब एकदा प्रस्तावमें (नारद) वो शुक्तिमतीनगरीमें गया, उहां जा कर पर्वतकों देखा तो वो अपणे शिष्योंकों ऋग्वेद पढा रहा है, और उ सकी व्याख्या करता है, तब ऋग्वेदमें एक ऐसी श्रुति आई "अजैर्यष्टव्य मिति" तब पर्वतने इस श्रुतिकी ऐसी व्याख्या करी जो अजानाम छागका (बकरीका) है तिनोंसें यज्ञ करनां तिनकों मारके तिनके मांसका होम क रनां, तब मैंने पर्वतकों कहा हे भ्राता? यह व्याख्या तूं क्या भ्रांतिसें क रता है? क्योंकि गुरु श्रीक्षीरकदंबकने इस श्रुतिकी ऐसें व्याख्या नहीं करी है, गुरुजीने तो तीन वर्षका धान्य पुराणें जौंका ऐसा अर्थ यह श्रुतिका करा है, "न जायंतइत्यजा" जो बोनेसें न उत्पन्न होवे, सो अजा, ऐसा अर्थ श्रीगुरुजीने तुमकों और हमकों शिखलाया था वो अर्थ, तुमने किस हेतुसें भूला दीया? तब पर्वतने कहा कि तुमने जो अर्थ करा है, यह अर्थ गुरुजीने नहीं कहा था, किंतु जो अर्थ मैने करा है, यही अर्थ गु रुनें कहा था क्योंकि निघंटमेंभी अजा नाम बकरीका ही लिखा है, तब मैंने (नारदने) पर्वतकों कहा कि शब्दोंका अर्थ दो तरेंके होते हैं, एक

मुख्यार्थ दूसरा गौणार्थ तो यहा श्रीगुरुनें गौणार्थ करा या गुरु धर्मोप
देष्टाका वचन और यथार्थ श्रुतिका अर्थ, दोनोंको अन्यथा करकें हे मित्र
तू महापाप उपार्जन मत कर तब फेर पर्वतने कहा कि अजा शब्दका
अर्थ श्रीगुरुजीने मेषेका करा है, निघंटमेंभी ऐसेही अर्थ है, इनको उल्लं
घन करकें तूं अधर्म उपार्जन करता है? इस वास्ते वसुराजा आपणा स
हाध्यायी है, तिसकों मध्यस्थ करकें इस अर्थका निर्णय करो, जो जूठा
होवे तिसकी जीभ्हाछेद करणी, ऐसी प्रतिज्ञा कही, तब मैनेभी पर्वतका
कहना मान लीया क्योंकि साचकों क्या आंच है? तब पर्वतकी माताने
पर्वतकों छाना कहा कि हे पुत्र! तूं ऐसा जूठा कदाग्रह मत कर क्योंकि
मैनेभी इस श्रुतिका अर्थ तीन वर्षका धान्यही सुना है, इस वास्ते तूंने
जो जीभ्हाछेदकी प्रतिज्ञा करी है, सो अछी नही करी, क्योंकि जो विना
विचारें काम करता है, वो अवश्य आपदामे पडता है, तब पर्वत कहने
लगा कि हे माताजी! जो मे प्रतिज्ञा करी है, वो अबमै किसीतरेसेंभी
दूर नही कर सक्ता हूं, तब माता अपने पर्वत पुत्रके दुखकी पीडी हूइ
दुखिनी हो कर वसुराजाके पास पहुची क्योंकि पुत्रके जीवतव्य वास्ते
कौन ऐसो है, जो उपाय न करे? जब वसुराजाने अपनी गुरुकी पत्नीकों
आता देखा तब सिंहासनसे उठके खडा हूआ, और कहने लगाकि मैनें
आज क्षीरकदंबकका दर्शन करा जो माता तुजकों देखा, अब हे माता!
कहो (आज्ञा करो) मै क्या करुं? और क्या देउं? तब ब्राह्मणी कहणे
लगी कि तूं मुजे पुत्रकी भिक्षा दे क्योंकि विना पुत्रके मैनें हे पुत्र! धन
धान्य क्या करणा है? तब वसुराजा कहने लगा हे माता! मेरेकोंतो प
र्वत पूजने और पालने योग्य है, क्योंकि गुरुकी तरे गुरुके पुत्रके सा
थभी वर्त्तना चाहियें, यह श्रुतिका वाक्य है, तो फेर आज किसको का
लने क्रोधमें आकर पत्र भेजा है, जो मेरे भाइ पर्वतकों मारा चाहाता
है? इस वास्ते हे माता? तू मुजे सर्व वृत्तात कह दे, तब ब्राह्मणीने अ
पणे पुत्रका अज व्याख्यान और जिभ्हाछेदनेकी प्रतिज्ञा कह सुनाइ,
और कहाकि जो तैने अपने भाइकी रक्षा करनी है, तो अजा शब्दका
अर्थ मेष अर्थात् बकरी बकरा करानां क्योंकि महात्मा जन परोपकारके
वास्ते अपने प्राणभी दे देते है; तो वचनसे परोपकार करनेंमे तो क्या क

हनां है? तब वसु राजाने कहा कि हे माताजीमें मिथ्यावचन क्यों कर बोलुं? क्योंकि सत्यबोलनेवाले पुरुष जेकर अपणे प्राणन्नी जाते देखें तोन्नी असत्य नहीं बोलते हैं, तो फेर गुरुका वचन अन्यथा करणा और झूठी साक्षी देणी, इसका तो क्याही कहना है? तब ब्राह्मणीने कहा यांतो गुरुके पुत्रकी जान बचेंगी, यां तेरा सत्यव्रतका आग्रहही रहेगा, और मेंन्नी तुझे अपणे प्राणकी हत्या देऊंगी तब वसुराजाने लाचार हो कर ब्राह्मणीका वचन माना, पीछें क्षीरकदंबककी न्नार्या प्रमुदित हो कर अपने घरकों गइ, इतनेहीमें मैं (नारद) और पर्वत दोनो जने वसुराजाकी सन्नामें गये, तब तहां बडे बडे विद्वान् एकठे सन्नामें मिले, और स्फटिककें सिंहासन ऊपर बैठके वसुराजा सन्नाके बिचमें सन्नापति बन कर बैठा, तब पर्वतने और मैंने अपणी अपणी व्याख्याका पक्ष वसुराजाकों सुनाया, और ऐसान्नी कहाकि हे राजन् तूं! सत्य कह दे कि गुरुने इन दो अर्थोमेंसुं कौनसा अर्थ कहा था? तब वृद्ध ब्राह्मणोनें कहा हे राजा तूं सत्य सत्य जो होवे सो कह दे क्योंकि सत्यसेंही मेघ वर्षता है, और सत्यसेंही देवता सिद्ध होते हैं, सत्यके प्रन्नावसेंही यह लोक खडा है, और तूं पृथ्वीमें सत्य वादी सूर्यकी तरें प्रकाशक है, इस वास्ते सत्यही कहनां तुमकों उचित है, और हम इस्सें अधिक क्या कहें? यह वचन सुनकरन्नी वसुराजाने अपने सत्य बोलनेकी प्रतिज्ञाकों जलांजली दे कर "अजान्मेषान्गुरुर्व्याख्यदिति" अर्थात् अजाका अर्थ गुरुने मेष (बकरे) कहे थे, ऐसी साखी वसुराजाने कही, तब इस असत्यके प्रन्नावसें व्यंतर देवताने वसुराजाके सिंहासनकों तोडके वसुराजाकों पृथ्वीके ऊपर पटककें मारा, तब तो वसु राजा मरके सातमें नरकमें गया, पीछें वसुराजाके राज सिंहासन ऊपर वसु राजाके आठपुत्र १ पृथुवसु, २ चित्रवसु, ३ वासव, ४ शक्र, ५ विन्नावसु, ६ विश्वावसु, ७ सूर, ८ महासूर, ये आठो अनुक्रमसें गद्दी ऊपर बैठे. वो आठोंहीकों व्यंतर देवताओंनें मार दीये, तब सुवसुनामा नवमा पुत्र तहांसें न्नाग कर नागपुरमें चला गया और दसमा बृहध्ध्वज नामा पुत्र न्नाग कर मथुरांमें चला गया,और मथुरामें राज करणे लगा. इस बृहध्ध्वजकी संतानोंमें यदुनामा राजा बहुत प्रसिद्ध हूआ, इस वास्ते हरिवंशका नाम छूट गया और यदुवंशी प्रसिद्ध हो गये.

यदु राजाके सूर नामक पुत्र हूआ, तिस सूर राजाके दो पुत्र हूवे, एक वडा शौरी और दूसरा छोटा सुवीर हूआ, शौरि राजा पिताके पीछे वना, शौरिने मथुराका राज्यतो अपने छोटे नाइ सुवीरकों दे दीया, और आप कुशावर्त्त देशमे जा कर अपणे नामका शौरिपुर नगर वसा कें राज धानी बनाइ, शौरिका बेटा अंधकविष्ण, आदि पुत्र हूआ, और अंधकवि ष्ण,के दश वेटे हूये १ समुद्रविजय, २ अक्षोन्य, ३ स्तिमित, ४ सागर, ५ हिमवान्, ६ अचल, ७ धरण, ८ पूर्ण, ९ अनिचड़, १० वसुदेव, तिनमे समुद्रविजयका वडा वेटा अरिष्टनेमि जो जैनमतका बावीशमा ती र्थंकर हूआ, और वसुदेवके बेटे प्रतापी कृष्णवासुदेव,अरु बलनद्रजी हूये, तथा सुवीरका बेटा नोजवृष्णि और नोजवृष्णिका उग्रसेन और उग्रसेन का कस बेटा हूआ,और वसुराजाका दूसरा वेटा सुवसु जो नागके नागपुर गया था, तिसका वृहद्रथ नामा पुत्र हूआ तिसने राजगृहमे आ कर राज करा, तिसका बेटा जरासिधु हूआ, यह मैनें यहां प्रसंगसे लिख दीयाहै.

तब उहांतो नगरके लोक और पमितोनें पर्वतका बहुत उपहास करा, सबने पर्वतकों कहा कि तूं फूग है, क्योंकि तेरे साखी वसुकों फूग जान कर देवताने मार दीया,इस वास्ते तेरेसे अधिक पापी कौन है ? अैसें कह कर लोकोने मिलकें पर्वतकों नगरसें बाहेर निकाल दीया, तव महाकाल, असुर, उस पर्वतका साहायक हूआ

यहां रावणने नारदको पूछाकि वो महाकाल असुर कौन था ? नार दने कहा यहां चरणा युगल नामा नगर है, तिसमे अयोधन नामा राजा था, तिसकी दिति नामा नार्याथी, तिन दोनोंकी सुलसा नामक बहुत रू पवान् वेटी थी, तिस सुलसाका स्वयवर उसके पिताने करा उहां और सर्व राजे बुलवाये, तिन सर्व राजाओमेसूं सगर राजा अधिक था तिस सगरराजाकी मदोदरी नामा रणवासकी दरवाजेदार सगरकी आज्ञासे प्रति दिन अयोधनराजाके आवासमे जाती हूइ, एकदिन दिति घरके बागके क दलीघरमे गइ, और सुलसाके साथ मदोदरीनी तहा आ गइ,तव मदोदरी, सुलसा और दिति इन दोनोकी वार्ता सुननेके वास्ते तहा छिप गइ, तव दिति सुलसाको कहने लगी, हे वेटी ! मेरे मनमें इस तेरें स्वयंवरमे बढा शल्य है, तिसका उद्धार करना तेरे अधीन है,इस वास्ते तूं सुनले मूलसे

श्रीऋषभदेव स्वामीके भरत अरु बाहुबली यह दो पुत्र हूये, फेर तिनके दो पुत्र हूये तिनमें भरतका सूर्ययश और बाहुबलीका चंद्रयश जिनोंसें सूर्य वंश और चंद्रवंश चले हैं. चंद्रवंशमें मेरा भाइ तृणबिंदुनामा हूआ, तथा सूर्यवंशमें तेरा पिता राजा आयोधन हूआ,और आयोधन राजाकी बहिन सत्ययशा नामा तृणबिंदुकी भार्या हूइ,तिसका बेटा मधुपिंगल नामा मेरा भत्रीजा है,तो हे सुंदरी ! मैं तेरेकों तिस मधुपिंगलकों दीया चाहती हूं,और तूंतो क्या जाने स्वयंवरमें किसकों देइ जावेंगी? मेरे मनमें यह शल्य है इस वास्ते तूंने स्वयंवरमें सर्वराजाओंकों छोडकें मेरे भत्रीजे मधुपिंगलकों वरनां, तब सुलसाने माताका कहनां स्वीकार कर लीया, और मंदोदरीने यह सर्ववृत्तांत सुन कर सगर राजाकों कह दीया, तब सगर राजाने अपने विश्वभूतिनामा पुरोहितकों आदेश दीया,वो विश्वभूति बडा कवि था उसने तत्काल राजाके लक्षणोंकी संहिता बनायी तिस संहितामें ऐसें लिखा कि सगर तो शुभलक्षण वाला बन जावे और मधुपिंगल लक्षण हीन सिद्ध हो जावे, तिस पुस्तककों संदूकमें बंद करकें रख छोडा जब सब राजा आ कर स्वयंवरमें एकठे बैठे, तब सगरकी आज्ञासें विश्वभूतिने वो पुस्तक काढा अरु सगरने कहा कि जो लक्षण हीन होवे, तिसकों यातो मार देनां, अथवा स्वयंवरसें बाहिर निकाल देनां, यह कहनां सबोंनें मान लीया, तब तो पुरोहित यथायथा पुस्तक वांचता जाता है, तथा तथा मधुपिंगल अपनेकों अपलक्षण वाला मान कर लज्जावान् होता जाता है, और स्वयंवरसें आपही निकल गया, तब सुलसानें सगरकों वर लीया, दूसरे सर्व राजा अपणे अपणे स्थानोंकों चले गये, अरु मधुपिंगल तो उस अपमानसें बाल तप करकें साठ हजार वर्षकी आयुवाला कालनामा असुर परमधार्मिक देव हूआ, तब अवधिज्ञानसें सगरका कपट जो उसने सुलसाके स्वयंवरमें झूठा पुस्तक बनाया था, और अपना जो अपमान हूआ था, सो देखा जाना, तब विचार करा कि सगर राजादिकोंकों मैं मारुं ? तब तिनके छिद्र देखने लगा, जब शुक्तिमती नगरीके पास पर्वतकों देखा, तब ब्राह्मणका रूप करकें पर्वतकों कहनें लगा कि हे पर्वत ! मैं तेरे पिताका मित्र हूं, मेरा नाम शांडिल्य है, मैं और तेरा पिता हम दोनो साथ होकर गौतम उपाध्यायके पास पढे थे, मैंने सुना था कि नारदनें और दूसरे लोकोंने तुझे

बहुत दुःखी करा, अब मै तेरा पक्ष पुरुंगा, और मंत्रों कर कें लोकोंकों विमोहित करुंगा, यह कह कर पर्वतके साथ मिलके लोकोंकों नरकमें गलने वास्ते तिस असुरने बहुत व्यामोह करा, व्याधि भूतादि दोष लो कोकों कर दीये, पीछें जहां जो लोक पर्वतका वचन मान लेता था, तिसकों अछा कर देताथा,शाण्डिल्यकी आज्ञासे पर्वतभी लोकोंकों अछा करने लगा, उपकार करकें लोकोकों अपने मतमे मिलाता जाता था, तब तिस असु रने सगर राजाकों तथा तिसकी राणीयोको बहुत भारी रोगादिकका उप द्रव करा,तब तो राजाभी पर्वतका सेवक बना,अरु पर्वतने शाण्डिलके साथ मिलकें तिसका रोग शांति करा, तब पर्वतने राजाकों उपदेश करा कि हे राजा ! सौत्रामणि नामा यज्ञ करके, मद्यपान अर्थात् सराव पीनेंमें दोष नहीं, तथा गोसव नामा यज्ञमे अगम्य स्त्री (चामाली) आदि तथा माता बहिन, बेटी आदिसे विषय सेवन करना चाहियें, मातृमेधमे माताका और पितृमेधमे पिताका वध अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिकमे करे, तो दोष नहीं, तथा कछुकी पीठ ऊपर अग्नि स्थापन करकें तर्प्पण करे, कदाचित् कछु न मिले तो शुद्ध ब्राह्मणके मस्तककी टटरी ऊपर अग्नि स्थापन करकें होम करे, क्योंकि टटरीभी कछुकि तरें होती है इस बातमे हिंसा नहीं है, क्योंकि वेदोमे लिखा है, श्लोक ॥ सर्वंपुरुषेववेद, यद्भूतंयच्चविश्यति ॥ इशानोर्यमृ तत्वस्य, यदन्नेनातिरोहति ॥१॥ इसका भावार्थ यह है, कि जो कुछ है, सो सब ब्रह्मरूपही है, जब एकही ब्रह्म हूआ, तब कौन किसिकों मारता है ? इस वास्ते यथारुचिसे यज्ञोमे जीवहिंसा करो, और तिन जीवोंका मांस भ क्षण करो, इनमे कुछ दोष नहीं क्योकि देवोद्देश करनेंसें मांस पवित्र हो जाता है, इत्यादि उपदेश देकर सगरराजाको अपने मतमे स्थापन करके अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिमे वो पर्वत यज्ञ कराता हूआ तब कालासुरने अव सर पा करकें राजसूयादिक यज्ञभी कराता हूआ, और जो जीव यज्ञमे मारे जाते थे, तिनकों विमानोंमे बैठाके देवमायासे दिखाता हूआ, तब लोकोंकों प्रतीत आ गइ पीछें वो निःशंक होकर जीवहिंसारूप यज्ञ करने लगे और पर्वतका मत मानने लगे, सगरराजाभी यज्ञ करनेंमे बडा तत्पर हूआ, सुलसा और सगर दोनो मरके नरकमे गये, तब माहाकालासुरने सगर राजाको नरकमे मार पीटादि महादुःख देके अपणा वैर लीया, इस वास्ते

हे रावण! पर्वत पापीसें यह जीवहिंसारूप यज्ञ विशेष करकें प्रवर्त्त हूयें हैं. हे राजा रावण! सो यह यज्ञ तैनें निषेध करा. यह कथा सुनके राजा रावणने प्रणाम करकें नारदकों विदा करा, इस तरेंसें जैन मतके शास्त्रोंमें वेदोंकी उत्पत्ति लिखी हे सो आवश्यकसूत्र, आचारदिनकर, त्रेशठश लाका पुरुष चरित्रमें सर्व लिखा है, तांहांसें देख लेनां.

और इस वर्त्तमान कालमें जो चारों वेद है इनकी उत्पत्ति मेक्कर मो क्षमूलर साहिब अपने बनाये संस्कृत साहित्य ग्रंथमें तो ऐसा लिखते हैं, कि वेदोमें दो भाग है, एक छंदोभाग, दूसरा मंत्र भाग है, तिनमें छं दोभागमें इस प्रकारका कथन है, जैसें अज्ञानीके मुखसें अकस्मात् वचन निकला हो, तैसें इसकी उत्पत्ति एकत्तीससौ वर्षसें हूइ है, और मंत्रभागकों बने हूये उनतीससो वर्ष हूये हैं. इस लिखनेसें क्या आश्चर्य है? जो कि सीने उलट पुलटके फेर नवीन वेद बना दीयें हों. इन वेदों ऊपर उवट, सायण, रावण, महीधर, अरु शंकराचार्यादिकोंनें भाष्य बनाये हैं, टीका, दीपिका, रची हैं, फेर अब उन प्राचीन भाष्य दीपिकाकों अयथार्थ जा नकें दयानंदसरस्वती स्वामि अपणें मतके अनुसार नवीन भाष्य बना रहे है, परंतु पंडित ब्राह्मण लोक, दयानंद सरस्वतीके भाष्यकों प्रामा णिक नही मानते हैं अब देखा चाहियें क्या होता है? और जैनमत वालोंनेंतो जबसें उनके शास्त्रोंके लिखने मुजब आर्य वेद, बिगाडे गये उसीदिनसें वेदोकों माननें छोड दीये हैं ॥ इतिवेदोत्पत्तिः ॥

जब श्रीऋषभदेवजीका कैलास पर्वतके उपर निर्वाण हूआ, तब सर्व देवता निर्वाण महिमा करनेकों आये, तिन सर्व देवताओंमेंसूं अग्निकुमार देवतानें श्रीऋषभदेवकी चितामें अग्नि लगाइ, तबसेंही यहश्रुति लोकमें प्र सिद्ध हूइ है "अग्निमुखावैदेवा" अर्थात् अग्निकुमार देवता सर्वदेवताओंमें मुख्य है, और अल्पबुद्धियोंनेंतो यह श्रुतिका अर्थ ऐसा बनालीया है कि अग्निजो है, सो तेतीसक्रोड देवताओंका मुख है. यह प्रभुके निर्वाणका स्वरूप सर्व आवश्यक सूत्रसें जान लेनां.

जब देवताओंने श्रीऋषभदेवकी दाढा वगैरे लीनी, तब श्रावक ब्राह्मण मिलकर देवतायोंकों अतिभक्तिसें याचना करते हूये, तव वे देवता तिनकों बहुत जान करकें बडे यत्नसें याचनेके पीछे हूये देख कर कहते हूये कि

अहो याचका ! अहो याचका तवहीसें ब्राह्मणोंकों याचक कहने लगे, तब ब्राह्मणोने श्रीऋषभदेवकी चितामेसें अग्नि ले कर अपने अपनें घरोमें स्थापन करते हूये, तिस कारणसें ब्राह्मणकों आहिताग्नय कहने लगे.

श्री ऋषभदेवकी चिता जले पीछें दाढादिक सर्व तो देवता ले गये, शेष नस्म अर्थात् राख रहगयी सो ब्राह्मणोने थोडी थोडी सर्व लोकोंको दीनी, तिस राखकों लोकोने अपणे मस्तक ऊपर त्रिपुंडाकारसें लगायी, तबसें त्रिपुंडलगानां शुरु हूआ. इत्यादि बहुत व्यवहार तबसेंही चला है.

जब नरतने कैलास पर्वतके उपर सिंहनिषद्या नामा मंदिर बनाया, उ समे आगे होनेंवाले त्रेवीश तीर्थकरोंके और श्री ऋषभदेवजीकी मिलकर चोवीश प्रतिमाकी स्थापना करी, और दंडरत्नसे पर्वतको असे छीला कि जिस उपर कोइ पुरुष पगोंसे न चढ सके उसमें आठ पद (पगथीए) रखे इसी वास्ते इस कैलास पर्वतका दूसरा नाम अष्टा पद कहते है, तब सेंही कैलास महादेवका पर्वत कहलाया महादेव अर्थात् बडेदेव सो ऋ षभदेव तिसका स्थान कैलास पर्वत जानना

नरत अरु बाहुबलि यह दोनी दीक्षा लेकें मोक्ष गये,तब नरतके पीछें सूर्ययश गद्दी ऊपर बैठा, तिसकी औलाद सूर्यवशी कहलाये, तिसके पीछें सूर्ययशका बेटा महायश गद्दी उपर बैठा, असेही अतिबल, महाबल, ते जवीर्य, कीर्त्तिवीर्य अरु दंडवीर्य, ये आठ अनुक्रमसे अपने अपने बापकी गद्दी उपर बैठे, अपने अपने राजका प्रबध करते रहे, परतु नरतके राजसे इनोंने आधा (तीन खंडका) राज्य करा, और अते नरतकी तरे राज्य छोड कर मोक्षमे गये, इनके पीछें गद्दी ऊपर असख पाट हूये, तिनकी व्यवस्था चित्रांतरगंडिकासें जान लेनी यावत् जितशत्रूराजा हूये ॥ इति सक्षेपत. श्रीऋषभाधिकार सपूर्ण ॥

अब अजितनाथ स्वामीके वखतका स्वरूप लिखते है. अयोध्या नग रीमे श्रीनरतके पीछें जब असख्य राजा हो चुके, तब इक्ष्वाकुवशमे जित शत्रु राजा हूआ, विनीता नगरीकाही दूसरा नाम अयोध्या है, परतु अब जो अयोध्या है सो वो अयोध्या नहीं वो तो कैलास पर्वतके पास थी, और यह तो नवीन अयोध्या उसके नामसें वसी है, जितशत्रु राजाका छोटा नाइ सुमित्र युवराज था, जितशत्रुकी विजया देवी राणी थी,

तिसके चौदह स्वप्न पूर्वक अजितनाथ नामा पुत्र हूआ, और सुमित्रकी राणी यशोमतीकोंभी चौदह स्वप्न देखने पूर्वक सगरनामा पुत्र हूआ जब दोनों यौवनवंत हूए तब जितशत्रु और सुमित्रतो दीक्षा लेकें मोक्ष रूप हो गये. तब श्रीअजितनाथ राजा हूये अरु सगर युवराजा हूये कितनेक काल राज करकें श्री अजितनाथजीने तो स्वयमेव दीक्षा ले कर तप करा, और केवलज्ञान पा कर दूसरा तीर्थंकर हूआ. पीछें सगर राजा हूआ, सो सगर दूसरा चक्रवर्ति हूआ है. यह सगर राजाने भरतकी तरें षट् खंमका राज्य करा, यह सगर राजाके जन्हु कुमार प्रमुख साठ हजार बेटे हूये, तिनोंनें दंम रत्नसें गंगा नदीकों अपने असली प्रवाहसें फेरके और कैलासके गिरदनवाह खाइ खोदके उस खाइमें गंगाकों लाकें गेरा, क्योंकि उनोंनें विचार करा था कि हमारे वडे भरतने जो इस पर्वत ऊपर सुवर्णरत्नमय श्रीऋषभादि तीर्थंकरोंका मंदिर बनाया हैं, तिसकी रक्षा वास्ते इस पर्वतके चारों उर खाइ खोद कर उसमें गंगा फेर देउं, जिससें तीर्थकी विशेष रक्षा हो जावेगी, तिन साठ हजारकों नाग देवताने मार दीया, क्योंकि खाइ खोदने और जल भरनेसें उनको तकलीफ पहुची थी, तब गंगाके जलनें देशमे वडा उपद्रव करा, तब सगरराजाका पोता जन्हुका बेटा भगीरथने सगरकी आज्ञासें दंम रत्नसें भूमि खोदके गंगाकों समुद्रमें मिलाया, इसी वास्ते गंगाका नाम जान्हवी और भागीरथी कहा जाता है, सगरराजाने श्रीशत्रुंजय तीर्थ ऊपर श्रीभरतके बनाये ऋषभदेवजीके मंदिरका उद्धार करा, तथा और जैनतीर्थोंकाभी उद्धार करा,तथा यह समुद्रभी भरतक्षेत्रमें सगरही देवताके सहाय्यसें लाया, लंकाके टापूमें वैताढ्य पर्वतसें सगरकी आज्ञासें घनवाहन पहिला राजा हूआ, और लंकाके टापूका नाम राक्षसद्वीप है, तिसका यह हेतु हैकि घनवाहन राजाके वंसके राक्षस कहलाये, इसी वंसमें राजा रावण और बिभीषणादि हूये हैं. इत्यादि सगरचक्रवर्त्तीके समयका हाल त्रेशठ शलाका पुरुष चरित्रसें जान लेनां, क्योंकि तिस चरित्रके तेत्तीस हजार काव्य हैं. इस वास्ते मैं सारा हाल उसका इस ग्रंथमें नहीं लिख सक्ता हूं, परंतु संक्षेप मात्र वृत्तांत लिखुंगा. सगरचक्रवर्त्ति राज्य करकें पीछें श्री अजितनाथजीके पास दीक्षा ले कर, संयम तप करकें केवलज्ञान पा

कर मोक्ष पहूंचे, और अजितनाथ स्वामीजी समेतशिखर पर्वतके ऊपर शरीर छोडके मोक्ष गये, श्रीऋषभदेव स्वामीके निर्वाणसें पचाश लाख कोडी सागरोपमके व्यतीत हूया श्रीअजितनाथ तीर्थंकरका निर्वाण हूआ तिनोंके पीछें तीस लाख कोडी सागरोपम व्यतीत हूये, श्रीसंभवनाथजी तीसरे तीर्थंकर हूये, राज्य सर्व सूर्यवंशी, चंद्रवंशी, और कुरुवंशी, आदिक राजाओंके घरानेमें रहा ॥ इति श्रीअजितनाथ और सगरचक्रवर्तीका अधिकार संपूर्ण ॥

अब श्रावस्ती नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी जितारिराजा राज्य करता था, तिसकी सेना नामें पटराणी थी, तिनोंका संभव नामा पुत्र तीसरा तीर्थंकर हूआ, यह चोवीसही तीर्थंकरोंका वर्णन प्रथम परिछेदमे यंत्र और वार्त्तामें लिख आये है. इस वास्ते यहा संक्षेपसे लिखेगे और तीर्थंकरोके आपसमें जो अंतरकाल है सोभी यंत्रोंमें देख लेनां इति तृतीय तीर्थंकरवृत्तांत

इनके पीछें अयोध्यानगरीमे इक्ष्वाकुवंशी संवरराजाकी सिद्धार्था नामक राणी तिनोंका पुत्र अभिनंदन नामक चौथा तीर्थंकर हूआ पीछें अयोध्या नगरीमे इक्ष्वाकुवंशी मेघराजाकी सुमंगला राणी तिनोकापुत्र सुमतिनाथ नामक पांचमा तीर्थंकर हूआ, पीछें कौसंबी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी श्रीधरराजाकी सुसीमा राणी तिनोका पुत्र पद्मप्रभनामक छठा तीर्थंकर हूआ, पीछे वाणारसी नगरीमे इक्ष्वाकुवंसी प्रतिष्ठराजाकी पृथ्वी नामाराणी तिनोंका पुत्र श्रीसुपार्श्वनाथ नामा सातमा तीर्थंकर हूआ, पीछे चंद्रपुरी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी महासेन राजाकी लक्ष्मणा नामे राणी तिनोंका पुत्र श्री चंद्रप्रभ नामा आठमां तीर्थंकर हूआ, पीछें काकंदी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी सुग्रीवराजाकी रामा नामक राणी तिनोका पुत्र श्रीसुविधिनाथ अपरनाम पुष्पदंत नामक नवमा तीर्थंकर हूआ.

यहा तक तो सर्व ब्राह्मण जैनधर्मी श्रावक और आर्य चारों वेदोंके पढने वाले बने रहे, जब नवमे तीर्थंकरका तीर्थ व्यवछेद हो गया, तबसे ब्राह्मण मिथ्यादृष्टि और जैनधर्मके द्वेषी और सर्व जगत्के पूज्य कन्या, भूमि, गोदानादिकके लेने वाले, सर्व जगत्में उत्तम और सर्वके हर्त्ता कर्त्ता मतोंके मालक बन गये क्योंकि शूना घर देखके कुत्तानि आटा खा जाता है, और जो जगत्मे पाखंड तथा बुरे बुरे देवतादिकोकी पूजा

है, तथा औरजी जो जो कुमार्ग प्रचलित हूवा है, वे सर्व इनोंहीने चलाये हैं, मानो आदीश्वर जगवानकी रची हूइ सृष्टिरूप अमृतमें जहर मालने वाले हूये, क्योंकि आगे तो जैनमतके और कपिलके मतके विना और को इजी मत नहीं था कपिलके मतवालेजी श्रीआदीश्वर अर्थात् रुषजदेवकोही देव मानते थे, निदान यह इस हुंमा अवसर्प्पिणिमें आश्चर्य गिना जाता है.

तीस पीछें जद्दिलपुरनगरमे इक्ष्वाकुवंशी दृढरथराजाकी नंदा नामा राणी तिनोंका पुत्र श्री शीतलनाथनामा दशमा तीर्थंकर हूआ, इनही तीर्थंकरके शासनमें हरिवंश उत्पन्न हूआ है, तिसकी कथा लिखते हैं.

कौशांबिनगरीमें बीरा नामा कोली रहताथा, तिसकी वनमाला नामा स्त्री अत्यंत रूपवंती थी सो नगरके राजाने छीनकें अपणी राणी बना लेइ, बीरा कोली स्त्रीके विरहसें बावला हो गया हा वनमाला हा वनमाला ऐसें कहता हूआ नगरमें फिरने लगा एकदा वर्षाकालमें राजा वनमालाके साथ महिलके जरोखेमें बैठा था, तब राजा राणीनें बीरेकों तिस हालमें देखकें बडा पश्चात्ताप करा, अरु बिचार करने लगे कि हमने यह बहुत बुरा काम करा,इसी वखत वीजली गिरनेंसें राजा राणी दोनो मरके हरिवासक्षेत्रमें युगल स्त्री पुरुष हो गये, तब बीरा कोली राजा राणीका मरण सुनकें राजी हो गया पीछें तापस बनकें तप करा,अज्ञान तपके प्रजावसें किल्विष देवता हूआ तब अवधिज्ञानसें राजा राणिकों युगलीये हूये देख कर विचार करा कि यह जइक परिणामी और अल्पारंजी है, इस वास्ते मरके देवता होवेंगे, तो फेर में अपना वैर किससें लेऊंगा ? इस वास्ते ऐसा करुं किः— जिससें ये दोनों मरकें नरकमें जावे, ऐसा विचार के तिन दोनोंकों तहांसें उठा करकें जरत क्षेत्रमें चंपा नगरीके इक्ष्वाकुवंशी चंद्रकीर्त्ति राजा अपुत्रिया मरा था, लोक सब चिंतामें बैठे थे कि कौन यहांका राजा होवेगा ? पीछें तिस देवतानें ये दोनो उनकों सोंपे, और कहाकि यह तुमारा हरिनामा राजा हूआ, इसकी यह हरणी नामा राणी है, इनके खाने वास्ते तुमने फलमिश्रित मांस देनां और इनसें शिकारजी करानां तब लोकोंनें तैसेही करा वे दोनों पापके प्रजावसें मरके नरकमें गये, और उनकी औलाद सब हरिवंशकी कहलायें इसी वंशमें वसुराजा हूआ इति हरिवंशोत्पत्ति ॥ इनश्री शीतलनाथजीकाजी शासन विछेद गया, इसी

तरें पंदरहवे तीर्थंकर तक सात तीर्थंकरोंका शासन विछेद होता रहा, और मिथ्याधर्म बढ गये

तिस पीछें सिंहपुरी नगरीमें इक्ष्वाकु वंशी विष्णुराजा हूआ तिसकी विष्णु श्रीराणी तिनोंका पुत्र श्रीश्रेयांसनाथ नामा इग्यारमा तीर्थंकर हूआ, तिनके समयमें वैताढ्यपर्वतसे श्रीकंठ नामा विद्याधरके पुत्रने वज्रोत्तर विद्याधरकी बेटीकों हरके अपने बहनोइ राक्षसवंशी लंकाका राजा कीर्त्ति धवलकी शरण गया, तब कीर्त्तिधवलने तीनसौ योजन परिमाण वानर द्वीप उनके रहनेकों दीया, तिनोंके संतानोमेंसे चित्र विचित्र विद्याधरोने विद्यासें बंदरका रूप बनाया, तब वानर द्वीपके रहनेसें और वानरका रूप बनानेसें वानरवंशी प्रसिद्ध हूये, तिनोंहीकी औलादमें वाली और सुग्रीवादिक हूये है.

तथा श्रेयांसनाथके समयमें पहिला त्रिपृष्ठ नामा वासुदेव हरिवंशमें हूआ, तिसकी उत्पत्ति ऐसें है – पोतनपुर नगरमें हरिवंशी जितशत्रु नामा राजा हूआ, तिसकी धारणी नामा राणी थी, तिसका अचल नामा पुत्र और मृगावती नामा बेटीथी,सो अत्यंत रूपवान् औ यौवनवती थी, उसकों देखकें उसके पिता जितशत्रुने अपणी राणी बना लीनी तब लों कोंने जितशत्रु राजाका नाम प्रजापति रक्खा, अर्थात् अपनी बेटीका पति ऐसा नाम रक्खा, तबहीसें वेदोमे यह श्रुति लिखी गइ ' प्रजापतिर्वैस्वा दुहितरमभ्य ध्यायद्दिवमित्यन्यआहुरुषसमित्यन्येतामृश्योभूत्वा तदसावादि त्योभवत्" इसका भावार्थ यह है कि.–प्रजापतिब्रह्मा अपनी बेटीसे विषय सेवनेकों प्राप्ति होता हूआ, हमारें जैनमतवालोंकी तो इस अर्थसे कुछ हानी नहीं, परंतु जिनलोकोने ब्रह्माजीकों वेदकर्त्ता हिरण्यगर्भके नामसें इश्वर माना है, औ इस कथाकों पुराणोंमे लिखा है, उनका फजीता तो जरूर दूसरे मतवाले करेंगे ? इसमें हम क्या करे ? क्योंकि जो पुरुष अपने हाथोसेंही अपना मुंह काला करे, तब उसकों देखने वाले क्योंकर हासी न करेंगे ? यद्यपि मीमांसाके वार्त्तिककार कुमारिलनें इस श्रुतिके अर्थके कलंक दूर करणेकों मनमानी कल्पना करी है, तथा इस कालमे दयानंद सरस्वतीनेंभी वेदश्रुतियोंके कलंक दूर करनेकों अपनी बनाइ भा ष्यमे खूब अर्थोंके जोड तोड लगाये है, परंतु जो पुराणवालेने कथानक

लिखा हैं, तिसकों क्योंकर छिपा सकेंगें? इसमें यह मशल मशहूर है किः– बूंदकी बात तो विलायत गइ अब क्यों घडे रुडहाते हो अहा हमारे मतमेंतो वेदश्रुति और ब्रह्मा (प्रजापति) का अर्थ यथार्थही करा है. अरु जब त्रिपृष्ट और अचल दोनो योवनवंत हूये तब तिनोनें त्रिखंडका राजा अश्वग्रीवकों मारकें तीन खंडका राज्य करा.

तिस पीछें चंपा पुरीका इक्ष्वाकुवंशी वसुपूज्य नामा राजा हूआ, तिसकी जया नामा राणी तिनोंका पुत्रश्रीवासुपूज्यनाथ नामा बारहवा तीर्थंकर हूआ, तिनोके वारें दूसरा द्विपृष्ट वासुदेव और अचल बलदेव हूये. और इनका प्रतिशत्रु रावण समान तारक नामा दूसरा प्रतिवासुदेव हूआ, इन सर्व वासुदेव और चक्रवर्त्ती आदिकोंका संपूर्ण वरनन त्रेशठशलाका पुरुष चरित्रसें जान लेनां.

तिस पीछें कपिलपुर नगरमें इक्ष्वाकुवंशी कृतवर्मा नामा राजा हूआ, तिसकी श्यामा नामा राणी, तिनोंका पुत्र श्री विमलनाथ नामा तरेहवां तीर्थंकर हूआ, तिनोंके वारें तिसरा स्वयंभु वासुदेव और भद्रनामा बलदेव तथा मैरक नामा प्रतिवासुदेव हूये.

तिस पीछें अयोध्या नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी सिंहसेन राजा हूआ तिसकी सुयशाराणी तिनोंका पुत्र श्रीअनंतनाथ नामा चौदहवां तीर्थंकर हूआ, तिनके वारें चौथा पुरुषोत्तम नामा वासुदेव और सुप्रभनामा बलदेव तथा मधुकैटभ नामा प्रतिवासुदेव हूये.

तिस पीछें रत्नपुरी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी भानुनामा राजा हूआ, तिसकी सुव्रतानामा राणी तिनोंका पुत्र श्रीधर्मनाथ नामा पंदरहवां तीर्थंकर हूआ, तिनके वारे पांचमां पुरुषसिंह नामा वासुदेव और सुदर्शन नामा बलदेव तथा निशुंभ नामा प्रतिवासुदेव हूआ, यहांतक पांच वासुदेव हूयें सो पांचोही, अरिहंतोके सेवक अर्थात् जैनधर्मी हूये.

तिस पीछें पंदरहवे धर्मनाथ और शोलवें श्रीशांतिनाथजीके अंतरमें तीसरा मघवा नामा चक्रवर्त्ती और चौथा सनत्कुमार नामा चक्रवर्त्ती हूये.

तिस पीछें हस्तिनापुरी नगरीमें कुरुवंशी विश्वशेन राजा हूआ तिसकी अचिरा राणी तिनका पुत्र श्रीशांतिनाथ नामा हूवा सो पहिला गृहवासमें तो पांचमां चक्रवर्त्तिथा पीछे दीक्षा लेके केवली होकर शोलवां तीर्थंकर हूआ.

तिस पीछें हस्तिना पुर नगरमे कुरुवंशी सूरनामा राजा हूआ, तिसकी श्रीराणी तिनोंका पुत्र श्रीकुंथुनाथ हूआ, सो प्रथम गृहस्थावस्थामे छठा चक्रवर्त्ती था. अरु दीक्षा लीया पीछें सत्तरहवा तीर्थंकर हूआ

तिस पीछे हस्तिनापुरनगरीमे कुरुवंशी सुदर्शन नामा राजा, हूआ तिसकी देवी राणी, तिनोका पुत्र श्रीअरनाथ हूआ, सो गृहस्थावासमें तो सातवां चक्रवर्त्ति था और दीक्षा लीया पीछें अठारहवा तीर्थंकर हूआ.

अठारहवे और उन्नीसवे तीर्थंकरके अंतरेमे आठवां कुरुवंशी सुभूम नामा चक्र वर्त्ती हूआ यह सुभूमके वखतमेंही परशुराम हूआ इन दोनो का संबध जैनमतके शास्त्रोमे जैसे लिखा है तैसेमेंभी यहा लिख देता हूं

यह कथा योग शास्त्रमे ऐसे लिखी है कि, वसंत पुर नामा नगरमे उच्छन्नवंश नामा अर्थात् जिसका कोइभी संबधी नही था ऐसा अग्निक नामा एक लडका था सो अग्निक एकदा समये किसी साथवाराके साथ देशांतरको जाता हूआ मार्गमे साथसें भूलके जंगलमें एक तापसके आश्रममें गया, तब कुलपति तापसने तिसको अपना पुत्र बनाकें रखलीया, पीछें तहा अग्निकने बडाभारी घोर तप करा और बडा तेजस्वी हूआ, जगतमे यमदग्नि तापसके नामसें प्रसिद्ध हूआ इस अवसरमें एक जैनमति विश्वानर नामा देव और दूसरा तापसोका भक्त ध्वनंतरि नामा देव, यह दोनो देव परस्पर विवाद करने लगे तिससें विश्वानर तो ऐसा कहने लगाकि – श्रीअर्हंतका कहा धर्म प्रामाणिक है? और दूसरा कहने लगा कि तापसोका धर्म सच्चा है, तब विश्वानरने कहाकि दोनो धर्मके गुरुओंकी परीक्षा कर लो तिसमेभी अर्हंतधर्मके तो जघन्य गुरुजो होवे तिसकी और तापस धर्मके उत्कृष्ट गुरु जो होवें, तिसका धैर्य देख लो, तब मिथिला नगरीका पद्मरथ राजा नवाही जिन धर्मी हो कर भावयति हूआथा सो चंपानगरीमे गुरुओके पास दीक्षा लेने वास्ते जाताथा, तिसको पथमें तिन दोनो देवताओने देखा, तब रस्तेमे दुःख देनेवाले बहुत कंकरे बना दीये, तथा रस्तेके सिवाय दूसरे स्थानमें बहुत कीडे आदि जीव हरजगे बना दीये तब राजा भावयतिके भावोंमे कमल समान कोमल, नंगे पगोंसे उन कांटे कंकरोके उपर चला जाता है, पगोंमेंसुं रुधिरकी ततीरीयां छूटती हैं, तोभी जीवो संयुक्त भूमि ऊपर नही चलता है, तब देवता

र्योंने गीत नाटकका बडा प्रारंन करा तोनी वो राजा क्षोनायमान न हू
या तब दोनों देवता सिद्धपुत्रोंका रूप करकें राजाकों कहने लगे हे महा
नाग तेरी आयु अनि बहुत है. तुं स्वछंद नोगविलास कर क्योंकि यौवनमें
तप करनां ठीक नहीं इस वास्ते जब तूं वृद्ध हो जावेंगा, तब दीक्षा ले
लीजो यह बात सुन कर राजा कहने लगा यदि मेरा बहुत आयु है, त
ब मैं बहुत धर्म करुंगा क्योंकि जितना कंमा पाणी होता है. तितनीही कम
लकी नालिनी बढ जाती है और यौवनमें जो इंड्रियोंकों जीतनां है, सोइ अ
सली तप होता है. तब तिन देवतार्योंने जानां यह तो कदापि चलायमान
न होगा, पीछें वो दोनो देवता मिल कर सर्वसें उत्कृष्ट जमदग्नि तापसके पास
परीक्षा करणेंकों गये, तब तिनोंनें जिसकी वडवृक्षकी जटाकी तरें तो धरतीमें
जटा लग रही है, और पगोंमें सर्प्पोंकी बिंबीयां बन गइ हैं, असे हालमें
जमदग्निकों देखा, तब वो दोनोंदेवतानें देव मायासें जमदग्निकी दाढीमें
घोंसला बनाकर चिडा और चिडी बनकर घोंसलेमें दोनो बेठ गये पीछें
चिडा चिडीसें कहने लगा मैं हिमवंत पर्वतमें जाउंगा तब चिडी कहने
लगी मैं तुझे कनी न जाने देउंगी, क्योंकि तूं तहां जाके किसी और चि
डीसें आसक्त हो जावेंगा, फेर मेरा क्या हाल होवेगा? तब चिडा कहने
लगा कि जो मैं फिर कर न आउं, तो मुझे गौ घातका पाप लगे, तब
चिडी कहने लगी मैं तेरी शपथकों नहीं मानती हों, जो मैं सपथ (सौ
गंद) कहूं वो तूं करे, तो मैं जाने देउंगी, तब चिडेने कहा तूं कह दे तब
चिडी कहने लगी कि जो तूं किसी चिडीसें यारी करे तो इस जमदग्नि
का जो पाप है, सो तुझकों लगे. चिडाचिडीका असा वचन सुणके जम
दग्निकों क्रोधोत्पन्न हूआ तब दोनों हाथोंसें चिडा चिडीकों पकड लीया
और कहता हूआ कि मैं तो बडा डुष्कर तप जो पापोंका नाश करने वाला
है, सो कर रहां हों तो फेर मेरेंमें असा कौनसा पाप शेष रह गया है जिस्से
तुम मुझे पापी बतलाते हो? तब चिडा यमदग्निकों कहता हैं, हे ऋषि!
तूं हमारें उपर कोप मत कर. क्योंकि हमने झूठ नहीं कहा है, और जो
तेरेकों अपने तपका घमंम है, सो तप तेरा निष्फल है, क्योंकि तुमारे
शास्त्रोंमें लिखा है, जो "अपुत्रस्यगतिर्नास्ति" अर्थात् पुत्र रहितकी गति
नहीं यह तुमनें शास्त्रमें नहीं सुना? तो जिसकी शुनगति न हूइ तिस्सें

अधिक और पापी कौन है ? तब जमदग्निने शोचा कि हमारे शास्त्रमे तो जैसे चिडेने कहा है, तैसेही है तब मनमें विचारा जब मेरे स्त्री, और पुत्र नहीं तब मेरा सर्व तप ऐसा है, जैसा पाणीके प्रवाहमे मूतना, तैसा है, पीछें जमदग्निके मनमें स्त्रीकी चाहना उत्पन्न हूइ, यह देखके धनतरि देवता श्रावक जैनधर्मी हो गया अरु उहासे दोनो देवता अदृश्य हो गये और जमदग्नि तहासे उठके नेमिक कोष्टक नगरमे पहुचा तिस नगरमें जितशत्रुराजा था, तिसके बहुत बेटीया थी तिस राजा पासो एक कन्या मागु ? ऐसा विचार किया ? राजाभी आसनसें उठकें और हाथ जोडके कहता हूआ कि आप किस वास्ते आये हो ? और मुझे आदेश देओ क्या करुं ? तब जमदग्निने कहा मै तेरे पास तेरी एक कन्या मागने आया हू तब राजाने कहा मेरी सौ (१००) पुत्री है तिनमेसू जो नसी तुमको वाछे सो तुम लेल्यो, तब जमदग्नि कन्यायोके महिलमे गया और कहने लगा कि तुममेसे जिसने मेरी धर्मपत्नी (स्त्री) बनना है, सो कह देवे कि मै तुमारी स्त्री बनूगी, तब तिन राजपुत्रीयोने जटाला और पलित धौलेकेशोंवाला दुर्बल और भीख मागके खानेवाला जब देखा और उसका पूर्वोक्त वचन सुना तब सबोने थूका और कहा कि ऐसी बात कहते हूये तुझको लज्जा नही आती है ? यह बात सुनकर जमदग्निको बडा क्रोध चढा, तब विद्याके प्रभावसे उन राजपुत्रीयोको कूबडी और महाकुरूपवान् बना दीया, अरु आप तहासे निकलके महिलोके अंगनमें आया,तहा एक छोटी राजाकी बेटी रेणु पुजमे (मट्टीके ढेरमे) खेल रही थी, तिसको हाथमे बिजोरेका फल ले कर कहने लगा हे रेणुका ! तु मुझको वाछती है ? तब तिस बालिकाने बिजोरेको देखके हाथ पसारा तब मुनिने कहा मुझको यह वांछती है ऐसे कहकर मुनिने उसको ले लीया पीछे राजाने कितनीक गौआं और धन देकर लडकीका विवाह उसके साथ विधिसे कर दीया तब जमदग्निने शालीयोके स्नेहसे सर्व कन्यायोंको अच्छा कर दीया,और तिस रेणुका भार्याको लेकर अपणे आश्रममें आया पीछें तिस मुग्धा, मधुर आकृति, हरणीसमान लोचनाक्षीको प्रेमसें वृद्धि करता भया, जब जमदग्निको अंगुलियो ऊपर दिन गिणतेको वो रेणुका सुदर यौवन कामके लीला वनको प्राप्त हूइ, तब जमदग्निने

अग्निकी साक्षी करकें रेणुकासें फिर विवाह करा, जब रेणुका ऋतुकालकों प्राप्ति हूइ, तब जमदग्नि कहने लगा कि मैं तेरे वास्ते चरु साधता हूं,चरु "होममें डालनेकी वस्तुओंकों कहते हैं" जिस्सें सर्व ब्राह्मणोंमें उत्तम प्रताप वाला तेरेकों पुत्र होवेगा, तब रेणुकानें कहा हस्तिना पुरमें कुरुवंशी अनंतवीर्य राजाकों मेरी बहिन ब्याही है तिसके वास्ते तूं क्षत्रिय चरुभी साध्य,अर्थात् मंत्रोंसें संस्कार करकें सिद्धकर पीछे जमदग्निने ब्राह्मण चरु तो अपणी भार्या वास्ते अरु क्षत्रिय चरु तिस भार्याकी बहिन वास्ते सिद्ध करा तब रेणुकाने मनमें विचार कराकि मैं जैसें अटवीमें हरिणीकी तरें रहती हूं, तो मेरा पुत्रभी वैसेही जंगलोमें रहेगा, इस वास्तेमें क्षत्रिय चरु भक्षण करुं, जिस्सें मेरा पुत्र राजा होकें इस जंगल वाससें छुट जावे, ऐसा विचारकें क्षत्रिय चरु खा लीया और ब्राह्मण चरु अपनी बहिनकों भक्षण कराया; तब तिन दोनोंके दो पुत्र हूये तिसमें रेणुकाके तो राम नामक पुत्र हुये, और रेणुकाकी बहिनके कृतवीर्य पुत्र हूये, क्रमसें दोनों बडे हूये, राम तो आश्रममें पला, और कृतवीर्य राज महेलोंमें पला, राम तो क्षत्रीतेज अर्थात् क्षत्रिय पणेंकी तेजी देखानें लगा अन्यदा एक विद्याधर अतिसार रोग वाला तिस आश्रममें आ गया, अतिसारके प्रभावसें आकाशगामिनी विद्या भूल गया, तब तिस मांदे विद्याधरकी रामने औषध पथ्यादि करकें भाइकी तरें सेवा करी, पीछे तिस विद्याधरने तुष्टमान होके रामको परशुविद्या दीनी, तब रामभी सरकडेके वनमें जाकर तिस विद्याकों सिद्ध करता हूआ, तिस विद्याके प्रभावसें राम परशुराम नाम करकें जगत्में प्रसिद्ध हूआ, एकदा अवसरमें अपना जमदग्नि पतिकों पूछकें रेणुका बडी उत्कंठासें अपणी बहिनके मिलने वास्ते हस्तिना पुरमें गइ, तहां रेणुकाकों अपणी शालि जान कर अनंतवीर्य राजा हंसी मशकरी करने लागा, और रेणुकाका बहुत सुंदर रूप देख कर कामातुर होकें उसके साथ निरंकुश हो कर विषय सेवन करने लगा, तब अनंतवीर्यके भोगसें रेणुकाके एक पुत्र जन्मा, पीछे जमदग्नि पुत्र सहित रेणुकाकों आश्रममें ल्याया क्योंकि पुरुष जब स्त्रीयोंका लुब्ध हो जाता है तब बहुल ताइसें कोइभी दोष नहीं देखता है, जब परशुरामने अपनी माताकों पुत्र सहित देखा, तब क्रोधमें आकर परशुसें अपनी माताका और तिस लड

केका दोनोंका शिर काट माला, जब यह वृत्तात अनंतवीर्य राजाने सुना, तब क्रोधमे नर कर और फौज ले कर जमदग्निका आश्रम जाल फूक तोड फोक गेरा और सर्व तापसोंको त्रास मान करा, तब तापसोने दौडते हूयां जो रोला करा तिसकों परशुरामने सुना और सारा वृत्तात सुनके परशु लेके राजाकी सेना ऊपर दोडा, परशुरामने परशुसे राजा और राजाकी सेना सुनटोंकों काष्ठकी तरे फाडके गेर दीया, आप पीछें आश्रममें चला गया, उधर प्रधान राजपुरुषोंनें अनतवीर्यके बेटे कृतवीर्यको राजसिंहासन उपर बैठाया, परंतु वो उमरमे छोटा था, एकदिन अपणी माताके मुखसे अपने पिताके मरणेका वृत्तात सुनके सर्पके मंसे हूयेकी तरें आ कर जमदग्निकों मार दीया, तब परशुराम आपना पिताका वध देखकें क्रोधमें जाज्वल्ल मान हो कर हस्तिनापुरमे आकें कृतवीर्यकों मारकें आप राजसिंहासन उपर बैठ गया, क्योकि राज्य जो है, सो पराक्रमके आधीन है, तब कृतवीर्यकी तारा नामा गर्नवती राणी परशुरामके नयसे दौडकर किसी जंगलमें तापसोके आश्रममे गइ, तव तिन तापसोनें दया करकें तिस राणीको अपने मठके नौहरेमें निधानकी तरें छिपाके रक्खा, तहां तिस राणीके चौदह स्वप्न सूचित पुत्र जन्मा तिसका नाम तिसकी माताने सुनूम रक्खा, क्षत्रिय जो जहां मिलता है, तहांही परशुरामका कुहाडा जाज्वलमान होजाता है, तव परशुराम परशुसे क्षत्रियोका शिर काट देता है, अन्यदा परशुराम जिहा छिपी हूइ राणी पुत्रसे रहती थी तिस आश्रममे आया तहा परशुरामका परशु जाज्वलमान हूआ, तव परशुरामनें तापसोको पूछा, क्या यहा कोइ क्षत्रिय है, तव तापसोने कहा हम गृहस्थावासमे क्षत्रिय थे, तव परशुरामनेंनी क्षत्रियोंको छोडके सात वार निःक्षत्रिय पृथ्वी करी, अर्थात् सात वार चढाइ करकें अपणी जाणमें कोइनी क्षत्रिय वाकी नहीं छोडा, जैसे अग्नि, पर्वत ऊपर घासको नहीं छोडती है, तैसे परशुरामनेनी जो जो क्षत्रिय राजादि प्रसिद्ध थे, तिनोंकों मारकें तिनोकी दाढासे एक थाल नरा, और परशुरामने छाना निमित्तियेकों पूछा कि मेरामरणो किसके हाथसे होगा ? तव निमित्तियेनें कहा कि जो तैने दाढासे थाल नरा है, सो थाल जिसके देखनेसे दाढाकी क्षीर वन जायेगी, और इस सिंहासन ऊपर बैठके जो तिस क्षीरको खा

यगा, तिसके हाथसें तेरा मरणा होवेगा, यह सुन कर परशुरामने दान शाला बनाइ, और दानशालाके आगें एक सिंहासन रचाया, तिस ऊपर क्षत्रियोंकी दाढांवाला स्थाल रखवाया, अब इधर तापसोंके आश्रममें प्रतिदिन तापस सुभूम बालककों लाड लडाते, खिलाते, अंगणके वृक्षकी तरें वृद्धि करते हूये रहते है, इस अवसरमें मेघ नामा विद्याधर कोइ निमित्तियेकों पूछने लगा कि मेरी जो पद्मश्री कन्या है, तिसका वर कौन होवेगा? तब तिस निमित्तियेने सुभूम वर बतलाया, और उसका सर्व वृत्तांतभी सुना दीया, तब मेघ विद्याधरनें अपनी बेटी सुभूमकों व्याही, और तिसकाही सेवक बन गया एकदा कूपके मैंडककी तरें और कहीं जानेमें रहित हूआ होया सुभूम अपनी माताकों पूछनें लगा कि हे माता! इतनाही लोक है, कि जिसमें हम रहते हैं, क्या इस्सें अधिकभी है? तब माता कहने लगी हे पुत्र! लोक तो अनंत है, तिसमें मक्खिके पग जितनी जगामें यह आश्रम है, इस लोकमें बहुत प्रसिद्ध हस्तिना पुर नगर है, तिस नगरीका राजा तेरा पिता कृतवीर्य था, परंतु परशुराम तेरे पिताकों मारकें हस्तिना पुरका राजा बन गया है, और तिस परशुरामने निःक्षत्रिय पृथ्वी कर दइ है, तिस परशुरामके भयसें हम यहां आश्रममें छिपे हूये बैठे हैं. अपनी माताका यह कहना सुनके सुभूम भौमकी तरें अर्थात् मंगलके तारेकी तरें लाल हूआ, और तहांसें निकलके सीधा हस्तिना पुरमें आया, तब लोकोंने पूछा कि तूं ऐसा अत्यद्भुत सुंदर किसका बेटा हैं? तब कहा मैं क्षत्रियका पुत्र हूं तब लोकोंने कहा तूं यहां ज्वलती आगमें क्यों आया? तब तिसने कहा मैं परशुरामकों मारनेके वास्ते आया हूं, तब लोकोने बालक जानके उसकी बात उपर कुछ ख्याल न करा अब सुभूम सिंहकी तरें उस पूर्वोक्त सिंहासन उपर जाकें बैठा, और तहां देवताके विनियोगसें दाढाकी खीर बन गइ, तिसकों सुभूम खाने लग गया तब तहां जो रखवाले ब्राह्मण थे, वे सर्व सुभूमको मारणेकों उठे, तब मेघनाद विद्याधरने सब ब्राह्मणकों मार दीया तब कंपता हूआ और दांतोंकों चावता हूआ, क्रोधमें भरा हूआ, ऐसा परशुराम कोहाडा (परशु) लेके सुभूमकों मारने आया परशुरामने सुभूमके मारणेकों परशु चलाया वो परशु सुभूमतक पहूंचनेंसें पहिलाही आगके अंगारेकी तरें बुझ गया,

विद्या देवी जो थी, सो सुभूमके पुण्य प्रभावसे परशुकों छोड के भाग गइ तब सुभूमनें शस्त्रके अभावसें थालही उठाके परशुरामकों मारा तिस थालका चक्र बन गया, तिस चक्रने परशुरामका मस्तक काट गेरा तिस चक्रसेही सुभूम आठवां चक्रवर्त्ति हूआ

इस कथा उपर लोकोंनें जो यह कथा बना रक्खी, सो ठीक नही है,सो कथा कहते है जैसें कि परशुराम परशुसे क्षत्रियोको काटता हूआ राम चइजीके पास पहूचा और परशुसें रामचइजीकों मारने लगा, तब राम चइजीने नरमाइसे पग चपी करकें उसका तेज हर लीया, तब परशुरामका परशु हाथसे गिर पडा, और फिर न उठा सका यह श्रीरामचइ नही था, परंतु यहतो सुभूम नामा आठमा चक्रवर्त्ती था. जिसने परशुरामका काम तमाम कीया, इस कथाके बनाने वालोनें परशुरामकी हीनता दूर कनेरको श्रीरामचइजीका संबंध लिख दीया है, असली सुभूमचक्रवर्त्ति लिखने वालोने यहभी शोचा होगा एक अवतारने दूसरे अवतारका अंस खीच लीया, इसमें परशुरामकी लघुता न होवेगी, परंतु यह नहीं शोचा होगा कि दोनो अवतार अज्ञानी बन जायेगे जब परशुराम आपही अपने अंशको कोहाडेसे काटने लगा, तब तिसमे और अधिक अज्ञानी कोन बनेगा ? जब सुभूम चक्रवर्त्ति आठमा हूआ, तब जैसे परशुरामने सात वार निःक्षत्रिया पृथ्वी करी थी. तैसे सुभूमने पिछले वैरसे इक्कवीश वार निर्ब्राह्मण पृथ्वी करी अपणी जाणमे कोइभी ब्राह्मण जीता नही छोडा, इसी वास्ते इन राजायोंको ब्राह्मणोने दैत्य, राक्षसके नामसे पुस्तकोंमे लिख दीया है,यह दोनो मरके अधोगतिमे गये ॥ इति परशुराम और सभूमचक्रवर्त्तिका संबध संपूर्ण ॥

यह सभूमचक्रवर्त्तिसे पहिला इसी अंतरेमे छठा पुरुषपुंमरीक वासुदेव तथा आनंद नामा बलदेव और बलि नामा प्रतिवासुदेव हूये,तथा सुभूमके पीछें इस अंतरेमें दत्त नामा सातमा वासुदेव तथा नंद नामा बलदेव और प्रल्हाद नामा प्रतिवासुदेव हूये

तिस पीछें मिथुला नगरीमे इक्ष्वाकुवंशी कुंभ राजा हूआ, तिसकी प्रभावती राणी तिनकी पुत्री मल्लिनाथ नामा एगुणवीसमा तीर्थंकर हूआ,

तिस पीछें राजगृह नगरीमे हरिवंशी सुमित्र राजा हूया, तिसकी

पद्मावती राणी तिनका पुत्र मुनिसुव्रतनामा वीशमा तीर्थंकर हूआ, इ नोंकें समयमें महापद्म नामा नवमा चक्रवर्त्ती हूआ, तिसका संबंध त्रेशठ शलाका पुरुष चरित्रसें जान लेनां परंतु तिसके नाइ विष्णु कुमारका थो डासा संबंध यहां लिखते है.

हस्तिना पुर नगरमें पद्मोत्तर नामा राजा तिसकी ज्वालादेवी राणी तिनका बडा पुत्र विष्णुकुमार, और छोटा नाइ महापद्म हूआ, तिस अव सरमें अवंती नगरीमें श्रीधर्मनामा राजेके मंत्रि नमुचि अपर नाम बल यह नामके मिथ्यादृष्टि ब्राह्मणने श्रीमुनिसुव्रत तीर्थंकरका शिष्य श्री सुव्रताचार्यके साथ अपनी मतका विवाद करा, वादमें हार गया. तब रा त्रिकों तलवार लेकें आचार्यकों मारने चला, रस्तेमें पग थंनये यह स्व रूप राजानें सुनके अपनें राज्यसें बाहिर निकाल दीया तब नमुचि बल तहांसें चलके हस्तिना पुरमें युवराज महापद्मकी सेवा करने लगा किसी काममें तुष्ट मान होकें महापद्मनें तिसकों यथेछा वर दीया पीछें पद्मोत्तर राजा और विष्णु कुमार दोनोंनें सुव्रत गुरुके पास दीक्षा ले कें पद्मोत्तर मोक्ष गया, और विष्णु कुमार तपके प्रनावसें महालब्धिमान् हूआ इस अवस रमें सुव्रताचार्य फेर हस्तिना पुरमें आये, तब नमुचिबलनें विचारा कि यह वैर लेनेका अवसर है, तब महापद्म चक्रवर्त्तीसें विनति करीकिः—मैंनें जैसें वेदोमें कहा है,तैसें एक महायज्ञ करना है इस वास्ते मैं पूर्वोक्त वर मांगना चाहाता हूं, तब महापद्मने कहा मांग तब नमुचिने कहा मुझे कितनेक दिन तक आपनां सर्व राज दे देवो, यह सुनकर महापद्मनें उसके कहे दिन तक सर्व राज उसें दे कर आप अपने अंतेउरोमें चला गया, तब नमुचिबलने नगरसें निकलके यज्ञ वास्ते यज्ञ पाडा बनाया, उसमें दी क्षा ले के आसन उपर बैठा तब जैनमतके साधु छोडके दूसरे सर्व पाखं मी निक्षु और गृहस्थ नेटना ले के आये नेट दे के सर्वोंने नमस्कार करा, तब नमुचिबलने पूछा कि नहीं आया होये, ऐसा तो कोइ रहा नहीं ? तब लोकोंनें कहा कि जैनमती सुव्रताचार्य वर्जके सर्व दर्शनी आ गये हैं, तब नमुचिबलने यह छिद्र प्रगट करकें और क्रोधमें नरकें सिपा ही बोलानेंकों नेजे, और कहला नेजा कि राजा चाहो कैसाही हो, तो नी सर्वकों मानने योग्य है, उसमेंनी साधुओकों तो विशेष करकें मान

ना चाहियें, क्योकि राजासे उपरांत ऐसे अनाथ लिंगीयोको रक्षा करने वाला कौन है? तथा मेरा तुम कुछ करने समर्थ नहीं. और वडे अनि मानी हो, तथा हमारे धर्मके निंदक हो इस वास्ते मेरे राजसे बाहिर हो जाउ, जो रहेगा, उसको में मार डालूंगा इसमें मुझे पापनी नहीं होगा, तब गुरुने आ कर मीठे वचनसे कहा कि हमारा यह कल्प नहीं जो गृहस्थके कार्यमे जाना, परतु हम अनिमानसेही नही आये ऐसा मत समझना क्योकि साधु समनावसें अपने धर्मकृत्यमे लगे रहते है, तब नमुचिवल अति शातिवृत्तिवाले मुनियोकों कठोर हो कर कहनें लगा कि सात दिनके अदर मेरे राजसे बाहिर हो जाउ जो रहेगा, सो मारा जायगा, यह सुनके सब साधु अपने तपोवनमे आये, और शोचने लगे कि अब क्या उपाय करीये? तब एक साधु कहने लगा कि महापद्म च क्रवर्त्तिका बडा नाइ विष्णुमुनि लब्धिपात्र है, अर्थात् वडी शक्तिवाला मेरु पर्वत ऊपर है, तिसके कहनेसे यह नमुचिवल प्रशात हो जावेगा, इस वास्ते कोइ चारण साधु उसको यहां बोला ल्यावे तो ठीक है तब एक साधु बोला कि मेरी उहा मेरु पर्वत पर जानेकी तो शक्ति है, परतु पीछें आवनेकी शक्ति नही हे तब गुरु कहने लगे कि तुमको पीछा विष्णु मुनिही यहा ले आवेगे, तुम जाउ तब वो साधु लब्धिसे एक क्षणमें तहां गया, और सर्व वृत्तात सुनाया, तब विष्णु मुनि उस साधुकोनी साथ ले कर तत्काल गुरुके पास आके वदना करी, पीछें गुरुकी आज्ञासे एकिलाही राज सनामे आया उहा एक नमुचिवलके विना और सर्व सनाके लोकोनें उठके वदना करी तब विष्णु मुनिने धर्मोपदेश देकर कहाकि नि सगी सा धुओसे वैर करणां, यह महा नरकका कारण है, क्योकि साधु किसीका कुछ विगाडते नही, और जगत् तो और वडे पुरुषोको नमस्कार करते है, किसी शास्त्रमे मुनि निंदे नहीं है, तो फेर यह आश्चर्य है,कि –लुब्ध, क्ष णिक राजके पानेसे अधे अ धम पुरुष अपणेको साधुओंसे नमस्कार क राया चाहते है, और नमुचिवलको कहा तू इस बुरे कामको जानेदे जिस्से साधु सब सुखसे रहे, और तू क्युं मत्सरमें मगन होके अपणा आप विगाडा चाहता है? साधु चौमासेमें विहार करते नहीं क्योंकि चौ मासेम जीवोंकी वहुत उत्पत्ति हो जाती है और सर्व जगे तेराही राज्य

है, तो सर्व साधु सात दिनमें कहां चले जाय? तब नमुचि बल कुकाष्टकी तरें होकर बोला कि बहुत कहनेंसें क्या है? पांच दिनसें उपरांत जो कोइ तुमारा साधु मेरे राज्यमें रहेगा, तो मैं उसकों चोरकी तरे बध करुंगा, और तूं हमारे माननें योग्य है, उसी वास्ते तूं जाकर साधुओंकों कहदे जो कि जीवनां चाहते हो तो नमुचिके राज्यसें बाहिर चले जाउ क्योंकि राज्य ब्राह्मणका है, और तेरे मान्यके रहने वास्ते तीन कदम अर्थात् तीन फिंग जगा देता हूं, तिस्सें बाहिर किसी साधुकों देखूंगा तिसका शिरछेद करुंगा, तब विष्णुमुनिने विचारा कि यह साम अर्थात् मीठे वचनोंके योग्य नहीं यह तो बडा पापी साधुओंका घातक है, इसकी जडही उखाडनी चाहिये. तब विष्णुमुनिने कोपमें आ कर वैक्रिय लब्धिसें लाख योजनकी देह बनाइ, एक फिंगसेंतो भरतक्षेत्रादि मापा और दूसरी फिंग पूर्वापर समुद्र उपर धरी और तीसरी फिंग नमुचिबलके शिर ऊपर रखके सिंहासनसें हेठ गेरके धरतीमें घसोड दीया नमुचि मरकें नरकमें पहुंच गया और विष्णुमुनिकों देवताओंनें कानोमें मधुर गीत सुनाकर शांत करा, तब शरीरकों संकोचके गुरोंके पास जाकर आलोचना करी, पापका प्रायश्चित्त लेकर विहार कर गया, जप, तप, कर संयम पालकें मोक्षगया.

इस कथासें ऐसा मालूम होता है कि ब्राह्मणोने पुराणोंमें जो लिखा है, कि विष्णु भगवान्नें वामन रूप करकें यज्ञ करते बलिराजाकों छला, सो यही विष्णुमुनि अरु नमुचिकी कथाकों बिगाडके अपने मतके अनुसार औरकी और कथा बना लीनी है, क्योंकि श्रीभगवान्कों क्या गरज थी, कि जो धर्मी बलिराजा यज्ञ करने वालेके साथ छल करता? यह तो निःकेवल बुद्धि हीनोका काम है, जो अपनी बेटीयोंसें तथा परस्त्रीयोंसें विषय सेवन करा कहनां, तथा भगवान्ने झूठ बोला, औरोंसें बोलाया, चोरी करी, औरोंसें कुशील भगवान्ने सेवन करा, छलसें मारा, कपट करा, इत्यादि कामतो नीचजनोंके करनेके हैं, श्री वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर यह काम कभीभी नहीं करता तो और करने वालेकों परमेश्वर भूलकेभी न माननां चाहियें ॥ इति विष्णुमुनि तथा नमुचिबलका संबंध समाप्त ॥

वीसमें और इक्कवीसमें तीर्थंकरके अंतरमें श्री अयोध्या नगरीके दशरथराजाकी कौशल्या राणीका पद्म (रामचंद्र) नामा पुत्र हूवा, सो आ

ठमा बलदेव और दशरथराजाकी सुमित्रा राणीका पुत्र नारायण अपर नाम लक्ष्मण सो आठमा वासुदेव हूआ जिनोंका प्रतिशत्रु रावण प्र तिवसुदेव लंकाका राजा हूआ सो जगतमें प्रसिद्ध है इन तीनोंका य थार्थ स्वरूप पद्मचरित्रसे जान लेना, परतु लौकिक रामायणमे जो रावणके दश शिर लिखे है,सो ठीक नही है,क्योंकि मनुष्यके स्वाभाविकही दश शिर कदापि नहीं हो शक्ते है, पद्मचरित्त प्रथमानुयोग शास्त्रमें लिखा है कि रा वणके वडे बडेरोंकी परपरायसें एक वडा नव माणिकका हार चला आता था,सो रावणने बालावस्थासे अपने गलेमें पहिर लीये थे और वे नौही माणक बहुत वडे थे, सो चार माणक एक पासे स्कधके ऊपर हारमे जडे हूये थे, और पांच माणक दूसरे पासे जडे थे, दोनो स्कधो उपर नव माणकमे नवमुख दीखते थे, और एक रावणका असली मुख था इस वास्ते दशमुख वाला रावण कहा जाता है, तथा रावणके समय सेही हिमालयके पहाडमे वद्रीनाथका तीर्थ उत्पन्न हूआ है, तिसकी उत्पत्ति जैनमतके शास्त्रोंसे असे जानी जाती है कि –यह असली पार्श्व नाथकी मूर्त्तिथी, तिसकाही नाम वद्रीनाथ रक्खा गया है इसका पूरा स्व रूप गद्यबंद पार्श्वपुरानसें जान लेना

तिस पीछें मिथुलानगरीमे इक्ष्वाकुवशी विजयसेनराजाकी विप्रा राणी तिनका पुत्र श्रीनमिनाथ नामा इक्कवीसमा तीर्थंकर हूआ तिनोके वारें ह रिषेणनामा दशमा चक्रवर्त्ति हूआ है, तथा यह इक्कवीसमे और बावीसमे तीर्थंकरके अतरेमे इग्यारहमा जयनामा चक्रवर्त्ती हूआ

तिस पीछें सौरीपुर नगरमे हरिवशी समुद्रविजय राजा तिनकी शिवा देवी राणी तिनका पुत्र श्रीअरिष्ट नेमिनामा बावीशमा तीर्थंकर हूआ तिनोके वारे तिनोके चाचेके वेटे नवमे कृष्णवासुदेव और राम बलदेव (वलभद्रवल देव) इनका प्रतिशत्रु जरासिंधू प्रतिवासुदेव हूआ, तिसमे कृष्ण अरु वल भद्र तो जगतमे बहुत प्रसिद्ध हैं क्योंकि लोक श्रीकृष्ण वासुदेवकों साक्षात् ईश्वर तथा ईश्वरका अवतार जगत्काकर्त्ता मानते है, यह बात कृष्ण वा सुदेवके जीते हूये नही हूइ, किंतु उनके मरे पीछें लोक कृष्ण वासुदेवको ईश्वरावतार मानने लगे है, तिसका हेतु त्रेसठ सलाका पुरुष चरित्रमे असे लिखाहै कि.–जब कृष्ण वासुदेवनें कुसवी वनमे शरीर छोडा तव काल क

रकें बालुप्रज्ञा पृथ्वी (पातालमें) गये और बलजइजी एक सौ वर्ष जैनदीक्षा पालके पांचमें ब्रह्मदेवलोकमें गये उहां अवधिज्ञान सें अपनें नाइ श्रीकृस कों पातालमें तीसरी पृथ्वीमें देखा, तब नाइके स्नेहसें वैक्रिय शरीर बनाकर श्रीकृष्णके पास पहूचा और श्रीकृष्णसें आलिंगन करकें कहा कि मैं बलज इनामा तेरे पिछले जन्मका नाई हूं, मैं काल करकें पांचमें ब्रह्मदेवलोकमें उत्पन्न हूआ हूं, और तेरे स्नेहसें यहां तेरें पास मिलनेकों आया हूं सो मैं तेरे सुख वास्ते क्या काम करुं? इतना कह कर जब बलजइजीनें आ पनें हाथों ऊपर कृष्णजीको लीया, तब कृष्णका शरीर पारेकी तरें हा थसें छूरके जूमि ऊपर गिर पडा, और मिलकर फेर संपूर्ण शरीर पूर्ववत् हो गया. इसीतरें प्रथम आलिंगन करनेंसें फेर विरतांत कहनेंसें और हाथों ऊपर उठानेसें कृष्णनेंजी जान लीयाकि यह मेरे पूर्वजवका अति वल्लन बलजइ नाई है तब कृष्णजीने संज्रमसें उठके नमस्कार करा तब बलजइजीनें कहा हे ज्राता! जो श्रीनेमिनाथने कहाथाकि यह विषय सुख महाडुःखदाई है सो प्रत्यक्ष तुमकों प्राप्ति हूआ और तुऊकर्मनियंत्रितकों मैं स्वर्गमेंजी नही लेजा सक्ता हूं परंतु तेरे स्नेहसें तेरे पासमैं रहा चाहता हूं तब कृष्णने कहा हे ज्राता! तेरे रहनेंसेंजी तो मैनें करे हूये कर्मका फल अवश्यमेव जोगनाही है परंतु मुऊकों इस डुःखसें वो डुःख बहुत अधिक है जो में द्वारिका और सकल परिवारके दग्ध होजानेसें एकला कुसंबी वनमें जरा कुमारके तीरसें मरा और मेरे शत्रुओंकों सुख तथा मेरे मित्रोंकों डुःख हूया जगतमें सर्व यडुवंशी बदनाम हूये इस वास्ते हे ज्राता! तूं जरतखंममें जा कर चक्र, शारंग, शंख, गदाका धरने वाला और पीत (पीले) वस्त्र वाला, तथा गुरुड ध्वजा वाला, ऐसा मेरा रूप बना कर विमानमें बैठ कर लोकोंकों दिखला तथा नीलवस्त्र और तालध्वज अरु हल, मूशल, शस्त्रका धरनेंवाला ऐसा तूं विमानमें बैठके अपना रूप सर्वजगें दिखलाकर लोकोंकों कहोकि राम कृष्ण दोनो हम अविनाशी पुरुष है, और स्वेछा विहारी हैं, जब लोकोंकों यह सत्य प्रतीत हो जा वेगा तब हमारा सर्व अपयश दूर हो जावेगा यह श्रीकृष्णजीका कहना सर्व श्रीबलजइजीने स्वीकार कर लीया, और जरतखंममें आकर कृष्ण ब लजइ दोनोका रूप करकें सर्व जगे विमानारूढ दिख लाया और ऐसे क

हने लागा कि नो लोको ! तुम कृष्ण बलनद्र अर्थात् हमारे दोनोंकी सुं दर प्रतिमा बनाकर ईश्वरकी बुद्धिसे बडे आदरसे पूजो क्योंकि हमही ज गतके रचनेवाले और स्थिति संहारके कर्त्ता है और हम अपणी इछासें स्वर्ग (वैकुंठसे) यहा चले आते है, और पीछें स्वर्गमे अर्थात् वैकुंठमे अपनी इछासें चले जाता है और द्वारका हमनेही रची थी तथा हमनेही उसका संहार करा है, क्यो कि जब हम, वैकुंठमै जानेकी इछा करते है, तब सर्व अपना वंश द्वारिका सहित दग्ध करके चले जाते है, हमारे उ परात और कोई अन्य कर्त्ता, हर्त्ता नही है ऐसा बलनद्रजीका कहना सु ननेसें सर्व ग्राम (नगर) के लोकोने कृष्ण बलनद्रजीकी प्रतिमा सर्व ज गे बना कर पूजी तब प्रतिमा पूजनेवालोंको बहुत सुख धनादिसे बलन द्रने आनंदित करा, इस वास्ते बहुत लोक हरिजक्त हो गये, जबसे नक्त हूये तबसें पुस्तकोमे कृष्णजीको पूर्णब्रह्म परमात्मा ईश्वरादि नामोसे लि खा, क्याजाने जबसें बलनद्रजीने कृष्णकी पूजा कराई, तबसेही लोकोने कृष्णकोही ईश्वरावतार माना हो ? और उस समयको पाच हजार वर्ष हूये हो, जिस्सें लोकीकमे कृष्ण हूयेकों पांच हजार वर्ष कहते है

बाइसमे अरु तेइसमे तीर्थंकरके अंतरेमे बारमा ब्रह्मदत्तनामा चक्रव र्त्ती हूआ, तिस पीछे वाणारसी नगरीमे इक्ष्वाकुवंशी अश्वसेन राजा हूआ तिसकी वामादेवी राणी तिनका पुत्र श्रीपार्श्वनाथ नामा तेइसमा तीर्थंकर हूआ तिस पीछें क्षत्रियकुंम नामा नगरमे इक्ष्वाकुवंशी दूसरा नाम सूर्यवं शी सिद्धार्थ नामा राजा हूआ तिसकी त्रिसला नामा राणी तिनका पुत्र श्रीवर्द्धमान महावीरनामा चौवीशमा चरम छेला तीर्थंकर हूआ, आज काल जो जैनमत नरत खंममे प्रचलित है, सो इसही श्रीमहावीरका शासन अ र्थात् उनहीके कहे उपदेशसे चलता है, और जो जैनमतके शास्त्र है, वे सर्व इसही श्रीमहावीर नगवत के उपदेशानुसार रचे गये है यह श्रीमहावीर नगवतका संपूर्ण वृत्तांत देखना होवे, तदा आवश्यक सूत्रवृत्ति कल्पसूत्र वृत्ति तथा श्रीमहावीर चरितादि ग्रंथोंसे जान लेना

इति श्रीतपगछीय मुनिश्रीगणि मणिविजय तछिष्य मुनिबुद्धिविजय तछिष्य मुनि आत्माराम आनंदविजय विरचिते जैनतत्त्वादर्शे श्रीरूपनादि महावीर पर्यंत पूर्ववृत्तांत निरूपण नाम एकादश परिछेद संपूर्ण ॥ १ ॥

अथ द्वादशः परिछेद प्रारंभः ॥

यह परिछेदमें श्रीमहावीर भगवानसें लेकर आजकाल पर्यंत कितनाक वृत्तांत लिखते हैं. श्रीमहावीर भगवंतके इग्यारह शिष्य मुख्य, और सर्व साधुओंसें बडे हूये, तिनका नाम कहते हैं १ इंद्रभूति, अर्थात् गौतम स्वामी, २ अग्निभूति, ३ वायुभूति, ४ व्यक्तस्वामी, ५ सुधर्मस्वामी, ६ मंडिकपुत्र, ७ मौर्यपुत्र, ८ अवकंपित, ९ अचलभ्राता, १० मेतार्य, ११ प्रभास, यह इग्यारह बडे शिष्य श्रीमहावीर भगवंतके हूए और सर्व शिष्य तो चौदह हजार साधु हूये, परंतु चोदह हजारसें कदेभी अधिक नही हूये, और साध्वी छत्तीस हजार हूइ, तथा श्रेणिक, उदायन, कोणक, उदायी, वत्सदेशका उदायन, चेटक, नवमल्लिक क्षत्रियजातिके, नवलेछिक क्षत्रिय जातिके, उज्ञयनका राजा चंद्रप्रद्योत, अमलकल्पा नगरीका स्वेत नामे राजा, पोलासपुरका विजय राजा, क्षत्रिय कुंभका नंदिवर्द्धन राजा, वीतभय पट्टनका उदायनराजा, दशार्णपुरका दशार्णभद्र राजा, पावापुरीका हस्तिपाल राजा, इत्यादि अनेक राजे श्रीमहावीर भगवंतके सेवक थे, अर्थात् श्रावक थे, और आनंद, कामदेव, संख पुष्कली प्रमुख श्रावक, और जयंती, रेवती, सुलसा प्रमुख श्राविका तो लाखोंही थे, तिन श्रावकोंमें एक सत्यकी नामा अविरति, सम्यग्दृष्टि श्रावक हूआ है, तिसका संबंध आवश्यक शास्त्रमें इसी तरें लिखा है. सो कहते हैंः–

विशालानगरीके चेटक राजाकी छट्ठी पुत्री सुज्येष्टानामा कुमारी कन्यानें दीक्षा लीनी थी अर्थात् जैनमतकी साध्वी हो गइ थी, वो किसी अवसरमें उपाश्रयके अंदर सूर्यके सन्मुख आतापना लेती थी, इस अवसरमें पेढाल नामा परिव्राजक अर्थात् संन्यासी विद्या सिद्ध था, सो आपनी विद्यादेनेके वास्ते पात्र पुरुषकों देखता था, और उसका विचार असाथा किः– यदि ब्रह्मचारणीका पुत्र होवे, तो सुनाथ होवेगा. तब तिस संन्यासीने रात्रिमें सुज्येष्टाकों नग्न पणे शीतकी आतपना लेतीकों देखा, तब धुंध विद्यासें अंधकारमें विमोह अर्थात् अचेत करकें उसकी योनिमें अपने वीर्यका संचार करा,तिस अवसरमें सुज्येष्टाकों ऋतुधर्म आ गया था,इस वास्ते गर्भ रह गया तब साथकी साध्वीयोंमें गर्भकी चर्चा होने लगी, पीछें अति

शय ज्ञानीने कहा कि सुज्येष्टानें विषयनोग किसीसें नहीं करा, अरु तिस विद्याधरका सर्ववृत्तात कहा तव सर्वकी शंका दूर हो गई पीछें समयमे सुज्येष्टाके पुत्र जन्मा, तव तिस लडकेको श्रावकने अपने घरमे ले जाकें पाला, तिसका नाम सत्यकी रक्का, एकदा समय सत्यकी साध्वीयोंके साथ श्रीमहावीर नगवानके समवसरणमे गया, तिस अवसरमें एक कालसंदीपक नामा विद्याधर, श्रीमहावीरकों वदना करकें पूछने लगा कि मुऊको किससें नय है, तव नगवत श्रीमहावीर स्वामीने कहा कि, यह जो सत्यकी नामा लडका है, इससे तुऊको नय है तव कालसदीपक सत्यकीके पास गया, अ वज्ञासें कहने लगा कि अरे तू मुऊकों मारेगा? असें कह कर जोरावरीसे सत्यकीकों अपने पगोमे गेरा तव तिसके पिता पेढालने सत्यकीका पालन करा, और अपणी सर्व विद्यायोंकों सत्यकीको दे दई, सत्यकी महारोहिणी विद्याका साधन कर रहा था, इस सत्यकीका यह सातमा नव रोहिणीविद्या साधनमे लग रहा था, रोहिणी विद्याने इस सत्यकी के जीवको पाच नवमे तो जानसे मार गेरा और छठे नवमें छै महीने शेष आयुके रहनेसे सत्य कीके जीवने विद्याकी इछा न करी परंतु इस सातमे नवमे तो तिस रोहि णी विद्याको साधनेका आरंन करा तिसकी विधि लिखते है.

अनाथ मृतक मनुष्यको चितामे जलावे और गीले (आले) चमडेकों शरीर उपर लपेटके पगके वामे अंगूठेसे खडा होकर जहां लग वो चिता का काष्ठ जले तहा लग जाप करे इस विधिसे सत्यकी विद्या साध रहा था, उहां काल सदीपक विद्याधरनी आ गया, और चितामे काष्ठ प्रक्षेप करके सात दिन रात्री तक अग्नि वुझने न देनी, तव सत्यकीका सत्य देखकें रोहिणी देवी आप प्रगट हो कर कालसदीपककों कहने लगी कि मत विघ्न कर – क्योकि मै इस सत्यकीके सिद्ध होने वाली हू, इस वास्ते मै सिद्ध हो गइ हू, तव रोहिणी देवीने सत्यकीको कहा, कि मै तेरे शरीरमे किधरसे प्रवेश करु? सत्यकीने कहा मेरे मस्तकमे हो कर प्रवेश कर, तव रोहिणीने मस्तकमे हो कर प्रवेश करा, तिस्से मस्तकमे खडा पड गया तव देवीने तुष्टमान हो कर तिस मस्तककी जगो तीसरे नेत्रका आकार वना दीया तवतो सत्यकी तीन नेत्रवाला प्रसिद्ध हूआ. पीछें सत्यकीने शोचाकि पेढालने मेरी माता राजाकी कुमारी वेटीको विगडा है, असा

शोच कर अपने पिता पेढालकों मार दीया, तब लोकोंने सत्यकीका नाम रुद्र (भयानक) रख दीया, क्योंकि जिसने अपना पिता मार दीया उससें और भयानक कौन है? पीछें सत्यकीने विचारा कि कालसंदीपक मेरा वैरी कहां है? जब सुना कि कालसंदीपक अमुक जगामें है, तब सत्यकी तिसके पास पहुंचा, फेर कालसंदीपक विद्याधर तहांसें भाग निकला तोभी सत्यकी तिसके पीछें लगा, तब कालसंदीपक हेठ ऊपर भागता रहा, परंतु सत्यकीने तिसका पीछा न छोडा, फेर कालसंदीपकने सत्यकीके छुलाने वास्ते तीन नगर बनाये, तब सत्यकीने विद्यासें तीनो नगरभी जलादीयें तब कालसंदीपक दौडके लवणसमुद्रके पाताल कलशमें चला गया, सत्यकीने तहां जा कर कालसंदीपककों मार माला, तिस पीछे सत्यकी विद्याधर चक्रवर्त्ति हूआ, तीन संध्यामें सर्व तीर्थंकरोंकों वंदना करकें नाटक करता हूआ, तब इंद्रने सत्यकीका नाम महेश्वर दीया, तिस महेश्वरके दो शिष्य हूये, एक नंदीश्वर, दूसरा नादीया, तिनमें नादीया तो विद्यासें बैलका रूप बना लेता था, और तिस ऊपर चढके महेश्वर अनेक क्रीडा कुतूहल करता था, महेश्वर श्रीमहावीर भगवंतका अविरति सम्यग्दृष्टि श्रावक था, परंतु बडा भारी कामीथा और ब्राह्मणोंके साथ उसका बडा भारी वैर हो गया, तब विद्याके बलसें सैकडों ब्रह्मणोंकी कुमारी कन्यायोंकों विषय सेवन करकें विगाडा, और लोक तथा राजा प्रमुखकी बहु बेटीयोंसें काम क्रीडा करने लगा, परंतु उसकी विद्यायोंके भयसें उसे कोइ कुछ कहता नहीं था, जेकर कोइ मनाभी करता था, सो मारा जाताथा, महेश्वरने विद्यासें एक पुष्पक नामा विमान बनाया तिसमें बैठके जहां इछा होती तहां चला जाता था, ऐसें उसका काल व्यतीत होता था, एकदा प्रस्तावें महेश्वर उज्जयन नगरमें गया, तहां चंद प्रद्योतकी एक शिवा नामा राणीकों छोडके दूसरी सर्व राणीयोंके साथ विषय भोग करा, औरभी सर्वलोकोंके बहु बेटीयोंकों बिगाडनां शुरु करा, तब चंडप्रद्योतकों बडी चिंता हूइ, अरु विचाराकी कोइ ऐसा उपाय करीयें कि जिस्सें इस महेश्वरका विनाश (मरणां) हो जावेः— परंतु तिसकी विद्याके आगें किसीका कोइ उपाय नही चलताथा, पीछें तिस उग्रयन नगरमें एक उमा नामा वेश्या बडी रूपवंत, रहतीथी, उसका यह कौलथा कि जो कोइ इतना धन

मुझे देवे, सो मेरेसें जोग करे, जो कोइ उसके कहे मूजब धन देता था सो उसके पास जाता था, एक दिन महेश्वर उस वेश्याके घर गया, तब तिस उमावेश्याने महेश्वरके सन्मुख दो फूल करे एकविकशा हूआ दूसरा मिचा हूआ, तब महेश्वरने विकशे फूल (खिडे फूलकी) तर्फ हाथ पसारा तब उमावेश्याने मिचा हूआ कमल महेश्वरके हाथमे दीया, और कहा कि यह कमल तेरे योग्य है, तब महेश्वरनें कहा क्यों यह कमल मेरे योग्य है ? तब उमानें कहा इस मिचे हूए कमल समान कुमारी कन्या है, सो तुझको जोग करने वास्ते वल्लज है, और मै खिले हूए फूल समान हों, तब महेश्वरने कहा तूंनी मेरेको बहुत वल्लज है, ऐसा कह कर महेश्वर उसके साथ जोग जोगने लगा, और तिसकेही घरमें रहने लगा, तिस उमाने महेश्वरको अपनें वशमे कर लीया उमाका कहना महेश्वर उल्लंघन नही कर सकता था, ऐसे जब कितनाकि काल व्यतीत हूआ तब चंडप्रद्योतने उमाको बुलायके उसको बहुत धन, और आदर सन्मान देकर कहा कि तूं महेश्वरसे यह पूछेकि.– ऐसाजी कोइ काल है कि जिस कालमे तुमारे पास कोइज्ञी विद्या नही रहती ? तब उमाने महेश्वरकों पूर्वोक्त रीतिसे पूछा, तब महेश्वरने कहा कि जबमै मैथुन सेवता हूं तब मेरे पास कोइजी विद्या नही रहती, अर्थात् कोइ विद्या चलती नहीं तब उमाने चंडप्रद्योतराजाकों सर्वकथन सुना दीया, तब राजाने उमासे कहा कि जब महेश्वर तेरेसे जोग करेगा, तब हम उसकों मारेंगे तब उमाने कहाकि मुजको मत मारना तब चडप्रद्योतने कहाकि तुझको नहीं मारेगे ? पीछें चडप्रद्योतनें अपने सुनटोको गुप्त (छाना) उमाके घरमे छिपा रक्खा, जब महेश्वर उमाके साथ विषय सेवनमे मग्न होकें दोनोका शरीर परस्पर मिलकें एक शरीरवत् हो गया, तब राजाके सुनटोंने दोनोंहीको काट माला, और अपने नगरका उपद्रव दूर करा, पीछें महेश्वरकी सर्व विद्यायोंने उसके नदीश्वर शिष्यको अपना अधिष्ठाता बनाया जब नदीश्वरने अपने गुरुकों इस विटंबनासे मारा सुना, तब विद्यासे वज्रमयनके उपर शिला बनाइ, और कहने लगाकि हे मेरे दासो ! अब तुम कहा जाउगे ? में सबको मारुगा क्योंकि मै सर्वशक्तिमान् ईश्वर हू किसीका मारा मै मरता नहीं हू, मै सदा अविनाशी हू, यह सुनकर बहुत लोक मरे औ

र सर्वलोक विनती करकें पगोंमें पडे, अरु कहने लगेकि, हमारा अपराध क्षमा करो, तब नंदीश्वरनें कहाकि जे कर तुम उसी अवस्थामें अर्थात् उमाकी जगमें महेश्वरका लिंग स्थापन करकें पूजो, तो मैं तुमकों जीता छोडेगा, तब लोकोने तैसेही बना कर पूजा करी, पीछे नंदीश्वरनेभी ऐसेही गाम गाममें नगर नगरमें लोकोंकों डरा डरा करकें मंदिर बनवाये तिनमें पूर्वोक्त आकारे जगमें लिंगस्थापन कराकें पूजा कराई, यह श्रीमहावीरके अविरतिसम्यग्दृष्टि श्रावक महेश्वरकी उत्पत्ति है.

तथा श्रीमहावीर स्वामीके विद्यमान होते राजगृह नगरमें श्रेणिकराजाकी चेल्लणा राणीके कोणिक नामा पुत्र हूआ, परंतु कोणिकका श्रेणिकके साथ पूर्व जन्मका वैर था, इस वास्ते कोणिक राजानें श्रेणिक राजाकों पकडके पिंजरेमें दे दीया, और राज सिंहासन ऊपर आप बैठा, जब अपनी माता चेलनाके मुखसें सुना कि श्रेणिककों जैसा तूं वल्लभ था, ऐसा कोइभी पुत्र वल्लभ नहीं था, क्योंकि जब तूं बालक था तब तेरी अंगुली पक गइ थी, तिस्सें तुजे रात्रिमें निंद नहीं आती थी, और तूं सर्व रात्रिमें रोता था, तब तेरा पिता तेरी अंगुलीकों अपने मुखमें ले कर चूसके उसकी राध रुधिरकों थुंकता था, इत्यादि तेरे पितानें तेरे साथ राग (स्नेह) करा है, और तुमने उस उपकारके बदले अपने पिताकों पिंजरेमें बंद कीया, वाह रे पुत्र! तेरी लायकी! यह सुनके कोणिक राजा बडा दुःखी हूआ, और रोता हूआ आप कुहाडा लेकर दौडाकि मैं अपनें हाथसें पिताका पिंजरा काटकें बाहिर निकालूंगा और राजसिंहासन ऊपर बैठाउंगा परंतु जब श्रेणिकराजाने देखा कि कोणिक कुहाडा लेकर दौडा आता है, तब बिचार करा कि क्याजाने मुझे किस कुमौतसें मारेगा? तब श्रेणिक राजा कुछ खाकें मर गया, जब कोणिकने आकर देखा कि पिता तो मर गया तब बहुत रोया पीटा, महाशोकसें दाह लग गया, जब राजगृहके अंदर बाहिर श्रेणिकके मकान महिल सिंहासनादि देखता है, तब बडा दिलगीर (शोकवंत) होता है, इस दुःखसें राजगृह नगरकों छोडकें चंपा नगरी अपनी राजधानी बनाकें रहने लगा, तोभी पिताके वियोगसें सेवा न करनेंसें दुःखी रहने लगा, तब प्रधान (मंत्रीयोंनें) मतां करकें एक छाना पुस्तक बनवाया, उसमें ऐसा कथन लिखवाया कि:—जो पुत्र अपने

मरें हूये पिताकों पिंम प्रदान वस्त्र जोडे, आभूषण, शय्या प्रमुख ब्राह्म णोको देता है, वो सर्व श्राद्धादि सामग्री उसकें पिताको प्राप्ति होते है, तिस पुस्तकको धुंयेके मकानमें रखकें धुयेसें पुराने पुस्तकवत् बना दीया, तब कोणिक राजाकों सुनाया कोणिकनेभी पिताकी भक्तिवास्ते पिंम प्रदा नादि बहुत धन लगा करके करा, तबहीसे मृतकोंकों पिंम प्रदान श्रा द्धादि प्रवृत्त हूये है क्योंकि जगत्‌में प्रसिद्ध है कि कर्ण राजाने श्राद्ध च लाये हैं, सो इसी कोणिक राजाका नाम लोकोने कर्ण राजा करकें लिखा है

तथा अन्निका सुत जैनाचार्य अत्यंत वृद्ध गंगा नदी उतरतेको केवल ज्ञान हूआ, और जहा प्रयाग है. तहा शरीर गेडके मोक्ष हूआ, तिस जगे देवताओंने तिस मुनिकी महिमा करी तबसे प्रयाग तीर्थकी मानता चली, अर्थात् प्रयाग तीर्थकी उत्पत्ति हूई, महावीर स्वामीके वखतमें जो स्वरूप राजादि व्यवहारोकाथा तथा जैनमतका जहा तक विस्तारथा सो आवश्यकसूत्र वीरचरित्र तथा वृहद्‌कल्पादि शास्त्रोसे जान लेना

तथा श्रीमहावीरके समयमें राजगृह नगरीका राजा श्रेणिक तिसके पीछें कोणिक हूआ जिसने श्रेणिकके मरनेसे पीछें चंपानगरीको अपनी राजधानी बनाई तिसका बेटा उदायी हूआ जिनके कोणिककें मरे पीछें उदासीसे च पाको गेडके पाडली पुत्र नगर (पटना) वसाके अपनी राजधानी बनाया

श्रीमहावीर भगवत विक्रम सवतसे (४७०) वर्ष पहिला पावापुरी न गरीमे हस्तपाल राजाकी पुराणी राजसभामें बहत्तर वर्षकी आयु भोगके कार्त्तिक वदि अमावास्याकी रात्रिके पीछले प्रहरमे पद्मासन अर्थात् चौकडी मारे हूये, शरीरादि चार कर्मकी सर्व उपाधी गेडकें निर्वाण हूये (मोक्ष पहूचे) तिस समयमे गौतमस्वामी और सुधर्म स्वामी यह दो वडे शिष्य जीतेथे, शेष नव वडे शिष्य तो श्रीमहावीरजीके जीते हूयेही एक मा सका अनशन करके केवलज्ञान पाके मोक्ष चले गये थे, यह इग्यारहही वडे शिष्य जातिके तो ब्राह्मण थे, चार वेद और छे वेदांगादि सर्वशास्त्रोके जानकार थे, इन इग्यारहोके चौतालीससै (४४००) विद्यार्थीथे

इनोका सबध ऐसें है, कि — जब भगवत श्रीमहावीरजीको केवलज्ञान हूआ, तिस अवसरमें मध्यपापा नगरीमें सोमल नामा ब्राह्मणने यज्ञ क रनेका आरभ करा था, और सर्व ब्राह्मणोमे श्रेष्ठ विद्वान् जान कर इन पू

वोंक्त गौतमादि इग्याराही आचार्योंकों बुलायाथा तिस समय तिस यज्ञ पाडाके ईशान कूणमें महासेन नामा उद्यानमें श्रीमहावीर भगवंतका समवसरण रत्न सुवर्ण रौप्यमय क्रमसें तीन गढ संयुक्त देवोने बनाया तिसके वीचमें बैठकें भगवंत श्रीमहावीरस्वामी उपदेश करने लगे, तब आकाश मार्गके रस्ते सैंकडो विमनोमें बैठे हूये चार प्रकारके देवता भगवंत श्रीमहावीरके दर्शनकों और उपदेश सुननेकों आते थे, तब तिनों यज्ञ करनें वाले ब्राह्मणोने जाना कि यह देव सब हमारे करें हूये यज्ञकी आहुतीयों लेने आये हैं, इतनेमें देवता तो यज्ञ पाडेकों छोडके भगवानके चरणोंमें जाकर हाजर हूये, तथा और लोकभी श्रीमहावीर भगवंतका दर्शन करकें और उपदेश सुनकें गौतमादि पंडितोंके आगें कहने लगे, किः— आज इस नगरके बाहिर सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् आया है, नतो उसके रूपकी कोई तारीफ कर सक्ता हैं, अरु न कोई उसके उपदेशसें संशय रहता है, और लाखों देवता जिनोके चरणोंकी सेवा करते हैं, ताते हमारें वडेभाग्योदय हैं, जो ऐसे सर्वज्ञ अरिहंत भगवंतका हमने दर्शन पाया ऐसा जब गौतमजीने सुना कि सर्वज्ञ आया तब मनमें ईर्ष्याकी अग्नि भडकी अरु ऐसे कहने लगाकिः— मरेसें अधिक और सर्वज्ञ कौन है? मैं आज इसका सर्वज्ञ पणा उडा देता हूं? इत्यादि गर्व संयुक्त भगवान् श्रीमहावीरके पास पहुंचा, और भगवान्कों चौत्तीश अतिशय संयुक्त देखा, तथा देवता, इंद्र, मनुष्योंसे परिवृत देखा, तब बोलनेकी शक्तिसें हीन हुवा भगवंतके सन्मुख जाके खडा हो गया तब भगवंतने कहा किः— हे गौतम इंद्रभूति! तूं आया? तब गौतमजीने मनमें बिचाराकि जो मेरा नामभी ये जानते हैं, तोभी मैं सर्व जगे प्रसिद्ध हूं मुझे कौन नहीं जानता? तो इन्ने मेरा नाम लीया, इस बातमे कुछ आश्चर्य और सर्वज्ञ इसकों नहीं मानता हूं, किंतु मेरे मनमें जो शंशय है तिसकों दूर कर देवें तोमें इसकों सर्वज्ञ मानुं, तब भगवंतने कहा, हे गौतम! तेरे मनमें यह संशय हैः— जो जीवहै कि नही? और यह संशय तेरेकों वेदोंकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें हूआ है, वो श्रुतियों यह हैं सो कहते हैं.

"विज्ञानघनएवैतेभ्योभूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्तीतीत्यादि" इस्सें विरुद्ध यह श्रुति हैः— सवै अयमात्मा ज्ञानमय

इत्यादि इन श्रुतियोंका अर्थ जैसा तेरे मनमें नासन होता है. तैसाही प्रथम श्रुतिका अर्थ कहते है नीलादि रूप होनेसें विज्ञानही चैतन्य है, चैतन्य विशिष्ट जो नीलादि तिस्सें जो घन सो विज्ञानघन सोविज्ञानघन इन प्रत्यक्ष परिछियमान रूप पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, इन पाच नूतोसें उत्पन्न हो कर फेर तिनके साथही नाश हो जाता है अर्थात् नूतोंके नाश होनेसें उनके साथ विज्ञानघनकानी नाश हो जाता है, इस हेतुसें प्रेत्यसंज्ञा नही अर्थात् मरके फेर परलोकमे और कोई नर नारकका जन्म नहीं होता, इस श्रुतिमें जीवकी नास्ती सिद्ध होती है, और दूसरी श्रुति कहती है कि.– यह आत्मा ज्ञान मय अर्थात् ज्ञान स्वरूप है, इस्से आत्माकी सिद्धी होती है, अब ये दोनो श्रुतियों परस्पर विरोधी होनेंसे प्रमाण नही हो शक्ती है, और बहुत परस्पर आत्माके स्वरूपमे विरोधी मत है, कोइ कहता हैकि – एतावानेवपुरुषो,यावानिंद्रियगोचर ॥ नद्रे वृकपद पश्य,यद्वदंत्यबहुश्रुता ॥ १ ॥ इस श्लोकका अर्थ चार्वाकमतमे लिख आये है यहनी एक आगम कहता है, तथा "न रूप निक्षव पुज्जल." अर्थात् आत्मा अमूर्त्ति है, यहनी एक आगम कहता है, तथा "अकर्त्तानिर्गुणोनोक्ताआत्मा" अर्थ – अकर्त्ता सत्व, रज, अरु तम, इन तीनों गुणोसे रहित सुख डुःखका नोगने वाला आत्मा है, यहनी एक आगम कहता है अब इनमेसे किसकों सचा और किसकों जूठा माने ? परस्पर विरोधी होनेसे सर्व तो कुछ सचे होही नही शक्ते है, तथा युक्ति प्रमाणसेंनी मरके परलोक जाने वाली आत्मा सिद्ध नहीं होती है, ताते हे गौतम ! यह तेरे मनमे संशय है, अब इसका उत्तर कहता हूं कि तू वेद पदोंका अर्थ नही जानता है इत्यादि श्रीगौतमजीके संशयकों दूर करा, ये सर्व अधिकार मूलावश्यक और श्रीविशेषावश्यकसें जान लेनां, मैनें ग्रंथके नारी और गहन हो जानेके सबबसे यहा नहीं लिखा क्योंकि सब इग्यारह गणधरोके संशय दूर करनेका कथनके चार हजार श्लोक है पीछें जब गौतमजीका संशय दूर हो गया, तब गौतमजी पाचसौ अपने विद्यार्थीयोंके साथ दीक्षा लेकें श्रीमहावीर नगवतका प्रथम शिष्य हूआ

इसीतरें इंद्रनूतिकों दीक्षित सुनके दूसरा नाई अग्निनूति वडे अनिमानमे नर कर चला और कहने लगा कि – मेरे नाईकों इंद्रजालीयेने छलसे

जीतके अपना शिष्य बना लीया, तो मैं अबी उस इंद्रजालीयेकों जीतके अपने जाईकों पीछा लाता हूं, इस विचारसें जगवंत श्रीमहावीरजीके पास पहुंचा, जब जगवानकों देखा, तब सर्व आड वाड जूल गया मुखसें वो लनेकीनी शक्ती न रही और मनमें बडा अचंजा हूआ क्योंकि ऐसा स्वरूप न उसने कबी सुनाथा और न कबी देखा था, तब जगवानने उसका नाम लीया, अग्निजूतिने विचारा कि यह मेरा नामजी जानते हैं, अथवा मैं प्रसिद्ध हूं,मुझे कौन नहीं जानता है ? परंतु मेरे मनका संशय दूर करे तो मैं इसकों सर्वज्ञ मानुं,तब जगवंतने कहा हे अग्निजूति ! तेरे मनमें यह संशय है किः— कर्म है किंवा नहीं ? यह संशय तेरेकों विरुद्ध वेदपदोंसें हूआ है, क्योंकि तूं वेद पदोंका अर्थ नहीं जानता है, वे वेदपद यह हैंः— "पुरुषएवेदंग्निसर्वंयद्भूतं यच्च जाव्यं उतामृतत्वस्येशानोयदन्नेनाऽतिरोहति यदेजति यन्नेजति यद्दूरेयद्उअंतिके यदंतरस्य यडुत सर्वस्यास्य बाह्यतइत्यादि" इस्सें विरुद्ध यहश्रुति हैः— "पुण्यःपुण्येनेत्यादि" और इनका अर्थ तेरे मनसें ऐसा जासन होता है किः— पुरुष अर्थात् आत्मा एव शब्द अवधारणके वास्ते है, सो अवधारण कर्म और प्रधानादिकोंके व्यवछेद वास्ते है, "इदं सर्वं" अर्थात् यह सर्व प्रत्यक्ष वर्त्तमान चेतन अचेतन वस्तु "ग्नि" यह वाक्यालंकारमें है, यद्भूतं अर्थात् जो पीछें हूआ है और आगेकों होवेगा जो मुक्ति तथा संसार सो सर्व पुरुष आत्मा ब्रह्मही हैं, तथा उतशब्द अतिशब्दके अर्थ में है और अपि शब्द समुच्चय अर्थमें है. अमृतत्वस्य अमरणजावका अर्थात् मोक्षका ईसानःप्रज्ञुः अर्थात् स्वामी (मालक) है, "यदिति यच्चेति" च शब्दके लोप होनेसें यदिति बना इसका अर्थ जो अन्न करकें वृद्धिकों प्राप्त होता है, "यदेजति" जो चलता है ऐसे पशुआदिक और जो नहीं चलता है ऐसें पर्वतादिक और जो दूर हैं मेरु आदिक "यत्उअंतिके" उ शब्दअवधारणार्थमें है, जो समीप अर्थात् नेडे है, सो सर्व पूर्वोक्त पदार्थ पुरुष अर्थात् ब्रह्मही है, इस श्रुतिसें कर्मका अजाव होता है. अरु दूसरी श्रुतिसें तथा शास्त्रांतरोंसें कर्मसिद्ध होते हैं, तथा युक्तिसें कर्मसिद्ध होते नहीं क्योंकि अमूर्त्ति आत्माको मूर्त्ति कर्म लगते नहीं, इस वास्ते मैं नहीं जानता कि कर्म है वा नही यह संशय तेरे मनमें है, ऐसा कह कर जगवानने वेदश्रुतियोंका अर्थ

वरावर करके तिसका पूर्वपक्ष खंमन करा, सो विस्तारसें मूलावश्यक तथा विशेषावश्यकसें जानलेनां अग्निनूतिनेन्नी गौतमवत् दीक्षा लीनी॥ २॥

अग्निनूतिकी दीक्षा सुनके तीसरा वायुनूति आया परतु आगे दोनो ना ईयोके दीक्षा ले लेनेसें इसको विद्याका अनिमान कुछनी न रहा, म नमे विचार कराकि मै जा कर नगवानकों वंदना (नमस्कार) करुगा असा विचारके आया आ कर नगवतको वदना (नमस्कार) करी तव न गवतने कहा तेरे मनमे संशयतो है परतु क्षोनसेतूं पूछ नही शका है स शय यह हैकि.– जो जीव है सो देहही है और यह सशय तेरेको विरुद्ध वेदपदश्रुतिसे हूआ है, और तूं तिन वेदपदोंका अर्थ नही जानता है वे वेद पद ये है – "विज्ञानघनइत्यादि" पहिले गणधरकी श्रुति जाननी इस्से देहसे न्यारा जीव (आत्मा) सिद्ध नही होता है, और इस श्रुतिसे वि रुद्ध यह श्रुति है, "सत्येन लन्यस्तपसा ह्येपब्रह्मचर्येण नित्यज्योतिर्मयो हिशुद्धोयं पश्यति धीरायतय सयतात्मानइत्यादि" इस श्रुतिसे देहसे निन्न आत्मा सिद्ध होती है, इस वास्ते तुजको सशय है, पीछे नगवान्ने यह सर्व सशय दूर करे, तव तीसरा वायुनूतिनेन्नी अपने पांच सौ विद्यार्थीयोके साथ दीक्षा लीनी ॥ ३ ॥

वायुनूतिकी तरें शेष आव गणधर क्रमसे आये, तिसमे चौथा अव्य क्तजी आया तिनके मनमें यह सशयथा कि – पाचनूत है कि नही ? यह सशय विरुद्ध श्रुतियोंसे हूआ वे परस्पर विरुद्ध श्रुतियो यह है – "स्वप्नो पम वै सकलमित्येव ब्रह्मविधिरंजसाविज्ञेयइत्यादीनि" तथा इससें विरुद्ध यह श्रुति है "द्यावापृथिवी जनयन्देवइत्यादि" तथा पृथिवीदेवता, अपो देवता, इत्यादीनि इनका अर्थ तेरे मनमे असा नासन होता है – अर्थ स्वप्न सरीखा वैनिपात अवधारणार्थे सपूर्ण जगत है "एप ब्रह्मविधि" अ र्थात् यह परमार्थ प्रकार है, अंजसा सीधेन्यायसे जानना योग्य है, यह श्रुति पाचनूतका अनाव कहती है, और श्रुतियो पांचनूतकी सत्ताको क हतीयों है, इस वास्ते तेरेको सशय है, तेरे मनमें यहनी हैकि – युक्तिसे पाचनूतसिद्ध नहीं होते है पीछे नगवानने इसका पूर्वपक्ष खमन करा वेद पदोंका यथार्थ अर्थ कराये,यह अधिकार उक्त ग्रंथोंमें जान लेना यह सुन कर चौथा वायुनूतिनेन्नी अपने पाचसौ शिष्योके साथ दीक्षा लीनी ॥ ४ ॥

तब पांचमा सुधर्म नामा गणधर आया इसकाज्नी उसी तरें सर्वाधिकार जानलेनां, यावत् तेरे मनमें यह संशय है कि:– मनुष्यादि सर्व जैसे इस ज्नवमें हैं तैसेंही अगले जन्ममें होते हैं ? कि मनुष्य कूत्र और पशुआदिज्नी वन जाते हैं ? यह संशय तेरेकों परस्पर विरुद्ध वेद श्रुतियोंसें हूआ है सो वेद श्रुतियों यह हैः–'पुरुषोवैपुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वं इत्यादीनि" यह श्रुति जैसा इस जन्ममें पुरुष स्त्री आदि हैं वे पर जन्ममेंज्नी ऐसेंही होवेंगे इस्सें विरुद्ध यह श्रुति है "शृगालोवैएषजाहते यः सपुरीषोदह्यतइत्यादि इन सर्व श्रुतियोंका ज्नगवानने अर्थ करकें संशय दूर करा, तब अपने पांच शिष्यके साथ दीक्षा लीनी ॥ ५ ॥

तिस पीछें छठा मंडिक पुत्र आया, तिसके मनमें यह संशय था, कि वंध मोक्ष है, वा नही है ? यह संशयज्नी विरुद्ध श्रुतियोंमें हूआ है, सो श्रुतियों यह हैः–"स एष विगुणोविज्नुर्न वध्यते, संसरति वा न मुच्यते मोचयति वा ॥ एष बाह्यमभ्यंतरं वा वेदइत्यादीनि" इस श्रुतिका ऐसा अर्थ तेरे मनमें ज्नासन होता है, "एषअधिकृतजीवः" अर्थात् यह जीव जिसका अधिकार है "विगुणः" अर्थात् सत्वादि गुण रहित सर्वगत सर्वव्यापक पुण्य पाप करकें इसकों वंध नहीं होता है, और संसारमें ज्रमणज्नी नहीं करता है, और कर्मोंसें छूटताज्नी नहीं है, वंधके अज्नाव होनेसें दूसरोंकों कर्मवंधसें बुडाताज्नी नहीं है, इस कहनेसें आत्मा अकर्त्ता है, सोई कहता हैः– यह पुरुष अपणी आत्मासें बाहिर महत् अहंकारादि और अभ्यंतर स्वरूप अपना जानता नही क्योंकि जानना ज्ञानसें होता है, और ज्ञानजो है, सो प्रकृतिका धर्म है, और प्रकृति अचेतन है, वंध मोक्ष नही इस श्रुतिसें वंध मोक्षका अज्नाव सिद्ध होता है,अब इस्सें विरुद्ध श्रुति यह है सो कहते हैंः– "नही वैसशरीरस्य, प्रिया प्रिययोरपहतिरस्ति अशरीरं वा वसंतं प्रिया प्रिये नस्पृशत इत्यादीनि" इशका अर्थ कहते हैंः– सशरीरस्य अर्थात् शरीर सहितकों सुख दुःखका अज्नाव कदापि नहीं होता है, तात्पर्य यह हैकिः– संसारी जीव सुख दुःखसें रहित नहीं होता है, और अमूर्त्त आत्माकों कारणके अज्नावसें सुख दुःख स्पर्श नहीं कर शक्ते हैं, इस श्रुतिसें बंध मोक्ष सिद्ध होते हैं, तथा तेरे मनमें यहज्नी वात हैः– किः– युक्तिसेंज्नी बंध मोक्ष सिद्ध नहीं होते हैं इत्यादि संशय कह कर ज्नग

वानने तिसके पूर्वपक्षोंकों खंमन करकें संशय दूर करा,तब मंमितपुत्र साढे तीनसौ विद्यार्थियोंके साथ दीक्षित नया ॥ ६ ॥

७ तिस पीछें सातवां मोर्यपुत्र आया तिसके मनमें यह संशयथा कि:- देवता है किंवा नही है? यह संशय परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें हूआ वो श्रुतियां यह है – सएपयज्ञायुधीयजमानोज सास्वर्गलोकं गच्छति इत्यादि श्रुतियों स्वर्ग तथा देवताओंकी सिद्धि करतीयों है, इस्से विरुद्ध श्रुति यह है – अपामसोमं अमृता अनूम, अगमामज्योतिर्विदामदेवान् ॥ किंनूनम स्मान्तृणवदराति किमुधूर्त्ति रमृतमर्त्यस्येत्यादीनि" तथा कोजानाति मा योपमान् गीर्वाणानि इयमवरुणकुबेरादीन् इत्यादि" इनका अैसा अर्थ तेरे मनमें नासन होता है कि.- पाणीको पीते हूये एतावता सोमलताका रस पीते हूये अमृत (अमरण) धर्मवाले हम हूये है, ज्योति स्वर्ग और देवताको हम नही जानते है तथा देवता हम हूये है, यहनी नहीं जानते देवता तृणेकी तरे हमारा क्या कर शक्ते है? यह श्रुति अनाव प्रतिपादन करती है, और यह नावकी प्रतिपादक है, "धूर्त्तिजराअमृतमर्त्यस्य" अमृतत्व प्राप्त पुरुपकों क्या कर सक्ती है? इन श्रुतियोंका यथार्थ अर्थ करकें और तिसका पूर्वपक्ष खंमन करकें नगवतने इनका सशय दूर करा, तब यहनी साढे तीनसो छात्रोंके साथ दीक्षित नया ॥ ७ ॥

८ तिस पीछें आठमा अकपित आया उसके मनमेंनी वेदकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोके पदोंसे नरकवासी है कि नही? यह संशय उत्पन्न हूआ था, वो परस्पर विरुद्ध श्रुतियो लिखते है –"नारको वै एप जायतेय शूद्रान्न मश्नाति इत्यादि" इसका अर्थ – यह ब्राह्मण नारक होवेगा जो शूद्रका अन्न खाता है, इस श्रुतिसे नरक सिद्ध होता है, तथा "नह वैप्रेत्यनरके नारकाः सतीत्यादि सुगमार्थ. इसश्रुतिसे नरकका अनाव सिद्ध होता है इनका अर्थ करके और पूर्वपक्ष खमन करके नगवान्ने तिसका सशय दूर करा तब अंकपिकनेनी तीन सौ छात्रोंके साथ दीक्षालीनी ॥ ८ ॥

९ तिस पीछें नवमा अचलभ्राता आया तिसकोनी परस्पर वेदकी विरुद्ध श्रुतियोकेपदोंसे पुण्य पाप है, कि नही? यह सशय था, सो वेद पद यह है – "पुरुपएवेदग्निसर्वइत्यादि दूसरे गणधर वत् इस्से विरुद्धपद यह है – "पुण्य.पुण्येन कर्मणा नवति, पाप पापेन कर्मणा नवति इत्यादि" इस्से

पुण्यपाप सिद्ध होते हैं, यह संशयभी भगवानने दूर करा, तब यहभी तीन सौ छात्रोंके साथ दीक्षित भया ॥ ए ॥

१० तिस पीछें दशमा मेतार्य आया उसकोंभी वेदकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें यह संशयहूआ था, कि:—परलोक है किंवा नहीं है? वो श्रुतियां यह हैं:— "विज्ञानघन इत्यादि प्रथम गणधरवत् अभाव कथक श्रुति जाननी" तथा "स वैअयं आत्मा ज्ञानमयइत्यादि" परलोक भाव प्रतिपादक श्रुति जाननी इनका तात्पर्य भगवानने कहा तब मेतार्यजीनेबी निःशंक होकें तीन सौ छात्रोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ १० ॥

११ तिस पीछें इग्यारहवा प्रभास नामा गणधर आया, तिसके मनमेंभी वेद श्रुतियोंके परस्पर विरुद्ध होनेसें यह संशयथा कि निर्वाण है कि नही है? वो श्रुतियों यह हैं:— "जरामर्य वा एतत्सर्वं यदग्नि होत्रं" इससें विरुद्ध श्रुति यह है:— "द्वेब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च तत्र परं सत्यं ज्ञानमनंतंब्रह्मेति" इनका यह अर्थ तेरी बुद्धिमें भासन होता है कि:—अग्निहोत्र जो है, सो जीव हिंसा संयुक्त है, और जरा मरणका कारण है, अरु वेदमें अग्नि होत्र निरंतर करणां कहा है, तब ऐसा कौनसा काल है, कि जिसमें मोक्ष जानेका कर्म करीयें? इस वास्ते आत्माकों मोक्ष (निर्वाण) कदापि नहीं हो शक्ता है, अरु दूसरी श्रुति मोक्ष प्राप्तिभी कहती है, इस वास्ते संशय हूआ है इसका जब भगवान्ने उत्तरदे के निशंक करा तब तीनसौ छात्रोंके साथ दीक्षा लीनी. यह श्रीमहावीर भगवंतके वैशाखशुदि दशमीके दिन मध्यपापानगरीके महासेन वनमे (४४००) शिष्य हूये. तिस पीछें राजपुत्र श्रेष्ठिपुत्रादि तथा राजपुत्री श्रेष्ठिपुत्री राजाकी राणीयों आदिकने दीक्षा लीनी. तथा जब भगवंत श्रीमहावीरजी पावापुरीमें मोक्ष गये, तिसही रात्रिमें इंद्रभूति अर्थात् गौतमगणधरकों केवल ज्ञान हूआ, तब इंद्रोंने निर्वाण महोत्सव करा, और सुधर्मास्वामीजीकों श्रीमहावीर स्वामीजीकी गद्दी ऊपर बैठाया श्रीगौतमजीकों गद्दी इस वास्ते न हूइ की केवलज्ञानी पुरुष कोइ पाट ऊपरनहीं बैठता है, क्योंकि केवली तो जो पूछे उसका उत्तर अपने ज्ञानसेही देता है, परंतु ऐसा नहीं कहता है कि:— मैं अमुक तीर्थंकरकें कहनेसें कहता हूं, इस वास्ते केवलज्ञानी पाट ऊपर नहीं बैठता है, जेकर बैठे तो तीर्थंकरका

शासन दूर हो जावे, यह कभी हो न शक्ती जो अनादि रीतिकों के चली नग करे, इस वास्ते श्रीगौतमजी केवल ज्ञानी था सो गद्दी ऊपर नही बैठे और सुधर्म स्वामी बैठे

१ श्रीसुधर्म स्वामी पचास वर्ष तो गृहस्थावास (घरमें) रहे, और तीस वर्ष श्रीमहावीर भगवतकी चरण सेवा करी, जब श्रीमहावीर निर्वाण हूआ, तिस पीछें बारां वर्ष तक छद्मस्थ रहे, और आठ वर्ष केवली रहे, क्योंकि श्रीमहावीर अर्हतके पीछें केवली हो कर बारां वर्ष श्रीगौतमजी जीते रहे, और श्रीगौतमजीके निर्वाण पीछें श्रीसुधर्म स्वामीजीकों केवल ज्ञान हूआ, केवली हो कर आठ वर्ष जीते रहे, श्रीसुधर्म स्वामीजीकी सर्वायु एक सौ (१००) वर्षकी थी, सो श्रीमहावीरजीके पीछें वीश वर्ष मोक्ष गये २ श्रीसुधर्म स्वामी के पाट ऊपर श्रीजबूस्वामी बैठे सो राजगृहनगरका वासी श्रीऋपभदत्तश्रेष्ठकी धारिणी नामा स्त्रीसे जन्मेथे निनानवे क्रोड सोनइये और आठ स्त्रीयोंकों छोड कर दीक्षा लेता भया, शोलांवर्ष गृहस्थ वासमें रहे, वीश वर्ष व्रतपर्याय, औ चौतालीस वर्ष केवलपर्याय पालके श्रीमहावीरके निर्वाण पीछें चौशठमे वर्ष मोक्ष गये

यह श्रीजबूस्वामीके पीछें भरतक्षेत्रमें दश बाते विछेद हो गइ तिसका नाम लिखते है – १ मन पर्यायज्ञान, २ परमावधि ज्ञान, ३ पुलाक लब्धि, ४ आहारकशरीर, ५ क्षपकश्रेणि, ६ उपशमश्रेणि, ७ जिनकल्पमुनिकी रीति, ८ परिहारविशुद्धिचारित्र, तथा सूक्ष्मसपराय, और यथाख्यात, यह तीन तरेंके संयम, ९ केवलज्ञान, १० मोक्ष होनां, यह दश वस्तु विछेद हो गइ, श्रीमहावीर भगवतके केवली हूये, पीछें जब चौदह वर्ष बीते थे, तब जमाली नामा, प्रथम निन्हव हूआ, और शोला वर्ष पीछें तिष्यगुप्त नामा दूसरा निन्हव हूआ. श्री जबुस्वामीकी आयु एंसी वर्षकी थी

३ जंबूस्वामीके पाट ऊपर प्रभवा स्वामी बैठे, तिनकी उत्पति ऐसे हैं – विंध्याचल पर्वतके पास जयपुर नामा पत्तन था, तिसका विंध्य नामा राजा था तिसके दो पुत्र थे एक बडा प्रभव दूसरा छोटा प्रभु, विंध्यराजाने किसी कारणसे छोटे पुत्र प्रभुकों राज तिलक दे दीया, तब वडा बेटा प्रभव गुस्से हो कर जयपुर पत्तनसे निकल कर विध्याचलकी विषम जगामे गाम वसा कर रहने लगा, और खात्रखनन, बंदिग्रहण,

रस्ते लूंटनादि, अनेक तरेंकी चोरीयोंसें अपने परिवारकी आजीविका करता था, एक दिन पांच सौं चोरोंकों ले कर राजगृह नगरमें जंबूजीके घरकों लूटनें आया, तहां जंबूस्वामीने तिसकों प्रतिबोध करा, तब तिसने पांच सौ चोरोंके साथ दीक्षा श्रीजंबूजीके साथ लीनी' इत्यादि जंबूजीका और प्रभवजीका अधिकार जंबूचरित्र तथा परिशिष्ट पर्वादि ग्रंथोंसें जान लेनां. प्रभव स्वामी तीस वर्ष गृहस्थ पर्याय, चौतालीश वर्ष व्रतपर्याय, तथा एकादश वर्ष युगप्रधान पदवी, सर्व पंचाशी वर्षकी आयु पूरी करकें श्री महावीरसें पंचहत्तर वर्ष पीछें स्वर्ग गया.

४ श्रीप्रभवस्वामीके पाट ऊपर श्रीशिय्यंभव स्वामी बैठे, जिनोने मनक साधुके वास्ते दशवैकालिक सूत्र बनाया, तिनकी उत्पत्ति ऐसें हैः– एकदा प्रस्तावें प्रभवस्वामीनें रात्रिमें विचार कराकि मेरे पाट ऊपर कौन बैठेगा ? पीछें ज्ञान बलसें अपणे सर्वसंघमें पाट योग्य कोइ न देखा, तब परदर्शनीयोंकों ज्ञान बलसें देखने लगा तब राजग्रह नगरमें शिय्यंभव भट्टकों यज्ञ करते हूयेकों अपने पाट योग्य देखा, पीछें प्रभव स्वामी विहार करकें सपरिवार राजगृह नगरमें आये उहां दो साधुओंकों आदेश दीयाकि तुम यज्ञ पाडेमें जाकर भिक्षाके वास्ते धर्म लाभ कहो, और यज्ञ करने वालोंकों ऐसे कहोः– "अहोकष्ट महोकष्ट तत्वं विज्ञायते नहि" तब तिन साधुओंनें पूर्वोक्त गुरुका कहना सर्व कीया, जब ब्राह्मणोनें "अहोकष्ट" इत्यादि सुना और तिस यज्ञ वाडेमें शिय्यंभव ब्राह्मणने यज्ञ दीक्षा लीनी थी, तिसने यज्ञ वाडेके दरवाजेमें खडेनें अहो कष्टं इत्यादि मुनियोंका कहनां सुनके विचार करनें लगा कि ऐसा उपशम प्रधान साधु होते हैं, इस वास्ते यह असत्य (झूठ) नहीं बोलते हैं, इस्सें मनमें संशय होगया, तब उपाध्यायकों पूछा कि तत्त्व क्या है? तब उपाध्यायने कहा कि चार वेदमें जो कथन करा है, सो तत्त्व है, क्योंकि वेदोंके शिवाय और कोइ तत्त्व नहीं है? तब शिय्यंभवने कहा कि तूं दक्षिणाकें लोभसें मुझकों तत्त्व नहीं बतलाता है, क्योंकि राग द्वेष रहित, निर्मम, निःपरिग्रह, शांत, दांत, महांत मुनियोंका कहनां झूठा नहीं होतां है, और तूं मेरा गुरु नहीं तैनें तो जन्मसें इस जगत्कों ठग नांही सीखा है, इस वास्ते तूं शिक्षाके योग्य है इस वास्ते याती मुझे

तत्त्व कह दे ? नही तो तलवारसें तेरा शिर छेद करुंगा ऐसें कहके जब मियानसे तलवार काढी तब उपाध्यायने प्राणांत कष्ट देखकें कहा हमारे वेदोंमेंजी ऐसें लिखा है और हमारी आम्नायजी यही है, जब हमारा कोइ शिर छेदे, तब तत्त्व कहनां, नहीं तो नहीं कहनां तिस वास्तेमें तुमकों तत्त्व कह देता हूंकि इस यज्ञ स्थंजके हेठ अर्हंतकी प्रतिमा स्थापन करी है, और नीचेही तिसकों प्रछन्न हो कर पूजते है, तिसके प्रजावसे यज्ञके सर्व विघ्न दूर हो जाते है, जेकर यज्ञस्थंजके नीचे अर्हंतकी प्रतिमा न राखें तो महातपा सिद्ध पुत्र और नारद ये दोनो यज्ञकों विध्वंस कर देते है,पीछें उपाध्यायने यज्ञ स्थंज उखाडके अर्हंतकी प्रतिमा दिखाइ और कहा कि यह प्रतिमा जिस देवकी है, तिस अर्हंतका कहा हूआ धर्म जीवदया रूप तत्त्व है, और यह जो वेद प्रतिपाद्य यज्ञ है, वे सर्व हिंसात्मक रूप होनेसे विडंवना रूप है, परंतु क्याकरें ? जेकर हम ऐसे न करें तो हमारी आजीविका नही चलती है, अब तूं तत्त्व जानले और मुझको छोड दे अरु तु परमार्हत होजा क्योंकि मैनें अपने पेटके वास्ते तुझको बहुत दिन वहकाया है, तब शिय्यंजवने नमस्कार करकें कहा तू यथार्थ तत्त्वके प्रकाश करनेसे सच्चा उपाध्याय है, ऐसा कह कर शिय्यंजवने तुष्टमान हो कर यज्ञकी सामग्री जो सुवर्णपात्रादिथे,वे सर्व उपाध्यायको दे दइ, और प्रजवस्वामीके पास जा कर तत्त्वका स्वरूप पूछ कर दीक्षा लेली थी, शेष इनका वृत्तांत परिशिष्टपर्व ग्रंथसें जान लेना. शिय्यंजवस्वामी अठाइस वर्ष गृहस्थावासमे रहे, इग्यारह वर्ष सामान्य साधु व्रतमे रहे, और तेइस वर्ष युगप्रधानाचार्य पदवीमे रहे, इसीतरे सर्वायु बाशठ वर्ष जोगकें श्रीमहावीर जगवतके अठानवे वर्ष पीछें स्वर्ग गये.

५ श्रीशिय्यंजवस्वामीके पाट उपर यशोजद्र स्वामी बैठे, सो बावीश वर्ष गृहस्थावासमे रहे, और चौदह वर्ष व्रत पर्यायमे रहे अरु पचास वर्ष तक युगप्रधान पदवीमे रहे, इसीतरें सर्वायु छयासी वर्षकी जोगके श्रीमहावीरसे (१४८) वर्ष पीछें स्वर्गमे गये

६ श्रीयशोजद्रस्वामीके पाट ऊपर एक सजूतविजय और दूसरे श्रीजद्रबाहु, यह दोनो बैठे, तिनमें सजूतविजय तो बैतालीस वर्ष तक गृहस्थ रहे, और चालीश वर्ष व्रत पर्याय तथा आठ वर्ष युग प्रधान पदवी स

र्वायु नवे वर्ष नोगके स्वर्गमें गये, और नद्रबाहुस्वामीने १ आवश्यक निर्युक्ति २ दशवैकालिकनिर्युक्ति ३ उत्तराध्ययन निर्युक्ति ४ आचारांगकी निर्युक्ति, ५ सूत्रकृदंग निर्युक्ति, ६ सूर्यप्रज्ञप्ति निर्युक्ति, ७ ऋषिनाषित निर्युक्ति, ८ कल्प निर्युक्ति, ९ व्यवहार निर्युक्ति, १० दशा निर्युक्ति, ये दश निर्युक्तियों और १ कल्प, २ व्यवहार, ३ दशाश्रुतस्कंध, यह नवमे पूर्वसें उद्धार करकें बनाये और एक बहुत बडा नद्रबाहु नामे संहिता ज्योतिष शास्त्र बनाया, उपसर्गहर स्तोत्र बनाया, जैनमतीयों उपर बहुत उपकार करा इनही नद्रबाहुजीका सगा नाइ वराहमेहर हूआ, वो पहिलें तो जैनमतका साधु हूआ था, फेर साधुपणां बोडकें वराही संहिता बनाइ और जो वराह मिहर विक्रमादित्यकी सनाका पंमित था, वो दूसरा वराहमिहर था, संहिता कारक वो नहीं हूआ, इसका संपूर्ण वृत्तांत परिशिष्टपर्वसें जान लेनां श्रीनद्रबाहुस्वामी गृहस्थावासमें पैंतालीश वर्ष रहे, सत्तारे वर्ष व्रतपर्याय, अरु चौदह वर्ष युगप्रधान, सब मिल कर बहत्तर वर्षकी आयु नोगकें श्रीमहावीरसें एकसौ सत्तर (१७०) वर्ष पीछें स्वर्ग गये.

७ यह श्रीसंनूतविजय अरु नद्रबाहुस्वामीके पाट ऊपर श्रीस्थूलनद्रस्वामी बैठे इनका बहुत वृत्तांत है, सो परिशिष्टपर्वग्रंथसें जान लेनां, १ प्रनवस्वामी, २ शिय्यंनवस्वामी, ३ यशोनद्रस्वामी, ४ संनूतविजय, ५ नद्रबाहुस्वामी, ६ स्थूलनद्र,यह बहों आचार्य चौदह पूर्वके वेत्ता थे, श्रीथूलनद्रस्वामी तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे, चौवीश वर्ष व्रतपर्याय, अरु पैंतालीस वर्षयुगप्रधान पदवी,सर्वायु निनानवें वर्षकी नोगकें श्रीमहावीरके पीछे (२१५) वर्षे स्वर्ग गये श्रीमहावीरसें दोसौ चौदह वर्ष पीछें आषाढाचार्यके शिष्य तीसरे निन्हव हूये.

स्थूलिनद्रके वखतमें नवनंदोंका एक सौ पंचावन (१५५) वर्षका राज्य उछेद करकें चाणाक्य ब्राह्मणने चंद्रगुप्तराजाकों राजसिंहासन उपर बैठाया, और चंद्रगुप्तके संतानोंनें एक सौ आठ वर्ष तक राज्य कीया चंद्रगुप्त मोरपालका बेटा था, इस वास्ते चंद्रगुप्तका मौर्यवंश कहते हैं. यह चंद्रगुप्त जैनमतका धारक श्रावक राजा था, यह चंद्रगुप्त तथा नवनंदका वृत्तांत देखनां होवे, तदा परिशिष्ट पर्व, उत्तराध्ययनवृत्ति तथा आवश्यक वृत्तिसें देख लेनां.

श्री स्थूलभद्रस्वामीके पीछें उपर ले चार पूर्व, प्रथम संहनन, प्रथम संस्थान, व्यवछेद हो गये, तथा श्रीमहावीरसें दोसौ बीस (२२०) वर्ष पीछे अश्वमित्र नामा चौथा क्षणिकवादि निन्हव हूआ, और श्री स्थूलभद्रजीके समयमे बारा वर्षका डुर्भिक्ष (काल) पडा उस समयमें चंद्रगुप्तका राज था. तथा श्री महावीरके पीछें (२२८) वर्ष व्यतीत हूए गग नामा पांचमा निन्हव हूआ.

८ श्री स्थूलभद्रके पीछे श्री स्थूलभद्रजीके दो शिष्य एक आर्यमहागिरि, और दूसरा सुहस्ति सूरि, आठमे पाट उपर बैठे, तिसमे आर्यमहागिरिके शिष्य १ बहुल, २ बलिस्सह, फेर बलिस्सहका शिष्य श्री उमास्वातीजी जिसनें तत्त्वार्थादि सूत्र रचे है, और उमास्वातीका शिष्य श्यामाचार्य जिसने प्रज्ञापना (पन्नवणासूत्र) बनाया, यह श्यामाचार्य श्रीमहावीरसें तीन सौ छिहत्तर वर्ष पीछें स्वर्ग गया, और आर्य महागिरजी तीस वर्ष गृहवासमें रहे, चालीस वर्ष व्रत पर्याय अरु तीस वर्ष युगप्रधान पदवी सर्वायु एक सौ वर्षकी भोगके स्वर्ग गया

और दूसरा आठमे पाटवाला सुहस्तिसूरि, जिसनें एक भिखारीकों दीक्षा दीनी वो भिखारी काल करके चंद्रगुप्तका बेटा बिंडुसार और बिंडुसारका बेटा अशोक और अशोकका बेटा कुणाल तिस कुणालका बेटा संप्रति राजा हूआ, तिस संप्रति राजाने जैनधर्मकी बहुत वृद्धि करी, क्योकि कल्प सूत्रके प्रथम उद्देसेमे श्रीमहावीरके समयमें अवकी निसबत बहुत थोडे देशोमे जैनधर्म लिखा है, मारवाड, गुजरात, दक्षिण, पंजाव वगैरे देशोमें जो जैनधर्म है, सो सप्रति राजाहीसे फैला है, यद्यपि इस कालमे जैनी राजाके न होनेसे जैनधर्म सर्व जगे नही, परतु संप्रतिराजाके समयमे बहुत उन्नति पर था, क्योकि सप्रति राजाका राज्य मध्यखंड और गंगापार और सिंधु पारके सर्व देशोमे था, सप्रति राजाने अपने नौकरोको जैनके साधुओका वेष बना कर अपने सेवक राजाओंके जो शक, यवन फारसादि देशो थे, तिन देशोंमे भेजे, तिनोने तिन राजाओंकों जैनके साधुओका आहार विहार आचारादि सर्व वताया और समझाया पीछेसे साधुओंका विहार तिन देशोमे कराकर लोकोको जैन धर्मी करा, और सप्रति राजाने (९९०००) निनानवें हजार जीर्ण (पु

राने) जिनमंदिरोंका उद्धार कराया अर्थात् पुरानें टूटोफूटोंकों नवा बनाया, और छवीस हजार (२६०००) नवीन जिनमंदिर बनवाये, और सोने, चांदी पीतल, पाषाण, प्रमुखकी सवा क्रोड प्रतिमा बनवाइ, तिसके बनवायें मंदिर नमौल, गिरनार. शत्रुंजय, रतलाम, प्रमुख अनेक स्थानोंमें खडे हमनें अपनी आंखोसें देखे हैं, और संप्रतिकी बनवाइ जिनप्रतिमा तो हमने सैंकडो देखी हैं, इस संप्रति राजाका वृत्तांत परिशिष्ट पर्वादि ग्रंथोंसें समग्र जान लेनां.

तिसही सुहस्ती सूरि आचार्यने उजयनकी रहने वाली भद्रसेवानीका पुत्र अवंती सुकुमालकों दीक्षा दीनी. और जहां उस अवंती सुकुमालने काल करा था, तिस जगे तिस अवंती सुकुमालके महाकाल नाम पुत्रने जिनमंदिर बनवाया, और तिस मंदिरमें अपने पिताके नामसें अवंति पार्श्वनाथकी मूर्त्ति स्थापन करी, कालांतरमें ब्राह्मणोने आपना जोर पा कर तिस मंदिरमें मूर्त्तिकों हेठ दाब कर उपर महादेवका लिंग स्थापन करकें महाकाल (महादेवका) मंदिर प्रसिद्ध कर दीया, पीछे जब राजा विक्रम उजयनमें राजा हूआ, तिस अवसरमें कुमुदचंद्र अर्थात सिद्धसेन दिवाकर नामा जैनाचार्यने कल्याणमंदिर स्तोत्र बनाया, तब शिवका लिंग फटकर बीचमेंसुं पूर्वोक्त पार्श्वनाथकी मूर्त्ति फिर प्रगट हूइ.

इसका संबंध ऐसा हैकिः— विद्याधर गछमें स्कंदिलाचार्य तिनका शिष्य वृद्धवादि आचार्य था, तिस अवसरमें उजयनका राजा विक्रमादित्य था, तिसका मंत्री कात्यायन गोत्री देवऋषिनामा ब्राह्मण तिसकी देवसिका नामा स्त्री, तिनका पुत्र सिद्धसेन सो विद्याके अभिमानसें सारे जगतके लोकोंकों तृणवत् (घासफुसशमान) समझता था, और ऐसा जानता था किः— मेरे समान बुद्धिमान कोइभी नहीं, और जो मुझकों वादमें जींत लेवे, तो मैं उसकाही शिष्य बन जाऊंगा पीछें तिसने वृद्धवादीकी बहुत कीर्त्ति सुनी उनके सन्मुख जाने वास्ते सुखासन ऊपर बैठकें भृगु कछ (भरौंच) कीतरफ चला जाता था, तिस अवसरमें वृद्धवादीभी र स्तेमें सन्मुख आता हूआ मिला, तब आपसमें दोनोका आलाप संलाप हू आ पीछें सिद्धसेनजीने कहा कि मेरे साथ तुम वाद करो, तव वृद्धवादीने क हाकि वाद तो करुं, परंतु इस जंगलमें जीते हारेका कहनेवाला कोइ शाक्षी

नहीं, तब सिद्धसेनजीने कहा कि यह जो गौ चरानेवाले गोप हे, येही मेरे तुमारे साक्षी रहे, ये जिसकों कहदेगे हारा सो हारा, तब वृद्धवादीने कहा बहुत अछा, येही साक्षी रहे, अब तुम बोलो तब सिद्धसेनजीने बहुतसंस्कृत नाषा बोली और चुप करी तब गोपोंने कहा यह तो कुठनी नहीं जानता, केवल ऊंचा बोलके हमारे कानोंकों पीडा देता है, तब गोप कहने लगे हे वृद्ध! तूं बोल? पीछें वृद्धवादी अवसर देख कें कछा बांध कर तिन गोपोंकी नाषामे कहने लगे, और थोडे थोडे कूदनेनी लगे, जो छंद उच्चारा सो कहते है " नविमारिये नविचोरिये, परदारागमणनिवारिये ॥ थोवाथोवदाइये, सग्गिमट्टेमट्टेजाइये ॥ १ ॥ फेरनी बोले और नाचने लगे ॥ छंद ॥ कालो कंबल नीचोवट्ट, गर्छे नरिउ दीवडो थट्ट ॥ एवड पडीउ नीले जाड, अवरकिसोछे सग्ग निलाड ॥ २ ॥ यह सुनकर गोप बहुत खुशी हूये और कहने लगेकि वृद्धवादी सर्वज्ञ है, इसने कैसा मीठा कानोको सुखदायी हमारे योग्य उपदेश कहा, और सिद्धसेन तो कुछ नहीं जानता तब सिद्धसेनजीने वृद्धवादीकों कहा कि हे नगवन्! तुम मुजको दीक्षा देके अपना शिष्य बनाउ क्योकि मेरी प्रतिज्ञा थी के जो गोप मुजे हाराकहेगे, तो मै हारा, और तुमारा शिष्य बनूगा यह सुन कर वृद्धवादीने कहा कि नृगुपुरमे राजसनाके बीच तेरा मेरा वाद होवेगा, परंतु यह गोपोकी सनामे वादही क्या है? तब सिद्धसेनने कहा मै अवसर नहीं जानता, तुम अवसरके ज्ञाता हो, इस वास्ते मै हारा पीछें वृद्धवादीने राजसनामे उसको पराजय करा, तब सिद्धसेनने दीक्षा लीनी, गुरुने उनका नाम कुमुदचंद्रजी दीया, पीछें जब आचार्य पदवी दीनी, तब फिर सिद्धसेन दिवाकर नाम रक्खा पीछें वृद्धवादी तो और कहीको विहार कर गये, और सिद्धसेन दिवाकर अवंती (उज्जयनमे) गये, तब उज्जयनका संघ सन्मुख आया, और सिद्धसेन दिवाकरको सर्वज्ञ पुत्र अैसा बिरुद दीया, अैसा बिरुद बोलते हूए अवंती नगरीके चौकमे आये, तिस अवसरमें राजाविक्रमादित्य हाथी ऊपर चढा हूआ सन्मुख मिला तब राजाने सर्वज्ञ पुत्र अैसा बिरुद सुनके तिनकी परीक्षा वास्ते हाथी ऊपर बैठेहीनें मनसें नमस्कार करा तब आचार्यने धर्मलान कहा, तब राजाने पूछाकि विनाही वंदना करे, आप मेरेकों धर्मलान क्यो कर कहा? क्या यह

धर्मलाभ बहुत सस्ता है? तब आचार्यने कहा यह धर्मलाभ क्रोडचिंता मणि रत्नोंसेंभी अधिक है, जो कोइ हमकों वंदना करता हैं, उसकों हम धर्मलाभ कहते हैं. और ऐसेंभी नहीं,जो तुमने हमकों वंदना नहीं करी? तुमनेंभी अपने मनसें वंदना करी, तो मनही सर्व कार्योंमें प्रधान है, इस वास्ते हमने धर्म लाभ कहा है, और तुमनेंभी मेरी परीक्षा वास्तेही मनमें नमस्कार करा है, तब विक्रमराजा तुष्टमान हो कर हाथीसें नीचें उतर कर सर्वसंघकी समक्ष वंदना करी, और एक क्रोड अशर्फी दीनी परंतु आचार्यने अशर्फीयों नही लीनी क्योंकि वे त्यागी थे, और राजाभी पीछा नहीं लेता, तब आचार्यकी आज्ञासें संघपुरुषोने जीर्णोद्धारमें लगा दीनी, राजाके दफतरमें तो ऐसा लिखा है ॥श्लोक॥ धर्मलाभ इतिप्रोक्ते,दूरा दुच्छ्रि तपाणये ॥ सूरये सिद्धसेनाय, ददौकोटिं धराधिपः ॥१॥ श्रीविक्रमराजाके आगें सिद्धसेन दिवाकरने ऐसेंभी कहा था कि ॥गाथा॥ पुंन्ने वास सहस्से, सयंमि वरिसाण नवनवइकलि ए ॥ होइ कुमर नरिंदो, तुहविक्कम राय सारिच्छो ॥ १ ॥ अन्यदा सिद्धसेन चित्रकूटमें गये तहां बहुत पुराने जिनमंदिरमें एक बडा मोटा स्थंभ देखा, तब किसीकों पूछाकि यह स्थंभ किसतरांका है? एह सुन कर किसीने कहा कि यह स्थंभ औषध द्रव्यमय जलादि करकें अभेद्य वज्रवत् है. इस स्थंभमें पूर्वा चार्योंनें बहुत रहस्य विद्याके पुस्तक स्थापन करे हैं, परंतु किसीसें यह स्थंभ खुलता नहीं यह सुन कर सिद्धसेन आचार्यने तिस स्थंभकों सूंघा तिसकी गंधसें तिसकी प्रतिपक्षी औषधीयोंका रस छांटा तिस्सें वो स्थंभ कमलकी तरें खिड गया, तब तिसमें पुस्तक देखा तिनमें सुं एक पुस्तक ले कर वांचा, तिसके प्रथम पत्रमें दो विद्या लिखी पाइ, एक स रसों विद्या और दूसरी सुवर्णविद्या, तिसमें सरसों विद्या उसको कहते है,कि जो काम पडे तब मंत्रवादी जितनें सरसोंके दाने जपके जलाशयमें गेरे उतनेही अश्वार बैतालीश प्रकारके आयुधों सहित बाहिर निकलके मैदानमें खडे हो जाते हैं, तिनोंसें शत्रुकी सेना भंग हो जाती है, पीछे जब वो कार्य पूरा हो जाता है, तब अश्वार अदृश्य हो जाते हैं, और दूसरी हेमविद्यासें विनामेहनतके जितना चाहे, उतना सुवर्ण हो जाता है, ये दो विद्या सिद्धसेनने लेलीनी, पीछे जब आगे वांचने लगा तब

स्थन मिल गया सर्व पुस्तक वीचमें रह गये और आकाशसें देव वाणी हूइ कि तूं इन पुस्तकोंके वाचने योग्य नही आगे मत वांचना, वांचेगा तो तत्काल मर जायगा तब सिद्धसेनने मनके विचार करा कि दो विद्यामि ली येही सही. पीछें चित्रोडसे विहार करके पूर्वदेशमें कुमार पुरमे गये, तहा देवपाल राजा था तिसकों प्रतिवोधके पक्का जैनधर्मी करा, तहां वो राजा सिद्धांत श्रवण करता है, जब असे कितनाक काल व्यतीत हूआ, तब एकदा समय राजा छाना आया, और आंसुसें नेत्र भर कर कहने लगा कि.—हे भगवन् हम वडे पापी हैं, क्योंकि आपकी असी उत्तम गो ष्ठिका रस नही पीसक्ते है ? कारण कि हम बडे संकटमें पडे है, तब आ चार्यने कहा तुमको क्या संकट हूआ ? राजा कहने लगा कि बहुत मेरे वैरीराजे एकठे हो कर मेरा राज्य छीना चाहते है, तब फेर आचार्यने कहा कि हे राजन्! तू आकुल व्याकुल मत हो,जब मै तेरा साहायक हो तो फेर तुझे क्या चिंता है ? यह बात सुन कर राजा बहुत राजी हूआ, पीछें आचार्यने राजाकों पूर्वोक्त दोनो विद्यायोंसें समर्थ कर दीया, तिन विद्यायोसें परदल भंग हो गया, तिनका मेरा मना सर्व राजाने लूंट ली या,तब राजा आचार्यका अत्यंत भक्त हो गया उससे आचार्य सुखोंमे पडके शिथिलाचारी हो गया यह स्वरूप वृद्धवादीजीने सुना, पीछें दया करके तिनका उद्धार करने वास्ते तहा आये, दरवाजे आगे खडे हो कर कह ला भेजा कि एक बूढा वादी आया है, तब सिद्धसेनने बुला कर अपने आगे बैठाया वृद्धवादी, सर्व अपना शरीर वस्त्रसे ढांक कर बोले —"अण फुल्लियफुल्लमतोडहि, मारोवामोडिहिंमणुकुसुमेहि ॥ अच्चिनिरंजणजिण, हि म्हिकाऽरणेणवणु ॥१॥ इस गाथाको सुणकर सिद्धसेनने विचारभी करा परंतु अर्थ न पाया तब विचार कराकि क्या यह मेरे गुरु वृद्धवादी है ? जिनके कहेका मै अर्थ नही जानता हू पीछें जब वार वार देखने लगा तब जाना कि यह मेरा गुरु है पीछे नमस्कार करकें क्षमापन मांगा, औरपूर्वोक्त श्लो कका अर्थ पूछा, तब वृद्धवादी कहने लगे "अणफुल्लियेत्यादि" अणफुल्लिय फुल्ल प्राकृतके अनंतहोनेंमे अप्राप्त फूल फलोको मत तोड, भावार्थ यह हैकि योग जो है, सो कल्पवृक्ष है, किस तरें कि जिस योग रूप वृक्षमें यम नि यम तो मूल है, और ध्यान रूप वडा स्कंध है, तथा समता पणा कवि

पणां, वक्तापणां, यश, प्रताप, मारण, उच्चाटन, स्तंजन, वशीकर णादि सिद्धियों कि जो सामर्थ्य सो फूल है, अरु केवलज्ञान फल है, अजी तो योगकल्पवृक्षके फूलही लगे हैं सो केवल ज्ञानरूप फल करकें आगे फलेंगे इस वास्ते तिन अप्राप्त फल पुष्पोंकों क्यों तोडता है? अर्थात् मत तोड ऐसा जावार्थ है, तथा "मारोवा मोडिहिं" जहां पांच महाव्रत आरोपा है तिनकों मत मरोड "मणुकुसुमेत्यादि" मनरूप फूलें करी निरंजनं जिनं पूजय (निरंजन जिनकों पूज) "वनात् वनंकिंहिंमसे" राजसेवादि बुरे नीरस फल क्यों करता है? इतिपद्यार्थ तब सिद्धसेनसूरिने गुरु शिक्षाकों अपने शिर उपर धरके और राजाकों पूछके वृद्धवादी गुरुके साथ विहार करा, और निबिड चारित्र धारण करा, अनेक आचार्योंसें पूर्वोंका ज्ञान सीखा, वृद्धवादी स्वर्गवास हूए पीछे एकदा सिद्धसेनजीने सर्वसंघ एकठा करकें कहा कि जेकर तुम कहोतो सर्वागमोंकों मैं संस्कृतजाषामें करदेउं तब श्रीसंघने कहा क्या तीर्थंकर गणधर संस्कृत नही जानते थे? जो तिनहोंनें अर्द्धमागधीजाषामें आगम करे? ऐसी बात कहनेसें तुमकों पारांचिक नाम प्रायश्चित्त आवेगा हम तुमसें क्या कहें? तुम आपही जानते हो, तब सिद्धसेनने विचार करकें कहा कि, मैं मौन करकें बारांवर्षका पारांचिक नाम प्रायश्चित्त लेकें गुप्त मुख वस्त्रिका, रजोहरणादि लिंग करकें और अवधूत रूप धारके फिरुंगा, ऐसें कह कर गछकों छोडके नगरादिकोंमें पर्यटन् करने लगे बारां वर्षके पर्यंतमें उज्जयन नगरीमें महाकालके मंदिरमें शेफालिकाके फूलों करकें वस्त्ररंगे पहने हूए सिद्धसेनजी जाके बैठा तब पूजारी प्रमुख लोकोंने कहा तुम महादेवकों नमस्कार क्यों नही करता? सिद्धसेन तो बोलतेही नहीं हैं? ऐसें लोकोंकी परंपरासें सुन कर विक्रमादीत्यनेजी तहां आ कर कहा "क्षीरलिलिक्षोजिक्षोकिमितित्वयादेवोनवंद्यते" तब सिद्धसेनने कहा मेरे नमस्कारसें तुमारे देवका लिंग फट जायगा फेर तुमकों महादुःख होवेगा मैं इस वास्ते नमस्कार नही करता हूं तब राजाने कहा लिंग फटे तो फट जानेद्यो परंतु तुम नमस्कार करों, पीछें सिद्धसेनजी पद्मासन बैठके कहने लगा, सुनो तब द्वात्रिंशका करकें देवका स्तवन करने लगा, तथा हि ॥ श्लोक ॥ इंद्रवज्रवृत्तम् ॥ स्वयंजुवं जूतसहस्रनेत्र,मनेकमेकाक्षरजावलिंगं ॥ अव्यक्तम

व्याहृत विश्वलोक, मनादिमध्यातमपुण्यपापं ॥१॥ इत्यादि प्रथमही श्लोक पढनेसें लिंगमेसे धूआ निकला तबलोक कहने लगे शिवजीका तीसरा नेत्र खुला है, अब इस भिक्षुकों अग्निनेत्रसे भस्म करेगा तबतो विजलीके तेजकी तरें तडतडाट करता प्रथम अग्नि निकला पीछें श्रीपार्श्वनाथजीका बिंब प्रगट हूआ, तब वादी सिद्धसेननें कल्याण मंदिरादि स्तवनों करी स्तवन करकें क्षमापन मांगा, तब राजा विक्रमादित्य कहने लगाकि हे भगवन्! यह क्या अदृश्यपूर्व देखनेमें आया? यह कौनसा नवीन देव है? और यह प्रगट क्यों कर हूआ? तब सिद्धसेनजीनें आवतीसुकुमाल और तिसके पुत्र महाकालने पिताके नामसें आवती पार्श्वनाथका मंदिर और मूर्त्ति बनाइ स्थापन करी, तिसकी कितनेक वर्ष लोकोने पूजा करी अवसर पाकर ब्राह्मणोने जिनप्रतिमाको हेठ दाबके ऊपर यह शिवलिंग स्थापन करा इत्यादि सर्व वृत्तांत कहा, और हे राजन्! इस मेरी स्तुतिसे शासनदेवताने शिवलिंग फाडके वीचमेसे यह प्रतिमा प्रगट कर दीनी, अब तूं सत्यासत्यका निर्णय कर ले तब विक्रमादित्यने एक सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये, और देवके समक्ष गुरु मुखसे बारा व्रत ग्रहण करे, और सिद्धसेनकी बहुत महिमा करी, अपने स्थानमे गया और वादीइ (सिद्धसेनदिवाकरको) संघने जिनधर्मकी प्रभावनासे तुष्टमान हो कर संघमें लीया अरु पूर्ववत् आचार्य बनाया

एकदा प्रस्तावे सिद्धसेन दिवाकर विहार करते हूये मालवेके देशमे जो ॐकारनामें नगर है,तहां गये,तिसनगरके भक्त श्रावकोनें आचार्यको विनती करी,जैसे हे भगवन्! इसी नगरके समीप एक गाम था,तिसमे सुंदर नामा राजपुत्र ग्रामणी था, तिसकी दो स्त्रीयां थी, एक स्त्रीके प्रथम पुत्री जन्मी वो स्त्री मनमे खीजी तिस अवसरमें उसकी सौकनभी प्रसूत होने वाली थी,तब तिस बेटीवालीनें विचारा कि इसके पुत्र न होवे,तों ठीक है,क्योंकि नही तो यह पतिकों वल्लभ हो जावेगी, तब दाइसे मिलके उस्से पेदा हूआ पुत्रकों बाहिर गिरा दीया, और तत्कालका मरा हूआ लडका उसके आगे रख दीया पीछें जौनसा लडका बाहिर गेरा गया था, उसको कुलदेवीनें गौका रूप करकें पाला जब आठ वर्षका हूआ तब इस ॐकार नगरके शिवभवनके अधिकारी भरटने देखा और अपना चेला बना लीया, एकदा प्रस्तावे

कन्य कुब्ज देशका राजा आंखोंसें आंधाने दिग् विजय कार्यसें तहां पडाव करा तब रात्रिमें उस छोटे चेलेकों शिवभक्त व्यंतर देवतानें कहा कि छेप भोगराजाकों देनां, उसकी आंख अच्छी हो जावेंगी, तैसेही करा तिस्सें राजाकी आंख अच्छी हो गइ तब राजाने सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये और यह बडा ऊंचा जो शिवका मंदिर है सोभी उसीनें बनवाया, और हम इस नगरमें रहते हैं परंतु मिथ्यादृष्टियोंके बलवान् होनेंसें हम जिनमंदिर बनाने नही पाते हैं, इस वास्ते आपसें विनति करते हैं, कि इस मंदिरसें अधिक हमारा मंदिर यहां बने तो ठीक है, और आप सर्वतरेंसें सामर्थ हों. तिनका वचन सुनकर वादिइने आवंतीमें आकर चार श्लोक हाथमें ले कर विक्रमादित्यके द्वार पास आये दरवाजे दारके मुखसें राजाकों कहाया "दिदृक्षुर्भिक्षुरायातस्तिष्ठति द्वारवारितः हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः उतागच्छतुगच्छतु॥१॥ तिस श्लोककों सुनकर विक्रमादित्यनें बदलेका श्लोक लिखकर भेजा" दत्तानिदशलक्षाणि, शासनानिचतुर्दश ॥ हस्तन्यस्तचतुःश्लोकः उतागच्छतु गच्छतु ॥ २ ॥ तिस श्लोककों सुनकर आचार्यने कहा भेजा कि भिक्षु तुमकों मिला चाहता है, परंतु धन नहीं लेता तब राजाने सन्मुख बुलवाये और पिछानके कहने लगा कि गुरुजी बहुत दिनों पीछें दर्शन दीया तब आचार्य कहने लगे धर्मकार्यके करनेंसें बहुत दिन हूये चिरसें आना हूआ अब चार श्लोक तुम सुनो ॥ अपूर्वेयं धनुर्विद्या, भवताशिक्षिता कुतः॥ मार्गणौघः समभ्येति, गुणोयातिदिगंतरे ॥ १ ॥ सरस्वतीस्थितावक्रे, लक्ष्मीकरसरोरुहे ॥ कीर्त्तिःकिंकुपित राजन्, येन देशांतरंगता ॥ २ ॥ कीर्त्तिस्तेजातजाड्येव, चतुरंभोधिमज्जनात्, ॥ आतपायधरानाथ, गतामार्त्तंडमंडलं ॥ ३ ॥ सर्वदासर्वदोसीति, मिथ्या संस्तूयसे जनैः ॥ नारयोलेभिरे पृष्ठं, नवक्षःपरयोषितः ॥ ४ ॥ यह चारों श्लोक सुनकें राजा बहुत खुश हूआ, और आचार्यकों कहने लगा जो मेरा राज्यमें सार है, सो मांगो तो देदउं तब आचार्यनें कहा मुझेतो कुछभी नही चाहिता, परंतु ॐकार नगरमें चतुर्द्वार जैनमंदिर शिवमंदिरसें उंचा बनाउ और प्रतिष्ठाभी कराउ तब राजानें वैसेंही करा तब जिनमत प्रभावना देखकें संघ तुष्टमान हूआ, इत्यादि प्रकारसें जैनधर्मकी प्रभावना करते हूए दक्षिणदेशमें प्रतिष्ठानपुरमें जा कर अनशन करके देवलोक गये, तब तहांसें संघने एक भट्टकों सि-

सेनकी गछ पास खबर करनेको भेजा,तिस भट्टने सूरियोंकी सभामे आधा श्लोक पढा और वार वार पढताही रहता है, वो आधा श्लोक यह है – स्फुरति वादिखद्योता', साप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब वार वार यह अर्द्ध श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी बहिन साधवीने सिद्ध सारस्वत मत्रसें अर्द्ध श्लोक पूरा करा नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकर ॥ १ ॥ पीछे तिस भट्टने सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघकों बडा शोक हूआ ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसे संबध कथन करा ॥

यह सुहस्ति आचार्य तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे और चौवीसवर्ष व्रत पर्याय, तथा छैतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी सब मिलकर एक सौ वर्षकी आयु भोगके श्रीमहावीरसे पीछें दोसौ एकानवे (२९१) वर्ष पीछे स्वर्ग गये, ये आठमे पाट आर्यमहागिरि और सुहस्ति आचार्य हूए.

ए श्रीसुहस्तीसूरिके पाट उपर श्रीसुस्थित और सुप्रतिबद्ध नामा दो शिष्य वैठे, तिनोने क्रोडो वार सूरिमत्रका जाप करा, इसवास्ते गछका कोटिक ऐसा दूसरा नाम श्रीसंघने रक्खा, क्योंकि सुधर्मस्वामीसे ले कर आठपाट तक तो अनगार निर्ग्रंथगछ नाम था पीछे दूसरा कोटिक नाम हूआ

१० श्रीसुस्थितसूरिके पाट उपर श्रीइन्द्रदिन्नसूरि हूआ इस अवसरमे श्री महावीरसे चारसौ त्रेपन (४५३) वर्ष पीछे गर्दभिल्लराजाके उछेद करणेवाला दूसरा कालिकाचार्य हूआ, इसकी कथा कल्पसूत्रमे प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरसे (४५३) वर्ष पीछे भृगुकछ (भडौचमे) श्रीआर्य खपुटाचार्य विद्याचक्रवर्त्ती हूआ, इनका प्रबंध श्रीप्रबंधचिंतामणिग्रंथ तथा हारिभद्री आवश्यककी टीकासे जान लेना और प्रभावक चरित्रमे ऐसा लिखा है कि – श्रीमहावीरसे (४७४) वर्ष पीछे खपुटाचार्य और (४६४) (४६७) वर्ष पीछे आर्यमंगु, वृद्धवादि, पादलिप्त तथा कल्याण मदिरका कर्त्ता उपर जिसका प्रबध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हूआ जिनोने विक्रमादित्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसे (४७०) वर्ष पीछे हूआ सो (४७०) वर्ष ऐसे हूएहै,– जिस रात्रिमे श्रीमहावीरजी निर्वाण हूए उस दिन अवति नगरीमे पालक नामा राजेको राज्याभिषेक हूआ, यह पालक चड्प्रद्योतका पोता था तिसका राज्य (६०) वर्ष रहा, तिसके पीछें श्रेणिकका वेटा कोणिक और कोणिकका वेटा उदायी जब त्रि

ना पुत्रके मरा तब तिसकी गद्दी ऊपर नंद नामा नाइ बैठा, तिनकी गद्दी में सर्व नंदनामा नव राजे हूए तिनका राज्य (१५५) वर्ष तक रहा न वमें नंदकी गद्दी ऊपर मौर्यवंशी चंद्रगुप्त राजा हूआ तिसका बेटा बिंदु सार तिसका बेटा अशोक तिसका बेटा कुणाल तिसका बेटा संप्रति महारा जादि हूए, इन मौर्यवंशीयोंका सर्व राज (१०८) वर्ष तक रहा यह पू र्वोक्त सर्वराजे प्रायें जैनमत वाले थे तिनके पीछे तीस वर्ष तक पुष्पमित्र राजाका राज्य रहा, तिस पीछें बलमित्र, जानुमित्र, यह दोनो राजाका राज्य (६०) वर्ष तक रहा, तिस पीछे नभवाहन राजाका राज्य (४०) वर्ष तक रहा, तिस पीछें तेरां वर्ष गर्दभिल्लीका राज्य रहा, और चार वर्ष शकोंका राज्य रहा, पीछे विक्रमादित्यनें शकोंकों जीतके अपना राज्य जमाया यह सर्व (४७०) वर्ष हूए.

११ श्रीइंद्रदिन्न सूरिके पाट ऊपर श्रीदिन्नसूरि हूये १२ दिन्न सूरिके पाट ऊपर श्रीसिंहगिरि सूरि हूये, १३ श्रीसिंहगिरिजीके पाट ऊपर श्रीवज्र स्वामी हूये, जिनकों बाल्यावस्थासें जातिस्मरण ज्ञान था, जिनकों आका शगमन विद्याभी थी, जिनोंने दूसरे बारां वर्षी कालमें संघकी रक्षा करी, तथा जिनोंने दक्षिणपथमें बौधोंके राज्यमें श्रीजिनेंद्रपूजा वास्ते फूल लाके दीये, बौद्धराजाकों जैनमती करा, यह आचार्य पीछला दशपूर्वका पाठक हूआ, जिनोंसें हमारी वज्री शाखा उत्पन्न हूइ, इनका प्रबंध आवश्यक वृ त्तिसें जान लेनां. सो वज्रस्वामी श्रीमहावीरसें पीछें चार सौ छानवे और विक्रमादित्यकें संवत छवीसमें जन्मे, और आठ वर्ष घरमें रहे चौतालीस वर्ष समान साधुव्रतमें रहे और छत्तीस वर्ष युगप्रधान पदवीमें रहे, सर्वायु अठाशी वर्षकी भोगी, तथा इन आचार्यके समयमें जावडशाह सेठने श्री शत्रुंजय तीर्थका संवत् १०८) में तेरहवा बडा उद्धार करा, तिसकी श्री वज्र स्वामीने प्रतिष्ठा करी यह श्रीवज्र स्वामी श्रीमहावीरसें (५०४) वर्ष पीछें स्वर्ग गये, इन श्रीवज्र स्वामीके समयमें दशमा पूर्व और चौथा सं हनन और चौथा संस्थान व्यवछेद होगये, यहां श्रीसुहस्ती सूरि आठमें और श्रीवज्र, स्वामी तेरहवें पाटके वीचमें अपर पटावलियोंमें १ श्रीगुण सुंदरसूरि, २, श्रीकालिकाचार्य, ३ श्रीस्कंधिलाचार्य, ४ श्रीरेवतमित्रसूरि, ५, श्रीधर्मसूरि, ६ श्रीभद्रगुप्ताचार्य, ७ श्रीगुप्ताचार्य, यह सात क्रमसें युग

प्रधान आचार्य हूये तथा श्रीमहावीरसे पाचसौ तेतीस (५३३) वर्ष पीछें श्रीआर्यरक्षितसूरिने सर्व शास्त्रोका अनुयोग पृथग् पृथग् कर दीये, ये प्रबंध आवश्यक वृत्तिसे जान लेना तथा श्रीमहावीरसे (५४८) मे वर्ष त्रैराशिके जीतने वाले श्रीगुप्त सूरि हूये, तिनका प्रबध उत्तराध्यनकी वृत्ति तथा श्रीविशेषावश्यकसे जान लेनां, जिसने त्रैराशिक मत्त निकाला तिसका नाम रोहगुप्त था, वो श्रीगुप्तसूरिका चेलाथा, जिसका उलूक गोत्र था जब रोहगुप्त गुरुके आगे हारा, और मत कदाग्रह न छोडा, तब अंतरजिका नगरीके बलश्रीराजाने अपने राज्यसे बाहिर निकाल दीया, तब तिस रोहगुप्तने कणाद नाम शिष्यकरा, उसको १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इन षट् पदार्थोंका स्वरूप बतलाया, तब तिस कणादनें वैशेषिक सूत्र बनाये, तहांसे वैशेदिक मत चला

१४ श्रीवज्र स्वामीके पाट ऊपर चौदवें श्रीवज्रसेन सूरि बैठे, वे दुर्भिक्षमे श्रीवज्र स्वामीके वचनसे सोपारक पत्तनमे गये तहा जिनदत्तके घरमें ईश्वरी नामा तिसकी भार्याने लाख रूपकके खरचनेसे एक हांडी अन्नकी राधी, जिसमे विष (जहर) मालने लगी, क्योंकि उनोनें विचाराथा कि अन्न तो मिलता नही तिस वास्ते जहर खाके सर्व घरके आदमी मर जायें गे, तिस अवसरमे श्रीवज्रसेन सूरि तहा आये, वो उनको कहने लागे कि तुम जहर मत खाओ कलको सुगाल हो जावेगा तैसेही हूआ तब तिन शेठके चार पुत्रोनें दीक्षा लीनी, तिनके नाम लिखते है – १ नागेंद्र, २ चंद्र, ३ निवृत्त, ४ विद्याधर, तिन चारोसे स्व स्व नामके चार कुल बने यह वज्रसेन सूरि नव वर्ष तक गृहस्थावासमे रहे और (११६) वर्ष समान साधुव्रतमे रहे तथा तीन वर्ष युग प्रधान पदवीमे रहे सर्वायु (१२८) वर्षकी भोगके श्री महावीरसे (६२०) वर्ष पीछें स्वर्ग गये, यहा श्रीवज्रस्वामी और वज्रसेन सूरिके वीचमे आर्य रक्षित सूरि तथा श्री दुर्बलिका पुष्प सूरि, यह दोनो युग प्रधान हूये, श्रीमहावीरसे (५८४) वर्ष पीछें सातवा निन्हव हूआ, तथा श्रीमहावीरसे (६०९) वर्ष पीछें श्री कृष्ण सूरिका शिष्य शिवभूति नामे था तिने दिगम्बर मत प्रवृत्त करा, सो अधिकार विशेषावश्यकादिकोसे जान लेना

१५ श्रीवज्रसेन सूरिके पाट ऊपर श्रीचंद्रसूरि बैठा, तिनके नामसे गच्छ

का तीसरा नाम चंद्रगच्छ हूआ, (१६) श्री चंद्रसूरिके पाट ऊपर श्री सामंतभद्रसूरि हूये, वे पूर्वगत श्रुतके जानकार थे, वैरागके रंगसें निर्मल हूए, जंगलोंमें रहते थे, तब लोकोंनें चंद्रगच्छका नाम वनवासी गच्छ रक्खा, १७ श्रीसामंतभद्र सूरिके पाट ऊपर श्रीवृद्धदेव सूरि हूये, तथा श्रीमहावीरसें (५९५) वर्ष पीछें कोरंट नगरमें नाहड नामा मंत्रीनें तथा सत्यपुरमें नाहडमंत्रीने मंदिर बनवाया, प्रतिमाकी प्रतिष्ठा जज्जक सूरिनें करी, प्रतिमा श्री महावीरकी स्थापन करी जिसकों "जयउवीरसच्चउरिमंमण" कहते हैं (१८) श्रीवृद्धदेव सूरिके पाट ऊपर श्री प्रद्योतन सूरि हूये.

१९ श्री प्रद्योतन सूरिके पाटऊपर श्रीमानदेव सूरि हूये, इनके सूरिपद स्थापनावसरमें दोनो स्कंधोंपर सरस्वती और लक्ष्मी साक्षात् देखकें यह चारित्रसें भ्रष्ठ हो जावेगा ? ऐसें विचार करकें खिन्नचित्त गुरुकों जानकें गुरुके आगें ऐसा नियम करा कि:— भक्तिवाले घरकी भिक्षा और दूध, दही, घृत, मीठा, तेल, अरु सर्व पक्वान्नका, त्याग कीया, तब तिनके तपके प्रभावसें नमोल पुर जो पालीके पास है तिसमें १ पद्मा, २ जया, ३ विजया, ४ अपराजिता, ए चार नामकी चार देवी सेवा करती देखी, कोइ मूर्ख कहने लगाकि ए आचार्य स्त्रीयोंका संग क्यों करता है? तब तिन देवीयोंनें तिसकों सिक्षा दीनी, तथा तिसके समयमें तिक्षिला (गजनी) नगरीमें बहुत श्रावक थे तिनमें मरीका उपद्रव हूआ तिसकी शांतिके वास्ते श्री मानदेव सूरिने नमोल नगरीसें शांतिस्तोत्र बना कर भेजा.

२० श्री मानदेव सूरिके पाट ऊपर श्री मानतूंग सूरि हूये जिनोने भक्तामर स्तवन करकें बाण अरु मयूर पंडितोंकी विद्या करकें चमत्कृत हूआ जो वृद्ध भोजराजा तिनकों प्रतिबोधा, और भयहर स्तवन करकें नागराजा वश करा. तथा भत्तिभरेत्यादि स्तवन जिनोनें करे हैं प्रभावक चरित्रमें प्रथम श्री मानतूंग सूरिका चरित्र कहा. और पीछें देवसूरिका शिष्य श्री प्रद्योतनसूरि तिनका शिष्य श्रीमानदेव सूरिका प्रबंध कहा. परंतु तहां संका न करनी चाहियें क्योंकि प्रभावक चरित्रमें औरभी कई प्रबंध आगे पीछें कहे हैं.

२१ श्रीमानतुंगसूरिके पाट ऊपर श्रीवीरसूरि बैठा, सो वीरसूरिनें श्री महावीरसें (७७०) वर्षमें तथा विक्रम संवत्के तीन सौ वर्ष पीछें नागपुरमें श्रीनमि अर्हतकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी, यदुक्तं ॥ आर्या ॥ नागपुरे

नमिजवन, प्रतिष्ठयामहितपाणिसौजाग्य ॥ श्रनवधीराचार्य, स्त्रिनिः शतै, साधिके राज्ञ. ॥ १ ॥

२२ श्रीवीरसूरिके पाट ऊपर श्रीजयदेवसूरि बैठे, २३) श्रीजयदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीदेवानंदसूरि बैठे इस अवसरमें श्रीमहावीरसे (८४५) वर्ष पीछे वलजी नगरी नंग हूइ, तथा (८८२) वर्ष पीछे चैत्येस्थिति तथा (८८६) वर्ष पीछे ब्रह्मद्विपिका २४) श्रीदेवानंदसूरिके पाट ऊपर श्रीविक्रमसूरि बैठे, २५) श्रीविक्रमसूरिके पाट ऊपर श्रीनरसिंहसूरि बैठे यत ॥ नरसिंहसूरिरासी,दतोऽखिलग्रंथपारगोयेन ॥ यक्षोनरसिंहपुरे, मास रतिस्त्याजितास्वगिरा ॥ १ ॥ २६) श्रीनरसिंहसूरिके पाट ऊपर श्रीसमुद्रसूरि बैठा ॥श्लोक॥ वसततिलकावृत्तम् ॥ खोमीणराजकुलजोपि समुद्रसूरि, र्गछं शशास किल य प्रवण प्रमाणी ॥ जित्वातदाक्षपनकान् स्ववश वि तेने, नागहृदेभुजगनाथनमस्यतीर्थम् ॥१॥२७) श्रीसमुद्रसूरिके पाट ऊपर श्रीमानदेव सूरि हूए ॥श्लोक॥ वसततिलकावृत्तम् ॥ विद्यासमुद्रहरिनद्रमुनी द्रमित्रं, सूरिर्बनूव पुनरेव हि मानदेव ॥ मांद्यात्प्रयातमपियोनघसूरिमंत्रं, लेनेबिकामुखगिरा तप सोऽर्च्यते ॥ १ ॥ श्री महावीरसे एक हजार वर्ष पीछें सत्यमित्र आचार्यके साथ पूर्वोका व्यवछेद हूआ, यहा १ श्रीनाग हस्ति, २ रेवतीमित्र, ३ ब्रह्मद्वीप, ४ नागार्जुन, ५ नूतदिन्न, ६ श्रीकाल कसूरि, ये छै युगप्रधान यथाक्रमसे श्रीवज्रसेनसूरि और सत्यमित्रके वीचमे हूए, इन पूर्वोक्त छै युगप्रधानोंमेसे शक्रानिवदित और प्रथमानु योग सूत्रोंका सूत्रधार कटप श्रीकालिकाचार्य श्रीमहावीरसे (९९३) वर्ष पीछें पचमीसे चौथकी सवत्सरी करी तथा श्रीमहावीरात् (१०५५) वर्ष पीछे और विक्रमादित्यसे (५८५) वर्ष पीछे यकनी साधवीका धर्म पुत्र श्रीहरिनद्र सूरि स्वर्गवास हूए, तथा (१११५) वर्षपीछे श्रीजिनन द्रगणि युगप्रधान हूआ और यह जिननद्रीय ध्यानशतकका कर्त्ता होने से और हरिनद्रसूरिके टीका करनेसे दूसरा जिननद्र है, यह कथन पट्टा वलिमे है, परतु श्रीजिननद्रगणिक्षमाश्रमणकी आयु (१०४) वर्षकी थी, इस वास्ते जे कर हरिनद्रसूरिके वखतमे जीते होवे तोनी विरोध नहीं

२८ श्रीमानदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीविबुधप्रनसूरि हूआ, २९) श्रीवि बुधप्रनसूरिके पाट ऊपर श्रीजयानदसूरि हूआ, ३०) श्रीजयानंदसूरिके पा

ट ऊपर श्रीरविप्रभसूरि हूआ, सो महावीरसें पीछें (११७०) वर्ष और विक्रमसंवत्सें (७००) वर्ष पीछें नड्डोल नगरमें श्रीनेमिनाथका प्रासाद (मंदिरकी) प्रतिष्ठा करी तथा श्रीवीरात् (११९०) वर्ष पीछें उमास्वाति युगप्रधान हूआ, ३१ श्रीरविप्रभसूरिके पाट ऊपर श्रीयशोदेव सूरि बैठे, यहां श्रीमहावीरसें (१२७२) वर्ष पीछें और विक्रम संवतसें (८०२) के सालमें अणहल्ल पुर पट्टन वनराज राजेने वसाया वनराज जैनी राजा था, तथा श्रीवीरात् (१२७०) और विक्रमादित्यके संवत् ८००) के सालमें भाद्रपद शुक्ल तीजके दिन बप्प भट्ट आचार्यका जन्म हूआ, जिसने गवालियरके आम नाम राजाकों जैनी बनाया. इनका विशेष चरित्र प्रबंधचिंतामणि ग्रंथसें जान लेनां.

३२ श्रीयशोदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीप्रद्युम्नसूरि हूआ, ३३) श्रीप्रद्युम सूरिके पाट ऊपर श्रीमानदेव, सूरि उपधानवाच्यग्रंथका कर्त्ता हूआ, ३४) श्रीमानदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीविमलचंद्र सूरि हूआ, ३५) श्रीविमलचंद्र सूरिके पाट ऊपर श्रीउद्योतनसूरि हूआ, सो उद्योतनसूरि अर्बुदाचले (आबू)के पहाड ऊपर यात्रा करणे आये थे, उहां टेली गामके पास बडी बडवृक्षकी छायामें बैठोनें अपने पाटकी वृद्धि वास्ते अछा मुहूर्त्त देख करकें श्रीमहावीरसें (१४६४) वर्ष और विक्रमसें (९९४) वर्ष पीछें अपने पाट ऊपर श्रीसर्वदेवप्रमुख आठ आचार्य स्थापे कोइ एकले सर्वदेव सूरिकोंही कहते हैं, बडे वडके हेठ सूरि पदवी देनेंसें तहांसें वन बासी गछका पांचमा नाम वडगछ हूआ, " प्रधानशिष्यसंतत्या, ज्ञानादि गुणैः प्रधानचरितैश्चवृद्धत्वा बृहद्गछइत्यपि "

३६) श्रीउद्योतनसूरिके पाट ऊपर श्रीसर्वदेवसूरि हूए, यहां कोइक तो श्रीप्रद्युम्नसूरि और उपधान ग्रंथका कर्त्ता श्रीमानदेवसूरि इन दोनोंकों पट्टधर नहीं मानते हैं, तिनके अभिप्रायसें सर्वदेवसूरि चौतीसमें पाट हूआ, सो सर्वदेवसूरि श्रीगौतमस्वामीकी तरें सुशिष्य लब्धिमान विक्रमसंवतसें (१०१०) वर्ष पीछें रामसैन्य पुरमें श्रीऋषभचैत्य तथा चंद्रप्रभचैत्यकी प्रतिष्ठा करी, तथा चंद्रावतीमें कुंकणमंत्रिकों प्रतिबोधके दीक्षा दीनी, तिसनेही चंद्रावतीमें जैनमंदिर बनवाया था, तथा विक्रमसें (१०२९) वर्ष पीछें धनपाल पंडितनें देशी नाम माला बनाइ तथा विक्रमसें(१०९६)

वर्ष पीछें श्रीउत्तराध्ययनकी टीका करने वाला थिरापद्रीयगछमे वादी वैताल श्री शांति सूरि हूये

३७ श्री सर्व देवसूरिके पाट ऊपर श्री देवसूरिके रूपश्री औसा राजानें विरुद दीया, (३८) श्री देवसूरिके पाट ऊपर फिर श्री सर्व देवसूरिनामा हूये जिसने यशोभद्र नेमिचद्रादि आठ आचार्योंकों आचार्य पदवी दीनी, तथा श्री महावीरसें(१४७६)वर्ष पीछें तक्षिलाका नाम गजनी रक्खा गया, (३९) श्री सर्व देवसूरिके पाट ऊपर श्री यशोभद्र अरु नेमिचद्र ये दो गुरु नाइ आचार्य हूये, तथा विक्रमसे (११३५) वर्ष पीछें कोइ कहता है, (११३९) वर्ष पीछें नवांगीवृत्ति करने वाला श्री अभयदेवसूरि स्वर्ग वास हूवे, तथा कूर्चपुरगछीय चैत्यवासि जिनेश्वरसूरि शिष्य श्री जिनवल्लभ सूरिने चित्रकूटमे श्री महावीरके षट् कल्याणक प्ररूपे

४० श्री यशोभद्रसूरि तथा श्री नेमिचद्रसूरिके पाट ऊपर श्री मुनिचंद्र सूरि हूये, जिनोने जावज्जीव एकसोवीर पाणी पीना रक्खा, और सर्व विगयका त्याग करा तथा जिनोनें श्रीहरिभद्रसूरिकृत अनेकात जयपताकादि अनेक ग्रंथोकी पजिका करी, उपदेशपदकी वृत्ति, योगबिंडकी वृत्ति, इत्यादिकोके करनेसे तार्किक शिरोमणि जगत्मे प्रसिद्ध हूआ, और यह आचार्य बडा त्यागी निस्पृह हूआ. यहां विक्रम राजासे (११५९) वर्ष पीछें चंद्रप्रभसे पौर्णिमीयक मतोत्पत्ति हुइ तिस चंद्रप्रभके प्रतिबोधने वास्ते श्री मुनिचद्रसूरिजीने पाक्षिक सप्ततिका करी, है तथा श्री मुनिचद्रसूरिका शिष्य श्री अजितदेव सूरि वादी अरु श्री देवसूरि प्रमुख हूये तहा वादी श्री अजितदेव सूरिजीने अणहल पुरपाटणमे श्रीजयसिंह देवराजाकी सभामे अनेक विद्वज्जन संयुक्त चोराशीवाद वादियोसे जीते, दिगंबरमतका चक्रवर्त्ती कुमुदचद्र आचार्यको जिनोने वादमे जींता, और दिगंबरोका पट्टनमे प्रवेश करना बंद कराया, सो आज तक प्रसिद्ध है, तथा विक्रमसे (१२०४) वर्ष पीछें फलवर्द्धिग्राममे चैत्यबिंबकी प्रतिष्ठा करी, सो तीर्थ आजभी प्रसिद्ध है तथा आरासणेमे श्री नेमिनाथकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोने (८४०००) चोरासी हजार श्लोक प्रमाण स्याद्वादरत्नाकर नामा ग्रंथ बनाया, तथा जिनोसे बडे नामावर चौवीश आचार्योंकी शाखा हूइ, इनोका जन्म संवत् (११३४) में हूआ, (११५२) मे दीक्षा लीनी, (११७४) में सूरिपद

मिला, (१२२०) की श्रावणकृष्णसप्तमी गुरुवारें स्वर्गकों प्राप्त हूये, तिनोंके समयमें श्री देवचंद्रसूरिका शिष्य तीन क्रोड ग्रंथका कर्त्ता, कलिकालमें सर्वज्ञ बिरुदका धारक, पाटणके राजा कुमारपालका प्रतिबोधक, सवा लक्ष श्लोक प्रमाण पंचांग व्याकरणका कर्त्ता, श्री हेमचंद्रसूरि विद्या समुद्र हूआ, तिनका विक्रमसंवत् (११४५) में जन्म (११५०) में दीक्षा (११६६) में सूरिपद अरु (१२२९) में स्वर्गवास हूआ, इनोंका संपूर्ण प्रबंध देखनां होवे, तदा श्री प्रबंध चिंतामणि तथा कुमारपाल चरित्रसें देख लेनां. ४१ श्री मुनिचंद्रसूरिके पाट ऊपर श्री अजितदेव सूरि हूये, तिनोंके समयमें संवत् (१२०४) में खरतरोत्पत्ति, संवत् (१२१३) वर्षे आंचलिकमतोत्पत्ति, संवत् (१२३६) वर्षे सार्द्धपौर्णिमीयक मतोत्पत्ति, संवत् (१२५०) वर्षे आगमिक मतोत्पत्ति, हूइ, तथा श्री वीरजगवानसें (१६९२) वर्षे वागजट मंत्रीने शत्रुंजयका चौदहमां उद्धार कराया, साढे तीन क्रोड रूपक लगाया.

४२ श्री अजितदेव सूरिपट्टे श्री विजयसिंह सूरि हूये, जिनोंनें विवेकमंजरी शुद्ध करी,जिनोका वडा शिष्य श्री सोमप्रज सूरि शतार्थितया अर्थात् जनोके बनाये एकेक श्लोकोंके सौ सौ तरेंके अर्थ निकलें और दूसरा मणिरत्न सूरिथा,(४३) श्री विजयसिंह सूरिपट्टे श्री सोमप्रज सूरि और मणिरत्नसूरि हूये. ४४ श्री सोमप्रज तथा श्री मणिरत्न सूरिके पाट ऊपर श्री जगच्चंद्र सूरि हूये, जिनोंनें अपणें गच्छकों शिथिल देखकें और गुरुकी आज्ञासें वैराग्य रसका समुद्र चैत्रवालगच्छीय श्री देवजद्र उपाध्यायके सहायसें क्रिया उद्धार कीया, और हीरलाजगच्चंद सूरि बिरुद पाया, क्योंकि जिनोंनें चितोडके राजाकी राजधानी अघाट अर्थात् (अहडमें) बत्तीस दिगंबराचार्योंके साथ वाद करता हूआ, हीरेकी तरें अजेय रहा, तब राजानें हीरलाजगच्चंद्र सूरि ऐसा बिरुद दीया तथा जिनोने यावज्जीव आचाम्लतपका अजिग्रह करा तब बारा वर्ष तप करता हूआ तब चितोडके रानाने तपा बिरुद दीया संवत् (१२८५) के वर्षमें वडगच्छका नाम तप गच्छ हूआ, यह छठा नाम हूआ १ निर्ग्रंथ, २ कोटिक, ३ चंद्र, ४ बनवासी, ५ वडगच्छ, ६ तपागच्छ, इन छहों नामोंके प्रवृत्त होनेके छै आचार्य हेतुरूप हूये हैं, तिसका नाम अनुक्रममें लिखते

है.— १ श्री सुधर्मस्वामी, २ सुस्थित सूरि, ३ श्रीचंद्र सूरि, ४ सामंतनद्र सूरि, ५ श्रीसर्वदेव सूरि, ६ श्रीजगच्चंद्र सूरि

४५ श्री जगचंद्र सूरि पट्टे श्री देवेंद्र सूरि हूये, सो मालवेकी उज्जयनी नगरीमे जिनचंद्र नामा वडे शेठका वीरधवल नामा पुत्र तिसके विवाह निमित्त महोत्सव हो रहा था, तब वीरधवल कुमारकों प्रतिवोध करकें संवत् (१३०२) वर्षमे दीक्षा दीनी, तिस पीछें तिसके नाइकोंनी दीक्षा देकर चिरकाल तक मालव देशमे विचरे, तिस पीछें गुर्जर देशमे देवेंद्र सूरि श्री स्तंन स्तीर्थमे आये, तहां पहिला श्री विजयचंद्र सूरि गीतार्थोंको पृथक् पृथक् वस्त्रके पोटले देता है, और नित्य विगय खानेकी आज्ञा देता है, और वस्त्र धोनेकी तथा फल, शाक लेनेकी और निर्वृकृतके प्रत्याख्यानमे विगयगतका लेना कहता है और आर्याका ल्याया आहार साधु खावे, यह आज्ञा देता है, और दिनप्रत्यें द्विविध प्रत्याख्यान और गृहस्थोंके अवर्जिने वास्ते प्रतिक्रमण करणेकी आज्ञा देता है, और संविनागके दिनमें तिसके घरमें गीतार्थी जावे, लेपकी संनिधि रखनी, तत्कालोष्णोदकका ग्रहण करणा इत्यादि काम करनेसे कितनेक साधु शिथिलाचार्योंको साथ लेकर सदोष पौषधशालामे रहा

इन विजयचंद्राचार्यकी उत्पत्ति ऐसे है मंत्री वस्तुपालके घरमे विजयचंद्रनामा दफतरीया, वो किसी अपराधसे जेहल खानेमे कैद हूआ, तब श्री देवनद्र उपाध्यायने दीक्षा देनेकी प्रतिज्ञा करवा कर छुडा दीया, पीछें तिसने दीक्षा लीनी, सो बुद्धिबलसे बहुश्रुत हो गया, तब मंत्री वस्तुपालने कहाकि ये अभिमानी है, इस वास्ते सूरिपदके योग्य नहीं है. इस तरें मने करते हूए तोनी श्री जगचंद्र सूरिजीने श्री देवनद्र उपाध्यायके कहनेसें सूरिपद दे दीया, क्योंकि यह देवेंद्र सूरिका साहायक होवेगा ऐसा जान कर सूरिपद दीया, पीछें वो विजयचंद्र बहुत काल तक श्री देवेंद्र सूरिके साथ विनयवान् शिष्यकी तरे वर्त्तता रहा परंतु जब मालव देशसें श्री देवेंद्र सूरि आये, तब वंदना करनेकोनी नहीं आया, तब देवेंद्र सूरिजीने कहला नेजा कि एक वस्तिमे तुम बारां वर्ष कैसे रहे ? तब विजयचंद्रने कहाकि शांत दांतको बारां वर्ष एक जगेमें रहनेसे कुछ दोष नहीं संविग्नसाधु सबी देवेंद्र सूरिके साथ रहे, और देवेंद्र सूरिजी तो अनेक स

विग्न साधुकें समुदाय साथ उपाश्रयमेंही रहे, तब लोकोंने वडीशालामें रहनेंसें विजयचंद्रसूरिके समुदायका नाम वृद्धपौशालिक रखा और देवेंद्र सूरिजीके समुदायका लघुपौशालिक नाम दीया, और स्थंभतीर्थके चौकमें कुमारपालके विहारमें धर्मदेशा नामे मंत्रि वस्तुपालने चारोवेदोंका निर्णय दायक स्वसमय परसमयके जानकार श्रीदेवेंद्रसूरिजीकों वंदना देकें बहुमान दीया, और श्रीदेवेंद्रसूरिजी विजयचंद्रकी उपेक्षा करकें विचरते हुए क्रमसें पाल्हणपुरमें आये, तहां चौरासी इन्यसेठ अनेक पुरुषोंकें साथ परिवरे, सुखासन उपर बैठे हूए शास्त्रके वडे श्रोता व्याख्यान सुननें आते थे, और पालनपुरके विहारमें रोजकी रोज एक मूढक प्रमाण अक्षत और सोलां मण सोपारी दर्शन करनेवाले श्रावकोंकि चढाइ चढती होती थी, इत्यादि वडे धर्मी लोकोंनें गुरुकों विनति करी कि हे भगवन्! यहां आप किसीकों आचार्य पदवी देओ हमारा मनोरथ पूरो तब गुरुनें उचित जानके पाल्हन पुरमें विक्रम संवत् (१३२३) में वर्ष श्रीविद्यानंद सूरि नाम देकें वीरधवलकों सूरिपद दीनां, और तिसके अनुज भीमसिंहकों धर्मकीर्त्ति उपाध्यायकी पदवी दीनी, तिस अवसरमें प्रल्हादनविहारके सौवर्ण कपिशीर्ष मंमपसें कुंकुमकी वर्षा हूइ, तब सर्व लोकोंकों वडा आश्चर्य हूआः— श्री विद्यानंद सूरिजीने विद्यानंद नाम नवीन व्याकरण बनाया यडुक्तं ॥ विद्यानंदाभिधं येन, कृतं व्याकरणं नवं ॥ भाति सर्वोत्तमं स्वल्प, सूत्रं बव्हर्थसंग्रहं ॥ १ ॥ पीछें श्री देवेंद्र सूरिजी फेर मालवेकों गये श्री देवेंद्र सूरिजीके करे हूये ग्रंथोंका नाम लिखते हैं. १ श्राद्धदिनकृत्यसूत्रवृत्ती, २ नव्यकर्मग्रंथपंचकसूत्रवृत्ती, ३ सिद्धपंचाशिकासूत्रवृत्ती, ४ धर्मरत्नवृत्ती, ५ सुदर्शनचरित्र, ६ तीनभाष्य, ७ वृंदारवृत्ती, ८ सिरिउसहवद्धमाण प्रमुख स्तवन, कोइ कहते हैं कि श्राद्धदिनकृत्यसूत्रतो चिरंतन आचार्योंका करा है. विक्रम संवत् (१३२७)में वर्ष मालवदेशमें देवेंद्र सूरि स्वर्गवास हूये दैवयोगसें विद्यापुरमें तेरह दिनों पीछें श्रीविद्यानंद सूरिजी स्वर्गवास हूये, तब छै मास पीछें सगोत्र सूरिने श्रीविद्यानंद सूरिके भाइ श्री धर्मकीर्त्ति उपाध्यायकों सूरिपद देकें श्री धर्मघोष सूरि नाम दीया.

४६ श्री देवेंद्र सूरिपट्टे श्री धर्मघोष सूरि हूये, जिनोंने मंमपाचलमें शा० श्री पृथ्वीधरकों पंचमानुव्रत लेतेकों ज्ञानसें निषेध करा, क्योंकि

आचार्यने ज्ञानसें जाना कि यह पुरुषके व्रत भंग होजावेगा ? इस भयसे निषेध करा, पीछे वो पृथ्वीधर, मम्डपाचलके राजाका मंत्री हूआ, और धन करके तो धनद समान हो गया, पीछें तिसने चौरासी जिनमंदिर और सात ज्ञानके पुस्तकोंके भंडारे बनाये और श्री शत्रुंजयमे इक्कीस धडी प्रमाण सोना खरचके रूपे मय श्री ऋषभदेवजीका मंदिर बनवाया, कोइ कहते है कि छप्पन धडी सुवर्ण खरचकें इन्द्रमाला पहरि तथा धरती नगरमे किसी साधर्मीनें ब्रह्मचारीका वेष देनेके अवसरमें पृथ्वीधरकों महाधनाढय् जानकें तिसकी भेट करा, तब पृथ्वीधरने वोही वेष लेकर तिस दिनसे बत्तीस वर्षकी उमरमे ब्रह्मचर्य व्रत धारण करा, तिसके एकही जाजण नाम पुत्र था. जिसने श्री शत्रुंजय, उज्जयंतगिरिके शिखर उपर बारह योजन प्रमाण सुवर्ण रूप्यमय एकही ध्वज चढाइ, जिसने सारगदेव राजासे कर्पूरका महसूल छुडाया, तथा जिसनें मम्डपाचलमें बहत्तर हजार (७२०००) रूपक गुरुके प्रवेशके उत्सवमें खरच करे

तथा श्री धर्मघोष सूरिने देवपत्तनमे शिष्योंके कहनेसे मंत्रमय स्तुति बनाइ तथा देवपत्तनमे जिनोंके स्वध्यानके बलसे नवीनोत्पन्न हूये कपर्दी यक्षनें वज्र स्वामीके महात्मसे पुरानें कपर्दी मिथ्यादृष्टिकों निकालाथा,इनोने उसको प्रतिबोधकें श्री जैनबिंबोका अधिष्ठाता करा, तथा जिनों आगें समुद्रके अधिष्ठातानें अपने समुद्रके तरंगोसे रत्न ढोकन करे, एकदा समय किसी दुष्टस्त्रीनें कार्मण संयुक्त वडे बनाकर साधुओको दीए पर श्री धर्मघोष सूरिजीनें वे वडे धरती उपर गिराए, अरु उस स्त्रीको मंत्रसे पकडा पीछें जब बहु दु खी हूइ, तब दया करके छोड दीनी, तथा विद्यापुरमे पक्षांतरीयोकी स्त्रीयोनें धर्मघोषजीके व्याख्यान रसके भंग करने वास्ते कंठमे मंत्रसे केश गुच्छक कर दीया पीछे श्री धर्मघोष सूरिजीने जब जाना, तब तिन स्त्रीयोंकों स्तंभन कर दीया, तब तिन स्त्रीयोने विनति करी कि आज पीछे हम तुमारे गच्छको उपद्रव न करेंगे, तब गुरुजीने श्री संघके बहुत आग्रहसें छोडी, तथा उज्जयनीमें एक योगी जैनके साधुओको रहने नहीं देता था जब श्री धर्मघोष सूरि तहां आये तब उस योगीनें साधुओको कहा कि अब तुम इहां आये हो सो तकडे हो कर रहना तब साधुओने कहा हमभी देखेंगे कि तू क्या करेगा ? पीछे उसनें साधु

ओंकों दांत दिखलाये, तब साधुओंनें कफोणि (कूहनी) दिखलाइ पीछे साधुओंने जा कर यह सर्व समाचार अपने गुरुकों कहा, तहां योगी नेंभी धर्मशालामें विद्याके बलसें बहुत चूहे बनादीये, तब साधु बहुत डरे पीछे गुरुजीनें घडेका मुख, वस्त्रसें ढांकके ऐसा मंत्र जपा कि जिस्सें योगी आराटि करता हूआ आकें पाऊमें पडा, और अपने अपराधका क्षमापना मांगा, तथा किसी नगरमें शाकनीयोंके भयसें मंत्रके कपाट दीये जाते थे, एक दिन विना मंत्रे कपाट दीये गये, तब रात्रिकों शाकनीयोंनें उपद्रव करा, गुरुने उनकों विद्यासें स्तंभित करा, एकदा रात्रिमें गुरुकों सर्पके काटनेसें जब जहेर चढा, तब गुरुने संघकों विधुर देख कें कहा कि दरवाजेमें किसी पुरुषके मस्तकोपरि काष्ठकी भरीमें विषापहार एक वेलडी आवेगी वो वेलडी घसके डंकमें देदेनी उस्सें जहर उतर जायगा, संघनें तैसेंही करा गुरुराजी हो गये, पीछे तिस दिनसे जावज्जीव छे विग यका त्याग करा, और सदा जुवारकी रोटी नीरस जानके खाते रहे, श्री धर्मघोष सूरिजीके करे ये ग्रंथहैं:— सो कहते हैः— १ संघाचारभाष्यवृत्ती, २ सुअधम्मेतिस्तव, ३ कायस्थिति भवस्थिति, ४ चौवीश तीर्थंकरोंके चौवीश स्तवन, तथा ५ स्वस्ताशमैंत्यादिस्तोत्रं, ६ देवेंद्रैरनिशंइति श्लेषस्तोत्रं, ७ यूयं युवात्वमिति श्लेषस्तुतीयां, ८ जयवृषभेत्यादि स्तुति, यह जयवृषभेत्यादि स्तुति करणेका यह निमित्त थाकिः—एक मंत्रीने आठ यमक काव्य कह करकें कहा, कि ऐसें काव्य अब कोइ नहीं बना सक्ता तब गरुने कहाकि नास्ति नहीं तब तिसने कहा तो हमकों कर दिखलाउ तब गुरुजीनें जयवृषभेत्यादि छे स्तुति एक रात्रिमें बना कर भीतोंपर लिखकें दिखाइ तब तिसने बडा चमत्कार पाया, गुरुजीने तिसकों प्रतिबोधके जैनी करा, ये श्री धर्मघोष सूरि विक्रम संवत् (१३५७) में स्वर्ग गये.

४७ श्री धर्मघोष सूरि पट्टे श्री सोमप्रभ सूरि हूये, जिनोंनें नमिऊण भणइएवमित्यादि आराधना सूत्र करा, तिनका संवत (१३१०) में जन्म, (१३२१) में दीक्षा, (१३३२) में सूरिपदं, जिनोके इग्यारह अंग सूत्रार्थ कंठ थे, तथा “गुरुन्निर्गीयमानायां मंत्रपुस्तकायां यन्नतचरित्रं मंत्रपुस्तिकां च” ऐसा कह कर तिसमंत्र पुस्तकाकों ग्रहण करा, क्योंकि अपर कोइ योग्य नहीं था यह श्री सोमप्रभ सूरिने जलकुंकणदेशमें अ

काायकें विराधनाकें नयसें और मरुदेशमें शुद्धजलकी दुर्लभतासें साधुओं का विहार निषेध करा तथा नीमपल्लीमें दोकार्त्तिक मास हूये तब सोमप्र भजी प्रथम कार्त्तिककी एकादशीकों विहार कर गए क्योंकि उनोनें जा नाकि नीमपल्लीका नंग होगा अरु नंग हूए पीछें जो रहे वो, दुःखी हूए, सोमप्रन सूरिके करे ग्रंथ जितकल्पसूत्र, यत्राखिलेत्यादि स्तुतीयां, जितेन येनेतिस्तुतीयां, श्री मद्धर्म्मेत्यादि, तिनके करे वडे शिष्य विमलप्रन सूरि, श्री परमानंद सूरि, श्री पद्मतिलक सूरि,अरु श्री सोमविमल सूरि थे, जिस दिन पूर्वोक्त श्री धर्मघोष सूरि, देवगत हूए तिस दिनही (१३५७) वर्षे श्री सोमप्रन सूरिजीने श्री विमलप्रन सूरिको सूरिपद दीया क्योंकि तिनोने अपना स्वल्पही आयु जाना श्री सोमप्रनजी (१३७३) वर्षे देवलोक गए

४८ श्रीसोमप्रनसूरि पट्टे श्रीसोमतिलकसूरि हूए, तिनोका (१३५५) मे वर्षे माघे जन्म, (१३६९) वर्षे दीक्षा, (१३७३) वर्षे सूरिपदं, (१४२४) वर्षे स्वर्गगमनं, सर्वायु ६९) वर्षकी जाननी, तिनके करे ग्रंथ लखते है – १ बृहन्नव्यक्षेत्रसमास सूत्र, सत्तरिसयठाण, यत्राखिलजयवृषनसस्ताशर्म० प्रमुखकी वृत्ति, श्रीतीर्थराज०, चतुरर्थीस्तुतित वृत्ति, शुननावानत० श्रीमद्दी रस्तुवेदित्यादिकमलबधस्तव शिवशिरसि श्रोनानिसनव० श्रीशैवेय० इत्यादि स्तवन श्रीसोमतिलकसूरिक्रम करके १ श्रीपद्मतिलकसूरि, २ श्रीचंद्रशेखरसूरि, ३ जयानंदसूरि, ४ श्रीदेवसुंदरसूरियोंकों सूरि पद दीया,तिनमें श्रीपद्मतिलक सूरि, सोमतिलक सूरिसे पर्यायमे वडे थे, सो एक वर्ष जीते रहे, और वडे वैरागी थे तथा श्रीचंद्रशेखर सूरि,विक्रम संवत् (१३७३)में जन्मे (१३८५)मे दीक्षा, (१३९३) मे सूरिपद, इनके करे ग्रंथ – १ उषितनोजनकथा,यवराजर्षिकथा, श्रीमत्स्तंनकहारवधादिस्तवन है, जिनोके मंत्रों सो मंत्री रजहो वे तिनसेंनी उपद्रव करनेवाले ग्रह, हरिका, दुर्द्धर मृगराज, श्वान, शुरिति दूर हो जाते थे तथा श्रीजयानंदसूरिका विक्रम संवत् (१३८०) वर्षे जन्म, (१३९२) वर्षे आषाढ सुदिसातम सुक्रवारकेदिन धारानगरीमे व्रतग्रहण, (१४२०) मे सूरिपद (१४४१) मे स्वर्ग गये तिनके करे ग्रंथ १ श्री थूलनद्र चरित्रं, २ देवा प्रनोय प्रमुख स्तवन है

४९ श्री सोमतिलक सूरि पट्टे श्री देवसुंदर सूरि हूए, तिनका (१३९६) वर्षे जन्म, (१४०४) वर्षे दीक्षा (१४२०) वर्षे अणहिलपत्तनमें सूरिपदं,

यह देवसुंदर सूरि बडा योगाभ्यासी और मंत्र तंत्रकी ऋद्धिका, मंदिर, स्थावर जंगमविषापहारी, जलानल, व्याल अरु हरि, जयका तोडनेवाला. अतीतानागत निमित्तका वेत्ता, राजमंत्रि प्रमुखोंका पूज्यनीक, यह श्री देव सुंदर सूरिके शिष्य १ श्रीज्ञानसागर सूरि, २ श्री कुलमंडन सूरि, ३ श्री गुणरत्न सूरि, ४ श्री सोमसुंदर सूरि, ५ श्री साधुरत्न सूरि, यह पांच बडे शिष्य थे, तिनमें श्री ज्ञानसागरजीका (१४०५) में वर्षे जन्म (१४१७) में दीक्षा, (१४४१) में सूरिपदं, (१४६०) में स्वर्गगमनं, तिनके करे ग्रंथ श्री आवश्यक, उगनिर्युक्त्यादि अनेक ग्रंथावचूरी. श्री मुनिसुव्रत स्तवन, घनौघनखंड पार्श्वनाथादि स्तवन, दूसरा श्री कुलमंडन सूरिजीका (१४०९) में जन्म, (१४१७) में दीक्षा, (१४४२) में सूरिपदं. (१४५५) में स्वर्गगमनं, जिनोंके करे ग्रंथ सिद्धांतालापकोद्धार, विश्वश्रीधरेत्यादि, अष्टादशारचक्रस्तव, गरीयो और हारस्तवाद्य है, तीसरा श्री गुणरत्न सूरि तिनके करे ग्रंथ १ क्रियारत्न समुच्चय, २ षट्दर्शनसमुच्चय वृहद्वृत्ति है, चौथा श्री साधुरत्न सूरिजीके करे ग्रंथः— १ यतिजीतकल्पवृत्ति है.

५० श्री देवसुंदर सूरि पट्टे श्री सोमसुंदर सूरि हूए तिनका (१४३०) में जन्म, (१४३७) में दीक्षा, (१४५०) में वाचक पद, (१४५७) में सूरिपदं, जिसके (१८००) अठारहसो साधु क्रिया पात्र परिवार देखके कितनेक लिंगी पाखंडीयोंनें पांचसो (५००) रूपक देके एक सहस्र पुरुषोंकों उनके वध करनें वास्ते भेजे, तब वे जिस मकानमें गुरु थे तिस मकानमें रातकों छीप रहे, जब मारनेकों उद्यत हूए तब चंद्रमाके उद्योतमें श्री गुरुजीनें रजोहरणसें पूंजके जब पासा पलटा, तब देखकें तिनके मनमें ऐसा विचार आया किः— ए नींदमेंभी क्षुद्र प्राणियोंकी दया करते हैं, और हम इनकों मारने आए हैं, यह कितना अंतर है ? तब मनमें डरे और गुरुके पायोंमें पडके अपराध क्षमा कराया, इनोंके करे ग्रंथः— योगशास्त्र, उपदेशमाला, षडावश्यक, नवतत्त्वादि बालावबोध, भाष्यावचूर्णी, कल्याणिकस्तोत्रादि. जिनोंके शिष्य श्री मुनिसुंदर सूरि कृष्णसरस्वती विरुद धारक श्री जयसुंदर सूरि, और महाविद्या विडंबन टिप्पनक कारक श्री भुवन सुंदर सूरि, जिनके कंठ एकादशांगी सूत्रार्थ थे, और चौथा जिनसुंदर सूरि ये चार जिनकेप्रतापी शिष्य हूए, जिनोंने

राणक पुरमें श्री धनकृत चौमुखविहारेमे ऋषभादि अनेक शत बिंब प्रतिष्ठित करी, ये विक्रम संवत् (१४९९) में स्वर्ग गये.

५१ श्री सोमसुंदर सूरि पट्टे श्री मुनिसुंदर सूरि हूये, जिनोंनें अनेक प्रसाद, पद्मचक्र, षट्कारक, क्रियागुप्तक, अर्द्धभ्रम, सर्वतोभद्र, मुरज, सिंहासन, अशोक, भेरी, समवसरण, सरोवर, अष्टमहाप्रातिहार्यादि नवीन त्रिशतिबंध तर्क प्रयोगादि अनेक चित्राक्षर, द्व्यक्षर, पचवर्ग परिहारादि अनेक स्तवमय त्रिदशतरंगिणीनामा एक सौ आठ हाथ लंबी पत्रिका लिखके श्री गुरुकों भेजी तथा चातुर्वेद्यविशारद्य निधि, उपदेश रत्नाकर प्रमुख अनेक ग्रंथोका कर्त्ता, तथा जिनको श्री स्तंभतीर्थमें दफर खानें वादी गोकुलसंढ,ऐसा नाम कहा,तथा जिनोने दक्षिणसे कालसरस्वती ऐसा विरुद पाया, आठ वर्षे गणनायक, पीछे तीन वर्षे युगप्रधान पद, लोकोंनें प्रसिद्ध करा. एक सौ आठ वर्तुलिकानादोपलक्षक, बाल्यावस्थामेंभी एक शहस्र श्लोक नवीन कंठ कर लेते थे तथा संतिकर नामा समहिम स्तवन करनेंसें योगिनी कृत मरीका उपद्रव दूर करा चौवीश वार विधिसें सूरि मंत्रकों आराधा, तिनमेंभी चौदह वार जिनके उपदेशसे धारादि नगरीयोंके स्वामी पाच राजाओंनें अपने अपने देशोमे अमारिका ढंढोरा फिराया, तथा सिरोही देशमे सहस्रमल्लराजानेंभी ऽमार प्रवृत्त करी तीडका उपद्रव टाला, इनका विक्रम सवत् (१४३६) मे जन्म (१४४३) मे दीक्षा (१४६६) में वाचक पद, (१४७८) में बत्तीस सहस्र रुपक खरचकें वृद्धनगरीके शाह देवराजने सूरिपदका महोत्सव करा, (१५०३) वर्षे कार्त्तिकशुदि पडिवाके दिन स्वर्गवास हूआ

५२ श्री मुनिसुदर सूरि पट्टें श्री रत्नशेखर सूरि हूए, तिनका (१४५७) वर्षे जन्म, (१४६३)वर्षे दीक्षा, (१४८३) वर्षे पण्डितपद, (१४९३) वर्षे वाचकपद (१५०२) वर्षे सूरिपद, (१५१७) वर्षे पोषवदि६ दिनें स्वर्गवास हूआ, जिसका स्तंभतीर्थमे बांबी नामा भट्टनें बाल सरस्वती नाम दीया, तिनके करे ग्रथ –श्राद्धप्रतिक्रमणवृत्ति, श्राद्धविधिसूत्रवृत्ति, लघुक्षेत्र समास, तथा आचारप्रदीपादि अनेक ग्रथ जान लेनां तथा जिनोंके समयमें लुंका नामक लिखारीने सवत् (१५०८) मे जिनप्रतिमाका उथापक लुका नामा मत चलाया और तिसके मतमें वेषका धर

ने वाला संवत् (१५३३) में जाणा नामा प्रथम साधु हूआ, इस मतकी उत्पत्ति ऐसें हूइ है, सो लिखते हैंः—

गुजरात देशमें अहमदावादमें जातिका दशाश्रीमालि लुंका नामें लिखारी वसता था, सो ज्ञानजी जतीके उपाश्रयमें पुस्तक लिख कर उसकी आमदनीसें गुजारा करताथा, एक दिन एक पुस्तककों लिख रहा था, तिसमेंसें सात पत्रे बिना लिखे छोड दीये, जब पुस्तक वालेनें पुस्तक देखा तब पूछाकि इस पुस्तकके सात पत्रे क्यों छोड दीये? तब लुंका उसके साथ लडने लगा तिस वखत लोकोंनें मार पीटके उपाश्रयसें बाहिर निकाल दीया, और नगरमें कह दीयाकि इस्सें कोइ भनजी पुस्तक न लिखावे, तब लुंका लाचार और क्रोधमें जरकर अहमदाबादसें छैतालीस कोसके लग जग नींबडी गाममें चला गया, उस गाममें लुंकेकी बिरादरीका एक लखमसी नामा बणिया राजमें कारजारी था,तिसके आगें बहुत रोया, पीटा,जब तिसने पूछा क्या हूआ? तब लुंकेने कहाकि मैं जगवान्का सच्चा मत कहने लगा था, तब तपगच्छके श्रावकोंने मुझे पीटा,अब मैं तेरे पास आया हूं, जेकर तूं मैरा मददकार बने, तो मैं सच्चामत प्रगट करुं, तब तिस लखमसीने कहाकि नींबडीके राज्यमें तूं बेशक अपणे सच्चे मतकों प्रगट कर, मैं तेरा मददगार हूं,खाने पीनेकोंजी देउंगा, और तेरा शास्त्रजी सुनुंगा, तब लुंकातो श्रीमहावीरके साधुओंकी और श्रीजिनप्रतिमाकी उछापना करने लगा,अरु कहने लगा कि यह साधु नहीं हैं, ज्रष्टाचारी हैं निर्दयी हैं,उलटाज्ञान सुनाते हैं,इत्यादि जो आपके मनमानी सो निंदा करी, और शास्त्रोंमेंसेंजी जिन जिन शास्त्रोंमें जिनप्रतिमाका जिकर नहीं था वो शास्त्रकों सच्चे माने, और जिनोमें थोडासा जिनप्रतिमाका कथन था, तिन पाठोंके अर्थ कुयुक्तिसें औरके और सुनाने लगा, अरु कहने लगा कि एकतीस शास्त्र सच्चे हैं, तिनमेंजी आवश्यकसूत्रकों तो बिलकुल बिगाडके लोकोंने स्वकपोलकल्पित औरका और बना दीया है,क्योंकि श्रीआवश्यकमें बहुत जगें जिनप्रतिमाका अधिकार चलता है, पीछें एक दिन तिस लुंकेकों किसीने कहा कि बिना जैनदीक्षाके लीए शास्त्र पढनेका तो व्यवहारसूत्रमें निषेध करे हैं, तो फेर तुम गृहस्थ हो कर शास्त्र क्यों कर पढते हो? तब लुंकेने कहा मैं व्यवहारसूत्रकोंही सच्चा नहीं मानता हूं? इत्यादि प्ररूपणा

पच्चीश वर्ष तक करी, परंतु लुंकेके उपदेशसे साधु कोइनी न हूआ, जब सवत् (१५३३) का शाल आया तब, एक नाणा नामा वनीयके बेटेने लुकेके उपदेशसें वेष पहना, उसको रूपिनूणा नाम दीना, तिसका शिष्य सवत् (१५६८) में रूपजी हूआ, तिसका शिष्य सवत् (१५७८) मे जी वाजीरुपि हूआ, तिसका शिष्य (१५८७) मे वृद्धवरसिंहजी हूए, तिसका शिष्य सवत् (१६०६) मे वरसिंहजी हूआ, तिसका शिष्य सवत् (१६४९) मे जसवतजी हूआ, इस लुंपक मतके तीन नाम हूए, १ गुजराती, २ नागोरी, ३ उतराधी, ॥ इति लुंपक मतोत्पति ॥

५३ श्रीरत्नशेखरसूरि पट्टे श्रीलक्ष्मीसागरसूरि हूए, तिनका (१४६४) मे वर्षे जन्म (१४९०) में वर्षे दीक्षा, (१५०१) वर्षे वाचक पद, (१५०८) मे सूरिपद, ५४ श्रीलक्ष्मीसागरसूरिपट्टे श्रीसुमतिसाधुसूरि हूआ, ५५ श्रीसुमतिसाधुसूरिपट्टे श्रीहेमविमलसूरि हूए, शिथिलसाधुओके बीचमेंनी रहे, तोनी जिनोने साधुका आचार उल्लंघन न करा, तब कितनेक दिन पीछें वहुत साधुओने शिथिलपणा छोडा, तथा रूपिहरगिरि, रूपिश्रीपति, रूपिगणपति, प्रमुख बहुत जनोंने लुंपक मत छोड के श्रीहेमविमलसूरिके पास दीक्षा लीनी, तिस अवसरमे सवत् (१५६२) मे कडुये नामक एक वणियेने कडुयामत निकाला और तीन थूइ मानी अरु इस कालमे साधु कोइनी नहीं दीखता, ऐसा पथ निकाला, परतु इसग्रथके लिखनेवालेके समयमे ये मत नही है,व्यवछेद हो गया है,तथा सवत् १५७०) मे लुका मतसे निकलकें बीजा नामा वेषधरने बीजामत चलाया, जिसको लोक विजय गछ कहते हे तथा संवत् (१५७२) वर्षे नागपुरीया तपगछसे निकलके उपाध्याय पार्श्वचद्रनें अपने नामका मत अर्थात् पासचंदीया मत चलाया

५६ श्रीहेमविमलसूरि पट्टे श्रीसुविहितमुनि चूडामणि कुमत तमके मथनेको सूर्यसमान श्रीआनदविमलसूरि हूआ तिसका विक्रम सवत् (१५४७) मे जन्म (१५५२) मे दीक्षा (१५७०) मे सूरि पद तथा आनदविमलसूरिके साधु शिथिलाचारीनी थे, तोनी तिनके वैरागरगका नग नही हूआ और जब उनोनें देखाकि जिनप्रतिमाके निषेधने वाले बहुत बढे और शुद्ध साधु तुछमात्र रह गए अरु उत्सूत्र प्ररुपण रूप जलमे भव्यजन वह चले तब मनसे दयाद्रष्टि लाकें और अपने गुरुकी आज्ञासे

कितनेक संविग्न साधुओंकों साथ ले कर संवत् (१५८२) में शिथिलाचार परिहार रूप क्रिया उद्धार करा, देशमें विचरके बहुत भव्यजनोंका उद्धार करा, और अनेक इभ्योंके पुत्रोंकों धन कुटुंबका मोह त्याग कराके दीक्षा दीनी, और सोरठके राजा पासों खत लिखवाया कि जो जीते सो मेरे देशमें रहे अरु जो हारें सो निकाला जावे, तूणसिंह नामा श्रावक जिसकों बादशाहनें बैठने वास्ते पालकी दीनी हूइथी, और बादशाहनें जिसकों मलिक श्रीनगद लबिरुद दीयाथा ऐसा तूणसिंह श्रावकने गुरुकों विनति करी कि साधुओंकों सोरठदेशमें विहार कराउ, तब श्रीगुरुजीने गणि जगर्षिकों साधुओंके साथ सोरठदेशमें विहार कराया, तथा जेसलमेरादि मरवाड देशमें जल दुर्लभ मिलता है, इस वास्ते पूर्वे श्रीसोमप्रभ सूरिनें साधुओंकों मने कर दीया था कि मारवाडमें न जानां, सो विहार कुमतिव्याप्त न हो जावें, तिन जीवोंकी अनुकंपा कर कें और लाभ जान कर साधुओंकों आज्ञा दीनी कि तुम मारवाडमें जा कर कुमतिमतकों खंडन करो, तब लघु वयमें शील करकें श्रीस्थुलिभद्रसमान वैराग्यनिधि निस्पृहावधि जावज्जीव जघन्यसें जघन्यभी षष्ठ अर्थात् दोदिनका उपवास करणां अरु पारणेके दिन आचम्ल करणां ऐसे अभिग्रहधारी महोपाध्यायश्रीविद्यासागरगणिनें मारवाडदेशमें विहार करा, तिनोंनें जैसलमेरादिकोंमें खरतरांकों और मेवात देशमें बीजामतियोंकों और मोरवी आदिकमें लुंकामतीयोंकों प्रबोधके श्रावक बनाए सो आजतक प्रसिद्ध है, तथा पार्श्वचंद्रके व्युद्ग्राहे वीरमगाममें पार्श्वचंद्रके साथ वाद करकें पार्श्वचंद्रकों निरुत्तर करा, तब बहुत जिनोंनें जैनधर्म अंगीकार करा, ऐसेही मालवेमें अरु उज्जयनी प्रमुख देशोंमें फिरकें धर्मकी प्रवृत्ति करी, यह श्रीविद्यासागर उपाध्यायजीने तपगच्छकी फिरवृद्धि करी, और क्रियाउद्धार करा पीछे श्रीआनंदविमलसूरिजी चौदह वर्ष तक जघन्यसेंभी नियत तप वर्जके बेलेसें कम तप नहीं करा, तथा जिनोंनें चतुर्थ, षष्ठ तप करकें वीश स्थानककी आराधना करी, यह संवत् (१५९६) वर्षे नवदिनका अनशन करिकें स्वर्ग गए.

५७ श्रीआनंदविमलसूरि पट्टे श्रीविजयदानसूरि हूआ, जिनोंनें स्तंभ तीर्थ, अहमदावादपत्तन, महीशानकगाम, गंधार बंदिरादिमें महा महोत्सव पूर्वक अनेक जिनबिंबोंकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंके उपदेशसें बादशाह

मह्मदका मान्य मत्री गलराजा दूसरा नाम मलिक श्रीनगदलनें श्रीशत्रुंज यका वडा संघ निकाला तथा जिनोके उपदेशसे गाधार नगरके श्रावक रामजीने तथा अह्मदावादी साह कुअरजी प्रमुखोंने श्रीशत्रुंजय चौमुख अष्टापदादि जिनमंदिर बनवाए, गिरनार ऊपर जीर्ण प्रासादोद्धार करा तथा जिनके सूर्यकी तरें उदय होनेसे वादी रूपीये तारे अदृश्य हो गये, श्रीविजयदान सूरि सर्व सिद्धांतका पारगामी, अखंमित प्रताप वाला तथा अप्रमत्त पणे तप करके श्रीगौतममुनिवत् था तथा गूर्जर मालवक, कच्छ, मरुस्थली, कुंकणादि देशोमे अप्रतिबद्ध विहार करता हूआ, महातपस्वी, जावजीव एक घृतविगय विना सर्व विगयका त्यागीथा,जिनोने एकादशांग सूत्र अनेक वार शुद्ध करे, और जिनोंने बहुत जीवोको धर्मप्राप्त करा, तिनका संवत् (१५५३) वर्षे जामलामे जन्म, (१५६२) वर्षे दीक्षा (१५८७) मे, सूरिपद (१६२२) वर्षे, वटपल्लीमें अनशनें स्वर्ग प्राप्त हूआ

५८ श्री विजयदान सूरि पट्टे श्री हीरविजय सूरि हूआ. जिनका स वत (१५८३) वर्षे मार्गशीर्षशुदि नवमी दिने प्रल्हादन पुरका वासी ऊके जाती सा०कूरा नार्या नाथी ग्रहे जन्म हूआ, (१५९६) वर्षे का र्त्तिकवदि दूज दिने पत्तन नगरे दीक्षा,(१६०७) वर्षे नारदपुरी मे श्रीऋषभ देवके मदिरमें पमित पद, (१६०८) माघशुक्लपंचमीदिने नारदपुरीमें श्री वरकाणक पार्श्वनाथसनाथे नेमिजिन प्रसादे वाचकपदं, (१६१०) वर्षे सिरोही नगरे सूरिपद,तथा जिनका सौनाग्य वैराग्य नि स्पृहतादि गुणोको वचन गोचर करनेको बृहस्पतिन्नी चतुर नहींथा तथा श्री स्तंभतीर्थमे जि नोंके रहनेसे श्रद्धावानोने एक क्रोड रूपक प्रनावनादि धर्मकृत्योमे खरच करा, तथा जिनोके चरण विन्यासके प्रतिपदमे दो मोहर अरु एक रूपक मोचन करा,और जिनोके आगे श्रद्धालुओने मोतीयोंसे साथीये करे,तथा जिनोनें सिरोही नगरमे श्री कुंथुनाथ बिंबोंकी प्रतिष्ठा करी तथा नारदपु रमे अनेक सहस्रबिंबोकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोके विहारादिमे युगप्र धान अतिशय देखनेमे आती थी, तथा अह्मदावादमे लुंके मतका पूज्य ऋषि मेघजी नामा था तिसने अपने लुंके मतको दुर्गतिका हेतु जान कर रजकी तरें आचार्य पद छोडके पच्चीश यतियोके साथ सकल राजा धिराज बादशाह श्रीअकब्बर राजाकी आज्ञा पूर्वक बादशाही बाजत्र व

जते हुये, महामहोत्सवसें श्री हीरविजय सूरिजीके पास दीक्षा लीनी. ऐसा किसी आचार्यके समयमें नहीं हुआ था. तथा जिनोंके उपदेशसें अकब्बर बादशाहनें अपने सर्व राज्यमें एक वर्षमें छै महिनें तक जीव हिंसा बंद करी. जिजया छोडाया. इनका विशेष स्वरूप देखना होवे, तो हीरसौभाग्यकाव्यसें देख लेना.

और संक्षेपसें यहांभी लिखते हैं:- एकदा कदाचित् प्रधान पुरुषोंके मुखसें अकब्बरशाहनें श्री हीरविजय सूरिके निरुपम शम दम संवेग वैराग्यादि गुणो सुणाके बादशाह श्री अकब्बरनें अपने नामांकित फुरमान भेज कें बहुमान पुरस्सर गंधार बंदिरसें आगरेके पास फतेपुर नगरमें दर्शन करनेकों बुलाया. तब गुरुजी अनेक भव्यजीवोंकों उपदेश देते हुये, क्रमसें विहार करते हुये विक्रम संवत् (१६३९) वर्षे ज्येष्ठवदि त्रयोदशी दिनें तहां आए. जिसमें बादशाहका शिरोमणी प्रधान अबुल फजल नाम द्वारा उपाध्याय श्री विमलहर्षगणि प्रमुख अनेक मुनियोंसें परिवरे हुए बादशाहकों मिले तिस अवसरमें बादशाहने बडी खातरसें अपनी सभामें बेठाए, और परमेश्वरका स्वरूप पूछा, गुरुका स्वरूप धर्मका स्वरूप पूछा. और परमेश्वर कैसे प्राप्त होवे? इत्यादि धर्मविचार पूछा. तब श्री गुरुने मधुर वाणीसें कहा कि जिनमें अठारह दूषण न होवें, सो परमेश्वर है. तथा पंचमहाव्रतादि धारक गुरु है. और आत्माका शुद्धस्वभाव जो ज्ञान दर्शन, चारित्ररूप है, सो धर्म है तब अकब्बरशाहने ऐसा धर्मोपदेश सुनके आगरासें अजमेर तक प्रतिकोश कूवा मनार सहित बनाए, और जीवहिंसा छोडकें दयावान् हो गया. तब अकब्बरशाह अतीव तुष्टमान होकें कहनें लगा कि हे प्रभु! आप पुत्र, कलत्र, धन, स्वजन, देहादिसेंभी ममत्व रहित हो. इस वास्ते आपकों सोना, चांदी, देना, तो ठीक नहीं, परंतु मेरे मकानमे जैनमतके पुराने पुस्तक बहुत है, सो आप लीजीयें. और मेरे ऊपर अनुग्रह करीयें जब बादशाहका बहुत आग्रह देखा. तब श्री गुरुजीनें सर्व पुस्तक ले कें श्री आगरा नगरके ज्ञानभंडारमें स्थापन कर दीए, तब एक प्रहर तक गुरुजी धर्मगोष्टि करकें बादशाहकी आज्ञा लेकें बडे आडंबरसें उपाश्रयमें आए. उस वखतमें लोकोंमें जैनमतकी उन्नति स्फीती हूइ, तिस वर्षमें आगरे नगरमें चौमासा करकें सोरीपुर न

गरमे श्री नेमिजिनकी यात्रा वास्ते गये, तहा श्री ऋषभदेव और नेमिना थजीकी बडी और बहुत पुरानी दोनो प्रतिमा और उस तत्कालके ब नाए श्री नेमिनाथके चरणोकी प्रतिष्ठा करी, फिर आगरेमे शा० मानसिंह कल्याणमल्लका कराया (बनवाया) श्री चिंतामणि पार्श्वनाथादि बिंबोकी प्रतिष्ठा करी, सो आज तक आगरेमे श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ प्रसिद्ध है, पीछें श्री गुरुजी फेर फतेपुर नगरमे गए और अकब्बर बादशाहसे मिले तहा एक प्रहर धर्मगोष्टि धर्मोपदेश करा, तब बादशाह कहने लगा कि – मैने आपको दर्शनके उत्कंठित हो कर दूरदेशसे बुलाए है, और आप हमसे कुछनी नहीं लेते हो, इस वास्ते आपकोजो रुचे सो मेरेसे मागना चाहिये, जिस्से मेरे मनका मनोरथ सफल होवे, तब सम्यग्वि चार करके गुरुजीने कहा कि तेरे सर्वराज्यमे पर्यूषणोके आठ दिनोंमें कोइ जनावर न मारा जाय और बंदिजन छोडे जाय मै यह मागा चाहता हूं, तब बादशाहने गुरुकों निर्लोभी, शांत, दांत, जान करकें कहा कि आठ दिन तुमारी तर्फसे और चारदिन मेरी तर्फसे सर्व मिलकर बारहदिन तक अर्थात् भाद्रवावदि दशमीसे ले कर भाद्रवाशुदि छठ तक कोइ जानवर न मारा जायगा, पीछें बादशाहने सोनेके हर्फोंसे लिखवा कर छ फूरमान श्री गुरुजीको दीए, छ फूरमानकी व्यक्ति ये है – प्रथम श्री गूर्जरदेशका, दूसरा मालवेदेशका, तीसरा अजमेरदेशका, चौथा दिल्लीफतेपुरके देशका, पांचमा लाहोर मुलतान मंडलका, और छठा श्री गुरुके पास रखनेका पूर्वोक्त पांचोदेशका साधारण फूरमान पांच, सो तिन तिन देशोमे भेजके अमारि पटह बजवा दीया, तब तो बादशाहकी आज्ञासे जो नहींभी जा नते थे ऐसे सर्व आर्य अनार्य कुल मंडपमे दयारूपिणी वेलडी विस्तार वान् हो गइ, और बंदिवान जनभी बादशाहने गुरुपाससे उठ कर तत्काल छोड दीए,और एक कोशका झील अर्थात् तलावमे आप जाकर बादशाहने अपने हाथसे नानाजातिके नानादेशवालोने जो जो जानवर बादशा हको भेट कर हूए थे, वे सर्व छोड दीए, बादशाहसे गुरुजी अनेकवार मिले और अनेक जिनमंदिर अरु उपाश्रयोके उपद्रव दूर करे, और जब श्री हीरविजय सूरि अपर देशको जाने लगे, तब बादशाहसे ऐसा फूर मान लिखवा ले गए, तिसकी नकलमै इस पुस्तकमे लिखता हूं

जलालुदीन बादशाह.
अकब्बर बादशाह.
गाजीकाफुरमान.

अकब्बरमोहरकी वंशावली.
जलालुदीनअकब्बर बादशाह.
हुमायुन बादशाहका बेटा.
बाबरशाहका वीन वेटा.
उमरशेख मीरजांका बेटा.
सुलतान अबुस इदका बेटा.
सुलतान महम्मदशाहका बेटा.
मीर शाहका बेटा.
अमीर तैमुरसाहि किरानका बेटा.

सूबे मालवा तथा अकब्बराबाद, लाहोर, मुलतान, अहमदाबाद, अजमेर, मीरत, गुजरात, बंगाला, तथा और जो हाल मेरे तावेके मुलक हैं तथा आंयदा, मुतसद्दी, सूवा, करोरी तथा जगीरदार इन सबोंकों मालुम रहे, कि जो हमारा पूरा इरादा यह है कि सर्व रइयतका मन राजी रखनां, क्योंकि रइयतका जो मन है सो परमेश्वरकी एक बडी अनामत है, और विशेष करकें वृद्ध अवस्थामें मेरा यही इरादा है, किः— मेरा भला वांछने वाली रइयत सुखी रहे तिस वास्ते हरेक धर्मके लोकोंमेंसें जो अच्छे विचार वाले परमेश्वरकी भक्ति करनेमें अपनी उमर पूरी करते हैं, तिनकों दूर दूर देशोंसें मैंने अपने पास बुलवाये, और तिनकी परीक्षा करकें अपनी सोवतमें रखता हूं, और तिनकी बाते सुनके मैं बहुत खुश होता हूं, तिस वास्ते हमारे सुननेमें आया है कि श्रीहीरविजय सूरि जैन स्वेतांबरमतका आचार्य गुजरातके बंदरोमें परमेश्वरकी भक्ति करता है, मैंने तिनकों अपनें पास बुलवाया, और तिनकी मुलाकात करकें हम बहुत खुश हूए, कितनेक दिन पीछें जब तिनोंनें अपने वतन जानेकी रजा मांगी, तब अरज करी कि जो गरीबपरवरकी मरजीसें ऐसा हुकुम होना चाहियें किः— सिद्धाचलजी, गिरनारजी, तारंगाजी, केसरीआनाथजी, तथा आबुजीका पहाड, जो गुजरातमें है, तथा राजगृहके पांच पहाड तथा समेतशिखर उरफे पार्श्वनाथजी जे बंगालके मुलकमें हैं, तथा पहाड हेठली सर्व मंदिरोंकी कोठीयों तथा सर्व भक्ति करनेकी जगायोंमें, तथा तीर्थकी जगायोंमें जो जैनश्वेतांबरी धर्मकी जगायों सर्व मेरे तावेके मुलकोंमें जिस ठिकाने होवे, कन पहाडों तथा मंदिरोंकी आस पास कोइभी आदमी, कोइ जानवरकों न मारे, यह अरज

करी अब ये बहुत दूरसें हमारे पास आयें है, और इनकी अरज वाजवी (सच्ची) है यद्यपि यह अरज मुसल्लमानी महजवसें (मतसें) विरुद्ध मालुम होती है, तोभी परमेश्वरके पिछानने वाले आदमियोंका यह दस्तूर होता है, कि'— कोइ किसीके धर्ममे दखल न देवे, और तिनोके रेवाज बहाल रखें इस वास्ते यह अरज मेरी समझमें सच्ची मालुम हुइ, जे सर्व पहाड तथा पूजाकी जगा बहुत अरसेसें जैनश्वेतांबरी धर्मवालोकी है, तिस वास्ते इनकी अरज कबुल करी गइकि, सिद्धाचलका पहाड, तथा गिरनारका पहाड, तथा तारगाजीका पहाड, तथा केशरीयाजीका पहाड तथा आबुका पहाड जो गुजरातके मुलकमें है तथा राजगृहके पांच पहाड तथा समेतशिखर उरफे पार्श्वनाथका पहाड, जो बगालके मुलकमे है, ये सर्व पूजायोकी जगायों तथा पहाड नीचे तीर्थकी जगायो जो मेरे राज्यमे है, चाहो किसी ठिकाने जैनश्वेतांबरी धर्मकी जगायो होवे, सो हीरविजय जैनश्वेतांबरी आचार्यको देनेमे आइ है, और इनोने अच्छीतरेसें परमेश्वरकी भक्ति करनी चाहिये

और एक वात यहभी याद रखनी चाहिये जो कि ये जैनश्वेतांबरी धर्मकी पहाड तथा पूजाकी जगा तथा तीर्थकी जगा, जे मैनें श्रीहीरविजय सूरि आचार्यको दीनी है, परतु हकीकतमें ये पूर्वोक्त सर्व जगायो जैन श्वेतांबर धर्मवालोकीही है, और जहांतक सूर्यसे दिन रौशन रहे, तथा जहातक चद्रमासे रात रोशन रहे, तहां तक इस फुरमानका हुकम जैन श्वेतांबरी धर्मके लोकोमे सूर्य तथा चद्रमाकी तरे प्रकाशित रहे, और कोइ आदमी तिनकों हरकत न करे, और किसी आदमीने तिन पहाडो उपर तथा तिनके नीचे तथा तिनकी आस पास पूजाकी जगायोमे तथा तीर्थकी जगायोंमे जानवर नहीं मारनां, और इस हुकम ऊपर अमल करना, इन हुकमसें फिरना नहीं, तथा नवीन सणद मांगनी नहीं लिखा तारीक ७ मी माह उरदी बहेस मुताबेक माह रबीयुल अवल सन् ३७ जुलसी यह अकब्बर बादशाहके दीये फुरमानकी नकल है

तथा थानसिंघकी कराइ अपर साह दूजणमल्लकी कराइ श्रीफतेपुरमे अनेक लाख रुपइये लगाके बडे महोत्सवसे श्री जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी प्रथम चातुर्मास आगरेमें करा दूसरा फतेपुरमे करा तीसरा भिराम नाम नगरमे करा, चौथा फेर आगरेमे करा, फेर वहां बादशाहकी गोष्ट वास्ते

श्रीशांतिचंद्र उपाध्यायकों छोड गये, और आप गुरुजी मेड़ते, नागपुर चौमासा करकें सिरोंही नगरमें गये, तहां नवीन चतुर्मुख प्रासादमें श्री आदिनाथके बिंब तथा श्री अजितनाथके प्रासादमें श्री अजितनाथके बिंबोकी प्रतिष्ठा करकें अर्बुदाचलमें यात्रा करनेंकों गये, और पीछें श्री शांतिचंद्र उपाध्यायने नवीन कृपारस कोश नामा ग्रंथ बनाके अकब्बर बादशाहकों सुनाया, तिसके सुननेंसें बादशाहनें दयाकी बहुत वृद्धि करी, तिसका स्वरूप यह है किः— बादशाहके जन्मके दिनसें एक मास अरु पर्यूषणाके बारां दिन, तथा सर्व रविवार, तथा सर्वसंक्रांतिके दिन, नवरोजकामास, सर्व ईदकेदिन, सर्व मिहर वासरा, सर्व सोफी अनादिन इत्यादि सब मिलकर एक वर्षदिनमें छै महीनें तक जीवहिंसा बंद कराइ, तिसके फुरमान लिखवाए सो फुरमान अबतक हमारें लोकोंके पास हैं, इसमें कुछ शंका नहीं कि श्री हीरविजय सूरिजीने जैनमतकी वृद्धि और उन्नति बहुत करी? मुसलमानोंकोंभी जिनोंनें दयावान् करा तथा स्थंभनतीर्थे संवत् (१६४६) में स्थंभनतीर्थवासी शा० तेजपालके बनवाये मंदिरकी प्रतिष्ठा करी.

५९ श्री हीरविजय सूरि पट्टे श्री विजयसेन सूरि हूए इनका (१६०४) वर्षे जन्म (१६१३) वर्षे मातापिता सहित दीक्षा, (१६२६) वर्षे पंडित पद, (१६२८) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६५२) वर्षे भट्टारक पद, (१६७१)वर्षे स्थंभनतीर्थे स्वर्गवास जिनके वेखहरख, अरु परमानंद येदोशिष्योनें अकब्बर बादशाहके बेटे जाहांगीरकों धर्म सुनाकें प्रतिबोधा, और जाहांगीर बादशाहसें फुरमान कराया तिसकी नकल यह है.

नुरुदीन महम्मद.
जहांगीर बादशाह.
गाजीका फुर
मान.

जहांगीरकी मोहरमें बंशावलि.
नुरदीनमहम्म जहांगीर बादशाह.
अकब्बर बादशाह.
हुमायुन बादशाह.
बाबर बादशाह.
मीरजा उमरशेख.
सुलतानअबुसइद.
सुलतान मीरजामोहम्मशाह. मीरांशाह.
अमीरतैमुर साहिब. किरान.

मेरे सर्वराजके विशेष करकें गुजरातकें सूवे, मोटे हाकिम तथा कीफायत करने वाले आमील तथा जागीरदार तथा करोरी तथा सर्व खातोके कार कुनोंको मालुम होवे कि जो परमेश्वरके पिछानने वाले लोक है, तिनका यह दस्तूर है, कि हरेक मत तथा कोमके लोक इतनाही नही बलकि सर्व जीव सुखी रहे, और अब्र वेखहरख, तथा परमानद यतीयोनें डुनी याकी रक्षा करने वालोंकी दरवारमे आकर तखतके पास खडेरहनें वालोसे अरज करी कि विजयसेन सूरि तथा विजयदेव सूरि और जे अच्छी बुद्धि वाले लोक है, तिनकी हरेक जगे तथा हरेक सहरोमे देहरा अर्थात् जिन मंदिर तथा धर्मशाला है,तिनमे ये लोक ईश्वरकी नक्ति करते है औ प्रार्थना करतें हैं,और वेखहरख तथा परमानद यतीकी परमेश्वरको राजी रखनेंकी हकीगत हमने अच्छी तरेसे जान लीनी है, तिस वास्ते डुनीयांकों तावे करने वाला हुकम हूआ कि —कोइ आदमीने इन जैनलोकोके मदिर तथा धर्मशालामे उतरना नही तथा कारन विना अडचल नही करनी और जेकर ये लोक फिरकर नवा बनाया चाहेतो तिनकों किसीतरेकी मनाई तथा हरकत नही करणी और तिनके साधुओके उपाश्रयोमे कोइनेनी उतरणां नही, और जो ये लोक सोरठके मुलकमे शत्रुजय तीर्थकी यात्रा करने वास्ते जावे तो कोइनी आदमी तिन यात्रालुओसे कुछ न मागे ला लच न करे, और पूर्वोक्त वेखहरख अरु परमानदयतिकि अरज तथा खाहि स ऊपर हुकम वडा नारी हूआ कि दर अववाडेमे रविवार तथा गुरुवार तथा दर महिनेमे शुदि पडिवाका रोज तथा इदके दिन तथा दर वर्षमे न वरोज तथा माहशहरयुरमा जे हमारा मुवारक दिन है तिनमे एक एक व र्षके हिसाव प्रमाण मेरे सर्व राज्यमे कोइ जीवकी हिंसा न होवे, तथा श कार करना तथा पक्षीयोका पकडना, मारना, तथा मछलीयोका मारना, ये वद कीया जावे तथा इस तरेके औरनी काम इन पूर्वोक्त दिनोमें न होने चाहिये, ये वात जरूर है, जे पूर्वोक्त हुकम प्रमाण हमेशा चलानेकी को शिक करके मेरे फुरमानके हुकमसे कोइ फिरे नही, विरुद्ध चले नही लि खा ता० माह सहर युरमे सन् ३ जुलसी यह फुरमान खाजाहानके चौ पानीया तथा सेवक अली तकीके वर्त्तमान पत्रमे दाखल हूआ तरजुमा करनेवाला मुनशी सइयद अवडलामीया साहिब वगैरजी

६० श्री विजयसेन सूरि पट्टे श्री विजयदेव सूरि हूये तिनका (१६३४) वर्षे जन्म (१६४३) वर्षे दीक्षा, (१६५५) वर्षे पंमित पदं, (१६५६) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६७१) वर्षे स्वर्ग, ६१ श्री विजयदेव सूरि पट्टे श्री विजयसिंह सूरि हूये तिनका (१६४४) वर्षे जन्म, (१६५४) में वर्षे दीक्षा, (१६७३) वर्षे वाचक पद, (१६७२) वर्षे सूरि पदं, (१७०७) वर्षे स्वर्गगत, ६२ श्री विजयसिंह तथा श्री विजयदेव सूरि पट्टे श्री विजयप्रन सूरि हूये, तिनका (१६७५) वर्षे जन्म, (१६७ए) वर्षे दीक्षा, (१७०१) वर्षे पंमित पदं, (१७१०) वर्षे उपाध्याय पदं, (१७१३) वर्षे नट्टारक पदं, (१७४ए) वर्षे स्वर्गगमनं, इनोंके समयमें मुहवधे ढूंढीयोंका पंथ निकला तिसकी उत्पत्ति ऐसे हैः—

सुरत नगरमें वोहरा वीरजी साहुकार दशाश्रीमालि वसता था, तिसकी फूलां नामें बालविधवा एक वेटीथी, तिसने एक लवजी नामा लडका गोदी लीया, तिस लवजीकों लुंकेके उपाश्रयमें पढने वास्ते नेजा, तहां यतीयोंकी संगतसें वैराग्य उत्पन्न हूआ, और लुंकेके यती वजरंगजीका शिष्य हूआ, तव दो वर्षे पीछें अपने गुरुकों कहने लगा कि जैसा शास्त्रोंमें साधुका आचार है वैसा तुम क्यों नही पालते हो ? तव गुरुने कहा पंचमकालमें शास्त्रोक्त सर्व क्रिया नहीं हो सक्ति है. तव लवजीने कहा तुम ज्रष्टाचारी मेरे गुरु नहीं मैंतो आपही संयम फेरकें लेऊंगा इस तरेंका क्लेश करकें ऋषि लवजीने लुंके मतकी-गुरु शिक्षा छोडके अपने साथ दो यति और लीए तिसमें एकका नाम नूणा.दूसराका नाम सुखजी इन तीनोंहीने अपने आपहीको दीक्षित करा, और मुंहके ऊपर कपडेकी पट्टी बांधी, तव इनका नवीन वेष देखकें गामोंमें किसी श्रावकने इनके रहनेकों जगा न दीनी, तव ये उजडे हूये मकानोंमें जा रहें गुजरात देशमें फूटे टूटे मकानकों ढूंढ कहते हैं, इस वास्ते लोकोंने इनका नाम ढूंढिये रक्खा, इन तीनोंको नवे मत चलानेमें वडे वडे क्लेश नोगने पडे परंतु इनके त्यागकों देखकें कितनेक लुंकेमति इनकों माननेनी लगे, क्योंकि यह नेडचाल जगत्में प्रसिद्ध है, और नोले लोक तो ऊपरली बूगं फूर्फा देखकें रागी हो जाते हैं, और गुजरातके बहुत लोक ऐसें हठ ग्राही हैंकिः—जो बात पकड लेवें उस बातकों बहुत मुसकलसें छोडते हैं, इसी वास्ते जैनमतमें

केइ फिरके गुजरात देशसेही निकले है. पीछे तिस लवजीका शिष्य अहम दावादके कालुपुरेका वासी उसवाल सोमजी हूआ, तिसने सूर्यकी आत पना बहुत करी, तिनके चेलोंका नाम १ हरिदासजी, २ प्रेमजी, ३ गि रधरजी, ४ कान्हजी, प्रमुख और लुकेमति कुंवरजीके चेलेभी इनके शिष्य बने तिनके नाम १ श्रीपाल, २ अमीपाल, ३ धर्मसी, ४ हरजी, ५ जी वाजी, ६ समरथ, ७ तोडुजी, ८ मोहनजी, ९ सदानंदजी, १० गोधा जी, ये एक गुजरातका वासी धर्मदास छीपीनें मुंमपुंमाके मुख ऊपर पट्टी बाधके अपने आपको ढूंढिया साधु मशहूर कीया, तिनमे हरिदासका चेला वृंदावन हूआ, और वृंदावनका चेला भुवानीदास हूआ, और भु वानीदासका चेला लाहोरका वासी मलूकचद हूआ, मलूकचदका महा सिंघ, और महासिंघका कुशालराय और कुशालरायका छजमल, और छ जमलका रामलाल, और रामलालके शिष्य रामरत्न, और अमरसिंह, ये दोनो मैने देखे है अब इन दोनोंके चेले बसतराय, और रामबकस वगैरे जीते है ये पंजाब देशमें आज काल फिरते है

और जीवाजीका चेला लालचद हूआ, लालचदका अमरसिंह हूआ सो मारवाड देशमे आया तिसके परिवारमें नानकजी जिनोंके चेले अब अजमेर अरु कृष्णगढके जिल्लेमे बहुत रहते है, और श्यामिदास जि नोंके परिवारके कन्हीराम, लेखराज, तखतमल, प्रमुख अब मारवाडमे रहते है और जो कोटेवूंदीमे तथा मालवेमें लालचद, गणेशजी, गोवि दरामजी, हूये, तथा अमीचद, हुकमचद, उदयचद, फतेचद ग्यानजी छ गन, मगन, देवकरण, अरु पन्नालाल प्रमुख फिरते है येभी हरिदास केही चेले है. तथा अमरसिंघका चेला दीपचद, दीपचदका, चेला धर्म दास, धर्मदासका जोगराज, जोगराजका हजारीमल्ल, हजारीमल्लका ला लजीराम, लालजीरामका गगाराम, गगारामका जीवणमल्ल, जो इस व खत दिल्लीके आसपासके गामोमे फिरते है, तथा अमरसिंघके परिवा रमे धनजी, मनजी, नाथुराम, अरु ताराचदादि हूये, है, जिनोके चेले रतीराम, नदलाल, हूये नदलालका चेला रूपचद, रूपचदका विहारी, जोकि पजाबमे कोट जगरावादि गामोमे रहिते है तथा कानजी और ध र्मदास छीपीके चेलेयोंमेसे दीपचद, गुपालजी प्रमुख ये लींमडी, बढ

वाण, मोरबी, गोंफल, जैतपुर, राजकोट, अमरेली, धांगधरा, प्रमुख फा लावाड, काठीयावाड, मछुकांठा प्रमुख देशोंके गामोंमें फिरते रहते हैं. और धर्मदास छींपिका चेला धनाजी, धनाजीका नूदरजी, नूदरजीका रघुनाथजी, जैमलजी, गुमानचंद, दुर्गादास, कन्हीराम, रत्नचंद, हमीरमल्ल, कचोडीमल्ल प्रमुख जो अब मारवाडदेशमें रहते हैं सो प्रसिद्ध है.

और रघुनाथजीका चेला नीखमजी संवत् (१८१८) में हूआ, जिसने तेराहपंथ निकाला तिसके चेले नारमल, हेमजी, रायचंद, जीतमल्ल, जीतमल्लकी गद्दी उपर अब मेघजी है, ये पट्टीबंध जितने साधु हैं. इनका पंथ संवत (१७०९) के सालसें चला है, और इनका मत जबसें निकला है, तबसें ले कर आजपर्यंत इनके मतमें कोइभी विद्वान् नहीं हूआ है, क्योंकि ये लोक कहते हैं कि:– व्याकरण, कोश, काव्य, छंद, अलंकार, पढनेसें तथा तर्कशास्त्र पढनेसें बुद्धि मारी जाती है इस वे इलमीकेही सबबसें ये लोक परस्पर वडा द्वेष रखते हैं, केइ मनमानी कल्पित बाते बना लेते हैं, एक दूसरेके पग नही जमने देते, मनमें जानते हैं कि:– मेरे गृहस्थ चेलोंकों वह लेवेगा? इत्यादि मेरे लिखनेमें किसीकों शंका होवे तो मारवाडमें जाकर प्रत्यक्ष देख लेवे, इनका आचार, व्यवहार, वेष, श्रद्धा, प्ररूपणा, प्रमुख है सो जैनमतके शास्त्रानुसार नहीं है, और दूसरे मतोंवालेभी जो बहुत जैनमतकों बुरा जानते हैं, वो इन ढूंढीयोंके हीके आहार व्यवहारके देखनेसें जानते हैं. परंतु यह लोक तो सर्व जैन मतसें विपरीत चलने वाले हैं, इति ढुंढकमतोत्पत्ति ॥

६३) श्रीविजयप्रभसूरिपट्टे श्रीविजयरत्न सूरि हूए, ६४ श्रीविजय रत्नसूरिपट्टे श्रीविजयक्षमासूरि हूए, ६५ श्रीविनयक्षमा सूरिपट्टे श्रीवि जयदयासूरि, ६६ श्रीविजयदयासूरिपट्टे श्रीविजयधर्मसूरि, ६७ श्री विजयधर्मसूरिपट्टे, श्रीजिनेंद्रसूरि, ६८ श्रीजिनेंद्रसूरिपट्टे श्रीदेवेंद्रसूरि, ६९ श्रीदेवेंद्रसूरिपट्टे श्रीविजयधरणेंद्रसूरि, जोकि इस वर्त्तमान कालमें विद्यमान विचरते हैं.

तथा एकसठमे पाटें जो श्रीविजयसिंह सूरिथे तिनका शिष्य श्रीसत्य विजयगणि हूए और महोपाध्याय षटशास्त्रवेत्ता, न्यायविशारद, बिरुदधा रक महावैय्याकरण, तार्किकशिरोमणि, बुद्धिका समुद्र महोपाध्याय श्री

यशोविजयगणि इनदोनोने श्रीविजयसिंहसूरिकी आज्ञा लेकें गछमेंक्रि याशिथिल साधुओंको देखके और ढूढकमतके पाखन्ड अंधकारके दूर क रणे वास्ते क्रिया उद्धार करा, और जिनोने काशीके पन्डितोसे जयपता काका झन्डा पाया, और गुजरात प्रमुख देशोमे प्रतिमा उद्यापक कुलिंगी योके मतरूप अंधकारकों दूर करा, और जिनोके रचे हूए (१००) ग्रंथ अध्यात्मसार, स्याद्वादकल्पलता, शास्त्रसमुच्चयकीवृत्ति, मल्लवादी सूरिकृत नयचक्र उद्धारादि, अनेक बडेबडे एक सौ ग्रंथ है

श्रीगणिसत्यविजयजी क्रिया उद्धार करके श्रीआनंदघनजीके साथ ब हुत वर्ष लग वनवासमे रहे, और बडी तपस्या योगाभ्यासादि करा, जब बहुत वृद्ध हो गए, जघामे चलनेका बल न रहा, तब अणहल्ल पट्टनमे जा रहे तिनके उपदेशसे तिनके दो शिष्य हूए, एक गणिकपूरविजयप न्डित, और दूसरा पन्डित कुशलविजयजी, तिनमे गणिकपूरविजयजीनेंतो अनेक अर्हत बिंबोकी प्रतिष्ठा करी, और अनेक ग्राम नगरोमे धर्मकी वृद्धि करी, बडे प्रभावक हूए, श्रीगणिकर्पूरविजयजीके दो शिष्य हूए, एक पन्डित वृद्धिविजय गणि, दूसरा पन्डित क्षमाविजयगणि, श्रीपन्डित क्षमाविजयगणिके शिष्य पन्डित श्रीजिनविजय गणि, तिनका शिष्य पंन्डित उत्तमविजयगणि, तिनका शिष्य पन्डित पद्मविजयगणि, तिनका शिष्य पं न्डित रूपविजयगणि, तिनका शिष्य पन्डित कीर्त्तिविजयगणी तिनका शिष्य पन्डित कस्तूरविजयगणी तिनका शिष्य मुनिमणिविजयगणि,तिनका शिष्य मुनि बुद्धिविजय गणि, तिनका शिष्य पन्डित मुक्तिविजय गणि, तिनोके हाथका दीक्षित लघु गुरु भ्राता इस जैनतत्त्वादर्शग्रंथके लिखनेवाला मुनि आत्माराम आनंदविजय नामक हू इतिगुरावलिसपूर्ण ॥

अब इस ग्रंथके लिखनेवालेके समयमे इतने नवीनपंथ निकले है सो लिखते है – गुजरातदेशमे स्वामी नाराणकापंथ, और बंगालदेशमे ब्रह्म समाजीयोंका पंथ, और पंजाबदेशमे लोदीहानेसे दश कोशके अंतरे एक भयणीनामा गाम है तिसमे रहनेवाला जातिका तरखाणसिक्ख तिसके उपदेशसे कूका नामे पंथ, और कोइलमे मौलवी, अहमदशाहका नवीन फिरका, तथा दयानंदसरस्वतीस्वामीका निकाला आर्यसमाजका पंथ इत्यादि अनेकमत पुराने मतोको छोडके निकाले है, क्योंकि इनोनें अ

पनी बुद्धि समान प्राचीनोंके करे पुस्तक तथा वेदार्थोंकों नही समझा जेकर इसीतरें नवीन नवीन मत निकलते रहेतो कोइकदिनमे ब्राह्मणादि मताधिकारीयोंकी रोजी मारी जायगी, और धर्म अरु नियम किसिकिसिका कायम रहेगा ?

इति श्रीतपगच्छीय मुनिगणिश्री मणिविजय तच्छिष्य मुनि श्रीबुद्धिविजय च्छिष्य मुनि आतमरामआनंदविजय विरचिते जैनतत्त्वादर्शे गुरुआवलि कथन रूप द्वादशः परिच्छेदः संपूर्णः ॥ १२ ॥

॥ इति मुनि श्री आत्माराम आनंद विजयजी विरचित द्वादश परिच्छेद रूप जैनतत्वदर्श ग्रंथः समाप्तः ॥